₹ 100/-

साहित्य अमृत

जनवरी 2020 • साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक • मासिक • ISSN 2455-1171

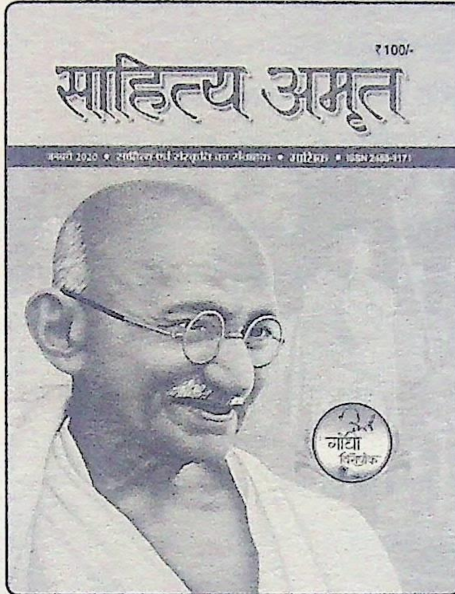




साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२५ अंक-६ ❖ पृष्ठ २८४ पौष-माघ-२०७६ जनवरी २०२०



इस अंक में

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र



पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी



संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी



प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर



संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,

नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com



शुल्क

इस अंक का मूल्य —₹ १००

सामान्य अंक —₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६, कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।



कविता

सूक्तियाँ

राम झरोखे बैठ के

गांधी वाङ्मय

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

पुस्तक-अंश

लोक-साहित्य



स्वराज्य और स्वतंत्रता

'साहित्य अमृत' के संपादक श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी अस्वस्थ हैं, अस्पताल में हैं; इसलिए इस महत्त्वपूर्ण अंक का संपादकीय लिखने में असमर्थ हैं। 'महात्मा गांधी विशेषांक' के विषयों का निर्धारण एवं इस अंक की पूरी संकल्पना उन्होंने की। यह विशेष अंक उन्हीं की संकल्पना एवं मार्गदर्शन का सुपरिणाम है। हम उनके शीघ्र पूर्ण रूप से स्वस्थ होने की कामना करते हैं।

१५० वर्ष पहले भारत की पावन भूमि पोरबंदर में जनमे गांधी की अनेक स्मृतियाँ भारतीय जनमानस में रची-बसी हैं। यहाँ प्रस्तुत अंक के संपादकीय के बहाने उनके द्वारा किए गए महान् कार्यों और देश की दशा-दिशा बदलकर रख देनेवाले विचारों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है। यह प्रयास बेहद बेतरतीब और अनायास है, क्योंकि परमादरणीय श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की जगह यह आपद् प्रयास किया गया है।

गरीबों का स्वराज सुनिश्चित करनेवाली अर्थव्यवस्था गांधी का लक्ष्य थी। अर्थव्यवस्था के नजरिए से गांधीवादी स्वराज का अर्थतंत्र वंचितों की स्थिति से तय होता है या अपनी विशिष्ट अर्थनीति नियत करता है। आजादी मिलने के बाद गांधी ने कहा था कि हमें राजनीतिक आजादी तो मिल गई, लेकिन सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिंदुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी पाना अभी बाकी है। उसकी कल्पना में स्वराज्य स्थापित कर जनता में सुख-समृद्धि का वातावरण तैयार करना था। स्वराज्य का उनके लिए अर्थ विदेशी शासन से मुक्ति-मात्र नहीं था, बल्कि प्रत्येक प्रकार के शोषण से जनता को मुक्ति दिलाना था, इसलिए उन्होंने भारतीयों का संगठन किया। सार्वजनिक कल्याणकारी योजनाओं का शुभारंभ किया। उनका मानना था कि बिना आर्थिक स्वावलंबन के कोई आजादी अर्थ नहीं रखती है। कहा गया है—सभी आजादी आर्थिक आजादी के बिना कपोल-कल्पना हैं। स्वदेशी पर आधारित गांधी के अर्थ-दर्शन के केंद्र में यह सोच कार्य कर रही थी। सबके लिए आर्थिक आजादी ही सच्चा स्वराज्य है। गांधी के अनुसार, 'मेरे सपने का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा।' जीवन की सामान्य सुविधाएँ सभी को सुलभ होनी चाहिए।

गांधी के जमाने में भारतीय नवयुवक खेती आधारित कुटीर उद्योगों से जुड़कर काफी हद अपनी आजीविका अर्जित कर रहे थे, इसलिए तमाम दबावों के बावजूद आजादी के बाद '६० के दशक तक बेरोजगारी दिख नहीं रही थी, लेकिन धीरे-धीरे खेत छोटे होते चले गए। वन और स्थानीय कृषि आधारित कुटीर उद्योग उजड़ गए। वहाँ बड़े उद्योगों को स्थापित कर दिया गया, जहाँ मशीनी क्रांति के कारण कम लोगों की सहायता से ज्यादा उत्पादन होने लगा। मशीनीकरण लगातार बढ़ता चला गया और बेरोजगार लोग भी बढ़ते गए। नेहरू का रचा शाब्दिक स्वप्नलोक ध्वस्त हो गया। युवावर्ग भयानक मोहभंग का शिकार हो गया। लोग मामूली मजदूरी पाने के लिए भी संघर्ष करने लगे। आज स्थिति अधिक विकराल है। प्रतिभा-संपन्न युवा और उच्च-मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चे पढ़-लिखकर अपना भविष्य विदेशों में तलाश रहे हैं, जबकि नवयुवकों का एक बहुत बड़ा वर्ग रोजगार के अभाव में अपराध की तरफ बढ़ रहा है। वह हताश होकर नशे में डूब रहा है। ऐसे में भारत समेत तीसरी दुनिया ही नहीं, दुनिया भर में गांधी के ग्रामोद्योग की प्रासंगिकता पर फिर से विचार हो रहा है।

गांधी का ग्रामोद्योग इस केंद्रीय विचार पर टिका था कि पूँजीपति न तो श्रमिकों का शोषण करें और न मजदूर उत्पादन-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण होने के बाद दूसरों का शोषण करने लगें। इसके लिए गांधी ने ग्रामोद्योग का रास्ता दिखाया था, जहाँ गाँववाले अपनी जरूरतों की सारी चीजें उत्पन्न करें या उनका उत्पादन करें। वस्तु उत्पादन, उनका विनिमय और उनका इस्तेमाल गाँव में ही हो, ताकि पूँजीवादी उपभोक्ता तंत्र विकसित न हो सके। गाँव की जरूरतें पूरी करने के लिए वस्तुओं का उत्पादन भी ग्रामोद्योग का लक्ष्य था। महात्मा गांधी, जिनके लिए भारत की घनी आबादी और सीमित भूमि एक कठोर हकीकत थी, कृषि-क्रांति के पहले की कल्पना में जीने की बजाय

भारतीय जीवन की जो वास्तविक स्थितियाँ थीं, उसी के परिप्रेक्ष्य में जीवन और समाज के लिए नई दिशा ढूँढ़ रहे थे।

गांधी बड़े पूँजी-केंद्रित उद्योगों का राष्ट्रीयकरण इसलिए चाहते थे कि वहाँ साधनहीन वर्ग को काम मिल सके। वे समझ रहे थे कि भारत की वास्तविक पहचान गाँव के अस्तित्व बनाए रखने में संभव है। शहर और महानगर उस समय विदेशी उपभोग के केंद्र थे। बाद में वहाँ पैसेवालों का वर्चस्व बढ़ता चला गया। दुर्भाग्य से बड़े स्तर पर जो उद्योग स्थापित हुए, वे महानगर-केंद्रित थे। इससे पूँजीहीन ग्रामीणों को लाभ मिलने की बजाय शोषण का शिकार होना पड़ा। शहरी कारखानों में वे मामूली मजदूर बनकर रहे और ग्रामीण कुटीर उद्योग स्पर्धा के कारण बाजार में उनसे होड़ नहीं ले पाए। बड़े कारखानों में बनी वस्तुएँ कम समय और बड़े पैमाने पर उत्पादित होने के कारण आकर्षक तथा सस्ती थीं। बाजारवाद का नियम यही है कि सस्ता और टिकाऊ उत्पाद बहुतायत में तैयार करो; जो देर तक टिका रहता है, जबकि बहुत पहले भयानक मशीनीकरण की ओर इशारा करते हुए गांधी ने लिखा—''मेरी आपत्ति यंत्रों के पीछे पागल होने पर है। हजारों लोगों को भूखों मरने के लिए नहीं छोड़ा जा सकता।'' वे इंग्लैंड के अदृश्य या छुपे हुए आर्थिक साम्राज्यवाद को देख रहे थे, जिसकी गुलामी की जंजीरें ज्यादा मजबूत थीं।'' यहाँ गांधी की चिंता साफ तौर पर दिख रही है। मशीनों द्वारा पोषित बड़ा उद्योगवाद एक प्रकार से लोगों को गुलाम बनाने का औजार है।

ग्रामों में उद्योगों की व्याप्ति से बेकारी से मुक्ति के साथ-साथ मानसिक शुद्धता, बुद्धिमत्ता और चारित्रिक उच्चता को आसानी से पाया जा सकता है। मशीनी उद्योगों की अधिकता यातायात की असुविधा सहित हड़ताल, धरना-प्रदर्शन इत्यादि समस्याओं को भी जन्म देती है, जबकि ग्रामोद्योग सृजनात्मक होने के कारण अपनी उत्पादित वस्तुओं को निरस्तर सुधारता रहता है। मशीनें वस्तुओं को नहीं, उनके अलग-अलग हिस्सों को और पुरजों को बनाती है। यह काम मशीनी ढंग से होता है, जिससे मानसिक और शारीरिक विकास रुक जाता है। अमेरिका सहित अनेक यूरोपीय देशों में हम इसे देख सकते हैं। वहाँ मेधावी भारतीयों की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि परंपरागत भारतीय उत्पादन-व्यवस्था में शरीर और मन निरंतर कार्य करते हैं, इसीलिए गांधी देश की युवा श्रम-शक्ति को देश में ही रचनात्मक सदुपयोग करने का रास्ता दिखाते हैं।

यह गांधीवाद का वैचारिक और व्यावहारिक पक्ष है। कम पैसे में ज्यादा लोगों को रोजगार देने की संभावना केवल ग्रामोद्योग में है। यह एक ऐसी मौलिक और कारगर योजना है, जिसका इस्तेमाल का रास्ता गांधी दिखाते रहे। इस संदर्भ में उनकी सोच को पाश्चात्य दृष्टि से आक्रांत विचारक अव्यावहारिक और विज्ञान-विरुद्ध करने का प्रयास करते हैं, जबकि गांधी और उनके द्वारा प्रस्तावित ग्रामोद्योग कहीं भी वैज्ञानिक आविष्कारों का बहिष्कार नहीं करते। बस उनका जरूरत के हिसाब से विवेकपूर्ण इस्तेमाल करने का रास्ता दिखाते हैं। गैर-जरूरी उत्पादन का ढेर लगाना मशीनी उद्योगों का लक्ष्य है। आज चीन अपने उत्पादनों के पहाड़ के नीचे दब गया है। अगर एक भी देश उसके सामान का आयत बंद कर दे तो वहाँ बेरोजगारी के कारण गृहयुद्ध निश्चित है, क्योंकि उन्होंने मशीनों से बिना जरूरतों के अल्पजीवी उत्पादों का ढेर लगा दिया है।

समाज के स्वास्थ्य और विकास के लिए उत्पादन होना चाहिए, न कि इनके विनाश के लिए। सारी योजनाएँ अगर इसी आधार पर बनें तो बेतरतीब शहरीकरण और गाँव का सूना होना रुक जाएगा। इन सबसे उत्पन्न समस्याएँ सुलझ जाएँगी। गांधी केवल पश्चिमी पद्धति के बड़े उद्योगों के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि वहाँ लोग कम हैं। इसलिए औद्योगिकीकरण वहाँ चल सकता है, जबकि ग्रामोद्योग भारतीय समाज-व्यवस्था के प्रमुख आर्थिक घटक—गाँव के विकास के लिए जरूरी है। अगर उद्योग गाँव में स्थापित हों तो विपुल जनशक्ति और प्राकृतिक जलसंसाधन का ज्यादा प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। गाँव से पलायन करने के कारण शहर नरक में बदलते जा रहे हैं। ऐसे में ग्राम आधारित रोजगार-व्यवस्था से संभव उद्योग पिछड़ापन नहीं, प्रगतिशील सोच है।

अनावश्यक प्रतिस्पर्धा के कारण भारतीय सुवाओं में आपसी वैमनस्य बढ़ गया है। समाज-व्यवस्था कभी भी चरमरा सकती है। गांधी प्रतिस्पर्धा को एक ऐसा पागलपन मानते रहे, जिसके कारण बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। वे सबसे पीछे खड़े हुए गरीब व्यक्ति का खयाल करने की बात करते हैं, ''मैं आपको एक गुरुमंत्र देता हूँ। कमजोर और गरीब आदमी का खयाल कीजिए। उसके उपकार में ही आपका लाभ निहित है। इससे आपको आध्यात्मिक संतुष्टि मिलेगी। देश में स्वराज्य आएगा।'' गांधी के इन सूक्त-वाक्यों में ही स्वराज्य की मूल भावना निहित है। गांधी का स्वराज्य सुराज या राम-राज है। इसे बेमतलब आधुनिक मशीनीकरण से नहीं पाया जा सकता। ऊर्जा से भरी युवाशक्ति को आत्मध्वंस से बचाकर पाया जा सकता है। 'हजारों लोगों को भूखों मरने के लिए छोड़ देने की कीमत पर श्रम बचाना पागलपन है।' देश की आर्थिक नीतियाँ इस कथन को ध्यान में रखकर बनानी चाहिए। ग्रामोद्योगों की मदद से तब आजादी सुनिश्चित हुई थी। आज भी दूसरी आजादी का रास्ता गाँवों से होकर जाता है।

देश की राजनीति ही नहीं, समाज और व्यक्ति-जीवन के प्रत्येक संघर्ष, समस्या एवं विवाद का समाधान सत्याग्रह और अहिंसा में देखने वाले गांधी के लिए साधन तथा साध्य की निर्मलता खास महत्त्व रखती थी। उनके मार्क्सवादी आलोचक मानते रहे कि आखिर साधन तो साधन ही हैं, उनमें पवित्रता या शुचिता देखना बेमतलब है, पर गांधी ने यह कहा कि 'साधन ही सबकुछ हैं, जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। साधन और साध्य को अलग करनेवाली कोई दीवार नहीं है।' यानी दोनों परस्पर आश्रित हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, इसलिए गांधी कहते हैं कि 'गंदे साधनों से मिलनेवाली चीज

भी गंदी ही होगी।' गांधी ने बुराई पर विजय पाने के लिए 'सत्याग्रह' का शस्त्र सुझाया। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है—'सत्य का आग्रह' या 'सत्य के लिए आग्रह', अर्थात् सच्चाई पर कायम रहना। गांधी ने सत्याग्रह को 'प्यार की शक्ति' अथवा 'आत्मबल' का नाम दिया। सत्याग्रह वास्तव में एक तपस्या है, क्योंकि 'अन्यायी' हृदय-परिवर्तन के लिए स्वयं कष्ट उठाता है और वह भी खुशी-खुशी। गांधी ने कहा था, 'कड़ी से कड़ी चीज प्यार की अग्नि में कुछ कमी है', जैसाकि पहले कहा—सत्याग्रह और अहिंसा, दोनों परस्पर गुँथे हुए हैं। ये दोनों ही गांधी के रामराज्य के आधार हैं।

गांधी के रामराज्य को यूटोपियन या कवि-कल्पना मानने वाले कम नहीं थे, लेकिन असल में यह बेहद ठोस अवधारणा है। जनता का सर्वांगीण विकास करने में सक्षम यह ऐसी शासन-व्यवस्था की चाहत थी, जो अहिंसा और प्रेम पर चलती हो और जहाँ कोई वर्ग शोषण का शिकार नहीं हो। शासन और शासित, यानी जनता जहाँ अधिकारों से पहले अपने कर्तव्यों का पालन करे, दायित्वों का निर्वाह करे, वही रामराज्य है। गांधी ने राज्य एवं शासन के दायित्वों के संबंध में 'प्रजाहित' की दृष्टि से विचार किया है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उनकी ऐतिहासिक महत्त्व की पुस्तक 'हिंद स्वराज' में मिलता है। सन् १९०९ में लिखी इस पुस्तक में औपनिवेशिक शासन का यथार्थ हो या स्वराज, यानी रामराज्य का सपना, उसके अच्छे-बुरे होने का मानदंड वे प्रजा की दशा-दुर्दशा में ही रेखांकित करते हैं।

साम्राज्यवादी अंग्रेजों के 'कुराज' के बरक्स गांधी जिस 'सुराज' की निर्मिति का संघर्ष कर रहे थे, उसकी परिकल्पना गांधी के मस्तिष्क में स्पष्ट थी, लेकिन उन दिनों स्वराज्य के लिए गांधी के आह्वान पर जेल जाने, सत्याग्रह करनेवाले बड़े-बड़े बौद्धिक नेताओं की समक्ष में भी स्वराज्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं था, जिसका पता जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा और पट्टाभि सीतारमैया की 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास' जैसी पुस्तकों को पढ़ने पर चलता है। सारे लोग उस समय स्वराज के अर्थ और जरूरत को लेकर परेशान थे, किंतु गांधी ने स्वराज की कोई लंबी-चौड़ी परिभाषा न गढ़कर उसका आशय 'रामराज्य' से जोड़ दिया और वे देशवासियों को लगातार यही समझाते रहे कि उनके आंदोलन का लक्ष्य 'रावण-राज्य' को अपदस्थ कर 'रामराज्य' की स्थापना करना है और यह ऐतिहासिक सत्य है कि उनके द्वारा इन शब्दों के प्रयोग से जनता में यह उत्साह पैदा किया, जिससे व्यापक पैमाने पर स्वराज्य की लड़ाई में उसकी सहभागिता संभव हो पाई। कहने में अत्युक्ति नहीं कि ऐसा साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रव्यापी उत्साह न तो सशस्त्र क्रांति के नारों ने, न ही वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों ने पैदा करने में कामयाबी हासिल की।

गांधी की मानसिक बनावट और बुनावट सपाट या इकहरी नहीं थी। हो भी नहीं सकती थी। होती तो गांधी गांधी नहीं हो सकते थे। चमत्कारी गांधीत्व में कई जटिलताएँ; दूरारूढ़ कल्पनाएँ और अंतर्विरोध एक साथ मौजूद हैं। यह निजी नहीं थे; उनके समय और समाज ने उन्हें सौंपे थे। व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व में उसके सामाजिक जीन भी घुले-मिले होते हैं। गांधी आधुनिक काल में आधुनिकता की जन्मभूमि इंग्लैंड में शिक्षित हुए थे। तमाम वैज्ञानिक चिंतन एवं आविष्कारों तथा समता, स्वतंत्रता के लिए हो चुके राजनीतिक आंदोलनों से परिचित थे। भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था को समूल नष्ट करने के बजाय उसकी सामाजिक उपादेयता की वकालत भी उन्होंने की है।

गांधी स्त्री को अबला न मानकर उसके सशक्त पक्षों को रेखांकित करते रहे। सच तो यह है कि आजादी के लिए संघर्ष करने, जेल जाने, यातनाएँ सहने में स्त्रियों ने पुरुषों को पीछे छोड़ दिया। इस सबका नतीजा हुआ कि आजादी मिलने के बाद यहाँ की स्त्रियों को भी वे सभी राजनीतिक अधिकार संविधान द्वारा प्रदान कर दिए गए। इन अधिकारों को हासिल करने के लिए यूरोप या अमेरिका की स्त्रियों को जिस तरह अलग से आंदोलन करना पड़ा था, वैसी नौबत भारत की स्त्रियों को नहीं झेलनी पड़ी। गांधी के स्त्री-मुक्ति संबंधी कार्यों के ऐतिहासिक महत्त्व को उजागर करनेवाली आचार्य जे.बी. कृपलानी की ये सारगर्भित पंक्तियाँ देखिए—''आधुनिक काल में स्त्रियों के उद्धार का जितना काम गांधीजी ने किया, उतना अन्य किसी ने नहीं किया। अहिंसा पर आधारभूत स्वतंत्रता की लड़ाई में उनके भाग लेने के कारण उन्हें नागरिक रूप में अपने कर्तव्य-पालन का अवसर प्राप्त हुआ। चूँकि अधिकार कर्तव्य-पालन के फलस्वरूप ही प्राप्त होते हैं, इसलिए स्वतंत्रता के बाद भारत की स्त्रियों की राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान ही सब सुविधाएँ उपलब्ध हो गईं। स्मरणीय है कि इस विषय में पुरुषों की ओर से कभी कोई विरोध नहीं हुआ, इसलिए यूरोप तथा अन्य देशों की स्त्रियों की तरह भारत की स्त्रियों को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए अलग से कोई लड़ाई लड़ने की जरूरत नहीं पड़ी।'' *(महात्मा गांधी : जीवन और चिंतन—जे.बी. कृपलानी, पृ. ४२९)* स्पष्ट है कि गांधी ने औरतों को बराबरी की नागरिकता पाने के लिए लड़ना सिखाया, उनकी लड़ाई में स्वयं पहलकदमी की।

गांधी सामाजिक जीवन के तमाम क्षेत्रों में स्त्री की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना चाहते थे। इस संबंध में प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्त्री इला भट्ट की यह आत्म-स्वीकृति खासा महत्त्व रखती है, ''जनसामान्य के बीच स्त्रियों को बहुत ही प्रकृत रूप से शामिल कर गांधीजी ने भारतीय नेताओं के बीच अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके द्वारा नेतृत्व किए जन-आंदोलनों में स्त्रियों ने बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हिस्सा लिया और इससे भारतीय स्त्रियों के जीवन में हमेशा-हमेशा के लिए युगांतकारी परिवर्तन आया। मैं बहुत ही विनम्रतापूर्वक स्वीकार करती हूँ कि अगर गांधीजी ने स्त्रियों के लिए इतना बड़ा काम न किया होता, उनके जीवन को नई दिशा न दी होती तो आज मैं जो कुछ बन पाई हूँ, वह कभी संभव नहीं हो पाता। यह सत्य आज भारत की हर स्त्री के साथ लागू होता है।'' *(पुष्पा जोशी, 'गांधी ऑन वुमैन' का प्राक्कथन)*। गांधी स्त्री की भूमिका

केवल घर-परिवार तक सीमित नहीं मानते थे। आश्चर्य की बात है कि उन्होंने औरत की भूमिका समाज और देश के संदर्भ में ही नहीं, ग्लोबल मोर्चों पर उस समय पहचान ली थी, जब भारतीय राजनीति का ठीक से जन्म भी नहीं हुआ था।

शिक्षा में सुधार के लिए किताबी सिद्धांत नहीं गढ़े, बल्कि स्वयं प्रयोग किए। जोहांसबर्ग से कुछ दूर फार्म हाउस किराए पर लेकर उन्होंने सत्याग्रही परिवारों के बच्चों को पढ़ाने के लिए टाल्सटॉय फार्म के नाम से स्कूल खोला, जिसमें तीन घंटे पढ़ाया-लिखाया जाता था। यह पढ़ाई मातृभाषा में संपन्न होती थी। बाकी तीन घंटे बच्चों को कोई हाथ का हुनर सिखाया जाता था। १९११ से लेकर १९१४ तक वहाँ यह शैक्षिक अनुष्ठान चलता रहा। १९१५ में साबरमती आश्रम में इसे फिर चलाया गया। १९३६ में गांधी ने 'हरिजन' पत्र के माध्यम से अपने शिक्षा-संबंधी विचार प्रचारित करने शुरू किए। अक्तूबर १९३६ में नई शिक्षा-व्यवस्था पर विचार-विमर्श के लिए उन्होंने शिक्षाविदों का अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया। इसके सभापति स्वयं गांधी थे। इसमें उनके विचारों पर पर्याप्त विमर्श हुआ। कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए। यह प्रस्ताव प्रारंभिक शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत हैं। शिक्षा-सम्मेलन में यहाँ अनेक देशों के प्रतिनिधियों ने अपने देशों की शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षा-संबंधी 'गांधियन फॉर्मूला' को शामिल किया।

इन सिद्धांतों में सबसे प्रमुख है मातृभाषा के माध्यम से सात वर्षों तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा दी जाए। रोजगारोन्मुख यह शिक्षा व्यक्ति को स्वावलंबी बनाए। निजभाषा में दी गई रोजगारोन्मुख या उद्योग-केंद्रित शिक्षा को प्राथमिकता देने के पीछे गांधी का प्रमुख उद्देश्य भविष्य के नागरिकों को अंग्रेजी शिक्षा के दुष्परिणामों से बचाना था। अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित लोग श्रम से बचकर सुविधाजीवी बन रहे थे। नवयुवक अपना काम करने से कतराने लगे थे। समाज दो वर्गों में बँट रहा था। एक शारीरिक काम करनेवाले किसान, मजदूर वर्ग और दूसरा शिक्षित वर्ग—जो कार्यालय में बैठकर की जानेवाली 'व्हाइट कॉलर' नौकरी को तरजीह दे रहा था। इस बारे में गांधी ने कहा था कि 'पढ़ाई के साथ-साथ लड़कों को जो कुछ सिखाया जाए, वह किसी-न-किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिए सिखाया जाए।' यह अग्रगामी सोच थी। क्रांतिकारी होने के कारण गांधी के इस स्वावलंबन-सिद्धांत की कटु आलोचना हुई।

वर्धा सम्मेलन में उन्होंने अपनी इस सोच को विस्तार देते हुए कहा था कि 'मैं इस बात के लिए बहुत उत्सुक हूँ कि दस्तकारी के जरिए विद्यार्थी जो कुछ पैदा करें, उसकी कीमत से उनकी शिक्षा-दीक्षा का खर्च निकल सके, क्योंकि मुझे यकीन है कि देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने के लिए इसके सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है।' यह एक प्रकार से प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-व्यवस्था का आधुनिक अवतार था, लेकिन इसकी खूब आलोचना हुई। गांधीजी के इस सिद्धांत की आलोचना करने से पहले उस समय की स्थिति को समझना आवश्यक है। परतंत्र राष्ट्र आर्थिक संकटों से गुजर रहा था। शिक्षा-व्यवस्था को चलाए रखने में इन सुझावों का अपना महत्त्व था। आज भी देश के कर्णधार इस बात पर जोर दे रहे हैं कि शिक्षा संस्थाओं को अपनी व्यवस्था चलाए रखने के लिए आवश्यक वित्त स्वयं जुटाना चाहिए। उच्च शिक्षा में प्रस्तावित 'सेल्फ फाइनेंसिंग स्कीम' ठेठ ऐसी ही है! सूक्ष्मता से गहराई में जाकर गांधी के इस विचार का विश्लेषण किया जाए तो हम पाते हैं कि यह स्वावलंबन का गुण विकसित करने की दिशा में बढ़ाया गया पहला कदम है। कर्म के महत्त्व को समझने और समझाने के लिए काम करना जरूरी है, जिसकी जरूरत आज बढ़ गई है।

समकालीन संदर्भों में गांधी के शिक्षा-संबंधी विचार अधिक प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण हो गए हैं, जबकि गांधी के युग और वर्तमान समय में बड़ा परिवर्तन आया है। नवयुवक शिक्षा ग्रहण करने से ही जी चुरा रहे हैं, बल्कि कहना होगा कि मेहनत के प्रति नफरत की भावना उनमें जाग रही है। 'शॉर्टकट' अपनाकर जैसे-तैसे 'इजी मनी' को इकट्ठा करने की होड़ मची हुई है। कम समय में ज्यादा पैसा कमाने के लिए अतिरिक्त प्रतिभा-संपन्न युवक विदेशों में पलायन कर रहे हैं। समाज में शोषण की आदत बढ़ रही है। इस हालत से निपटने में गांधी का यह विचार महत्त्वपूर्ण है कि छात्र जीवन से ही स्वरोजगार और स्वावलंबन की तैयारी करनी चाहिए।

गांधी शांतिपूर्ण समाज-निर्माण या समाज में शांति स्थापना के लिए मानवीय मूल्यों से युक्त उचित शिक्षा की पक्षधरता करते रहे। आज विद्यार्थियों में खोखला अहं भरता जा रहा है। दूसरी तरफ मेडिकल, प्रबंधन, इंजीनियरिंग के छात्र तनाव के कारण नशाखोरी के शिकार बनते जा रहे हैं, जिसका सीधा असर समाज पर पड़ रहा है, इसलिए गांधी ने वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न शिक्षा-व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक मूल्यों से समृद्ध शिक्षा की वकालत की थी। यह तभी हो सकता था, जब शिक्षा को श्रम से जोड़ा जाता। इसको ध्यान में रखकर २००५ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में यह केंद्रीय विचार प्रस्तावित किया गया कि सच्चे अर्थ में शिक्षा वही है, जो व्यक्ति को मानवीय मूल्यों से जोड़ें। उसे सहज निर्णय लेने में सक्षम बनाए। शांति-निर्माण की प्रक्रिया से जुड़कर वह कर्म का महत्त्व समझे और अफसर नहीं, मनुष्य बन सके, यानी गांधी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से आज भी शिक्षा-व्यवस्था को सही रास्ता दिखाने वाले शिक्षक की भूमिका निभा रहे हैं। शिक्षा, अर्थतंत्र, राजनीति, संस्कृति से जुड़े उनके विचार आज भी महत्त्वपूर्ण हैं। आवश्यक बस यही है कि आज के अनुरूप विचारों को अमल में लाया जाए।

सुधी पाठकों को नववर्ष २०२० तथा गणतंत्र दिवस की अनेकश: शुभकामनाएँ।

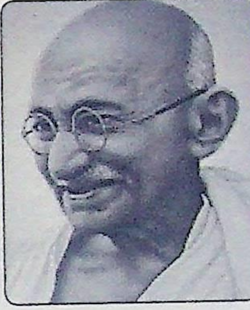
—हेमंत कुकरेती
(संयुक्त संपादक)

लोकनीति और गांधी

• आचार्य विनोबा भावे

जिस-जिस जमाने में जो भावना प्रधान होती है, उस-उस जमाने का वह ब्रह्म है। हर युग में ब्रह्म बदलता रहता है। एक समय हमारे सामने 'स्वराज्य' का ब्रह्म था, आज 'सर्वोदय' का ब्रह्म है। इस तरह युग के अनुसार भिन्न-भिन्न ब्रह्म हमारे सामने आते हैं। वेद में कहा गया है—'अथितं ब्रह्म जुजुपर् युवान:' अर्थात् जवानों को अनदेखे को देखने में, अथाह की थाह लेने में आनंद आता है। आज तक जिसका चिंतन किसी ने न किया हो, वैसा ही ब्रह्म युवकों को पसंद आता है। वे नया ब्रह्म चाहते हैं, पुराना ब्रह्म उन्हें पसंद नहीं। नया ब्रह्म पैदा होता है तो लोग उसके लिए नई तपस्या करते हैं। आज के जमाने के लिए ऐसा नया ब्रह्म गांधीजी हमें सुझा गए हैं और वह है—सर्वोदय।





भारतीय संस्कृति में जो आंतरिक ताकत थी, उसे रोजमर्रा के जाहिर व्यवहार के क्षेत्र में प्रकट करने का मौका गांधीजी को मिला। उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के काम को भी मानव-सेवा का रूप दिया। राजनीति पर भी धर्म और अध्यात्म का रंग चढ़ाया। इससे वह केवल एक राजनैतिक आंदोलन नहीं रहा। उसमें ऐसे असंख्य लोगों ने भाग लिया, जो राजनीति के जीव नहीं थे। बापू स्वयं भी कभी राजनैतिक जीव नहीं थे। मृत्यु के क्षण तक उन्हें राजनैतिक विषयों में भाग लेना पड़ा, लेकिन उनके लिए तो वह सारा उनकी व्यापक साधना का, उनकी सत्य की खोज का एक अंग ही था।

राजनीति में सत्य चलता ही नहीं, ऐसी जो रूढ़ मान्यता थी और जो शायद आज भी है, उसका गांधीजी ने तीव्र विरोध किया। उन्होंने कहा कि सत्य-निष्ठा जितनी धर्म या पारमार्थिक साधना के लिए जरूरी है, उतनी ही दुनियादारी के व्यवहार में भी जरूरी है। जीवन के दो भाग नहीं हो सकते, इसीलिए वे पहले से ही सत्य के आधार पर सेवा करते-करते आगे बढ़ते गए। वे हमेशा ध्यान रखते हैं कि मुँह से ऐसा कोई शब्द न निकले, जो असत्य हो, विचारपूर्वक न बोला गया हो, जो सत्य की कसौटी पर खरा न उतरे। राजनीति का व्यवहार उन्होंने सतत किया, लेकिन उस दरमियान वाङ्मय तप का जो आदर्श उन्होंने सामने रखा, वह अनुपम ही है।

सत्य-निष्ठा का अनुपम आदर्श

राजनीति में गांधीजी को जो सफलता मिली, उसका कारण यही है कि उनकी राजनीति सत्य पर आधारित थी, जबकि सामनेवालों की असत्य पर। सत्य के सामने असत्य टिक नहीं सकता। ऐसी बात नहीं कि गांधीजी दूसरों से अधिक कुशल थे। लेकिन उनके पास सत्य था और सत्य ही सबसे अधिक कुशल होता है। अपनी कुशलता की ऐंठ में लोग असत्य आचरण करते हैं, लेकिन अंत में वे कुशल साबित नहीं होते। सच पूछें तो कुशलता सत्य पर चलने में ही है। ऐसा करने से हम हर तरह से सुरक्षित रहते हैं और सब खतरों से बच जाते हैं।

सत्यवादी मनुष्य के शब्दों पर दुनिया को और शत्रु को भी विश्वास होता है। गांधीजी के जमाने में यह एक बहुत बड़ी बात हो गई कि लोगों को गांधीजी के शब्दों पर कम-से-कम इतना विश्वास तो बैठ ही गया था कि उनके विचार भले ही स्वीकार करने लायक हों या न हों, लेकिन वे जो कहते हैं, दिल से कहते हैं। उनके शब्दों में दोहरे अर्थ नहीं होते। जो प्रकट होता है, वही उनके मन में भी होता है। ऐसी श्रद्धा गांधीजी के बारे में हिंदुस्तान के लोगों के दिल में पैदा हुई, और इसी श्रद्धा से हिंदुस्तान आगे बढ़ा।

गांधीजी के आने से पहले अच्छे-अच्छे नेता हिंदुस्तान में थे, जिन्होंने आजादी की तरफ जनता का ध्यान खींचा। लेकिन इन सब नेताओं के प्रति लोगों का ऐसा पक्का विश्वास नहीं था कि वे जो कुछ बोलते हैं, वही उनके मन में है। लोगों में ऐसी मान्यता थी कि राजनीति में तो नेता हमेशा दर्शक ही बोलते हैं। लेकिन गांधीजी के आते ही नई पद्धति शुरू हो गई। जो मन में हो, वही बोलना उन्होंने शुरू किया, इसलिए गांधीजी के प्रति धीरे-धीरे लोगों का ऐसा विश्वास जमता गया कि यह आदमी जो हृदय में होगा, वही होंठों पर लाएगा। इस कारण गांधीजी का शब्द बलवान साबित हुआ और शब्द के पराक्रम से ही उनका सारा पराक्रम हुआ।

गांधीजी ने राजनीति चलाई ही नहीं

सच पूछें तो मैं कहूँगा कि गांधीजी ने राजनीति चलाई ही नहीं। उन्होंने जो कुछ किया, वह लोकनीति ही थी। कारण—जनता को जगाने के लिए उनका मंथन चलता था। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले जो कुछ काम हुआ है, वह लोकनीति ही थी, राजनीति नहीं। गांधीजी ने राजनीति में इसीलिए भाग लिया कि उस समय मुख्य कार्य आजादी प्राप्त करना था। शास्त्र में कहा गया है—'स्वतन्त्रःकर्त्ता' अर्थात् जो स्वतंत्र नहीं, वह 'कर्ता' नहीं बन सकता। अर्थात् जो स्वतंत्र नहीं, उसकी कोई हस्ती ही नहीं। इसी कारण स्वराज्य लाने के लिए गांधीजी राजनीति में पड़े।

बापू ने जीवन और समाज की निष्ठाओं का निरूपण किया। उसमें राजनीति को स्वाभाविक ही स्थान मिला। उनके जीवन में राजनीति की प्रधानता नहीं थी। जीवन की निष्ठा में राजनीति का जितना कुछ स्थान था, उतने तक ही जीवन की निष्ठा को ध्यान में रखकर वे राजनैतिक प्रश्नों को हल करते थे। यही कारण है कि उनके जीवन में रचनात्मक आंदोलन के माध्यम से आजादी का आंदोलन चला।

गोखले ने राजनीति के अध्यात्मीकरण की, राजनीति को नीतिमय बनाने की बात कही थी। गांधीजी ने यह बात उठा ली और उसका विकास किया। राजनीति को आध्यात्मिक रूप देने के विचार को गांधीजी ने बहुत अधिक स्पष्ट किया। हम जितने भी काम करते हैं, उनमें राजनीति भी आती है। गांधीजी ने कहा कि राजनीति में सत्य और अहिंसा के आधार पर ही बरतना चाहिए। केवल आध्यात्मिक कह देने से कुछ स्पष्ट नहीं होता, इसलिए गांधीजी ने उसकी व्याख्या कर दी और स्वयं राजनीति को आध्यात्मिक रूप देने का सतत प्रयत्न किया। यह कुछ अंशों में सफल भी हुआ, क्योंकि यह प्रयत्न सत्ता-प्राप्ति के पूर्व का था।

इतना तो सोचिए कि अगर बापू को राजनीति ही चलानी होती तो आखिर में कांग्रेस का 'लोकसेवक संघ' में रूपांतर करने की सलाह वे क्यों देते? आप सब जानते हैं कि बापू ने मरने के पूर्व देश को आदेश दिया था, "कांग्रेस का स्वराज्य-प्राप्ति का काम पूरा हो गया, अब उसे आम जनता की सेवा में लग जाना चाहिए और 'लोकसेवक संघ' बनना चाहिए।" अपनी मृत्यु के एक दिन पहले यह लिखाया था। उसमें उन्होंने कहा है कि "कांग्रेस ने राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर ली, लेकिन देश की आम जनता के लिए आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक स्वतंत्रता और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना अभी बाकी है।"

बापू ने जिस राजनीति में भाग लिया, वह कैसी राजनीति थी? उस समय कांग्रेस का मेंबर बनना जुल्मी सरकार का कोपभाजन बनना था। आज कांग्रेस का मेंबर बनने में खोने को क्या है? कदाचित् प्राप्त करने का ही होगा। उस समय उसमें त्याग था, तितिक्षा थी। कोई भी देश जब आजादी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, तब स्वाभाविक ही उसमें आध्यात्मिकता आ जाती है। कारण, उसके पक्ष में एक महान् सत्य समाया रहता है और इसी कारण उसमें सत्पुरुष व सज्जन भी शामिल होते हैं। गुलाम देश को स्वतंत्र करने का काम राजनीति में शुमार नहीं होता, वह लोकनीति में ही गिना जाता है। इसी कारण उसमें आध्यात्मिकता का अंश आ जाता है और उसमें निष्काम सेवा की झलक भी मिलती है। लोगों में यह एक बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि गांधीजी राजनीति चलाते थे। यह गांधीजी के जीवन का गलत निरीक्षण है। मेरी स्पष्ट राय है कि गांधीजी ने शुरू से लेकर अंत तक लोकनीति का ही काम किया था।

राजनीतिक पुरुष क्या ऐसा कर सकता है?

गांधीजी राजनीति के पक्षपाती थे, ऐसा आपको लगता हो तो उनके अंतिम जीवन पर दृष्टिपात करें। स्वराज्य मिलने के बाद मुहम्मद अली जिन्ना की तरह हिंदुस्तान का गवर्नर जनरल बनने से उन्हें कौन रोकनेवाला था? लेकिन उन्होंने तो नोआखाली की राह पकड़ी। अर्थात् उनकी लोकनीति की ही अखंड साधना थी। इसीलिए वे स्वराज्य के बाद वाइसराय-भवन को अस्पताल में बदलने की बात कर सके।

उनका यह रवैया पहले से था। एक दूसरा उदाहरण दूँ। गांधीजी ने गोलमेज परिषद् में जाकर क्या कहा? वहाँ उन्होंने कहा, "मैं अत्यंत नम्रतापूर्वक स्वराज्य की माँग करता हूँ।" उन्होंने यह एक विचित्र ही बात कही, क्योंकि उस समय 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और वह हम लेकर ही रहेंगे' ऐसी भाषा बोली जाती थी। तब यह नेता वहाँ कहता है कि "मैं नम्रतापूर्वक स्वराज्य की माँग कर रहा हूँ, क्योंकि उसके बिना हिंदुस्तान के गरीबों का उद्धार होनेवाला नहीं, यह मुझे विश्वास हो गया है।" हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं? 'हम स्वतंत्र हैं' यह कहकर मूँछों पर ताव देने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि इसके बिना गरीबों की सेवा असंभव है। इस तरह गांधीजी ने स्वराज्य की माँग के साथ एक हेतु जोड़ा। यह हेतु जोड़ने की क्या आवश्यकता थी? लेकिन यही तो गांधीजी का अनोखा रवैया था। यह भाषा राजनीतिवाले की है या लोकनीतिवाले की, यह आप समझ सकते हैं।

इतना तो सोचिए कि अगर बापू को राजनीति ही चलानी होती तो आखिर में कांग्रेस का 'लोकसेवक संघ' में रूपांतर करने की सलाह वे क्यों देते? आप सब जानते हैं कि बापू ने मरने के पूर्व देश को आदेश दिया था, "कांग्रेस का स्वराज्य-प्राप्ति का काम पूरा हो गया, अब उसे आम जनता की सेवा में लग जाना चाहिए और 'लोकसेवक संघ' बनना चाहिए।" अपनी मृत्यु के एक दिन पहले यह लिखाया था। उसमें उन्होंने कहा है कि "कांग्रेस ने राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर ली, लेकिन देश की आम जनता के लिए आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक स्वतंत्रता और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना अभी बाकी है।" बापू की इच्छा थी कि इस काम के लिए 'लोकसेवक संघ' की स्थापना हो और कांग्रेस तो इसमें पूरी-पूरी समा ही जाए। इसके अलावा उनके द्वारा स्थापित रचनात्मक संस्थाएँ—खादी-ग्रामोद्योग, नई तालीम, स्त्री सेवा, हरिजन-सेवा, हिंदू-मुसलिम एकता, शांतिसेना, आर्थिक आजादी आदि का काम करनेवाले सभी लोग उसमें मिल जाएँ। देश की सेवा करने के लिए सब पक्षों और पंथों से मुक्त एक

ऐसी संघटन हो और वह गाँव-गाँव को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए कटिबद्ध हो जाए।

गांधीजी सरकार की सत्ता गौण बनाना चाहते थे

गांधीजी की सलाह मानकर यदि 'लोकसेवक संघ' बनाया गया होता तो सारे देश पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता। जनता को सही दिशा दिखाने के लिए, निष्काम और निष्पक्ष भाव से सेवा करने के लिए, योग्य मार्गदर्शन के लिए, नीति का विचार देने के लिए, जनता या सरकार की भूल होने पर उसे तटस्थ भाव से जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की एक नैतिक शक्ति देश में पैदा हो गई होती। महत्त्व का प्रभाव तो यह पड़ता है कि देश में सेवा-संस्था मुख्य बनती और राज्य चलानेवाली सत्ता-संस्था गौण। इसके बदले आज क्या हुआ है? सत्ता-संस्था मुख्य बनी है, सब ओर उसी का बोलबाला है। छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ उसकी आश्रित बनकर काम करती हैं, जबकि गांधीजी सरकार की सत्ता को गौण और जनता की सत्ता को मुख्य बनाना चाहते थे।

बापू ने कांग्रेस को 'लोकसेवक संघ' बनाने की सलाह दी थी, उसका अर्थ यही था कि यदि आप लोकसेवक बनेंगे तो सत्ताधारियों पर आपका प्रभाव रहेगा। सत्ता का स्थान दूसरे नंबर पर रहेगा, पहले नंबर पर नहीं। प्रथम लोकसेवक होगा। सेवा रानी होगी और सत्ता उसकी दासी बनेगी।

आज के विज्ञान-युग में सबसे बड़ी जरूरत व चाह इस बात की है कि करुणा का झरना फूट निकले और अहिंसा 'दासी' न रहकर 'रानी' बन जाए। यह तो आज तक चलता ही था कि दंड-शक्ति के राज्य में अहिंसा रहे। सदियों से दंड-शक्ति का राज्य चल राह है। यह ठीक है कि उसका वेष बदलता रहा है। इस समय लोकशाही का वेष चल रहा है। बावजूद इसके राज्य दंड-शक्ति का ही है और अहिंसा तो जैसी पहले थी, वैसी ही आज भी है अर्थात् वह दासी ही है।

युद्ध में रेडक्रॉस वगैरह के लोग घायल सैनिकों की सेवा के लिए जाते हैं। उसमें करुणा और दया होती है। लेकिन यह करुणा युद्ध का अंत नहीं ला सकती। वह तो युद्ध का स्वाद बढ़ाती है। युद्ध के पाप को घटाकर वह एक तरह से युद्ध को टेका ही देता है। ऐसी करुणा तो पहले भी थी।

लेकिन गांधीजी जो चाहते थे, वह यह करुणा नहीं। वे तो ऐसी करुणा चाहते थे, जो रानी हो और जिसके आधार पर मानव-समाज की रचना की जा सके, यानी वैसी रचना हम कर सकेंगे, ऐसा विश्वास मानव को हो। धीरे-धीरे दंड-शक्ति क्षीण होती जाए और अंत में उसका बिल्कुल रूपांतर हो जाए। दंड-शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जाए और स्वतंत्र, करुणामूलक और साम्य पर आधारित लोक-शक्ति बढ़े। हमें हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति प्रकट करनी चाहिए।

अहिंसा के विकास के लिए उपाधि रहित होना पड़ेगा

इसे मैंने गांधी-विचार समझा है। इसमें आज की राजनीति का समूल परिवर्तन करने की बात आती है। एक नई लोकनीति विकसित करनी है। इतना समझ लेने की खास जरूरत है कि जब तक 'राजनीति' शब्द और राजनीति की कल्पना चलेगी, तब तक उसका अध्यात्मीकरण नहीं होगा। उसके साथ धर्म की ग्लानि होगी। इसलिए राजनीति को सत्यमय करने का एक ही उपाय है और वह है उसका लोकनीति में परिवर्तन करना। 'मैं ब्राह्मण हूँ', 'मैं अमुक भाषावाला हूँ', 'मैं अमुक धर्म का हूँ', 'मेरा तो अमुक राजनैतिक पक्ष है', ऐसी सारी उपाधियों के बंधन को तोड़े बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम नहीं देगी। अगर अहिंसा की शक्ति का विकास करना चाहते हैं तो उपाधि रहित होना ही पड़ेगा।

सा अ

पानी का सदुपयोग

उन दिनों बापू साबरमती आश्रम में रहते थे। वे प्रत्येक कार्य को अत्यंत सावधानी से करते थे और हर चीज का इस प्रकार सदुपयोग करते थे कि उसका जरा सा भी दुरुपयोग न हो। आश्रम के समीप ही साबरमती नदी बहती थी। सभी लोग इस नदी के माध्यम से ही पानी का प्रयोग करते थे। स्वयं बापू भी मुँह धोते समय, कुल्ला करते समय और नहाते समय इसी नदी का पानी उपयोग करते थे। एक दिन बापू ने नदी से थोड़ा सा पानी लिया और एक ओर को अपना मुँह साफ करने लगे। वे पानी की एक-एक बूँद का सावधानी से उपयोग कर रहे थे। उनका ध्यान बरबस इस ओर था कि पानी व्यर्थ न बहे। उस समय उनके साथ गुजरात के प्रसिद्ध लोक-सेवक रविशंकर महाराज थे। जब उन्होंने देखा कि बापूजी पानी का प्रयोग भी बेहद सावधानी से कर रहे हैं तो वे बोले, 'बापू, समीप ही तो नदी बह रही है, ऐसे में आप पानी का उपयोग करने में कंजूसी क्यों बरत रहे हैं?' रविशंकर महाराज की बात सुनकर बापू बोले, 'हमें आवश्यकता से तनिक भी ज्यादा उपयोग नहीं करना चाहिए। ज्यादा इस्तेमाल करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। वह तो उपयोग नहीं, दुरुपयोग ही हुआ। सभी लोग ऐसा सोचते हैं कि पानी तो कहीं पर भी सरलता से मिल जाता है, इसलिए उसका तो खुलकर उपयोग करना चाहिए। सभी लोगों के अंदर बसी ऐसी धारणा से ही सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न होती है। यदि पानी का प्रयोग भी सावधानीपूर्वक किया जाए तो प्रकृति के साये में व्यक्ति हमेशा खुशहाल रहे, उसे परेशानी का सामना न करना पड़े।' बापू की बात से रविशंकर महाराज सहमत हो गए। उन्होंने भी मन में संकल्प किया कि आगे से वे भी पानी व्यर्थ नहीं बहाएँगे।

सा अ

(श्रीमती रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



क्यों भारत और दुनिया को है गांधी की जरूरत

• नरेंद्र मोदी

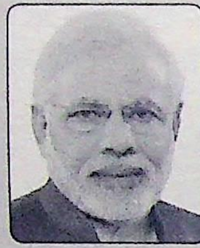
राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की १५०वीं जयंती पर पूरा देश बापू को नमन कर रहा है। ऐसे मौके पर देश भर में कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। यू.एन. भी इस मौके को 'अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप में मना रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने गांधी जयंती के मौके पर स्वच्छता को बड़े अभियान के रूप में अपनाया है। 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का यह लेख छपा। इस लेख में बताया गया है कि क्यों आज दुनिया और भारत को गांधी के विचारों की जरूरत है।

रेव. डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने १९५९ में भारत पहुँचने पर टिप्पणी की—''अन्य देशों में मैं एक पर्यटक के रूप में जा सकता हूँ, लेकिन भारत में मैं एक तीर्थयात्री के रूप में आता हूँ।'' उन्होंने साथ ही यह भी कहा कि ''शायद सबसे ऊपर भारत ही वह भूमि है, जहाँ अहिंसक सामाजिक बदलाव की तकनीकों का विकास किया गया और जिनका इस्तेमाल मेरे लोगों ने मांटगोमरी, अलबामा और पूरे दक्षिण अमेरिका में अन्य जगहों पर किया। हमने उन्हें असरदार और टिकाऊ पाया, वे काम करते हैं।''

डॉ. किंग को जो दिशा दिखाने वाली रोशनी प्रेरणा देकर भारत लाई, उसका नाम था—मोहनदास करमचंद गांधी, महात्मा, महान् आत्मा। बुधवार को हम उनकी १५०वीं जयंती मना रहे हैं। गांधीजी या बापू की ओर से दुनिया भर में लाखों लोगों को हिम्मत देना जारी है।

प्रतिरोध के गांधीवादी तरीकों ने कई अफ्रीकी देशों में उम्मीद की लौ जलाई। डॉ. किंग ने कहा था, ''जब मैं घाना, पश्चिम अफ्रीका के दौरे पर था तो प्रधानमंत्री क्रूमाह ने मुझे बताया कि उन्होंने गांधी के कृतित्व को पढ़ा और उन्हें लगा कि अहिंसक प्रतिरोध को वहाँ भी आजमाया जा सकता है। हमें याद कर सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में बसों का बहिष्कार भी हुआ।''

नेल्सन मंडेला ने गांधी का उल्लेख 'पवित्र योद्धा' के तौर पर किया और लिखा, ''उनकी असहयोग की रणनीति और उनका जोर देकर कहना कि हम पर हावी होने की कोशिश करने वाले तभी हावी हो सकते हैं, जब हम उनके साथ सहयोग करते हैं। उनके अहिंसक प्रतिरोध ने हमारी सदी में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपनिवेशवाद विरोधी और नस्लवाद विरोधी आंदोलनों को प्रेरित किया।''



भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री। एक कुशल प्रशासक, दूरदर्शी राजनेता, सहृदय कवि। गुजराती के अलावा हिंदी, पंजाबी, बांग्ला, मराठी, अंग्रेजी भाषा जाननेवाले नरेंद्र भाई की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं, जो अनेक भाषाओं में अनूदित हुई हैं।

श्री मंडेला के लिए गांधी भारतीय और दक्षिण अफ्रीकी थे। गांधीजी ने इसका अनुमोदन किया होता, उनकी अनोखी खासियत थी और वह थी मानव समाज के सबसे बड़े विरोधाभासों के बीच सेतु बनने की।

गांधी ने १९२५ में 'यंग इंडिया' में लिखा—''राष्ट्रवादी हुए बिना किसी का अंतरराष्ट्रीयवादी होना नामुमकिन है। अंतरराष्ट्रीयता तभी संभव है, जब राष्ट्रवाद एक तथ्य के तौर पर उभरे, यानी जब विभिन्न देशों के लोग खुद को संगठित कर चुके हैं और एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने में सक्षम हैं।'' उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की कल्पना की, जो कभी संकीर्ण या विशिष्ट नहीं था, बल्कि वह मानवता की सेवा के लिए काम करने वाला था।

महात्मा गांधी ने समाज के सभी वर्गों के बीच विश्वास भी प्रतिष्ठापित किया। १९१७ में गुजरात के अहमदाबाद में बड़ी टैक्सटाइल हड़ताल हुई। जब मिल श्रमिकों और मालिकों के बीच टकराव इतना बढ़ गया कि समझौते की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी, तब गांधीजी ने मध्यस्थता की और दोनों पक्षों को स्वीकार्य समझौता कराया।

गांधीजी ने श्रमिकों के अधिकारों के लिए 'माजूर महाजन संघ' संगठन बनाया। पहली नजर में यह सिर्फ किसी भी और संगठन जैसा नाम लग सकता है; लेकिन यह दिखाता है कि किस तरह छोटे कदमों से बड़ा असर डाला जा सकता है। उन दिनों कुलीन वर्ग के लोगों के लिए आदरसूचक 'महाजन' नाम इस्तेमाल होता था। गांधी ने 'महाजन' नाम को 'माजूर' या मजदूरों के नाम से जोड़कर सामाजिक संरचना को उलट दिया। उस शाब्दिक विकल्प के साथ गांधीजी ने श्रमिकों के गर्व को

बढ़ाया। गांधी ने सामान्य वस्तुओं को जन-राजनीति के साथ जोड़ा तथा कौन एक राष्ट्र की आर्थिक आत्मनिर्भरता और सशक्तीकरण के प्रतीक के तौर पर चरखा और घर पर बुने जा सकने वाले कपड़े का इस्तेमाल कर सकता था और कौन चुटकी भर नमक से जन-आंदोलन खड़ा कर सकता था? औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत के नमक पर नया टैक्स लगाने वाले 'नमक कानून' एक बोझ बन गए थे। १९३० में दांडी मार्च के जरिए गांधीजी ने 'नमक कानूनों' को चुनौती दी। अरब सागर-तट से कुदरती नमक के छोटे टुकड़े को उठाकर ले जाने से ऐतिहासिक 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' को बढ़ावा मिला।

दुनिया में कई जन-आंदोलन हुए हैं, भारत में भी स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े कई हिस्से हैं, लेकिन गांधीवादी संघर्ष को जो सबसे अलग करता है, वह थी उनसे प्रेरणा लेकर लोगों की बड़े पैमाने पर भागीदारी। उन्होंने कभी कोई प्रशासनिक या निर्वाचित कार्यालय नहीं सँभाला। उन्हें सत्ता कभी नहीं लुभा सकी।

उसके लिए स्वतंत्रता बाहरी शासन की गैर-मौजूदगी नहीं थी। उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सशक्तीकरण के बीच गहरा नाता देखा। उन्होंने एक ऐसी दुनिया की कल्पना की, जहाँ हर नागरिक की गरिमा और समृद्धि हो। जब दुनिया ने अधिकारों के बारे में बात की तो गांधी ने दायित्वों पर जोर दिया। उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा—''अधिकारों का सच्चा स्रोत दायित्व है। अगर हम सभी अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं तो अधिकारों का मिलना भी दूर नहीं होगा।'' उन्होंने 'हरिजन' नामक पत्रिका में लिखा—''अधिकार उसे स्वत: मिलते हैं, जो ईमानदारी से अपने दायित्वों को निभाता है।''

गांधीजी ने हमें ट्रस्टीशिप का सिद्धांत दिया, जो गरीबों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण पर जोर देता है। उसी से प्रेरणा लेकर हमें स्वामित्व की भावना के बारे में सोचना चाहिए। हम पृथ्वी के वारिस के तौर पर इसकी बेहतरी के लिए जिम्मेदार हैं, जिसमें वे वनस्पति और जीव भी शामिल हैं, जिनके साथ हम गृह को साझा करते हैं।

हमारे मार्गदर्शन के लिए गांधी के रूप में हमारे पास सबसे श्रेष्ठ शिक्षक हैं। टिकाऊ विकास को ज्यादा मजबूत करने के लिए, मानवता में विश्वास रखने वालों को एकजुट करने से लेकर आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने के लिए गांधी हर समस्या का समाधान देते हैं।

हम भारत में अपना काम कर रहे हैं। अगर गरीबी उन्मूलन की बात की जाए तो भारत सबसे तेजी से काम करने वालों में शामिल है। हमारे स्वच्छता प्रयासों ने दुनिया भर का ध्यान खींचा है। भारत अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन जैसे प्रयासों के जरिए अक्षय संसाधनों का इस्तेमाल करने में भी आगे है। यह गठबंधन स्थायी भविष्य की खातिर सौर ऊर्जा का लाभ उठाने के लिए कई देशों को साथ लाया है। हम दुनिया के साथ और दुनिया के लिए और भी ज्यादा करना चाहते हैं।

गांधीजी को श्रद्धांजलि के रूप में जिसे मैं आइंस्टीन चैलेंज कहता हूँ, उसका प्रस्ताव करता हूँ। हम गांधीजी पर अल्बर्ट आइंस्टीन के मशहूर शब्दों को जानते हैं—''आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर मुश्किल से विश्वास करेंगी कि कभी हाड़-मांस और खून वाला कोई ऐसा शख्स इस धरती पर चलता था।''

हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि गांधीजी के आदर्शों को आनेवाली पीढ़ियाँ याद रखें? मैं विचारकों, उद्यमियों और तकनीक लीडर्स को अभिनव तरीकों से गांधीजी के विचारों को फैलाने के लिए अग्रिम मोरचे पर आने को आमंत्रित करता हूँ।

आइए, हम अपनी दुनिया को समृद्ध बनाने के लिए, नफरत, हिंसा और पीड़ा से मुक्त बनाने के लिए, कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करें। यह तभी होगा, जब हम महात्मा गांधी के सपने को पूरा करेंगे, जो उनके पसंदीदा भजन 'वैष्णव जन तो…' से स्पष्ट होता है। जो कहता है कि सच्चा मानव वह है, जो दूसरों के दर्द को महसूस करता है, दु:ख को दूर करता है और वह कभी भी अहंकारी नहीं होता है।

दुनिया आपके सामने नतमस्तक है, प्यारे बापू!

(यह लेख 'न्यूयॉर्क टाइम्स' में छपे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लेख का अनुवाद है)

□

महात्मा गांधी का मार्ग

जो सही अर्थों में हिंदुस्तान की आत्मा को पहचानता है और वास्तव में हिंदुस्तान की धरती में पलकर बड़ा हुआ है—सबका ध्यान स्पर्धा के इस युग में गांधीनगर की ओर जाए बिना नहीं रहेगा। गांधी के प्रति श्रद्धा गांधी थे, उससे अधिक दृढ़ अब बनने की संभावनाएँ हैं। महात्मा गांधी का ग्राम अर्थकरण का विचार, महात्मा गांधी का समाज में वर्गभेद को दूर कर एक समरस समाज निर्माण करने का प्रयास, गांधी का स्वावलंबन का विचार इस १०० करोड़ के देश को समृद्ध करने के लिए आज पहले की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक है। यह मेरी दृढ़ मान्यता है, मेरी श्रद्धा है। इसी कारण गुजरात ने आर्थिक विकास के क्षेत्र में ग्राम विकास को प्राथमिकता दी है। राज्य सरकार ने 'ज्योति ग्राम' योजना शुरू की है। अहमदाबाद या गांधीनगर के निवासी जब इच्छा हो तब बिजली-बत्ती जलाकर पुस्तक पढ़ सकते हैं।

क्या कारण है कि गाँव का व्यक्ति बिजली के लिए परेशान होता

है। क्या आजादी के इतने वर्षों बाद महात्मा गांधी की एक छोटी सी इच्छा पूरी नहीं हो सकती है कि समाज के प्रत्येक स्तर के बीच का अंतर घटे, शहर और गाँव के बीच का अंतर कम हो! राज्य सरकार ने ज्योति ग्राम योजना द्वारा गाँवों में २४ घंटे थ्री फेस बिजली देने का एक अभियान शुरू किया है। मेरा प्रयत्न है कि १८,००० गाँवों में २४ घंटे थ्री फेस बिजली मिले, गाँव का जीवन स्तर सुधरे, गाँव का अर्थकरण मजबूत बने, गाँव की पैदावार और आमदनी में वृद्धि हो। गाँव में कृषि-आधारित उद्योगों का विकास हो। बालक को अहमदाबाद शहर में जैसी कंप्यूटर की शिक्षा मिलती है, वही कंप्यूटर शिक्षा गाँवों में बिजली आने के बाद गाँव के स्कूल के बालक को भी मिले। अहमदाबाद में बैठा हुआ आदमी इंटरनेट पर शिकागो स्थित अपने साथी से बात कर सकता है। गाँव का आदमी या बालक भी वाशिंगटन में रहते अपने किसी मित्र के साथ इंटरनेट पर बात क्यों नहीं कर सकता है? इस बिजली का लाभ उसे भी मिलना चाहिए। यह गांधीजी के सपने को साकार करने का प्रयास है।

मैं भ्रष्टाचार पर कुछ भी कहना नहीं चाहता हूँ। इसके बारे में इतना कुछ कहा जा चुका है। इसी कारण मैं इस विषय पर बोलने की हिम्मत नहीं करता हूँ, परंतु मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि क्या भ्रष्टाचार का अंत संभव नहीं है? मेरी आत्मा कहती है कि महात्मा गांधी के विचारों में भ्रष्टाचार को समाप्त करने की पूरी-पूरी शक्ति है। महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत लीजिए। देश आजाद हुआ, तब से गांधी के मार्ग पर चलना प्रारंभ किया होता तो यह ट्रस्टीशिप का सिद्धांत समग्र समाज-रचना की रीढ़ बन गया होता। आज भ्रष्टाचार समाज को दीमक की तरह खा रहा है, अंदर से खोखला कर रहा है। इससे समाज को बचाया जा सकता था। राज्य सरकार ने इस ट्रस्टीशिप के सिद्धांत पर अमल करने का एक छोटा सा प्रयास किया है और उसका अद्भुत परिणाम प्राप्त हुआ है। इस अद्भुत परिणाम की ओर मैं सबका ध्यान खींचना चाहता हूँ। भूकंप के बाद पुनर्वास का कार्य चल रहा था। उस समय सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा जो कमरे बनाए जाने थे, उसके लिए गाँव-गाँव में स्थानीय लोगों की एक समिति बनाई गई। उन्हें एक नक्शा दिया गया और स्कूल द्वारा कमरे बनाने में सब मिलाकर कितना व्यय होगा, इसका हिसाब बनाया गया। उसी हिसाब के अनुसार उन्हें रुपए दिए गए और कहा गया आप इसके ट्रस्टी हैं। ये स्कूल के कमरे अच्छे बनें, जल्दी बनें, अपने गाँव में से भूकंप का असर शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो जाए और बच्चे पढ़ने लगें, यह उत्तरदायित्व आप सबका है। अब आपको सब सौंप दिया—इतना कहकर वहाँ से सरकार ने अपना हाथ खींच लिया। इस ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के आधार पर अनेक गाँवों में ये रुपए गाँव के लोगों के हाथ में दिए गए थे। पाँच-सात लोगों की समिति बना दी गई और रुपया दे दिया गया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा, गौरव होगा कि पहले जो कमरे बनाने थे, उससे अधिक मजबूत कमरे बनें; जिस आकार के बनाने थे, उससे बड़े बनाए गए। कभी जरूरत पड़ी तो गाँव के लोगों ने ही २००, ५०० वार अपने खेत की जमीन भेंट में दे दी। कई लोगों ने इसमें अपने श्रम का योगदान दिया। इस प्रकार जो कमरे इन लोगों ने बनाएँ, वे समय से तीन-चार माह पूर्व ही बन गए। इतना ही नहीं, करोड़ों-करोड़ों रुपए जो यह काम करते हुए बचे, उन्हें सरकारी कोष में जमा करवा दिया। हिंदुस्तान की आजादी के इतने वर्षों में सरकार के पास रुपए वापस आए हैं, ऐसी यह पहली घटना थी। इसका कारण महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत था। इस सिद्धांत को यदि अमल में लाया जाए तो कितना बड़ा परिणाम आ सकता है, इसका यह जीवंत उदाहरण है।

यह सत्य है कि इस जीवन में शक्ति है—इस विचार में जीनेवाले लोगों का शायद अभाव हो तो भी कम-ज्यादा प्रमाण में दंभ के बिना इस बात को लोगों तक पहुँचाएँ तो इस सिद्धांत में आज भी परिवर्तन लाने की ताकत है। श्रद्धा रखना बहुत ही आवश्यक है। जो श्रद्धा हो तो सिद्धि चरण धोती है। इस भूमिका को ध्यान में रखकर जो भी काम करेंगे तो अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

सारे विश्व के मानव समुदाय में हमारा पालन-पोषण अलग प्रकार से हुआ है। ऋषि-मुनियों के समय में हमारे पूर्वजों का पालन-पोषण प्रकृति की गोद में हुआ था। उनका जीवन नदी के किनारे पर पल्लवित हुआ था। भारतीय संस्कृति का विकास पूर्णतया नदी के किनारे हुआ था। हमारे पूर्वज उस समय के स्थल, काल और परिस्थिति के अनुसार एक विषय के बारे में विशेष आग्रही थे। यह आग्रह परंपरागत रूप से आज भी जन्मघुट्टी में मिलता है और ये व्यक्तिगत स्वच्छता के संस्कार। स्वच्छता के विषय में शौच से लेकर पेशाब करने जाने तक, फिर आकर स्नान करने से जूते उतार देने तथा हाथ धोने तक की व्यक्तिगत आरोग्यलक्षी शिक्षा अपने परिवार और समाज में स्वाभाविक रूप से विस्तृत है। दुनिया के अन्य देशों में देखने को मिलती यह बात भारत में परंपरागत स्वरूप में आई है। विश्व के अन्य देशों में सामाजिक स्वच्छता के बारे में पूर्ण जागृति है। सामाजिक आरोग्य की उपेक्षा हो तो एक प्रकार की घृणा का वातावरण पैदा होता है। कागज का एक टुकड़ा फाड़ा तो उसे अपनी जेब में रख लेते हैं। जहाँ तक कचरापेटी नहीं मिले, उसे बाहर नहीं फेंकते हैं। ऐसी सामाजिक सजगता का स्वभाव

सारे विश्व के मानव समुदाय में हमारा पालन-पोषण अलग प्रकार से हुआ है। ऋषि-मुनियों के समय में हमारे पूर्वजों का पालन-पोषण प्रकृति की गोद में हुआ था। उनका जीवन नदी के किनारे पर पल्लवित हुआ था। भारतीय संस्कृति का विकास पूर्णतया नदी के किनारे हुआ था। हमारे पूर्वज उस समय के स्थल, काल और परिस्थिति के अनुसार एक विषय के बारे में विशेष आग्रही थे। यह आग्रह परंपरागत रूप से आज भी जन्मघुट्टी में मिलता है और ये व्यक्तिगत स्वच्छता के संस्कार। स्वच्छता के विषय में शौच से लेकर पेशाब करने जाने तक, फिर आकर स्नान करने से जूते उतार देने तथा हाथ धोने तक की व्यक्तिगत आरोग्यलक्षी शिक्षा अपने परिवार और समाज में स्वाभाविक रूप से विस्तृत है। दुनिया के अन्य देशों में देखने को मिलती यह बात भारत में परंपरागत स्वरूप में आई है।

अन्य देशों में विकसित हुआ है। उनका व्यक्तिगत स्वच्छता का विज्ञान कैसा है, उसकी टीका करने का मुझे अधिकार नहीं है; परंतु सामाजिक स्वच्छता के विषय में विश्व के अनेक देशों से हमें सीखना चाहिए। अपने पास में सिंगापुर है, उसने स्वच्छता के बारे में सारे विश्व में एक नया मार्गदर्शन किया है। वहाँ रहनेवालों में समाज का एक बड़ा हिस्सा हिंदुस्तान से गया हुआ है। उन्होंने कानूनी व्यवस्था खड़ी कर सामाजिक आरोग्य के विषय में एक जबरदस्त सजगता खड़ी की है। सिंगापुर ने आर्थिक समृद्धि के क्षेत्र में भी उसकी स्वच्छता के कारण ही एक नई पहचान बनाई है।

आनेवाले दिनों में गुजरात सारे विश्व को प्रभावित करे, ऐसा एक नया मेडिकल प्रवास का क्षेत्र यहाँ खुल रहा है। गुजरात की स्वास्थ्य संस्थाएँ सारे विश्व के मेडिकल प्रवास के लिए गुजरात के आँगन में लाने की सामर्थ्य रखती हैं, परंतु इसमें सफलता प्राप्त करना यह पहली शर्त है—सामाजिक स्वच्छता विज्ञान, सार्वजनिक स्वच्छता, सार्वजनिक सफाई। इस बारे में हमें एक उत्तरदायी समाज के रूप में जवाबदेही उठानी पड़ेगी। यह नहीं चल सकता कि सुबह सफाई कर्मचारी आएगा, तब सफाई करेगा। इससे बात नहीं बनेगी। हमारी अपनी सामाजिक जवाबदेही होनी चाहिए। अपने घर की गंदगी मैं गाँव में नहीं फेंकूँगा, अपने घर की गंदगी मैं मोहल्ले में नहीं डालूँगा। मेरे द्वारा गंदगी करने में कोई भी सहयोग नहीं होगा, बढ़ोतरी नहीं होगी। हम लोग 'भारतमाता की जय', 'भारतमाता की जय' बोल-बोलकर गला दुखा लेते हैं। 'वंदे मातरम्' कहते-कहते अपना गला फट जाता है, इतने नारे लगाते हैं और एक घंटे के बाद इसी भारतमाता के ऊपर पान की पिचकारी मारते हैं। भारतमाता के ऊपर हम गुटका खाकर अभिषेक करते हैं। इस कृत्य ने माँ की पूजा के ऊपर पानी फेर दिया, ऐसा कहना चाहिए। ऐसे तो हमारी भारतमाता की पूजा अधूरी रह जाती है। इस कारण हमें सामाजिक स्वच्छता विज्ञान के विचार को विकसित करने की आवश्यकता है।

एक दूसरा विचार हमने किया है—समरसता का! महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता दूर करने के लिए अलख जगाई थी। वर्गभेद को दूर किए बिना, एकरस समाज का निर्माण किए बिना किसी भी समाज का भला नहीं होगा। समाज की शक्ति समाज की एकता में रहती है। यह ऊँच-नीच का भाव, स्पृश्य-अस्पृश्य का भाव, अच्छी नौकरी के प्रति आकर्षण—इस प्रकार की ग्रंथियों से समाज को बाहर लाना होगा। समरस गुजरात के इस मंत्र के आधार पर हम सबको बहुत प्रयास करना पड़ेगा। इस कार्यक्रम के साथ-साथ लोक मेलों, लोकगीतों की एक श्रृंखला चलानी है, जो समरसता के सिद्धांत की बात करेंगे। हमारे देश में गांधी-विचार के पूर्णता पर नहीं पहुँचने के कारण हमने समता का सिद्धांत तो स्वीकार किया, परंतु समरसता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर पाए। समता के सिद्धांत से हमें ऐसा लगा कि समता होगी तो समरसता तो आ ही जाएगी। एक सवर्ण का लड़का बैंक में अधिकारी है और एक दलित का बेटा भी बैंक में अधिकारी है। दोनों को समान वेतन मिलता है। समता तो आ जाएगी, परंतु इस समता के आने से समरसता भी आ जाएगी, इसकी कोई गारंटी नहीं होती। समता के लिए शायद आर्थिक बराबरी हो, जीवन-शैली में बराबरी हो, परंतु समरसता के लिए तो मन को बड़ा करना पड़ता है। मन बड़ा हो तब समरसता आती है। महात्मा गांधी ने मन को बड़ा करने के लिए प्रयास किया था। मन बड़ा कैसे हो? मन की ऊँचाई कैसे बढ़े, इसके लिए हम प्रयत्न करें और राज्य सरकार इस समरसता के सिद्धांत द्वारा मन को बड़ा करने का, मन की ऊँचाई को बड़ा करने का प्रयास कर रही है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की बात करने वाले लोग, तुम मेरे घर के अंदर नहीं आ सकते हो, तुम्हें वहीं बैठना पड़ेगा—इस प्रकार की ग्रंथि से ग्रस्त जीवन जीनेवाला समाज किस प्रकार से विश्व की आशा व आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। महात्मा गांधी ने जो प्रयास किए थे, उन प्रयासों को पूर्ण करने के लिए जो भी माध्यम मिले, उस माध्यम के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास इस राज्य सरकार ने आरंभ किया है। मुझे विश्वास है कि यह स्वच्छता व समरसता का अभियान राज्य के अंदर एक नई चेतना लाने का पूरक अवश्य बनेगा। राज्य यह सब कर रहा है, ऐसा कोई भी दावा सरकार ने नहीं किया है। राज्य सबकुछ करेगा, ऐसा भी हम कभी नहीं कहते हैं। हमारा तो प्रयत्न है—आओ, साथ मिलकर कुछ करें और इसी कारण मैं बार-बार कहता हूँ कि विकास के सहभागी बनो, विकास के भागीदार बनो। आपकी जो भी शिकायत होगी, वह समयानुसार दूर हो जाएगी। मात्र एक जगह बैठकर उपदेश भर देने से परिस्थिति नहीं बदलती है। हम सबको कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। हमारा प्रयत्न है कि सब साथ मिलकर प्रयास करें।

राज्य सरकार स्वच्छता आंदोलन में 'स्वच्छ गुजरात-समरस गुजरात' का सूत्र लेकर आगे बढ़ रही है। अपने राज्य को स्वच्छ रखने के लिए कार्य करनेवाले को, जिसे दुनिया सफाई कर्मचारी के रूप में पहचानती है, ऐसे भाई-बहनों की पीड़ा में भागीदार बनने का हमने संकल्प किया है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे यहाँ आम तौर से औसतन आयु स्तर बढ़ता जा रहा है, परंतु सफाई कर्मचारी मित्रों की औसतन आयु मात्र ५० वर्ष की ही है। नगरपालिकाओं में, महानगरपालिकाओं में सफाई के काम के साथ जुड़े हुए कर्मचारियों को आरोग्य की समस्या होगी। उनके काम के कारण उन्हें बड़ी मुश्किलें आती होंगी। यह एक उत्तरदायित्व हम सबको निभाना है और इसके सहभागी के रूप में मेरे मन में एक विचार आया है। इस विचार के एक भाग में पूज्य बापू को अंजलि देने के एक संकल्प के भाग के रूप में इस राज्य से ज्यादा सफाई कर्मचारी मित्र हैं। इन सब भाई-बहनों का १ लाख रुपए का बीमा राज्य सरकार कराएगी। उनके जीवन में कोई कष्ट आए, उन्हें कोई शारीरिक क्षति हो जाए तो तो उनके परिवारजन असहाय न हो जाएँ, निराश्रित न हो जाएँ, इन दरिद्र-नारायणों की सेवा के भाग-स्वरूप प्रत्येक कर्मचारी के एक लाख रुपए के बीमे की रकम (प्रीमियम) राज्य सरकार भरेगी और इनके जीवन में कोई आपत्ति आए तो इनके परिवार को यह रकम बड़ा संबल देगी। ऐसी योजना का प्रारंभ राज्य सरकार कर रही है। सा/अ

(श्री नरेंद्र मोदी की पुस्तक 'सामाजिक समरसता' से साभार)



सभी के लिए अनुकरणीय गांधीजी का विराट् जीवन

• आनंदीबेन पटेल

स्वाधीनता संग्राम के अनन्य नायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत के लिए एक वरदान थे। उन्होंने सत्य और अहिंसा के मूलमंत्र पर स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व किया और देश को स्वाधीन कराया। उन्होंने भारत की दासता और दैन्य के समापन, रूढ़िवादी समाज में परिवर्तन और विकास के लिए जो अनूठे उपाय देश की जनता के समक्ष रखे, उसका उदाहरण विश्व के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलता है। गांधीजी ने देश के नवनिर्माण के लिए नवयुवकों को सत्य, अहिंसा, स्वराज्य, स्वावलंबन, स्वदेशी और स्वच्छता का मर्म समझाया। उनकी शिक्षाओं और आदर्शों का न केवल भारतीयों पर, बल्कि विदेशों में भी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार गांधीजी केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि वे 'विश्व-निधि' हैं। उनका विराट् जीवन-दर्शन आज भी सभी के लिए अनुकरणीय है। उन्होंने भारत के साथ ही सारी दुनिया को शुचिता का मार्ग दिखाया।

महात्मा गांधी ने स्वदेशी और स्वाभिमान को स्वतंत्रता संग्राम का शस्त्र बनाया था। सत्य और अहिंसा उनका आचरणीय आधार था, जो भारतीय जीवन-पद्धति का आधार है। इसी से हमारा समाज आज भी जीवित है। यही आधार मानवता का भी है। गांधीजी का भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यंत लगाव था। भारतीय संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पर आधारित है। गीता का पाठ वे प्रतिदिन करते थे। वे मानते थे कि जिस देश या समाज के पास चिंतन और चेतना नहीं है, वह ज्ञान और सेवा का देश या समाज नहीं बन सकता। उनका यह भी मानना था कि प्रयास करने में ही संतोष निहित है, प्राप्ति में नहीं, पूर्ण प्रयास ही आपकी पूर्ण विजय है।

भारतवर्ष के विकास की जो योजना गांधीजी के मस्तिष्क में थी, उसमें मनुष्य मात्र के उद्धार की एक ऊँची कल्पना थी। वे गाँव के संगठन को ही स्वराज की बुनियाद मानते थे। उनके ग्राम स्वराज की परिकल्पना का तात्पर्य किसानों और मजदूरों के प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित और समृद्ध होने से था। गांधीजी धन-संपत्ति के विरोधी नहीं थे, पर वे चाहते थे कि इसके साथ-साथ विचार भी बढ़ना चाहिए। उनका मानना था कि हमारी



संवेदनशील शिक्षक, कठोर प्रशासक एवं वरिष्ठ राजनेत्री। संपूर्ण गुजरात तो उनको 'बहन' कहकर सम्मान देता है, मगर उनके पूरे व्यक्तित्व में एक माँ के ममतामयी दुलार की अनुभूति होती है। सत्यनिष्ठा और आदर्शों पर चलकर वे गुजरात की मुख्यमंत्री, मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ की राज्यपाल रहीं और वर्तमान में उत्तर प्रदेश की राज्यपाल हैं।

आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए देश में पर्याप्त संसाधन हैं, किंतु लोभ को शांत करने के लिए नहीं। वे समाज में परिवर्तन चाहते थे। इस संबंध में उनका कहना था कि आप अपने आप में वह परिवर्तन लाएँ, जो आप दुनिया में देखना चाहते हैं।

गांधीजी विभिन्न धर्म, पंथ एवं वर्ग के प्रति सम्मान और सद्भाव को लोकतंत्र का आधार मानते थे। उन्होंने प्रेम और भाईचारे की भावना से देश की जनता के हृदय में राज किया। वे कहते थे, 'यदि हम लोकतंत्र की सही भावना को अपनाते हैं तो हमें दूसरों के विचारों का भी सम्मान करना होगा। सच्चे लोकतंत्र के लिए जरूरी है सबकी, विशेषकर गरीब, शोषित, वंचित और महिलाओं की समस्याओं को सुना जाए और उन पर ध्यान दिया जाए।' वे मानते थे कि हमेशा गरीब से गरीब व्यक्ति को ध्यान में रखकर नीतियाँ बनाई जानी चाहिए और सबकी खुशहाली के लिए काम किए जाने चाहिए।

नारी शिक्षा के प्रति गांधीजी का नजरिया बिल्कुल साफ था। गांधीजी के अनुसार-शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो लड़के-लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक-दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। महिलाओं के लिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे अपने को पुरुषों का गुलाम अथवा पुरुषों से घटिया समझें, उनकी अलग पहचान नहीं है, बल्कि एक ही सत्ता है। अतः महिलाओं को सलाह है कि वे सभी अवांछित और अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह करें। इस तरह के विद्रोह से कोई क्षति होने की आशंका नहीं है। इससे तर्कसंगत प्रतिरोध होगा और पवित्रता आएगी।

एक आदमी को पढ़ाओगे तो एक व्यक्ति ही शिक्षित होगा, परंतु एक स्त्री को पढ़ाओगे तो पूरा परिवार शिक्षित होगा।

वास्तव में महात्मा गांधीजी के वैचारिक निष्कर्ष, उनके गहन जीवन-अनुभवों, अध्ययन और संघर्ष की देन हैं। बदलते जीवन-मूल्यों और नया समाज बन जाने से जो चुनौतियाँ आज हमारे सम्मुख उपस्थित हो गई हैं, उनसे दृढ़ता से मुकाबला करने के लिए हमें गांधीजी के जीवन-दर्शन और उनके विचारों से सीख लेना ही होगी। आज हमें उनकी प्रासंगिकता को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सदैव अनुकरणीय विचारशील महापुरुषों में गांधीजी का स्थान अग्रणी है।

महात्मा गांधीजी का राजनैतिक व आर्थिक विचारों के साथ-साथ सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी उनके विचारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे कुष्ठ रोगियों के प्रति बहुत स्नेह व सेवाभाव रखते थे। उन्होंने कुष्ठ रोगियों की सेवा कर समाज को संदेश दिया कि कुष्ठ पीड़ितों की सेवा करने या उनके पास रहने से यह रोग नहीं फैलता। कुष्ठ की बीमारी इसके कीटाणुओं से होती है, यह संक्रामक रोग नहीं है और इसका इलाज संभव है। गांधीजी कुष्ठ रोगियों के उपचार तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि वे उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ना भी चाहते थे। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश में कुष्ठ रोग से प्रभावित २८६६ आवास विहीन परिवारों को 'मुख्यमंत्री आवास योजना-ग्रामीण' के अंतर्गत आवास देने का पुनीत कार्य किया जा रहा है, जिसमें से अब तक ५०० परिवारों को आवास उपलब्ध कराए जा चुके हैं। इसी प्रकार देश से कुष्ठ रोग समाप्त करने के लिए प्रधानमंत्री ने वर्ष २०१६ में कुष्ठ रोगियों की पहचान के लिए एक विशेष अभियान चलाया।

इसी प्रकार महात्मा गांधीजी समाज में फैली अस्पृश्यता को लेकर भी बहुत व्यथित थे। वे अस्पृश्यता को सभ्य समाज के लिए बहुत बड़ा कलंक मानते थे। गांधीजी ने कहा भी है कि 'अस्पृश्यता का प्रचलन मेरे लिए असहनीय है। मैं इसे कतई पसंद नहीं करता। अस्पृश्यता की प्रथा को जड़ से खत्म कर देना चाहिए।'

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी ने २ अक्तूबर, २०१४ को गांधीजी की जयंती के अवसर पर 'स्वच्छ भारत अभियान' का शुभारंभ किया। श्री मोदीजी का मानना है कि गांधीजी का स्वच्छता कार्यक्रम एक सामाजिक परिवर्तन का विषय है, जिस पर लोगों को विचार करना चाहिए। इसमें आस-पास के क्षेत्र को स्वच्छ रखने तथा खुले में शौच से मुक्ति दिलाने का उद्देश्य निहित है।

महात्मा गांधी जैसे देश के विराट् महामानव का जीवन-दर्शन भारतीय ही नहीं, विश्व समुदाय के लिए आज भी प्रेरणादायक है और आगे भी रहेगा।

सा अ

राजभवन,
लखनऊ (उ.प्र.)

गरीबों के प्रति आत्मीयता

एक बार जब डॉ. राजेंद्र प्रसाद की भेंट गांधीजी से हुई तो उस समय उन्होंने खादी का कुरता पहना हुआ था। राजेंद्र बाबू गांधीजी की दक्षिण अफ्रीका की यात्रा से भली-भाँति परिचित थे। उनके मन में गांधीजी के प्रति असीम श्रद्धा थी। डॉ. राजेंद्र प्रसाद से मिलने के पश्चात् गांधीजी ने कहा, 'मैंने सुना है कि आप नील की खेती करनेवाले चंपारन के किसानों के मुकदमे बिना फीस लिये लड़ते हैं?' डॉ. राजेंद्र प्रसाद बोले, 'बापूजी, आपने ठीक सुना है।' गांधीजी बोले, 'वकील होने के बावजूद आखिर आप फीस क्यों नहीं लेते?' इस बात पर डॉ. राजेंद्र प्रसाद बोले, 'चंपारन के किसान वैसे ही बहुत गरीब और शोषित हैं। उनपर निलहे साहबों ने बहुत अत्याचार किए हैं। ये लोग पिछले कई सालों से अपने परिवार के लिए अनाज तक पैदा नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में ये लोग मुकदमे की फीस कहाँ से देंगे?' जवाब सुनकर गांधीजी बोले, 'तुम्हारे दिल में गरीबों के प्रति अत्यंत स्नेह व दया है। यदि इन शोषित किसानों को न्याय दिलाने के लिए आंदोलन छेड़ा जाए तो क्या तुम मेरा साथ दोगे?' डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने तुरंत कहा, 'जब आप दक्षिण अफ्रीका में गोरों के खिलाफ आंदोलन कर सकते हैं तो क्या हम अपने देश के शोषित किसानों को न्याय नहीं दिला सकते? यदि हम आगे नहीं आएँगे तो देश कभी स्वतंत्र नहीं हो पाएगा। देश स्वतंत्र तभी हो पाएगा, जब हम आप जैसे देशभक्तों को देखकर आगे बढ़ें और हर जरूरतमंद भारतीय की ओर मदद का हाथ बढ़ाएँ। ऐसा करने से प्रत्येक भारतीय स्वयं ही स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ जाएगा और देखिएगा, जल्द ही हमारा देश इन अंग्रेजों के चंगुल से आजाद हो जाएगा।' डॉ. राजेंद्र प्रसाद के विचार सुनकर गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'मैं आपके विचारों से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैंने कई लोगों से आपकी कर्तव्यनिष्ठा के बारे में सुना था, परंतु आज आपसे मिलने के बाद देख भी लिया।' ऐसे देशभक्तों के योगदान के कारण ही हमारा भारत १५ अगस्त, १९४७ को आजाद हो पाया।

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



मैं गांधी बोल रहा हूँ

असहिष्णुता

यह मानना कि आपका धर्म दूसरे धर्मों से श्रेष्ठ है, और दूसरों से अपना धर्म छोड़कर आपके धर्म में आ जाने के लिए कहना न्यायसंगत नहीं है, यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है, और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है।

अस्पृश्यता

अगर आपको विश्वास हो कि अस्पृश्यता हिंदू-धर्म पर हुई कलंक-कालिमा है, और इससे हिंदू-धर्म के नष्ट हो जाने का खतरा है, तो अस्पृश्यता को हटाने का काम हर हालत में शुरू कर दीजिए।

अहिंसा

अक्सर ऐसा कहा गया है कि अहिंसा का सिद्धांत मैंने टॉलस्टॉय से लिया है। इसमें पूरी सचाई तो नहीं है, लेकिन अहिंसा के संबंध में उनकी रचनाओं से भी मुझे सबसे अधिक बल मिला है। लेकिन इस बात को टॉलस्टॉय ने स्वयं भी स्वीकार किया है कि अप्रतिरोध की जिस पद्धति का संवर्धन और विकास मैंने दक्षिण अफ्रीका में किया, वह उस अप्रतिरोध से भिन्न है, जिसके संबंध में टॉलस्टॉय ने लिखा है और जिसे अपनाने की उन्होंने सिफारिश की है।

धर्म

इस युग में धर्म के लिए तलवार का युद्ध नहीं होता। धर्म की जागृति और धर्म की रक्षा इस युग में तलवार से नहीं होती, और न होनी ही चाहिए। पर विवेक और भावना से, बुद्धि और हृदय से धर्मों का मुकाबला, उनकी तुलना होती रहेगी।

राष्ट्रभावना

धर्म तो सिखाता ही है कि जीव-मात्र अंत में एक ही है। अनेकता क्षणिक होने के कारण आभास-मात्र है। लेकिन राष्ट्रभावना भी हमें यही पाठ देती है। हम अपने को राजपूत इत्यादि नहीं मानते हैं; न बिहारी, पंजाबी इत्यादि। हम अपने को हिंदुस्तानी मानते हैं और एक ही राष्ट्र मानते और मनाते हैं। इसलिए धर्म-दृष्टि या राष्ट्र-दृष्टि से हम एक हैं, और एक के दोष की जिम्मेदारी हम सब पर आती है।

राष्ट्रभाषा

बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था, और मेरा विश्वास तबसे अनुभव द्वारा पुष्ट हुआ है कि यदि कोई भारतीय भाषा कभी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है, तो किसी-न-किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना ही चाहिए, तो वह भाषा केवल हिंदी है; और मैं हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता से हमारा आशय है कि हम पृथ्वी के किसी भी जन-समुदाय की ताबेदारी में नहीं रहेंगे। भारत में एक ऐसा बड़ा दल है, जो इस स्थिति को लाने के लिए मृत्यु का आलिंगन करेगा। यद्यपि हम मारे जा सकते हैं, पर हम किसी को मारते हुए नहीं मारेंगे।

स्वदेशी

स्वदेशी एक धार्मिक अनुशासन है, जिसे प्राप्त करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति को शारीरिक कष्टों की भी अवहेलना करनी चाहिए। स्वदेशी माननेवाला व्यक्ति आज जिन बातों को आवश्यक मानता है, वैसी सैकड़ों बातों को छोड़ सकता है। जो लोग स्वदेशी का विरोध इस बात पर करते हैं कि स्वदेशी अपने संपूर्ण रूप में संभव नहीं है, वे इस बात को भूल जाते हैं कि प्रत्येक वस्तु के लिए प्रयास करते रहना हमारा ध्येय होना चाहिए। हम अपने ध्येय के प्रति जागरूक रहें, भले ही हम केवल कुछ ही वस्तुओं के लिए स्वदेशी-सिद्धांत लागू करें और उन वस्तुओं का उपयोग अस्थायी रूप से कम-से-कम करें जो हमारे देश में उपलब्ध नहीं होती हैं।

हिंदी

अभी तक मध्यम वर्ग के लोगों ने ही हिंदी सीखने का काम शुरू किया है। हमारे विशिष्ट नेता इसे कब शुरू करेंगे? एडवोकेट-जनरल कब अपने मिसिल-मुकदमों की तरफ से ध्यान हटाकर, आधे घंटे का समय हिंदी सीखने में लगाएँगे? मैं चाहता हूँ कि दक्षिण के सबसे प्रतिष्ठित वर्ग के स्त्री-पुरुष भी हिंदी सीखें।

***

हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के मुख्तलिफ नाम हैं। हमारा मतलब आज एक नई भाषा बनाने का नहीं है, बल्कि जिस भाषा को हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू कहते हैं, उसे अंतर्प्रांतीय भाषा बनाने का हमारा उद्देश्य है। सा अ

(सं. गिरिराज शरण की पुस्तक 'मैं गांधी बोल रहा हूँ' से साभार)

गांधी और महिलाएँ

• मृदुला सिन्हा

पुरातन भारतीय समाज में समय-समय पर कोई-न-कोई एक व्यक्ति या संस्था खड़ी होती रही है, जो समाज में आई गिरावट को पुन: नए सिरे से समय की जरूरत के अनुसार परिवर्तित कर मूल सिद्धांत को पुनर्स्थापित करती रही है। तभी तो हमारी सनातन वैदिक दृष्टि आज तक कायम है।

भारतीय जीवन-दृष्टि के मूल सिद्धांतों में एक है—स्त्री-पुरुष की बराबरी। इसे समझाने के लिए ही शिव और पार्वती के अर्धनारीश्वर परिकल्पना को दरशाया गया। अर्थात् दोनों जीवन के हर क्षेत्र में एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की परिकल्पना की नहीं जा सकती। जीवन और व्यवहार में नारी को पुरुष से अधिक सम्मान मिलता रहा।

समाज में वर्तमान कुव्यवस्थाओं में बदलाव लाने के लिए समय-समय पर आए चिंतकों, विचारकों और समाज-सुधारकों ने अपने इतिहास से ही परिवर्तन के सूत्र उठाए। इसलिए तो अंधकार युग से समाज को निकालना हो या पुनर्जागरण काल में जागृति लाना, सुधारकों ने महिलाओं के जीवन में परिवर्तन की ही बात सोची। अंधकार युग में रूढ़ियों में जकड़ी महिलाओं के बंधन तोड़े गए तो पुनर्जागरण काल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद जैसे सुधारकों ने महिलाओं के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन में बदलाव के बीज डाले। उनके अंधकार युक्त जीवन में रोशनी लाने भर का कार्य किया। उनकी स्थिति को देखकर उन्हें 'असूर्यपम्पश्या' का विशेषण दिया था। किसी ने विधवाओं के जीवन में सुधार लाने की कोशिश की तो किसी ने सती प्रथा समाप्त करने का संकल्प लिया। आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती ने तो महिलाओं को सामाजिक दृष्टि से पुरुष के समकक्ष लाने के लिए रीति-रिवाजों में ही समान स्तर बनाने की कोशिश की, महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। स्वामी विवेकानंद ने भी महिलाओं की शिक्षा में भगिनी निवेदिता को लगाया।

उसी परंपरा में १९वीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने भी आंदोलन खड़ा किया। उनका भी विश्वास था कि उनके कार्यक्रमों में मात्र पुरुषों की भागीदारी से बात नहीं बनेगी। साथ ही उनकी सोच आंदोलन नहीं बन पाएगी, इसलिए उन्होंने पूर्व भारतीय सुधारकों की भाँति महिलाओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया।



सुप्रसिद्ध कथाकार। गोवा की पूर्व राज्यपाल। कहानी और उपन्यासों के अलावा मृदुलाजी बदलते भारतीय परिवेश में महिलाओं के समक्ष उपस्थित सामाजिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर निरंतर लिखती रही हैं। अनेक रचनाएँ मराठी और अंग्रेजी में भी अनूदित। 'पाँचवाँ स्तंभ' मासिक का संपादन किया।

कृतज्ञ राष्ट्र ने पिछले वर्ष पुन: महात्मा गांधी के जन्म दिवस पर उन्हें स्मरण किया है। १५०वीं वर्षगाँठ को मनाया जा रहा है। गांधीजी देश और विदेश में भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रतीक माने जाते हैं। उन्होंने असहयोग आंदोलन के साथ स्वतंत्र ग्रामीण भारत के लिए भी एक सपना देखा था। उनके विचार स्त्री, पुरुष, वृद्ध, नौजवान सबको आंदोलित करते थे। कुछ पढ़ी-लिखी महिलाओं को आंदोलन का नेतृत्व प्रदान करने और हजारों-हजार घरेलू महिलाओं को आंदोलन से जोड़ने में उनका प्रयास सफल रहा। उनके द्वारा संचालित स्वतंत्रता आंदोलन के लगभग तीस वर्षीय जीवन का आकलन करने पर तथ्य सामने आता है कि गांधी के नेतृत्व में हुए आंदोलन में महिलाओं की भी उल्लेखनीय व्यापक भागीदारी हुई।

दरअसल उनका स्वतंत्रता आंदोलन सीधे-सीधे राजनीतिक था ही नहीं। उन्होंने समाज के बीच पराधीनता के विरुद्ध आवाज उठाने का माध्यम सामाजिक समस्याओं में सुधार को बनाया था। जहाँ तक सामाजिक कुरीतियों का सवाल था, महिलाएँ ही अधिक प्रभावित थीं। इसलिए उन कुरीतियों से लड़ना सिखाते हुए, जन-समुदाय के मन में राजनीतिक पराधीनता की बात रखना, गांधीजी का उद्देश्य था। फिर तो महिलाओं से सीधा संवाद होना आवश्यक ही था। स्वयं उनकी धर्म पत्नी कस्तूरबा गांधी ने उनके उद्देश्य साधना में उनका साथ दिया। डॉ. सरोजिनी नायडू, डॉ. सुशीला नैयर, अरुणा आसफ अली जैसी पढ़ी-लिखी महिलाओं ने गांधीजी द्वारा चलाए भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की बागडोर सँभाली। विदेश से आई मीरा बेन जैसी महिलाओं ने तो विशेष दायित्व सँभाला। गांधीजी की प्रेरणा से भारतीय संस्कृति को आत्मसात् करती हुई, विदेशी होकर भी अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन का नेतृत्व सँभाला।

हम सब जानते हैं कि समाज में बंगाल से प्रारंभ हुए आर्थिक सुधार और स्वेदशी वस्तुओं को अपनाने के साथ विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार करने के आंदोलन को गांधीजी ने विस्तार दिलवाया था। दो राय नहीं कि महिलाओं ने बढ़-चढ़कर इस आंदोलन को सफल बनाने में हिस्सा लिया। समाज-जीवन में स्वावलंबन लाने के लिए उन्होंने चरखा को आंदोलन का माध्यम बनाया। एक गुजराती बहन द्वारा कहीं से ढूँढ़कर लाया गया चरखा स्वेदशी आंदोलन का प्रतीक बन गया। इस आंदोलन से महिलाएँ और महिला-जीवन ही अधिक प्रभावित हुआ। हजारों-हजार स्त्री-पुरुषों ने चरखा चलाना सीखा। समाज में कपास उपजाने, रुई धुनने, पिउनी बनाने, सूत कातने तथा कपड़े की रँगाई-छपाई, एक जनांदोलन का रूप ले लिया। इनमें महिला जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। साधारण से साधारण महिलाओं को यह एहसास करा दिया गया कि चरखा से उनके जीवन में आर्थिक स्वावलंबन आएगा ही, घर की वस्त्र-समस्या भी दूर होगी। घर-घर में चरखा चलाना एक दिनचर्या हो गई थी। चरखा से जुड़े तमाम कामों का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। ग्रामीण महिलाओं के सामूहिक जीवन में एक निखार आया और जब वे चरखा के बहाने एकत्र होकर बैठती थीं तो कई सामाजिक कुरीतियों के बारे में भी विचार करती थीं। निजी और सामाजिक जीवन में साफ-सफाई, बीमारियों के बारे में चिंता, विधवा और बाल-विवाह से निजात, छुआछूत, बहुत-सी तात्कालीन सामाजिक समस्याओं के प्रति सजगता बढ़ी थी और सुधार के कार्यक्रम भी अपनाए जाते थे। दरअसल गांधीजी ग्रामीण महिलाओं के जीवन में बहुत बड़ा आंदोलन लेकर आए थे। गाँवों में सुधार आश्रम खोलना, वहाँ रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए शहरी महिलाओं को भेजना, पति-पत्नी को काम में लगाना बहुत से अनोखे और समय की जरूरत के अनुसार कार्यक्रम थे।

घूँघट में रहनेवाली अनपढ़ महिलाएँ भी आंदोलन का हिस्सा बनकर आत्मविश्वास से भर गई थीं। एक विशेष प्रकार की सफेद साड़ी में लिपटी महिलाएँ 'देवीजी' कहलाकर गाँव में निकलती थीं तो उनकी सख्त चाल देखकर अपने घर के दरवाजे की ओट से देखती पर्दानसीन औरतें भी उनकी तरह बनने के सपने देखती थीं। प्रसन्नता है कि पिछले पाँच वर्षों से केंद्र में आई श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सरकार गांधी को 'पुरानी नींव नया निर्माण' की दृष्टि से अपनाने में तल्लीन है। चरखा समिति से जुड़ी सजग गाँव की महिलाएँ गाँव की समस्त महिलाओं की आदर्श बनने लगीं। चरखा के गीत गाना-गुनगुनाना उनका स्वभाव हो गया था। संस्कार गीतों में भी गांधी की चर्चा होती थी। स्वतंत्रता मिलने के बाद के गीत की पंक्ति थी, ''खादी की चुंदरी रँगा दे मोरा पियवा, अब हिंद भेलई स्वराज।'' लेकिन स्वतंत्रता मिलने के बाद तो शासकों ने गांधी को भुलाना प्रारंभ कर दिया था।

उनके समय प्रारंभ हुए महिला आंदोलन का प्रभाव दीर्घकालिक रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशक बाद महिला आंदोलन पर पश्चिम का प्रभाव पड़ने लगा। पश्चिम के स्त्री आंदोलन का रुख महिलाओं को परिवार से अलग कर स्वतंत्र देखने का रहा है। इसलिए इन आंदोलनों का प्रभाव जहाँ परिवार को तोड़ने, स्त्री की समस्या को अलग समस्या मानने का रहा, वहीं गांधीजी द्वारा चलाए सुधार कार्यक्रमों का प्रभाव परिवारों को जोड़ने और महिलाओं को परिवार में सम्मान दिलाने का रहा। उनके विकास से परिवार को सुखी और संपन्न बनाने का था। गांधीवादी संस्थाएँ आज भी समाज में जीवित हैं। 'नारीवादी' संस्थाओं से बिल्कुल अलग-थलग क्रियाकलाप हैं उनके। स्त्री का चतुर्दिक् विकास उनका लक्ष्य तो है ही। स्त्री को परिवार विमुख करना ध्येय नहीं है। इसलिए इन संस्थाओं के बारे में यद्यपि प्रचार-प्रसार माध्यम धमाके से न लिखता, न दिखाता है, फिर आज भी समाज मन पर गांधी के कार्यक्रमों की महिलाओं का प्रभाव है।

समग्र गांधी विचारधारा और व्यवहार में महिलाओं के बारे में विशेष चिंतन है। समाज को समग्रता में देखने की गांधी दृष्टि ही महिलाओं को प्रमुखता प्रदान करती है। गांधीजी ने इसे स्वीकार किया था कि महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बिना स्वतंत्रता आंदोलन भी सफल नहीं हो सकता था।

आवश्यकता थी आजादी के बाद गांधी के सपनों के भारत का निर्माण करने की। जिसमें महिला जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों की सहयोगिता भी होती और सम्मानजनक स्थितियाँ भोगती। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर। परंतु दुःख की बात है कि देश की बागडोर सँभाले गांधीजी के प्रिय पात्रों ने ही उनके सपनों को नकार दिया। जीवन के हर क्षेत्र में यूरोपीय विचार हावी होते गए। इसलिए आजादी प्राप्त करने के लगभग सात दशक से ऊपर बीत जाने पर भी महिलाओं की स्थिति में विशेष सुधार नहीं आ पाया। काश! हम गांधी के समय शुरू हुए महिला जीवन-दृष्टि, विकास की दिशा और आंदोलनों की रफ्तार को आगे बढ़ाने में सफल हुए होते। सही मायने में समाज स्वतंत्र हुआ होता और राष्ट्र की ओर से हर वर्ष दी जानेवाली गांधीजी के लिए श्रद्धांजलि भी सच्ची होती।

प्रसन्नता की बात है कि पिछले छह वर्षों में गांधी विचारों को पुनर्जीवन प्राप्त हो रहा है। स्वच्छता अभियान हो या महिला शौचालयों का निर्माण, बुनियादी शिक्षा प्रणाली के सूत्रों को अपनाने की संकल्प हो या श्रम की महत्ता की पहचान, हुनर विकास जैसे अनेक कार्यक्रम, जो 'नए भारत' के निर्माण में प्रयोग में आ रहे हैं, गांधी का स्मरण दिलाते हैं। 'पुरानी नींव, नया निर्माण' की ओर बढ़ रहा है भारत। परंपरा और आधुनिकता को जोड़कर विकास करने की राह पर भारत का नेतृत्व और भारत चल पड़ा है। सभी ओर महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, अपने पूर्वज को अब राष्ट्र उचित ही श्रद्धांजलि दे रहा है। गांधी को स्मरण करेंगे तो महिलाओं का उचित विकास होना निश्चित है।

पी.टी.-६२/२०,
कालकाजी एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-११००१९
snmridula@gmail.com

संघ और गांधीजी के संबंध

• मनमोहन वैद्य



राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह। प्रख्यात चिंतक, विचारक एवं समाजधर्मी।

सभी दल अपनी-अपनी संस्कृति और परंपरा के अनुसार चुनावी भाषण दे रहे हैं। एक दल के नेता ने कहा कि इस चुनाव में आपको गांधी या गोडसे के बीच चुनाव करना है। एक बात मैंने देखी है। जो गांधीजी के असली अनुयायी हैं, वे अपने आचरण पर अधिक ध्यान देते हैं। परंतु अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए गांधीजी के नाम को भुनाने के लिए, ऐसे-ऐसे लोग गोडसे का नाम बार-बार लेते हैं, जिनका आचरण और उनकी नीतियों का गांधीजी के विचारों से दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं दिखता। वे तो सरासर असत्य और हिंसा का आश्रय लेनेवाले और अपने स्वार्थ के लिए गांधीजी का उपयोग करनेवाले ही होते हैं।

एक दैनिक के संपादक ने, जो संघ के स्वयंसेवक भी हैं, कहा कि एक गांधीवादी विचारक के लेख हमारे दैनिक में प्रकाशित हो रहे हैं। उस संपादक ने यह भी कहा कि उन गांधीवादी विचारक ने लेख लिखने की बात करते समय यह कहा कि संघ के और गांधीजी के संबंध कैसे थे, यह मैं जानता हूँ, फिर भी मैं आपको अनजान कुछ पहलुओं के बारे में लिखूँगा। यह सुनकर मैंने प्रश्न किया कि संघ और गांधीजी के संबंध कैसे थे, यह वे विचारक सही में जानते हैं? लोग बिना जाने, अध्ययन किए अपनी धारणाएँ बना लेते हैं। संघ के बारे में तो अनेक विद्वान्, स्कॉलर कहलानेवाले लोग भी पूरा अध्ययन करने का कष्ट किए बिना या सिलेक्टिव अध्ययन के आधार पर या एक विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखे साहित्य के आधार पर ही अपने 'विद्वत्तापूर्ण' (?) विचार व्यक्त करते हैं। किंतु वास्तविकता यह है कि इन विचारों का 'सत्य' से कोई लेना-देना नहीं होता है।

महात्मा गांधी के कुछ मतों से तीव्र असहमति होते हुए भी संघ से संबंध कैसे थे, इस पर उपलब्ध जानकारी पर नजर डालनी चाहिए। भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में जनाधार को व्यापक बनाने के शुद्ध उद्देश्य से मुसलमानों के कट्टर और जिहादी मानसिकता वाले हिस्से के सामने उनकी शरणागति से सहमत न होते हुए भी, आजादी के आंदोलन में सर्व सामान्य लोगों को सहभागी होने के लिए उन्होंने चरखा जैसा सहज उपलब्ध अमोघ साधन और सत्याग्रह जैसा सहज स्वीकार्य तरीका दिया, वह उनकी महानता है। ग्राम स्वराज्य, स्वदेशी, गौरक्षा, अस्पृश्यता निर्मूलन आदि उनके आग्रह के विषयों से भारत के मूलभूत हिंदू चिंतन से उनका लगाव और आग्रह के महत्त्व को कोई नकार नहीं सकता। उनका स्वयं का मूल्याधारित जीवन अनेक युवक-युवतियों को आजीवन व्रतधारी बनकर समाज की सेवा में लगने की प्रेरणा देनेवाला था।

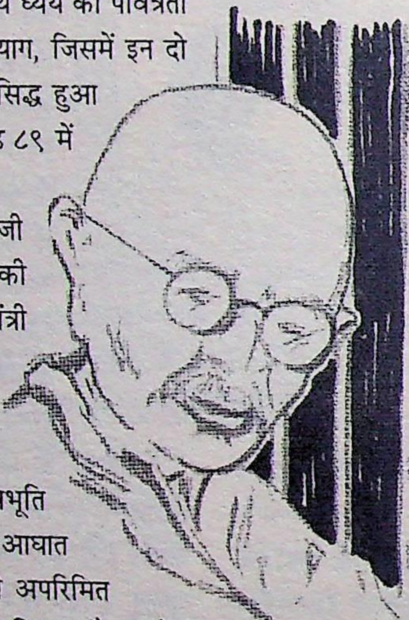
१९२१ के असहयोग आंदोलन और १९३० के सविनय अवज्ञा आंदोलन, इन दोनों सत्याग्रहों में डॉक्टर हेडगेवार सहभागी हुए थे। इस कारण उन्हें १९ अगस्त, १९२१ से १२ जुलाई, १९२२ तक और २१ जुलाई, १९३० से १४ फरवरी, १९३१ तक दो बार सश्रम कारावास की सजा भी हुई।

महात्मा गांधीजी को १८ मार्च, १९२२ को छह वर्ष की सजा हो गई। तब से उनकी मुक्ति तक प्रत्येक महीने की १८ तारीख 'गांधी दिन' के रूप में मनाई जाती थी। १९२२ के अक्तूबर मास में 'गांधी दिन' के अवसर पर दिए गए भाषण में डॉक्टर हेडगेवारजी ने कहा, "आज का दिन अत्यंत पवित्र है। महात्माजी जैसे पुण्यश्लोक पुरुष के जीवन में व्याप्त सद्गुणों के श्रवण एवं चिंतन का यह दिन है। उनके अनुयायी कहलाने में गौरव अनुभव करनेवालों के सिर पर तो उनके इन गुणों का अनुकरण करने की जिम्मेदारी विशेषकर है।"

१९३४ में वर्धा में श्री जमनालाल बजाज के यहाँ जब गांधीजी का निवास था, तब पास ही संघ का शीत शिविर चल रहा था। उत्सुकतावश गांधीजी वहाँ गए, अधिकारियों ने उनका स्वागत किया और स्वयंसेवकों के साथ उनका वार्त्तालाप भी हुआ। वार्त्तालाप के दौरान जब उन्हें पता चला कि शिविर में अनुसूचित जाति से भी स्वयंसेवक हैं और उनसे किसी भी प्रकार का भेदभाव किए बिना सब भाईचारे के साथ स्नेहपूर्वक एक साथ रहते हैं, सारे कार्यक्रम साथ

करते हैं, तब उन्होंने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की।

स्वतंत्रता के पश्चात् जब गांधीजी का निवास दिल्ली में भंगी कॉलोनी में था, तब सामने मैदान में संघ की प्रभात शाखा चलती थी। सितंबर में गांधीजी ने प्रमुख स्वयंसेवकों से बात करने की इच्छा व्यक्त की। उन्हें गांधीजी ने संबोधित किया, ''बरसों पहले मैं वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक शिविर में गया था। उस समय इसके संस्थापक श्री हेडगेवार जीवित थे। स्वर्गीय श्री जमनालाल बजाज मुझे शिविर में ले गए थे और मैं उन लोगों का कड़ा अनुशासन, सादगी और छुआछूत की पूर्ण समाप्ति देखकर अत्यंत प्रभावित हुआ था। तब से संघ काफी बढ़ गया है। मैं तो हमेशा से यह मानता हूँ कि जो भी संस्था सेवा और आत्म-त्याग के आदर्श से प्रेरित है, उसकी ताकत बढ़ती ही है। लेकिन सच्चे रूप में उपयोगी होने के लिए त्यागभाव के साथ ध्येय की पवित्रता और सच्चे ज्ञान का संयोजन आवश्यक है। ऐसा त्याग, जिसमें इन दो चीजों का अभाव हो, समाज के लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ है।'' यह संबोधन 'गांधी समग्र वांगड्मय' के खंड ८९ में २१५-२१७ पृष्ठ पर प्रकाशित है।



३० जनवरी, १९४८ को सरसंघचालक श्रीगुरुजी मद्रास में एक कार्यक्रम में थे, जब उन्हें गांधीजी की हत्या का समाचार मिला। उन्होंने तुरंत ही प्रधानमंत्री पंडित नेहरू, गृहमंत्री सरदार पटेल और गांधीजी के सुपुत्र देवदास गांधी को टेलीग्राम द्वारा अपनी शोक संवेदना भेजी। उसमें श्रीगुरुजी ने लिखा, ''प्राणघातक क्रूर हमले के फलस्वरूप एक महान् विभूति की दुःखद हत्या का समाचार सुनकर मुझे बड़ा आघात लगा। वर्तमान कठिन परिस्थिति में इससे देश की अपरिमित हानि हुई है। अतुलनीय संगठक के तिरोधान से जो रिक्तता पैदा हुई है, उसे पूर्ण करने और जो गुरुतर भार कंधों पर आ पड़ा है, उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भगवान् हमें प्रदान करें।''

गांधीजी के प्रति सम्मान रूप शोक व्यक्त करने के लिए १३ दिन तक संघ का दैनिक कार्य स्थगित करने की सूचना उन्होंने देशभर के स्वयंसेवकों को दी। दूसरे ही दिन ३१ जनवरी, १९४८ को श्रीगुरुजी ने प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को एक विस्तृत-पत्र लिखा। उसमें वे लिखते हैं, ''कल चेन्नई में वह भयंकर वार्ता सुनी कि किसी अविचारी भ्रष्ट-हृदय व्यक्ति ने पूज्य महात्माजी पर गोली चलाकर उस महापुरुष के आकस्मिक असामयिक निधन का नीरघृण कृत्य किया। यह निंदा कृत्य संसार के सम्मुख अपने समाज पर कलंक लगानेवाला हुआ है।''

यह सारी जानकारी 'Justice on Trial' नामक पुस्तक में और 'श्रीगुरुजी समग्र' में उपलब्ध है।

६ अक्तूबर, १९६९ में महात्मा गांधीजी की जन्मशताब्दी के समय महाराष्ट्र के सांगली में गांधीजी की प्रतिमा का श्रीगुरुजी के द्वारा अनावरण किया गया। उस समय श्रीगुरुजी ने कहा, ''लोकमान्य तिलक के पश्चात् महात्मा गांधी ने अपने हाथों में स्वतंत्रता आंदोलन के सूत्र सँभाले और इस दिशा में बहुत प्रयास किए। शिक्षित-अशिक्षित स्त्री-पुरुषों में यह प्रेरणा निर्माण की कि अंग्रेजों का राज्य हटाना चाहिए, देश को स्वतंत्र करना चाहिए और स्व के तंत्र से चलने के लिए जो कुछ मूल्य देना होगा, वह हम देंगे। महात्मा गांधी ने मिट्टी से सोना बनाया। साधारण लोगों में असाधारणत्व निर्माण किया। इस सारे वातावरण से ही अंग्रेजों को हटना पड़ा।''

श्री गुरुजी के गांधीजी को समर्पित इसी उद्‍बोधन के कुछ अन्य अंश भी दृष्टव्य हैं—

१. वह (गांधीजी) कहा करते थे, 'मैं कट्टर हिंदू हूँ, इसलिए केवल मानवों से ही नहीं, संपूर्ण जीवमात्र से प्रेम करता हूँ।' उनके जीवन व राजनीति में सत्य व अहिंसा को जो प्रधानता मिली, वह कट्टर हिंदुत्व के कारण ही मिली।

२. जिस हिंदू-धर्म के बारे में हम इतना बोलते हैं, उस धर्म के भवितव्य पर उन्होंने (गांधीजी ने) 'फ्यूचर ऑफ हिंदुइज्म' शीर्षक के अंतर्गत अपने विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने लिखा है, 'हिंदू-धर्म यानी न रुकनेवाला, आग्रह के साथ बढ़नेवाला, सत्य की खोज का मार्ग है। आज यह धर्म थका हुआ-सा, आगे जाने की प्रेरणा देने में सहायक प्रतीत होता अनुभव में नहीं आता। इसका कारण है कि हम थक गए हैं, पर धर्म नहीं थका। जिस क्षण हमारी यह थकावट दूर होगी, उस क्षण हिंदू-धर्म का भारी विस्फोट होगा, जो भूतकाल में कभी नहीं हुआ, इतने बड़े परिमाण में हिंदू-धर्म अपने प्रभाव और प्रकाश से दुनिया में चमक उठेगा।' महात्माजी की यह भविष्यवाणी पूरी करने की जिम्मेदारी हमारी है।

गुरुजी कहते हैं, महात्माजी से मेरी अंतिम भेंट सन् १९४७ में हुई थी। उस समय देश को स्वाधीनता मिलने से शासन-सूत्र सँभालने के कारण नेतागण खुशी में थे। उसी समय दिल्ली में दंगा हो गया। मैं उस समय शांति प्रस्थापना करने का काम कर रहा था। गृहमंत्री सरदार पटेल भी प्रयत्न कर रहे थे और उस कार्य में उन्हें सफलता भी मिली। ऐसे वातावरण में मेरी महात्मा गांधीजी से भेंट हुई थी। महात्माजी ने मुझसे कहा, 'देखो यह क्या हो रहा है?'

मैंने कहा, 'यह अपना दुर्भाग्य है। अंग्रेज कहा करते थे कि हमारे जाने पर तुम लोग एक-दूसरे का गला काटोगे। आज प्रत्यक्ष में वही हो रहा है। दुनिया में हमारी अप्रतिष्ठा हो रही है। इसे रोकना चाहिए।' गांधीजी ने उस दिन अपनी प्रार्थना सभा में मेरे नाम का उल्लेख गौरवपूर्ण शब्दों में कर, मेरे विचार लोगों को बताए और देश की हो रही अप्रतिष्ठा रोकने की प्रार्थना की। उस महात्मा के मुख से मेरा गौरवपूर्ण उल्लेख हुआ, यह मेरा सौभाग्य था। इन सारे संबंधों से

ही मैं कहता हूँ कि हमें उनका अनुकरण करना चाहिए।

मैं जब वडोदरा में प्रचारक था, तब (१९८७-९०) सह सरकार्यवाह श्री यादवराव जोशी का वडोदरा में सार्वजनिक व्याख्यान था। उसमें श्री यादवरावजी ने महात्मा गांधीजी का बहुत सम्मान के साथ उल्लेख किया। व्याख्यान के पश्चात् कार्यालय में एक कार्यकर्ता ने उनसे पूछा कि आज आपने महात्मा गांधीजी का सम्मानपूर्वक जो उल्लेख किया, वह क्या मन से किया था? इस पर यादवरावजी ने कहा कि मन में न होते हुए भी केवल बोलने के लिए मैं कोई राजकीय नेता नहीं हूँ। जो कहता हूँ, मन से ही कहता हूँ। फिर उन्होंने समझाया कि जब किसी व्यक्ति का हम आदर-सम्मान करते हैं, इसका मतलब यह नहीं कि उनके सभी विचारों से हम सहमत होते हैं। एक विशिष्ट प्रभावी गुण के लिए हम उन्हें याद करते हैं, आदर्श मानते हैं। जैसे पितामह भीष्म को हम उनकी कठोर प्रतिज्ञा की दृढ़ता के लिए अवश्य स्मरण करते हैं, परंतु राजसभा में द्रौपदी के वस्त्रहरण के समय वे सारा अन्याय मौन देखते रहे, इसका समर्थन हम नहीं कर सकते हैं। इसी तरह कट्टर और जिहादी मुस्लिम नेतृत्व के संबंध में गांधीजी के व्यवहार के बारे में घोर असहमति होने के बावजूद, स्वतंत्रता आंदोलन में जनसामान्य को सहभागी होने के लिए उनके द्वारा दिया गया अवसर, स्वतंत्रता के लिए सामान्य लोगों में उनके द्वारा प्रज्वलित की गई ज्वाला, भारतीय चिंतन पर आधारित उनके अनेक आग्रह के विषय, सत्याग्रह के माध्यम से व्यक्त किया जन आक्रोश, यह उनका योगदान निश्चित ही सराहनीय और प्रेरणादायी है।

इन सारे तथ्यों को ध्यान में लिये बिना संघ और गांधीजी के संबंध पर टिप्पणी करना असत्य और अनुचित ही कहा जा सकता है।

ग्राम विकास, सेंद्रिय कृषि, गौ-संवर्धन, सामाजिक समरसता मातृभाषा में शिक्षा और स्वदेशी अर्थ-व्यवस्था एवं जीवनशैली ऐसे महात्मा गांधीजी के प्रिय एवं आग्रह के क्षेत्र में संघ स्वयंसेवक पूर्ण मनोयोग से सक्रिय हैं। यह वर्ष महात्मा गांधीजी की १५०वीं जयंती है। उनकी पावन स्मृति को विनम्र आदरांजलि।

सा अ

सी-६३८, न्यू फ्रेंड्स कॉलोनी
नई दिल्ली-११००२५
mmohanngp@gmail.com

एक बार फिर आओ गांधी

कविता

• बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'



सुपरिचित बाल-साहित्यकार। देश और विदेश की बाल-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। विदेशी रेडियो के हिंदी प्रसारणों पर रचनाएँ प्रचारित। ढेरों पुरस्कार प्राप्त।

उठो गांधी!
चलो मेरे साथ
दो-चार कदम
भारत की तसवीर को
देखने के लिए।

तुमने तो
भारत की आजादी का
स्वाद नहीं चखा,
दुश्मन ने तुम्हें मारकर
मौत की नींद सुला दिया।
तुम चले गए
भारत को छोड़कर
आज भारत के नेता
तेरा झूठा
गुणगान गा रहे हैं।



खुद ए.सी. में बैठकर
देश पर राज कर रहे हैं
और तुम्हें बुत बनाकर
सड़क पर खड़ा करके
तेरे नाम की झूठी माला जप रहे हैं।
देश से अब तक नहीं गई
गरीबी-भुखमरी।
आज देश
चंद पूँजीपतियों के हाथ की
कठपुतली बन गया है।
आज जाति-धर्म की
नफरत फैलाई जा रही है।
हिंदू-मुसलमान को
एक-दूजे से
लड़ाया जा रहा है।
सारे नेता बढ़-चढ़कर
बोली बोल रहे हैं,
रामनाम की झूठी
जयकारा लगा रहे हैं।
देश से
गरीबी-बेरोजगारी-भ्रष्टाचार
कुछ भी तो नहीं गया।
हर तरफ खून-खराबा
और हा-हाकार मचा है,
एक बार फिर आओ,
नेताओं से आजादी दिलवाओ
देश में रामराज्य लाओ।

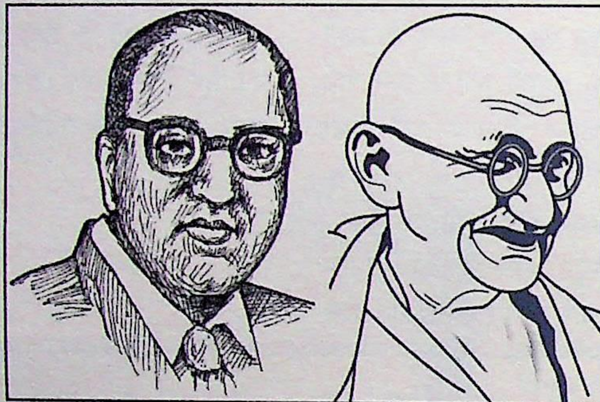
सा अ

गल्ला मंडी, पोस्ट-गोला बाजार
गोरखपुर-२७३४०८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९८३८९११८३६

गांधी और अंबेडकर : विचारों की जमीन पर

• कृष्णदत्त पालीवाल

डॉ. अंबेडकर स्वाधीनता आंदोलन के भीतर से निकले उन विचारकों में से हैं—शायद अकेले, जिन्होंने अपनी मूल चिंता के सरोकारों को दलित वर्ग और जातिप्रथा पर केंद्रित किया है। इसी संदर्भ में दूसरे चिंतक महात्मा गांधी का नाम भी अनायास ही याद आता है, जो बराबर अपने युग की बुनियादी चिंताओं से उलझते रहे। अंबेडकर के चिंतन का घेरा कुछ विषयों तक सीमित है तो गांधी का चिंतन-क्षेत्र ज्यादा व्यापक है। गांधीजी से पहले नौरोजी, तिलक या गोखले दलित वर्ग की समस्याओं पर लगभग मौन हैं। लेकिन गांधीजी के चिंतन में जाति के आधार पर विषमता और शोषण तथा जाति के नाम पर होनेवाले खुले अन्याय का निरंतर विरोध है। उन्होंने अपने लेखन और विचारों में शुरू से अंत तक दलित वर्ग का ही पक्ष लिया और राष्ट्रीय आंदोलन को सफल जनाधार प्रदान करने का प्रयास किया। इतिहास की यह एक अजीब विडंबना है कि अंबेडकर और गांधी दोनों ही रूढ़िवाद, सामाजिक शोषण और जातिप्रथा के कलंक को मिटाने की लड़ाई लड़ने पर भी अलग-अलग रहे, मिलकर लड़ाई कभी न लड़ सके; जबकि दोनों ही दलित जातियों की स्थिति में बुनियादी सुधार लाना चाहते थे। दोनों में बहुत-सी समानताएँ हैं, किंतु दोनों की विचार प्रविधियों और दृष्टिकोणों में एक गहरी भिन्नता भी विद्यमान है। यह भिन्नता वैचारिक स्तर पर ज्यादा गहरी है, कर्म के स्तर पर कम।



गांधी का मानसिक गठन एक विचारशील सनातनी हिंदू के साँचे में थोड़े से अंतर के साथ समाहित है, पर अंबेडकर के मन में उनके अपने कटु अनुभवों के कारण हिंदू समाज-व्यवस्था और चिंतन-दृष्टि के प्रति घृणा का भाव है। अपने कठोर, उग्र और दृढ़ विचारों के कारण एक समय था कि कांग्रेस जन उनसे दूर रहते थे और गरम दलवाले उन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान, पश्चिमी चिंतन का उदार, ठंडा, प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवाद समर्थक कहते थे; जबकि उनकी देशभक्ति इस देश के किसी भी बड़े नेता से किसी भी दृष्टि से कम न थी। किसी भी कीमत को देकर वे दो हजार वर्ष से चले आ रहे सवर्ण हिंदुओं के जुल्मों-अत्याचारों से सीधे लड़ना चाहते थे, ताकि सामाजिक समता की स्थापना की जा सके। उनके ऊपर ज्योतिबा फुले, महादेव गोविंद रानाडे और गोपाल गणेश आगरकर के विचारों की चमक थी तथा उनकी प्रतिभा अन्याय के विरुद्ध उन्हें खड़ा होने को विवश कर रही थी। सन् १९१६ में जातिप्रथा की समस्या पर लिखा गया उनका निबंध जातिप्रथा के खिलाफ युद्ध करने का खुला विचार-पत्र था। जन्म पर आधारित जातिप्रथा की बुराइयों की वे ईंट-से-ईंट बजा देना चाहते थे और इसी अर्थ में वे 'ब्राह्मणवाद' के कट्टर शत्रु रहे। सवर्ण हिंदुओं के उदारतावाद पर उनका रंचमात्र भी विश्वास न था और वे मानते थे कि दलितों को अपनी मुक्ति के लिए स्वयं 'ब्राह्मणवाद' से टक्कर लेकर उसे भूमिगत करना होगा।

यह सच है कि गांधीजी ने सवर्ण होकर भी ब्राह्मणवाद का समर्थन नहीं किया। उलटे 'यंग इंडया' १९२० के नवंबर में 'ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर' शीर्षक निबंध लिखकर अपने विचारों का स्पष्ट खुलासा किया। गांधी ने खूब सोचकर कहा कि फिरंगी सरकार ने आपस में फूट डालकर स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने के लिए 'ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर' के प्रश्न को राजनीतिक रंग दे दिया। यह खतरनाक खेल शुरू करके अंग्रेज हमें भीतर से तबाह करना चाहते हैं। गांधी के शब्द हैं, 'मुझे साफ नजर आ रहा है कि सरकार अपनी मुस्तकिल नीति के मुताबिक ब्राह्मणेतरों को कांग्रेस में रखकर उनका इस्तेमाल ब्राह्मणों के विरुद्ध करेगी और दोनों में झगड़ा पैदा करके तथा ब्राह्मणेतरों को राजनीतिक प्रलोभन देकर ब्राह्मण विरोधी आंदोलन यथासंभव बंद नहीं होने देगी। (यंग इंडिया १७.११.१९२०) गांधीजी की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और तमाम सिरफिरों ने 'ब्राह्मणवाद' और 'ब्राह्मणेतर' की लड़ाई करवाकर अपनी स्वार्थपूर्ति की राजनीतिक रोटियाँ सेंकी। अंबेडकर तो गांधीजी के इन विचारों से भड़क गए और उन्हें विश्वास हो गया कि गांधीजी का दलित प्रेम मात्र एक ढोंग है। दुर्भाग्य की बात यह है कि गांधीजी अंबेडकर को और अंबेडकर गांधीजी को ठीक-ठीक न समझ सके। फलतः दोनों के बीच बड़े भ्रमों का जाल खड़ा हो गया और वे इस जाल को तोड़कर मिल न सके।

अवसर की तलाश में रहनेवाली फिरंगी सरकार ने गांधी तथा अंबेडकर की स्थिति का पूरा लाभ उठाया। अगस्त १९३२ में अंग्रेजों ने

एक खास तरह का सांप्रदायिक माहौल बना दिया। इस चाल के तहत प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय के लिए कुछ सीटें विधानमंडलों में सुरक्षित की गईं, जिनके लिए चुनाव भी पृथक् मंडलों से स्वीकार किया गया। मुसलमान, सिख, ईसाई पहले से ही अल्पसंख्यक माने जा रहे थे और इस नए कानून ने दलित वर्ग या अनुसूचित जातियों को भी अल्पसंख्यकों में स्थान दिया। एक भारी चाल चलकर उन्हें हिंदू समाज से अलग कर देने की तैयारी की गई। कांग्रेस शुरू से ही जानती और मानती थी कि पृथक् निर्वाचन मंडलों से मुसलमान, दलित वर्ग में नई राजनीति उठ खड़ी होगी और इससे सांप्रदायिकता की नागिन के दाँत और पैने तथा निर्भय हो जाएँगे। यही कारण है कि सभी राष्ट्रवादी नेताओं ने दलित वर्ग को शेष हिंदू समाज से अलग करने की जहरवादी नीति का विरोध किया। यरवदा जेल में बंद गांधी ने खबर पाते ही इस नीति के प्रति कड़ा विरोध प्रकट किया। उनका मत था कि यह भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की एकता पर सीधा हमला है। इसे हिंदू तथा दलित वर्ग दोनों की एकता को तोड़ने का कूट प्रयास कहा। क्योंकि इस फिरंगी नीति में दलितों की स्थिति में सुधार का कोई आश्वासन न था, केवल 'बाँटो और राज करो' की नीति का रंगीन जादू था। यह तो अछूतों को हमेशा अछूत बनाकर रखने की तैयारी थी और धर्म-परिवर्तन की दिशा के लिए रास्ता बनाने का षड्यंत्र।

स्थिति की गंभीरता को समझते हुए गांधीजी २० सितंबर, १९३२ को आमरण अनशन पर बैठ गए तथा अपने प्रेस बयान में कहा, "मुझे अपनी जिंदगी की परवाह नहीं। इस पवित्र उद्देश्य के लिए यदि ऐसी सैकड़ों जिंदगियाँ कुर्बान हो जाएँ तो भी उस पाप का प्रायश्चित नहीं हो सकता, जो हिंदुओं ने अपने ही गरीब और असहाय भाइयों पर ढाए हैं।" कई राजनीतिक दलों ने इस अनशन को गांधी का राजनीतिक नाटक कहकर विरोध किया, लेकिन जनता ने इस अनशन को भारी समर्थन दिया। पूरे देश में दलितों के लिए कुएँ और मंदिर खोल दिए गए। गांधीजी को गुरुदेव टैगोर ने संदेश भेजा, "भारत की एकता और उसकी सामाजिक अखंडता के लिए यह उत्कृष्ट बलिदान है। हमारे व्यथित, पीड़ित हृदय आपकी इस महान् तपस्या का आदर और प्रेम के साथ अनुकरण करेंगे।" यही वह अवसर है, जब बी.आर. अंबेडकर ने गांधी का साथ दिया। फिरंगी सरकार को मुँह की खानी पड़ी। गांधी और अंबेडकर का मेल रंग लाया और आखिरकार एक समझौता हुआ, जिसे 'पूना पैक्ट' या पूना समझौता के नाम से आज भी जाना जाता है। इसी पूना पैक्ट के तहत दलित वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचन मंडल का विचार समाप्त कर दिया गया और विधान मंडलों में दलितों के लिए सुरक्षित सीटों को ७१ से बढ़ाकर १४७ कर दिया गया। केंद्रीय विधान मंडल की सीटों में सुरक्षित सीटों की संख्या में १८ प्रतिशत की वृद्धि की गई। गांधीजी ने समय पाकर 'छुआछूत निवारण आंदोलन' चलाया।

नवंबर १९३३ ई. को वर्धा से 'हरिजन-यात्रा' शुरू की और नौ माह तक देश का भ्रमण किया। जगह-जगह गांधी ने अपने समर्थकों से कहा, "या तो वे छुआछूत को जड़ से समाप्त करें या फिर मुझे अपने बीच से हटा दें, क्योंकि यह मेरी अंतरात्मा की पुकार है।" गांधी का संत मन ऐसे ही अवसरों पर खास चमक छोड़ता था और जनता



पालीवालजी की आलोचना-दृष्टि रामनरेश त्रिपाठी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से लेकर अज्ञेय, सर्वेश्वर सरीखे हिंदी के समकालीन साहित्यकारों तक को पूरी गंभीरता और नैरंतर्य से व्याख्यायित करती रही। यही नहीं, विचार और चिंतन की अधुनातन उपपत्तियों तक को उनकी आलोचकीय मेधा उतनी ही सजगता और उत्साह से देखती-परखती रही। ८ फरवरी, २०१५ को स्मृतिशेष।

में समाज-सुधार का 'करंट' वे प्रवाहित कर देते थे। डॉ. अंबेडकर ने अपनी आँखों से देखा था और गांधी के प्रति कहीं गहरे में उनके मन में श्रद्धा उमड़ी थी। अंबेडकरजी, जिन्हें जनता ने संत भाव के कारण 'बाबा साहेब' कहा, वे देख रहे थे कि कैसे प्रतिक्रियावादियों, कट्टरवादियों, संप्रदायवादियों ने गांधी को विरोध से दबोचने की कोशिश की। गांधी की सभाओं में हुल्लड़ करना, काले झंडे दिखाना, अपमानजनक परचे बाँटना आम बात थी। पर गांधी की आँधी में कोई उनके सामने ठहर न सका। इतना ही नहीं, प्रतिक्रियावादी ताकतें गांधी को उखाड़ने के चक्कर में फिरंगी सरकार से मिल गईं और मिलकर 'मंदिर प्रवेश विधेयक' पारित करवाया। पर वे गांधी और अंबेडकर को न रोक सके। हाथी निकल गया और कुत्ते भौंकते रह गए। इसी संदर्भ में आज जबकि सांप्रदायिक ताकतें पैंतरे बदल रही हैं, गांधी और अंबेडकर को सही दृष्टिकोण से समझने की जरूरत है। ध्यान करने पर यह बात साफ दिखाई देती है कि गांधी और अंबेडकर की वैचारिक भिन्नता के भीतर भी एक गहरी समानता है—एकता है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं हैं। जैसा कि बहुत बार विरोधी सिद्ध करने का इधर षड्यंत्र रचा गया है।

डॉ. अंबेडकर ने अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन में शिक्षा प्राप्त की थी तथा वे अमेरिकी रंग-भेद, नस्लवाद, अलगाववाद की भीतरी स्थिति से गहरा परिचय रखते थे। फ्रांसीसी राज्य-क्रांति की विचारधारा का उन पर असर पड़ा था। इसलिए समानता, बंधुता और अधिकारों के लिए लड़ने पर भी वे अपने देश की भीतरी हालत को समझते थे। अंग्रेज दिखावे के तौर पर दलित वर्ग को भारत में गले लगाता था, बराबरी पर बैठाता था, नौकरी देता था, छुआछूत न मानता था। इस उदारता के पीछे छिपी नीयत भी बाबा साहेब खूब समझते थे। वे बराबर समझते रहे कि अछूतों का भला ईसाई धर्म स्वीकार करने में नहीं हो सकता। उनका भला तो हिंदू समाज में व्याप्त छुआछूत समाप्त करते हुए समानता और न्यायपूर्ण अधिकारों को प्राप्त करने से ही हो सकता है। डॉ. अंबेडकर जोर देकर कहते हैं कि 'यदि आप हिंदू धर्म को बचाना चाहते हो तो ब्राह्मणवाद को खत्म करो।' उन्हें उपनिषदों की उस वाणी से प्यार है, जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना पर आधारित है। इस तरह के विचारों के कारण कम्युनिस्ट अपने वर्ग-संघर्षवाद में गांधी की तरह डॉ. अंबेडकर का भी डटकर विरोध करते रहे। हिंदू धर्म की कुरीतियों से बेचैन बाबा साहेब की उजली भारतीयता पर गहरी आस्था है, "मुझे अच्छा नहीं लगता जब कुछ लोग कहते हैं कि हम पहले भारतीय हैं और बाद में हिंदू अथवा मुसलमान। मुझे यह स्वीकार नहीं

है। धर्म, संस्कृति, भाषा आदि की प्रतिस्पर्धी निष्ठा के रहते हुए भारतीयता के प्रति निष्ठा नहीं पनप सकती। मैं चाहता हूँ लोग पहले भी भारतीय हों और अंत तक भारतीय रहें, भारतीय के अलावा कुछ नहीं।'' *(डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचिस, खंड २, पृ. १९५)*

बाबा साहेब में भारतीयता की एक अटूट लय है, जिसे खंडित नहीं किया जा सका। देश के प्रति उनमें अपार आदर और प्यार है, ''और मैं इस सदन में पूरे जोर से कहना चाहता हूँ कि जब कभी देश के हित और अस्पृश्यों के हित के बीच टकराव होगा तो मैं अस्पृश्यों के हित को तरजीह दूँगा। अगर कोई आततायी बहुमत देश के नाम पर बोलता है तो मैं उसका समर्थन नहीं करूँगा। मैं किसी पार्टी का समर्थन सिर्फ इसलिए नहीं करूँगा कि वह पार्टी देश के नाम पर बोल रही है। जो यहाँ हैं और जो यहाँ नहीं हैं, सब मेरी इस भूमिका को समझ लें। मेरे अपने हित और देश के हित के साथ टकराव होगा तो मैं देश को तरजीह दूँगा। लेकिन अगर देश के हित और दलित वर्गों के हित के साथ टकराव होगा तो मैं दलित वर्गों के हितों को प्राथमिकता दूँगा।'' *(वही, पृ. २५८)* ऐसा बाबा साहेब इसलिए कहते थे कि वे समझ गए थे कि दलितों की स्थिति में परिवर्तन समतामूलक समाज की स्थापना के लिए जरूरी है। जाति प्रथा न केवल मानव गरिमा के विरुद्ध है, बल्कि समतामूलक समाज के स्वप्न के भी विरुद्ध है। यही कारण है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के साथ-साथ वे जातिप्रथा के उद्गम-विकास-प्रभाव के समाजशास्त्र पर निरंतर कार्य करते रहे। हिंदू विधि व्यवस्था के आशिक रूप में प्रणेता मनु महाराज को वे जाति प्रणाली का निर्माता न मानते थे; क्योंकि अपने अनुसंधान से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'जाति मनु से पहले अस्तित्व में थी।' *(वही, पृ. १६)* इसलिए यह कहना भूल है कि जाति-श्रेणियों का निर्माण शास्त्रों और स्मृतियों ने किया। इन शास्त्रों-स्मृतियों ने तो ब्राह्मणों की शक्ति पाकर जातिप्रथा को धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक आधार भर प्रदान किया।

गैर-ब्राह्मण जातियों पर जातिप्रथा को लादने की शक्ति ब्राह्मणों में नहीं थी। ब्राह्मण चाहने पर भी वंश और नस्ल की ठेकेदारी करने में कभी समर्थ न था। उसकी पुरोहिताई राजा की शक्ति पर टिकी थी। राम और कृष्ण के मिथक नस्लवादी रंग सिद्धांत से नहीं पनपे थे उनके पीछे गो-चारण संस्कृति की एक परंपरा का पूरा जीवन-दर्शन काम कर रहा था। इसलिए उनका मत है कि ''वंश की दृष्टि से सभी लोग संकर है। सांस्कृतिक एकता उनकी एकरूपता का कारण है। इस बात को मानकर चलते हुए मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि संकर रचना के बावजूद सांस्कृतिक एकता में कोई भी देश भारत का मुकाबला नहीं कर सकता। इसमें न केवल भौगोलिक एकता है, अपितु उससे ज्यादा गहरी और मूलभूत एकता है सांस्कृतिक एकता जो एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश में व्याप्त है। लेकिन इस संस्कृतिजन्य एकरूपता के कारण ही जाति की हत्थी को सुलझाना अत्यंत कठिन हो जाता है।'' *(वही, पृ. २२)* जाति का उद्गम इकाई के विभक्तीकरण की प्रक्रिया में पाया जा सकता है। 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन करते हुए डॉ. अंबेडकर ने इतिहासकार आर्नल्ड टायनबी के अनुकरण सिद्धांत पर कतई भरोसा नहीं किया—वे हमारे देश की धार्मिक-दार्शनिक अवधारणाओं का सागर-मंथन करने में सक्रिय हो गए और पाया कि ''हिंदू-दर्शन सर्वव्यापी आत्मा का सिद्धांत सिखाता है और गीता उपदेश देती है कि ब्राह्मण तथा चांडाल में भेद न करो।''

प्रश्नाकुल चिंताओं से जूझने पर उत्तर आता है कि अस्पृश्यता को खत्म करना ही काफी नहीं। जातिप्रथा और वर्ण-व्यवस्था को ही मूल से खत्म करना होगा। गांधीजी वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं और अंबेडकर उसे पूरी तरह अस्वीकार। इस बिंदु से दोनों के विचारों में अंतर उभरता है और समझौता नहीं हो पाता। इसलिए उन्होंने मनुस्मृति को जलाया तथा एक वर्ग समाज की स्थापना पर अटल हो गए। उनका विश्वास दृढ़ होता गया कि जातिप्रथा के धार्मिक सिद्धांतों की जड़ों में मट्ठा डाले बिना जातिप्रथा से मुक्ति असंभव है। १९४४ में बाबा साहेब ने स्मारिका निकाली, जो जाति-व्यवस्था संबंधी उनके विचारों का बुनियादी ढाँचा सामने लाती है। आज तो यह स्मारिका हम भारतीयों के लिए कम्युनिस्ट-मैनिफेस्टो से भी ज्यादा मूल्यवान कही जा सकती है, जबकि चारों ओर जातिप्रथा की नाशकारी आग धधक रही है। डॉ. अंबेडकर के जातिप्रथा संबंधी विचारों को डॉ. लोहिया के विचारों से तुलना करके देखना चाहिए—दोनों में एक गहरी समानता है। दोनों ही कहते हैं कि जाति-व्यवस्था को तोड़ने के लिए 'सामाजिक क्रांति' की आवश्यकता है—सामाजिक सुधार पर्याप्त नहीं है।

बार-बार दोनों ही मार्क्सवाद के आर्थिक सिद्धांत की दृष्टि को चुनौती देते हैं। डॉ. अंबेडकर कहते हैं, 'समाजवादी यह मानकर चलते हैं कि यूरोपीय समाज की वर्तमान व्यवस्था में संपत्ति शक्ति का प्रमुख स्रोत है।' पर यह विचार धोखा है। भारत के संदर्भ में धार्मिक-दार्शनिक विचारधाराओं की बड़ी भूमिका रही है और यह भूमिका भारतीय मार्क्सवादी समझने में असमर्थ रहे हैं। मार्क्सवादियों से कहा, 'तुम किसी तरफ जाओ, जातिवाद के दानव से तुम्हें लड़ना होगा। जब तक तुम इस दानव को नहीं मारोगे, कोई भी आर्थिक या राजनीतिक परिवर्तन नहीं ला सकते।' *(वही, पृ. ४७/क्र. ६)* दलितों को धार्मिक अनुशासन में घेरकर उच्च शिक्षा, संस्कृति, दर्शन से वंचित रखा गया। फलत: वे हिंदू समाज में अशक्त होते गए। विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण होने पर भी संपूर्ण समाज के साथ शस्त्र उठाने की उनकी शक्ति को भी लकवा मार गया। फलत: हम सभी विदेशी आक्रांताओं के द्वारा रौंदे जाते रहे। हमारी पराजय के मूल में जातिप्रथा, वर्ण-व्यवस्था की गहरी भूमिका है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

गांधीजी 'हिंदू धर्म के माथे पर कलंक' (गोधरा ५ नवंबर, १९१७) में यह अफसोस जाहिर करते हैं कि ''वर्ण की मेरी की हुई व्याख्या या तारीफ के हिसाब से तो आज हिंदू धर्म में वर्ण-धर्म का अमल होता ही नहीं। ब्राह्मण नाम रखनेवाले विद्या पढ़ाना छोड़ बैठे हैं। वे और-और धंधे करने लगे हैं। यही बात थोड़ी-बहुत दूसरे वर्णों के बारे में सच है।'' इतना ही नहीं, उन्हें जातिप्रथा को समूल नष्ट करने की वह बेचैनी नहीं थी, जो बेचैनी अंबेडकर की नींद हराम किए थी। गांधीजी जोर देकर कहते थे, पर अन्य भीषण समस्याओं से भी वे घिर जाते थे। एक बार गांधी ने यहाँ तक कहा, ''मैं दलित वर्गों का किन्हीं अन्य वर्गों की

कीमत पर स्वराज नहीं चाहता। मेरे विचार से यह स्वराज होगा ही नहीं। मेरा विचार है कि जिस क्षण भारत अंत:शुद्धि प्राप्त कर लेगा, तभी वह आजाद होगा। उसके पहले नहीं।'' *(दि कलेक्टिड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी : ई खंड-१४, पृ.१५)* इन विचारों से आहत अंबेडकर ने गांधी से सहयोग नहीं किया। अंबेडकर का दिमाग इस बात में एकदम साफ था कि जातिप्रथा को एकदम नष्ट किए बिना अस्पृश्यता को इस देश से दूर नहीं किया जा सकता है। इसी विचार से वे भारत में अंग्रेज राज्य को शैतान न मानकर जातिप्रथा को ही सच्चा शैतान घोषित करते थे। अंग्रेजों को जो मदद दलित जातियों ने दी थी वह अकारण न थी, ''दलित वर्ग एक असाधारण बंधन में बंधे हुए हैं। दलितों ने सनातनी हिंदुओं के सदियों पुराने अत्याचार से निजात दिलानेवालों के रूप में अंग्रेजों का स्वागत किया था। उन्होंने अंग्रेजों के लिए हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों के खिलाफ लड़ाइयाँ लड़ीं और उनके लिए भारत का महान् साम्राज्य जीता।'' *(राइटिंग्स एंड स्पीचिस, खंड-२, पृ. ५०४)*

आज आप कुछ भी इस कथन को लेकर कहिए कि अंग्रेजों का अंबेडकर ने साथ दिया और दलित वर्ग को उनका साथ देने की प्रेरणा भी दी। 'गोलमेज सम्मेलन' के अवसर पर गांधी तथा अंबेडकर के बीच वैचारिक विरोध उभरा, पर अंबेडकर झुके नहीं। गांधी ने पूरी करुणा से कहा, ''पृथक् मतदाता सूचियों और आरक्षण उस कलंक को नहीं धो सकते, जो दलित जातियों का नहीं, सनातनी हिंदुओं का कलंक है।'' *(दि कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी १९१३-१४, पृ. ८३)* सवर्ण हिंदुओं ने दलित वर्गों पर जो अत्याचार किए हैं, उन्हें लेकर गांधी का माथा स्वयं शर्म से झुक जाता है। ''रास्ते में उसे बार-बार हमारे भय से अपनी अस्पृश्यता की घोषणा करनी पड़ती है। इससे बढ़कर मृणासूचक व्यवहार और कौन-सा हो सकता है ?'' *(गांधी संस्मरण और विचार, पृ. ३४५)* गांधी का संत मन यहाँ तक कहता है, ''मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हिंदू धर्म को पूर्वोक्त कलंक से मुक्त करने में यदि अपना शरीर भी देना पड़े तो भी यह कोई बड़ी बात नहीं है। जिस धर्म में नरसी मेहता जैसे समदर्शी भगवद्भक्त हो गए हों, उसमें अस्पृश्यता की भावना का रह सकना कदापि संभव नहीं है।'' *(वही, पृ. ३४५)*

गांधीजी कहते थे, ''मेरे मत से हमारी वर्तमान दुर्गति का कारण जातिप्रथा नहीं है। हमारी गुलामी का कारण है हमारा लोभ और अनिवार्य गुणों के प्रति हमारी उपेक्षा। मेरा विश्वास है कि जातिप्रथा ने हिंदू धर्म को विघटन से बचाया है।'' *(वही, पृ. ८३)* गांधी के ठीक विपरीत अंबेडकर भारत के पतन और गुलामी का कारण जातिप्रथा को ही मानते थे। गांधीजी गीता के चातुर्वर्ण्य-विभाजन को ठीक मानकर उसका समर्थन करते थे और गांधी का यह समर्थन अंबेडकर को गरम कर देता था। इसलिए वे एक दिन वैष्णव गांधी और हिंदू धर्म से नाता तोड़कर बौद्ध धर्म की शरण में चले गए। हम बौद्ध क्यों बने ? *(प्र.स. १९८७, कल्चरल पब्लिशर्स लखनऊ, पृ. ४२)* शीर्षक नागपुर के भाषण में बाबा साहेब ने कहा, ''अभाग्यवश असमानता और अन्याय के धरातल पर आधारित हिंदू दर्शन के रहते उसमें उत्साह पनपने की कोई गुंजाइश नहीं। और जब तक अछूत दासत्व परपरावाले पैशाचिक हिंदू धर्म की गुलामी स्वीकार करता रहेगा, अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने के लिए कभी भी आशा, स्फूर्ति और उत्साह प्राप्त नहीं कर सकता।'' इतना ही नहीं उन्होंने आर्य-अनार्य युद्ध का हाशिया भी उठाया, ''भारत में बौद्ध इतिहास का अध्ययन करनेवाले जानते हैं कि जिन लोगों ने बौद्ध धर्म का प्रचार प्रारंभ में किया, वे नाग लोग थे। नाग लोग अनार्य थे। आर्यों और नागों के मध्य घोर शत्रुता थी। आर्य-अनार्यों के बीच अनेक युद्ध लड़े गए। आर्य लोग नागों को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। इससे संबंधित पुराणों में अनेक कथाएँ मिलेंगी। आर्यों ने नागों को भस्म कर दिया। अगस्त मुनि ने एक नाग को बचा लिया था और हम उसी नाग के वंशज माने जाते हैं।'' *(वही, पृ. ३४)* बाबा साहेब का यह कथन कितना सच है, इस पर शोध होना चाहिए। क्योंकि इतिहास इस कथन का समर्थन नहीं करता। 'नागों ने ही पूरे विश्व में बौद्ध धर्म फैलाया' यह कथन डॉ. भरत सिंह उपाध्याय जैसे बौद्ध समृद्धि दर्शन के विद्वान् को निराधार प्रतीत होता है। ध्यान सप्रदाय जैसी पुस्तक में डॉ. उपाध्याय नागों का उल्लेख तक नहीं करते, हो दक्षिण भारत के बौद्ध भिक्षुओं का उल्लेख करते हैं। डॉ. अंबेडकर का यह विश्वास काफी पक्का है कि हिंदू धर्म में दलितों को न्याय मिल पाना असंभव है, 'यह धर्म किसी को नहीं बचा सकता। इसमें जीवंतता शेष नहीं रही।' *(वही, पृ. ४५)*

बाबा साहेब प्रश्न उठाकर गांधी से पूछते हैं, ''चातुर्वर्ण्य से आपका क्या तात्पर्य है ? कहाँ से शुरू होता है, कहाँ समाप्त होता है ? मैंने गांधी से पूछा। गांधीजी संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके।'' *(वही, पृ. ४६)* आगे और कहा, ''हमारे देश ने बार-बार स्वतंत्रता क्यों खोई, आए दिन हम विदेशी हुकूमत में क्यों जकड़े गए? क्योंकि यह देश कभी एक होकर शत्रु के समक्ष नहीं खड़ा हुआ। समाज का एक छोटा वर्ग ही सामने आया और जिस शत्रु ने पराजित किया वही विजेता बन गया। इसका प्रमुख कारण है हिंदुओं की विनाशकारी जातिप्रथा।'' *(वही, पृ. ४६)* इस तरह के तर्कवाद के कारण ही गांधी और अंबेडकर कभी भी एक नहीं हो सके। १९३६ में डॉ. अंबेडकर के भाषण 'जातिप्रथा उन्मूलन' पर गांधी ने कहा, ''वर्ण-व्यवस्था हमें सिखाती है कि हम सब अपने बाप-दादों के पेशे को अपनाते हुए अपनी जीविका चलाएँ। यह हमारे अधिकारों का नहीं, हमारे कर्तव्यों का निर्धारण करती है।'' किंतु गांधी की इस तरह की टिप्पणियों से बाबा साहेब निरंतर भड़कते गए और हिंदू धर्म छोड़कर बौद्ध हो गए।

सच बात यह है कि गांधी और अंबेडकर में विचार का एक लक्ष्य समान है—'मानव का कल्याण' जाति, धर्म, वर्ग, संप्रदाय, दर्शन की दीवारों को तोड़कर उस आदमी का निर्माण, जो सांप्रदायिकता की छूट से हर कीमत पर मुक्त हो। दोनों चिंतक एक-दूसरे के विरोधी दिखाई देने पर भी कहीं गहरे में एक हैं, अभिन्न हैं। स्वाधीनता, समता और प्रेम की स्थापना के लिए आज भी दोनों के विचार हमारे लिए मूल्यवान् हैं। आज के राजनीतिज्ञों-धार्मिकों को इन दोनों विचारकों की शरण में चले जाना चाहिए। इसी में इस देश की रक्षा का भाव है—आत्मसम्मान, मानवीय गरिमा का महामंत्र है।

सा अ

(स्व. श्री कृष्णदत्त पालीवाल की पुस्तक 'हमारे समय में गांधी' से साभार)

महात्मा गांधी सदैव प्रासंगिक रहेंगे

• प्रभात झा

महात्मा गांधी सिर्फ किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। वे आजादी की लड़ाई के अहम सूत्रधार थे। वे सत्य व अहिंसा के प्रतीक थे। वे अपने कर्तृत्व से महात्मा बने और उन्होंने सिद्ध किया कि सत्य व अहिंसा के मार्ग पर चलकर बड़ी-से-बड़ी लड़ाई जीती जा सकती है। उन्होंने अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आजादी दिलाई। भारत माता के पैरों में पड़ी गुलामी की बेड़ी जितने लोगों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से तोड़ने की कोशिश की, महात्मा गांधी ने उनमें अग्रिम पंक्ति में थे।

वे लोग महान् हैं, जिन्होंने इस धरा पर गांधी को देखा-सुना। हम तो आजादी के बाद पैदा होनेवाले लोगों में से हैं। अत: हमें गांधीजी को न देखने और न सुनने का मौका मिला। लेकिन हमारे पुरखों ने बापू के बारे में जो कहा, देश के अनेक विचारकों ने बापू के बारे में जो लिखा, सच में महात्मा गांधी महान् थे, और सच ही उन्हें राष्ट्रपिता कहा गया। महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने सच ही कहा कि आनेवाली पीढ़ियाँ शायद ही विश्वास करेंगी कि इस धरा पर गांधीजी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी चलता-फिरता था।

आज सशरीर गांधीजी उपस्थित नहीं हैं, लेकिन भारत और संसार के कई देशों में गांधीजी को प्रतिदिन किसी-न-किसी प्रसंग में सम्मान के साथ याद किया जाता है। गांधीजी ने अपने जीवन में कभी कोई वाद नहीं चलाया। कोई उपदेश नहीं दिया। पूछने पर कहते थे, 'मेरा जीवन ही मेरा उपदेश है, संदेश है।' उन्होंने अपनी आत्मकथा को आत्मकथा के रूप में नहीं लिखा, उन्होंने लिखा, 'सत्य के प्रयोग' शीर्षक से। गांधीजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंद स्वराज' को बोले, कहे और छपे सौ से ज्यादा वर्ष हो गए, किंतु भारत ही नहीं, संपूर्ण मानवता के संदर्भ में गांधीजी जो भी बोले, वह आज भी प्रासंगिक है।

मनुष्य मशीन का गुलाम रहे या मशीन मनुष्य की गुलाम रहे, आज अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। विज्ञान अधिक प्रासंगिक होता जा रहा है। गांधीजी की ग्रामदृष्टि आज अधिक प्रासंगिक और उज्ज्वल प्रतीत होती है। आज भी भारत ग्रामों का देश है। शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण आज भी हमारे चिंता का विषय है। गरीबी से हम हर क्षण अपनी-



दूरदर्शी राजनेता एवं लेखक। 'शिल्पी' (तीन खंड), 'अजात शत्रु दीनदयालजी', 'जन गण मन' (तीन खंड), 'समर्थ भारत', 'गौरवशाली भारत' कृतियों के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं एवं स्मारिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति सांसद राज्यसभा एवं राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भाजपा।

अपनी शैली में संघर्ष कर रहे हैं। अपनी प्रगतिपूर्ण संवृद्धि और समानता को हम कितना पचा पा रहे हैं, इस पर सारी दुनिया की नजर है।

आज से १०० वर्ष पूर्व गांधीजी का मन और मनोबल कैसा था, वैचारिक अनुमान हम लगा सकते हैं। आखिर कौन सी आत्मशक्ति गांधीजी में थी कि वक्तृत्व शैली नहीं होने के बावजूद लोग गांधीजी को तन्मयता और तल्लीनता के साथ सुनते थे।

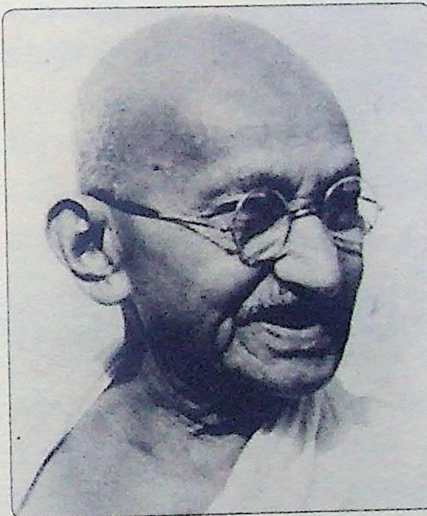
गांधीजी के खून में ही था सत्य के प्रति स्वाभाविक आग्रह। गांधीजी के सत्याग्रह की सार्थकता और प्रासंगिकता आज भी महत्त्वपूर्ण है। गांधीजी आत्मबल के पक्षधर थे। गांधीजी के दरशाए गए सामाजिक पाप वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक हैं : पहला, तत्त्वहीन राजनीति। दूसरा, श्रमविहीन संपत्ति। तीसरा, विवेकहीन विलास। चौथा, मनुष्यत्व विहीन विज्ञान। पाँचवाँ, नीतिविहीन व्यापार। छठा, त्यागविहीन पूजा। सातवाँ, चरित्रविहीन शिक्षा।

गांधीजी सदैव प्रकृति के सान्निध्य में रहना चाहते थे। वे प्रकृति प्रदत्त तत्त्वों को मिटाने में नहीं बल्कि उन्हें जीवित रखने में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि प्रकृति के सान्निध्य में रहने से शांति रहती है। प्रकृतिविहीन जीवन चित्त को अशांति की ओर ले जाता है। प्रकृति के विरुद्ध आज जो बाजारवाद खड़ा हुआ है, उसके बढ़ते प्रभाव को गांधीजी के विचारों से दबाना होगा।

गांधीजी कल भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं और आनेवाले वर्षों में ही नहीं, सदैव प्रासंगिक रहेंगे। जब व्यक्ति अपने और अपनों को छोड़कर समाज व राष्ट्र के लिए जीता है तो भारत का जनमानस ऐसे व्यक्ति के समर्पण को हाथो-हाथ उठा लेता है। गांधीजी भारत के गौरव

हैं। वे भारतीयता के पर्याय हैं। वे गंगा की तरह शुद्ध, यमुना की तरह पवित्र और सरस्वती की तरह विद्वत्ता के प्रतीक थे। वे अमीरों के घर में भी पूजे गए। गरीबों ने तो उनकी पूजा की ही। वे सनातनी हिंदू थे और सनातन हिंदू धर्म में उनका विश्वास था। लेकिन कभी उन्होंने अपने हिंदू होने का ऐसा ढिंढोरा नहीं पीटा, जिससे अन्य धर्म के जनमानस को चोट पहुँचे। वे हिंदू थे, इसलिए अहिंसा प्रेमी थे। आध्यात्मिकता उनके रोम-रोम में बसी हुई थी। तभी तो वे कहा करते थे, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे⋯।'

डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भारत के गुजरात प्रांत की धरा पर जन्म लेनेवाले व्यक्ति की याद आज तक बनी हुई है। यही उनके कर्तृत्व की अद्वितीय पहचान है। आज जब कुछ ही क्षण में दुनिया से जानेवाले अपने माता-पिता को लोग भूल जाते हैं, ऐसे युग में महात्मा गांधी को सदैव याद रखना और याद करना सामान्य घटना नहीं है। मनुष्य तो सभी होते हैं, पर उनमें महान् बहुत कम लोग होते हैं। महात्मा गांधी महान् थे। अगर वे महान् न होते तो जिस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर उनकी हत्या का गलत आरोप लगाया गया, उस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने प्रात: स्मरण में महानतम लोगों में गांधीजी का नाम जोड़ा है। यह घटना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिंदुत्व की उदारता को स्वत: दरशाता है।



दुबले-पतले कायावाले गांधीजी ने आजादी के पहले गुलामी के दिनों में लोगों में आजादी के लिए जो जुनून पैदा किया, सामान्य बात नहीं थी। पूरे भारत को आजादी की लड़ाई में जोड़ देना स्वयं ही उनके महान् व्यक्तित्व को दरशाता है। उन्होंने भारत को अपने पैरों से नापने की कोशिश की। आजादी के आंदोलन से लोगों में अपना जबरदस्त स्थान बनाया। सूट-बूट और ठाठ-बाट में रहनेवाले अंग्रेजों को भगाने के लिए लँगोटी पहनकर महात्मा गांधीजी ने जो साधना की, उस साधना की पूजा और आराधना आज भी प्रत्येक भारतीय करता है।

माँ भारती के लिए दधीची की तरह अपनी हड्डी को हर क्षण गलाने में गांधीजी लगे रहे। उनके सात सिद्धांत (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, असत, अपरिग्रह, प्रार्थना, स्वास्थ्य) के बारे में प्रत्येक नागरिक को पूर्ण अध्ययन करना चाहिए। गांधीजी ने शब्दाचरण को महत्त्व दिया। उन्होंने सातों सिद्धांतों को जिया। उनमें यह कहने का ईश्वर ने सामर्थ्य दिया। साध्य स्पष्ट हो और साधना पवित्र हो तो ईश्वर आपकी आराधना जरूर सुनता है। गांधीजी का साध्य स्पष्ट और साधना पवित्र था। देश का प्रत्येक नागरिक आजादी की लड़ाई में तन-मन-धन से उनके साथ था। अभिमान शब्द का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था। वे भारतमाता के स्वाभिमान के लिए जिए। जान भी दी तो भारत माता के लिए, 'हे राम' कहते हुए।

गांधीजी ने भारत के जनमानस पर पी-एच.डी. की थी। यही कारण था कि वे हर कार्यक्रम में जनमानस तक पहुँचने का तरीका खोज ही लेते थे। जो गांधी के बारे में कहते हैं कि वे प्रचार उन्मुखी नहीं थे, वे शायद नहीं जानते कि उनसे बड़ा संप्रेषण शक्तिवाला व्यक्ति कोई नहीं हुआ। आम आदमी सामान्य तौर पर सामान्य चश्मा पहनता है। पर गांधीजी डोरीवाला चश्मा पहनते थे। उस चश्मे में उनकी सादगी का संदेश था। आम आदमी कलाई में घड़ी पहनता है। वे कमर में लटकाने वाली घड़ी पहनते थे। वे इस बात का संदेश देते थे कि सभी में सेंस ऑफ टाइम्स होना चाहिए, समय का महत्त्व होना चाहिए। उन्होंने नमक आंदोलन छेड़ा। भारत का कोई ऐसा घर नहीं, जिसमें नमक न हो। यह हर गरीब-अमीर की जरूरत की चीज है।

गांधीजी ने 'हरिजन' नामक पत्रिका आरंभ की। उसमें भी बड़ा संदेश था। पत्रिका सभी पढ़ते थे, लेकिन उस समय के दलित में संदेश गया कि उनके नाम पर पत्रिका निकल रही है। वे अपने प्रवास के दौरान किसी-न-किसी हरिजन परिवार में भोजन करते थे। उनका यह संदेश सभी हरिजन परिवारों में जाता था और सभी के मन में भाव पैदा होता था कि गांधीजी का हरिजनों के प्रति स्नेह है। गांधीजी ने अपने यथार्थ में जीने की कोशिश की। नाटकीयता से दूर रहे। उन्होंने आचरण से शब्दों को श्रद्धांजलि दी, न की शब्दों से आचरण को।

महात्मा गांधी द्वारा लिखी गई 'मेरे सपनों का भारत' एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। उसमें बापू ने अनेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए है। उन्होंने स्वराज, समाजवाद, राष्ट्रवाद, साम्यवाद, लोकतंत्र, बेरोजगारी, गरीबी, अहिंसा, किसान, पंचायती राज, स्वदेशी, स्वच्छता, शिक्षा, स्त्री शिक्षा, राष्ट्रभाषा, भारत पाकिस्तान व कश्मीर, धर्म-परिवर्तन, छात्रों को यौन शिक्षा, गोरक्षा, सत्याग्रह तथा अन्य विषय पर इस पुस्तक में अपने विचार प्रकट किए हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। नई पीढ़ी को महात्मा गांधी के विचारों व दर्शन के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी देने की आवश्यकता है। इस पुस्तक में भारत व विश्व शांति, भारतीय लोकतंत्र, भीड़तंत्र, किसानों की स्थिति, बेरोजगारी, गरीबी-दरिद्रनारायण पर उनके विचार प्रस्तुत हैं। उन विचारों को आज गाँव-गाँव तक पहुँचाने की आवश्यकता है। हमें यह हमेशा ध्यान रखना होगा कि भारत की समस्याओं का निदान भारत में भारतीय पद्धतियों से होगा। यदि हमें आर्थिक रूप से मजबूत होना है तो स्वदेशी आर्थिक नीतियों को अंगीकार करना होगा।

गांधीजी ने कांग्रेस को कभी राजनीतिक नहीं बनाया। उन्होंने कांग्रेस को केवल आजादी की लड़ाई का माध्यम माना। वे अकसर

कहा करते थे कि कांग्रेस आंदोलन है। लेकिन दुर्भाग्य रहा कि आजादी के बाद कांग्रेस के लोगों ने जिद ठान ली। कांग्रेस का कार्य समाप्त हो गया, गांधीजी के इस सुझाव को नहीं माना गया। उस समय के हुक्मरानों ने गांधीजी की बात नहीं मानी। कांग्रेस को राजनीतिक दल का रूप दे दिया गया, गांधीजी कभी ऐसे नहीं चाहते थे। राजनीतिक लाभ के लिए कुछ लोगों ने राजनीतिक स्वरूप दे दिया। दुर्भाग्य यह रहा कि गांधीजी नहीं रहे। कांग्रेस रही, लेकिन आंदोलन से दूर।

गांधीजी के सिद्धांतों पर आज एक नहीं अनेक लोग शोध कर रहे हैं। उनके लेख, व्याख्यान, उनकी एक-एक चीज समझने के लिए उपलब्ध है। दिक्कत यह है कि कांग्रेस के लोगों ने गांधीजी को आर.बी.आई. के नोट पर रख दिया है, घर में फोटो तक सीमित कर दिया है। लगभग सभी कांग्रेसी गांधीजी को भूल गए हैं।

बधाई के पात्र हैं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी, जिन्होंने गांधीजी के मूलमंत्र 'स्वच्छता' को संपूर्ण सफाई के लिए आजादी की लड़ाई की तरह 'स्वच्छता आंदोलन' चलाने का प्रयास किया है। यह सौभाग्य है कि गांधीजी भी गुजरात के और नरेंद्र मोदीजी भी गुजरात के। नरेंद्र मोदीजी ने स्वच्छता के आंदोलन को बढ़ाने का जो अप्रतिम प्रयास किया है, वह अद्‌भुत है।

महात्मा गांधी की १५०वीं जयंती पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनकी सरकार द्वारा किए जा रहे कार्य देश की आनेवाली पीढ़ी के लिए महात्मा गांधी ही नहीं बल्कि अपने लिए एक नाम पैदा किया है। गांधीजी की १५०वीं जयंती पर आजादी की लड़ाई, ग्राम स्वराज का सपना जैसे मुद्दों पर देशभर में फिर से जन-जागरण पैदा हुआ है। सच में नरेंद्र मोदीजी के सार्थक प्रयास से, जो अमली जामा पहनाया गया है, लगता है महात्मा गांधी युग-युग तक श्रद्धा के केंद्र बने रहेंगे। उनके मार्ग पर वर्तमान और आनेवाली पीढ़ी सदैव चलने का प्रयास करेंगी। अगर हम गांधी को नहीं भूले तो देश से गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, नक्सलवाद जहाँ समाप्त होंगे, वहीं राष्ट्र की जड़ें और गहरी होंगी तथा भारत पूर्व की तरह विश्व गुरु बनेगा।

सा अ

२० कॉपरनिकस मार्ग
नई दिल्ली
prabhatjhabjp@gmail.com

स्वच्छता का प्रतीक

अंग्रेजों ने भारत को दासता की बेड़ियों में जकड़ लिया था। समाज में, लोगों में छुआछूत, दलित, अस्पृश्यता और आपसी वैमनस्य की भावना अपनी गहरी जड़ें जमा चुकी थी। गांधीजी को यह सब देखकर बहुत दुःख होता था। वे कहते थे कि मनुष्यों में छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच कुछ नहीं होना चाहिए। सभी मानवों का समान स्तर होना चाहिए और सभी को देश-सेवा के लिए मिलकर आगे आना चाहिए। लेकिन दलित लोगों से सवर्ण लोग घृणा करते थे। यह देखकर गांधीजी ने लोगों के मन से छुआछूत की भावना मिटाने के साथ-साथ उन्हें स्वच्छता का संदेश देने के लिए स्वयं कमर कसी और पदयात्रा करने लगे। उड़ीसा में पदयात्रा के दौरान सभी लोग आगे बढ़ने के लिए योजना व विचार-विमर्श करने लगे। कुछ देर बाद एक कार्यकर्ता कांग्रेस का झंडा लेकर आगे बढ़ने लगा। उसे झंडे को लेकर आगे बढ़ते देख सहसा गांधीजी के दिमाग में एक विचार आया और वे उससे बोले, 'भाई, यह हरिजन यात्रा है। ऐसे में इसमें हमें यह झंडा न लेकर कोई दूसरा झंडा लेकर चलना चाहिए।' उनकी बात सुनकर सभी वहीं रुक गए। हरिजन यात्रा के दौरान एन.आर. मलकानी एवं वियोगी हरि भी उनके साथ थे। गांधीजी की बात सुनकर वे कुछ बोलना ही चाह रहे थे कि सहसा गांधीजी उन दोनों की ओर देखकर बोले, 'तुम दोनों अपने हाथ में एक-एक झाड़ू ले लो। यह हमारी स्वच्छता की प्रतीक होगी और इसे देखकर लोग समझ जाएँगे कि हरिजन अछूत या अस्पृश्य नहीं हैं, बल्कि वे भी भारत के अन्य नागरिकों की भाँति ही एक समान हैं। हमारे आंदोलन का मकसद भी लोगों के हृदयों से बाहर व भीतर दोनों जगह की गंदगी को साफ करना है। झाड़ू का प्रतीक इस आंदोलन का सबसे सटीक चिह्न है।' गांधीजी की बात मानकर एन.आर. मलकानी एवं वियोगी हरि दोनों ने एक-एक झाड़ू अपने हाथ में ली और आगे बढ़ चले।



सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गाय और गांधीजी का दृष्टिकोण

• लक्ष्मीदास



खादी ग्रामोद्योग के पूर्व अध्यक्ष, वर्तमान में हरिजन सेवक संघ के उपाध्यक्ष। 'पंचायती राज बुनियादी शासकीय इकाई', 'गांधी एवं सामाजिक आंदोलन' पुस्तकें प्रकाशित। 'चरखा एंड चिप', 'सस्टेनिंग रूरल इंडस्ट्री', 'पंचायती राज संस्थाए' पुस्तकों का संपादन। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में सतत लेखन।

कई देशों में स्वतंत्रता के लिए आंदोलन हुए। भारत में भी स्वतंत्रता के लिए बड़ा संघर्ष हुआ। लेकिन उस संघर्ष की विशेषता यह थी कि आजादी की लड़ाई के दौरान गांधीजी ने आजादी के बाद हमारे देश की स्वतंत्रता को ग्राम स्वराज्य में बदलने के लिए क्या-क्या प्रोग्राम चलाए जाएँगे, इसका न केवल खाका बना दिया गया था, बल्कि स्वतंत्रता सेनानियों ने किसी-न-किसी रूप में उस खाके पर कार्य किया था, उसकी साधना की थी। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही १८ रचनात्मक कार्यक्रमों की कल्पना की थी। इन रचनात्मक कार्यक्रमों में कृषि-गो-सेवा भी एक कार्यक्रम था।

कृषि गो-सेवा के कई प्रयोग, कई अनुसंधान गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता सेनानियों ने किए। भारत में गाय का बहुत महत्त्व है। धार्मिक दृष्टि से तो गाय का महत्त्व है ही, भावनात्मक दृष्टि से भी गाय का महत्त्व है। हिंदू का यह विश्वास है कि गाय की सेवा, गाय की पूजा करने से, गाय के चरण वंदन से या गाय को रोटी देने से मृत्यु उपरांत भगवान् के दरबार तक पहुँचने के लिए जो वैतरणी पार करनी पड़ती है, वह गाय की पूँछ पकड़कर पार की जा सकती है। यह एक विश्वास है। सदियों से चली आ रही मान्यता है। इसको सही या गलत प्रमाणित करना बहुत कठिन है। क्योंकि प्रमाण सहित तो वही कह सकता है, जो स्वर्ग से वापस आया हो। लेकिन स्वर्ग से तो कोई वापस आता नहीं है। यदि पुनर्जन्म के सिद्धांत को मानते हुए, वापस आता भी है तो पूर्व जन्म का उसे कुछ याद रहता नहीं है, इसलिए मरने के बाद क्या होता है, यह प्रमाण सहित कहना कठिन है। लेकिन यह मान्यता है, विश्वास है कि वैतरणी पार करने के लिए गाय का सहारा आवश्यक है। इसलिए गाय की पूजा होती है। गाय के साथ हमारा धार्मिक संबंध है, गाय के साथ हमारा भावनात्मक संबंध है। लेकिन एक विषय, गाय के बारे में तथ्य आधारित प्रमाणित है कि गाय एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है मानव जीवन का। इतने महत्त्वपूर्ण अंग की रक्षा मात्र धार्मिक सोच या भावनात्मक कारणों से संभव नहीं है। लेकिन यह आवश्यक है कि गाय की रक्षा होनी चाहिए। गांधीजी ने गाय की आवश्यकता और गाय के महत्त्व को समझा, इसलिए उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में गाय को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और कृषि गो-सेवा के नाम से एक कार्यक्रम बनाया। इस कार्यक्रम का शीर्षक 'कृषि गो-सेवा' रखकर गांधीजी ने रेखांकित किया कि गाय की रक्षा खेती के साथ जोड़कर ही हो सकती है। जो लोग गाँव में रहते हैं और किसानी करते हैं, वे जानते हैं कि गाय खेत के बिना अधूरी है और गाय के बिना खेत अधूरा है। गांधीजी ने कृषि और गो-सेवा को जोड़कर गाय की रक्षा, गाय की सेवा, गो-संवर्धन का एक पुराना दृष्टिकोण नई सोच, नए दृष्टिकोण के साथ स्वतंत्रता सेनानियों और उनके माध्यम से, देश के भावी स्वास्थ्य और विकास के लिए एक स्वस्थ्य रूप में देश के भावी नीति-निर्धारकों और योजनाकारों के सामने रखा। गांधीजी अच्छी तरह जानते थे कि मात्र धार्मिक या भावनात्मक लगाव से गाय की पूजा तो हो सकती है, लेकिन गाय की सेवा, गो-संवर्धन नहीं हो सकता। उसके लिए गाय को व्यापक आधार चाहिए। वह व्यापक आधार खेती ही हो सकता है।

यह देश गाँवों का देश है। इसलिए देश के संदर्भ में गांधीजी ने गाँव के महत्त्व को अच्छी तरह समझ लिया था। इसीलिए ग्राम स्वराज की बात करते थे। गाँव को आत्मनिर्भर बनाने की बात करते थे। गाँव आत्मनिर्भर होगा तो देश आत्मनिर्भर होगा। गाँव मजबूत होगा तो देश मजबूत होगा। ७५ से ८० प्रतिशत जनता गाँव में रहती है। सभी गाँव खेती पर निर्भर करते हैं। खेती हर मजदूर, छोटे और मझोले किसानों का जीवनयापन मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर करता है। इस कृषि के साथ, गाय को जोड़कर यदि अर्थनीति बनाई जाए तो वह ग्रामीण अर्थनीति होगी। स्थायी भी होगी और विकासशील भी। ऐसा लिखना अंतर्विरोध जैसा भी लग सकता है। स्थायी भी और विकासशील भी। लेकिन गांधीजी की सोच के अनुसार यही सही है। ऐसी अर्थनीति, जिसे कोई खतरा न हो, जो छोटे-मोटे झंझावातों से विचलित न हो, जो अंतरराष्ट्रीय शोषण से स्वयं को बचा सके, वही स्थायी है, टिकाऊ है। ऐसी टिकाऊ

अर्थव्यवस्था में विकास की कड़ियाँ जुड़ती चली जाएँ तो यह अर्थनीति विकासशील है। इसलिए स्थिर और विकासशील में कोई अंतर्विरोध नहीं, बल्कि ये एक-दूसरे के पूरक हैं।

गांधीजी की समझ में यह स्पष्टत: आ गया था कि गाँव का इतना बड़ा आधार, कृषि की इतनी बड़ी संभावनाएँ जब गाय के साथ जुड़ जाएँगी तो गाय को बचाने के लिए कोई विशेष व्यवस्था नहीं करनी पड़ेगी। इसलिए गाय को मात्र धार्मिक और भावनात्मक स्थितियों से निकालकर अर्थ जैसे व्यापक आधार के साथ जोड़ना गाय के प्रति गांधीजी की मानवता के लिए एक विशेष देन है।

कृषि, गाय और ग्रामोद्योग को जोड़ दिया जाए तो यह एक संपूर्ण, स्वस्थ और विकासशील आर्थिक मॉडल है। जिस गाँव में खेती, गाँव तथा ग्रामोद्योग का आपसी आधार बनाकर यदि प्रयास किए जाएँ तो गाँव से शहरों की ओर पलायन समाप्त नहीं तो बहुत कम हो सकता है। आज स्थिति ऐसी है कि गाँव का नवयुवक नौकरी की तलाश में शहरों की ओर भाग रहा है। इसलिए गाँव खाली हो रहे हैं और गाँव की आबादी शहरों में पहुँच रही है तो शहरों पर वनज रहा है। इसलिए शहर उस बढ़ते हुए वनज से परेशान हैं। इसमें संतुलन बनाए रखने के लिए गाँव में रोजगार सृजन आवश्यक है।

जब हम रोजगार की बात करते हैं तो आज के दिन में उसका सीधा अर्थ लिया जाता है कि सरकारी नौकरियाँ या बड़ी-बड़ी कंपनियों में बड़ी-बड़ी नौकरियाँ, जो बिल्कुल भी संभव नहीं है। न तो सरकार सबको नौकरी दे पाएगी और निजी कंपनियाँ तो उतनी ही भरती करेंगी जितनी उन्हें नितांत आवश्यकता है। तो फिर नौकरियों की संभावना कहाँ है। अंतत: स्वरोजगार की ओर ही जाना है। बेरोजगारी का वही स्थायी हल है। स्वरोजगार के लिए गाय, खेती और ग्रामोद्योगों का परस्परावलंबन यही एक मात्र उपाय है। गांधीजी ने इन तीनों कार्यक्रमों को अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। आजादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते, आजादी के बाद देश के विकास का माध्यम क्या होगा, उसका एक अच्छा चित्र गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के रूप में देश के सामने रखा। इस कार्यक्रम में गाय के महत्त्व को गांधीजी ने रेखांकित किया है।

गांधीजी जानते थे कि गाय जो हमारे लिए वरदान है, मानवता के लिए वरदान है, उसे यदि धार्मिक या भावनात्मक विषय तक सीमित रखा तो गाय की पूजा होगी, लेकिन गाय की सेवा नहीं होगी। ऐसे हजारों-लाखों लोग हैं, जो गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार करना चाहते हैं। परंतु उनमें ऐसे कितने लोग हैं, जो गाय को पालने की जिम्मेदारी लेना चाहते हैं या पालते हैं। शायद बहुत ही कम, शायद नाममात्र। मेरे मोहल्ले में एक गाय बँधी रहती थी। उस गाय को कभी दो-चार किलो घास कोई भक्त डाल देता था। वह भी तब, जब किसी तांत्रिक ने उसे बताया हो कि यदि आप गाय को हरी घास खिलाओगे तो अमुक बिगड़ा काम बन जाएगा। इसी आशा में वह गाय को कहीं से ढूँढ़कर घास लाता था और खिलाता था। घास ढूँढ़ना मुश्किल काम था लेकिन ऐसा मुश्किल काम कोई भी अवश्य करेगा। परंतु इतना मुश्किल करने के आधार पर क्या गाय पल सकती है। गाय पालने के लिए सातत्य चाहिए। धूप हो, वर्षा हो, सर्दी हो, हिमपात हो रहा है, गाय को तो खिलाना ही पड़ेगा। पानी पिलाना पड़ेगा, गोबर उठाना पड़ेगा। साफ-सफाई करनी पड़ेगी। यह सब कार्य किसी भी स्थिति में करना पड़ेगा और सातत्यपूर्वक करना पड़ेगा। तभी गाय पलेगी। तभी वह दूध देगी। इतनी मेहनत से पाली जानेवाली गाय का उपयोग यदि मरणोपरांत तक या धार्मिक भावनात्मक विषय तक सीमित रहा तो गाय पालन असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। इसलिए गांधीजी ने गाय को धार्मिक तथा भावनात्मक विषय के अतिरिक्त आर्थिक विकास के साथ जोड़ा।

गाय का अर्थ लाभ आत्मनिर्भर है। यदि कोई छोटी या बड़ी इंडस्ट्री लगाएँगे तो उसके लिए श्रम भी बाहर से आएगा, कच्चा माल भी अन्यत्र से आएगा और बिक्री भी वहीं अन्यत्र करनी पड़ेगी, इसकी पूरी व्यवस्था जुटानी पड़ेगी। लेकिन गाय क्या है? गाय को खेती के साथ जोड़कर देखें तो गाय पालक किसान को, गाय पालने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना। जिस खेत में गाय बाँधी गई है, उसी खेत से गाय को घास मिल जाती है, उसी खेत में गाय का गोबर खाद का काम करता है, किसान और किसान का परिवार श्रम के रूप में उपलब्ध है। हमारे बुजुर्ग थे, वे कहा करते थे कि गाय के अंदर ऐसी मशीन है, जो घास खाती है और अमृत जैसा दूध पैदा करती है। ऐसा उद्योग, ऐसी फैक्टरी जो हर तरह से आत्मनिर्भर। मैं स्वयं एक गाँव का रहनेवाला हूँ। मेरा परिवार एक छोटी जोतवाला किसान है। उसके साथ गाय भी पालता है। हम यदि हिसाब लगाएँ तो गाय के दूध का लागत खर्च सौ-सवा सौ रुपए किलो आता है और तीस रुपए किलो बिकता है। फिर भी हमारा परिवार खुश है और मन से गाय पालन करता है। यह गाय ऐसा कौन सा धंधा है और यह अर्थशास्त्र है कि लागत मूल्य सौ-सवा सौ रुपया और विक्रय मूल्य २५ से ३० रुपए। फिर भी हम गाय पालते हैं। अर्थ लाभ करते हैं। घर में दूध का इस्तेमाल करते हैं और जो दूध बेचते हैं, उससे परिवार का पोषण करते हैं। सौ रुपए लागत मूल्य और २५ रुपए बिक्री मूल्य के बाद भी धन लाभ। यह अर्थशास्त्र हिंदोस्तान के अर्थ विशेषज्ञों को समझना पड़ेगा, तभी इस देश की आर्थिक नीतियाँ देशहित में बनेंगी।

किसान, उसकी पत्नी और स्कूल जानेवाले बच्चे सुबह उठते हैं। किसान खेत में जाने से पहले, बच्चे स्कूल जाने से पहले और गृहणी रसोई में जाने से पहले घर की गोशाला का काम पूरा करते हैं। यह जो सुबह से गाय की सेवा शुरू होती है, वह शाम की गौधूलि तक सातत्यपूर्वक जारी रहती है, बल्कि उसके बाद भी, सोने से पहले गाय को रात भर का चारा डालकर किसान और उसका परिवार खाना खाता है। इस सारे श्रम को जोड़ा जाए। खेत से मिलनेवाले चारे की कीमत जोड़ी जाए, इस तरह गाय पर आनेवाले सारे खर्च को जोड़ा जाए तो दूध का लागत मूल्य सौ-सवा सौ रुपए से कम नहीं बैठता। जब इसी दूध को किसान गाँव के हलवाई की दुकान पर लेकर जाता है तो वह उसे २५ या तीस रुपए से अधिक नहीं देता। किसानों के चौधरी, किसानों के नाम पर

नेतागिरी करनेवाले भले ही इससे खुश न हों, लेकिन किसान खुश है। किसान के इस अर्थशास्त्र को गांधीजी ने समझा, इसलिए उन्होंने कृषि गो-सेवा की बात की। गाय को कृषि के साथ जोड़ा। गाय के ग्रामीण अर्थशास्त्र को जोड़ा। गांधीजी ने गाय को संपूर्णता में देखा। इसी में गांधी को गाय का भविष्य नजर आया। इसी के लिए उन्होंने प्रयास किया। योजनाएँ बनाईं और गोपालन, गो-सेवा, गोसंवर्धन की एक वृहद योजना स्वत: बनी, जिस कारण, गाय गाँव के, ग्रामीण अर्थशास्त्र के केंद्रबिंदु में आ गई।

इतना समझने के बाद, गाय जैसे इतने महत्त्वपूर्ण विषय को कोई क्यों छोड़ेगा? ऐसी गाय हिंदू को भी चाहिए, मुसलमान को भी चाहिए। सिक्ख, ईसाई, पारसी को भी चाहिए। स्वर्ण-अवर्ण को भी चाहिए। पुरुष-स्त्री को भी चाहिए। बूढ़े और बच्चों को भी चाहिए। यह गाय सब को चाहिए। सबको चाहिए तो सभी उसकी सेवा में लगेंगे। सब उसे पालेंगे। जब गाय को सब पालेंगे तो गाय की आवश्यकता बढ़ेगी। गाय का उपयोग बढ़ेगा। व्यापक स्तर पर गोपालन होगा। गोपालन के लिए गो-सेवा के लिए, गोवंश संवर्धन के लिए गांधीजी की यह महान् सोच और महान् सेवा है।



गाय का दूध अमृत है। यह हम सब जानते हैं। देशी अमृत है। जिसे कुछ नहीं पचता, उसे देशी गाय का दूध पचता है। ऐसे अमृत समान दूध के लिए गाय जरूरी है, गोपालन जरूरी है। इसलिए जब तक गाय दूध देती है, तब तक गोपालन गाय पालता है। उसकी सेवा करता है। जब गाय दूध देना बंद कर देती है तो गाय के नए दूध की भी, किसान प्रतीक्षा करता है, लेकिन जब यह गाय दूध देने में असमर्थ हो जाती है तो गोपालन के लिए भार बन जाती है। तो क्या किया जाए?

किसान ने खेती और गाय को जोड़ा। गांधीजी ने खेती और गाय को जोड़ा। खेती और गाय का आपस में चोली-दामन का संबंध है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। खेत में चारा पैदा होगा तो गाय को चारा मिलेगा। गाय गोबर देगी तो खेत को खुराक मिलेगी। गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में कृषि और गो-सेवा को जोड़कर कृषि गो-सेवा ऐसा विषय बताकर, खेती और गाय के परस्परावलंबन को रेखांकित किया। वैसी योजनाएँ बनाईं। वैसे आविष्कार किए। १९४५ में जब कस्तूरबाजी का आगा खाँ महल में नजरबंदी के दौरान देहावसान हुआ तो उसके बाद कस्तूरबाजी की याद में एक स्मारक ट्रस्ट बनाने का निर्णय किया। गांधीजी तो अपनी सोच में सदैव स्पष्ट थे। जब सहयोगियों ने, साथियों ने कस्तूरबा के नाम स्मारक ट्रस्ट बनाया तो गांधीजी ने इस ट्रस्ट को कृषि गो-सेवा के साथ जोड़ दिया। इंदौर (मध्य प्रदेश) में गांधीजी को इस कार्य के लिए लगभग पाँच सौ एकड़ जमीन मिली, जिसे गांधीजी ने कृषि, गो-सेवा के विकास, विस्तार और संवर्धन के लिए समर्पित किया। वहाँ अनेक अभिनव प्रयोग हुए। आज भी हो रहे हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि आज की आधुनिकता की चकाचौंध में, आधुनिक आविष्कारों की आधुनिकता में, पढ़े-लिखे विशेषज्ञों के 'आविष्कारों' के कारण गांधी और गांधीजी के अनुयायियों के वे प्रयोग नेपथ्य में चले गए हैं या जा रहे हैं।

किसान को खेती के लिए खाद चाहिए तो आज का पढ़ा-लिखा विशेषज्ञ कहता है कि रासायनिक खाद का उपयोग करो। रासायनिक खाद की खोज हुई। फिर रासायनिक खाद का किसानों को उपयोग करना सिखाया गया। लालच पैदा किया गया। आकर्षण पैदा किया गया। शुरू-शुरू में रासायनिक खादों से खेती की पैदावार में वृद्धि भी हुई। क्योंकि भूमि स्वस्थ थी। गोबर और पत्तों आदि की खाद से भूमि की उर्वराशक्ति बहुत अच्छी थी। उसमें जब रासायनिक खाद का मिश्रण हुआ तो पैदावार में अधिक वृद्धि हुई। किसान को भी लगने लगा कि यह रासायनिक खाद वरदान है। हालाँकि उस समय भी यद्यपि अनपढ़ या कम पढ़े लिखे किसान जोर देते थे कि यह रासायनिक खाद खेतों को हानि पहुँचाएगी और कालांतर में खेतों की उर्वरता समाप्त हो जाएगी या कम हो जाएगी। मेरे घर में, मेरे पिताजी खेत में रासायनिक खाद का इस्तेमाल करना नहीं चाहते थे, लेकिन मैं तो 'पढ़ा-लिखा' था, 'शिक्षित' था। मेरा आग्रह था कि खेत में रासायनिक खाद अवश्य डालनी चाहिए, जिससे हम अपनी पैदावार बढ़ा सकें। मेरे घर में रासायनिक खाद और जर्सी गाय का प्रवेश मेरे कारण हुआ। मेरे जैसे हजारों-लाखों तथाकथित शिक्षित बेटों ने 'अनपढ़ या पढ़े-लिखे' माँ-बाप को रासायनिक खाद इस्तेमाल करने के लिए मजबूर कर दिया। अच्छी पैदावार होने लगी तो सबको लगने लगा कि यह रासायनिक खाद तो रामबाण है। देश के तथाकथित विशेषज्ञों को पता भी नहीं लगा कि कब यह धरती रासायनिक खाद की गुलाम बन गई। अब तो स्थिति ऐसी है कि यदि रासायनिक खाद नहीं डालते हैं तो जितना अन्न बिना खाद डाले होता था, उतना भी उत्पादन नहीं होता। धरती पूरे तौर पर रासायनिक खाद पर निर्भर होती गई है।

खेत को खाद चाहिए थी तो गोबर की आवश्यकता थी। गोबर के लिए गाय चाहिए, लेकिन अब गोबर नहीं चाहिए तो गाय की आवश्यकता भी नहीं। गाय का काम रासायनिक खाद कर रही है। खेत के लिए बैल चाहिए। बैल तो गाय से ही मिलेंगे। लेकिन जब यह खेती 'विशेषज्ञों' के हाथ में आई तो उन्होंने खोज की, आविष्कार किया, अनुसंधान किया। विशेषज्ञों ने ट्रैक्टर किसान के सामने लाकर खड़ा कर दिया। ट्रैक्टर के सामने बैल की क्या औकात। न चारा चाहिए, न सेवा चाहिए, न बैल पालने का श्रम। ट्रैक्टर में डीजल डालो, ट्रैक्टर से जुताई शुरू। सब आसान भी और ट्रैक्टर वाले की शान भी। बैल की। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व के आवश्यकता समाप्त तो गाय की भी आवश्यकता नहीं। दूध एक महत्त्वपूर्ण उत्पाद है गाय का, लेकिन इसमें भी विशेषज्ञों ने मेहनत करके अमूल और मदर डेयरी आदि ऐसे माध्यम उपलब्ध करवा दिए

कि दूध के लिए भी गाय की आवश्यकता नहीं। इस तरह खेती और दूध दोनों के लिए गाय की आवश्यकता नहीं। अब गाय और बैल की एक ही आवश्यकता बची, वह है 'बीफ'। मुझे भारत सरकार के योजना आयोग की एक रिपोर्ट पढ़ने को मिली। उसमें वाणिज्य मंत्रालय की प्रगति रिपोर्ट थी। इसमें वाणिज्य मंत्रालय ने यह कहकर अपनी पीठ थपथपाई थी कि अमुक वर्ष में भारत से बीफ का निर्यात बढ़ा है। कृषि मंत्रालय तो यह नहीं कह सका कि देश में गायों की संख्या बढ़ी है, बैलों की संख्या बढ़ी है। गोवंश विस्तार हुआ है, लेकिन वाणिज्य मंत्रालय कह सका कि देश से बीफ का निर्यात बढ़ा है। क्या गाय की अब यही उपयोगिता रह गई? क्या गोवंश की अब यही उपयोगिता रह गई? यह एक दु:खद प्रगति है। हमें पीछे मुड़कर देखना होगा।

गांधीजी के प्रयोग और उपयोगों को ध्यान में रखकर कृषि और गो-सेवा को जोड़ने की योजना बनानी होगी और गाय के सर्वांगीण विकास और उपयोग की बाते सोचनी होगी, वैसी ही नीतियाँ बनानी होगी। गांधीजी ने 'यंग इंडिया' के ६.१०.१९२१ के अंक में लिखा है, 'हिंदू धर्म की मुख्य वस्तु है गोरक्षा। गोरक्षा, मुझे, मनुष्य के सारे विकास क्रम में, सबसे अलौकिक वास्तु मालूम हुई है। गाय का अर्थ, मैं मनुष्य से नीचे की, सारी गूँगी दुनिया से करता हूँ। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व के द्वारा, मनुष्य को, संपूर्ण चेतन सृष्टि के साथ आत्मीयता का, अनुभव कराने का प्रयत्न है। मुझे तो यह भी स्पष्ट दीखता है कि मनुष्य का सबसे सच्चा साथी, सबसे बड़ा आधार यही हिंदोस्तान की एक कामधेनु थी। वह सिर्फ दूध नहीं देती थी बल्कि सारी खेती का आधार-स्तंभ थी। गाय दया-धर्म की मूर्तिमंत कविता है। इस गरीब और शरीफ जानकर में हम केवल दया ही उमड़ती है। यह लाखों-करोड़ों हिंदोस्तानियों को पालनेवाली माता है। इस गाय की रक्षा करना ईश्वर की सारी मूल सृष्टि की रक्षा करना है। जिस अज्ञान ऋषि या द्रष्टा ने गो पूजा चलाई, उसने गाय से शुरुआत की, इसके सिवा और कोई ध्येय हो ही नहीं सकता। इस पशु सृष्टि की फरियाद मूक होने से और भी प्रभावशाली है। गोरक्षा हिंदू धर्म की दुनिया को दी हुई एक कीमती भेंट है और हिंदू धर्म भी तभी तक रहेगा, जब तक गाय की रक्षा करनेवाले हिंदू हैं। गांधीजी के इस कथन में, इस सोच में उन्होंने जहाँ गाय को पूरे विश्व के साथ जोड़ दिया। हमारी मान्यता प्राणिमात्र की रक्षा है। गांधीजी ने मनुष्य के बाद, सभी प्राणियों का केंद्रबिंदु गाय को माना। अर्थात् गाय की सेवा सबसे प्राणियों की सेवा ऐसी सोच का, ऐसे कर्म का आह्वान। गांधीजी ने इसमें हिंदू की गाय की सर्व व्यापकता और गाय के सर्वांगीण रूप को रेखांकित किया।

गाय गाँव के आर्थिक विकास का मॉडल है। गाय, खेती और ग्रामोद्योग, इन तीनों को जोड़कर देखें तो यह गाँव के लिए, गाँव में रहनेवाले हर ग्रामवासी के लिए संपूर्ण आर्थिक मॉडल है। इस देश की खेती की स्थिति ऐसी है कि खेती की जोत धीरे-धीरे कम हो रही है। परिवार बँट रहे हैं। पाँच भाई-बहन, पाँच एकड़ भूमि। वही भूमि, जो अब तक पाँच एकड़ थी, बँटकर एक एकड़ रह गई। भूमि कम हो रही है। खेती की व्यवस्था बदल रही है, परिणाम किसान के पास खेत में १२ महीने और महीने में तीस दिन काम नहीं है। इस तरह यदि किसान ने चार छह माह काम करके कुछ कमा भी लिया तो पूरे वर्ष की, उसकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं। इस तरह किसान कमजोर ही रह जाता है। अत: जहाँ किसान को, उसके उत्पाद का न्यायिक मूल्य चाहिए वहीं उसे वर्षभर का काम भी चाहिए, जो उसके खेत में उपलब्ध नहीं है। अत: उसे पूरक काम चाहिए। गाय और ग्रामोद्योग पूरक काम हैं। खेत के समय खेत में काम और खाली समय में पूरक काम। इस तरह किसान गाँव में रहेगा। खेती भी करेगा। गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यों में जहाँ कृषि गो-सेवा को जोड़ा, वहीं खादी और ग्रामोद्योगों को भी जोड़ा। इस तरह गाय की उपयोगिता को बढ़ाया। गाय की व्यापकता को बढ़ाया। गाय मात्र दूध उपलब्ध करवाने का साधन नहीं है। गाय मात्र धार्मिक या भावनात्मक विषय नहीं है। गाय मात्र वैतरणी पार करवाने का माध्यम नहीं है, बल्कि गाय इहलोक को दूध के अतिरिक्त भी अनेक साधन-सुविधाएँ उपलब्ध करवाने का माध्यम है।

गांधीजी ने गाय के सर्वांगीण रूप पर कई बार प्रकाश डाला है। गाय जीवित है तो दूध देती है, बैल देती है, गोबर देती है, गौमूत्र देती है, लेकिन मरने के बाद भी गाय का बहुत उपयोग है, गाय के दूध की महिमा के साथ गाय के अन्य स्वरूप को रेखांकित करते हुए गांधी जी ने हरिजन सेवक के २१ सितंबर, १९४० के अंक में लिखा, 'गौमाता जन्म देनेवाली माँ से कहीं बढ़कर है। यों तो साल दो साल दूध पिलाकर, हमसे फिर जीवनभर सेवा की आशा रखती है। पर गौमाता को तो सिवा दाने और घास के कोई सेवा की आवश्यकता ही नहीं। माँ की तो हमें उसकी बीमारी में सेवा करनी पड़ती है। परंतु गौमाता केवल जीवनपर्यंत ही हमारी अटूट सेवा नहीं करती, बल्कि उसके मरने के बाद भी हम उसके मांस, चर्म, हड्डी, सींग आदि से अनेक लाभ उठाते हैं। यह सब मैं जन्मदात्री माता का दर्जा कम करने को नहीं कहता, बल्कि यह दिखाने के लिए कहता हूँ कि गौमाता हमारे लिए कितनी पूज्य है।'

इस कथन में गांधीजी ने गाय के संपूर्ण रूप, संपूर्ण महत्त्व और संपूर्ण उपयोग को रेखांकित किया। गाय गोबर देती है। गोबर खाद बनाने के काम आता है। गाय के गोबर के उपले ईंधन की कमी को पूरा करते हैं, हालाँकि गाय के गोबर के उपले बनाकर जलाने के भी बजाय उसका इस्तेमाल खाद बनाने के लिए ही करना चाहिए। बल्कि गाय के गोबर की गोबर गैस प्लांट में गैस बनाकर, ईंधन की जरूरत भी पूरी करनी चाहिए और उसे जो खाद मिलती है, वह खेत को अधिक समृद्ध करती है। गोबर से न केवल खाद, न केवल गैस बल्कि उस गैस से बिजली पैदा करके बिजली की कमी को पूरा किया जा सकता है। गाय के गोबर से किसी पूजास्थल को पवित्र करने के लिए चौका लगाने के लिए इस्तेमाल किया ही जाता है। मुझे एक मित्र बता रहे थे कि उनके मोबाइल पर किसी ने एक छोटा सा चिप लगा दिया है, जो गाय के गोबर का है। उस चिप के लगने के बाद मोबाइल सुनने से कान या दिमाग पर दुष्प्रभाव की जो सूचनाएँ आती हैं, समाचार आते हैं, गाय के गोबर का चिप बनानेवाले का दावा है कि गाय के गोबर का चिप मोबाइल में लगाने से, मोबाइल

के शरीर के अंगों पर दुष्प्रभाव नहीं होंगे। मैंने फर्श की वे टाइल देखी हैं, जो मुझे बताया गया कि गाय के गोबर के पुट से बनी हैं। मजबूत हैं। सुंदर हैं। उन टायलों को घर के फर्श पर लगाने से, घर में कीटनाशकों, के लिए छिड़काव करने की आवश्यकता नहीं है। गाय के गोबर की अगरबत्ती से सुगंध भी मिलती है। वह मच्छर भगाऊ भी है। गाय के गोबर की अगरबत्ती जल रही हो तो मच्छर निकट नहीं आता। यह जो भी प्रयोग या उपयोग हुए हैं या हो रहे हैं, वे सब व्यक्तिगत प्रयासों से हैं। यदि इन सब उत्पादनों पर आज के 'प्रसिद्ध विशेषज्ञ' अनुसंधान करें। इनका विधिवत् और वैज्ञानिक दोहन करें तो कल्पना कीजिए कि गोबर गैस, गोबर खाद, मोबाइल चिप, टायल, अगरबत्ती आदि की इस दुनिया को कितनी आवश्यकता होगी और उस आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए कितनी गायों की आवश्यकता होगी। दूध के लिए तो गाय पाली ही जाती है, लेकिन यदि उसके गोबर का वैज्ञानिक दोहन किया जाए। गाय के गोबर के नए-नए उत्पाद बनाए जाएँ तो गाय पालन एक सहज लेकिन टिकाऊ आवश्यकता बन जाएगी। फिर कोई कहे भी कि गाय मत पालो तो भी गोपालक गाय पालेगा। वह गाय मांस के लिए कटेगी नहीं बल्कि परिवार पोषण के लिए सुरक्षित और स्वस्थ रखी जाएगी। उसका सही अर्थों में पालन-पोषण किया जाएगा।



गौमूत्र एक ऐसा द्रव्य है, जिसकी महिमा तो हमारी धार्मिक पुस्तकों में भी गाई गई है। मैं ऐसी कई गोशालाओं को जानता हूँ, जो दूध बेचने मात्र से लाभ नहीं कमा पा रही थीं, लेकिन गौ-मूत्र के उपयोग से या तो आत्मनिर्भर बन गईं या लाभ कमाना शुरू कर दिया। आज की व्यवस्था ऐसी हो गई है कि कोई भी सामाजिक कार्य दान या अनुदान से करना बहुत कठिन है तथा उसे टिकाना और भी कठिन है। दान या अनुदान, आपातकालीन व्यवस्था तो हो सकती है, लेकिन सातत्य के लिए उपयोगी भी है और इस पर निर्भर भी नहीं कर सकते हैं। क्योंकि अनुदान में भ्रष्टाचार है और दान में स्वेच्छा। किसी की इच्छा होगी तो दान मिलेगा नहीं तो वहीं जब इच्छा होगी तब दान मिलेगा। यदि दाता की इच्छा होगी तब दान मिलेगा। इससे गाय की रक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि गाय की सेवा हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं करती, उसके लिए तो सातत्य चाहिए। वह सेवा तो गाय की आवश्यकता से जुड़ी हुई है। गाय को जब-जब चारा चाहिए, पानी चाहिए, सफाई चाहिए, वह सब उसकी आवश्यकतानुसार उसे उसी समय मिलना चाहिए, तभी गाय पालन संभव है, इसलिए गाय के गोबर के साथ गौमूत्र का भी वैज्ञानिक उपयोग, वैज्ञानिक अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

गौमूत्र पर आज जो प्रयोग हो रहे हैं, उनसे यह प्रमाणित हुआ है कि गौमूत्र से और गौमूत्र के उपयोग से बनने वाली दवाइयाँ कैंसर जैसी बीमारी का इलाज कर सकती हैं। यदि मत सही है, जबकि मैं मानता हूँ कि हाँ यह सही है। लेकिन 'पढ़े-लिखे विशेषज्ञों' की तो मानें। यदि उनकी समझ में गौमूत्र दवाइयों के लिए उपयोगी कच्चा माल है, ऐसा आ जाए या गौमूत्र से असाध्य रोगों का इलाज हो सकता है, ऐसा समझ में आ जाए और इसके लिए राष्ट्रीय स्तर की प्रयोगशालाएँ बनाकर नए-नए अनुसंधान किए जाएँ तो मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक गौमूत्र गौपालन का एक ऐसा कारण बन गौपालन-गौसेवा के लिए कहना नहीं पड़ेगा। इस तरह गाय, गाँव और ग्रामोद्योग के परस्परावलंबन से, जिसका संदेश गांधीजी ने दिया, जिसका व्यवहार गांधीजी ने किया। जिस पर प्रयोग गांधीजी और गांधीजी के अनुयायियों ने किए। जिसका महत्त्व गांधी विचार में रेखांकित किया गया है। वह सब गौरक्षा, गौसेवा, गौपालन, गौवंश-संवर्धन का सहज और आवश्यक आधार बन जाएगा।

आज प्लास्टिक हमारी समस्या बना हुआ है। सरकार भी चिंतित है और समाज भी चिंतित है। लेकिन कोई हल नहीं निकल रहा है। प्लास्टिक पर बैन लगाने की सरकारें कोशिश करती हैं, लेकिन वह भी संभव नहीं हो पाता। कानून बनता है, लेकिन लागू करना कठिन होता है। क्योंकि लोगों की आवश्यकता बन गया है प्लास्टिक। प्लास्टिक का एक उपयोग प्लास्टिक की चप्पल और जूते भी हैं। चमड़ा इतना महँगा है कि हर व्यक्ति चमड़े के जूते नहीं पहन सकता। चमड़ा यदि सस्ता करना है, सहज उपलब्ध करवाना है तो गोवंश की अधिक-से-अधिक रक्षा करनी होगी, उसका संवर्धन करना होगा। उसका विस्तार करना होगा। जब तक गाय जीवित है, उसके दूध, गोबर और गौमूत्र का उपयोग करना और फिर गाय की प्राकृतिक मृत्यु पर उसके चमड़े का उपयोग करना, यदि यह व्यवस्था बनती है तो गांधीजी की ग्रामोद्योग की परिभाषा में गाँव का चमड़ा गाँव में रमाया जाएगा। उसका जूता गाँव में बनेगा। इस तरह गाँव का धन गाँव में रहेगा। रोजगार सृजन होगा। गाँव की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। यह मरी हुई गाय का उपयोग है। इतना ही नहीं, मरी हुई गाय के खुरों (पाँव) में एक ऐसा तरल पदार्थ होता है, जो चिपकाने के काम आता है। यह तरल पदार्थ फैवीकोल से भी अधिक मजबूत है। जिन लोगों ने गाँव में जूता बनता हुआ देखा है, वे जानते हैं कि गाँव में बनाए जाने वाले चमड़े के जूते में, एक सोल नीचे रखकर उस पर चमड़े की छोटी-छोटी कितरें टुकड़े-टुकड़े चिपकाए जाते हैं। इसी से जूते का सोल मजबूत और मोटा बनाया जाता है। यह छोटे-छोटे टुकड़े चिपकाने के काम में गाय के खुर से निकलनेवाला तरल पदार्थ भी इस्तेमाल किया जाता है। गाय की हड्डियों का चूरा खाद बनाने के काम आता है। गाय के सींग से बहुत सारे खिलौने आदि तो बनाए ही जाते हैं, यदि उसके सींग, जो अंदर से खाली होता है उसमें गुड़ और शहद आदि उचित मात्रा में मिलाकर, निश्चित समय तक जमीन में गाड़ दिया जाए तो उसकी अच्छी किस्म की खाद तैयार हो जाती है।

इस तरह जीवित गाय की सेवा से वैतरणी पार करने की व्यवस्था, उसके अमृत जैसे दूध ये शरीर पोषण और धन लाभ, उसके गौमूत्र से मानव शरीर की सुरक्षा की दवाइयाँ, गोबर से गैस, खाद, बिजली, टायल, अगरबत्ती, मोबाइल चिप और गाय की प्राकृतिक मृत्यु पर चमड़ा, खूँट, सींग, हड्डियों का उपयोग, गाय को सर्व साधारण से ऊपर उठाकर उच्च कोटी का मानव मित्र, मानव के लिए पूजनीय, सेव्य, वंदनीय बना देता है।

गांधीजी ने गाय को इसी व्यापक रूप में देखा और धार्मिक, भावनात्मक दृष्टि से सीमित उपयोग से निकालकर उसके सर्व सुलभ, सहज, उपयोगी, सर्वांगीण रूप को मानवता के सामने न केवल उजागर किया बल्कि विभिन्न उपयोग प्रयोग करके यह प्रमाणित करने की कोशिश की है। गाय केवल हिंदुओं की पूजनीय गौमाता है, बल्कि सबकी गौमाता है, सबकी पालक है, सबको सुख देनेवाली है। गांधीजी के गौपालन, गौसेवा, गौवंश-संवर्धन के लिए यह एक बड़ी देन है कि गाय के विभिन्न पहलुओं पर विभिन्न दृष्टिकोणों से, विभिन्न प्रयोग करके गौ-सेवा गौ-पालक का एक नया और वृहद क्षेत्र मानवता के सामने खोल दिया।

गाय के गोबर, कचरे और मनुष्य के मल आदि की उचित व्यवस्था की ओर से अनुसंधान वक्ताओं का ध्यान आकर्षित करते हुए दिल्ली डायरी के पृष्ठ संख्या २८६-८७ में लिखा गया है कि 'गोबर, कचरे और मनुष्य के मल वगैराह में से खूबसूरत और सुगंधित खाद मिल सकता है। यह सुनहली चीज है, धूल में से धन पैदा करने की बात है। यह खाद बनाना भी एक ग्रामोद्योग है, यह तभी चल सकता है, जब करोड़ों लोग उसमें हिस्सा लें, मदद दें।'

मैंने यह महसूस किया है कि गाय को भारत के अर्थशास्त्र के साथ भारत की आर्थिक प्रगति के साथ, भारत की अर्थनीति के साथ जोड़ना चाहिए, जब तक गाय को जी.डी.पी. के साथ नहीं जोड़ा जाता, तब तक गाय का महत्त्व समझ नहीं आएगा। मेरे एक मित्र जो भारत सरकार में सचिव थे, मुसलिम धर्म का पालन करते थे। वे भारत सरकार में पशुपालन विभाग का काम भी देखते थे। उन्होंने एक दिन चर्चा में बताया कि उन्होंने एक डेटा इकट्ठा किया है, जिसके अनुसार भारत की जी.डी.पी. में पशुपालन की ७ प्रतिशत हिस्सेदारी है। पशुपालन में यह सामर्थ्य है कि देश की गिरती अर्थव्यवस्था को सँभालने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। गाय के धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ गाय के आर्थिक पहलू और गाय की भारत की जी.डी.पी. में महत्त्वपूर्ण भूमिका को हमें समझना जरूरी है। उसे रेखांकित करना चाहिए, यदि हमने गाय को धार्मिक पहलू तक सीमित रखा तो गाय की पूजा होगी। गाय के लिए मर-मिटनेवाले भावनात्मक भक्तों का एक वर्ग होगा, लेकिन गाय का जितना उपयोग राष्ट्र-निर्माण में हो सकता है, उतना नहीं हो पाएगा। उतना उपयोग यदि किया जाए तो गाय भार नहीं बल्कि एक बहुत बड़ा आधार बन सकती है। इसलिए गाय के धार्मिक पहलू के साथ-साथ आर्थिक पहलू को समझना और उसका वैसा उपयोग करना वैसी नीतियाँ बनाना आवश्यक है।

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जब हमारी समझ में आ जाएगा कि गाय हर तरह से हमारी माता है। मरने के बाद वैतरणी पार करवाएगी। जब तक जीवित रहेंगे, हमें आशीर्वाद देगी। हमें पोषण देगी, हमें रोजगार देगी, हमें अन्न देगी, हमारे परिवार का भरण-पोषण करेगी। हमारी जी.डी.पी. में प्रगति करेगी। रोजगार सृजन करेगी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगी। अन्न के भंडार भरेगी तो हम कभी भी गाय को अलग-थलग नहीं करके देखेंगे और न अलग-थलग होने देंगे, बल्कि उसकी रक्षा भी करेंगे, उसका पालन-पोषण भी करेंगे। गाय की उपयोगिता स्थापित करनेवाली नीतियाँ गोवंश का सहज विस्तार करेंगी। इससे गाय की रक्षा होगी। गाँव की रक्षा होगी। देश की रक्षा होगी और कुल मिलाकर मानवता की रक्षा होगी। मानवता की सेवा होगी।

पूरा देश ही नहीं पूरा विश्व गांधीजी की १५०वीं जयंती मना रहा है। क्योंकि गांधी विचार पूरे विश्व पूरी मानवता के लिए उपयोगी हैं। गांधीजी ने मानव और मानवता के हर पहलू को न केवल स्पर्श किया, बल्कि उस पर लिखा भी है, बोला भी है और समय-समय पर अमल भी किया है।

गांधीजी के १८ रचनात्मक कार्यक्रम एक ऐसा दर्शनशास्त्र है, जिस पर यदि गौर किया जाए, उस पर अमल किया जाए, अमल करने हेतु नीतियाँ बनाई जाएँ तो निश्चित ही भारत के अर्थशास्त्र, ग्रामीण अर्थशास्त्र, ग्रामीण विकास आदि क्षेत्रों में प्रेरणादायक परिणाम आ सकते हैं। करना बस इतना ही है कि उन सब विषयों का आज के संदर्भ में महत्त्व क्या है। आज के संदर्भ में उनकी एप्लीकेशन क्या है। गाँव के संदर्भ में वह रचनात्मक कार्यक्रम उपयोगी कैसे है। इस पर नीतियाँ बनानी होंगी। इन १८ रचनात्मक कार्यक्रमों में गांधीजी ने कृषि गो-सेवा को जो महत्त्व दिया है और महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम माना है, उसकी गहराई समझनी होगी।

गांधीजी के विचार में गाँव और ग्राम का बहुत निकट का संबंध भी है और इन दोनों का एक-दूसरे के लिए महत्त्व भी है। गाय के प्रति गांधीजी की भक्ति का एक उदाहरण हमें बहुत प्रेरणा देता है। सब लोग जानते हैं कि गांधीजी बकरी का दूध इस्तेमाल करते थे। वह बचपन से ही बकरी का दूध इतेमाल नहीं करते थे बल्कि एक ऐसी घटना, दुर्घटना के परिणामस्वरूप गांधीजी ने बकरी का दूध इस्तेमाल करना शुरू किया था। हालाँकि इस विषय पर आलोचकों को गांधीजी की आलोचना करने का खूब अवसर मिला, आज भी मिल रहा है। आलोचक कहते हैं कि गांधीजी बकरी को काजू खिलाते थे, मेवे खिलाते थे और उस बकरी का दूध पीते थे। इस तरह बकरी के दूध के माध्यम से काजू और सूखे मेवों का भोग करते थे। मेरी समझ में नहीं आता कि गांधीजी को काजू आदि मेवे खाने के लिए बकरी को माध्यम बनाने की क्या आवश्यकता थी। खैर, बकरी को काजू आदि खिलाकर दूध पीना न तो गांधीजी की सोच थी, न आवश्यकता थी और न यह जानकारी ही सही है। हुआ यों था कि गांधीजी ने एक बार देखा कि गाय के पिछले पैर बाँधकर गाय का दूध निकाला जा रहा है। ऐसा करना गांधीजी को गाय पर अत्याचार लगा।

उनकी दृष्टि से गाय पर यह हिंसा थी, जो किसी भी हालत में गांधीजी को स्वीकार नहीं थी। इसलिए गांधीजी ने दूध न पीने का संकल्प कर लिया। गांधीजी का भोजन नपा-तुला था। जो खाते थे। समूह में खाते थे और नपा तुला खाते थे। इस भोजन में दूध एक आवश्यक हिस्सा था। जब गांधीजी ने दूध पीना छोड़ दिया तो पहले से कमजोर शरीर। अधिक कमजोर होने लगा। आश्रमवासियों और गांधीजी के सहयोगियों को इस कारण चिंता होने लगी। इस परिस्थिति में किसी ने सुझाया कि बकरी का दूध निकालने के लिए ऐसी किसी हिंसा या अत्याचार की आवश्यकता नहीं होती। जब गांधीजी को यह समझाया गया और उनकी समझ में आ गया तो उन्होंने बकरी के दूध का सेवन करना स्वीकार किया। हालाँकि हर गाय की टाँग बाँधकर ही दूध लिया जाता हो, ऐसा नहीं है। लेकिन गांधीजी ने जो देखा और समझा, उसके अनुसार निर्णय किया। गाय का दूध निकालने के लिए जो पद्धति उन्होंने देखी और जिसके कारण गाय के दूध को नकारा, उसमें हिंसा और अत्याचार के विरुद्ध उनकी आवाज, उनकी सोच तो थी ही गाय के प्रति गांधीजी का प्यार और भी एक महत्त्वपूर्ण कारण था।

गांधीजी के अध्यात्मिक शिष्य आचार्य विनोबा भावे साधारणत: अनशन करने के अनुकूल नहीं थे। जब भी कभी कोई उनके सामने अनशन करने की बात करता था तो आचार्य विनोबा भावे उस व्यक्ति या व्यक्ति समूह को अनशन न करने की सलाह देते और प्रेरणा भी देते थे। लेकिन उनके जीवन के अंतिम दिनों का जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य था, वह था गो-सेवा और गोवंश हत्याबंदी। जिसके लिए उन्होंने आमरण अनशन की घोषणा भी की। जिसका परिणाम हुआ कि तत्कालीन सरकार ने विनोबाजी की इच्छानुसार गोवंश हत्याबंदी की समयबद्ध योजना बनाई और उसकी घोषणा की। विनोबाजी ने अपने गोवंश हत्याबंदी के संकल्प की पूर्ति के लिए मुंबई के देवनार कत्लखाने पर सत्याग्रह भी शुरू करवाया था। जो लगभग पच्चीस वर्ष तक चला। विनोबाजी के प्राण त्याग के बाद भी वह जारी रहा। आजाद भारत के इतिहास में गोवंश हत्याबंदी के लिए इतना लंबा अहिंसक सत्याग्रह शायद एक ही हुआ है और वह है विनोबाजी के संकल्प से प्रेरित देवनार कत्लखाने पर अहिंसक सत्याग्रह। लेकिन आखिर सरकार ने देवनार का कत्लखाना बंद किया।

गांधी और उसके बाद आचार्य विनोबा भावे ने गाय के महत्त्व को न केवल रेखांकित किया, बल्कि गोवंश हत्याबंदी के लिए गो-सेवा के लिए गाय के रचनात्मक उपयोग के लिय गाय के आर्थिक पहलू को उजागर करने के लिए अपने जीवन तक की आहुति देने के लिए भी तैयार हुए।

इस पूरी प्रक्रिया में गांधी और विनोबा से एक महत्त्वपूर्ण सीख मिलती है कि गो-सेवा गोवंश हत्याबंदी के लिए इतना व्यापक जनांदोलन खड़ा करने और जान की बाजी लगा देने की तैयारी के बाद भी गांधी और विनोबा के गाय से संबंधित आंदोलन ने कभी भी सांप्रदायिक रूप नहीं लिया; क्योंकि गांधी ने गाय को एक सामाजिक-आर्थिक विषय के रूप में लोगों के सामने रखा। गाय का धार्मिक विषय तो है ही, लेकिन धार्मिक विषय व्यक्तिगत होता है, सामाजिक-आर्थिक विषय सारे समाज को प्रभावित करता है। गाय एक सामाजिक-आर्थिक विषय तो है ही, वह एक सर्वांगीण विषय है। गाय के सामाजिक-आर्थिक विषय को केंद्र में रखकर, उसे सर्वांगीण विषय के रूप में प्रस्तुत करेंगे तो गाय सबको स्वीकार्य होगी। सबके लिए उपयोगी होगी। इस लोक में भी, परलोक में भी हम सबका भला करेगी।

सा अ

३८९-ए, पॉकेट-२, फेस-१
मयूर विहार-११००९१

सत्य का पाठ

उस समय मोहनदास लगभग पंद्रह साल के थे। उनके बड़े भाई को मांस खाने की आदत पड़ गई थी। गांधीजी का परिवार वैष्णव था। उनके परिवार में कोई मांस खाने की बात सोच भी नहीं सकता था। मांस खाने की आदत के कारण उनके बड़े भाई दूसरों से रुपए उधार लिया करते थे। अब उन्हें उस कर्ज को चुकाना था। इस बारे में दोनों भाइयों ने आपस में सलाह की। मोहनदास के पास सोने का एक कड़ा था। उन्होंने निर्णय किया कि कड़े में से सोने का एक टुकड़ा काटकर उसे बेचकर लोगों का उधार चुका दिया जाए। माता-पिता को भनक तक नहीं लगी और ऐसा कर दिया गया। घरवालों ने कटे हुए कड़े को देखा तो पूछा कि उसे किसने काटा है? दोनों भाई बोले, 'मालूम नहीं।' इसके बाद बात आई-गई हो गई, लेकिन मोहनदास इस घटना से अत्यंत व्यथित हो गए। उनका मन हर क्षण कहता कि उन्होंने गलत काम किया है। वे जब पढ़ने बैठे तो उनका पढ़ाई में बिल्कुल मन न लगा। आखिरकार मोहनदास से न रहा गया और उन्होंने सारी सच्चाई माँ को बता दी। माँ मोहनदास को बहुत प्रेम करती थीं। अपने बेटे की गलती पर उसे बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने उससे कहा कि वह सारी सच्चाई पिता को बता दे। मोहनदास इस बात पर राजी तो हो गया, लेकिन उसका साहस न हुआ कि वह पिता के सामने सारी सच्चाई बयान कर दे। मोहनदास को पिता से पिटाई का डर न था, बल्कि उनका दिल दुखाने का डर अवश्य था। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार करने के लिए एक पत्र लिखा और वह पत्र पिता को थमा दिया। पिताजी उस समय बीमार थे। उन्होंने पत्र पढ़ा तो उनकी आँखों में आँसू ढुलक आए। वे कुछ सोचते रहे और फिर उन्होंने उस पत्र को फाड़ दिया। मोहनदास भी पिता के हृदय की पीड़ा को समझकर बहुत रोए और उन्होंने उसी दिन से निश्चय किया कि अपने जीवन में हमेशा सत्य ही बोलेंगे। इसी घटना से उन्होंने सत्य का पाठ सीखा।

सा अ

(श्रीमती रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



गांधीजी और मूल्यपरक शिक्षा

• रमेश पोखरियाल 'निशंक'



सुप्रसिद्ध लेखक एवं राजनीतिज्ञ। विविध विधाओं पर अब तक चार दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुस्तकों का विदेशी एवं भारतीय भाषाओं में अनुवाद। देश एवं विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में रचनाएँ शामिल तथा साहित्य पर शोध कार्य हो रहे हैं। उत्कृष्ट साहित्य-सृजन के लिए देश के तीन राष्ट्रपतियों द्वारा सम्मानित एवं अन्य प्रतिष्ठत सम्मान। संप्रति केंद्रीय मानव संसाधन एवं विकास मंत्री।

महान् गांधीवादी नेता और दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला ने कहा कि 'शिक्षा वह हथियार है, जिससे दुनिया बदली जा सकती है।'

विश्वगुरु रहे भारत ने अत्यंत प्राचीन काल से ही पूरे विश्व को ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया है। तक्षशिला, वल्लभी और नालंदा विश्वविद्यालय समेत कई ऐसे प्रकाश-स्तंभ थे, जहाँ धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तुकला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, दर्शन, संस्कृति और संस्कार के प्रकाश से पूरा विश्व आलोकित होता था। कई देशों से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करने के लिए आते थे। समय बदला, इसके साथ ही भारत का इतिहास भी बदला। विदेशी आक्रांताओं ने भारत पर कई सौ वर्षों तक शासन किया और उन्होंने अपनी सत्ता की संपूर्ण ताकत से भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और चेतना की विरासत को कुचलने का प्रयास किया। आज आधुनिकता की दौड़ में हम परिवार के अंदर ही बँटकर रह गए हैं, मूल्यों की अनदेखी कर हम नैतिकतावादी प्रगति को सर्वस्व मान रहे हैं। खुद को हमने कंप्यूटर तक सीमित कर लिया है और स्मार्टफोन को ही अपनी दुनिया मान बैठे हैं। नैतिकतावाद की इस चुनौती का मुकाबला हम केवल मूल्यों के आधार पर कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति परंपरा से उपजे ये शाश्वत मूल्य हमारी हर चुनौती में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। मेरा मानना है कि इन जंजीरों और बेड़ियों से बाहर निकलने में बापू के विचार हमारे लिए मददगार साबित हो सकते हैं। गांधीजी जो कहते थे, वह करते थे, उसे यथार्थ में जीकर दिखाते थे। गांधीजी सदैव भारतीय संस्कृति परंपराओं के समर्थक रहे। वे भारतीय संस्कृति को असाधारण और तथ्यपूर्ण मानते थे।

हमारी संस्कृति में सर्वत्र गुरु-परंपरा का परिदृश्य देखने को मिलता है। विश्व में अपने किस्म की विलक्षण गुरुकुल परंपरा से न केवल हमने अध्ययन की समृद्ध परंपरा को स्थापित किया, बल्कि शिक्षा में मानवीय मूल्यों का समावेश कर नागरिकों के श्रेष्ठ चरित्र निर्माण में सफलता पाई। शिक्षा पर गांधीजी का चिंतन परम उच्च सत्य तक पहुँचाने का था। अगर हम दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि उन्होंने जो भी काम उठाया या जो भी सुझाव दिया, उसे उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर जीवन में सफलतापूर्वक उतारा। गांधीजी की सबसे बड़ी ताकत उनका नैतिकता से गहरा संबंध और सत्य के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी। गांधीजी उन मूल्यों की बात करते थे, जो जीवन की आधारशिला है। 'माता-पिता के लिए आदर', 'अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनना', 'दिल में करुणा का होना' और साम्राज्य से मुक्ति के लिए संघर्ष के संदर्भ में निडरता का होना जैसी बातें उनके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं। अपने व्यक्तिगत प्रयोगों से जीवन के अनुभवों से उन्होंने कुछ सिद्धांत बनाए और सबके साथ बाँटे।

गांधीजी ने सदैव धार्मिक ग्रंथों से भारतीय संस्कृति-परंपरा से प्रेरणा पाने की बात कही, इसका मुख्य कारण यह था कि भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत की जड़ें इतनी गहरी और कालजयी हैं कि सत्ता की क्रूर तलवारें भी इनके आगे खुद हार गईं। सिकंदर, खिलजी, मुगलों के वंशजों को भी भारतीय संस्कृति ने अपने में समाहित कर लिया। आज एक बार फिर हमारा देश मोदीजी के नेतृत्व में नई शिक्षा नीति के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान और आध्यात्मिक मूल्यों के बल पर 'विश्वगुरु' बनने की राह पर तीव्र गति से गतिमान है। 'नई शिक्षा नीति' भारतीय मूल्यों पर आधारित है। यह नीति नवाचार युक्त होने के साथ भारत केंद्रित भी है। श्रेष्ठजनों के व्यक्तित्व और कृतित्व से हमारे अपेक्षित, कमजोर वर्ग के लोग कैसे लाभान्वित हो पाएँगे, यह विचार करने का प्रश्न है। गांधीजी सामाजिक उन्नति में शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण योगदान मानते थे। उनका मूलमंत्र था कि 'शोषण-विहीन समाज की स्थापना' करनी चाहिए। शोषण विहीन समाज के निर्माण के लिए शिक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, शायद यही कारण था कि गांधीजी

ने शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की स्पष्ट व्याख्या कर देश के लिए प्रारंभिक शिक्षा-योजना का खाका प्रस्तुत किया।

गांधीजी का शिक्षा-दर्शन आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। विज्ञान, शोध, प्रौद्योगिकी ने निसंदेह हमारे समाज को बदला है, जीवन की राह को आसान बनाया है, परंतु इस वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति का एक स्याह पक्ष भी है। भौतिक विकास की दिशाहीन दौड़ में हमारी युवा पीढ़ी गौरवशाली भारतीय संस्कृति, संस्कार और आध्यात्मिक मूल्यों की विरासत से दूर होती दिखाई दे रही है, जिसका परिणाम है कि आज की युवा पीढ़ी में जीवन में आने वाली चुनौतियों, परिस्थितियों और समस्याओं का सामना करने में मानसिक रूप से कमजोर है। उनमें मूल्यों और जीवन में चुनौतियों का सामना करनेवाले संस्कारों का अभाव दिखाई देता है। हमारे संस्कार और जीवन में अपनाए गए आध्यात्मिक मूल्य ही जीवन में आनेवाली परिस्थितियों और चुनौतियों को सफलतापूर्वक सामना करने में हमें आत्मिक रूप से समर्थ और बलशाली बनाते हैं।



यह हमारा दुर्भाग्य था, जब अपने देश इंग्लैंड से देशभक्ति दिखाते हुए सन् १८३५ में लार्ड मैकाले द्वारा भारत में अंग्रेजी शिक्षा लागू करके भारतीय ज्ञान, विज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और संस्कार की शिक्षा को ही पाठ्यक्रम से हटा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा का लक्ष्य ही था कि लोग शरीर से भारतीय हों, परंतु संस्कार और संस्कृति से मानसिक रूप से अंग्रेजी संस्कृति के गुलाम बनाए जाएँ। अंग्रेजों के यहाँ से जाने के बाद अभी भी अंग्रेजी की मानसिकता से हमें स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई है। आज भी हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा विदेशी भाषा को विदेशी तौर-तरीकों को महत्त्व देते हैं। अच्छी बात यह हुई है कि देश-विदेश में आज मूल्यपरक शिक्षा की बात जोर पकड़ रही है। चाहे आतंकवाद की समस्या हो, मौसम-परिवर्तन की चुनौती हो, वैश्विकता के विरोध को दूर करने का विषय हो, सामाजिक-आर्थिक विषमता दूर करने का विषय हो या डिजिटल डिवाइड को कम करने की बात हो, हर चुनौती का मुकाबला मूल्य आधारित शिक्षा से किया जा सकता है। हाल में हमने राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०१९ का मसौदा-पत्र जारी करके लोगों के सुझाव माँगे हैं। मुझे खुशी है कि भारतीय मूल्य-आधारित संस्कार युक्त, संस्कृति-आधारित शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के काफी सुझाव हमें प्राप्त हुए हैं।

वर्तमान संसार की परिस्थितियों में युवाशक्ति के बल पर एक नए भारत का नवनिर्माण करने के लिए मूल्य और आध्यात्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना समय की आवश्यकता है।

इस मूल-मंत्र को फलीभूत करने के लिए एक ऐसी शिक्षा-नीति की आवश्यकता थी, जो व्यावहारिक हो, जो शहरों के साथ-साथ ग्रामीण शिक्षार्थियों के लिए भी उपयोगी हो, जो अगड़े-पिछड़े का भेद मिटा दे, जो संपूर्ण समाज को एक प्रगतिशील दिशा दे सके, एक ऐसे समाज का निर्माण कर सके, जहाँ हर एक के पास आजीविका का साधन हो। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का आदर्शवादी व्यक्तित्व और कृतित्व इसी प्रकार की शिक्षा की वकालत करता है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अत: गांधीजी का शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष योगदान रहा है। उनका मूलमंत्र था—'शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना'। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। अत: गांधीजी ने जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की व्याख्या की, वह प्रारंभिक शिक्षा-योजना उनके शिक्षादर्शन का मूर्त रूप है। उनका शिक्षा के प्रति जो योगदान था, वह अद्वितीय था। उनका मानना था कि 'मेरे प्रिय भारत में बच्चों को ३ एच की शिक्षा अर्थात् head hand heart की शिक्षा दी जावे।' हम उन्नत भारत का सपना तभी साकार कर सकते हैं, जब हम गांधीजी द्वारा दिए गए तीन सूत्रों head hand और heart के साथ शिक्षा को पूरे मनोयोग से विद्यार्थियों तक पहुँचा सकें। स्वामी विवेकानंद ने कहा था—''शिक्षा ही मनुष्य के सर्वोन्मुखी विकास का एकमात्र साधन है।'' अत: 'नई तालीम' के द्वारा हम बच्चों में एक नई वैचारिक क्रांति जगा दें, जो स्वयं सक्षम हों, स्वावलंबी बनें। वे सजग बनें, जागरूक बनें, वे देशनिर्माण में सहयोगी बनें, उनमें सृजनात्मकता का पूर्ण विकास हो, यही नई तालीम है। इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने में 'शिक्षक' की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मुझे विश्वास है कि नई शिक्षा नीति के माध्यम से, नवाचार अनुसंधान के माध्यम से हम नव भारत के निर्माण में अपने अध्यापकों को प्रेरित कर पाएँगे।

नई शिक्षा नीति के माध्यम से महात्मा गांधी के सपनों को पूरा करने का हमने संकल्प लिया है।

आध्यात्मिक और मानवीय मूल्य जीवन के निराशा और हताशा के क्षणों में आशा और आत्मबल की शक्ति का संचार करके मनुष्य को एक बार फिर नई उड़ान भरने योग्य बना देते हैं। नई शिक्षा नीति में हमने ध्यान रखा है कि इन मानवीय मूल्यों को केवल शिक्षा के माध्यम से छात्रों के भीतर विकसित किया जा सकता है।

सा अ

१३, तीन मूर्ति लेन
नई दिल्ली-११०००१



गांधी, भारत में खेती और किसान

• पुष्पेश पंत

गांधीजी का जन्म १५० वर्ष पहले गुजरात में काठियावाड़ की छोटी सी रियासत में हुआ, जहाँ उनके पुरखें पुश्तों से दीवान के पद पर काम करते रहे थे। अर्थात् उनकी परवरिश किसी खेतिहर परिवार में नहीं हुई थी बल्कि पारिवारिक माहौल १९वीं सदी के अंतिम चरणवाला कस्बाती-शहरी ही था। १८ वर्ष की उम्र में गांधी आगे वकालत की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड चले गए और अपने जीवन के अगले चार वर्ष उन्होंने वहीं बिताए। अतः यह सुझाना तर्कसंगत है कि तबतक गांधी का कोई व्यक्तिगत परिचय भारत में खेती या किसानों की जिंदगी की असलियत से नहीं था। गांधी के जीवनीकार रामचंद्र गुहा और उनके पौत्र राजमोहन गांधी ने इस बात का जिक्र किया है कि लंदन में वेजिटेरियन सोसायटी वाले अपने दोस्तों के आग्रह पर गांधी ने भारत के खान-पान पर एक लेख शृंखला लिखी थी, जिसमें उन्होंने प्रसंगवश काठियावाड के शक्तिशाली शाकाहारी किसान का उल्लेख किया था। पर जाहिर है, यह सारी जानकारी सुनी-सुनाई और दूसरों से प्राप्त सूचनाओं, लोक कथाओं किंवदंतियों पर ही आधारित थी।

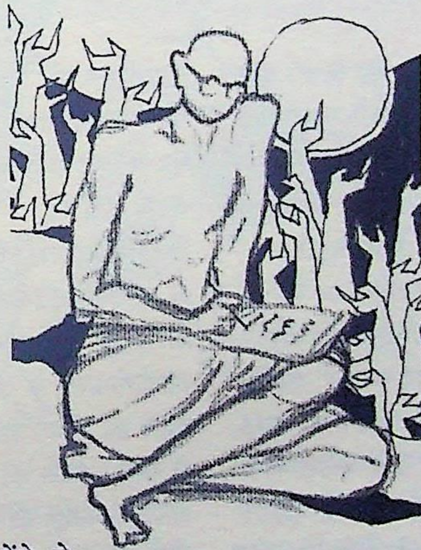
अपनी पढ़ाई समाप्त कर भारत लौटने पर गांधी कुछ समय तक इस असमंजस में पड़े रहे थे कि आगे क्या करें? अंततः उन्होंने तय किया कि वे बंबई हाईकोट में वकालत शुरू करेंगे। उस समय भी इस उच्च न्यायालय में वकीलों के बीच गलाकाट प्रतिस्पर्धा चल रही थी। जाहिर है कि गांधी का मन लंदन से लौटने के बाद काठियावाड में दकियानूसी रिश्तेदारों के बीच काम करने का नहीं था। इसी बीच उन्हें दक्षिण अफ्रीका में एक अमीर मुसलमान के मुकदमे में उसकी सहायता का प्रस्ताव मिला, मुआवजा आकर्षक था और गांधी ने वहाँ जाने का निर्णय ले लिया। एक बार दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के बाद गांधी को इस बात का अनुभव हुआ कि उस महाद्वीप में रंगभेदी नस्लवाद कितना दुःखदायक था और उन्हें इस बात का भी अंदाजा हुआ कि भारतीय मूल के उनके देशवासियों के साथ गोरे कितनी बदसलूकी करते थे। अनावश्यक विस्तार में जाए बिना, क्योंकि गांधीजी की ये घटनाएँ सर्वविदित हैं, हम इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं कि अगले कुछ वर्षों तक वकालत के काम से जो कुछ भी समय बचता, गांधी उसे



जाने-माने चिंतक, समालोचक एवं इतिहासविद्। अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विशेषज्ञ। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त। 'फोर्ब्स', 'ओपन', 'आउटलुक', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'दि ट्रिब्यून' जैसे पत्र-पत्रिकाओं में कॉलम लेखन। कई पुस्तकें चर्चित रही हैं। भारत सरकार द्वारा सन् २०१६ में 'पद्मश्री' पुरस्कार से सम्मानित।

प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने और उनके संकट निवारण में देते रहे। गांधीजी की कर्मभूमि डरबन, प्रिटोरिया और कैपटान तथा जोहानसबर्ग रहे। ये सभी शहर १९वीं सदी के अंतिम दशक तक अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महानगर बन चुके थे और जाहिर है कि यहाँ भी गांधी का कोई लेना-देना, खेती या किसानों के सरोकारों से नहीं था। ज्यादातर अश्वेत भारतीय बड़े-बड़े बागानों में मजदूर कुलियों के रूप में काम करते थे और कुछ शहरों-कस्बों में छोटे दुकानदार या थोक सामान के विक्रेता भी थे। गांधी का काफी समय अपनी वकालत जमाने में खर्च होता था और अवकाश के समय वे अपने जीवन में शाकाहार और प्राकृतिक चिकित्सा से जुड़े प्रयोग करने में लगे रहते थे। परिवार उनके साथ नहीं था और युवा गांधी एकाग्रचित्त होकर अपनी पसंद के लेखकों की पुस्तकों का अध्ययन करते थे। इनमें प्रसिद्ध रूसी दार्शनिक लियो टॉल्सटॉय के विचारों का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। टॉल्सटॉय ने अपने विशालकाय फार्म की भूमि को उस पर काम करनेवाले बँधुवा मजदूरों में बाँट दिया था और खुद भी अपनी रोटी अपने पसीने से कमाने के लिए उन्होंने किसानों की तरह काम करना शुरू कर दिया था। इन्हीं दिनों गांधी अमेरिकी प्रकृति-प्रेमी दार्शनिक इमरसन और थोरो की किताबें भी पढ़ रहे थे और उनका मन अनायास प्रकृति की गोद में एकांत जीवन का सुख भोगते हुए ईश्वर से साक्षात्कार के लिए सत्य की साधना हेतु ललचाने लगा था। प्रवास के इन वर्षों में गांधी का परिचय पोलक और हरमन कालिन बाख जैसे गोरे यहूदियों से हुआ, जो उन्हीं की तरह शाकाहारी थे और टॉल्सटॉय रूसो आदि के विचारों से प्रभावित थे।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटी, जिसने गांधी का जीवन नाटकीय रूप से बदल दिया। गांधी ने अंग्रेजी-हिंदी और गुजराती में एकसाथ प्रकाशित होनेवाले 'इंडियन ओपीनियन' अखबार का काम सँभाला था। इस पत्र की आर्थिक दशा डाँवाँडोल थी और जब प्रबंधन का काम सुचारु रूप से व्यवस्थित करने के लिए गांधी रातभर की रेलयात्रा तय कर डरबन से प्रिटोरिया जा रहे थे तो यात्रा का समय बिताने के लिए उनके मित्र पोलक ने उन्हें एक किताब पढ़ने को दी। यह किताब थी 'अन टू दिस लास्ट' जिसके लेखक थे जॉन रस्किन। गांधी ने एक बार पुस्तक उठाई तो उसी में डूब गए। पुस्तक समाप्त करने के पहले वह उसे मेज पर नहीं रख सके। वह इतने भावावेश में आ गए कि उन्हें उस रात नींद ही नहीं आई। पुस्तक का कथ्य उनके मन को छू गया। रस्किन का मानना था कि किसान किसी भी वकील, डॉक्टर या प्रबंधक से श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं, क्योंकि जहाँ बाकी पेशेवर परजीवी होते हैं, किसान अपने श्रम से अपनी जीविका का अर्जन करते हैं और बिना पर्यावरण को क्षति पहुँचाए प्रकृति की गोद में सीधा-सादा जीवन बिताते हैं। गांधीजी ने उसी क्षण यह फैसला कर लिया कि वह भी अपना जीवन एक किसान की तरह ही बिताएँगे। डरबन लौटने के बाद उन्होंने अपने दोस्तों को इस बात की सूचना दी।



गांधीजी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह थी कि एक बार कुछ ठान लें, तो उसे पूरा करे बिना चैन से नहीं बैठते थे। उन्होंने अपने बचत के पैसों से शहर से कुछ दूर कुछ जमीन खरीदी, जहाँ फिनिक्स नामक एक फार्म की स्थापना की। इस भूमि पर पीने के पानी का एक सोता बहता था और केले, अनन्नास, संतरे आदि फलों के बहुत सारे पेड़ थे। गांधी का मानना था कि उनके साथ जो लोग भी इस फार्म में आकर रहेंगे, वे पूरी तरह आत्मनिर्भर और स्वावलंबी समुदाय होंगे। एक बड़ा संयुक्त परिवार, जिसके सभी सदस्य अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति समान रूप से सतर्क रहेंगे। यहाँ एक बार फिर यह बात दोहराने की जरूरत है कि फिनिक्स फार्म की स्थापना तक ग्रामीण जीवन के बारे में गांधी का तमाम सोच रूमानी और किताबी ज्ञान पर ही आधारित था। दक्षिण अफ्रीका के कबाइली गाँव की कोई तुलना तत्कालीन भारतीय गाँवों से नहीं की जा सकती। गांधी के दिमाग में एक आदर्श गाँव की परिकल्पना थी और वे इस आदर्श गाँव में आदर्श खेती का प्रयोग कर रहे थे। फिनिक्स फार्म का प्रयोग बहुआयामी था। गांधी वहाँ प्रवासी भारतीयों की संतानों को उनके पारंपरिक संस्कार से परिचित कराना चाहते थे और उनकी मातृ भाषा में उनकी प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध भी कर रहे थे। जब गांधी इस प्रयोग में व्यस्त थे, प्रवासी भारतीय नस्लवादी उत्पीड़न के विरुद्ध एकजुट हो रहे थे। उनके संघर्ष को धारदार बनाने में गांधी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि फिनिक्स के अनुभव ने गांधी को इस बात का एहसास तो करा दिया कि छोटे किसान की जिंदगी कितनी कष्टप्रद होती है, परंतु फिर भी यह सोचना नादानी होगा कि गांधी ने खेती-बारी के बारे में अपेक्षित विशेषज्ञता या कौशल हासिल कर लिया था।

बीच-बीच में गांधी दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों की समस्या से अपने देशवासियों को परिचित कराने के लिए और उनके पक्ष में समर्थन जुटाने के लिए कभी परामर्श और वार्त्ताओं के लिए इंग्लैंड जाते तो कभी भारत में होनेवाले कांग्रेसी अधिवेशनों में भाग लेते। अबतक गांधी एक अपरिचित युवा वकील नहीं रह गए थे बल्कि उनकी गिनती दक्षिण अफ्रीकाई रंगभेदी सरकार से लोहा लेने के लिए कमर कसे एक जुझारू किंतु शांतिप्रिय आंदोलनकारी के रूप में होने लगी थी। थोड़ी सी मोहलत पाकर गांधी ने एक बार फिर थोड़ा और बड़े पैमाने पर खेती का प्रयोग किया। इस बार उनके धनी मित्र हरमन कलन बाख ने लगभग एक हजार एकड़ जमीन उन्हें सत्याग्रहियों की शरण के लिए आश्रम बनाने को उपहार में दे दी। कलन बाख एक सफल आर्केटेक्ट थे और उन्होंने भी यह फैसला किया कि वे भी इस आश्रम में ही रहेंगे और खेती-बाड़ी से ही अपनी जरूरतें पूरा करेंगे। कलन बाख कुशल मिस्त्री थे और जमड़े का काम भी अच्छी तरह जानते थे। उनकी संगत में गांधी ने भी अपने हाथ से बहुत सारा काम करना शुरू किया। पर तब भी यह कहना पूरी तरह ठीक नहीं होगा कि गांधी खेतिहर बन गए थे या खेती की समस्याओं के बारे में समग्र रूप से सोच रहे थे या कृषिकर्म उनके समग्र चिंतन का अभिन्न अंग था।

जिस बात को अच्छी तरह समझना जरूरी है, वह यह है कि गांधी अपनी जरूरतें निरंतर कम करना चाहते थे, ताकि उनकी आध्यात्मिक साधना में किसी प्रकार का खलल न पड़े। ग्रामीण माहौल में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, पर उनका यह ग्राम टॉलस्टॉय फार्म एक कृत्रिम गाँव था और वह भी दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी गोरे यूरोपियनों की बस्ती थी। यहाँ अर्जित ज्ञान और अनुभव का कोई सीधा लाभ भारत में नहीं उठाया जा सकता था।

प्रथम विश्वयुद्ध के विस्फोट तक गांधी यह मन बना चुके थे कि वे भारत लौटेंगे। अबतक दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों की समस्या और संघर्ष एक तात्कालिक समाधान तक पहुँच चुके थे और गांधी को शायद यह लगने लगा था कि अब भारत की आजादी की लड़ाई में जुड़ना उनका कर्तव्य है। गांधी गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे और उनकी सलाह के अनुसार एक वर्ष तक भारत का सफर कर उसकी खोज का प्रयास वे कर चुके थे। इस यात्रा का बहुत बड़ा हिस्सा रेलगाड़ियों

में किया गया था, जिस कारण भारत के देहाती अंचल पर सरसरी नजर ही डाली जा सकती थी। वास्तव में भारत के गाँवों और किसानों से गांधी का पहला साक्षात्कार १९१९ में बिहार के एक पिछड़े इलाके चंपारन में हुआ। यहाँ के गरीब किसान गोरे मालिकों के नील बागानों में बँधुवा मजदूरों की तरह काम करते थे और उनका जीवन बड़े कष्ट में बीत रहा था। यहीं के एक किसान राजकिशोर मिश्र बहुत आग्रहपूर्वक गांधीजी को चंपारन ले गए और उन्होंने गांधी को इस बात के लिए राजी किया कि वे सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग इन किसानों की मुक्ति के लिए करें। गांधी अपने सचिव महादेव देसाई के साथ कई महीने चंपारन में रहे। वहाँ के किसानों के बीच और उन्हीं किसानों की तरह। भितरवा नामक स्थान पर उन्होंने एक आश्रम की स्थापना भी की। अबतक गांधीजी ने अपनी पश्चिमी पोशाक उतार फेंकी थी और भारतीय किसान का धोती-कुरता पहनना शुरू कर दिया। यही वह घड़ी थी, जब गांधीजी ने भारत के ग्रामीण जीवन की समस्याओं और भारतीय खेती के बारे में गंभीरता से सोचना शुरू कर दिया था।

भारतीय खेती से जुड़ी एक और समस्या बर्तानिया शासनकाल में पौने छह सौ से अधिक रियासतें और रजवाड़े भी थे। इनका समाज सामंतशाही था और भूमि पर स्वामित्व बड़े-बड़े राज परिवार से जुड़े जागीरदारों का था। भूमिहीन मजदूर या छोटे किसान इनकी दया पर ही निर्भर थे। अंग्रेजों के शासन के अधीन भारत में भी जमींदारी का प्रकोप था और इसीलिए किसानों की अपेक्षा थी कि आजाद भारत में भूमि-सुधार लागू किए जाएँगे, सामंती प्रणाली का अंत होगा और उनकी जिंदगी के हालात बेहतर होंगे।

आगे बढ़ने से पहले दो बातों का उल्लेख जरूरी है। १९०९-१० में समुद्री जहाज से इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा करते वक्त गांधीजी ने भारत की समस्याओं—गरीबी और गुलामी—के बारे में लेखों की एक शृंखला लिखी थी, जिसका प्रकाशन इंडियन ओपिनियन में धाराप्रवाह के रूप से किया गया। बाद में इसे 'हिंद स्वराज' शीर्षक पुस्तक के रूप में भी छापा गया। यह पुस्तक गांधी के सपनों के भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। (इस पुस्तक की एक प्रति पंडित नेहरू और सरदार पटेल को भेजते हुए गांधी ने आजादी के बाद भी दोहराई थी)। इस पुस्तक में गांधी की मशीन विरोधी सोच, औद्योगीकरण और शहरीकरण से वितृष्णा तथा आधुनिक चिकित्सा के प्रति आशंकाएँ—सभी का मिश्रण देखने को मिलता है। भारतीय कृषि के संकट का सिलसिलेवार तर्कसंगत विश्लेषण या उसके निवारण के लिए सुचिंतित रणनीति का निरूपण इस पुस्तक में नहीं। सामानीकरण और सरलीकरण बहुत व्यापक है और वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति द्वारा कृषि के रूपांतरण का विकल्प सामने नहीं रखा गया है। विडंबना यह है कि गांधी की नजर में १९०९-१० से लेकर १९४७-४८ तक लगभग चार दशक समय के प्रवाह ने कुछ भी नहीं बदला था। गांधी विज्ञान और टेक्नोलॉजी के आविष्कारों के भारतीय कृषि के सुधार के लिए हस्तक्षेप की संभावनाओं को सोचने के लिए कतई तैयार नहीं थे।

इन्हीं वर्षों में कई अन्य भारतीय भी भारत की गरीबी और किसानों की समस्या के बारे में सोच रहे थे। गांधी के समकालीनों में रवींद्रनाथ ठाकुर इनमें से एक थे। उन्होंने अपने पुत्र रतींद्रनाथ ठाकुर को अमेरिका में कृषि का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए भेजा था और उनके अमेरिका से लौटने के बाद बंगाल के बोलपुर जिले में भारतीय कृषि में सुधार के लिए एक अनूठा प्रयोग पास ही के गाँव में आरंभ किया था। इस कृषि फार्म के उत्पादन की खपत शांतिनिकेतन के छात्रावास में होती थी। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर गांधीजी की तरह पक्के शाकाहारी नहीं थे, इसीलिए इस ग्रामीण प्रयोगशाला में मुरगी पालन, मत्स्य पालन आरंभ किया गया था, ताकि आश्रमवासियों का भोजन संतुलित और पौष्टिक हो। गांधीजी जब एक बार दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान भारत आए थे, तब उन्होंने शांतिनिकेतन की यात्रा की थी और वहाँ से कुछ भारतीय छात्रों को प्रशिक्षण के लिए गुरुदेव के पास भेजा था। भारत लौटने के बाद भी बापू अपने शिष्यों को शांतिनिकेतन भेजते रहते थे। इनमें से एक आइरिश महिला मीरा बहन थीं, जिन्होंने अपने पत्रों में इस बात पर खेद प्रकट किया कि शांतिनिकेतन वाला आश्रम शुद्ध शाकाहारी नहीं था और खेती की यह बंगाली प्रयोगशाला समुचित टेक्नोलॉजी के प्रयोग से परहेज नहीं करती थी।

जवाहरलाल नेहरू उन नौजवानों में थे, जो रूस में सोवियत क्रांति से बेहद प्रभावित थे। लंदन में अपने छात्र जीवन में वे समाजवादियों के प्रभाव में आए थे और उनकी सोच थी कि कोई भी देश बिना औद्योगीकरण के उन्नति नहीं कर सकता। स्वयं मार्क्स के अनुसार—देहात का जीवन जहालत का जीवन होता है। अंधविश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त। क्रांति की संभावना सिर्फ कल-कारखानों में काम करनेवाले संगठित मजदूर ही संपन्न कर सकते हैं। सोवियत संघ के भूमि-सुधार, खेती की जमीन का राष्ट्रीयकरण, कम्यूनों का गठन और बड़े पैमाने पर खेती के लिए ट्रैक्टर, हार्वेस्टर और कंबाइन जैसी भारी मशीनों का उपयोग नेहरू की नजर में भारतीय खेती के सुधार की व्यापक संभावनाओं को उजागर कर रहा था। सिंचाई के लिए वर्षा के जल पर निर्भर रहनेवाले किसानों को आकाश वृत्ति से मुक्ति दिलाने के लिए बहुआयामी बाँध निर्माण परियोजनाएँ संयुक्त राज्य अमेरिका में भी उपयोगी समझी जा रही थीं और सोवियत रूस में भी। गांधी के सपनों के भारत में इनका कोई स्थान नहीं था। जिस तरह हर हाथ को काम दिलाने के उनके संकल्प ने गांधी को चरखा, कतली और खादी की ओर प्रेरित किया था, उसी तरह गांधी को लगता था कि यदि ग्राम स्वराज का उनका सपना पूरा होता है तो हर गाँव अपने आप में आत्मनिर्भर इकाई होगा और अपनी तमाम जरूरतों को खुद ही पूरा कर लेगा। स्वाधीन गाँव की इकाई ही गांधी के लिए रामराज्य वाला स्वराज थी। यों गांधी अपने को खेती-बारी के संबंध में हो रहे वैज्ञानिक शोध से

जानकार बनाए रखते थे, परंतु वे अधिकांश विज्ञान और टेक्नोलॉजी को इस पूर्वग्रह के कारण खारिज कर देते थे कि मशीनें और यंत्र मानवीय श्रम की गरिमा को नष्ट कर देते हैं और उत्पीड़ित व्यक्ति का जीवन नारकीय बना देते हैं। दक्षिण अफ्रीका हो या भारत, गांधी के लिए हाथ की चक्की का पीसा आटा कच्ची घानी में पिराया तेल और गुड़ की मिठास ही काफी थे, स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए मौसमी साग-सब्जियाँ और फल खान-पान की बाकी जरूरतें पूरा कर सकते थे। गांधीजी की सोच में भारतीय खेतिहर और अपने खाने तथा कपड़े की जरूरत खुद पूरा करने में सक्षम हो सकते हैं, अतः उनके अनुसार किसी भी किसान को न तो नकदी फसलें पैदा करने की जरूरत बची रहती और नहीं बाजार में अपनी उपज की बिक्री की चिंता। गांधीजी भारत को ग्रामवासी मानते थे और यह बात तथ्यों से प्रमाणित भी है। परंतु जो बात अनदेखी रह जाती है, वह यह कि क्या अधिकांश ग्रामवासी ग्रामीण के रूप में ही अपना जीवन बिताने के लिए तैयार हैं या थे?



भारतीय खेती से जुड़ी एक और समस्या बर्तानिया शासनकाल में पौने छह सौ से अधिक रियासतें और रजवाड़े भी थे। इनका समाज सामंतशाही था और भूमि पर स्वामित्व बड़े-बड़े राज परिवार से जुड़े जागीरदारों का था। भूमिहीन मजदूर या छोटे किसान इनकी दया पर ही निर्भर थे। अंग्रेजों के शासन के अधीन भारत में भी जमींदारों का प्रकोप था और इसीलिए किसानों की अपेक्षा थी कि आजाद भारत में भूमि-सुधार लागू किए जाएँगे, सामंती प्रणाली का अंत होगा और उनकी जिंदगी के हालात बेहतर होंगे।

इस तरह देखें तो भारत में कृषि की समस्याओं और खेती-बारी में सुधार के बारे में आजादी की लड़ाई लड़नेवालों के बीच गंभीर मतभेद थे, एक तरफ नेहरू और कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी के सदस्य जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव और सुभाष चंद्र बोस जैसे नई पीढ़ी के युवा तुर्क थे तो दूसरी ओर गांधी, जिनके विचार इन लोगों को पौराणिक नजर आते थे। मशीनों के बहिष्कार और वैज्ञानिक पशुपालन, रासायनिक खाद और कीटनाशकों के उपयोग के बारे में भी इन दो खेमों के बीच आम सहमति नहीं थी। एक दिलचस्प बात यह है कि जहाँ गांधी खान-पान के मामले में विटामिनों और खनिजों आदि की बात करते थे, वहीं वे गोधन-संवर्धन के लिए जानवरों की बीमारियों के उपचार के लिए वैक्सिन-दवाइयों को त्यागना बेहतर समझते थे। आज जब पर्यावरण रासायनिक उर्वरकों-कीटनाशकों के कारण बुरी तरह प्रदूषित हो रहा है और कहीं-कहीं इसका इतना बड़ा प्रभाव जल-जमीन और वायुमंडल पर पड़ा है कि लोगों को लगने लगा है, यह जानलेवा मर्ज लाइलाज हो चुका है। तब उन्हें गांधी के कुदरती खेती-बारी के सुझाव महत्त्वपूर्ण, प्राणरक्षक लगने लगे हैं।

पश्चिम में अनियंत्रित मांसाहार से होनेवाले जीवनशैली से संबंधित रोगों ने महामारी का रूप ले लिया है। इसीलिए शाकाहार और जैविक उत्पाद (ऑर्गेनिक खाद्य पदार्थ) लोकप्रिय होने लगे हैं। कई बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इस नए चलन में भरपूर मुनाफा कमाने की रणनीति तैयार कर ली है। एक मशहूर अमेरिकी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर निकोस्लेड ने गांधी के खान-पान पर केंद्रित 'ईटिंग ऑफ द वर्ल्ड' शीर्षक पुस्तक में यह नतीजा निकाला है कि गांधी को इस बात का पूर्वाभास लगभग एक सदी पहले ही हो गया था कि यदि खेती-बारी को विज्ञान और टेक्नोलॉजी के नुस्खों के हवाले छोड़ दिया जाएगा तो भोजन का प्रदूषण और रोगों की बाढ़ रोकी नहीं जा सकेगी। सिंचाई को सुनिश्चित करने के लिए जिन बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया गया है, उनसे पैदा संकट दूसरी तरह के हैं, पर कम चिंताजनक नहीं। जहाँ ऐसे बाँध बनते हैं, वहाँ डूब के इलाके में विस्थापित होनेवाले किसानों की जिंदगियाँ बुरी तरह नष्ट हो जाती हैं। पर्यावरणीय और सांस्कृतिक विनाश की पारंपरिक विरासत की क्षति की कोई भरपाई नहीं हो सकती। यह सुझानेवाले नवजात गांधीवादियों की कोई कमी नहीं, जो यह उपदेश देते हैं—'गांधीवादी खेती ही' हमें और पर्यावरण को इस घड़ी बचा सकती है।

गांधीजी इस बात को बखूबी समझते थे कि भारतीय गाँवों में खेती का संकट अभिन्न रूप से उत्पीड़क और शोषक जाति प्रथा से जुड़ा है। गांधीजी छुआछूत के विरोधी थे और क्षमता के पोषक। पर वर्ण वैमनस्य का समाधान वे संवाद और सहानुभूति से ही करना चाहते थे। बाबा साहब अंबेडकर जैसे लोगों का मानना था कि यह सोच वंचित दलितों को बराबरी का दर्जा अनायास नहीं दिला सकती और हिंदू समाज में वर्ण-व्यवस्था का किसी-न-किसी रूप में स्वीकार किया जाना सामाजिक विषमता की खाई को और भी गहरा बनाता है। देश के विभाजन के बाद ग्राम स्वराज को रामराज्य का पर्याय मानना भोलापन ही कहा जा सकता है। इस बात का उल्लेख जरूरी है कि गांधी खुद को हिंदू मानने में कोई संकोच नहीं करते थे और भले ही वह अपने सार्वजनिक जीवन में सांप्रदायिकता से पूर्णतः मुक्त रहे। उनके सभी अनुयायियों के बारे में ऐसा कहना कठिन है। आजादी के बाद जनतांत्रिक भारत में चुनावी राजनीति ने सांप्रदायिकता और जातिगत प्रतिबद्धताओं की पुष्टि ही की गई है। १९६० के दशक में तथाकथित पिछड़ी जातियों के राजनैतिक प्रभुत्व ने भूमि-सुधारों को लगभग हाशिए पर डाल दिया और हरित क्रांति की सफलता ने कृषि के पूँजीपतीकरण और मशीनीकरण को लगभग अनिवार्य घोषित कर दिया। यह सच है कि इस वैज्ञानिक उपलब्धि ने भारत को खाद्यानों के मामलों में आत्मनिर्भर तो बनाया, पर इससे सामाजिक और आर्थिक विषमता भी

दर्दनाक रूप से बढ़ी और देश के आर्थिक विकास में आर्थिक असंतुलन तेजी से बढ़ा। आपातकाल के बाद जब जनता पार्टी की सरकार का गठन हुआ तो एक बार फिर आर्थिक नीति-नियोजन में गांधीवादी विचारों को प्राथमिकता मिली।

मगर तब तक घड़ी की सुइयाँ पीछे लौटाना असंभव हो गया था और शायद यह वांछनीय भी नहीं था। अनेक विद्वानों का ऐसा मानना है कि यदि आज गांधी जीवित होते तो वह जरूरी मशीनों, प्राण रक्षक दवाइयों-वैक्सीन आदि का विरोध नहीं करते। समुचित तकनीक अपनाने में उन्हें संकोच न होता आदि। इस सिलसिले में एक और जटिल सवाल से उलझना जरूरी है। गांधीवादी सोच जड़ नहीं स्वयं बापू अपने विचार नए साक्ष्यों के आलोक में बदलते रहे थे। उन्होंने खेती-बारी के सुझावों के बारे में जो-जो विचार व्यक्त किए हैं, वे अलग-थलग नहीं बल्कि ग्रामीण उद्योगों और कुटीर उद्योगों से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। १९२९-३० में नमक सत्याग्रह के सूत्रापात के पहले गांधीजी ने राजनीति से अल्पकालीन संन्यास ले लिया था और पूरी तरह से अपने को समग्र ग्रामीण विकास के लिए समर्पित कर दिया था। वर्धा में सेवाग्राम के निकट उद्योगपति कमल नयन बजाज की उदार सहायता से उन्होंने यह प्रयोग शुरू भी किया था। इस दौरान राजस्थान से लेकर मैसूर तक जहाँ-जहाँ कृषि वैज्ञानिक काम कर रहे थे, गांधीजी का पत्राचार उनके साथ चलता रहा। गांधीजी की इच्छानुसार इस जानकारी का प्रचार-प्रसार संपादकीय टिप्पणियों के साथ महादेव देसाई गांधीजी द्वारा संपादित पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से करते रहे।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आज गांधीजी के देहांत के ७० वर्ष बाद खादी ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगों के बारे में गांधीजी की सोच अधिकांश लोगों को पौराणिक लगने लगी है। कंप्यूटर क्रांति-सूचना क्रांति और बायोटेक्नोलॉजी के नवीनतम आविष्कारों ने बड़े पैमाने पर कम लागत पर उत्पादन की जो प्रणालियाँ प्रकट की हैं, उनके मद्देनजर अपने पसीने की कमाई से मात्र हस्त कौशल से जीवनयापन स्तर को निरंतर ऊपर उठाने की बात करना बहुत तर्कसंगत नहीं लगता। शूमाकर जैसे विद्वानों ने स्मॉल इज ब्यूटीफुल वाले गांधी से प्रेरित जिस जीवन दर्शक का प्रचार २०वीं सदी के मध्य में किया था, वह आज के भारतीय परिवेश में प्रागैतिहासिक लगने लगा है। शहरों और गाँवों के बीच की खाई विकराल होती जा रही है और ग्रामीण ऋण के बोझ से दबे किसान और उनकी संतानें अपनी जिंदगी में बेहतरी के लिए जातिगत बेड़ियों की जकड़न तोड़ने के लिए या लिंग-भेदी अन्याय से छुटकारा पाने के लिए शहरों की ओर पलायन करने लगी हैं। ऐसे में जब खेती की जमीन के वैकल्पिक अर्थात् औद्योगिक या शहर निर्माण के लिए उपयोग को प्राथमिकता देने की बात सरकार कर रही है, तब बापू के खेती-बारी और किसानों के सरोकारों से जुड़े चिंतन की बात करना एक पाखंड ही लगता है।

गांधीजी का यह मानना था कि छोटे-से-छोटे किसान के पास कम-से-कम इतनी जमीन होनी चाहिए कि वह अपने परिवार का

इस अंक के चित्रकार



संदीप राशिनकर

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण। भित्ति चित्रों (म्यूरल्स) के क्षेत्र में अनेक स्थानों/प्रतिष्ठानों पर भव्य म्यूरल्स का सृजन एवं अभिनव प्रयोगों से इस शैली में प्रतिष्ठित कार्य। कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

संपर्क : ११-बी, राजेंद्र नगर, इंदौर-४५२०१२
दूरभाष : ९४२५३१४४२२

भरण-पोषण अपने उगाए अनाज से कर पाए। भारत लौटने के बाद आजादी की लड़ाई के दौरान अपने देशव्यापी दौरों ने उन्हें भारतीय किसान की गरीबी और खेती की दुर्दशा से भलीभाँति परिचित करा दिया था। गांधीजी को लगता था कि भारतीय किसान की अधिकांश परेशानियाँ इस कारण पैदा हुई हैं कि जमीन का स्वामित्व धनवानों के हाथ है और वह कृषि के जैविक तरीके को भूलता जा रहा है। उन्हें इस बात का भी एहसास था कि यदि खेती के वैज्ञानिक तरीके अपनाए जाएँगे और उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों तथा मशीनों का उपयोग बढ़ेगा तो छोटा किसान, जिसके पास पूँजी नहीं, साहूकारों पर और भी बुरी तरह निर्भर हो जाएगा। इसीलिए वह बारंबार सुझाते थे कि सबसे बड़ी जरूरत भूमि-सुधार लागू करने की है और खेतीबारी के जैविक तरीकों को अपनाने की।

गांधीजी के ये दोनों सपने आजतक अंशतः ही पूरे होते हैं। उनके जीवनकाल में उनके शिष्य विनोबा भावे ने 'सर्वोदय आंदोलन' के जरिए और भूदान के अभियान से यह काम करने की कोशिश की थी। सरकार में भाग न लेने के फैसले के बाद जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय का काम सँभाला, किंतु वह भी राजनैतिक और आर्थिक नीति-निर्धारण के संदर्भ में हाशिए पर ही पड़ा रहा। गांधी के जन्मदिन तथा प्रयाण की जयंती के अवसर पर ही गांधी और खेतीबारी पर उनके विचारों पर चर्चा गरम होती है एक रस्मादायगी की तरह। यह चिंता का विषय है।

सा अ

स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडी
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-११००६७
pushpeshpant@gmail.com
दूरभाष : ०११-२६१७१५७९



महात्मा गांधी और विद्यार्थी

• सुनील आंबेकर



राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के राष्ट्रीय संगठन मंत्री रहे। प्राणिविज्ञान में स्नातकोत्तर; शैक्षिक क्षेत्र में नवाचार के प्रबल पक्षधर; छात्रों में राष्ट्रभाव और समरसता का भाव जाग्रत् करने के लिए सतत क्रियाशील। रूस के २०१८ के राष्ट्रपति चुनावों में अंतरराष्ट्रीय पर्यवेक्षक रहे। वैश्विक मामलों में विशेष रुचि। 'The RSS : Roadmaps for the 21st Century' के लेखक, जिसका हिंदी संस्करण शीघ्र प्रकाश्य।

महात्मा गांधी भारत के एक ऐसे महान् पुत्र हैं, जिन्होंने केवल अपना ही नहीं, बल्कि अपने परिवार तथा समूचे देश का नाम ऊँचा किया। अपने जीवन-आदर्शों के कारण वे उनसे असहमति रखनेवाले या विरोध करनेवालों के लिए भी प्रेरणा तथा श्रद्धा के पात्र बन जाते थे। उनकी जीवनयात्रा के १५० वर्ष पूरे होने पर भारत ही नहीं, पूरे विश्व में उन्हें स्मरण किया जा रहा है। उनके जीवन का प्रभाव केवल उनकी पीढ़ी पर ही नहीं, अपितु उनके बाद की पीढ़ियों पर भी देखने को मिलता है। वर्तमान व भविष्य की पीढ़ियों पर भी उसका सकारात्मक प्रभाव अनुभव में आएगा। छात्रों को गांधी की राजनैतिक यात्रा व उनके निर्णयों के साथ एक व्यक्ति के रूप में भी उनके जीवन एवं व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को देखना प्रासंगिक होगा।

मैं स्वयं ग्यारहवीं कक्षा में अंग्रेजी बोलना सीखने हेतु एक निजी संस्थान में एक माह तक गया था। वहाँ जब मुझे अपना पहला अंग्रेजी भाषण तैयार करने के लिए कहा गया, तो मैंने भाषण का विषय 'माय बापू' (गांधी) लिया था। यह पहला अवसर था, जब मैंने अपनी विद्यालय-पुस्तकों के अतिरिक्त गांधी को पढ़ा व समझने का प्रयास किया था। मैंने उनकी सत्यनिष्ठा को कई उदाहरणों से जाना-समझा था। मेरे पिताजी कहते थे कि व्यक्ति से गलती हो सकती है, उसमें कोई बात नहीं, लेकिन गलती अस्वीकार करने हेतु झूठ का सहारा लेना उससे भी बड़ी गलती है, जो मनुष्य को कभी नहीं करनी चाहिए। पिताजी हमें कहा करते थे, तुम जो हो, वही मुझे बताओ और स्वयं में सुधार का प्रयास करते रहो। इस शिक्षा से जब मैंने गांधी का जीवन देखा तो मैंने उन्हें अपने बहुत निकट पाया। और उनके इन्हीं गुणों के द्वारा मैंने उन्हें समझने का प्रयास किया।

फिर और एक अवसर मिला, जब मैंने सेवाग्राम मेडिकल महाविद्यालय, जो बापूकुटी सेवाग्राम के निकट स्थित है, में प्रवेश परीक्षा हेतु तैयारी प्रारंभ की। उस परीक्षा में गांधीजी की कुछ किताबें पाठ्यक्रम में थीं, जिनमें उनकी आत्मकथा भी शामिल थी। एक १६-१७ के युवा छात्र के नाते मैंने उसे मुक्त भाव से पढ़ा। बाल्यकाल से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वयंसेवक होने के नाते मैंने संघ में गांधी के बारे में कभी कोई व्यंग्यात्मक या निंदात्मक बात नहीं सुनी थी। उनको लेकर जब भी कोई विश्लेषण होता था, वह तथ्यात्मक तथा आदरपूर्वक होते हुए ही सुना-देखा था। स्वयंसेवक होने के नाते मैं पूर्वग्रहों से मुक्त था इसलिए उस समय गांधीजी को समझना मेरे लिए बहुत ही सार्थक था।

गांधी अपनी आत्मकथा में सारी बातें खुलकर लिखते हैं, जिनसे यह समझना जरूरी है कि एक मनुष्य के नाते सारे सकारात्मक-नकारात्मक गुण-दोष होते हुए भी अपने अथक प्रयासों से कैसे वे महात्मा बने थे। यह उनका कर्मयोग ही था, जो सामान्य व्यक्तित्व को भी अपने अच्छे कर्म, सद्प्रयास एवं समर्पित राष्ट्रभाव से कितनी भी ऊँचाई पर ले जा सकता है। गांधीजी का जीवन एक युवा छात्र के लिए यह संदेश है कि तुम कौन हो, कहाँ से आए हो, कैसे हो—इसकी चिंता मत करो; अभी भी प्रारंभ करोगे, तो जीवन को सही दिशा देकर उसे सार्थक बना सकते हो।

गांधीजी अपनी आत्मकथा में स्वयं को महात्मा नहीं अपितु एक सामान्य व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे वे हमारा आत्मविश्वास बढ़ाकर हमें आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं।

कोई भी किसी व्यक्ति या महात्मा गांधी के जीवन के हर पहलू या विचारों से हम सहमत हो, यह जरूरी नहीं है। परंतु ऐसे व्यक्तित्व से हम बहुत कुछ सीखकर उसे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ग्रहण कर सकते हैं; गांधीजी हमें इसकी छूट देते हैं। इसलिए वे अलग-अलग प्रकार के लोगों को एक साथ प्रेरित करते हुए जीवन के सिद्धांत प्रदान करते हैं।

मनुष्य के जीवन में संवेदनाक्षम होना उसकी जीवंतता का मुख्य लक्ष्य है। संवेदनाहीन प्राणी तो मृत ही माना जाता है। गांधीजी के जीवन में यह हर पल अनुभव किया जा सकता है। उनके संवेदनशील मन की कृतियों ने ही उन्हें महात्मा की श्रेणी में खड़ा कर दिया। दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन हो या भारत में, अपने आप को स्वाधीनता के आंदोलन में

झोंक देना, इसी संवेदनशीलता का प्रभाव था। छात्रों के लिए यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि अपना कॅरियर बनाते समय ही समाज व देश के कॅरियर की चिंता उनके मन में रहे व उसे वे व्यवहार में लाएँ।

गांधीजी स्वयं के कॅरियर को छोड़कर राष्ट्रीय आवश्यकता को प्राथमिकता-महत्त्व देते हैं। यह बात केवल आजादी के आंदोलन में प्रासंगिक थी, ऐसा नहीं है। आज भी हमारे प्रतिभावान छात्रों के लिए, विशेषकर जो विदेशों में पढ़ने या अपना कॅरियर बनाने जाते हैं, उनको यह सोचना जरूरी है कि वे देश-समाज के लिए क्या कर सकते हैं, व कैसे कर सकते हैं। पूरा जीवन दुविधा में बिताने की जगह गांधी जैसे व्यक्तित्वों से प्रेरणा लेकर उचित समय पर आवश्यक निर्णय भी ले सकें। विदेश में रहकर भी वे भारत के लिए उपयोगी बन सकें, यह सोच जरूरी है। यह एक दिन में नहीं होगा, परंतु छात्र-जीवन से ही सोचना प्रारंभ करेंगे, तब निश्चित ही कुछ रास्ते निकलेंगे।

हर व्यक्ति में कुछ अहंकार होता ही है; परंतु वह तब व्यक्तिगत दुर्गुण बन सकता है, जब वह केवल 'मैं-मैं' तक सीमित रह जाता है। वही अहंकार जब राष्ट्रीय स्वाभिमान बन जाता है, तब व्यक्ति केवल व्यक्तिगत मान-अपमान तक सीमित नहीं रहता, अपितु उससे ऊपर उठकर राष्ट्र के मान-अपमान की चिंता करता है। वह समानता, बंधुता, मानवीयता जैसे महत्त्वपूर्ण मूल्यों की चिंता करता है। इन्हीं के सम्मान की रक्षा में उस अहंकार की प्रतिक्रिया होती है। यह गांधीजी के जीवन में भरपूर अनुभव में आता है। दक्षिण अफ्रीका में रेलगाड़ी में हुए अपने अपमान की उन्होंने कितनी व्यापक सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। आत्मचिंतन से मूल कारणों को समझकर स्वाधीनता की उस मूल बाधा को हटाने पर पूरा ध्यान केंद्रित किया। कई बार हम मूल बात न समझते हुए ऊपरी कारणों में ही उलझ जाते हैं।

कई बार लोग 'गांधीजी' कहने से उनकी देशी वेशभूषा व स्वदेशी से यह समझने लगते हैं कि वह पुरानी है और वे स्वयं आधुनिक जमाने के व तकनीकी वाले हैं। उनको यह समझना जरूरी है कि गांधी रेलगाड़ी से चलते थे। पोस्टल सेवा का भरपूर उपयोग करते थे। अंतरराष्ट्रीय मीडिया का महत्त्व समझते थे तथा उनके आंदोलनों के उचित समाचार व छायाचित्र लंदन व यूरोप के समाचार-पत्रों में छपें, इसका ध्यान रखते थे। उन दिनों उपलब्ध टेलीफोन, टेलीग्राम का वे भरपूर उपयोग करते थे। विशेषकर उनके लेख विभिन्न शहरों के डाकघर के टेलीग्राम/टेलीप्रिंटर पद्धति से जगह-जगह छपने हेतु भेजे जाते थे। यह बात साफ समझने में आती है कि कामकाज में वे सारी तकनीकों का उपयोग करने में संकोच नहीं करते थे, परंतु व्यक्तिगत जीवन में सारे कार्य स्वयं ही, कम-से-कम मशीन का उपयोग करने पर जोर देते थे तथा लोगों के रोजगार सृजन हेतु ऐसी तकनीकी को ही प्रोत्साहन करते थे। इसलिए आज आधुनिक तकनीकी के जमाने में हमारे छात्र-युवाओं को यह समझना जरूरी है कि आधुनिक होने का मतलब तकनीकी पर निर्भर होकर अपने व्यक्तिगत जीवन को आलसी, परावलंबी या स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न बनाते हुए हमें तकनीकी का चयन करना जरूरी है। कौन से कार्य हाथ से करना संभव है एवं कितनी स्वयंचालित मशीनों का उपयोग हो, इसपर विवेक से काम लेना उपयोगी रहेगा।

इस व्यवहार से पर्यावरण का संतुलन भी बना रहेगा। वर्तमान की छात्र-युवा पीढ़ी को यह तय करना होगा कि भविष्य के भारत की रचना कैसी होगी। विकास का अर्थ क्या होगा तथा नई-नई तकनीकें हमारे जीवन के निर्णय करेंगी या हम मानवीय जीवन-मूल्यों एवं पर्यावरण रक्षा को ध्यान में रखकर अपने संयमित जीवन के सतत प्रयासों से प्रेरित होकर तकनीकी का चयन करेंगे? गांधीजी का समूचा जीवन मनुष्य के नाते 'उचित' का चयन करने का आग्रह था। सीमित साधनों का उपयोग करने की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति या समाज ही सृष्टि के संतुलन एवं जीवन में भ्रष्टाचार तथा शोषण की प्रवृत्ति से बच सकते हैं। ऐसे समय, जब सारे छात्र-युवा आर्थिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने, पर्यावरण की रक्षा करने, सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने, हर कार्य को समान महत्त्व देने तथा महिलाओं के लिए सम्मानजनक व भयमुक्त समाज-निर्माण में जुटे हैं—गांधीजी के विचार एवं उनका जीवन-व्यवहार हमें समाधान के बहुत से रास्ते दिखाते हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में 'तकनीकी का चयन', यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू सिद्ध हो रहा है।

कई छात्र संगठन छात्रसंघों के चुनाव के मौके पर जाग्रत् होते हैं तथा उसी की राजनीति में उलझे रहते हैं। इसके विपरीत, गांधीजी स्वाधीनता के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाते हुए भी सतत स्वदेशी, शिक्षा, ग्राम-विकास जैसे कई रचनात्मक कार्यों में सक्रिय रहे। सामाजिक भेदभाव समाप्त करने के लिए भी उनका प्रबल आग्रह था तथा स्वाधीन भारत में किन व्यवस्थाओं को स्थापित करना होगा, इसपर भी वे सतत सक्रिय थे। यह छात्र संगठनों को भी देखना जरूरी है। मैंने विद्यार्थी परिषद् में यह सतत रूप से अनुभव किया और आग्रह भी किया कि संगठन या कार्यकर्ता केवल छात्रहित के मुद्दों पर आंदोलन या चुनाव तक सीमित न रहें, अपितु स्वयं को नए रचनात्मक कार्यों से जोड़ें।

गांधीजी उस जमाने में विदेश में रहे। लंदन गए, बैरिस्टर बने, परंतु अपनी भारत की संस्कृति, भगवान् राम एवं गीता को कभी नहीं भूले। हर जगह उन बातों की झलक उनके विचार, कार्य एवं निर्णयों में साफ दिखती है। उनका यह आग्रह था कि हम अपनी स्वाधीनता के लिए भी दूसरों के मार्ग लेने की जगह अपने जीवन-मूल्यों पर आधारित मार्गों से अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं तथा आगे बढ़ सकते हैं। यह बात आज हमारे छात्रों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, जब हम देश को विश्व का सिरमौर बनाने की प्रक्रिया में आगे बढ़ रहे हैं, तब यह निर्णय करना जरूरी है कि नए भारत का निर्माण आयातित नहीं अपितु हमारी अपनी बुनियाद पर होगा।

गांधीजी की १५०वीं जयंती मनाते समय उनके जीवन की शिक्षा और प्रेरणा आज के युवा छात्रों का उचित मार्गदर्शन करने तथा उन्हें निर्णयक्षम बनाने में उपयोगी सिद्ध होंगी। (सा अ)

ambekarsunil@gmail.com



गांधीजी-मेरे परदादा : एक प्रभावी संचारक

• श्रीकृष्ण कुलकर्णी

गांधीजी की हत्या के ७१ वर्ष बीत चुके हैं। आज भी उनके विचार, उनके मत और उनकी कही बातें प्रिय लगती हैं और अस्तित्व में हैं। दुनिया भर के नेता उन्हें उद्धृत करते हैं। भारत में विभिन्न विचारधाराओं वाले राजनीतिज्ञ उनका सहारा लेते हैं। भारत की एक राजनीतिक पार्टी कांग्रेस (ई) उन पर अपना एकाधिकार जमाने का प्रयास करती है। प्रेस और मीडिया भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के वंशजों को गलत तरीके से गांधी परिवार कहता है, आखिर क्यों? क्या इस कारण कि उनके नाम से गांधी शब्द जुड़ा है या इस कारण, क्योंकि गांधीजी का नाम भारतीय मतदाताओं को अच्छा लगता है? कोई चाहे तो इसके पक्ष-विपक्ष में तर्क दे सकता है, लेकिन सच यही है कि गांधीजी का नाम बिकता है और मैं यदि थोड़ा और गहराई में जाऊँ तो खुद से यह पूछने पर विवश हो जाता हूँ, गांधीजी में ऐसा क्या था, जो आज भी बरकरार है और प्रिय लगता है? मुझे लगता है, यह उनका जीवन था। गांधीजी के जीवन का हर पहलू एक संदेश था। उनका एक बयान दर्ज भी है, जब उन्होंने कहा था कि 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।' गांधीजी का विश्लेषण एक संचारक के रूप में करते हुए मैं खुद से कुछ प्रश्न करता हूँ : गांधीजी में सामाजिक स्तर पर संवाद करने की इच्छा कैसे उत्पन्न हुई? उनकी शंकाओं को किसने दूर किया? गांधीजी एक प्रभावी संचारक कैसे बने? क्या वे अपने जीवन के आरंभ से ही प्रभावी थे? कौन थे, जो गांधीजी के लक्षित श्रोता थे? क्या उनके प्रति आकर्षण किसी विशेष आयु वर्ग, सामाजिक या आर्थिक स्तर के लोगों में था या यह आकर्षण व्यापक था? उनके विचार कितने समय तक बने रहेंगे? इन प्रश्नों का जवाब ढूँढ़ने के दौरान आशा है कि मुझे इस बारे में जानकारी मिलेगी और गहरी समझ पैदा होगी कि वे किस प्रकार संवाद किया करते थे।

अंतरराष्ट्रीय विज्ञापन संघ की भारतीय शाखा ने सबसे पहले मेरी माता सुमित्रा गांधी कुलकर्णी से 'संचारक के रूप में गांधी' विषय पर लिखने के लिए संपर्क साधा था। अपनी माँ के आग्रह पर ही मुझे इस नोट को लिखने का सौभाग्य मिला था।

मेरी माँ अब ९० साल की हैं। जब बापूजी की हत्या हुई थी, तब वे एक युवती थीं, जो अपने उन्नीसवें वर्ष में थीं। आज वे सबसे बड़ी जीवित परपोती हैं और उन्हें लंबे समय तक बापूजी और कस्तूरबा के



हार्वर्ड बिजनेस स्कूल से मैनेजमेंट की उच्च डिग्री प्राप्त कर लगभग दस वर्ष एक जापानी कंपनी FANUC इंडिया में मुख्य कार्यकारी अधिकारी रहे। छह वर्ष पैनासोनिक भारत के पहले भारतीय प्रबंध निदेशक रहे। वर्तमान में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, कोलकाता के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स के अध्यक्ष हैं। भारत सरकार की महात्मा गांधी की १५०वीं जन्मजयंती पर बनी राष्ट्रीय समिति की कार्यकारी कमेटी तथा राजघाट समाधि कमेटी के सदस्य हैं। हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी व जापानी भाषाओं के जानकार।

साथ रहने का सौभाग्य मिला था। अम्माँ के पिता रामदास गांधी का जन्म दक्षिण अफ्रीका में हुआ था और वे बापूजी के साथ दक्षिण अफ्रीका में और बाद में साबरमती आश्रम में रहते थे। मेरे नाना रामदास गांधी ने जल्दी ही साबरमती आश्रम को छोड़ने और अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करने का फैसला कर लिया था। वे टाटा ऑयल मिल्स कंपनी, टॉमको की नागपुर शाखा के लिए साबुन बेचने वाले सेल्समैन के रूप में रिटायर हुए। अम्माँ की पढ़ाई का खर्च उनकी बेहद मामूली कमाई से आता था। इस नोट को लिखने में मेरी मदद के लिए अम्माँ ने मुझे बापूजी के साथ अपने व्यक्तिगत अनुभवों की कई बातें बताईं। मैं नीचे जो कुछ लिख रहा हूँ, उसे उनका आशीर्वाद प्राप्त है।

मैं जब अपने परदादा (हम उन्हें बापूजी कहते हैं) का विश्लेषण कर रहा हूँ, तब मैं इतिहास में लौटना चाहूँगा। मैं बापू के उन आरंभिक वर्षों को लेकर हमारी यादों को ताजा करना चाहूँगा, जब मुझे लगता है कि उनके प्रभावी संवाद-कौशल की नींव रखी गई थी।

साल १८९१ तक बापूजी ब्रिटेन से कानून की डिग्री लेकर भारत लौट आए थे। एक अनजान वकील के रूप में उन्होंने बॉम्बे में वकालत करना शुरू किया, जहाँ उनकी कमाई इतनी कम थी कि किसी तरह उनका गुजारा हो पाता था। वकालत में वे बुरी तरह विफल रहे। वे अब भी कमजोर और सकुचाने वाले संचारक थे। बातचीत का उनका नौसिखियों जैसा कौशल जरा भी प्रभाव नहीं जमा पाता था। दो जून की रोटी कमाने की कड़वी सच्चाई ने ही उन्हें दक्षिण अफ्रीका स्थित दादा अब्दुल्ला एंड कंपनी में नौकरी के लिए प्रेरित किया। दक्षिण अफ्रीका में

उन्हें नस्ली भेदभाव के साथ ही अन्य अन्यायों का सामना करना पड़ा, जिससे उन्हें घोर आश्चर्य हुआ। एक रात पीटरमैरिट्सबर्ग में ट्रेन से बाहर फेंक दिए जाने और अगले दिन एक गार्ड के हाथों मारपीट का शिकार होने तथा ऐसे अनेक व्यक्तिगत अनुभवों ने उनके भीतर के संघर्षशील कार्यकर्ता को जगा दिया। अन्याय और नस्ली भेदभाव के इन अनुभवों से उन्हें भारी क्षोभ हुआ। उन्हें गहरा आघात लगा, वे लड़ना चाहते थे। पहली बार उनके मन में अपने सामाजिक दायित्व का विचार आया। 'क्या उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए या भारत लौट जाना चाहिए? क्या अपने दायित्वों को निभाए बिना भागकर भारत चले जाना कायरता नहीं होगी?' यदि वह लड़ना चाहते थे, तो उन्हें उन लोगों से संपर्क करना होगा, जो उनकी ही तरह सताए गए थे। उन्हें उनके सक्रिय सहयोग की आवश्यकता थी। उन्हें उनके साथ बात करना सीखना होगा, उनका भरोसा जीतना होगा। इसी दौरान उन्होंने अपने मूल स्वभाव का निर्माण इस प्रकार किया, जो करुणा पर आधारित था—पूरी मानवजाति और सभी जीवों के प्रति करुणा। उन्होंने इस मुद्दे को उठाना शुरू कर दिया कि सामाजिक या आर्थिक स्थिति को देखे बिना प्रत्येक मनुष्य के प्रति बराबर मान-सम्मान प्रदर्शित करना जरूरी है। गरीबों, दबे-कुचले लोगों और सुविधाविहीन लोगों के उत्थान के प्रति उनकी चिंता सच्ची थी, जिसने उनके जीवन के इस पड़ाव के बाद एक प्रेरक शक्ति का रूप ले लिया। इस समय ही, जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रुकने और भेदभाव के खिलाफ लड़ने का निर्णय लिया, तब पहली बार हम उनके जीवन में सामाजिक स्तर पर संवाद करने की स्पष्ट और तत्काल आवश्यकता को देखते हैं। वंचितों की सहायता करने की इसी निस्स्वार्थ इच्छा ने उन्हें संवाद करने के लिए विवश किया।

दक्षिण अफ्रीका में इसी अवधि के दौरान उन्होंने दिन-रात एक कर अपने आपको उस ज्ञान से लैस किया, जिसकी जरूरत उन्हें पड़ने वाली थी। इसके लिए उन्होंने बहुत कुछ पढ़ा; धर्म से संबंधित व्यापक विषयों पर चर्चा में शामिल हुए और इसी दौरान उन्होंने पहली बार लियो टाल्सटॉय की लिखी अप्रकाशित 'ए लेटर टू ए हिंदू' पढ़ी। बापूजी प्रेम और बुराई के प्रति अहिंसा के लियो टाल्सटॉय के संदेश से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने लियो टाल्सटॉय से पत्राचार की शुरुआत कर दी। यहाँ हम देखते हैं कि बापूजी किस प्रकार सहायता माँग रहे थे और संवाद कर रहे थे। इस पत्राचार ने बापूजी के जीवन को बदल दिया। बापूजी ने टाल्सटॉय की पुस्तक, 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' पढ़ी। इसमें टाल्सटॉय ने इस बात पर बल दिया था कि प्रेम का सिद्धांत ईसाई धर्म का नैतिक मूल है। टाल्सटॉय के लिए ईसाई धर्म मात्र एक रहस्यमयी सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवन की पद्धति थी। इस विचार से बापूजी को अपने धर्म, हिंदू धर्म को समझने में सहायता मिली। बापूजी पर इस पुस्तक ने गहरा प्रभाव डाला और अपनी एक अमिट छाप छोड़ी। टाल्सटॉय को पढ़ने के दौरान ही बापूजी को महसूस हुआ कि गरीब, वंचित और दबे-कुचले लोग किस प्रकार दो जून की रोटी के लिए अपने हाथों से श्रम करते हैं। वे अपने सिवाय किसी पर आश्रित नहीं हो सकते थे। इस कारण उनके उत्पीड़न को कम करने का सबसे अच्छा तरीका 'ब्रेड लेबर', यानी अपने हाथों से अपनी रोटी कमाने का ही था और यह शब्द टाल्सटॉय के कारण प्रसिद्ध हुआ था। बापूजी ने इसे 'स्वावलंबन' या 'आत्मनिर्भरता' कहा था। जैसे-जैसे हमारा स्वावलंबन बढ़ता है, वैसे-वैसे हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरों का उत्पीड़क उपयोग उसी अनुपात में कम होता है। यह उनके सामाजिक और आर्थिक दर्शन का एक मुख्य स्तंभ बन गया। इस समय जोहानसबर्ग से डरबन की अपनी यात्रा के दौरान बापूजी ने जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' पढ़ी। इस पुस्तक ने उनकी 'अंतरात्मा' को छू लिया। रस्किन ने कहा था कि समाज का आधार धन नहीं होता, बल्कि मनुष्य का साथ ही समाज का धन है। सामाजिक अन्याय और असमानता का कारण धन और सत्ता का होना है, जो स्वभाव से स्वार्थी होता है और उसमें 'झूठ बोलकर धोखा देना' शामिल रहता है। डरबन में यात्रा समाप्त होने तक बापूजी ने अपने जीवन को इस पुस्तक के विचारों के अनुसार बदलने का प्रण कर लिया था। उनके शिक्षक टाल्सटॉय ही थे, जिन्होंने उनके दर्शन को तर्क का आधार दिया और रस्किन के 'अनटू दिस लास्ट' ने उनकी धारणा को सुदृढ़ कर दिया।

युवा गांधी के लिए टाल्सटॉय ने एक उप-गुरु, यानी ऐसे गुरु की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने उनके संदेहों को दूर कर दिया। टाल्सटॉय के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए ही बापूजी ने जोहान्सबर्ग के पास कम्यून की स्थापना की और उसे टाल्सटॉय फार्म नाम दिया। यहाँ बापूजी ने अपने विकसित होते दर्शन और धारणाओं के साथ प्रयोग किए और उन पर अमल किया। टाल्सटॉय के जीवन से ही बापूजी ने अपने जीवन में दो बड़े महत्त्वपूर्ण गुणों को आत्मसात् किया। पहला था, 'जो कहो उस पर चलो।' उनके पूरे जीवन में हम ऐसे उदाहरण देखते हैं, जब बापूजी स्वयं 'जो कहा उसे किया,' पर निस्स्वार्थ भाव से अमल करते दिखे। आप हमेशा उन्हें इस प्रकार के अवसरों पर सबसे आगे देखेंगे। वह न केवल शुरुआत करते, बल्कि 'अग्रणी कर्ता' भी रहते थे। बाबूजी अकसर किसी नए विचार या क्रिया को पहले स्वयं लागू करते और फिर दूसरों से उसे करने को कहते थे। उन्होंने अपने गुरु की शिक्षा को अपने भीतर पूरी तरह समाहित कर लिया था। यह बापूजी के स्वभाव में था कि जो चीज उन्हें प्रिय लगती, उसे व्यवहार में लाते थे। वह मात्र 'चिंतनशील' व्यक्ति नहीं थे, बल्कि 'कर्मशील' थे। वह निस्स्वार्थ भाव से आम लोगों की समस्याएँ उठाते थे। इन निस्स्वार्थ कार्यों में 'तपस्या' की शक्ति होती थी, जिससे सामाजिक असमानता और न्याय से लड़ने की उनमें जबरदस्त ऊर्जा, आत्मविश्वास और निडरता पैदा होती थी। बापूजी भय पर विजय पाने में सफल हुए—चाहे ताकतवर सत्ता से भय हो या प्रत्यक्ष खतरे का भय या फिर अवांछनीय परिणामों का भय। टाल्सटॉय फार्म में उन्होंने जैसा आध्यात्मिक अनुशासन और जैसी नैतिक शक्ति विकसित की उसने उन्हें आने वाले वर्षों में सत्य और न्याय के कठिन संघर्ष में आगे बढ़ते रहने का अदम्य साहस दिया। किसी 'सत्याग्रही' के लिए भय पर विजय

पाना अनिवार्य होता है। दूसरा गुण था, 'जीवन की सादगी'—जो मात्र बाहरी रूप में ही नहीं होनी चाहिए।

बापूजी जो कहते थे, उसे सही मायने में व्यवहार में लाने और सादगी से जीने के लिए लगातार प्रयोग करते रहे। वह एक मुक्त विचारक और सत्य के निडर खोजकर्ता थे। समस्याओं को सही ढंग से समझने के लिए वे अपनी धारणाओं के भेदभाव से मुक्त होकर सोच-विचार किया करते थे। उनकी ऐसी मनोदशा असाधारण थी, लेकिन समस्याओं को सही ढंग से समझने के लिए अनिवार्य भी थी। मात्र सत्य को समझना ही पर्याप्त नहीं था, बल्कि उस सत्य को व्यवहार में लाने के लिए ही बापूजी यह सोचने पर विवश हुए कि सदा सत्य बोलना चाहिए, भले ही उसका कितना ही विरोध क्यों न हो। वर्ष १९०६ में बापूजी ने सत्याग्रह शब्द दिया। बापूजी का सत्याग्रह से क्या अर्थ था, इस पर मेरा विचार है कि किसी भी प्रकार से हमें सत्य को थोपने का अधिकार नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि हमें सत्य पर टिके रहना चाहिए, लेकिन हमें इस पर भी विचार करना चाहिए कि हम जब ऐसा करें, तब यह मानकर करें कि ईश्वर हमारा साक्षी है। आज हमारे देश में, यदि आप किसी से पूछें कि सत्याग्रह का अर्थ क्या है, तो इसकी संभावना बहुत अधिक है कि अधिकांश लोग सत्याग्रह का मतलब विरोध जताने के लिए हड़ताल पर जाना, 'धरना' देना बताएँगे। आज भारत में राजनेता सत्याग्रह का जिस प्रकार इस्तेमाल करते हैं, वही इस घालमेल के लिए जिम्मेदार है, फिर हम इसकी उम्मीद कैसे कर सकते हैं, पसंदीदा होना तो छोड़िए, यह प्रभावी या चिरस्थायी बना रहेगा?



जनवरी १९१५ में जब बापूजी भारत लौटे, तब तक उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अपने संपूर्ण व्यक्तिगत अनुभवों के इस्तेमाल से एक ठोस, करुणामय, निस्स्वार्थ और निर्भय दर्शन को सफलतापूर्वक तैयार कर लिया था। साल १९२५ तक वह अपने दर्शन का सार परिभाषित कर चुके थे, जिनमें उन्होंने सात सामाजिक पाप बताए, जिनका मूल कारण सामाजिक असमानता, अन्याय और उत्पीड़न में छिपा था, जो इस प्रकार हैं—

- बिना काम किए धन,
- अंतरात्मा के बिना सुख,
- चरित्र के बिना ज्ञान,
- नैतिकता के बिना वाणिज्य,
- मानवता के बिना विज्ञान,
- त्याग के बिना पूजा,
- सिद्धांत के बिना राजनीति।

बाद के वर्षों में, यानी १९१५ के बाद, उनके द्वारा हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख निर्माता की भूमिका को अपनाने के बाद भी उनकी बैठकों के दरवाजे किसी के लिए भी खुले रहते थे। बापूजी अति साधारण और पारदर्शी जीवन जी रहे थे। न कोई गुप्त बात थी, न गुप्त रणनीति, न गुप्त बैठकें, न गुप्त संवाद, न ही गुप्त एजेंडा। उनका रुख खुला और पारदर्शी था। उनका एजेंडा सब जानते थे, यहाँ तक कि उनके विरोधी भी उनकी सारी योजनाओं की जानकारी रखते थे। इतना पारदर्शी जीवन जीकर वे अपने आपको उस कठिन रास्ते पर चलने के लिए विवश कर रहे थे, जिस पर सत्य की खोज करने वाले को चलना ही चाहिए। उन्होंने गलतियाँ की, लेकिन उन्हें खुलकर और निडर होकर स्वीकार किया। वह कहा करते थे कि किसी भी मुद्दे पर उनके सबसे नए विचार को ही माना जाए, पुराने विचारों को अनदेखा (जैसे वह अहिंसा के भले ही कट्टर समर्थक थे, फिर भी उन्होंने कहा था और यह बात दर्ज है कि 'यदि उन्हें हिंसा और कायरता के बीच चुनाव करना हो, तो वे हिंसा को चुनेंगे') किया जा सकता है। हर कदम पर उन्होंने विरोधाभाष से दूर रहना ही उचित समझा। भारत की गरीब, वंचित और शोषित जनता ही उनकी श्रोता थी और वह बापूजी का सम्मान उनके विचारों की निरंतरता के कारण नहीं, बल्कि उस साहस और विनम्रता के लिए करती थी, जिससे वे नए तथ्यों के सामने आने पर अपने विचार सार्वजनिक रूप से बदल लिया करते थे। इस कारण उनके साथ वह अनिवार्य पहलू जुड़ गया, जिसकी इच्छा प्रत्येक प्रभावी संचारक को होती है—'अपने श्रोताओं का विश्वास और समर्थन।' भारत के करोड़ों देशवासियों, विशेष रूप से दबे-कुचले और वंचित लोगों ने बापूजी में बार-बार अपने आस्था और विश्वास को जताया। वे जानते थे कि वह कभी उन्हें गलत रास्ते पर नहीं ले जाएँगे या उनका इस्तेमाल अपने व्यक्तिगत या राजनीतिक लाभ के लिए नहीं करेंगे। इस निस्स्वार्थ दृष्टिकोण ने ही बापूजी को यह साहस दिया कि वह अधिकांश सामाजिक समस्याओं के मुख्य कारणों की पहचान सही ढंग से किया और उन्हें सामने रख सके। इस जनसैलाब के सहयोग और विश्वास के कारण ही भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद से लोहा लेने के लिए अहिंसक सविनय अवज्ञा को शक्ति और वैधता मिली।

अंतिम विश्लेषण करें, तो बापूजी व्यापक किस्म की सामाजिक समस्याओं पर एक प्रभावी, चिरस्थायी और प्रिय संचारक बन सके। ऐसी समस्याएँ अनंत काल से चली आ रही है और सभी प्रकार के सामाजिक और आर्थिक वर्गों में देखने को मिलती है। इन समस्याओं की सार्वभौमिक प्रकृति के कारण ही उनकी बातें युवाओं और बुजुर्गों, पुरुषों के साथ ही स्त्रियों, भारतीयों के साथ ही अन्य देशों के लोगों के बीच प्रभाव छोड़ती थी। अहिंसा, सत्याग्रह और स्वावलंबन के उनके प्रसिद्ध दर्शन का भी उनकी संवाद शैली पर गहरा प्रभाव था। बापूजी ने

अपने विचारों को रखने के लिए कभी चेतावनियों या अपने विरोधियों के नकारात्मक पहलुओं का इस्तेमाल अपनी दलीलों या दर्शन के प्रचार के लिए नहीं किया। संभवत: इस मामले में वह अनोखे थे और आज भी अनूठे हैं।

कई लोग ऐसी दलील दे सकते हैं कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने बापूजी को एक सफल संचारक बनने का महत्त्वपूर्ण खाका उपलब्ध कराया। वे पूछेंगे—यदि अंग्रेजों से आजादी हासिल करने का हम सबका लक्ष्य समान नहीं होता तो क्या बापूजी का संवाद सफल हो पाता? मेरे विचार से बापूजी का संदेश आनेवाले समय में भी बना रहेगा और पसंद किया जाएगा। जब तक सामाजिक अन्याय और असमानता की समस्याएँ रहेंगी, तब तक उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। इन समस्याओं को लेकर उनकी बातें आज भी गूँजती हैं। इन समस्याओं की प्रासंगिकता जैसी कल थी, वैसी ही आज भी है—संभवत: आज पहले से भी अधिक है। उन्होंने जिस प्रकार करोड़ों भारतीयों का विश्वास जीता, वही अहिंसक सविनय अवज्ञा आंदोलन की प्रमुख प्रेरक शक्ति बना, जिसका अंग्रेजी शासन से हमें आजादी दिलाने में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

बापूजी के जीवन-दर्शन के सभी मुख्य विचार निस्स्वार्थ थे। जीवन भर बापूजी प्रेम, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, निडरता और रोटी के लिए श्रम के दर्शन के अपने सिद्धांतों के साथ जिए और उन पर प्रयोग करते रहे। ठोस काररवाई से बापूजी अपने जीवन-दर्शन को व्यवहार में लाने के लिए संघर्ष करते रहे। वह जो कहते, उसे लगातार व्यवहार में लाने के माध्यम से, अपने विचारों, शब्दों और कर्मों के बीच महत्त्वपूर्ण तालमेल बनाकर चलते रहे। इसने उनमें अपनी धारणा पर अडिग रहने का असाधारण साहस भर दिया। उन्हें सुनने वालों को उनकी धारणा के दृढ़ साहस, निर्भयता और सत्य के प्रति संपूर्ण आग्रह का अहसास होता था, और शायद यही कारण था कि वे उन पर विश्वास करते थे और ऐसा मानते थे कि वह उन्हें कभी गुमराह नहीं करेंगे।

यदि मैंने ऐसी घटनाओं के विषय में नहीं बताया, जहाँ बापूजी का संवाद विफल रहा तो मेरा विश्लेषण अधूरा और पक्षपातपूर्ण कहा जाएगा। जिन्ना को वह इस बात के लिए नहीं मना सके कि वह भारत का बँटवारा न करें और उनकी यह विफलता उनके दो सबसे बड़े पछतावों में से एक है। उनकी दूसरी विफलता यह थी कि वे अपने सबसे बड़े बेटे हीरालाल के साथ प्रभावी संवाद स्थापित नहीं कर सके। जहाँ जिन्ना को मनाने में बापूजी की विफलता को मैं पूरी तरह समझाने में असमर्थ हूँ, वहीं अपने परिवार और अपने करीबी राजनीतिक सहयोगियों से उनकी बातचीत को लेकर मेरा अपना ही विचार है। सामाजिक प्रयोगों में अपनी सफलता के कारण बापूजी में विश्वास की दृढ़ता का अत्यधिक साहस उत्पन्न हो गया था। अपने परिवार के संदर्भ में विश्वास की दृढ़ता का उनका यह साहस किसी भी विरोधी मत के प्रति निरंकुश असहिष्णुता के रूप में सामने आता था। उन्होंने अपने सबसे बड़े बेटे, युवा हीरालाल को कानून की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड जाने की अनुमति नहीं दी, जबकि उन्हें स्कॉलरशिप मिल चुकी थी। उन्होंने अपने चारों बेटों को अपना आदेश मानने के लिए विवश (उन्होंने उन्हें कोई दूसरा विकल्प नहीं दिया) कर दिया; अपनी सारी पुश्तैनी संपत्ति दान कर दी और आखिर में बापूजी ने कस्तूरबा को अपनी जीवनशैली को अपनाने पर मजबूर कर दिया, जो दिखाता है कि वह एक असहिष्णु और परिवार के निरंकुश मुखिया थे। राजनीतिक क्षेत्र में देखें तो बापूजी ने सुभाष बोस को इस हद तक विवश किया कि उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा। बापूजी की ऐसी भूमिका न केवल समझ से परे है, बल्कि अक्षम्य भी है। वर्ष १९३९ में सुभाष बोस को बापूजी की सहायता के बिना और बापूजी के उम्मीदवार (पट्टाभि सीतारमैया) के विरुद्ध दूसरी बार कांग्रेस अध्यक्ष चुना गया। मेरे विचार से इस एक कृत्य से बापूजी ने पार्टी के भीतर लोकतंत्र के सिद्धांत को तिलांजलि दे दी और आगे चलकर नेहरूजी ने जिस प्रकार सुभाष बोस को नीचा दिखाया, उसे रोकने के लिए भी कुछ नहीं किया। आखिर में, बापूजी की वह विफलता भी मेरी समझ से परे है, जब उन्होंने यह नहीं बताया कि उनके सामने ऐसी क्या मजबूरी थी, यदि कोई थी, जिसके कारण उन्होंने १५ प्रदेश कांग्रेस समितियों में से १२ के उस निर्णय को अमान्य करार दे दिया, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री के रूप में सरदार वल्लभ भाई पटेल को अपनी पहली पसंद के रूप में चुना था और जवाहरलाल नेहरू की उम्मीदवारी को थोप दिया। बापूजी ने जिस समय (१९४६) में ऐसा किया, उस समय वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई.एन.सी.) के सदस्य तक नहीं थे। बापूजी ने १९३४ में आई.ए.सी. से इस्तीफा दे दिया था। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने स्पष्ट रूप से बता दिया था कि आई.एन.सी. कोई राजनीतिक दल नहीं है और उसे भंग कर दिया जाना चाहिए।

प्रभावी संवाद तब होता है, जब किसी में अपने मत पर दृढ़ रहने का साहस होता है और वह किसी विचार को लेकर पूरी तरह सहज रहता है। अधिकांश मामलों में, स्पष्ट रूप से संवाद की कमी का प्रमुख कारण ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं, जिनमें संवाद करने वाला अपनी धारणाओं के विपरीत बात कहने पर मजबूर हो जाता है। यह मानते हुए कि बापूजी एक बेहतरीन संचारक थे, मैं १९३९ की बोस की घटना और १९४६ की सरदार पटेल की घटना को बापूजी के निर्णय लेने की चूक (वह मनुष्य ही तो थे) मानता हूँ, जिसे उन्होंने अपना पक्ष न रखकर और उलझा दिया, जबकि सामान्य रूप से वे स्पष्टवादी थे और अपने सभी प्रकार के संवाद में पारदर्शिता रखते थे।

ये मेरे व्यक्तिगत विचार हैं, जो जीवन में अपने व्यक्तिगत अनुभवों और अपनी माता, अपने पिता (प्रो. गजानन कुलकर्णी), अपनी दादी (निर्मला रामदास गांधी) और मेरे जुड़वाँ भाई रामचंद्र कुलकर्णी से अकसर होने वाली बातचीत पर आधारित हैं।

सा अ

बी-३-१३०३, एल. एंड टी. साउथ सिटी
अरेकरे एम.आई.सी.ओ. लेआउट
बेंगलुरु-५६००७६
दूरभाष : ९४४९९८८८१३



गांधी और स्वच्छता

• विंदेश्वर पाठक

स्वच्छता का संबंध साफ-सफाई से है। यह आभ्यंतर और बाह्य दो प्रकार की होती है। आभ्यंतर स्वच्छता का संबंध व्यक्ति के आध्यात्मिक एवं मानसिक आचार-व्यवहार से है। बाह्य स्वच्छता घर-द्वार, पास-पड़ोस और पर्यावरण की है। आज यह व्यक्ति-स्तर पर, सामाजिक स्तर पर और राष्ट्र के स्तर पर एक व्यापक चर्चा और कार्य का विषय बन चुकी है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के लिए भी स्वच्छता एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा था। उन्होंने किसी भी सभ्य और विकसित मानव-समाज के लिए इसके उच्च मानदंड की आवश्यकता को समझा। यद्यपि बचपन में ही उन्होंने भारतीयों में स्वच्छता के प्रति उदासीनता की कमी को महसूस कर लिया था, पश्चात् उनमें यह समझ पश्चिमी समाज में उनके पारंपरिक मेलजोल और अनुभव से विकसित हुई। अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के दिनों से लेकर भारत आने तक और अपने पूरे जीवन-काल में निरंतर बिना थके वे स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक करते रहे तथा उनसे साफ-सफाई रखने पर जोर देते रहे।

सन् १८९५ में ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों और एशियाई व्यापारियों से उनके स्थानों को गंदा रखने के आधार पर भेदभाव किया था। एतदर्थ महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान इस विषय पर स्पष्टत: कहा था, 'स्वतंत्रता से अधिक महत्त्वपूर्ण स्वच्छता है।'

भारत में गांधीजी ने गाँव की स्वच्छता के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से पहला भाषण १४ फरवरी, १९१६ में मिशनरी-सम्मेलन के दौरान दिया था। उन्होंने वहाँ कहा था—''देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा की सभी शाखाओं में जो निर्देश दिए गए हैं, मैं स्पष्ट कहूँगा कि उन्हें आश्चर्यजनक रूप से समूह कहा जा सकता है। गाँव की स्वच्छता के सवाल को बहुत पहले हल कर लिया जाना चाहिए था।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१३, पृष्ठ-२२२)*

लोक-सेवक-संघ के संविधान-मसौदे में उन्होंने कार्यकर्ताओं के संबंध में जो लिखा था, वह इस प्रकार है, ''कार्यकर्ता को गाँव की स्वच्छता और सफाई के बारे में जागरूक करना चाहिए और गाँव में फैलनेवाली बीमारियों को रोकने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने चाहिए।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-९०, पृष्ठ-५२८)*



सुप्रसिद्ध क्रियाशील समाजशास्त्री तथा समाज-सुधारक। सन् १९७० में सुलभ इंटरनेशनल की स्थापना की। आज इस संस्था के पचास हजार समर्पित स्वयंसेवक हैं। पाठकजी भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण तथा एनर्जी ग्लोब पुरस्कार, इंदिरा गांधी पुरस्कार, स्टॉकहोम वाटर पुरस्कार एवं अन्य पुरस्कारों से समादृत।

प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के लिए मसौदा (मॉडल नियमों) में उन्होंने पंचायत की भूमिका को रेखांकित किया और लिखा, ''गाँव में रहनेवाले प्रत्येक बच्चे, पुरुष या स्त्री की प्राथमिक शिक्षा के लिए, घर-घर में चरखा पहुँचाने के लिए तथा संगठित रूप से सफाई और स्वच्छता के लिए पंचायत की जिम्मेदारी होनी चाहिए।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१९, पृष्ठ-२१७)*

गांधीजी सन् १९१५ में जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर भारत-यात्रा शुरू की। इसी क्रम में वे पहले कविगुरु रवींद्रनाथ टैगोर से मिलने कोलकाता (कलकत्ता) गए और फिर महात्मा मुंशीराम से मिलने हरिद्वार आए। गांधीजी ने अपनी हस्तलिखित डायरी में कलकत्ता और हरिद्वार में मैला साफ करने के लिए गड्ढे खोदने और मल को स्वयं मिट्टी से ढकने का उल्लेख किया है। डायरी में उन्होंने लिखा है कि ''ऋषिकेश और लक्ष्मण झूले के प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसंद आए। परंतु दूसरी ओर मनुष्य की कृति को वहाँ देख चित्त को शांति न मिली। हरिद्वार की तरह ऋषिकेश में भी लोग रास्तों और गंगा के सुंदर किनारों को गंदा कर डालते थे। गंगा की पवित्रता बिगाड़ते उन्हें कुछ संकोच न होता था। लोग दिशा-जंगल जानेवाले आम जगह और रास्तों पर ही बैठ जाते थे, यह देखकर मेरे चित्त को बड़ी चोट पहुँची।''

हरिद्वार जैसे धर्म-स्थलों पर भौतिक और नैतिक गंदगी के बारे में गांधीजी ने अपनी डायरी में लिखा था कि ''निस्संदेह यह सच है कि हरिद्वार और दूसरे प्रसिद्ध तीर्थस्थान एक समय वस्तुत: पवित्र थे। लेकिन मुझे कबूल करना पड़ता है कि हिंदू-धर्म के प्रति मेरे हृदय में गंभीर श्रद्धा है और प्राचीन सभ्यता के लिए स्वाभाविक आदर होते हुए भी हरिद्वार

में इच्छा रहने पर भी मनुष्यकृत ऐसी एक भी वस्तु नहीं देख सका, जो मुझे मुग्ध कर सकती।''

सन् १९१७ में नील की खेती करनेवाले किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए गांधीजी चंपारण गए थे (१० अप्रैल, १९१७ को बाँकीपुर, (पटना) स्टेशन उतरे थे)। जाँच-दल के रूप में तैनात एक गोपनीय पत्र में उन्होंने उस स्थिति में स्वच्छता की महत्ता को बताया। गांधीजी चाहते थे कि अँगरेज-प्रशासन उनके कार्यकर्ताओं को स्वीकार करे, ताकि वे समाज में शिक्षा और सफाई के कार्यों को भी शुरू कर सकें। इस बारे में उन्होंने कहा, ''क्योंकि वे गाँवों में ही रहते हैं, इसलिए वे गाँव के लड़के और लड़कियों को सिखा सकते हैं और वे स्वच्छता के बारे में उन्हें जानकारी भी दे सकते हैं।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१३, पृष्ठ-३९३)*

गांधीजी रेलवे के तृतीय श्रेणी के डिब्बे में बैठकर पूरे देश की यात्रा करते थे। वे भारतीय रेलवे के तीसरी श्रेणी के डिब्बे की गंदगी से स्तब्ध और भयभीत थे। २५ सितंबर, १९१७ को सबका ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, ''इस तरह की संकट की स्थिति में तो यात्री-परिवहन को बंद कर देना चाहिए, लेकिन जिस तरह की गंदगी और स्थिति इन डिब्बों में है, उसे जारी नहीं रहने दिया जा सकता, क्योंकि वह हमारे स्वास्थ्य और नैतिकता को प्रभावित करती है। निश्चित तौर पर तीसरी श्रेणी के यात्री को जीवन की बुनियादी जरूरतें हासिल करने का अधिकार तो है ही। तीसरे दर्जे के यात्री की उपेक्षा कर हम लाखों लोगों को व्यवस्था, स्वच्छता, शालीन जीवन की शिक्षा देने, सादगी और स्वच्छता की आदतें विकसित करने का बेहतरीन मौका गँवा रहे हैं।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१३, पृष्ठ-२६४, ५५०)*

गांधीजी ने धार्मिक स्थलों में फैली गंदगी की ओर भी ध्यान दिलाया था। ३ नवंबर, १९१७ को गुजरात-राजनीतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, ''पवित्र तीर्थ-स्थान डाकोर यहाँ से बहुत दूर नहीं है। मैं वहाँ गया था। वहाँ की पवित्रता की कोई सीमा नहीं है। मैं स्वयं को वैष्णव-भक्त मानता हूँ, इसलिए मैं डाकोरजी की स्थिति की विशेष रूप से आलोचना कर सकता हूँ। उस स्थान पर गंदगी की ऐसी स्थिति है कि स्वच्छ वातावरण में रहनेवाला कोई व्यक्ति वहाँ २४ घंटे तक भी नहीं ठहर सकता। तीर्थ-यात्रियों ने वहाँ टैंकरों और गलियों को प्रदूषित कर दिया है।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१४, पृष्ठ-५७)*

इसी तरह 'यंग इंडिया' में ३ फरवरी, १९२७ को उन्होंने बिहार के पवित्र शहर गया की गंदगी के बारे में भी लिखा और यह स्पष्ट किया कि उनकी हिंदू आत्मा गया के गंदे नालों में फैली गंदगी और बदबू के खिलाफ बगावत करती है।

स्वच्छता और शौचालय के संबंध में गांधीजी के विचार

महात्मा गांधी कहा करते थे कि आरोग्य रहने के लिए स्वच्छता जरूरी है, पर सफाई का मतलब नहाना भर नहीं है। नहाने का अर्थ है, शरीर का मैल साफ करके त्वचा के छिद्रों को खोलना। इसमें बच्चों और बड़ों दोनों में लापरवाही दिखाई देती है। छोटे बच्चों में आमतौर पर होनेवाली बीमारियाँ रोज आँख और नाक को साफ पानी और कपड़े से साफ न कर देने का नतीजा है। पहने हुए कपड़ों से ही नाक, हाथ वगैरह पोंछने और उनमें रोटियाँ या खाने की दूसरी चीजें बाँध लेना बड़ी गंदी आदत है। सार्वजनिक स्थानों में थूकना, मल-मूत्र त्याग करना और कूड़ा फेंकना अनेक बीमरियों को न्योता देने जैसा है।

ज्यादातर लोग शौचालय की सफाई का नाम सुनकर ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं, लेकिन महात्मा गांधी अपने शौचालय की सफाई खुद करते थे। रोजाना सुबह चार बजे उठकर सर्वप्रथम वे अपने आश्रम की सफाई किया करते थे। वर्धा-आश्रम में उन्होंने अपना शौचालय स्वयं बनाया था और इसे प्रतिदिन साफ करते थे। एक बार उन्होंने कहा था, ''जिस नगर में साफ संडास नहीं हो और सड़कें तथा गलियाँ चौबीसों घंटे साफ नहीं रहती हों, वहाँ की नगरपालिका इस काबिल नहीं है कि उसे चलने दिया जाए। नगरपालिकाओं की सबसे बड़ी समस्या गंदगी है।''

गांधी : स्वच्छता एवं अस्पृश्यता

सफाई को भगवान् की पूजा से भी अधिक महत्त्व देनेवाले गांधीजी ने अपने बचपन में ही भारतीयों में स्वच्छता के प्रति उदासीनता को महसूस कर लिया था। एक बार एक अँगरेज ने महात्मा गांधी से पूछा, ''यदि आपको एक दिन के लिए भारत का बड़ा लाट (वायसराय) बना दिया जाए तो आप क्या करेंगे?'' गांधीजी ने कहा, ''राजभवन के पास जो गंदी बस्ती है, मैं उसे साफ करूँगा।'' अँगरेज ने फिर पूछा, ''मान लीजिए कि आपको एक और दिन उस पद पर रहने दिया जाए तब?'' गांधीजी ने फिर कहा, ''दूसरे दिन भी वही करूँगा। जब तक आप लोग अपने हाथ में झाड़ू और बाल्टी नहीं लेंगे, तब तक आप अपने नगरों को साफ नहीं रख सकते।''

गांधीजी को अस्पृश्यता से घृणा थी। उन्होंने भारतीय समाज में सदियों से मौजूद अस्पृश्यता की कुरीति और व्याप्त जाति-प्रथा का विरोध किया। उस वक्त सफाई करनेवाले जाति के लोगों को गाँवों से बाहर रखा जाता था। उनकी बस्तियाँ बहुत ही खराब, मलिन और गंदगी से भरी हुई थीं। समाज में हेय समझे जानेवाले वे लोग गरीबी और शिक्षा की कमी की वजह से ऐसी बुरी स्थिति में रहते थे। गांधीजी उन मलिन बस्तियों में गए। वहाँ के अस्पृश्य समझे जानेवाले लोगों को गले लगाया और अपने साथ गए अन्य नेताओं और कार्यकर्ताओं को भी वैसा करने के लिए कहा। गांधीजी चाहते थे कि इन लोगों की स्थिति सुधरे और वे भी समाज की मुख्यधारा में शामिल हों। उन्होंने पूरे भारत में छात्रों सहित सभी से ऐसी मलिन बस्तियों के लोगों की मदद करने के लिए कहा।

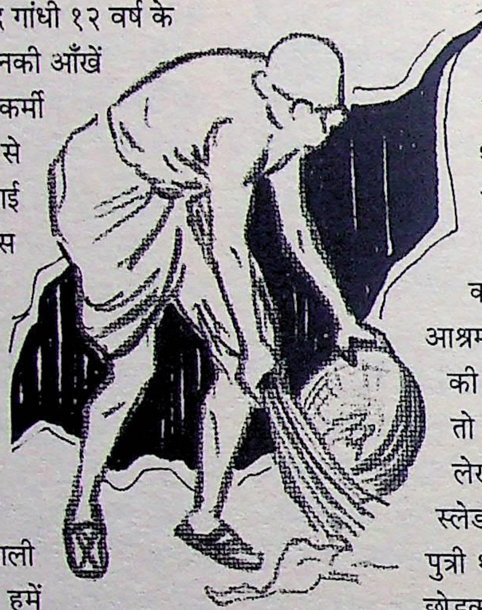
भारत लौटने के बाद गांधीजी ने कलकत्ता के कांग्रेस-अधिवेशन में भाग लिया। वहाँ की भयानक गंदगी देखकर वे अचंभित हो गए। कुछ प्रतिनिधियों ने अपने कमरे के सामने के बरामदे को शौचालय जैसा बना रखा था। जब गांधीजी ने इसके बारे में पूछा तो प्रतिनिधियों ने कहा कि यह साफ करना उनका कार्य नहीं, बल्कि सफाईकर्मी का है। इसके बाद गांधीजी ने जो किया, वह अप्रत्याशित था। उन्होंने एक झाड़ू ली और पूरी

गंदगी साफ कर डाली। सारे लोग दंग रह गए।

वर्षों बाद कांग्रेस के स्वयंसेवकों ने सफाई के लिए दस्ते बनाने शुरू किए। उसमें अनेक ब्राह्मण भी शामिल हुए। जब गुजरात के हरिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन होना था, उस दौरान दो हजार से अधिक शिक्षकों तथा छात्रों को सफाई-कार्य के लिए प्रशिक्षण दिया गया।

बचपन से बालक मोहनदास के मन में अपनी माँ के प्रति अगाध स्नेह-सम्मान था, किंतु उन्होंने छोटी आयु में एक बार उनकी उस बात का विरोध किया, जब माँ ने सफाई करनेवाले कर्मचारी को न छूने और उससे दूर रहने के लिए कहा था।

एक बार की बात है, जब मोहनदास करमचंद गांधी १२ वर्ष के थे तो उनका सामना ऐसी स्थिति से हुआ, जिसने उनकी आँखें खोल दीं। उनके नगर में ऊका नाम का सफाईकर्मी स्कैवेंजिंग का कार्य करता था। उनका स्पर्श ऊका से हो गया। इसपर उनकी अत्यंत धार्मिक माँ पुतलीबाई बहुत क्रोधित हुईं और उन्होंने बालक मोहनदास को कई बार नहलाया। गांधीजी माँ के अत्यंत आज्ञाकारी थे, पर यह बात वे सहन नहीं कर सके। उन्होंने माँ से कहा, ''ऊका गंदगी की सफाई कर हमारी सेवा करता है, उसके छूने से मैं कैसे अपवित्र हो सकता हूँ? मैं आपकी अवज्ञा नहीं करूँगा, मगर 'रामायण' में बताया गया है कि राम ने गुह नाम के चांडाल (अस्पृश्य मानी जानेवाली जाति) को अपने गले लगाया था। 'रामायण' हमें भ्रमित नहीं कर सकता है।'' माँ पुतलीबाई कोई जबाव नहीं दे सकीं।



२० वर्ष की आयु के बाद जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका गए तो वहाँ उनको बहुत सारी वास्तविकताओं से परिचित होना पड़ा। उन्होंने बहुत कुछ सीखा। ऐसी ही उनकी एक सीख स्कैवेंजिंग की थी। वहाँ उनके मित्र उन्हें 'महान् स्कैवेंजर' कहा करते थे। इसपर गांधी कहते थे, 'हर किसी को अपना स्कैवेंजर होना चाहिए।' उन्होंने अपनी पत्नी कस्तूरबा को भी स्वयं अपना स्कैवेंजर बनने को कहा।

दक्षिण अफ्रीका के 'फीनिक्स आश्रम' के सहवासियों को अपना शौचालय स्वयं साफ करना होता था। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि स्वच्छता और सफाई प्रत्येक व्यक्ति का काम है। वह हाथ से मैला साफ कर उसे सिर पर ढोने और किसी एक जाति के लोगों द्वारा ही सफाई करने की प्रथा को समाप्त करना चाहते थे।

गांधीजी ने भारतीय समाज में सफाई करने और मैला ढोनेवालों द्वारा किए जानेवाले अमानवीय कार्य पर तीखी टिप्पणी की, उन्होंने कहा, ''हरिजनों में गरीब सफाई करनेवाला या 'भंगी' समाज में सबसे नीचे खड़ा है, जबकि वह सबसे महत्त्वपूर्ण है। अपरिहार्य होने के नाते समाज में उसका सम्मान होना चाहिए। 'भंगी' जो समाज की गंदगी साफ करता है, उसका स्थान माँ की तरह होता है। जो काम एक भंगी दूसरे लोगों की गंदगी साफ करने के लिए करता है, वह काम अगर अन्य लोग भी करते तो यह बुराई कब की समाप्त हो जाती।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-५४, पृष्ठ-१०९)*

(भंगी शब्द का प्रयोग सांविधानिक रूप से प्रतिबंधित है।) देश में तथाकथित स्कैवेंजरों और अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति को देखकर कदाचित् महात्मा गांधी ने कहा था, ''शायद मेरा पुनर्जन्म नहीं हो, किंतु यदि ऐसा होता है, तब मेरी इच्छा है कि मेरा जन्म स्कैवेंजरों के परिवार में हो, जिससे मैं सिर पर मैला ढोने के अमानवीय, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा घृणित कार्य से उन्हें मुक्ति दिला सकूँ।''

स्वच्छता और अस्पृश्यता पर गांधीजी के विचार अत्यंत तीक्ष्ण थे। उनके आश्रम में हर किसी को शौचालय की सफाई करनी होती थी। इनमें केवल भारत के ही नहीं, विदेश से आनेवाले अतिथि भी शामिल थे। इन्हीं में एक अमेरिकी युवती सुश्री नीला क्रैम कुक भी थी, जो एक लेखक की पुत्री भी थीं। वह भारत की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करने यहाँ आई थीं। उन्होंने वर्धा और साबरमती के आश्रमों में कुछ समय बिताया। वहाँ वह स्वयं शौचालय की सफाई करती थीं। जब वह लौटकर अपने देश गईं तो उन्होंने अपने इन अनुभवों पर प्रेरक एवं मार्मिक लेख लिखे। ऐसी ही एक-दूसरी महिला मैडलिन स्लेड थीं, जो ब्रितानी नौसेना के एक एडमिरल की पुत्री थीं। वह गांधीजी से इतना प्रभावित हुईं कि इंग्लैंड छोड़कर भारत आईं और गांधीजी के आश्रम में रहने लगीं। वह आश्रम में शौचालय का चैंबर पॉट खुद साफ करती थीं। गांधीजी ने उन्हें 'मीराबेन' का नाम दिया।

गांधी और स्वच्छता-शिक्षा

सन् १९०१ में गांधीजी ने कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में स्वयं अपना मैला साफ करने की पहल की थी। सन् १९१८ में जब उन्होंने साबरमती आश्रम शुरू किया तो उसमें पेशेवर सफाईकर्मी लगाने के बजाय आश्रमवासियों को अपना मैला साफ करने का नियम बनाया। कई लोगों ने गांधीजी को पत्र लिखकर आश्रम में उनके साथ रहने की इच्छा जाहिर की थी। इस बारे में उनकी पहली शर्त होती थी कि आश्रम में रहनेवालों को आश्रम की सफाई का काम करना होगा, जिसमें शौच का वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण करना भी शामिल है।

गांधीजी का कहना था कि हमें पश्चिमी देशों में सफाई रखने के तरीकों को सीखना चाहिए और उनका उसी तरह पालन करना चाहिए। २१ दिसंबर, १९२४ को बेलगाँव में अपने नागरिक-अभिनंदन-समारोह में कहा था, ''हमें पश्चिम में नगरपालिकाओं द्वारा की जानेवाली सफाई-व्यवस्था से सीख लेनी चाहिए, पश्चिमी देशों ने कॉर्पोरेट स्वच्छता और सफाई-विज्ञान किस तरह विकसित किया है, उससे हमें काफी कुछ सीखना चाहिए, पीने के पानी के स्रोतों की उपेक्षा जैसे अपराध को रोकना होगा।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-२५, पृष्ठ-४६१)*

गांधीजी ने स्कूली और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में स्वच्छता को तुरंत शामिल करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। २० मार्च, १९१६ को गुरुकुल काँगड़ी में दिए गए भाषण में उन्होंने कहा था, ''गुरुकुल के बच्चों के लिए स्वच्छता और सफाई के नियमों के ज्ञान के साथ ही उनका पालन करना भी प्रशिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। इन अदम्य स्वच्छता-निरीक्षकों ने हमें लगातार चेतावनी दी कि स्वच्छता के संबंध में सबकुछ ठीक नहीं है, मुझे लग रहा है कि स्वच्छता पर आगंतुकों के लिए वार्षिक व्यावहारिक सबक देने के सुनहरे मौके को हमने खो दिया।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-१३, पृष्ठ-२६४)*

सन् १९२० में गांधीजी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। यह विद्यापीठ आश्रम की जीवन-पद्धति पर आधारित था, इसलिए वहाँ शिक्षकों, छात्रों और अन्य स्वयंसेवकों तथा कार्यकर्ताओं को प्रारंभ से ही स्वच्छता के कार्य में लगाया जाता था। यहाँ के रिहायशी क्वार्टरों, गलियों, कार्यालयों, कार्य-स्थलों और परिसरों की सफाई दिनचर्या का हिस्सा था। गांधीजी यहाँ आनेवाले हर नए व्यक्ति को इस संबंध में विशेष रूप से बताते थे।

उन्होंने स्वच्छता के लिए शिक्षा के पक्ष में स्पष्ट रुख ले लिया था। इस संदर्भ में सन् १९३३ में उन्होंने लिखा, ''शिक्षा देने के लिए तीन आर (Read Write and Arithimetic) का ही ज्ञान होना काफी नहीं है। शिष्टाचार और स्वच्छता तीनों आर की शिक्षा से पहले अपरिहार्य है।'' *(गांधी वाङ्मय, भाग-५६, पृष्ठ-११)*

संक्षेप में कहें तो गांधी का जीवन राजनीतिक गतिविधियों के तूफान में था, मगर उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के एजेंडे को कभी भी अपने ध्यान से ओझल नहीं होने दिया। उनके लिए राष्ट्रीय स्वतत्रंता-प्राप्त करना मात्र आधी कहानी थी। वे इसके साथ-साथ जाति और पेशे पर आधारित संस्थागत सामाजिक विभेद से कलुषित व्यवस्था को सुधारना चाहते थे। उन्हें अस्पृश्यता में एक ऐसा भयानक 'न्यूरो-सोशल ट्यूमर' दिखता था, जो मानव-सभ्यता के जीवन-तत्त्वों का नाश कर सकता है। महात्मा गांधी के लिए स्वच्छता-व्यवस्था और अस्पृश्यता-उन्मूलन एक समग्र मूल्य, सुचिंतित रणनीति और जीवनभर चलनेवाले मिशन थे। सा अ

सुलभ ग्राम, महावीर एन्क्लेव
पालम-डाबरी रोड, दिल्ली-११००४५
sulabhinfo@gmail.com
दूरभाष : ०११-४५५१६५६५

महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन : प्रथम अनुभूति

• प्रकाशवती

उस दिन महात्मा गांधी हमारी बस्ती के पास आनेवाले थे। लोगों का पूरा दिन तैयारियों और सतर्कता में कटा। देश की आजादी उस समय एक ऐसा प्रश्न था, जिसे स्वीकारने में आम जनता ऊपर से भयभीत और मन-ही-मन आनंदित होती थी।

समय एवं स्थान की ठीक-ठीक याद नहीं है, मगर उसके बाद ही स्वराज्य का काम जोरों पर चल पड़ा था। स्थान था कोई अधबनी इमारत, जिसके चारों ओर सघन हरियाली में पेट्रोमैक्स की झकाझक रोशनी में खादी के शुभ्र मंच पर कई मालाएँ रखी थीं। और सहसा ही मेरे कच्चे दूध-से उत्साही उबाल पर नीबू की दो बूँद की तरह यह बात बड़ी निर्ममता से पड़ी कि जिसके पास खादी के कपड़े नहीं, वे गांधीजी के सामने नहीं जा सकते।

मुझे आज भी याद है, भरी शाम को रोते-रोते मैं सो गई थी। उस समय खादी का एक फ्रॉक भी कोई देता तो अपने सभी कीमती कपड़े मैं उसे दे देती।

नींद से जगाकर मेरी दादी ने कहा, ''चली चल, गांधीजी को देखने चल रहे हैं।'' मैं ललक तो अवश्य गई, लेकिन फिर खादीवाली वही कमी खटकते ही उनका हाथ छुड़ाकर भीड़ में दुबककर बैठ गई...मैंने चकित होकर देखा था—दुबले-पतले नंगे बदन केवल एक धोती बाँधे गांधीजी मनोयोग से सूत कात रहे थे, जैसे वे इस सभा और इस कोलाहल से एकदम अलग हों। मेरे लिए इससे भी बड़ा आश्चर्य था कि खुले मैदान में पुरुषों की बराबरी में बैठी हमारे गाँव की सब-की-सब असूर्यपश्याएँ मुँह खोले एक महिला का भाषण सुन रही थीं।

उसके बाद गांधीजी उठे। उनके कमर की धोती से लटकती एक घड़ी भी रोशनी में चमकी; और एक तुमुल जयघोष हुआ—'महात्मा गांधी की जय!' गांधीजी को मालाएँ पहनाई गईं और मेरे कलेजे पर साँप लोटता रहा।

बापू ने क्या-क्या कहा, कुछ पल्ले नहीं पड़ा; मगर बात महिलाओं की परदा-प्रथा और आजादी को लेकर ही कही जा रही थी। हरिजन की समस्याएँ सुलझाई जा रही थीं, इतना ही भर याद है। सा अ

(श्री शंकरदयाल सिंह की पुस्तक 'महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति' से साभार)

गांधीजी का अर्थचिंतन एवं अर्थव्यवहार

• बजरंग लाल गुप्ता



सुप्रसिद्ध लेखक-चिंतक। महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी, अजमेर के बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य; पी.आर.आई., चंडीगढ़ के पूर्व-निदेशक; आई.सी.एस.एस. आर. सेंट्रल कंज्यूमर प्रोटेक्शन काउंसिल तथा केंद्रीय हिंदी समिति के पूर्व सदस्य।

अकादमिक रूप से गांधीजी भले ही अर्थशास्त्री नहीं थे, इसीलिए आधुनिक आर्थिक चिंतन के चौखटे में उनके विचार फिट होते हुए दिखाई नहीं देते हैं। परंतु उपलब्ध संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति के साथ ताल-मेल बिठाते हुए देश के जन-सामान्य की मूलभूत आवश्यकताओं की दीर्घकाल तक पूर्ति कैसे होती रहे, इसके संबंध में उनकी दृष्टि एवं तदनुसार दिया गया परामर्श अद्‌भुत एवं सारगर्भित है। गांधीजी ने अर्थव्यवस्था के संबंध में एक नई दृष्टि, चिंतन एवं सर्वसामान्य लोगों के द्वारा करणीय आवश्यक जीवन व्यवहारों के संबंध में बहुत ही सटीक एवं व्यावहारिक बातें कही हैं। इसीलिए इस संपूर्ण विवेचन को गांधीजी का अर्थचिंतन एवं अर्थ-व्यवहार कहना अधिक उपयुक्त होगा। उनके आर्थिक चिंतन की मुख्य बातों को संक्षेप में नीचे दिया गया है—

ग्राम-स्वराज्य

गांधीजी ने ग्राम-स्वराज्य पर बहुत बल दिया है। उनके अनुसार ग्राम-स्वराज्य का अर्थ है पूर्ण प्रजातंत्र, अपनी जरूरत की तमाम वस्तुओं, जैसे अनाज, कपड़े आदि का खुद ही उत्पादन करना। ग्रामवासी अपनी जरूरतों के लिए दूसरों पर निर्भर न रहें बल्कि आवश्यकता पड़ने पर दूसरों की जरूरतों को पूरा करने में भी सहयोग करें। उनकी कल्पना के अनुसार गाँव में पशुओं के लिए चरागाह, खेलकूद के मैदान, नाट्‌यशाला, सार्वजिनक भवन, पीने का पानी आदि का काम गाँव में ही हो सके। ग्राम-स्वराज्य में जाति-पाँति के आधार पर छुआछूत और भेदभाव नहीं होगा। गाँव में कला और कारीगरी का इस प्रकार विकास किया जाना चाहिए, जिससे उनकी पैदा की हुई चीजों को उचित कीमत मिल सके और इस प्रकार गाँव के लोगों को पर्याप्त आय हो सके। ग्राम-स्वराज्य की कल्पना के अनुसार गाँव की पुनर्रचना का काम काम-चलाऊ नहीं बल्कि स्थायी होना चाहिए। उद्योग, हुनर, तंदुरुस्ती और शिक्षा इन चारों का सुंदर समन्वय होना चाहिए। ग्राम-स्वराज्य में पंचायत व्यवस्था का बड़ा महत्त्व है, इसमें निर्णय सर्वसहमति से हो, तभी वह सच्ची लोकशाही होगी और कम खर्च में शीघ्र व सही न्याय मिल सकेगा।

ग्रामस्वराज्य राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में सबके सहयोग से सबके हित की रचना को मूर्तरूप प्रदान करेगा। ग्राम-स्वराज्य में राज्य का अंत नहीं होता, परंतु राज्य का विकेंद्रीकरण होता है। गांधीजी ने कहा था, "सच्चा लोकतंत्र केंद्र में बैठे हुए २० व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता, उसे प्रत्येक गाँव के लोगों के द्वारा नीचे से चलाना होगा।"

गांधीजी की दृष्टि में—"स्वराज्य का अर्थ है सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र रहने का निरंतर प्रयास, फिर वह विदेशी सरकार हो या राष्ट्रीय सरकार हो। यदि देश के लोग जीवन की हर बात की व्यवस्था और नियमन के लिए राज्य सरकार की ओर ताकने लगें तब तो उसका कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्राम-स्वराज्य एक सरल और सादगी भरी ग्राम-व्यवस्था है, जिसका केंद्र मनुष्य है, जो शोषण रहित है और विकेंद्रित है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को काम देने का प्रबंध करती है और जीवन की अन्न-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा अन्य आवश्यकताओं को स्वावलंबन के आधार पर प्राप्त करने का प्रयास करती है। गांधीजी ने समझाया था कि स्वराज्य से उनका अभिप्राय लोक-सहमति के अनुसार चलनेवाले देश के शासन से है। गांधीजी ने भारत के लिए रामराज्य शब्द का प्रयोग किया है। रामराज्य का अर्थ है—शुद्ध नैतिक सत्ता के आधार पर स्थापित जनता की सार्वभौम सत्ता। गांधीजी कहा करते थे कि मेरे लिए हिंद स्वराज्य का अर्थ है—सब लोगों का राज्य और न्याय का राज्य। इसमें विदेशी नियंत्रण से पूरी मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता भी निहित है। इसके और भी दो उद्देश्य हैं—(१) नैतिक व सामाजिक उद्देश्य और (२) धर्म का उद्देश्य।

गाँवों का महत्त्व

गांधीजी बार-बार कहा करते थे कि भारत चंद शहरों में नहीं

बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है। गाँव के द्वारा ही शहर के लोगों की जरूरतें पूरी हुआ करती है। किंतु इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि गाँव के गरीब को न तो पेटभर भोजन मिल पाता है और न तन ढकने के लिए पर्याप्त कपड़ा और न रहने के लिए उचित मकान। गाँववालों को आदर्श ग्रामवासी बनना चाहिए, जो अपने गाँव के गली-मोहल्ले की सफाई और अपनी स्वयं के खान-पान का उचित ध्यान रख सकें। ग्राम-सुधार के आंदोलन में केवल ग्रामवासियों को ही काम नहीं करना बल्कि उनके साथ-साथ शहर के कार्यकर्ताओं को भी ग्राम सुधार के कार्य में अपनी भूमिका निभाना चाहिए। गाँव और शहरों के बीच तभी स्वस्थ और समुचित संबंधों का निर्माण होगा।

भारत मुख्य रूप से गाँवों का देश है; गाँव से ही स्वराज्य सिद्ध होगा। अतः गाँवों को नष्ट होने से बचाना चाहिए और गाँवों का पुनर्निर्माण करना चाहिए। अतः समग्र ग्राम विकास पर ध्यान देना होगा, इसमें खेती, हस्तशिल्प, कारीगर, शिक्षा, संस्कार, स्वास्थ्य, ग्रामोद्योग-उत्पादों का प्रयोग आदि चीजें शामिल हैं। गाँव की अधिकांश व्यवस्था गाँव में ही हो, जैसे आहार, स्वच्छता, रोजगार, स्वास्थ्य, आपसी विवाद का निपटारा, सामूहिक स्थान का प्रबंध, ग्राम पंचायत, ग्राम शिक्षा, ग्रामोद्योग और खेती। गाँव में बनने व उत्पन्न चीजों को काम में लें, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, देशी परंपरागत बायोमास आदि का उपयोग करें। खेती करनेवाले काश्तकारों को जमीन का स्वामित्व मिले।



गांधीजी की कल्पना का आदर्श गाँव ऐसा है, जिसमें सफाई पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाए। गाँव की गलियों, नालियों, तालाबों, कुओं, धार्मिक स्थान, सामाजिक स्थान आदि सब अत्यंत स्वच्छ रहने चाहिए और उनकी व्यवस्था गाँव के लोगों के द्वारा ही की जानी चाहिए। इसके साथ-साथ लोगों के आरोग्य पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए उचित आहार, व्यायाम, प्राकृतिक चिकित्सा एवं घरेलू नुस्खे के द्वारा जहाँ तक हो, वहाँ तक उपचार करना, शुद्ध साग-सब्जी, फल-दूध आदि का प्रयोग करना आवश्यक है। गाँव के आहार में गांधीजी ने हाथ कुटाई का चावल, हाथ की चक्की से पीसा चोकर युक्त आटा, गाँव में ही बननेवाले गुड़ और खंडसारी, हरी सब्जियों आदि के प्रयोग पर बल दिया था। गांधीजी शराब एवं मादक द्रव्यों के सेवन के भी सख्त खिलाफ थे। उनका कहना था कि इनको बंद करने के लिए लोक शिक्षण और जन-चेतना का प्रयोग करना चाहिए और इससे न होने पर सरकार द्वारा कानून बनाकर पूर्ण प्रतिबंध लगाना चाहिए।

भारत को पश्चिम जैसा औद्योगीकरण करने की क्या आवश्यकता है? पश्चिमी सभ्यता शहरी सभ्यता है। इंग्लैंड और इटली जैसे देश शहरीकरण कर सकते हैं, पर हम नहीं। पश्चिमी नमूने की नकल करने की जरूरत नहीं है। गांधीजी कहते थे कि पाश्चात्य ढंग के आर्थिक नियोजन से देश का भला नहीं होगा, हमें ग्रामीण उद्योगों की चिंता करनी चाहिए। हमें गाँव में ही ग्राम आधारित उद्योग लगाने चाहिए, उसमें कम पूँजी चाहिए और अधिक लोगों को रोजगार मिलेगा।

बड़े पैमाने पर यंत्र आधारित उत्पादन ही संकट का कारण है, इससे केंद्रीयकरण एवं बेरोजगारी होती है। वे कहा करते थे कि बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण होने पर जब प्रतिस्पर्धा और बाजार की समस्याएँ खड़ी होंगी, तब गाँव का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शोषण ही होगा। गांधीजी का मानना था, बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हर स्थिति में किसी भी देश के लिए जरूरी नहीं है और भारत के लिए तो वह और भी कम जरूरी है। भारत दुनिया के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह अपने गाँव का विकास करके और सादा जीवन अपना कर ही कर सकता है। उन्होंने कहा था कि धन की पूजा ने हमारे ऊपर भौतिक समृद्धि के जिस जटिल और शीघ्रगामी जीवन को लाद दिया है, उसके साथ उच्चचिंतन का मेल नहीं बैठता। जीवन का संपूर्ण सौंदर्य तभी खिल सकता है, जब हम उच्चकोटि का जीवन जीना सीखें, पर इसका अर्थ यह नहीं माना जाना चाहिए कि गांधीजी सब प्रकार के उद्योगों के खिलाफ थे। उन्होंने कहा था कि देश के लिए उस समय की परिस्थिति के अनुसार आवश्यक कुछ उद्योगों को लगाना उचित होगा, पर उनके स्वामित्व के संबंध में जरूर विचार किया जाना चाहिए।

किसान

यदि भारत को सच्चे रूप में प्रगति करनी है तो किसानों को समाज में सम्मानपूर्वक स्थान देना होगा। अमीर लोगों ने किसानों की सहायता के लिए अनेक काम प्रारंभ करना चाहिए, जैसे विद्यालय, गाँव के कुओं और तालाब को साफ करना, गाँव की साफ-सफाई, उनके स्वास्थ्य की व्यवस्था आदि। भूमिहीन मजदूरों और खेती करनेवाले कास्तकारों दोनों ही प्रकार के किसानों को समाज में उचित स्थान दिया जाना चाहिए। आज हमें जो कुछ मिल रहा है, वह वास्तव में उन्हीं के परिश्रम का परिणाम है। किसानों ने अपनी अवस्था में सुधार करने के लिए आपस में मिल-जुलकर सहकारी समितियाँ बनानी चाहिए।

गौरक्षा

गांधीजी गौरक्षा के प्रति अत्यंत संवदेनशील थे, उनका मानना था कि हमारी देशी नस्ल की गायों का दूध अनेक औषधीय गुणों से युक्त है। दूध के अलावा गौमूत्र, गोबर, गौ घी आदि पंचगव्य के द्वारा अनेक वस्तुओं का निर्माण कर हम अपनी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। गौमाता हमारे लिए जन्म देनेवाली माँ से भी बढ़कर है। भारत में गौवध तुरंत बंद किया जाना चाहिए और इसके लिए शीघ्र-से-शीघ्र आवश्यक कानून बनाना चाहिए। हमें आदर्श गौशालाओं, डेरियों के निर्माण एवं नस्ल सुधार पर भी ध्यान देना चाहिए। सहकारी आधार पर गाय की डेरियाँ बनाई जा सकती हैं, उससे आमदनी भी होगी और लोगों को गाय का दूध भी मिल सकेगा। गौ-आधारित अर्थतंत्र की

दिशा में बढ़ना होगा। खेती में रासायनिक खाद के स्थान पर जैविक एवं गोबर-खाद का प्रयोग करें।

स्वदेशी-स्वावलंबन

गांधीजी ने स्वदेशी की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह वह भावना है, जो हमें दूर को छोड़कर अपने निकट के ही प्रदेश का उपयोग और सेवा करना सिखाती है। इसे और अधिक समझाते हुए उन्होंने स्वदेशी के तीन आयामों की चर्चा की है—

(१) पूर्वजों से ही प्राप्त धर्म का ही पालन करना।

(२) राजनीतिक दृ्ि से अधिकाधिक रूप से स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के द्वारा ही शासन-प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था का प्रबंध करना।

(३) आर्थिक क्षेत्र में अपने गाँव, अपने पड़ोसियों अथवा अपने देश में उत्पन्न वस्तुओं का ही उपयोग करना।

जब तक हमारे देश में स्वदेशी के इन तीनों आयामों का पालन किया जाता रहा, तब तक देश सब प्रकार से प्रगति करता रहा। किंतु स्वदेशी की भावना से दूर चले जाने के कारण हमें अनेक बाधाओं एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा। हमारे शिक्षित वर्ग अंग्रेजी शासन काल में विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते रहे, अत: स्वदेशी के संबंध में उनके विचार इन तीनों आयामों के विपरीत ही ब्नते रहे और चलते रहे। यदि हम आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के सिद्धांत का पालन करें तो हमें गाँव के बेरोजगारों को ढूँढ़कर उनको कुछ शिल्प सिखाकर जरूरत की वस्तुओं के निर्माण में लगाना होगा। ऐसा होने पर भारत का हर गाँव लगभग एक स्वावलंबी एवं स्वयंपूर्ण इकाई बन जाएगा।

काम करने योग्य और जो काम करना चाहे, उसे काम मिले। जब तक एक भी सशक्त आदमी देश में ऐसा हो, जो काम तो करना चाहता है, पर उसे न काम मिले, न भोजन मिले तो ऐसी अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार उचित नहीं कही जा सकती। भारत की काफी बड़ी आबादी, जो खेतों में काम करती है, उनके पास लगभग वर्ष में ४ महीने कोई काम नहीं होता। इस कारण वे लगभग भुखमरी की जिंदगी जीते हैं।

ट्रस्टीशिप (संरक्षकता) का सिद्धांत

गांधीजी ने अपनी अर्थरचना एवं अर्थव्यवहार के संबंध में विचार करते समय साधनों पर किसका स्वामित्व रहे, इस पर भी विचार किया था। उनका कहना था कि वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत उद्योग व्यवसाय आदि के द्वारा किसी को धन-संपदा मिल गई तो उसे यह नहीं मानना चाहिए कि इस पर उसका स्वामित्व है। उसे तो यह मानना चाहिए कि मैं तो इस धन संपदा का ट्रस्टी मात्र हूँ और मुझे इसमें से उतना ही उपयोग करने का अधिकार है, जितना मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहिए, शेष को फिर से समाज के कार्य में लगा देना चाहिए। ऐसा होने पर समाज में संघर्ष व शोषण नहीं होगा और धीरे-धीरे आर्थिक समानता की स्थिति भी आ जाएगी।

इस सिद्धांत का सर्वोत्तम संदेश हमें ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में मिलता है, 'ईशावास्यिमदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।' इसमें कहा गया है कि जो कुछ भी देश में उपलब्ध साधन-संपदा है, उसका पूर्ण स्वामित्व तो ईश्वर के पास ही है। हमारे पास जो कुछ धन-संपदा उपलब्ध है, उसके हम ट्रस्टी मात्र हैं, संभवत: इसी को आधार बनाकर श्रद्धेय विनोबाजी ने ग्राम दान-भूदान का आंदोलन चलाया था।

श्रम केंद्रित विकास

कुछ लोगों की दृष्टि में खादी, चरखा, स्वदेशी आंदोलन, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, ये सभी विषय स्वाधीनता आंदोलन के उपाय या औजार मात्र थे। ऐसे लोग गांधीजी के अर्थशास्त्र को ठीक से नहीं समझ पाए थे—गांधीजी पश्चिमी चिंतन के अर्थशास्त्री नहीं थे—उन्होंने मार्क्स का 'The Capital' और रस्किन का 'Unto the Last' अवश्य पढ़ा था। किंतु गांधीजी ने भारत की वास्तविक स्थिति को समझकर ही खादी, चरखा एवं स्वदेशी पर जोर दिया था। सबको रोजगार/काम यह अर्थशास्त्र का मूलभूत सिद्धांत है—भारत जैसे विकासशील देश के लिए तो यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। शरीर से स्वस्थ और काम करने की क्षमता से युक्त हर व्यक्ति को काम मिले, यह सरकार और समाज की जिम्मेदारी है। विकास योजनाओं के बाद भी लोग बेरोजगार क्यों? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है—बेरोजगारी भत्ता इसका उपाय नहीं, इसके लिए तो ग्रामोद्योगों को पूरा सहयोग देकर बढ़ाना होगा, इसीलिए गांधीजी हरेक को काम करने का अधिकार दिलाना चाहते थे। प्रत्येक को ८ घंटे काम मिले, ८ घंटे विश्राम मिले, ८ घंटे अपनी रुचि के लिए मिलें। यंत्रों, बिजली आदि के उपयोग करने की मनाही नहीं, पर उसके कारण बेरोजगारी न बढ़े, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। मनुष्य के लिए मशीन है, मशीन के लिए मनुष्य नहीं।

इसीलिए गांधीजी खादी और ग्रामोद्योग से बनी चीजों के उपयोग पर जोर देते थे, ताकि माँग-बिक्री, उत्पादन व रोजगार बढ़े। इन चीजों को महँगा भी यह समझकर खरीदें कि हम बेरोजगार को रोजगार देने में सहायता कर रहे हैं। बड़े उद्योगों के साथ सहायक उद्योगों (Ancillary Industries) का भी महत्त्व है। ऐसे बहुत से काम हैं, जो मशीन नहीं कर सकती, वे मानव ही करते हैं। फिर यह भी बात हमेशा सही नहीं है कि मशीन से उत्पादन बढ़ता है, तेजी से काम होता है। पूँजी-गहन की बजाय हमारे देश में श्रम-गहन उद्योग अधिक उपयोगी हैं।

काम करने योग्य और जो काम करना चाहे, उसे काम मिले। जब तक एक भी सशक्त आदमी देश में ऐसा हो, जो काम तो करना चाहता है, पर उसे न काम मिले, न भोजन मिले तो ऐसी अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार उचित नहीं कही जा सकती। भारत की काफी बड़ी आबादी, जो खेतों में काम करती है, उनके पास लगभग वर्ष में ४ महीने कोई काम नहीं होता। इस कारण वे लगभग भुखमरी की जिंदगी जीते हैं। हिंदुस्तान

की सभ्यता पश्चिम की सभ्यता से अलग एवं निराली है। पश्चिम में जमीन ज्यादा और लोग कम, जबकि हमारे यहाँ जमीन कम और लोग ज्यादा हैं। इसलिए पश्चिम के लोगों के लिए मशीनें भले ही जरूरी होंगी, क्योंकि वहाँ लोग कम और काम ज्यादा है, किंतु भारत में तो ऐसी स्थिति नहीं है, क्योंकि यहाँ अनेक लोग खाली बैठे हैं। अत: हमें सबसे पहले यहाँ खाली बैठे हुए लोगों को काम देना होगा। इसके लिए हमें गाँव में ही किए जानेवाले छोटे-छोटे धंधों पर अधिक जोर देना पड़ेगा, जैसे आटा पीसना, छोटी मशीनों से ही चावल की भुस्सी निकालना, घानी से तेल निकालना, गुड़ और खाँड़सारी बनाना, मधुमक्खियों को पालन कर शहद बनाना, गाँव के जुलाहे से ही दरियाँ, चादर एवं अन्य कपड़े बनवाना, ऐसे ही कामों पर जोर देकर हम देश की बेरोजगारी दूर कर सकते हैं। गांधीजी का मानना था कि मेहनत-मजदूरी करके अपनी जीविका कमानेवालों के लिए विविध धंधों के पर्याप्त ज्ञान की वही कीमत है, जो पूँजीपति के लिए पूँजी की है। पूँजीपति की पूँजी और मजदूरों का श्रम मिलकर ही उत्पादन कर सकते हैं। अत: उत्पादन में इन लोगों के बीच भी समुचित वितरण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

गांधीजी के संबंध में ये गलतफहमी प्रचलित है कि वे यंत्रों के खिलाफ थे। इसके संबंध में अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि ''मैं तमाम नाशकारी यंत्रों का कट्टर विरोधी हूँ, परंतु सीधे-साधे औजारों और ऐसे यंत्रों का, जिससे व्यक्ति का परिश्रम बचता हो और लाखों झोंपड़ियों का भार हल्का होता हो, मैं स्वागत करूँगा।'' गांधीजी कहा करते थे कि यंत्र मनुष्यों का स्वामी नहीं बनना चाहिए। यंत्र मनुष्यों के लिए होना चाहिए, न कि मनुष्य यंत्र के लिए। हमें श्रम बचानेवाले नहीं बल्कि श्रम का उपयोग करनेवाले यंत्र चाहिए।

हिंदुस्तान के सात लाख गाँवों में करोड़ों व्यक्ति जीवित यंत्रों के रूप में हैं। इनके विरुद्ध जड़यंत्रों को प्रतियोगिता में नहीं उतारा जाना चाहिए। जिन यंत्रों से मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले वे ठीक हैं, परंतु जिनसे कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में ही संपत्ति पहुँच जाए और करोड़ों लोग बेरोजगार एवं भुखमरी के शिकार हो जाएँ, ऐसे यंत्रों को किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता।

अहिंसक अर्थरचना : नैतिकता एवं अर्थशास्त्र

गांधीजी के विचार में भौतिक समृद्धि और नैतिक समृद्धि का संतुलन आवश्यक है। गांधीजी आवश्यकताओं का संयम एवं नैतिक मूल्यों पर जोर देते थे। प्रो. गेलब्रेथ ने कहा था, ''भारत में गरीब किसान के चेहरे पर चमक है, वह शायद अंतर्निहित आध्यात्मिकता के कारण है।'' पश्चिम के देशों में 'Tragedy of Affluence' (समृद्धि की करुण कथा) पनप रही है। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि आर्थिक-राजनैतिक तंत्र पर नैतिकता-आध्यात्मिकता का प्रभाव रहना चाहिए।

गांधीजी का मानना था कि अच्छे साध्य के लिए साधन भी अच्छे चाहिए। संभवत: इसीलिए उन्होंने कहा था कि अर्थव्यवस्था एवं अर्थतंत्र का आधार भी अहिंसक साधनों पर ही आधारित होना चाहिए। शरीर या मन की पवित्रता को छिपाने से असत्य और हिंसा पैदा होती है। अत: देश में मनुष्यों के द्वारा किए जानेवाले सारे काम-काज, उनका व्यवसाय एवं व्यवहार, जहाँ तक संभव हो हिंसा के बिना या कम-से-कम हिंसा के द्वारा ही होना चाहिए। उन्होंने इस संबंध में बहुत ही व्यावहारिक मार्गदर्शन दिया है। वे मानकर चलते हैं कि हर काम-काज में थोड़ी बहुत हिंसा तो रहती ही है, पर हमारा काम इतना ही है कि उसे यथासंभव कम करने का प्रयत्न करें।

'हरिजन' के अंक में लिखते हुए उन्होंने अर्थ-व्यवहार के संबंध में बहुत ही मार्गदर्शक सिद्धांत दिया है। उन्होंने लिखा, ''जिस तरह सच्चे नीतिधर्म में और अच्छे अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्म के ऊँचे-से-ऊँचे आदर्श का विरोधी नहीं होता। जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और बलवानों को निर्बलों का शोषण करके धन का संग्रह करने की सुविधा देता है, उसे शास्त्र का नाम नहीं दिया जा सकता। वह तो एक झूठी चीज है, जिससे हमें कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अपनाकर हम मृत्यु को न्योता देंगे। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमायत करता है।''

एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा था कि ''मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बीच कोई सुस्पष्ट या किसी अन्य प्रकार का भेद नहीं करता। वह अर्थशास्त्र, जो एक व्यक्ति अथवा एक राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुँचाता है, वह अनैतिक है और इसीलिए पापपूर्ण है।'' इस प्रकार सच्चा अर्थशास्त्र वही है, जो उच्चतम नैतिक मानदंडों को अपनाता है।

आर्थिक समानता, अपरिग्रह, उपभोग-संयम

घटती उपयोगिता का सिद्धांत हमें बताता है कि संपन्न एवं गरीब के लिए एक रुपए की उपयोगिता अलग-अलग होती है। गांधी कहा करते थे कि चूँकि देश के पास साधन सीमित हैं, अत: इनसे मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति तो हो सकती है, पर लालच की पूर्ति संभव नहीं है। रोटी, कपड़ा, मकान की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति सबकी हो, उसके बाद अन्य लोगों की अन्य आवश्यकताओं पर विचार हो। संयमशील जीवन अपनाना चाहिए। गांधीजी शास्त्र के इस वाक्य में विश्वास करते थे कि ''न वित्तेन तर्पणियो मनुष्य:''। अर्थात् केवल धन से मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। धनवान तो कई बार तनाव एवं अवसाद में जीते देखे जा सकते हैं, उन्हें संतोष एवं शांतिपूर्ण जीवन

की आवश्यकता है, यह तो संयमपूर्ण जीवन से ही मिल सकते हैं। अधिक अर्थसंग्रह दुःख देगा, सुख नहीं, अतः धन का न्यायपूर्ण विवरण हो और लोग अपनी अनावश्यक आवश्यकताओं को कम करें। हम आवश्यकताओं को बढ़ाएँ नहीं बल्कि संयम के आधार पर कम करें।

किसी चीज को अपनी मानकर न रखना दूसरे के समान चीजें लेने की इच्छाओं की होड़ न रखना, इसे ही अपरिग्रह कहा जा सकता है। अपरिग्रह पूरा न सही, पर यथासंभव तो अपनाना ही चाहिए। परिग्रह पर कुछ-न-कुछ मात्रा में अंकुश लगाया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि हम न्यूनतम आवश्यक जरूरतें पूरा करने लायक ही अपने पास रखें, शेष समाज को समर्पित कर दें। गरीबी में भी आत्मगौरव बनाए रखना सीखें।

गांधीजी का यह भी मानना था कि व्यक्तियों को अपने पास अधिकाधिक धन-संपदा और चीजों को इकट्ठा नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नहीं है, परंतु सोच-समझकर अपनी इच्छा से उनको कम करना है। ज्यों-ज्यों हम परिग्रह बढ़ाते जाते हैं त्यो-त्यों सच्चा सुख और संतोष घटता जाता है।

हम अपनी आवश्यकताओं को जितना बढ़ाते जाएँगे, उतना ही हमारा असंतोष भी बढ़ता जाता है। भोग-भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती है, इसीलिए हमारे पूर्वजों ने भोग पर संयम रखने की बात कही थी। सुख-दुःख तो मन के कारण है, अमीर अपने अमीरी की वजह से सुखी नहीं है, गरीब अपनी गरीबी के कारण दुःखी नहीं है। कई बार अमीर दुःखी देखने में आता है और गरीब सुखी देखने में आता है। देश में सब लोग अमीर नहीं हो सकते, बड़ी संख्या में लोग गरीब ही रहेंगे, इसलिए हमारे पूर्वजों ने भोग की वासना पर नियंत्रण करने की बात कही थी।

गांधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि अपरिग्रह को जीवन में अधिकाधिक अपनाने में ही हम देश की गरीबी, भुखमरी और विषमता की समस्याओं से छुटकारा पाकर सहयोग, समन्वय एवं नैतिकता से युक्त समाज की रचना कर सकते हैं। व्यक्ति को अपने पास अधिकाधिक परिग्रह क्यों नहीं करना चाहिए, इसका स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने कहा था कि जब लोग किसी चीज को अपनी मानकर अपने पास रखते हैं तो उनके काफी शक्ति उसकी रक्षा करने पर ही लगानी पड़ती है। समाज में ऐसे भी बहुत सारे लोग हैं, जो अभावग्रस्त हैं और जिनके पास वे चीजें नहीं हैं, अगर उनके साथ अपनी चीजों का बँटबारा नहीं किया तो वे जबर्दस्ती छीन लेने पर उतारू हो सकते हैं और समाज में कानून-व्यवस्था की स्थिति खड़ी हो सकती है। इसलिए हमारी सभ्यता और सांस्कृति में आवश्यकताओं को बढ़ाने एवं विषयभोगों के अधिकाधिक प्रयोग पर नियंत्रण रखने की बात कही है। यह भी सच है कि व्यावहारिक रूप से पूर्ण अपरिग्रह संभव नहीं है। परंतु यह तो संभव है कि हम अपने पास अपनी जरूरत के अनुसार कम-से-कम वस्तुओं को ही रखें, यदि कोई व्यक्ति अपने पास ऐसी वस्तुओं का संग्रह करता है, जिसकी उसे जरूरत नहीं है तो वास्तव में तो वह समाज की दृष्टि से चोर ही कहलाएगा। इसके बारे में श्रीमद्भागवत में भी यही निर्देष दिया गया है—

यावत् भ्रियेत् जठरं तावत् स्वत्वंहि देहिनाम्।
अधिकं यो ऽभिमन्येत् स स्तेनो दण्डमर्हति॥

यदि प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ उतना ही रखे, जितने की उसको जरूरत है तो कोई भी व्यक्ति अभावग्रस्त नहीं रहेगा और सब संतोष का जीवन जिएँगे। स्वार्णिम नियम तो यह है कि जो चीज लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है, उसका भोग करने से हम दृढ़तापूर्वक इनकार कर दें। इनकार करने के लिए हमें दृढ़तापूर्वक ऐसी मानसिक अवस्था बनानी पड़ेगी। हमारे अपने देश में और विश्वभर में ऐसे अनेक महापुरुषों के उदाहरण हमारे सामने हैं।

ईश्वर के अनेक नामों में से उसका एक नाम दरिद्रनारायण भी है। इसका अर्थ है—गरीबों के हृदय में प्रगट होनेवाला ईश्वर। गरीबों के लिए रोटी ही अध्यात्म है। भूख से पीड़ित लोगों के ऊपर किसी और चीज का प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन अगर आप उनके लिए रोटी लेकर जाएँगे तो लोग उसको ही भगवान् की तरह पूजेंगे। भूख से तपड़ते और फटे-पुराने कपड़े पहने गरीब लोगों से आधुनिक प्रगति की बात मत करिए, उनके सामने ईश्वर भक्ति की बात करना भी बेमानी है। उनके लिए तो सबसे जरूरी यह है कि हम उनकी भूख और गरीबी को दूर करें।

अमीर और गरीब के बीच पाई जानेवाली भयंकर विषमता किसी भी प्रकार से देश और समाज के लिए उचित नहीं कही जा सकती। अतः हमें ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण करना पड़ेगा, जिसमें जहाँ तक संभव हो, वहाँ तक आर्थिक समानता बन सके। इसके लिए अनुचित तरीके से पूँजी और धन-संपदा के संचय पर रोक लगाना आवश्यक है। उत्पादन की सर्वोत्तम पद्धति वह है, जिसमें उत्पादन और वितरण के बीच बहुत अंतर न हो। केंद्रीयकरण के बजाय विकेंद्रित अर्थव्यवस्था ही आर्थिक समानता ला सकती है।

कुदरती आवश्यकताओं पूरा करने लायक धन-संपत्ति सबके पास हो, अधिक नहीं। किसी की हाजमा शक्ति ५ तोला अन्न की, किसी की २० तोला अन्न की है तो उन्हें उसी के अनुसार धन मिले।

गांधीजी की दृष्टि में आर्थिक समानता सुखी और स्वाधीन समाज की मास्टर चाबी है। इसके लिए आवश्यक है पूँजी और श्रम के बीच चलनेवाले संघर्ष का उन्मूलन। इसके लिए दोनों धरातलों पर काम करना होगा। संपन्न लोगों के स्तर को नीचे करना और गरीब लोगों के स्तर को ऊपर उठाना।

इस प्रकार गांधीजी का चिंतन आर्थिक क्षेत्र में एक नई दृष्टि व दिशा प्रदान करता है, वह एक ऐसे अर्थतंत्र के निर्माण का खाका प्रस्तुत करता है, जो मूलभूत, व्यावहारिक, धारणक्षम, समयानुकूल एवं सर्वसमावेशी है।

सा अ

बी-८४, अहिंसा विहार
सेक्टर-९, रोहिणी
दिल्ली-११००८५
mangalayan@gmail.com



महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज

• बनवारी

यह विचित्र बात लगती है कि भारत में महात्मा गांधी के राजनैतिक विचारों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। महात्मा गांधी के राजनैतिक विचार उनके दक्षिण अफ्रीका प्रवास के समय ही स्वरूप लेने लगे थे। व्यवस्थित रूप से पहली बार वे १९०९ में सामने आए थे, जब उन्होंने लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए अपनी समुद्री यात्रा के दौरान हिंद स्वराज लिखा था। उनके राजनैतिक विचारों को समझने के लिए 'हिंद स्वराज' की बातें विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। यह हिंद स्वराज के नाम से ही स्पष्ट है कि गांधीजी ने उसे भारत के स्वतंत्रता संग्राम की आधार-भूमि स्पष्ट करने के लिए लिखा था। पर उसमें स्वराज शब्द की वह व्यंजना नहीं थी, जो उस समय भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत अन्य नेताओं के उपयोग में थी। भारत के राजनैतिक दर्शन को और भारत की राज्य-व्यवस्था को समझने के लिए स्वराज्य शब्द का हमारे यहाँ अत्यंत प्राचीन काल से उपयोग किया जा रहा है। हमारे उस समय के स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत नेताओं ने स्वराज्य शब्द को अपनी उसी परंपरा से लिया था। लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्‌घोष किया था तो स्वराज्य शब्द को उन्होंने अपनी परंपरा से ग्रहण किया था। पर यह वह समय था कि जब यूरोप में राज्य को एक आधुनिक रूप दिया जा रहा था। यूरोप में सदा राज्य केंद्रित व्यवस्थाएँ ही रही हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि यूरोप ही नहीं, संसार के सब उन्नत समाजों में राज्य केंद्रित व्यवस्थाएँ रही हैं। कहीं राज्य को एक सर्वनियंत्रणकारी संस्था के रूप में देखा गया, कहीं वह उतना नियंत्रणकारी नहीं था। पर भारतीय समाज कभी राज्य केंद्रित व्यवस्था में नहीं था। भारत में शासन केवल राज्य में सीमित नहीं रहा। हमारे यहाँ यह माना जाता रहा है कि समाज की सभी भौगोलिक, व्यावसायिक, सामाजिक और सांप्रदायिक संस्थाएँ स्वशासन के आधार पर गठित हैं। राज्य उनके स्वशासन की व्यवस्थाओं का निर्माता नहीं रक्षक भर हैं। इसी अर्थ में हमारे यहाँ स्वराज्य का उपयोग होता रहा है।

राष्ट्रीय आंदोलन के इस आरंभिक काल में स्वराज्य का यह अर्थ धूमिल होता था। अंग्रेजों ने भारत की परंपरागत शिक्षा प्रणाली को हटाकर अपने यहाँ विकसित हुई शिक्षा प्रणाली की नींव डाल दी थी।



वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक। पंचावटी : भारतीय पर्यावरण परंपरा, भारतीय सभ्यता के सूत्र, महारास : प्रकृति, उत्सव और समाज, भारतीय इतिहास-दृष्टि, यूरोपीय सभ्यता का स्वरूप और उसका भविष्य प्रकाशित। 'दिनमान' में संवाददाता, फिर दैनिक 'जनसत्ता' में स्थानीय संपादक, उसके बाद समाज समीक्षण केंद्र चेन्नई से संबद्ध रहे। १९८० में पत्रकारिता के लिए संस्कृति पुरस्कार से सम्मानित।

उन्हें शासन करने के लिए भारत में भी अपने यहाँ जैसा एक राज्य तंत्र विकसित करना था। इसलिए भारत में उस तरह के राज्य की स्वीकृति के लिए और उसके तंत्र के निचले पायदान पर नियुक्त करने योग्य लोगों के प्रशिक्षण के लिए उन्हें अपने यहाँ जैसे शिक्षा तंत्र को भारत में स्थापित करना आवश्यक लगा था। इस शिक्षा तंत्र ने जिन यूरोपीय विचारों को भारत में फैलाया, उनमें राज्य के उसी स्वरूप को एक आदर्श राज्य के रूप में प्रचारित किया गया था, जो १९वीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभ में यूरोपीय देशों में स्वरूप ग्रहण कर रहा था। भारत के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग राज्य के इसी स्वरूप से परिचित हुए। इसलिए राज्य के भारतीय स्वरूप का उन्हें ज्ञान नहीं रहा। आधुनिक काल में स्वामी दयानंद ने 'स्वराज्य' शब्द का व्यापक उपयोग किया था। उन्हें इस शब्द के पारंपरिक अर्थ की प्रतीति थी। लेकिन अंग्रेजी शिक्षा ने एक ऐसा माहौल बना दिया था, जिसके कारण पढ़े-लिखे सामान्य लोगों में राज्य के यूरोपीय स्वरूप को ही आदर्श माना जाने लगा था। इसने स्वराज्य शब्द के अर्थ को सीमित कर दिया। स्वतंत्रता आंदोलन के हमारे उस समय के नेताओं के लिए स्वराज्य का प्रधान अर्थ इंडिपेंडेंस ही था। अमेरिका के १७८३ में ग्रेट ब्रिटेन से इंडिपेंडेंट होने को उस समय के सब उपनिवेशों में प्रेरणा के तौर पर देखा जाता था। हमारे राष्ट्रीय नेताओं की परंपरागत स्मृति इतनी धुँधली नहीं हुई थी, फिर भी उन्हें राज्य के भारतीय अर्थ को उसके यूरोपीय अर्थ से अलग करने की फुरसत नहीं थी। इस नाते स्वराज्य शब्द का व्यवहार काफी कुछ इंडिपेंडेंस के अर्थ में ही किया जा रहा था।

महात्मा गांधी ने स्वराज्य शब्द का उसके परंपरागत और मूल अर्थ में ही उपयोग करना आरंभ किया। इसलिए हिंद स्वराज्य भारत के स्वतंत्रता संग्राम का आधारभूत ग्रंथ तो था ही, उसमें स्वराज्य के परंपरागत अर्थ की ओर संकेत करने की भी कोशिश की गई थी। महात्मा गांधी के राजनैतिक विचारों को समझने के लिए हमें हिंद स्वराज्य की तीन बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। पहली बात यह है कि उन्होंने डेमोक्रेसी के लिए वेश्या शब्द का उपयोग किया। उस समय ब्रिटेन की वेस्ट मिनिस्टर शासन प्रणाली को डेमोक्रेसी के आदर्श के रूप में देखा-दिखाया जा रहा था। महात्मा गांधी ने उसको ही अपने आक्रमण के लिए चुना। उन्होंने कहा कि ब्रिटेन की संसद् वेश्या की तरह है। वह उचित-अनुचित का निर्णय करने के लिए नहीं बैठती। वह जिस दल का बहुमत होता है, उसकी सरकार के लाए कानून के पक्ष में अपना अभिमत घोषित कर देती है। उनकी यह टिप्पणी राजनीति शास्त्र के किसी अध्येता की टिप्पणी नहीं थी। भारतीय सभ्यता को यूरोपीय सभ्यता से श्रेष्ठ मानने और घोषित करनेवाले राजनेता की टिप्पणी थी। इस टिप्पणी के द्वारा वे यूरोप की राज्य केंद्रित व्यवस्था को हीन बता रहे थे। डेमोक्रेसी को राज्य की आदर्श प्रणाली के रूप में मानने से इनकार कर रहे थे। स्वराज्य को भारत के लिए उपयुक्त और आदर्श प्रणाली के रूप में घोषित कर रहे थे। उन्होंने यह टिप्पणी केवल भारत को पराधीन बनानेवाले ब्रिटेन की शासन प्रणाली की निंदा करने भर के लिए नहीं की थी, उसका उद्देश्य व्यापक था। उसका उद्देश्य यह घोषित करना था कि भारतीय सभ्यता, उसके विचार और उसकी व्यवस्थाएँ यूरोपीय सभ्यता, उसके विचार और उनकी व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ है और भारतीयों को स्वतंत्र भारत की राजनैतिक व्यवस्थाएँ बनाने के लिए यूरोप की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है।

हिंद स्वराज्य में की गई दूसरी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी यह है कि भारत अंग्रेजों द्वारा की गई एक केंद्रीय राज्य की स्थापना के बाद एक सूत्र में नहीं बँधा। वह अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के द्वारा अत्यंत प्राचीन काल से एक सूत्र में बँधा रहा है। उनकी इस टिप्पणी की ओर भी कम ही ध्यान दिया गया है। यह टिप्पणी केवल अंग्रेजों के इस दावे को नकारने के लिए नहीं थी कि भारत के लोगों को उनके राज्य का इस अर्थ में ऋणी होना चाहिए कि उन्होंने इतिहास में पहली बार पूरे भारत को एक सूत्र में बाँध दिया। अंग्रेजों का यह दावा तो इस अर्थ में भी सही नहीं था, क्योंकि अंग्रेजों का भारत के केवल ६० प्रतिशत क्षेत्र पर ही शासन था। शेष ४० प्रतिशत क्षेत्र भारतीय रजवाड़ों के आधिपत्य में था। गांधीजी ने यह टिप्पणी दरअसल राज्य केंद्रित व्यवस्था का अंग्रेज जिस तरह औचित्य सिद्ध कर रहे थे, उसे नकारने के लिए की थी। गांधीजी का कहना था कि भारतीय समाज की अपनी व्यवस्थाएँ भारत को एक सूत्र में बाँधे रही हैं। उसकी एकता के लिए राज्य केंद्रित व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि महात्मा गांधी पूरे भारत को एक राज्य के रूप में नहीं देखना चाहते थे। उसका अर्थ केवल यह है कि गांधीजी राज्य को समाज का नियंत्रण करनेवाली संस्था के रूप में स्वीकार करने के विरुद्ध थे। वे उसे समाज के अधीन देखना चाहते थे, समाज को उसके अधीन देखना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने दावा किया कि समाज की व्यवस्थाएँ राजकीय व्यवस्थाओं से अधिक श्रेष्ठ होती हैं। सामाजिक व्यवस्थाओं के आधार पर विशाल भारत सुदीर्घकाल से एक सूत्र में बँधा रहा है। जबकि राज्य का क्षेत्र घटता-बढ़ता रहा है। अपने कथन द्वारा गांधीजी यह भी इंगित करना चाहते थे कि भारतीय सभ्यता समाज द्वारा विकसित होने के कारण श्रेष्ठ है। यूरोप में तो समाज की धारणा ही नहीं रही। केवल राज्य की धारणा रही है। उसकी राज्य प्रसूत सभ्यता भारतीय सभ्यता से हीन है।

'हिंद स्वराज्य' में कही गई तीसरी महत्त्वपूर्ण बात महात्मा गांधी द्वारा किसानों के बारे में की गई टिप्पणी है। उस समय के भारतीय किसान ही भारतीय समाज का बहुलांश थे। वे उस ग्रामीण व्यवस्था की रीढ़ थे, जो खेती और उद्योगों के सहारे एक परिपूर्ण जीवन विकसित करने में सफल हुई थी। इसी व्यवस्था ने सदा देश को बड़े-बड़े पंडित और बड़े-बड़े योद्धा दिए थे। महात्मा गांधी ने भारत के किसानों के बारे में कहा कि वे गुलाम नहीं है। वे अभयपूर्वक अपने गाँव और खेतों में सोते हैं। वे अंग्रेजी राज पर निर्भर नहीं है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे वे लोग जो अंग्रेजी राज पर निर्भर हो गए हैं, वे ही गुलाम है। महात्मा गांधी की यह टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी थी। जिस पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया। ऐसा नहीं है कि गांधीजी को यह न मालूम रहा हो कि पराधीनता के मुस्लिम और ब्रिटिश काल में भारत के किसानों पर किस तरह के अमानुषिक अत्याचार हुए। अंग्रेजों ने किस तरह देश की सारी संपत्ति का स्वामित्व लोगों से छीनकर राज्य के हवाले कर दिया और उन्हें करों के अभूतपूर्व बोझ से लाद दिया। किस तरह किसानों के परंपरागत भारत में दिए जानेवाले उत्पादन के छठे भाग से बढ़ाकर उत्पादन का आधे से तीन-चौथाई भाग करों के रूप में हड़पना शुरू कर दिया। यह सब जानते हुए भी गांधीजी ने कहा कि भारत के किसान अंग्रेजों के गुलाम नहीं है तो इसका उद्देश्य यह दिखाना था कि वह यूरोपीय खेतिहरों की तरह अपने अभिजात वर्ग के स्वामी के लिए खेती करनेवाले दास नहीं है। महात्मा गांधी की यह टिप्पणी किसी को तब तक समझ में नहीं आ सकती, जब तक वह यूरोपीय इतिहास के बारे में न जानता हो। यूरोप में १९वीं शताब्दी तक उत्पादन के सब साधनों पर कुलीन वर्ग का स्वामित्व था। विशेषकर खेती में लगे लोग भूदास कहलाते थे। वे कुलीन वर्ग के भू-स्वामी के खेतों पर काम करते थे और उनके जीवन और भौतिक साधनों पर उसी भू-स्वामी का स्वामित्व माना जाता था।

यूरोप की इस व्यवस्था को ब्रिटेन के उदाहरण से समझा जा सकता है। ब्रिटेन पर १०६६ ईस्वी में नारमंडी से आकर विलियम नाम के एक योद्धा ने अपने दस हजार सहयोगियों की सहायता से आधिपत्य जमा लिया। पूरा इंग्लैंड विलियन के अधीन होकर उसकी संपत्ति हो गया। अपनी इस संपत्ति को उसने अपने साथ आए दस हजार योद्धाओं की विभिन्न श्रेणियाँ बनाकर लगान वसूलने के लिए उप-स्वामित्व में दे

दिया। इन सभी उप-स्वामियों को अरिस्टोक्रेसी कहा गया, उसके अनेक स्तर थे। ड्यूक, अर्ल, बैरन वगैरह उच्च श्रेणियों में आते थे। सबसे निचले स्तर पर मेनर के स्वामी थे, जो अपने से ऊपर की श्रेणी के लिए लगान वसूलते थे। लगान निश्चित करने का अधिकार राजा का था। खेतों में काम करनेवाले अपने खेत के स्वामी नहीं थे। वे अनुबंध से बँधे भू-दास थे, जो मेनर स्वामी के लिए काम करना छोड़कर नहीं जा सकते थे। ऐसा करनेवाले को प्राणों से हाथ तक धोना पड़ सकता था। इस तरह इंग्लैंड की पूरी आबादी में ८०-८५ प्रतिशत लोग भू-दास थे। दस प्रतिशत पट्टे पर खेती करनेवाले किसान थे। थोड़े से लोग शहरों की गिल्ड के अधीन कारीगर थे। डेढ़ से ढाई प्रतिशत अभिजात वर्ग में आनेवाले उप-स्वामी थे, जो कानूनी तौर पर राजा के अधीन ही थे। ब्रिटेन में डेमोक्रेसी का विकास राजा और अभिजात वर्ग के बीच अधिकारों की खींचतान से हुआ था। यूरोप में सामान्य लोगों की गिनती तो फ्रांसीसी क्रांति के बहुत बाद होना शुरू हुई थी। १९वीं शताब्दी तक भी मताधिकार संपन्न पुरुषों तक सीमित था, जिनकी संख्या अधिक नहीं थी। स्त्रियों को मताधिकार तो बीसवीं शताब्दी में ही मिलना आरंभ हुआ। फ्रांस में उन्हें १९४४ में मताधिकार दिया गया। गांधीजी ने जब भारतीय किसानों की निर्भीकता का उल्लेख किया था तो वे यूरोपीय लोगों की पराधीनता से भारतीय लोगों की स्वाधीनता की तुलना कर रहे थे। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यूरोप में किसानों की संख्या नाममात्र रही है। अधिकांश लोग भूदास थे, जिन्हें हटाकर आज मशीनें खेती में इस्तेमाल की जाने लगी हैं। आज भी यूरोप और अमेरिका में किसान नहीं हैं। कृषि व्यवसायी हैं। कुछ बड़ी कंपनियाँ कृषि का अधिकांश उत्पादन करती हैं।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से १९१५ में भारत आए और १९१९ तक उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की कमान पूरी तरह अपने हाथ में ले ली थी। उनके नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन भारत की सभ्यतागत धारणाओं के आधार पर लड़ा गया, जिनके मूल में सनातन धर्म था। स्वतंत्रता संग्राम की कमान अपने हाथ में लेने के दौरान की गई उनकी एक टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि देश में इस समय दो महापुरुष हैं, जिनके कहने पर लाखों लोग अपने प्राण न्योछावर कर सकते हैं। एक लोकमान्य तिलक हैं और दूसरे महामना मदन मोहन मालवीय। लेकिन वे सनातन धर्म का मर्म नहीं जानते, इसलिए स्वतंत्रता संग्राम को लक्ष्य तक नहीं पहुँचा पाए। स्पष्ट है कि गांधीजी सनातन धर्म की ही समयानुकूल राजनीतिक व्याख्या कर रहे थे। उनका सत्याग्रह उसी से निकला था। भारत में स्वतंत्रता संग्राम की कमान अपने हाथ में लेने के बाद उनके लिए स्वराज्य की और अधिक व्याख्या करना आवश्यक हो गया था। उन्होंने स्वराज्य की व्याख्या करते हुए तीन महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। यह स्पष्ट करते हुए कि उनका आंदोलन इंडिपेंडेंस के लिए नहीं है, स्वराज्य के लिए है, उन्होंने बार-बार दोहराया कि वे रामराज्य के लिए संघर्षरत हैं और उनका लक्ष्य देश में ग्राम स्वराज्य स्थापित करना है। तीसरी बात उन्होंने यह कही कि वे वर्णाश्रम में विश्वास करते हैं। इसका सीधा अर्थ यही था कि वे भारत की राजनैतिक व्यवस्था को वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ढालना चाहते थे। इन सभी बातों को गलत या बहुत ही संकुचित अर्थ में समझा गया है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधीजी को इतना अवकाश नहीं था कि वे इन सब विचारों की विस्तृत व्याख्या करते। लेकिन स्वतंत्र भारत में तो इन विचारों की व्याख्या का दायित्व हमारे विद्वत् समुदाय और राजनैतिक प्रतिष्ठान को अपने ऊपर लेना चाहिए था। लेकिन इन सब विचारों की निरंतर उपेक्षा ही होती रही है।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से १९१५ में भारत आए और १९१९ तक उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की कमान पूरी तरह अपने हाथ में ले ली थी। उनके नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन भारत की सभ्यतागत धारणाओं के आधार पर लड़ा गया, जिनके मूल में सनातन धर्म था। स्वतंत्रता संग्राम की कमान अपने हाथ में लेने के दौरान की गई उनकी एक टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि देश में इस समय दो महापुरुष हैं, जिनके कहने पर लाखों लोग अपने प्राण न्योछावर कर सकते हैं। एक लोकमान्य तिलक हैं और दूसरे महामना मदन मोहन मालवीय।

अब तक उनके इन सभी विचारों पर जो बातें गई हैं, वे उन्हें गलत दिशा में ही ले गई हैं। वर्णाश्रम धर्म को तो समाज को ऊँच-नीच की व्यवस्था में बाँटने वाली एक प्रतिगामी प्रणाली के रूप में ही चित्रित किया जाता रहा है। रामराज्य का अर्थ भी न्यायिक शासन के एक पौराणिक उदाहरण में सीमित कर दिया गया है। ग्राम स्वराज्य के साथ भी कम अन्याय नहीं हुआ। अपने आपको गांधीवादी कहनेवाले लोगों ने भी ग्राम स्वराज्य को रूरल डवलपमेंट में सीमित कर दिया। महात्मा गांधी ने भारत के गाँव के लिए रचनात्मक कार्यक्रम शुरू किए थे। उन्होंने ग्रामोद्योग फिर से खड़े करने का दायित्व अपने हाथ में लिया था। पर इस सबका उद्देश्य अपने आंदोलन को केवल एक राजनैतिक दल कांग्रेस तक सीमित न करके उसमें व्यापक भारतीय समाज की भागीदारी करवाना और कांग्रेस को उनके भौतिक जीवन की उन्नति में लगाकर उसे एक राजनैतिक दल के साथ-साथ एक रचनात्मक संस्था बनाना था। एक राजनैतिक धारणा के रूप में ग्राम स्वराज्य का अर्थ बहुत गहरा था और वे स्वतंत्र भारत की राजनैतिक व्यवस्था को उस पर आधारित करना चाहते थे। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह कोई उनका मौलिक विचार नहीं था। भारत की परंपरागत राजनैतिक व्यवस्था सदा ग्राम स्वराज्य पर आधारित रही है। भारत के ग्राम स्वशासन की मूल भौगोलिक इकाई थे। राजा को भी उनका अनुमोदन प्राप्त करना होता था। सम्राट् हर्ष के शासन का वर्णन करते हुए हर्ष चरित में वाण भट्ट ने लिखा है कि उनको राजा के रूप में अभिषिक्त किए जाते समय एक लाख गाँवों के प्रमुखों ने उनका अनुमोदन किया था। यह व्यवस्था परंपरागत भारत की मान्य व्यवस्था थी।

यहाँ उनके इन सभी विचारों पर संक्षिप्त टिप्पणी ही की जा सकती

है। उनकी समुचित और विस्तृत व्याख्या नहीं हो सकती। उसके लिए हमारे प्रभूत विद्वानों को लगना चाहिए। क्योंकि गांधीजी के यह सभी विचार सारगर्भित विचार है। वे परंपरागत भारत के मौलिक विचार हैं। उन्हें गांधीजी भारत के लिए यूरोपीय विचारों से अधिक समयानुकूल समझते थे। उन्हें आशा थी कि स्वतंत्र भारत अपनी राजनैतिक व्यवस्थाएँ बनाते समय इन सब विचारों की विस्तृत समीक्षा करेगा और उनका उपयोग करेगा। लेकिन दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत की राजनैतिक सत्ता जवाहरलाल नेहरू के हाथ में गई, जो राज्य के उसी स्वरूप को श्रेष्ठ मानते थे, जो बीसवीं शताब्दी के यूरोप में प्रचलित हो रहा था। इसके अतिरिक्त वे गांधीजी की तरह भारत के गाँवों को स्वराज्य की बुद्धि से संपन्न नहीं मानते थे। बल्कि उन्होंने कहा है कि भारत के गाँव अँधेरे में पड़े हुए, पिछड़े और ज्ञान तथा कौशल से सर्वथाहीन हैं। नेहरू के लिए ग्राम स्वराज्य एक निरर्थक और प्रतिगामी धारणा थी। पश्चिमी शिक्षा द्वारा राज्य के यूरोपीय स्वरूप का ऐसा मोहक प्रभाव उनके ही नहीं हमारे पूरे बौद्धिक जगत् के मन पर पड़ा हुआ था कि वे ग्राम स्वराज्य को रूरल डवलपमेंट से अधिक कुछ सोच ही नहीं सकते थे। इस समूचे वर्ग ने ग्राम स्वराज्य को ईसाई चैरिटी जैसी अवधारणा में बदल दिया और उसका उद्देश्य हो गया गाँव के अँधेरे और गरीबी में पड़े लोगों के कल्याण के लिए कुछ करना। ग्राम स्वराज्य की उपेक्षा के कारण जब राजनैतिक व्यवस्था चरमराने लगी तो यूरोप की तर्ज पर स्थानीय निकाय बनाकर उन्हें पंचायती राज का नाम दे दिया गया। जबकि वे पंचायती राज की कल्पना से कोसों दूर हैं।

महात्मा गांधी ने रामराज्य को और ग्राम स्वराज्य को समानार्थी रूप में उपयोग किया है। उनके लिए रामराज्य और ग्राम स्वराज्य एक ही सिक्के के दो पहलू थे। उनकी इसी रूप में व्याख्या की जानी चाहिए। महात्मा गांधी के अधिकांश समीक्षकों ने रामराज्य की कोई गंभीर समीक्षा करने की कोशिश इसलिए नहीं की कि उन्हें लगा कि महात्मा गांधी ने रामराज्य का विचार इसलिए दिया कि उससे साधारण भारतीय प्रेरित होकर इस आंदोलन से जुड़ जाए। सामान्य भारतीयों में रामराज्य की प्रतिष्ठा सदा एक न्यायपूर्ण शासन के रूप में हुई है। लेकिन रामराज्य का शास्त्रीय अर्थ इससे कहीं अधिक गहरा है। श्रीराम सूर्यवंशी राजा हैं, जिनकी राजधानी अयोध्या थी। अयोध्या में स्थित राज्य की पहली विशेषता यह बताई गई कि वह अयोध्य हो, अनुलंघनीय हो। उस राज्य का पराक्रम ऐसा हो कि किसी को उससे युद्ध करने का साहस न हो और नीति में वह इतना श्रेष्ठ हो कि किसी को उससे युद्ध करने की इच्छा न हो। रामराज्य में यह दोनों विशेषताएँ हैं। अपने राज्य की अनुलंघनीयता सिद्ध करने के लिए ही उन्होंने सभी चक्रवर्ती राजाओं की तरह अश्वमेध यज्ञ किया था। महाराजा दशरथ से जुड़ा एक आख्यान है। लंकाधिपति रावण ने भारत के सभी राज्यों को युद्ध में पराजित कर दिया था, वह केवल महाराजा दशरथ से पराजित हुआ था। क्योंकि वह पराक्रम और धर्म दोनों में ही सर्वश्रेष्ठ थे। लेकिन लंका लौटकर जब उसने यज्ञों का विध्वंस जारी रखा तो उसका नाश आवश्यक हो गया। पर नीति यह थी कि जब तक कोई राजा आपका अपराध न करें उससे युद्ध नहीं छेड़ा जा सकता। इसीलिए राम का वनवास हुआ, सीताहरण हुआ और रावण की पराजय हुई। रामराज्य के अनुकरण पर भारत को भी स्वतंत्र होकर सबसे पहले अजेय, सामरिक रूप से समर्थ बनाने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए था।

महात्मा गांधी ने अपने आंदोलन को अहिंसा के सिद्धांत पर खड़ा किया था, लेकिन उनकी अहिंसा वीरों की अहिंसा थी। अजेय होने के लिए सबसे अधिक महत्त्व शौर्य का है। महात्मा गांधी ने कहा कि १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेजों ने भारत के हथियार रखवा लिए थे। इससे उनमें कायरता आ गई। उन्हें इस स्थिति से उबारने के लिए हथियारों से भी बड़े किसी अस्त्र की आवश्यकता थी। वह अस्त्र उन्हें अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह में दिखाई दिया और उसे उन्होंने अपने स्वतंत्रता आंदोलन का आधार बना लिया। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि समाज में शौर्य की भावना जाग्रत् करने के लिए अपने अहिंसा के व्रत के बावजूद उन्होंने पहले महायुद्ध के लिए लोगों से ब्रिटिश फौज में भरती होने के लिए कहा था। उनका तर्क था कि भारतीयों में शौर्य की परंपरा फिर से जाग्रत् करने के लिए वे अस्त्र चालन में निपुणता को भी महत्त्वपूर्ण समझते हैं। कम लोगों को यह ज्ञात है कि १८५७ की क्रांति की विफलता के बाद अंग्रेजों ने बंगाल आर्मी का विघटन कर दिया था। जिसमें उत्तर भारत के सैनिकों की बहुलता थी। उसके बाद मार्शल रेस के नाम पर पंजाब और उसके पश्चिम की ओर के पठान आदि मुस्लिम कबीलों से ही अधिक भरती हुई थी। ब्रिटिश सेना में शेष भारत का प्रतिनिधित्व नगण्य हो गया था। पहले और दूसरे महायुद्ध के दौरान मजबूर होकर उन्हें भारत के मुख्य क्षेत्रों से सैनिकों की भरती करनी पड़ी थी। ये सैनिक ही बाद में ब्रिटिश राज की चिंता का और भारत से उनकी विदाई का भी एक कारण बने थे। इस भरती के बावजूद अंग्रेज सैनिक अधिकारी मार्शल रेस का राग अलापते रहे और उसके माध्यम से मुसलमान सैनिकों को हिंदू सैनिकों से श्रेष्ठ बताते रहे। उनके इसी प्रचार के कारण पाकिस्तान के जनरल काफी समय तक यह डींग हाँकते रहे कि पाकिस्तानी सेना आसानी से भारतीय सेना को परास्त करके कश्मीर छीन लेगी। अयूब खाँ ने इसी गलतफहमी में १९६५ की लड़ाई छेड़ी थी।

रामराज्य की दूसरी विशेषता यह है कि राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम का अर्थ है, मर्यादा में रहनेवाले लोगों में सबसे उत्तम। दशरथ के पुत्र या गुरु वसिष्ठ के शिष्य के रूप में भी राम ने सदा मर्यादाओं का पालन किया। लेकिन राजा के रूप में उनका मर्यादा पुरुषोत्तम होना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। मर्यादाएँ राजा नहीं बनाता, मर्यादाएँ लंबे विचार-विमर्श और अनुभव से समाज बनाता है। इस नाते मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में राम समाज के अनुगत थे, समाज उनके अधीन नहीं था। इस बात का महत्त्व आप तब तक नहीं समझ सकते, जब तक उसकी तुलना यूरोप के राज्य की अवधारणा से न करें। यूरोप में राजा या राज्य विधि प्रदाता है, लॉ गिवर है। वह समाज की बनाई विधि के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं है। यूरोप में लोग उसके

अधीन होते हैं, वह किसी के अधीन नहीं होता। यूरोप में राज्य के स्वरूप को समझने के लिए यह भी याद रखना आवश्यक है कि वह देश की सभी संपत्तियों का स्वामी है। हमारे यहाँ सभी तरह की संपत्तियों का मूल स्वामी उस क्षेत्र का देवता माना गया है और व्यावहारिक स्वामी उनका उपयोग करनेवाला। राज्य उनका स्वामी नहीं है, उत्पादन में उसका भाग है और वह भी परंपरा से नियत है। राजा उस भाग को अपनी मनमर्जी से घटा-बढ़ा नहीं सकता। यूरोप में भौतिक संपत्तियों पर ही नहीं, लोगों के जीवन पर भी राज्य का अधिकार है। इस अधिकार का उपयोग करते हुए प्रथम महायुद्ध से पहले यूरोपीय देशों ने यह कानून बनाया था कि उसके शारीरिक रूप से समर्थ सभी लोगों को फौज में भर्ती होकर युद्ध में भाग लेना होगा। विद्वान्, चिकित्सक, कारीगर, खेतिहर सब युद्ध में झोंक दिए गए थे। युद्ध के बाद ऐसे लाखों परिवार थे, जिनके यहाँ शारीरिक रूप से समर्थ कोई नहीं बचा था, सब युद्ध में मारे गए थे।

रामराज्य की तरह ग्राम स्वराज्य का मूल तात्पर्य भी यही है कि समाज राज्य से बड़ा है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था ऐसी हो, जिसमें देश के छह लाख गाँवों का समावेश हो। उन्हीं को केंद्रित करके व्यवस्थाएँ बनें। अपनी मूल आवश्यकताओं के लिए गाँव आत्मनिर्भर हों और अपनी व्यवस्थाएँ बनाने और चलाने का दायित्व उन्हीं के पास हो। भारत के गाँव ही नहीं समाज की अन्य सब इकाइयाँ भी पंचायतों से शासित होती रही हैं। यहाँ तक कि हमारा धर्म तंत्र भी पंचायती विधान से अनुशासित होता रहा है। संन्यासियों तक के अनुशासन का माध्यम रहनेवाले दशनामी या बैरागी अखाड़ों के नाम में आप पंचायती शब्द देख सकते हैं। पंचायती व्यवस्था सर्वानुमति से चलती है। क्योंकि विधि के निर्माण के लिए सर्वानुमति आवश्यक मानी गई है। डेमाक्रेसी के मूल में प्रतिस्पर्धा है। यह भी याद रखना चाहिए कि महात्मा गांधी के लिए गाँव केवल विलेज नहीं थे। गाँव की उनकी परिभाषा के अंतर्गत शहर भी आते थे। ग्राम स्वराज्य से तात्पर्य देश की सभी भौगोलिक, सामाजिक, व्यावसायिक और धार्मिक इकाइयों का स्वराज्य है। गाँव का स्वरूप इन इकाइयों में अधिक स्थिर है। इसलिए उन्हें राजनैतिक व्यवस्था के केंद्र के रूप में देखा गया। ग्राम स्वराज्य में पूरा समाज समाहित होता है। संविधान सभा में कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया था कि हमें अपने राजनैतिक तंत्र की मूल इकाई गाँव को बनाना चाहिए व्यक्ति को नहीं। व्यक्ति को बनाएँगे तो समाज का विखंडन होगा। लेकिन यह बात सुनी नहीं गई। यूरोप में कभी कोई समाज नहीं था। वहाँ राजनैतिक संबंधों के अलावा किसी संबंध की वैधानिक स्वीकृति नहीं है। भारत में तो परस्पर संबंध ही सब व्यवस्थाओं का आधार हैं। उन्हीं से समाज बनता है। लेकिन यूरोपीय शिक्षा में यह सब प्रश्न उठाए नहीं जाते। इसलिए हमारे शिक्षित लोग डेमाक्रेसी से अभिभूत रहे, ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को समझ नहीं पाए।

गांधीजी ने वर्णाश्रम धर्म पर भी सदा जोर दिया था। तुलसीदास ने रामराज्य का वर्णन करते हुए कहा है—'वर्णाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।' वर्णाश्रम व्यवस्था को हम उसकी यूरोपीय इतिहास से तुलना किए बिना नहीं समझ सकते। यूरोप में केवल दो वर्णों की मान्यता रही है। अभिजात वर्ग स्वामी वर्ग है। उसे ज्ञान, शौर्य और धन-संपदा सबका एकमात्र अधिकारी माना जाता रहा है। दूसरा वर्ग दासों का है, जो अभिजात वर्ग के अधीन है। केवल बीसवीं सदी में आकर यह दासता समाप्त हुई है, जब उसका बोझ उन्होंने अपना औपनिवेशिक साम्राज्य खड़ा करते हुए शेष दुनिया पर डाल दिया था। यूरोप में १९वीं शताब्दी तक शिक्षा तक का अधिकार अभिजात वर्ग को ही था। व्यापार पर भी अभिजात वर्ग का ही नियंत्रण था। यूरोप का राजनैतिक ढाँचा अधिकारों पर टिका है, जो राज्य द्वारा प्रदत्त हैं। भारत में वर्ण किसी ने बनाए नहीं थे। यह अनुभव किया गया था कि लोग जो भी काम करते हैं, उन्हें चार श्रेणियों में रखकर देखा जा सकता है। वे ज्ञान की, शौर्य की या संपदा की साधना करते हैं अथवा उनकी साधना करनेवाले लोगों की सेवा करते हैं। इन सब वर्गों के पूरे समाज के प्रति क्या धर्म है, इसी का उल्लेख वर्णाश्रम धर्म के अंतर्गत हुआ है। भारतीय समाज में अधिकार की बजाय कर्तव्य की प्रधानता रही है। इसलिए वर्णों के धर्म अर्थात् कर्तव्य नियत किए गए। यूरोप में जहाँ सारी प्रभुता अभिजात वर्ग में थी, वहीं भारत में ज्ञान, शौर्य या संपदा की प्रभुताएँ स्वतंत्र थीं। ज्ञान की साधना में लगे ब्राह्मण, शौर्य की साधना में लगे क्षत्रिय, धन की साधना में लगे वैश्य और इन सभी वर्गों की सेवा में लगे शूद्र एक-दूसरे से स्वतंत्र थे और वर्ण जन्म पर आधरित नहीं थे। वे किसी एक वर्ण के अधीन नहीं थे। इस रूप में भारत संसार का एकमात्र ऐसा देश रहा है, जहाँ सभी स्वतंत्र रहे हैं। इस तथ्य की ओर इंगित करने के लिए ही महात्मा गांधी वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को श्रेष्ठ समझते थे। महात्मा गांधी की ये सब धारणाएँ भारतीय सभ्यता से ही ली गई थीं। इसलिए उनका विवेचन भारतीय सभ्यताओं की अवधारणाओं के विवेचन के रूप में ही किया जा सकता है। अभी भी समय है, हमें इस दायित्व को अपने ऊपर लेना चाहिए।

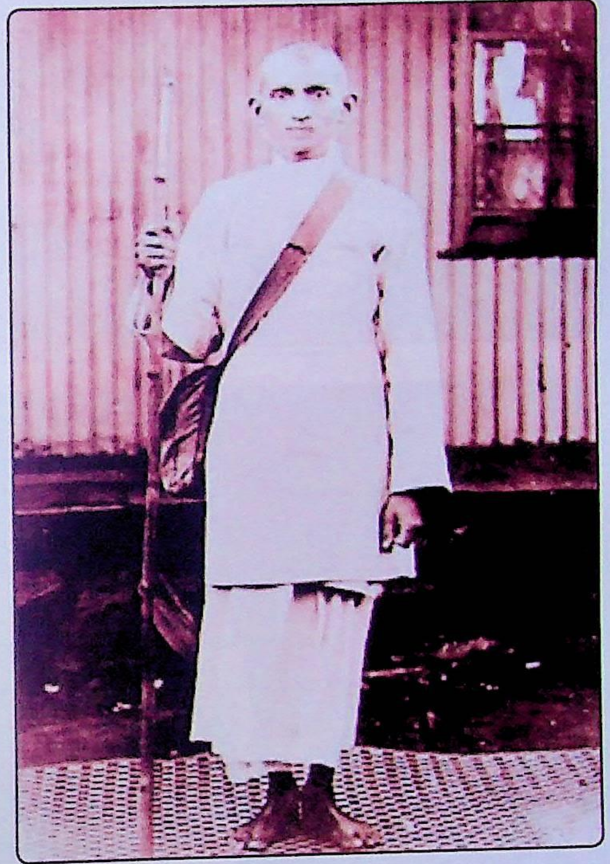
गांधीजी ने वर्णाश्रम धर्म पर भी सदा जोर दिया था। तुलसीदास ने रामराज्य का वर्णन करते हुए कहा है—'वर्णाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।' वर्णाश्रम व्यवस्था को हम उसकी यूरोपीय इतिहास से तुलना किए बिना नहीं समझ सकते। यूरोप में केवल दो वर्णों की मान्यता रही है। अभिजात वर्ग स्वामी वर्ग है। उसे ज्ञान, शौर्य और धन-संपदा सबका एकमात्र अधिकारी माना जाता रहा है। दूसरा वर्ग दासों का है, जो अभिजात वर्ग के अधीन है। केवल बीसवीं सदी में आकर यह दासता समाप्त हुई है, जब उसका बोझ उन्होंने अपना औपनिवेशिक साम्राज्य खड़ा करते हुए शेष दुनिया पर डाल दिया था।

बी-२०१, जनसत्ता अपार्टमेंट
सेक्टर-९, वसुंधरा, गाजियाबाद-२०१०१२ (उ.प्र.)
shrivarta@rediffmail.com
दूरभाष : ९९११४५०६८९

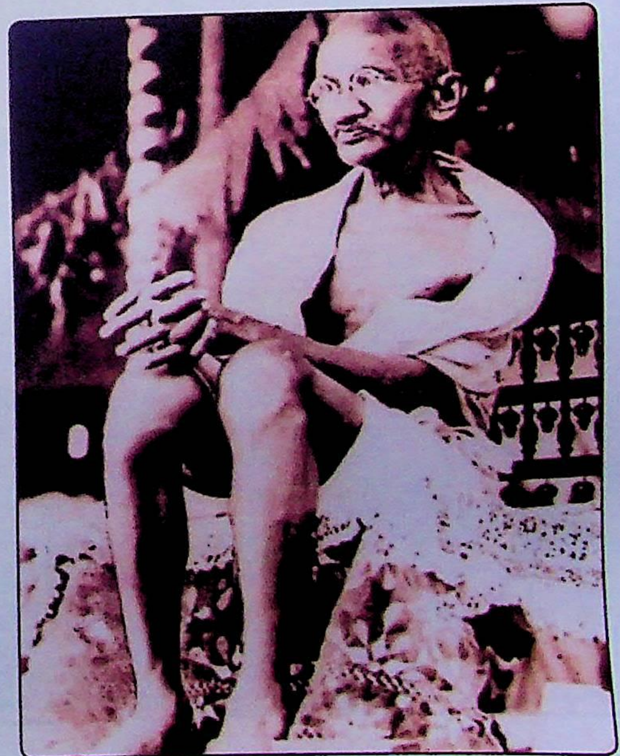


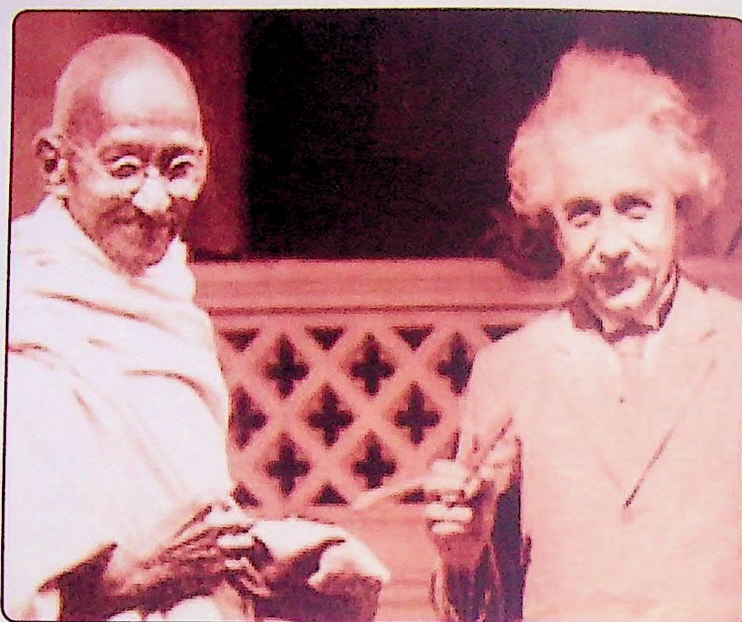
चित्रों में महात्मा गांधी

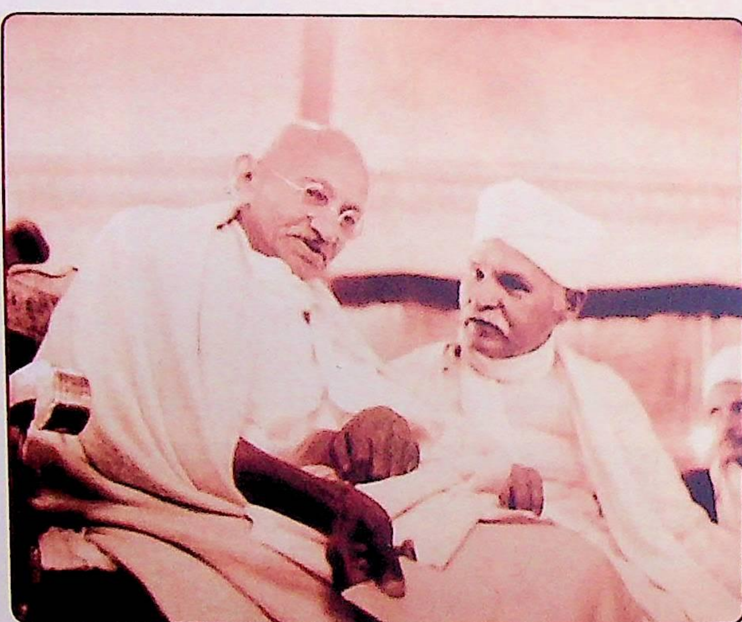


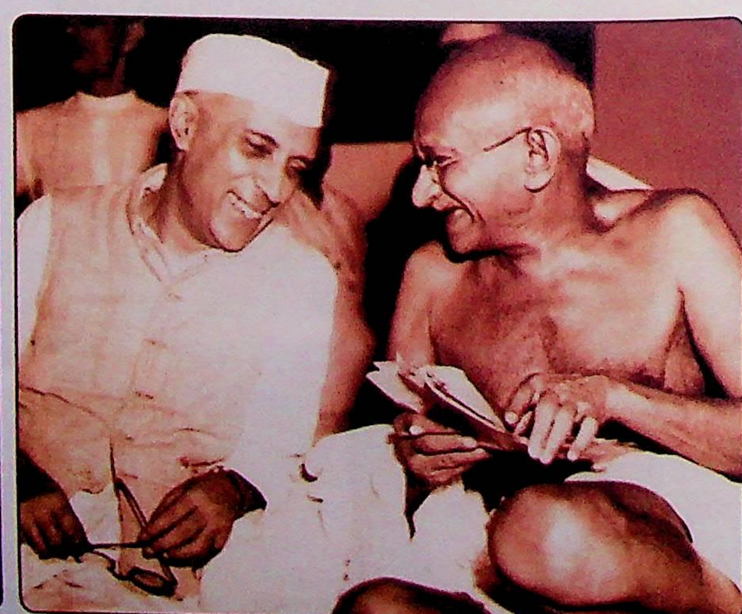


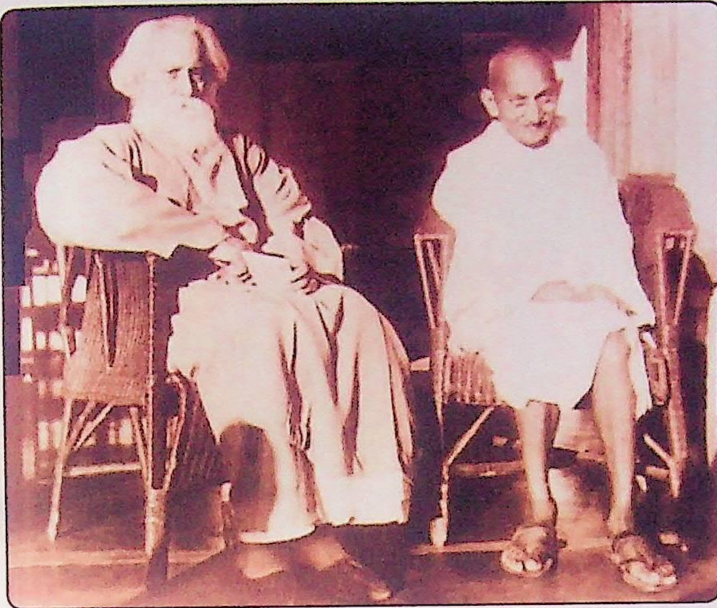




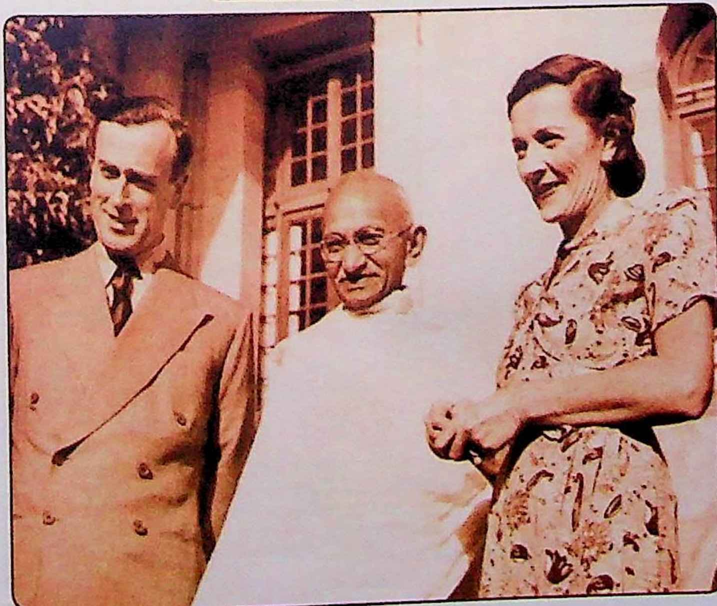
























जन भागीदारी-जवाबदेह सरकार

उत्तर प्रदेश में पहली बार



विकास एवं सुशासन के 30 माह

कृषि

• रु. 73,000 करोड़ से अधिक गन्ना मूल्य का भुगतान • रु. 36,000 करोड़ से 86 लाख लघु एवं सीमान्त किसानों का ऋण मोचन • सभी किसानों को प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना का लाभ • गेहूं, धान, दलहन, तिलहन की एम.एस.पी. में वृद्धि करते हुए किसानों से 227 लाख मी. टन खाद्यान्न की सरकारी खरीद

सिंचाई

• 46 वर्षों से लंबित बाण सागर परियोजना सहित 8 सिंचाई परियोजनाओं को पूर्ण कर लगभग 2 लाख 67 हजार हेक्टेयर सिंचन क्षमता में वृद्धि • बुन्देलखण्ड में 8384 खेत-तालाबों का निर्माण • 50 लाख किसान ड्रिप स्प्रिंकलर सिंचाई योजना से लाभान्वित • निःशुल्क बोरिंग के माध्यम से 1 लाख 61 हजार 485 हेक्टेयर सिंचन क्षमता में वृद्धि

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य

• 'आयुष्मान भारत' योजना से 1 करोड़ 18 लाख गरीब परिवारों को रु. 5 लाख तक का चिकित्सा कवर। छूटे हुए 10 लाख 56 हजार परिवार 'मुख्यमंत्री जन आरोग्य योजना' से आच्छादित • जे.ई./ए.ई.एस. के रोकथाम हेतु प्रभावी प्रयासों से इस बीमारी में 35% एवं मृत्यु दर में 65% कमी • गोरखपुर एवं रायबरेली में एम्स का निर्माण • 15 नये मेडिकल कॉलेज की स्थापना-कार्य प्रगति पर, जिनमें से 7 मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई प्रारम्भ

शिक्षा

• 'स्कूल चलो अभियान' में 1.80 करोड़ बच्चों का नामांकन • बालिकाओं को स्नातक तक निःशुल्क शिक्षा • एन.सी.ई.आर.टी. पाठ्यक्रम लागू • नकलविहीन परीक्षाएं • 193 नये इण्टर कालेज संचालित • 51 नये राजकीय महाविद्यालयों की स्थापना-कार्य प्रगति पर • 2 नये विश्वविद्यालयों की स्थापना हेतु भूमि-बजट की व्यवस्था • 24 राजकीय पॉलीटेक्निक की स्थापना • 4 राजकीय इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना

बिजली

• जनपद मुख्यालयों को 24 घंटे, तहसील मुख्यालयों को 20 घंटे एवं ग्रामीण क्षेत्रों को 18 घंटे विद्युत आपूर्ति • 1 करोड़ 9 लाख से अधिक नये विद्युत कनेक्शन • 1 लाख 30 हजार मजरे विद्युतीकृत • सूर्यास्त के बाद ग्रामीण क्षेत्र विद्युत कटौती से मुक्त

निवेश

• लगभग रु. 2 लाख करोड़ की निवेश परियोजनाओं पर कार्य प्रारम्भ, 5 लाख लोगों को रोजगार • रु. 20,000 करोड़ के निवेश वाले डिफेन्स कॉरिडोर की स्थापना-प्रक्रिया प्रारम्भ, 2 लाख 50 हजार लोगों को रोजगार मिलेगा • ओडीओपी योजना में 1 लाख 92 हजार लाभार्थियों को रु. 18 हजार 345 करोड़ का ऋण वितरित, 5 लाख लोगों को रोजगार

एक्सप्रेसवे

• 341 किलोमीटर लम्बे पूर्वांचल एक्सप्रेसवे का तेजी से निर्माण • 91 किमी. लम्बे गोरखपुर लिंक एक्सप्रेसवे एवं 297 किमी. लम्बे बुन्देलखण्ड एक्सप्रेसवे के लिए निर्माण-प्रक्रिया प्रारम्भ • मेरठ से प्रयागराज तक 640 किमी. लंबे गंगा एक्सप्रेसवे के निर्माण का निर्णय

कानून व्यवस्था

• कानून व्यवस्था पर जीरो टालरेन्स की नीति • संगठित अपराध पर नियंत्रण • सभी प्रमुख पर्व, त्यौहार, मेले, धार्मिक आयोजन तथा लोकसभा चुनाव शांतिपूर्ण एवं सकुशल सम्पन्न

समाज कल्याण

• अनुसूचित जाति/जनजाति के कुल 33 लाख 43 हजार, पिछड़ी जाति के कुल 55 लाख 83 हजार एवं सामान्य वर्ग के 19 लाख से अधिक छात्र-छात्राओं को पूर्वदशम् एवं दशमोत्तर छात्रवृत्ति • वृद्धावस्था पेंशन प्रतिमाह रु. 400/- से बढ़ाकर रु. 500/- करते हुए 41 लाख 57 हजार 308 वृद्धजन को पेंशन • दिव्यांगजन पेंशन प्रतिमाह रु. 300/- से बढ़ाकर रु. 500/- करते हुए 9 लाख 84 हजार 709 दिव्यांगजन को पेंशन • वनटांगिया, मुसहर, कोल तथा थारू समुदाय के ग्रामों में मूलभूत सुविधाओं का विकास

महिला सशक्तिकरण

• प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना में गरीब महिलाओं को 1 करोड़ 35 लाख निःशुल्क रसोई गैस कनेक्शन • एंटी रोमियो स्क्वॉयड का गठन • मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना क्रियान्वित • मुख्यमंत्री सामूहिक विवाह योजना में निर्धन परिवारों की 68108 कन्याओं की शादी • निराश्रित महिला पेंशन हेतु आयु सीमा की बाध्यता समाप्त • 21 लाख 69 हजार निराश्रित महिलाओं को पेंशन • अल्पसंख्यक वर्ग की निर्धन पुत्रियों की शादी के लिए अनुदान • प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना से 18 लाख 57 हजार 38 माताएं लाभान्वित • सभी जिलों में 181 महिला हेल्पलाइन व रेस्क्यू वैन संचालित

स्वच्छता

• सभी जनपद ओडीएफ घोषित • ग्रामीण क्षेत्रों में 2 करोड़ 61 लाख परिवार व्यक्तिगत शौचालयों से आच्छादित • नगर क्षेत्र में 4000 सामुदायिक शौचालयों का निर्माण

प्रधानमंत्री आवास योजना

• प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) में 12 लाख 82 हजार आवास निर्मित • प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) में स्वीकृत 12 लाख 97 हजार 212 आवासों का निर्माण कार्य प्रगति पर • मुख्यमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) में 16700 आवास निर्मित

श्रमिक-कल्याण

• 60 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुके श्रमिकों को प्रतिमाह रु. 1000/- की पेंशन • प्रधानमंत्री श्रम योगी मान धन योजना के अन्तर्गत 5 लाख 13 हजार 917 श्रमिकों का पंजीकरण • पारम्परिक कारीगरों, बढ़ई, दर्जी, टोकरी बुनकर, नाई, सुनार, लोहार, कुम्हार, हलवाई आदि के लिए विश्वकर्मा श्रम सम्मान योजना • उत्तर प्रदेश माटी कला बोर्ड का गठन

नगर विकास

• स्मार्ट सिटी मिशन योजना में प्रदेश के 10 शहर (लखनऊ, कानपुर, प्रयागराज, वाराणसी, आगरा, सहारनपुर, बरेली, झांसी, मुरादाबाद, अलीगढ़) में रु. 20 हजार करोड़ की परियोजनाएं प्रगति पर • 60 शहरों में अमृत योजना के अन्तर्गत कार्य • नमामि गंगे परियोजना के तहत 45 सीवरेज परियोजनाएं स्वीकृत, 12 परियोजनाएं पूर्ण एवं शेष पर निर्माण कार्य प्रगति पर

पारदर्शी भर्ती प्रक्रिया

• अब तक 2 लाख 25 हजार भर्तियां पूर्ण • पुलिस, शिक्षा व अन्य विभागों में भर्ती की पारदर्शी प्रक्रिया जारी

सड़क, वायु, मेट्रो कनेक्टिविटी

• 129441 किमी. सड़कें गड्ढामुक्त • 66700 किमी. मार्ग का नवीनीकरण • 7948 किमी. ग्रामीण सड़कों का निर्माण • प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना में 6003 किमी. सड़कों का निर्माण • 8 हवाई अड्डे क्रियाशील • जेवर इंटरनेशनल एयरपोर्ट का कार्य प्रगति पर • 11 नये हवाईअड्डों का निर्माण जारी • लखनऊ में अमौसी से मुंशी पुलिया तक मेट्रो का संचालन • नोएडा से ग्रेटर नोएडा तक मेट्रो का विस्तार • कानपुर, झांसी, वाराणसी, आगरा, प्रयागराज, गोरखपुर और मेरठ में मेट्रो/रैपिड अर्बन ट्रांसपोर्ट हेतु कार्य योजना तैयार

पर्यटन

• प्रयागराज में 'दिव्य कुम्भ-भव्य कुम्भ' का आयोजन • मथुरा में रंगोत्सव एवं अयोध्या में भव्य दीपोत्सव का आयोजन • काशी विश्वनाथ मंदिर कॉरिडोर का विकास • स्वदेश दर्शन योजना के अन्तर्गत समेकित पर्यटन विकास

पशुधन व दुग्ध विकास

• प्रत्येक जनपद में दो-दो वृहद गोवंश संरक्षण केन्द्र की स्थापना हेतु रु. 180 करोड़ एवं छुट्टा गोवंश के भरण-पोषण हेतु रु. 158.50 करोड़ की स्वीकृति • बुन्देलखण्ड के 7 जनपदों में 36 पशु आश्रय गृहों के निर्माण हेतु रु. 10.32 करोड़ की स्वीकृति • वित्तीय वर्ष 2018-19 में 305 लाख मी. टन दुग्ध उत्पादन कर उत्तर प्रदेश देश में प्रथम स्थान पर

राशन की कालाबाजारी पर रोक

• 63 लाख से अधिक फर्जी राशन कार्ड निरस्त • 3 करोड़ 55 लाख परिवारों को नये राशन कार्ड • 15 करोड़ से अधिक लाभार्थियों को पोर्टेबिलिटी के माध्यम से राशन दुकान चुनने का अवसर • ई-पॉस मशीनों के माध्यम से भ्रष्टाचार रहित खाद्यान्न वितरण

वन एवं पर्यावरण

• वृक्षारोपण महाकुम्भ के अन्तर्गत रिकार्ड 22 करोड़ से अधिक वृक्षों का रोपण • प्रयागराज में एक निश्चित समयावधि में एक ही स्थान पर 76824 पौध रोपण कर 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड' में नाम दर्ज • स्वच्छ पर्यावरण के लिए पॉलीथीन के निर्माण एवं उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध

उच्च गुणवत्ता वाले हेलमेट का ही उपयोग करें।

सबका साथ-सबका विकास-सबका विश्वास

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश



प्रभात

4-12 जनवरी, 2020
विश्व पुस्तक मेले में आपका स्वागत है

नए प्रकाशन







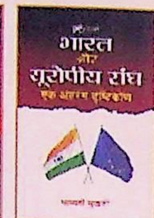


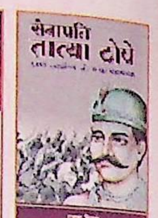












पुस्तक	लेखक	मूल्य
अखंड भारत के शिल्पकार सरदार पटेल	हिंडोल सेनगुप्ता	700.00
राजयोग : स्वरूप एवं साधना	योगी आदित्यनाथ	300.00
हठयोग : स्वरूप एवं साधना	योगी आदित्यनाथ	300.00
विकास की राजनीति	डॉ. विनय सहस्रबुद्धे	350.00
राजनीति की लोक-संस्कृति	सं. रामबहादुर राय	600.00
बात बोलेगी हम नहीं	आर.के. सिन्हा	600.00
लॉर्ड ऑफ रिकॉर्ड्स	हरीश चंद्र बर्णवाल	750.00
कहानी मोदी 2.0 की	अकु श्रीवास्तव	600.00
भारत कैसे हुआ मोदीमय	संतोष कुमार	500.00
नरेंद्र मोदी होने का अर्थ	डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री	500.00
राष्ट्र-साधक नरेंद्र मोदी	आर. बालाशंकर	500.00
मोदी नीति	हरीश चंद्र बर्णवाल	400.00
भारत में उद्यमिता	कलराज मिश्र	350.00
नया भारत, समर्थ भारत	डॉ. वेदप्रकाश	400.00
नए भारत की ओर	सं. हर्षवर्धन त्रिपाठी / शिवानंद द्विवेदी	300.00
भारत की राजनीति का उत्तरायण	सूर्यकांत बाली	1000.00
भारत का दलित-विमर्श	सूर्यकांत बाली	600.00
शिक्षा के द्वंद्व	पवन सिन्हा	350.00
विलक्षण शब्द चित्र	पु.ल. देशपांडे	500.00
डॉ. आंबेडकर : आयाम दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
डॉ. आंबेडकर : व्यक्ति दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
डॉ. आंबेडकर : जीवन दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
डॉ. आंबेडकर : राष्ट्र दर्शन	किशोर मकवाणा	600.00
कर्मयोगी संन्यासी योगी आदित्यनाथ	रहीस सिंह	400.00
शिवाजी महाराज द ग्रेटेस्ट	हेमंतराजे गायकवाड	600.00
सुभाषचंद्र बोस की अधूरी आत्मकथा	शिशिर कुमार बोस	600.00
नेताजी सुभाष चंद्र बोस युवकों से	सं. राम किशोर	300.00
चाणक्य और जीने की कला	प्रस्तुति : बकुल बक्शी	400.00
धर्म और विज्ञान	हरिप्रसाद सोमाणी	500.00
हिंदुओं की संघर्ष गाथा	लक्ष्मी नारायण अग्रवाल	400.00
सफलता का खजाना	मौलाना वहीदुद्दीन खान	400.00
खरी-खरी	डॉ. नंदकिशोर गर्ग	400.00
वे पंद्रह दिन	प्रशांत पोल	350.00
गांधी बनाम भगत	नवीन गुलिया	250.00
सफलता के गुरुमंत्र	नेपोलियन हिल	400.00
मन में है विश्वास	नेपोलियन हिल	500.00
सफलता के लिए 13 सर्वश्रेष्ठ आदतें	नेपोलियन हिल	400.00
सक्सेस Limitless	नेपोलियन हिल	600.00

पुस्तक	लेखक	मूल्य
संघ और स्वराज	रतन शारदा	250.00
आप भी अमीर बन सकते हैं	जोसेफ मर्फी	450.00
सर्वश्रेष्ठ मन द्वारा सफलता पाएँ	जोसेफ मर्फी	300.00
विश्वास का जादू	जोसेफ मर्फी	250.00
अवचेतन मन की शक्ति	जोसेफ मर्फी	500.00
आकर्षण का नियम	विलियम वाकर एटकिंसन	300.00
जीवन जीने के Positive मंत्र	लुइस एल. हे	500.00
सक्सेस की University	ऑग मैंडिनो	600.00
सुपर सफलता के 25 सुपर नियम	ऑग मैंडिनो	600.00
जीने के नुस्खे, बड्डी से सीखें	मंजीत हिरानी	450.00
मशहूर हुए तो क्या हुआ?	सोहा अली खान	450.00
शोमैन राज कपूर	रितु नंदा	700.00
तेंदुलकर की कहानी उन्हीं की जुबानी	सचिन तेंदुलकर	500.00
पुनर्जन्म	वॉल्टर सेम्किव	800.00
मिशन एवरेस्ट 1965	कैप्टन एम.एस. कोहली	600.00
1947 के बाद का भारत	गोपा सभरवाल	1000.00
अध्यात्म की खोज में	संजीव शाह	600.00
भारत और यूरोपीय संघ : एक अंतरंग दृष्टिकोण	भास्वती मुखर्जी	800.00
शक्ति की मान्यता	दिलीप सिन्हा	900.00
भारतीय भूगोल का संक्षिप्त इतिहास	संजीव सान्याल	600.00
महात्मा गांधी की झारखंड यात्रा	अनुज कुमार सिन्हा	300.00
मैन ऑन मिशन महाराष्ट्र	आशिष चांदोरकर	700.00
दांपत्य की धूप-छाँह	मृदुला सिन्हा और राम कृपाल सिन्हा	400.00
पर्त्नी मनोरमां देहि''	मृदुला सिन्हा	200.00
रुक जाना नहीं'' (जीवनी)	सचिन पाचोरकर	400.00
50 बिजनेस कोहिनूर (जीवनी)	महेश दत्त शर्मा	300.00
काँच विज्ञानी डॉ. आत्माराम	शिवगोपाल मिश्र	400.00
नोबेल पुरस्कृत डॉ. हरगोविंद खुराना	दिनेश मणि	300.00
महाराजा बीर बिक्रम किशोर माणिक्य	बिप्लब कुमार देब	300.00
शिक्षा : विकल्प एवं आयाम	अतुल कोठारी	400.00
ऑपरेशन राहत	मयंक गोयल	600.00
समाज चिंतन	अविनाश राय खन्ना	400.00
एक दिन नेपाल में	रमेश पोखरियाल 'निशंक'	400.00
खुशियों का देश भूटान	रमेश पोखरियाल 'निशंक'	250.00
विश्व धरोहर महाकुंभ	रमेश पोखरियाल 'निशंक'	400.00
तीन तलाक	ज़ियाउस्सलाम	350.00
कितनी माँएँ हैं मेरी	अर्चना पैन्यूली	400.00
संपूर्ण बाल नाटक	विष्णु प्रभाकर	500.00



बेटियाँ हैं घर की शान

उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य का रखें पूरा ध्यान



मुख्यमंत्री कन्या सुमंगला योजना



योजना की श्रेणियां तथा धनराशि

प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	चतुर्थ श्रेणी	पंचम श्रेणी	षष्टम श्रेणी
बालिका के जन्म होने पर ₹ 2000/-	एक वर्ष तक के पूर्ण टीकाकरण पर ₹ 1000/-	कक्षा-1 में प्रवेश पर ₹ 2000/-	कक्षा-6 में प्रवेश पर ₹ 2000/-	कक्षा-9 में प्रवेश पर ₹ 3000/-	10वीं/12वीं उत्तीर्ण करके स्नातक/2 वर्षीय या अधिक अवधि के डिप्लोमा कोर्स में प्रवेश पर ₹ 5000/-

योजना की पात्रता हेतु अर्हताएं

- उत्तर प्रदेश का स्थायी निवास प्रमाण पत्र।
- परिवार की वार्षिक आय अधिकतम ₹ 3.00 लाख।
- अधिकतम दो ही बच्चियों को योजना का लाभ।
- परिवार में अधिकतम दो बच्चे।

आवेदन की प्रक्रिया

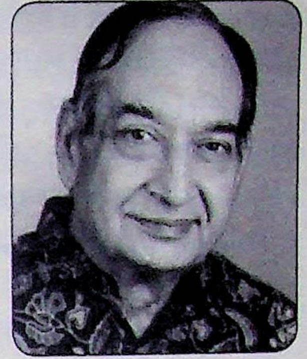
- बालिका स्वयं (यदि वयस्क हो), माता/पिता या अभिभावक आवेदक हो सकते हैं।
- ऑनलाइन आवेदन – कॉमन सर्विस केन्द्रों / साइबर कैफे / स्वयं के स्मार्टफोन या कम्प्यूटर आदि के माध्यम से https://mksy.up.gov.in पर लॉगिन करके आवेदन करें अथवा अपने जनपद के जिला प्रोबेशन अधिकारी के कार्यालय से सम्पर्क करें।



कार चालक सीट बेल्ट अवश्य लगायें | बेटी बचाओ - बेटी पढ़ाओ | https://mksy.up.gov.in | महिला कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश







गांधी की हिचकी

• गोपाल चतुर्वेदी

इसमें कोई संशय नहीं है कि गांधीजी अंतिम साँस तक एक निष्ठावान हिंदू रहे और उन्होंने प्राण छोड़े भी तो 'हे राम' कहकर। यह भी निर्विवाद है कि वे सीधे स्वर्ग सिधारे होंगे। कम-से-कम अपना विश्वास है कि उनके जीवन के शुभ कर्मों से मृत्यु के बाद स्वर्ग पर उनका नैसर्गिक अधिकार है। ऐसे कुछ लोगों का यह भी मत है कि स्वर्ग और नर्क केवल मानवीय कल्पना है। लक्ष्य केवल इतना है कि आदमी इनका पालन कर इनसानी बनाई गई नैतिकता के दायर में रहे। चोरी, डकैती, अराजकता, रेप आदि न हों। समाज में अमन-चैन रहे। पुलिस को फालतू डंडे चलाने और वसूली करने का मौका न मिले। इसीलिए कहावत है कि 'बद अच्छा बदनाम बुरा।' दुर्भाग्य से भारतीय पुलिस के साथ ऐसा ही हुआ है। आजकल रोजगार का ऐसा अकाल है कि नौकरी, वह भी सरकारी, बमुश्किल ही मिल पाती है। जैसे हर जायज काम की रेट है, घूस जैसे नाजायज काम की भी अनौपचारिक दर है, जिसके माध्यम से संबद्ध विभाग के बिचौलिए स्वयं अपना और ग्राहक दोनों का जीवन सँवारते हैं। कोई खेत बेचता है, कोई घर। पैसे जो लाखों में हैं, चुकाते वक्त बहुधा असहाय-पीड़ित गुनगुनाते पाए जाते हैं, ''एक घूस का दरिया है, सब बेच के जाना है।'' जाहिर है कि नौकरी पाने में जिसने जो गँवाया है, वह उससे अधिक अपने सेवाकाल में वसूलेगा। इन हालात में सदाचार सिर्फ एक कल्पित स्थित है। लाखों चुकाने के बावजूद कोई गारंटी नहीं है कि नौकरी मिल ही जाए।

स्वर्ग और नर्क की अवधारणा से असहमत विद्वानों का दृढ़ विचार है कि शरीर नश्वर है। उसकी नियति ही माटी में मिलना है। उनको आत्मा के सूक्ष्म शरीर पर भी संदेह है। बहरहाल हमें इससे क्या? हमें यकीन है कि आत्मा भी है और स्वर्ग तथा नर्क भी। ऐसे नर्क के वर्णन पढ़कर हम हड़के हुए हैं। हिंदी के लेखकों का डाह, प्रपंच, एक-दूसरे को गाली देने और गुटबाजी की प्रवृत्ति इस तथ्य के शर्तिया लक्षण हैं कि उनका नर्क जाना तय है। जितना हमारे ऐसों के लिए नर्क निश्चित है, उतना ही गांधी का स्वर्ग। जब कभी हमें कढ़ाई में पकौड़े तेज आँच से इधर-उधर करछुल से फुदकते-तलते दिखते हैं, हमें नर्क का सोच-सोचकर डर लगता है। मरने के पहले हम धनाभाव, छपास की लगन, संपादकों के नखरे, पाठकों और सहलेखकों की बेरुखी का नर्क झेलते हैं, मरने के बाद भी बड़ा कड़ाह ही क्या अपनी नियति है? इधर काफी अरसे से हमें पकौड़ी से परहेज है। इसमें कुछ खाली जेब की भूमिका है, कुछ मृत्यु के बाद का खतरा।

हमें एक ही संतोष है। हमने दफ्तर में चुनाव किया है, दस बुद्धिजीवी लेखकों का। पाठक आश्चर्य न करें। हर दफ्तर के नाकारा और अक्षम होने की जड़ में यही बुद्धिजीवी किस्म के लोग हैं। इनमें से अधेड़ दफ्तर की महिलाओं से छेड़छाड़ में लगे रहते हैं और शेष काम न करने के कारणों और तर्कों में। गरमी में यह वातानुकूलन की माँग करते हैं और सर्दी में हीटिंग की। कभी कैंटीन की सब्जी में इन्हें मक्खी नजर आती है, कभी कॉकरोच। हमने ऐसों से एक पर्ची पर नाम लिखकर प्रश्न किया कि यह स्वर्ग जाएँगे कि नर्क, सबने अपने मित्रों को, गोपनीयता की शर्त पर, नर्क के योग्य पाया। दरअसल अपने बारे में सबको खुशफहमी है कि उनका खुद का स्थान स्वर्ग में आरक्षित है, बाकी का नर्क में। हमें तब से भरोसा है कि संतों और राजनेताओं की सूची में सिर्फ गांधी ही इकलौते व्यक्ति हैं, जिन्हें देश की जनता एकमत से या बहुमत से स्वर्ग के काबिल पाती है।

हमें अपनी परख पर प्रसन्नता मिश्रित गर्व हुआ। हम सब जैसे एक विशाल मोटरबोट पर सवार हैं, जिसमें नश्वरता का छेद है। सच्चाई यह है कि कोई कब डूबेगा, यह न ज्योतिषी बता पाए हैं न डॉक्टर। अपने अहम को संतोष देने के लिए लोग जो चाहे सोचे-समझें, पर हर उपलब्ध चिकित्सीय व्यवस्था के नामी-गिरामी, नाव के इस छेद को पाटने में कैसे समर्थ हों, जबकि वह खुद भी इसके शिकार हैं? एकाध गांधी हैं, जो जनता की स्मृति में अमर हैं। बाकी कितने भी नारे लगवाएँ, अमरता का भ्रम मूर्तियों या संस्थाओं के नामकरण से फैलाएँ, जिस दिन फौत हुए, उस दिन से जन साधारण की यादों से उतरने लगते हैं। बस जो सत्ता में पारिवारिक प्रजातंत्र के पोषक हैं, वह मौके-बेमौके अपनी स्वार्थ सिद्ध के वास्ते अपने बाप, चाचा, बाबा, नाना, नानी के नाम चुनावी कंदुक-कीड़ा में फुटबॉल की तरह इधर-उधर उछालते रहते हैं। इनमें से एक भी गांधी की टक्कर का है क्या?

गांधी में कमजोर और कृशकाय शरीर के साथ शताब्दियों का वैचारिक भार जरूर था, वरना उनकी भौतिक संपत्ति तो नगण्य ही थी। धरती से विदा लेने पर स्वर्ग में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। देवताओं ने इस अहिंसा के नए देवता को सम्मान के साथ दर्शन किए। गांधी सहजता, सरलता और स्वच्छता के प्रतीक हैं। 'सादा जीवन उच्च विचार' उनका आदर्श है। उनके धरती के चेले इसके उलट 'शाही जीवन, नीच-विचार' के नमूने हैं। स्वर्ग

के आवास में भी गांधी ने यही प्रयास किया। देवताओं ने आश्चर्य से देखा। यह इकलौता व्यक्ति सोमरस के लोकप्रिय झरने को छोड़कर सामान्य पानी की नदी की ओर जा रहा है। आवास में नल था, उसमें जल नहीं आता है। उसमें केवल सोमरस के सुगंधित पेय का प्रवाह है।

स्वर्ग और धरती की शासकीय प्रणाली में यही मूलभूत अंतर है। इंद्र के आदेशों का तत्काल पालन होता है। धरती पर ऐसा नहीं है। यहाँ प्रमुख अभियंता उसके आठ-दस सहायक, फिर उनके सहायक, फिर अवर, प्रवर व कनिष्ठ निरीक्षक और उनके सहायक। अंततः चपरासीनुमा कोई व्यक्ति सरकार का प्रतिनिधि बनकर शिकायत दूर कर निर्देशित व्यक्ति के पास पहुँचता है। उसके बाद वापसी यात्रा में इन्हीं अहम सोपानों का सफर कर वह अपनी कछुए से भी सुस्त चाल से वह प्रमुख अभियंता के पास पहुँचता है। इस बीच या तो पीड़ित व्यक्ति टें बोल जाता है और समस्या का अपने आप निदान हो जाता है।

जब यह समाचार सचित्र 'स्वर्ग-खबर' में प्रकाशित हुआ तो इंद्र बेचैन हो उठे। यों स्वर्ग में दूरदर्शन चैनल भी है, पर वह इंद्र सभा की घटनाओं और अप्सराओं के क्रिया-कलापों में ही ऐसे व्यस्त रहते हैं कि वहाँ के समाचारों से नारद के अलावा अन्य देवता नदारद ही रहते हैं। वैसे अंतहीन सीरियल भी चलते हैं। उनका प्रभाव नींद की गोली ऐसा होता है। देवता उन्हें देखते और धीरे-धीरे मधुर खर्राटों में खो जाते। इंद्र ने यह अनूठा समाचार पढ़कर स्वर्ग के प्रमुख अभियंता को ध्वनि तरंगों से तत्काल इस नए स्वर्गवासी की कठिनाई को दूर करने का निर्देश दिया। स्वर्ग और धरती की शासकीय प्रणाली में यही मूलभूत अंतर है। इंद्र के आदेशों का तत्काल पालन होता है। धरती पर ऐसा नहीं है। यहाँ प्रमुख अभियंता उसके आठ-दस सहायक, फिर उनके सहायक, फिर अवर, प्रवर व कनिष्ठ निरीक्षक और उनके सहायक। अंततः चपरासीनुमा कोई व्यक्ति सरकार का प्रतिनिधि बनकर शिकायत दूर कर निर्देशित व्यक्ति के पास पहुँचता है। उसके बाद वापसी यात्रा में इन्हीं अहम सोपानों का सफर कर वह अपनी कछुए से भी सुस्त चाल से वह प्रमुख अभियंता के पास पहुँचता है। इस बीच या तो पीड़ित व्यक्ति टें बोल जाता है और समस्या का अपने आप निदान हो जाता है। अन्यथा उसके बजट आवंटन की प्रक्रिया का शुभारंभ कर प्रमुख अभियंता सरकारी मौत अर्थात् सेवानिवृत्ति के निर्धारित समय विभाग से कूच करता है और कछुए को मात खानेवाली गति से आदेश के सोपानों को सुशोभित करनेवाली सरकारी बजटीय प्रक्रिया कौन कम है? वह भी कौरवों के दरबार में द्रोपदी की साड़ी है। खिंचती ही रहती है, फिर भी खुलती नहीं है।

आँधी-तूफान की रफ्तार से प्रमुख अभियंता गांधी के आवास पहुँचे तो गांधी 'धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन' नामक पुस्तक को ध्यान से पढ़ने में व्यस्त थे। स्वर्ग के आवास में न दरवाजे हैं, न दीवालें हैं, न खिड़कियाँ। समान तापमान के चलते इनकी दरकार भी नहीं है। यों वहाँ ताक-झाँक करनेवाले एक मात्र नारद हैं, जो कभी-कभार ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश या इंद्र के दरबार से फुरसत पाते हैं। चोरी-डकैती वगैरह का तो प्रश्न ही नहीं है।

प्रमुख अभियंता ने आते ही गांधी से सवाल किया, ''अहिंसा के अवतार! सुना है, आप नल में जल के अभाव से पीड़ित हैं।''

गांधी ने बिना एक पल भी गँवाए उत्तर दिया, ''नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। मुझे नदी तक जाने में हर्ष ही होता है। ऐसे भी मुझे चलते रहने का अभ्यास है।'' प्रमुख अभियंता के मन में यकायक गांधी का 'दांडी मार्च' कौंध उठा, ''हाँ, यह तो सच है। पर नल में जल के आने से आपको सुभीता होगा।''

गांधी ने उनकी एक न सुनी। ''ऐसा है श्रीमान कि आप सिर्फ मेरी सुविधा के लिए एक पाइप लाइन बिछाएँ, यह मेरे जीवन के सिद्धांतों के प्रतिकूल है। मैंने आज तक कोई विशेष सुविधा ली हो, वह भी सिर्फ स्वयं के खातिर, ऐसा मुझे ध्यान नहीं आता है।''

प्रमुख अभियंता इस सत्य से परिचित थे, ''नहीं-नहीं, नल में जल की व्यवस्था हम सारे स्वर्गवासियों के लिए कर देंगे। ऐसे भी स्वच्छ जल का महत्त्व है। सिर्फ सोमरस से काम नहीं चलता है। हम देवर्षि से इस विषय पर चर्चा करेंगे।''

गांधी ने बिना अवसर गँवाए उन्हें उत्तर दिया, ''देखिए श्रीमन्! अहिंसा केवल हिंसा के अभाव का उसूल नहीं है। इसका अर्थ है कि मन, वचन, कर्म से अहिंसा अर्थात् आप के कारण दूसरों को कष्ट न होना। मेरा अनुरोध है कि आप भी इसका अनुपालन करें।''

इस बीच अभियंता ने अनुभव किया कि गांधी को हिचकियाँ बहुत आ रही हैं। उनके संवाद के बीच जैसे हिचकी-व्यवधान लगता रहता है। उसने गांधी से जानना चाहा तो उन्होंने बताया, ''मेरे जन्मदिन या भारतीय चुनाव के दौरान भारतवासी मुझे याद करते हैं, यह कोई बीमारी न होकर उसी का परिणाम है।'' अभियंता ने पूरी चर्चा की सूचना ध्वनि-तरंगों से इंद्र को प्रेषित की। गांधी के मत के विरुद्ध अभियंता को यह निर्णय सूचित किया गया कि हर आवास में दो टोंटियों का प्रबंध किया जाए, एक से सोमरस उपलब्ध हो, दूसरे से सामान्य जल। हिचकियों का सुनकर चरक ऋषि ने सुझाया कि गांधी का विचार उचित है। कोई दिल से याद करे तो हिचकियों का आना ही आना। इंद्र भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे। उन्होंने नारद से संपर्क कर अनुरोध किया कि संभव है कि गांधी को भारत की याद आती हो, क्यों न नारद भारतभूमि का चक्कर लगाकर वास्तविकता से गांधी को परिचित करवाएँ। नारद ने भारत जाने से साफ इनकार कर दिया, ''मैं फिर जाकर अपनी वीणा से हाथ नहीं धोना चाहता हूँ। भारतीय पुलिस का कोई भरोसा नहीं है, कौन कहे कि वीणा धरवाने के केस में वह मुझे ही जेल में ठूँस दे? भारतीय पुलिस काररवाई पहले करती है और सोचती बाद में है।'' इंद्र ने उनसे प्रार्थना की कि वह गांधी से मिल लें। क्या पता, हिचकियों का कोई हल निकले? भेंट के लिए नारद ने हामी भर दी।

कुछ समय पश्चात् 'जय गांधी, जय गांधी' कहते हुए वह गांधी

के निवास पधारे। उन्होंने स्वयं गांधी को हिचकी लेते देखा। फिर उनके बुद्धिमान बंदरों की ओर रुख किया ''कहिए भारत की क्या रिपोर्ट है? सुनते हैं कि भारतवासी गांधी को इतना याद करते हैं कि हिचकी इन्हें यहाँ आती हैं।'' तीन में से एक ने उत्तर दिया, ''देखिए, हम न बुरा देखते, न सुनते, न बोलते हैं। हम गांधीजी को भी यह बता चुके हैं, और यही आपके संज्ञान में ला रहे हैं।'' नारद और गांधी एक-दूसरे को कुछ समय तक देखते रहे। नारद सोच में डूबे थे। क्या करें? इनकी हिचकी रोकने का कोई उपाय है क्या? क्या वह जान हथेली पर रखकर फिर भारतयात्रा का दुस्साहस कर गांधी को असलियत दिखाएँ? उनके अंतर्मन तक अनिर्णय का कुहासा था। वह विशेष अनुमति लेकर गांधी को भारतयात्रा करवा सकते हैं। उन्होंने गांधी से पूछा, 'भारत चलेंगे?' गांधी ने सहमति में 'क्यों नहीं' कहा। नारद ने तत्काल इंद्र से विशेष अनुमति ली। यह भारत नहीं स्वर्गलोक है। आनन-फानन में अनुमति मिल गई, वरना भारत में एकाध दशक तो लग ही जाता। सोच-समझकर एक साँड़ को नारद ने अपना और गांधी का वाहन बनाया। उसका कुछ डर तो रहेगा जनमानस के मन में। दोनों दिल्ली में उतरे।

नारद ने एक दफ्तर को इंगित किया, 'यहीं मेरा वीणा-हरण हुआ था।' गांधी ने पढ़ा और पाया कि यह भ्रष्टाचार निरोधक कार्यालय है। दोनों बाजार में आगे बढ़े कि वरदीवाले ने पटरीवाले से सबके सामने अपना हफ्ता वसूला और उसके अफसर ने एक दुकान से मुफ्त में रसद-राशन का सामान पैक करवाया, इस निर्देश के साथ कि 'घर भिजवा देना।' गांधी अब तक असहज हो चुके थे। वे किनारे चुपचाप किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े थे कि एक भीड़ 'वापस लो, वापस लो, यह कानून वापस लो' चीखती आई और दुकानों को लूटने लगी। गांधी-नारद को लगा कि इनका लक्ष्य जैसे सिर्फ लूट-पाट है। दुकानदारों ने विरोध किया। मारपीट शुरू हो गई। पुलिस ने भी डंडे लहराए। गांधी धरने की मुद्रा अपनाकर बैठने लगे।

इतने में एक पुलिसिए की नजर गांधी पर पड़ी। वह चीखा—'गांधी बाबा।' दूसरा बोला 'बहुरूपिया फ्रॉड।' कुछ और इस 'फ्रॉड' की ओर आक्रामक अंदाज से बढ़े कि किनारे खड़ा साँड़ अनवरत डकारता अवतरित हुआ और नारद-गांधी को पीठ पर बिठा उड़ चला। भीड़ भौचक उड़ते साँड़ को देखने लगी। गांधी निराश थे, इस हद तक कि उनके शब्द नहीं फूटे रास्ते भर। जब से लौटे, वे तब से मौन हैं, जैसे मौन व्रत पर बैठे हों। नारद का आकलन है कि उन्हें शर्तिया कोई गंभीर मानसिक आघात लगा है। क्या यही उनके सपनों का भारत है? क्या विभाजन का दर्द अब तक मन को साल रहा है? क्या देश को भयावह स्थिति में डालकर हर राजनैतिक दल अपने स्वार्थ की सियासी रोटियाँ सेंकने में नहीं लगा है? इनके कर्म देखकर किसी को भी भ्रम हो कि इन्हें केवल सत्ता की टुच्ची उपलब्धि की चिंता है, देश की नहीं! यह भूलते हुए कि देश ही नहीं रहा तो यह सब क्या विदेशों में सियासी शरणार्थी बनेंगे?

इसी बीच एक उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। आजकल गांधी की हिचकियाँ बंद हैं। क्या गांधी का अचानक इस सच से सामना हुआ है कि उनके आदर्शों को अपनाने का नाटक करनेवाले सियासी दल उसूलों को ठुकराकर व्यर्थ ही उनका नाम उछालने में व्यस्त हैं? नारद ने अपना तकिया कलाम 'नारायण-नारायण' दोहराते राहत की साँस ली और कहा, ''नारायण की कृपा से हम भारत जाकर सही-सलामत बिना गांधी का चश्मा-लाठी गँवाए लौट आए! यही क्या कम है?'' (सा अ)

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कर्तव्यनिष्ठा की भावना

यह घटना उस समय की है, जब बापू यरवदा जेल में थे। उन दिनों यरवदा जेल में ही उनका ऑपरेशन हुआ था। ऑपरेशन होने के बाद वे बहुत कमजोर हो गए थे। चलने-फिरने में भी उनको कठिनाई होती थी। वे हमेशा खड़ाऊँ पहनते थे। जेल में भी वे खड़ाऊँ पहनकर ही गए थे। वहाँ पर उनकी खड़ाऊँ लगभग टूट चली थीं और उन्हें जेल से जो खड़ाऊँ मिली थीं, वे अत्यंत भारी थीं। उन्हें पहनकर गांधीजी को बहुत तकलीफ होती थी। ऑपरेशन होने के बाद तो उन्हें पहनकर चलना और भी मुश्किल हो गया था। एक रात उन्हें खड़ाऊँ पहनकर चलने में अत्यंत तकलीफ का सामना करना पड़ा। उनकी पीड़ा को देखकर उनके आश्रम का सहयोगी बहुत दुःखी हुआ। उसने चुपके से खड़ाऊँ की हलकी जोड़ी लाकर वहाँ पर रख दी और जेल से मिले भारी खड़ाऊँ वहाँ से हटा दिए। सुबह होने पर गांधीजी जब खड़ाऊँ पहनने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अपने खड़ाऊँ की तलाश की। जब वे कहीं नहीं मिले तो उनकी नजर नए खड़ाऊँ पर पड़ी। इन्हें देखकर गांधीजी ने उन्हें नहीं पहना और बोले, 'अरे, मेरे खड़ाऊँ कल रात तक तो यहीं पर थे, अब अचानक कहाँ चले गए और पता नहीं कौन अपने खड़ाऊँ यहाँ छोड़ गया है!' उन्हें ऐसा बोलते देखकर आश्रमवासी उनके पास आकर बोला, 'बापू, ये नई खड़ाऊँ मैं आपके लिए ही लाया हूँ। आपको उन्हें पहनने में तकलीफ होती थी। मुझसे आपकी तकलीफ देखी नहीं गई, इसलिए मैंने उन्हें यहाँ से हटा दिया है।' इस पर गांधीजी बोले, 'आश्रम के चारों तरफ रुपयों की बरसात हो रही है। शायद इसलिए तुम्हें नए खड़ाऊँ लाने की सूझी है। क्या तुम जानते हो कि जो लोग रुपए भेजते हैं, उन्हें विश्वास है कि उनकी एक-एक पाई का सदुपयोग होगा। लेकिन यह तो उनके साथ विश्वासघात हुआ।' यह सुनकर आश्रमवासी लज्जित हो गया। उसे अपनी गलती का अहसास हो गया था। बापू ने उसे आदेश दिया कि आगे से आश्रम का एक रुपया भी व्यर्थ के कार्यों पर खर्च न किया जाए। (सा अ)

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



गांधी और स्वरोजगार

• महेंद्र नाथ पांडेय



छात्र जीवन से मूल्यपरक राजनीति में सक्रिय रहे; १९७८ में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय छात्रसंघ के महासचिव बने। १९८१ में उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए निर्वाचित हुए और अनेक मंत्रालयों के मंत्री रहे। २०१४ में चंदौली लोकसभा से निर्वाचित हुए और श्री नरेंद्र मोदी सरकार में मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री रहे। उत्तर प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष भी रहे। संप्रति केंद्रीय कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्री हैं।

वर्ष २०१९ में हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की १५०वीं जन्म-जयंती मना रहे हैं। गांधीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व ने हमारे भीतर अपनी एक अमिट छाप छोड़ रखी है। पूज्य बापू के जीवन-दर्शन के इतने विविध और व्यापक आयाम हैं, जो हर किसी को आश्चर्यचकित कर देते हैं। आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व गांधीजी के ७५वें जन्मदिन पर दुनिया के महानतम वैज्ञानिकों में से एक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था कि 'आनेवाली पीढ़ियाँ इस बात पर शायद मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस से बना कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर चलता-फिरता था।' इस लेख को लिखते समय मैं भी इस बात का भली-भाँति अनुभव कर रहा हूँ कि कैसी भावनाओं के साथ इस महानतम वैज्ञानिक ने गांधीजी के विषय में यह बात कही होगी।

गांधीजी का जीवन-दर्शन सत्य, सेवा और सर्वोदय पर आधारित है। गांधीजी का जीवन-दर्शन किसी एक वर्ग विशेष के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए है। कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्री के रूप में मेरी राजनीतिक यात्रा का एक अहम पड़ाव भी गांधीजी के जीवन-दर्शन से होकर गुजरता है। कोई ऐसा सोच सकता है कि गांधीजी ने अपने आदर्शों का तो किसी दूसरे ही कालखंड में प्रचार किया था, लेकिन सच कहा जाए तो उनकी यह विरासत आज भी उतनी ही प्रासंगिक है और आनेवाले अनेक युगों तक हमारे जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रासंगिक रहेगी।

पूज्य बापू के साथ मेरा भावनात्मक जुड़ाव और भी बढ़ जाता है, जब मैं अतीत के पन्नों को उलटकर देखता हूँ कि गांधीजी ने कितनी सहजता के साथ उद्योग एवं व्यापारिक जगत् को अपने सामाजिक दायित्व को पूरा करने के लिए प्रेरित किया था। आज राष्ट्र और समाज के लिए जनता के सेवक के रूप में मेरे दायित्वों को पूरा करने में गांधीजी मेरे लिए एक भविष्य की तरह सामने आकर खड़े हैं।

देश को आजादी दिलाने के लिए गांधीजी ने जिस प्रकार से अनेक महापुरुषों का नेतृत्व किया, उस नेतृत्व-क्षमता से मुझे एक बात हमेशा ही सीखने को मिली है कि देश को दिशा देने के लिए एक कुशल प्रबंधन की बड़ी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है। यह कुशल प्रबंधन ही हर क्षण हमें अपने देशवासियों से जोड़े रखता है। अचरज होता है कि गांधीजी की दूरदृष्टि कितनी अनोखी थी। वे इस बात को भली-भाँति जानते थे कि देश में संतुलन बनाए रखने और सभी को बराबरी का दर्जा देने के लिए देश के मानव संसाधन का उपयोग अधिक-से-अधिक किया जाना चाहिए।

आज हमारे देश के पास एक बहुत विशाल मानव संसाधन है। यदि कुशल प्रबंधन और मानव संसाधन एक साथ मिल जाए तो क्या कुछ नहीं किया जा सकता है। कुशल प्रबंधन और मानव संसाधन का यह संगम हमारी हर बुनियादी आवश्यकता को पूरा कर सकता है। रोजगार एवं उद्यमशीलता की दिशा में हमें सर्वोत्तम परिणाम दे सकता है। स्वरोजगार की दिशा में एक वैचारिक क्रांति ला सकता है।

पूज्य बापू सदैव कहते थे कि इस देश की आत्मा ग्रामीण अंचलों में बसती है। गांधीजी चाहते थे कि भारत में गाँवों के विकास को प्राथमिकता में रखते हुए देश की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया जाए। गांधीजी ने ग्राम स्वराज, पंचायतीराज, ग्रामोद्योग के माध्यम से एक स्वावलंबी भारत के निर्माण को दिशा दी। आज हम उनके बताए हुए मार्ग पर चलने के लिए प्रयास कर रहे हैं। यह अपने आप में किसी दिव्य अनुभूति से कम नहीं है।

पूज्य बापू गाँवों और ग्रामीण अंचलों में ग्रामोद्योग की दयनीय स्थिति से व्यथित और चिंतित थे। उन्होंने अपने स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से गाँवों को खादी निर्माण से जोड़ने का निर्णय किया। उन्होंने

बेरोजगारों को रोजगार की दिशा में प्रेरित करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका को सुनिश्चित किया। गांधीजी आजादी दिलाने के साथ ही एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे, जहाँ छुआछूत, ऊँच-नीच, असमानता, भेदभाव न हो। वे चाहते थे कि उनके सपनों के भारत में सभी उन्मुक्त आकाश के पंछी की तरह अपनी उड़ान भर सकें। सभी अपने अधिकारों का प्रयोग कर लोकतांत्रिक परंपरा का निर्वहन कर सकें और देश को तरक्की की दिशा में आगे बढ़ सकें।

गांधीजी ने जिस भावना के साथ पूरे देश को चरखा चलाने के लिए प्रेरित किया, वह अपने आप में अद्वितीय थी। इस भावना में स्वदेशी, स्वावलंबन, स्वाभिमान और स्वरोजगार जैसी विशेषताएँ निहित थीं। इस भावना ने ही पूरे देश को खादी का सही अर्थ समझाया है। कैसे खादी बनाकर देश को स्वाधीनता दिलाई जा सकती है। कैसे खादी बनाकर भी देश को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति दिलाई जा सकती है। पूज्य बापू का मानना था कि खादी ही देश में स्वदेशी का प्रतीक है और स्वदेशी ही स्वावलंबन, स्वाभिमान और स्वरोजगार का प्रतीक है। यदि आज भी हर देशवासी यह संकल्प कर ले कि हम अपने दैनिक जीवन में कहीं-न-कहीं खादी का प्रयोग अवश्य करेंगे तो सोचिए, इस देश में स्वरोजगार को कितनी ऊर्जा और ताकत मिल सकती है। आज पूरे देश को स्वावलंबी बनाए रखने के लिए गांधीजी के दिखाए मार्ग पर चलने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। देश के सर्वांगीण विकास के लिए यह बहुत आवश्यक है कि ग्रामीण अंचलों को बहुत अधिक आत्मनिर्भर बनाया जाए। खादी को ग्रामीण क्षेत्रों से आनेवाले कारीगरों की आजीविका का साधन बनाया जाए।

पूज्य बापू अर्थव्यवस्था और अर्थशास्त्र से जुड़े विषयों पर बहुत मौलिक विचार रखते थे। उनकी यह सोच समकालीन प्रचलित विचारों और सिद्धांतों के ठीक उलट ऐसी नीतियों की आवश्यकता को दरशाती थी, जिसकी सहायता से गरीबों, पिछड़ों और भूमिहीनों को मदद पहुँचाई जा सके। पूज्य बापू ऐसे सिद्धांतों का अनुसरण करने को कहते थे, जिससे समाज में व्याप्त तनाव, हिंसा और उत्पीड़न रूपी राक्षसों को समाप्त किया जा सके।

गांधीजी ने अर्थनीति और नैतिकता में कभी भेद नहीं किया। उन्होंने सदैव ही स्पष्ट किया है कि उनके लिए अर्थविद्या और नीतिविद्या एक-दूसरे की पूरक हैं। उनका कहना था कि 'अगर अर्थविद्या से व्यक्ति या समाज के नैतिक कल्याण की जगह उनके हितों का हनन हो रहा है तो मैं ऐसे सिद्धांत को हमेशा गलत मानूँगा।' गांधीजी के इस विचार को इस प्रकार से समझा जा सकता है कि जो नीति एक समुदाय को दूसरे समुदाय का शोषण करने की अनुमति दे, उसे हितकारी नहीं माना जा सकता है।

बापू समाज में ऐसी व्यवस्था की माँग करते थे, जिससे श्रमिकों, गरीबों और भूमिहीनों की दशा में सुधार लाया जा सके। जिससे श्रमिकों, गरीबों और भूमिहीनों के हितों को साधा जा सके। जिससे श्रमिकों, गरीबों और भूमिहीनों को इस योग्य बनाया जा सके कि वे अपने और देश के उत्थान में अग्रणी भूमिका निभा सकें। बापू चाहते थे कि रोजगार और उत्पादन के संसाधनों पर किसी एक वर्ग या पूँजीपति का एकाधिकार स्थापित न हो। वह चाहते थे कि श्रमिकों और उस तबके को संसाधनों पर अधिकार मिलना चाहिए, जिन्हें सच्चे अर्थों में इसकी आवश्यकता है, ताकि उनका किसी भी स्तर पर शोषण न किया सके।

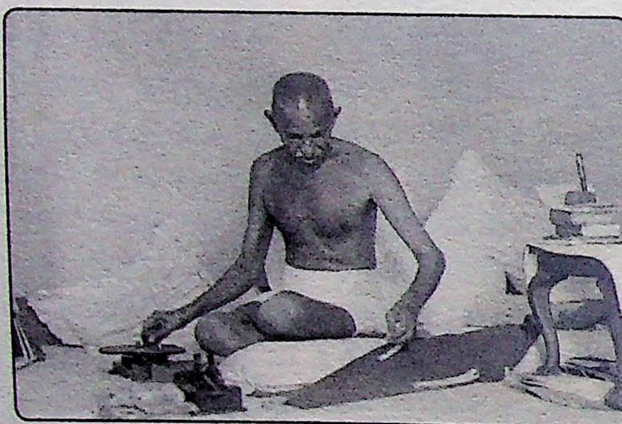
पूज्य बापू कहते थे कि 'मेरी राय में न केवल भारत की बल्कि सारी दुनिया की अर्थ-रचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी को भी ऊन और वस्त्र के अभाव में तकलीफ न सहनी पड़े।' अगर इसे दूसरे शब्दों में कहें तो इसका आशय यह है कि सभी को कम-से-कम इतना काम तो अवश्य ही मिल जाना चाहिए कि वह अपने खाने, पहनने और गुजर-बसर करने जैसी बुनियादी जरूरतें आसानी से पूरी कर सके।

गांधीजी का मानना था कि बुनियादी जरूरतें सभी आमजन को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होनी चाहिए, जिस तरह ईश्वर द्वारा वरदानस्वरूप हमें वायु और जल उपलब्ध हैं। ऐसा होना समाज में एक नई सकारात्मकता का संचार कर सकेगा। गांधीजी ने अपने सिद्धांतों में इस बात की व्याख्या की है कि मनुष्य के हालात चाहे जैसे भी क्यों न हों, उसे दूसरों के शोषण का प्रतिभागी किसी भी कीमत पर नहीं बनना है। वे साफ-साफ इस बात को इंगित करते हैं कि किसी भी देश या समुदाय का संसाधनों पर एकाधिकार अन्यायपूर्ण होगा। यह विचार तभी फलीभूत हो सकता है, जब जीवन-यापन से जुड़ी अनेक आवश्यकताओं के साधन गरीब वर्ग के नियंत्रण में रहें।

पूज्य बापू का मानना था कि हम जब भी किसी कार्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर लें तो हमेशा यह ध्यान में रखें कि इस कार्य से सबसे गरीब, कमजोर और हाशिए पर जीवनयापन कर रहे व्यक्ति को कितना लाभ होगा।

एक देश की आर्थिक नीतियों के तौर पर हम हमेशा यही सोचते हैं कि निरंतर आर्थिक विकास और आर्थिक गतिशीलता से ही गरीबी, पिछड़ापन और आम जनमानस के अभाव दूर होंगे। लेकिन गांधीजी को दशकों पहले ही इस बात का साफ अँदेशा था कि इस तरह के आर्थिक विकास में गरीबी और विषमता बढ़ने की प्रबल संभावना भी उपस्थित रहती है। इसलिए गांधीजी ने आर्थिक विकास को नहीं अपितु गरीबों की बुनियादी आवश्यकताओं को अपनी आर्थिक सोच का केंद्र बनाया। यही कारण था कि उन्होंने देश के नेताओं और नीति-निर्धारक लोगों से इस बात का विशेष आग्रह किया कि जब आपको क्षणिक मात्र संदेह हो या आपका अहम आप पर हावी होने लगे तो स्वयं को आप इस कसौटी पर कसकर देखो कि समाज में जो सबसे गरीब और कमजोर व्यक्ति आपने देखा है, आपके उठाए जानेवाले कदम उस व्यक्ति के जीवनस्तर को सुधारने के लिए कितने उपयोगी होंगे। गांधीजी ने नीति-निर्धारक लोगों से कहा कि आप अपने हृदय से पूछो कि आप की नीतियों का उस व्यक्ति को कितना लाभ मिल सकेगा। क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ अधिकार रख सकेगा? क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं, जिनके पास रोजगार नहीं है।

बीते अनेक दशकों में हमने देखा है कि समाज के हर क्षेत्र में पूँजीवाद और बाजारवाद का दबदबा कायम रखा गया। गरीबों को उनका हक दिलाने के लिए सोचा ही नहीं गया। एक गरीब व्यक्ति तो किसी बैंक के दरवाजे तक पहुँचने में सकुचाने लगा। ठीक इसी तरह की विपरीत परिस्तिथियाँ उस समय में पूज्य बापू के सामने भी थीं, जब समाज में तेजी से मशीनीकरण और तकनीकी बदलाव हो रहे थे। ऐसा होना उचित भी था, क्योंकि भारतीय उपमहाद्वीप को छोड़कर लगभग हर जगह, चाहें वह यूरोपीय महाद्वीप हो या अमेरिकी, हर जगह समाज में मशीनीकरण और तकनीकी से तरक्की हो रही थी। परंतु पूज्य बापू की सोच और राय इस विषय पर एकदम अलग थी। बापू इस मशीनीकरण और तकनीकी की विचारधारा को चुनौती देते नजर आ रहे थे। बापू मानते थे कि मशीनें गरीब किसानों और मजदूरों के रोजगार एवं आजीविका का साधन होनी चाहिए, न कि उनके रोजगार को कम करने का माध्यम। बापू भली-भाँति जानते थे कि अगर देश में गरीबों को उनका अधिकार नहीं मिल सका तो आनेवाले समय में कुछ लोगों के पास ही संसाधनों पर एकाधिकार होगा और इन संसाधनों का दोहन वे अपनी मर्जी से करेंगे।



पूज्य बापू का कहना था कि 'धनोपार्जन करो, लेकिन अपने लिए नहीं, गरीबों के लिए ही। लोग सामान्यतया अपने भोगों के बाद जो रह जाता है, उसमें से कुछ गरीबों के लिए रखते हैं। न्याय है कि हम पहले गरीबों के लिए चेष्टा करें और बाद में अपने लिए।'

गांधीजी यह जानते थे कि उन्मत्त पूँजी विश्व भर में उपलब्ध सस्ते श्रम के शोषण का नया इतिहास रचने पर आमादा है। इसलिए उन्होंने अपने चिंतन के केंद्र में सदैव ही सबसे गरीब व्यक्ति को रखा और बहुत ही संवेदनशील तरह से उसकी समस्याओं का निराकरण करने के लिए अन्य लोगों को भी प्रेरित किया। स्वदेशी अपनाते हुए देश को स्वरोजगार की प्रेरणा दी। आज अगर हम स्वरोजगार की संकल्पना को व्यापक तौर पर धरातल पर उतारना चाहते हैं तो हमें यह ध्यान में रखना होगा कि समाज में उस वर्ग को मुख्यधारा से जोड़ना बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो आधुनिकता की इस दौड़ में अपने पैरों पर खड़ा होने में पूरी तरह से सक्षम नहीं है।

वर्तमान में दुनिया के सभी देश, चाहे वे विकसित देश हों या विकासशील देश, सभी वैश्वीकरण और आधुनिकता के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए प्रयासरत हैं। लेकिन दुनिया के हर देश में दो अलग-अलग तरह की दौड़ हो रही हैं। एक दौड़ उन लोगों की है, जो संपन्न हैं, और जो अधिक पाने की लालसा लिये दौड़ते जा रहे हैं। तो वहीं दूसरी दौड़ उन लोगों की है, जो दो जून की रोटी के लिए अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए जूझ रहे हैं।

अपने अस्तित्व को बचाने और अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयासरत लोगों के लिए गांधीजी के विचारों 'अपरिग्रह' और 'स्वराज' का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। बापू का मानना था कि इन सिद्धांतों के फलस्वरूप ही, गाँव और ग्राम सभाएँ आत्मनिर्भर तथा स्वावलंबन की दिशा में आगे बढ़ सकेंगी।

पूज्य बापू का संपूर्ण जीवन निजी महत्त्वाकांक्षा से मुक्त रहा। उनके किसी भी कार्य में किसी के लिए भी द्वेष, घृणा या ईर्ष्या की भावना देखने को नहीं मिलती। उनका प्रेम, करुणा और सादगी भरा जीवन आज दुनिया के लिए एक जीवन-दर्शन है। पूज्य बापू के जीवन-दर्शन के चार आधारभूत सिद्धांत 'सत्य, अहिंसा, प्रेम व सद्भाव' एक सशक्त समाज व राष्ट्र-निर्माण के घटक हैं। ये आधारभूत सिद्धांत सच्चे व कोमल हृदयवाले व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताएँ हैं। ये सिद्धांत ही एक मानव को महामानव में परिवर्तित करने के सूत्र हैं।

जीवन के हर क्षेत्र में गांधीजी का स्मरण बहुत आवश्यक है। आज भी जब हम भारत को जाति और पंथ के पूर्वग्रहों से मुक्त करने की बात करते हैं तो गांधीजी हमारे चिंतन का केंद्रबिंदु होते हैं। जब हम साफ-सुथरे और स्वस्थ भारत के निर्माण के लिए प्रयास करते हैं, तब गांधीजी हमारे विमर्श में होते हैं। जब हम महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों की बात करते हैं, तब गांधीजी को याद करते हैं। जब हम भारत के किसानों और भारत के गाँवों की बेहतरी की बात करते हैं तब भी गांधी-दर्शन से हमारा मार्गदर्शन होता है।

गांधीजी के मार्गदर्शन से प्रेरणा पाकर हमने अपना ध्यान गाँवों के विकास पर केंद्रित किया है। जब गाँवों का सर्वांगीण विकास होगा, तभी हम देश को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ा सकते हैं। गांधीजी का मानना था कि अगर गाँवों में कुटीर उद्योगों को स्थापित किया जाएगा तो इसका सबसे ज्यादा फायदा ग्रामीणों को होगा। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार आसानी से उपलब्ध हो जाएगा। ग्रामीणों को गाँवों से शहरों की ओर पलायन नहीं करना पड़ेगा।

हमारी सरकार का प्रयास है कि गाँवों में तकनीक के माध्यम से भी युवाओं को प्रशिक्षित किया जाए। उन्हें उद्यमी बनाने के लिए जरूरी प्रशिक्षण दिए जाएँ। ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को प्रशिक्षण देकर मानसिक तौर पर मजबूत बनाया जाए और उनके लिए आर्थिक सहायता भी उपलब्ध कराई जाए। अधिक-से-अधिक संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों के युवाओं को आगे लाकर उन्हें उद्यमी बनाने के लिए प्रेरित किया जाए। वर्तमान परिदृश्य में मेरा ध्यान युवाओं की उद्यमशीलता पर केंद्रित है। युवाओं को निकट भविष्य में बेहतर आजीविका प्राप्त करने में मदद देना है।

एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि उद्योग ही उद्योग का सृजन करते हैं। कौशल विकास से रोजगार सृजन करना बहुत ही सहज और सरल प्रक्रिया है। हम कौशल विकास के द्वारा आर्थिक विकास और सामाजिक विकास की गतिशीलता को बनाए रख सकते हैं। हमारी सरकार का मुख्य लक्ष्य है कि हम भारत के युवाओं को नई-नई तकनीक से अवगत कराएँ और उन्हें प्रशिक्षण दें। युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षित करके उनकी कार्य-क्षमता को बढ़ाकर उन्हें स्वरोजगार के लिए प्रेरित किया जा सकता है। हम उन क्षेत्रों की ओर तेजी से बढ़ते जा रहे हैं, जो कई वर्षों से अविकसित थे। ऐसे क्षेत्रों में रोजगार-सृजन की नई-नई संभावनाएँ तलाशी जा रही हैं। मौजूदा समय में सभी तकनीकी संस्थाओं को विश्व में बदलती तकनीकी के अनुसार गतिशील बनाना हमारा लक्ष्य है।

हमारा प्रयास है कि सार्वजनिक प्रशिक्षण संस्थानों के विस्तार को बढ़ावा दिया जाए। विशेष रूप से ग्रामीण, सीमा, पहाड़ी और कठिन क्षेत्रों में, जहाँ निजी क्षेत्र को निवेश करना बहुत मुश्किल होता है। स्वरोजगार के लिए जरूरी है कि लोगों के जीवन-स्तर में सुधार किया जाए; विशेष रूप से युवाओं, महिलाओं और वंचित समूहों के जीवन के लिए नए अवसर पैदा किया जाए। वर्तमान और उभरते रोजगार के बाजार की जरूरतों के लिए उच्च गुणवत्ता वाले कुशल कार्यबल का विकास करना हमारी प्राथमिकता है।

आनेवाले वर्षों में हम भारत को दुनिया की कौशल की राजधानी बनाने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान में हम देश के युवाओं को इस तरह से कुशल बना रहे हैं, ताकि उन्हें रोजगार भी मिल सके और उनकी उद्यमिता क्षमताओं में सुधार हो सके।

उद्यमिता और लघु व्यवसाय किसी भी देश की बढ़ती अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं। आज के परिवेश में हमारी सरकार खुदरा विक्रेता, होल-सेलर्स, मैन्युफैक्चरिंग से लेकर घर में छोटी इकाइयाँ लगाकर काम करनेवाले सभी उद्यमियों को नए अवसर दे रही है, ताकि कारोबार करनेवाले सभी उद्यमियों को आगे बढ़ाया जा सके। यह गांधीजी के जीवन-दर्शन की ही प्रेरणा है, जिसके कारण हम उद्यमशीलता और स्वरोजगार की दिशा में एक बड़ा कदम आगे बढ़ा पाए हैं।

पूज्य बापू ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वावलंबन के विचारों से देश को रास्ता दिखाया था। आज हम उसी रास्ते पर चलकर स्वच्छ, स्वस्थ, समृद्ध और सशक्त 'न्यू इंडिया' के निर्माण में लगे हैं। पूज्य बापू ने स्वास्थ्य और सेहत को सच्चा धन माना था और चाहते थे कि देश का हर नागरिक स्वस्थ हो। हमारी सरकार योग दिवस, आयुष्मान भारत, फिट इंडिया मूवमेंट के द्वारा इस विचार को देश के व्यवहार में लाने का पूरा प्रयास कर रही है।

हमारे देश के गौरवशाली प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी भी नए भारत की बुनियाद को गांधीजी के सिद्धांतों पर बना रहे हैं। प्रधानमंत्रीजी स्वयं भी कहते हैं कि 'महात्मा गांधी कल थे, महात्मा गांधी आज हैं और महात्मा गांधी आनेवाली पीढ़ियों के लिए भी रहेंगे।' यह देश मानवता के प्रति गांधीजी के चिरस्थायी योगदान के लिए सदैव उनका ऋणी रहेगा। गांधीजी ने कभी अपने जीवन से प्रभाव पैदा करने का प्रयास नहीं किया लेकिन उनका जीवन ही प्रेरणा का कारण बन गया। आज हम 'कैसे प्रभावित किया जाए' के दौर में जी रहे हैं, लेकिन गांधीजी की सोच थी, 'कैसे प्रेरित किया जाए।'

आज का युग वैश्वीकरण का युग है। पूज्य बाप मानते थे कि राष्ट्रवादी हुए बिना अंतरराष्ट्रीयवादी नहीं बना जा सकता है। यदि हमें पूरे विश्व की मदद करनी है तो हमें सबसे पहले अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करना होगा। हम पूज्य बापू से प्रेरणा पाकर राष्ट्रवाद की प्रबल भावना को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। बापू के सपनों का नया भारत बना रहे हैं।

गांधीजी के अनमोल विचार मेरे लिए सदैव मार्गदर्शन का काम करते रहे हैं। गांधीजी ने कहा था कि 'विचार और काम की शुद्धता तथा सरलता ही महान् लोगों को आम लोगों से अलग करती है, वे वही काम करते हैं, जो दूसरे करते हैं, लेकिन उनका मकसद समाज में बदलाव लाना होता है।' गांधीजी के सद्विचारों को अपने आचरण और अपनी कार्यशैली में लाते हुए मेरा भी संकल्प है कि युवाओं को उद्यमी बनाने का पूरा प्रयास किया जाए।

यह सर्वविदित है कि यदि आजादी के संघर्ष की जिम्मेदारी गांधीजी पर न होती तो भी वह स्वराज, स्वावलंबन, स्वरोजगार के मूल तत्त्व को लेकर आगे बढ़ते जाते। गांधीजी की यही सोच आज भारत के सामने आनेवाली बड़ी चुनौतियों के समाधान का बड़ा माध्यम बन रही है।

आज हम सभी पूज्य बापू के सपनों का ऐसा भारत बना रहे हैं, जो 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' के आदर्श पर चलनेवाला है। गांधीजी के राष्ट्रवाद के सभी तत्त्व पूरी दुनिया के लिए आदर्श सिद्ध होंगे और प्रेरणास्रोत बनेंगे। गांधीजी की सोच ही हमारे सामने आनेवाली हर चुनौती का समाधान करेगी।

गांधीजी का संपूर्ण जीवन-दर्शन मानवता को प्रेरित करनेवाला है। जाति, पंथ, दल और यहाँ तक कि देश से भी ऊपर उठकर उन्होंने मानव-आत्मा को छुआ है। गांधीजी के द्वारा व्यक्त विचार एवं अभिमत हमारे और भावी पीढ़ियों के लिए जीवनमंत्र हैं।

मैं मानता हूँ कि सरलता और उदारता की प्रतिमूर्ति रहे पूज्य बापू का जीवनदर्शन प्रत्येक देशवासी के लिए युगों-युगों तक प्रासंगिक रहेगा। मैं यह भी मानता हूँ कि अहिंसा के पक्षधर और देश की आजादी के महानायक गांधीजी, अपने सिद्धांतों से हर भारतीय को भारतीय होने का गूढ़ अर्थ आज भी समझा रहे हैं। स्वाधीनता के महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देकर पूज्य बापू ने सत्य, सेवा और सर्वोदय की अखंड ज्योति आज भी प्रज्वलित कर रखी है।

पूज्य बापू को मेरा कोटि-कोटि नमन!

सा अ

कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय
(भारत सरकार), नई दिल्ली



गांधी और टाल्सटॉय : दो महात्मा

• वेदप्रताप वैदिक



हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रबल पक्षधर; भारतीय राजनीति और विदेश नीति के निष्णात विद्वान्; प्रखर वक्ता एवं संपादक। अनेक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन। लगभग ८० देशों की कूटनीतिक और अकादमिक यात्राएँ। हजारों लेख व अनेक पुस्तकें प्रकाशित। अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत।

मोहन को महात्मा किसी ने ही कहा हो, उन्हें महात्मा बनाया टाल्सटॉय ने। वे दोनों महात्मा कभी नहीं मिले। टाल्सटॉय रहते थे रूस में और गांधी दक्षिण अफ्रीका में। टाल्सटॉय गांधी से पूरे ४१ साल बड़े थे और उनका निधन १९१० में हो गया था। अपने निधन के ठीक दो माह पहले ७ सितंबर, १९१० को टाल्सटॉय ने अपना लंबा अंतिम पत्र लिखा। वह पत्र गांधीजी के नाम था। पत्र में टाल्सटॉय कहते हैं कि अहिंसा के असली अर्थ को जैसा गांधी ने समझा, किसी ने नहीं समझा और गांधी यह बात कई बार कह चुके हैं कि जैसी अहिंसा टाल्सटॉय ने समझाई, वैसी किसी ने भी नहीं। हिंदू शास्त्रों ने भी नहीं।

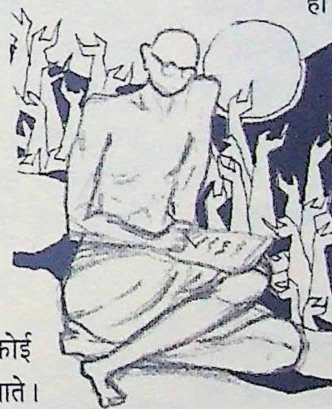
गांधी और अहिंसा एक-दूसरे के पर्याय हैं। गांधी और स्वाधीनता नहीं। स्वाधीनता-संग्राम में तो क्रांतिकारियों का भी योगदान था। गांधी नहीं होते तो भी देर-सवेर भारत स्वाधीन हो जाता। अनेक देश स्वाधीन हुए। वहाँ गांधी-जैसा कोई नहीं था। सिर्फ स्वाधीनता-संग्राम या लोक-संघर्ष के कारण गांधी जाने जाते तो उस श्रेणी में कई अन्य नाम भी आ सकते थे। लेनिन, माओ, होची मिन्ह, सुकार्णो, फिदेल कास्त्रो आदि, लेकिन गांधी सारी दुनिया में जाने जाते हैं अपनी अहिंसा के लिए! अगर गांधी नहीं होते तो अहिंसा को ब्रह्मास्त्र कौन बनाता? अहिंसा को ब्रह्मास्त्र बनानेवाला सारी मानव जाति में एक ही व्यक्ति हुआ है और उसका नाम है—मोहनदास करमचंद गांधी।

गांधी की यह अहिंसा टाल्सटॉय की अहिंसा थी। टाल्सटॉय के पहले, ईसा और ईसा के पहले महावीर और बुद्ध ने भी अहिंसा की बात कही थी। इन तीनों महापुरुषों की अहिंसा का आधार थी—करुणा; लेकिन टाल्सटॉय ने इस करुणा की भी नई व्याख्या की। उन्होंने कहा कि सारी मानवता को प्रेम करने की बात काल्पनिक है, वायव्य है, असंभव है। असली बात है, खुद को प्रेम करने की, उस खुद को, जो खुदा बनकर अपने अंदर बैठा है। यह स्वार्थ नहीं, परमार्थ है। अपने इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन करने के लिए टाल्सटॉय ने १८९३ में एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम था 'ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अंदर ही है'। यह पुस्तक गांधीजी को उनके एक मित्र ने १८९४ में दी। गांधी ने उसे पढ़ा, लेकिन उसका बुखार गांधी पर चढ़ा १९०६ में। यह वह समय था, जब गांधी दक्षिण अफ्रीका में एक सत्याग्रह के बाद दूसरा छेड़ रहे थे और बार-बार जेल जा रहे थे। हर जेल, हर अदालत, हर यात्रा में वे टाल्सटॉय की यह पुस्तक साथ रखते थे। तब तक टाल्सटॉय के दो अन्य भक्त हेनरी पोलक और हरमन कालनबाख भी गांधीजी के घनिष्ट मित्र बन चुके थे। इस दौर में गांधीजी टाल्सटॉय की लगभग आधा दर्जन पुस्तकें पढ़ चुके थे। १९२८ में गांधीजी ने टाल्सटॉय की जन्म-शताब्दी के अवसर पर कहा कि टाल्सटॉय ने ही उनकी रक्षा की, वरना दक्षिण अफ्रीका के जन-संघर्षों के समय उनका मन हिंसा की तरफ फिसलता रहता था। टाल्सटॉय के विचारों ने ही उनको पूर्ण अहिंसक बनाया।

टाल्सटॉय के विचारों ने पश्चिमी समाज में तहलका मचा दिया था। आर्थोडॉक्स चर्च में भूकंप आ गया था। टाल्सटॉय ईसाई राज्य-व्यवस्थाओं की घोर निंदा करते थे। वे यहाँ तक कहते थे कि ब्रह्म, अहुरमज्द, कृष्ण और क्राइस्ट में क्या रखा है। इन्हें छोड़ो और प्रेम की पूजा करो। अहंकार का पूर्ण विसर्जन करो। खुद को खाली करो, ताकि आप में आकर परमात्मा रह सके। बाइबिल के 'पर्वतीय प्रवचन' को पाइथागोरस के थ्योरम की तरह मानो, बाकी सब अनर्गल है। भारतीयो! तुमने खुद अपने आपको गुलाम बना रखा है, अंग्रेजों का, नकली ईसाइयत बघारनेवालों का! ये हिंसा से नहीं भगाए जा सकते। इन्हें जिस दिन तुम अपने मन की खूँटी से उतार दोगे, ये भाग जाएँगे। हिंसा का निवारण हिंसा से नहीं, अहिंसा से, असहयोग से, अरुचि से होगा। टाल्सटॉय के ये विचार रूसी जनता पर आँधी की तरह असर कर रहे थे। जार की दमनशाही के विरुद्ध फैल रही अराजकता की आग में वे घी का काम कर रहे थे। चर्च और सम्राट्, दोनों ही टाल्सटॉय को अपना शत्रु मानने लगे थे, लेकिन टाल्सटॉय के अनन्य भक्तों में गांधी जैसे लोग भी उठ खड़े हुए थे। टाल्सटॉय ने अपने जीवन के अंतिम चरण में आत्मशोधन के लिए जैसे अद्‍भुत प्रयोग किए, वैसे गांधी भरी जवानी में

करने लगे थे। क्या गांधी भी टाल्सटॉय की तरह अंततोगत्वा राज्य और 'धर्म' के कोपभाजन नहीं बने?

१९०८ में टाल्सटॉय ८० साल के हुए। गांधी ने उन्हें पत्र लिखा। दक्षिण अफ्रीका में अपने अहिंसा के प्रयोगों की चर्चा की। टाल्सटॉय के लिए गांधी अपरिचित थे। उसी समय भारतीय क्रांतिकारी तारकनाथ दास ने भी पत्र भेजा। इस पत्र में हिंसा की वकालत थी। जवाब में टाल्सटॉय ने लगभग ४०० पृष्ठ लिख डाले और वह पत्र गांधीजी के पते पर भेज दिया। दास कहीं कनाडा में रहते थे। गांधीजी ने टाल्सटॉय को पत्र लिखकर इस लंबे पत्र को छापने की अनुमति माँगी। वह मिली। गांधी ने 'एक हिंदू के नाम पाती' का गुजराती अनुवाद किया और अनुवाद की भूमिका में लिखा कि इस 'पाती' का मूल सिद्धांत वही है, जो उनका है। इस 'पाती' का अनुवाद और 'हिंद स्वराज' की रचना एक साथ हुई। 'हिंद स्वराज' गांधी-गीता है, स्वयं गांधी है, गांधी के विचारों की आत्मा है। लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गांधीजी ने दिसंबर १९०९ में 'किल्डोनान केसल' नामक जहाज पर ये दोनों पुस्तिकाएँ तैयार कीं। 'हिंद स्वराज' के अंत में गांधी ने टाल्सटॉय की छह पुस्तकों के नाम दिए और पाठकों को सुझाया कि वे उन्हें पढ़ें। जोहन्सबर्ग के पास गांधीजी ने आश्रम भी स्थापित किया, जिसका नाम उन्होंने 'टाल्सटॉय फॉर्म' रखा।



टाल्सटॉय और गांधी के बीच सीधा संपर्क मुश्किल से तीन साल का रहा, वह भी पत्रों के जरिए! यदि टाल्सटॉय १९१० के बाद भी जीवित रहते तो कोई आश्चर्य नहीं कि दोनों महापुरुषों में गहरे मतभेद हो जाते। मतभेद का पहला मुद्दा तो राष्ट्रवाद ही होता। टाल्सटॉय को गांधी का राष्ट्रवाद कतई पसंद नहीं था। उन्होंने ट्रांसवाल में गांधी के काम को 'सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मूलभूत' तथा अहिंसा का 'प्रत्यक्ष प्रमाण' कहा और अपनी डायरी में यह भी दर्ज किया कि वे गांधी की हर बात खूब पसंद करते हैं, 'सिवाय हिंदू देशभक्ति के, जिसके कारण सबकुछ चौपट हो जाता है।' टाल्सटॉय किसी भी प्रकार की देशभक्ति के विरुद्ध थे, चाहे वह रूसी हो या भारतीय! उन्होंने अपने महान् उपन्यास 'युद्ध और शांति' में देशभक्ति का मजाक उड़ाया है।

वास्तव में टाल्सटॉय गांधी की तरह योद्धा तो थे नहीं। वे केवल लेखक थे। अंतिम दिनों में वे साहित्यिक कम और मसीहा अधिक हो गए। मसीहाई के दौर में उन्होंने धर्म, राज्य और चर्च विरोधी कई विचार-पुस्तकें लिखीं और थोड़ी-बहुत समाज-सेवा भी की। यदि गांधी की तरह उन्हें देश के लिए लड़ना पड़ता तो देशभक्ति के बारे में शायद उनके विचार कुछ और होते। रूस के शासक देसी थे। जार थे। उनकी जगह अंग्रेज होते, तुर्क होते या जर्मन होते तो टाल्सटॉय शायद गांधीजी से भी अधिक उग्र राष्ट्रवादी होते। इसी प्रकार सभी धर्मों और परंपराओं पर वाल्तेयर एवं नीत्से की तरह टाल्सटॉय ने भी आँख मींचकर प्रहार किया। गांधीजी इससे सहमत नहीं हो सकते थे। उन्होंने सभी धर्मों को न्यूनाधिक स्वीकार किया, क्योंकि धार्मिकों के बिना स्वराज्य की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती थी।

वास्तव में गांधी के मुकाबले टाल्सटॉय कहीं अधिक आत्म-केंद्रित व्यक्ति थे। टाल्सटॉय की तरह गांधी भी अपने पिता की चौथी संतान थे। यदि टाल्सटॉय के बाबा और नाना बड़े जागीरदार थे तो गांधी के पिता, पितामह और प्रपितामह भी अपने राज्य के सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर रहनेवाले लोग थे, जैसे टाल्सटॉय के पूर्वज रूसी सम्राट् की कदमबोसी नहीं करते थे, वैसे ही उत्तमचंद और उनके बेटे करमचंद 'प्रधानमंत्री' होते हुए भी अपने राजा या रानी से स्वायत्त रहते थे। यह ठीक है कि वयस्क टाल्सटॉय को यास्नया पल्याना की लंबी-चौड़ी जागीर हाथ लगी, जबकि गांधी को उधार लेकर लंदन की पढ़ाई करनी पड़ी, लेकिन स्वाभिमान और स्वायत्तता दोनों को विरासत में एक-जैसी मिली।

टाल्सटॉय और गांधी दोनों का बचपन कोई सीधा-सादा नहीं रहा। दोनों किशोर होते-होते वेश्याओं के कोठे तक पहुँच गए। दोनों ही भाग खड़े हुए, लेकिन गांधी और टाल्सटॉय में बुनियादी अंतर यह था कि गांधी जिस द्वार से एक बार मुड़े, उस पर लौटकर कभी गए ही नहीं, जबकि टाल्सटॉय विवाह के पहले ही एक पुत्र के पिता बन चुके थे और ६० साल की आयु में वे अपनी तेरहवीं संतान के पिता बने थे। उन्हें अपनी वासना से निरंतर लड़ते रहना पड़ा। परस्त्री संबंध और वासना ने उनकी पत्नी सोन्या को उनका सबसे बड़ा शत्रु बना दिया। टाल्सटॉय ने कौन-सा कुकर्म नहीं किया? व्यभिचार, शराब, जुआ, मारकाट, चोरी—उन्होंने वह सबकुछ किया, जो 19वीं सदी के रूस का कोई सामंत कर सकता था। लंबी उम्र तक यास्नया पल्याना का महल और जागीर ही उनकी दुनिया थी। अपनी पत्नी और संतान से लड़ते-लड़ते उनकी सारी उम्र बीत गई। दुनिया को प्रेम का संदेश देनेवाले टाल्सटॉय अपनी पत्नी और बच्चों से न तो प्रेम पा सके और न ही उन्हें दे सके। ८२ साल की आयु में पत्नी से पिंड छुड़ाने के लिए वे घर से भागे और एक रेलवे स्टेशन पर उन्हें दम तोड़ना पड़ा।

गांधीजी के जीवन में भी कुछ उतार-चढ़ाव आए। शुरू की कस्तूरबा सोन्या से थोड़ी ही कम थीं। बाल-विवाह, उद्दाम वासना और उग्र स्वभाव के कारण गांधी को भी पारिवारिक कलह से गुजरना पड़ा, लेकिन कस्तूरबा के त्याग और बच्चों के समर्पण-भाव ने गांधी को आत्मकेंद्रित होने से बचाया। गांधीजी कहीं भी रहें, वे सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से सदा सक्रिय रहे। बड़े बेटे हरिलाल की बगावत ने गांधी को कई बार विचलित किया, लेकिन टाल्सटॉय की तरह उनके पाँव कभी उखड़े नहीं। हरिलाल से 'अब्दुल्ला' बनने, कोठों की सैर करने, शराब पीकर गटर-विहार करने और गांधीजी को खुलेआम गालियाँ बकने के बावजूद हरिलाल वापस लौटे, लेकिन गांधीजी अपने बड़े बेटे को गांधीवादी नहीं बना पाए। इसी प्रकार ५१ साल की आयु में लाहौर की सरलादेवी चौधरी पर गांधी आसक्त हुए, लेकिन वे टाल्सटॉय

की तरह फिसले नहीं। टाल्सटॉय अपने व्यभिचार-प्रसंगों से बहुत दु:खी हो जाते थे और डायरी में लिखते थे कि ऐसा गंदा काम फिर कभी नहीं करूँगा, लेकिन दूसरे दिन फिर वही काम करने लगते थे। इस मामले में गांधी कहीं बेहतर सिद्ध हुए। शारीरिक संबंध तो बहुत दूर की बात है, अपने प्लेटोनिक प्रेम को भी उन्होंने खुद ही बड़ा अपत्तिजनक पाया! उसमें से उन्हें वासना की दुर्गंध आने लगी। उनके निर्मल अंत:करण और सुदृढ़ इच्छा-शक्ति ने उनका साथ दिया। उनके अंदर बैठे भगवान् ने और उनके इर्द-गिर्द रहनेवाले उनके अनुयायियों ने उन्हें बचा लिया। इस गांधी-सरला प्रेम-प्रसंग का मार्मिक वर्णन गांधीजी के पौत्र और प्रसिद्ध विद्वान् श्री राजमोहन गांधी ने अपनी पुस्तक 'गुड बोटमेन' में विस्तार से किया है। यह प्रसंग गांधी को महात्माओं का महात्मा बनाता है।

टाल्सटॉय और गांधी, दोनों को वासना अंत तक झुलाती रही। टाल्सटॉय ने अपने अंतिम वर्षों में वासना के विरुद्ध जैसा मोर्चा खोला था, शायद उसका असर गांधी पर भी पड़ा। टाल्सटॉय ने ३४ साल की उम्र में शादी की और गांधी ने ३७ साल की उम्र में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। गांधी अंत तक ब्रह्मचारी रहे, लेकिन यह अब किसे पता नहीं कि ७९ वर्ष की आयु में भी गांधी अपने ब्रह्मचर्य की परीक्षा करते रहे। ८२ वर्ष के टाल्सटॉय पर जैसे अश्लील आरोप उनकी पत्नी सोन्या लगाती थी, उनके पीछे ईर्ष्या के अलावा कुछ नहीं था, लेकिन यह तो सत्य है कि अहिंसा और यौन के मामले में इन दोनों महात्माओं को अंत तक सजग रहना पड़ा।

हिंसा ने भी दोनों का पीछा नहीं छोड़ा। यद्यपि गोडसे की तरह टाल्सटॉय को किसी ने गोली से नहीं उड़ाया, लेकिन सोन्या कई बार अपनी बूढ़े पति को पागल घोषित कर चुकी थी और उन्हें हत्या की धमकी भी दे चुकी थी। नवंबर की ठंडी रूसी रात में स्टेशन पर दम तोड़ना हत्या से क्या कम है? वह मरना नहीं, मारा जाना है। यों भी गांधी के विरोधियों और टाल्सटॉय के विरोधियों में बड़ी एकरूपता दिखाई देती है, जैसे—श्यामजीकृष्ण वर्मा, सावरकर, एम.एन. रॉय, तारकनाथ दास वगैरह सशस्त्र क्रांति में विश्वास करते थे, वैसे ही क्रोपाटकिन, बाकुनिन वगैरह भी जार को आतंक से उलटाना चाहते थे। उनकी नजर में टाल्सटॉय एक शांतिवादी नपुंसकता के प्रवक्ता थे। भारत के क्रांतिकारी बम बनाने, सुरंग बिछाने और रेलें उड़ाने की कला रूसी क्रांतिकारियों से सीखना चाहते थे। हिंसावादियों ने ताशकंद में एक प्रशिक्षणशाला ही खोल दी थी। टाल्सटॉय और गांधी, दोनों को अपने जीवन की संध्या हिंसा की वेला में ही गुजारनी पड़ी। भारत-विभाजन में खून की नदियाँ बहीं और रूस में १९०५ में स्वयं टाल्सटॉय खूनी बगावत के साक्षी रहे। इस पृथ्वी से प्रयाण करते समय दोनों बुजुर्गों की कटुता पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी।

इसके बावजूद दोनों मानवता को एक अपूर्व संदेश दे गए। अपने लिए सरल और दूसरों के लिए अमूल्य टालस्टॉय के बीज को गांधी ने वटवृक्ष बनाने का प्रयत्न किया, दोनों ने अपने लोहे को कूट-कूट कर कुंदन बनाया। साधारण मनुष्य से महापुरुष बनने की विलक्षण प्रक्रिया जैसी इन दो महापुरुषों के जीवन से प्रकट हुई, इतिहास में किसी अन्य युग्म से नहीं हुई।

सा अ

२४२, सेक्टर-५५
गुरुग्राम-१२२०११
dr.vaidik@gmail.com

स्वच्छता का संदेश

गांधीजी ग्राम-सुधारकों के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति से कहते थे कि उन्हें वातावरण को स्वच्छ रखने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि गंदगी से अनेक बीमारियाँ होती हैं और इसके कारण असंख्य लोगों को समय से पहले अपनी जान गँवानी पड़ती है। उस समय समाज में उच्च व निम्न जाति के मध्य भेदभाव पनपे हुए थे। निम्न वर्ग के लोगों के साथ अछूत व्यवहार किया जाता था। कार्यकर्ताओं में अनेक उच्च जाति के लोग भी शामिल थे। एक दिन गांधीजी ने उन सबको एकत्रित किया और बोले कि आज हम ग्राम की सफाई करेंगे और इसके लिए हम स्वयं ही मेहतर का काम करेंगे। यह सुनकर कुछ कार्यकर्ता बोले, 'यदि हम मेहतर का काम करेंगे तो गाँववालों पर हमारा जो प्रभाव है, वह नहीं रहेगा। उसके बाद हमारे लिए और कोई काम करना संभव नहीं होगा।' कार्यकर्ताओं की बात सुनकर गांधीजी बोले, 'नहीं, ऐसी बात नहीं है। जहाँ कहीं भी कूड़ा-करकट हो, वहाँ से वह तुरंत हटा देना चाहिए। गंदगी दूर करने के लिए यदि स्वयं भी मेहतर बनना पड़े तो मेरे विचार से उसमें कोई बुराई नहीं है और वैसे भी गंदगी दूर करने के लिए उठाए गए कदम का किसी पर गलत असर नहीं पड़ सकता।' यह कहकर वे स्वयं ही एक स्थान से गंदगी उठाने लगे। उन्हें स्वयं मेहतर का कार्य करते देखकर कार्यकर्ता भी जोश में उनके साथ मिलकर गंदगी दूर करने में उनका सहयोग करने लगे। इस प्रकार कुछ ही देर में सभी को मेहतर का कार्य करते देख ग्रामवासी भी झाड़ू लेकर सफाई में जुट गए और देखते-ही-देखते वहाँ की कायापलट हो गई। सभी के एकजुट प्रयास से ग्राम न सिर्फ स्वच्छ हो गया, अपितु वहाँ लोगों के दिलों में भी एकता व प्रेम का वास हो गया। इस प्रकार गांधीजी हर छोटे-से-छोटे कार्य को स्वयं करके एक ऐसी जोत जला देते थे, जो कुछ समय बाद ही जन-जन के हृदय में जल जाती थी।

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गांधी विशेषांक

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और गांधी

• महेश चंद्र शर्मा

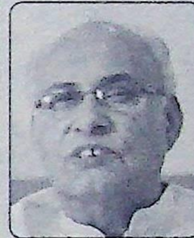
''यह आपकी भूल ही है। आपको अंग्रेजों ने सिखाया है कि आप एक-राष्ट्र नहीं थे और एक-राष्ट्र बनने में आपको सैकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिल्कुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिंदुस्तान में नहीं थे, तब हम एक-राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक-राज्य कायम किया। जिन दूरदर्शी पुरुषों ने सेतुबंध रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा ठहराई, उनका आपकी राय में क्या खयाल होगा? वे जानते थे कि ईश्वर-भजन घर बैठे भी होता है। उन्होंने हमें यह सिखाया है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक-देश बनाया है, इसलिए वह एक-राष्ट्र होना चाहिए।'' *(महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, पृ.२९)*

महात्मा गांधी का उपर्युक्त उद्धरण इस बात का द्योतक है कि वे भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के ही प्रवक्ता थे। आजादी के बाद पाश्चात्य 'राष्ट्र-राज्य' अवधारणा ने भ्रम उत्पन्न किया। दीनदयाल उपाध्याय ने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की एक अवधारणा के रूप में विवेचित किया। इस आलेख में हम राष्ट्र-अवधारणा की पड़ताल करेंगे।

'राष्ट्र' एवं 'राष्ट्रवाद' इन शब्दों का आज विश्व-साहित्य में खूब उपयोग होता है। राजनीति एवं विचारधाराओं के साहित्य में इनकी परिभाषाओं को लेकर भी बहुत कुछ लिखा गया है। दुनिया भर में राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के नाम पर चलनेवाले आंदोलन काफी भाव-प्रवण एवं उत्तेजक होते हैं। परंतु तथ्यत: आज 'राष्ट्र' शब्द की परिभाषा में घोर अराजकता है तथा व्यवहारत: संयुक्त राष्ट्र संघ जिस किसी भी संप्रभु राज्य को 'राष्ट्र' की मान्यता दे देता है, वह राष्ट्र कहलाता है। इस मान्यता के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के पास कोई मानक परिभाषा नहीं है। अंतरराष्ट्रीय राजनैतिक कारणों से संयुक्त राष्ट्र संघ किसी भी संप्रभु राज्य को यह मान्यता देता है, इसलिए विश्व में 'राष्ट्रों' की संख्या घटती-बढ़ती रहती है।

यूरोप में राष्ट्रवाद

वस्तुत: राष्ट्र तत्त्व की यह दुर्दशा तब हुई, जब यूरोप में 'राष्ट्र-राज्य' का उदय हुआ। इस संदर्भ में दीनदयाल उपाध्याय लिखते हैं—''रोम के साम्राज्यों के पतन के बाद रोमन कैथोलिक चर्च के प्रति विद्रोह अथवा उसके प्रभाव में कमी के कारण यूरोप में राष्ट्रों का उदय हुआ। यूरोप का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास इन राष्ट्रों के आविर्भाव तथा परस्पर संघर्ष का इतिहास है। इन राष्ट्रों ने यूरोप महाद्वीप के बाहर जाकर अपने उपनिवेश बनाए तथा दूसरे स्वतंत्र देशों को गुलाम बनाया। राष्ट्रवाद के उदय के कारण राष्ट्र और राज्य की एकता की प्रवृत्ति भी बढ़ी तथा 'राष्ट्रीय-राज्य' का यूरोप में उदय हुआ। साथ ही रोमन कैथोलिक चर्च के केंद्रीय प्रभाव में कमी होकर या तो राष्ट्रीय चर्च का निर्माण हुआ। मजहब का, मजहबी गुरुओं का राजनीति में कोई विशेष स्थान नहीं रहा। सेक्युलर स्टेट की कल्पना का इस प्रकार जन्म हुआ।'' *(एकात्म दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, अध्याय—एक 'राष्ट्रवाद की सही कल्पना', पृष्ठ ८)*



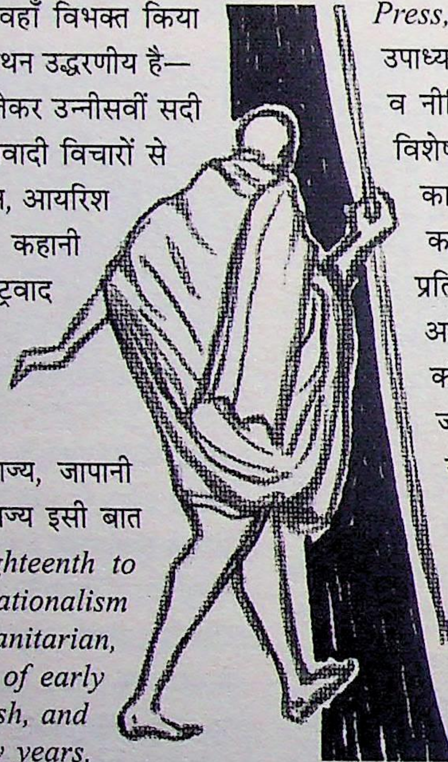
जाने-माने चिंतक। १९८६ में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। १९९६ से २००२ तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' (१५ खंड) का संपादन। संप्रति अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान।

राष्ट्रवाद के संदर्भ में पश्चिम की दृष्टि न केवल राजनैतिक वरन् नकारात्मक भी रही। दीनदयालजी लिखते हैं—''कुछ लोग राष्ट्र कल्पना को ही नकारात्मक मानते हैं, भावात्मक नहीं।...इंग्लैंड पर जब हमला हुआ तो राष्ट्रवाद जाग्रत् हुआ। एक अंग्रेजी कहावत है—'Nations die in peace and live in war', अर्थात् शांतिकाल में राष्ट्र मर जाते हैं, युद्धकाल में जीवित रहते हैं। हमारा राष्ट्र जीवन जो हजारों वर्षों से चला आ रहा है, यदि इसका आधार विरोध, युद्ध या विपत्ति ही हो, तो यह ठीक नहीं है। हम भावात्मक आधार पर खड़े हैं। जीवन की एक दृष्टि हमारे सामने है। हम संसार में पैदा हुए हैं, तो किसी का विरोध करने के लिए नहीं। हमारे सामने एक विधायक विचार है कि हम जोड़नेवाले हैं, तोड़नेवाले नहीं।'' *(एकात्म मानववाद : तत्त्व मीमांसा, प्रभात प्रकाशन,*

नई दिल्ली) दीनदयालजी कहते हैं, यह जोड़नेवाला विचार हमारी संस्कृति है तथा यही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मर्म है।

पश्चिम के राष्ट्रवाद ने अनेक व्यावहारिक एवं परिभाषागत समस्याएँ खड़ी की हैं, लेकिन पश्चिम के विद्वानों ने जो राष्ट्रवाद पर बहस चलाई है, वह पढ़ने योग्य एवं पर्याप्त ज्ञानवर्धक है। इस बहस में भाँति-भाँति के राष्ट्रवादों की चर्चा है, यथा मानवतावादी राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय राज्य, नस्लवादी राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता-बहुल संघ राज्य, क्षेत्रीय राष्ट्रवाद, संवैधानिक राष्ट्रवाद, उदारवादी राष्ट्रवाद, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद तथा लोकतंत्रीय राष्ट्रवाद आदि। इन व्याख्याओं को आक्रामक एवं उदार राष्ट्रवाद की संज्ञाओं में वहाँ विभक्त किया है। इस संदर्भ में विलियम एबेंसटाइन का यह कथन उद्धरणीय है—

''अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक राष्ट्रवाद मानववादी तथा लोकतंत्रवादी विचारों से संप्रेरित था। यह फ्रेंच, अमेरिकन, चेक, इटैलियन, आयरिश तथा पोलिश राष्ट्रवाद के प्रारंभिक दिनों की कहानी है। इसके विपरीत पिछले अस्सी सालों में राष्ट्रवाद अब पृथकतावाद, असहिष्णुता, कट्टरता, अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न, नस्लवाद और अंततः साम्राज्यवाद व आक्रमणों से संबद्ध हो गया है। अखिल जर्मनवाद, जारवादी साम्राज्य, जापानी सैन्यवाद, फासीवाद और अब साम्यवादी साम्राज्य इसी बात के प्रमाण हैं।'' (*"From the late eighteenth to the middle of nineteenth century, nationalism was essentially inspired by humanitarian, democratic ideas; this was the story of early French, American, Czech, Italian, Irish, and Polish nationalism. In the last eighty years, on the other hand, nationalism has tended to ally itself with parochialism, intolerance, bigotry, persecution of minorities, racialism and finally, imperialism and aggression the record of Pan Germanism. Tarist imperialism, Japanese militarism, Fascism and finally, Communist imperiasism." —William Ebenstein, 'Modern Political Thought', Oxford and IBH Publishing Co., Chapter XIV, Nationalism : Peaceful or Aggressive, p.741*)



राष्ट्रवाद की यह बहस राष्ट्र के संस्कृति अधिष्ठान की भी पर्याप्त चर्चा करती है। मैजिनी ने राष्ट्रवाद के १९ सूत्र लिखे हैं। इनमें सत्रहवाँ सूत्र है—''प्रत्येक जन का अपना जीवन लक्ष्य होता है। सामान्यतः स्वीकृत मानवीय जीवन लक्ष्य की संपूर्ति में जो सहयोगी होता है, वह जीवन लक्ष्य ही उसकी राष्ट्रीयता का निर्माण करता है। राष्ट्रीयता पवित्र होती है।'' (*"Every people has its special mission, which will co-operate towards the fulfillment of the general mission of humanity. That mission constitutes its Nationality. Nationality is sacred."; n.3;p.753.*) मैजिनी के आदर्शवादी राष्ट्रवाद की उनके स्वयं के ही देश इटली में उद्भूत 'फासीवाद' ने बड़ी बेरहमी से धज्जियाँ उड़ा दीं।

फ्रांसीसी विद्वान् अर्नेस्ट रीनाँ राष्ट्र की नस्ल, भाषा, मजहब, भू-क्षेत्र एवं वर्गीय हित संबंधी अवधारणाओं का खंडन करते हुए कहते हैं, ''राष्ट्र एक आध्यात्मिक सारतत्त्व है। इसके दो मुख्य तत्त्व हैं 'समृद्ध परंपरा की स्मृतियों का साझापन तथा समझौतेपूर्वक साथ रहने और जीने की बलवती इच्छा।'' (*Ennest Renan, 'What is a Nation?' (1882; Translated by Alfred Zimmern, Oxford University Press, 1939),n.3,p.753.*) ये तीनों परिभाषाएँ दीनदयाल उपाध्याय के 'चिति' तत्त्व का समर्थन करती हैं। अपने 'सिद्धांत व नीति' प्रलेख में वे कहते हैं—''प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात है। इसे चिति कहते हैं। राष्ट्रों का उदयावपात चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर करता है।...चिति स्वयं को अभिव्यक्त करने तथा व्यक्तियों को पुरुषार्थ के संपादन की सुविधा प्राप्त करवाने के लिए अनेक संस्थाओं को जन्म देती है...जाति, वर्ण, पंचायत, संघ, विवाह, संपति, राज्य आदि इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं।'' (*भारतीय जनसंघ : घोषणाएँ एवं प्रस्ताव १९५१-७२, भाग १, नई दिल्ली। भारतीय जनसंघ, विट्ठलभाई पटेल भवन, सिद्धांत और नीतियाँ, पृ. ३-४*)

यूरोपीय विद्वानों की राष्ट्रवाद विषयक परिभाषाएँ भी तत्त्वतः संस्कृतिमूलक हैं, लेकिन 'राष्ट्र-राज्य' की परिस्थिति ने इसे फासीवाद व नाजीवाद से जोड़ दिया। 'राष्ट्र-राज्य' अवधारणा ने यूरोप को बाँटा, युद्ध नियोजित किए तथा उपनिवेशवाद का वैश्विक अध्याय रचा। इस पर टिप्पणी करते हुए दीनदयाल उपाध्यांय कहते हैं कि पाश्चात्य राष्ट्रवाद विश्वशांति का दुश्मन बन गया।

भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

वस्तुतः 'राष्ट्र-राज्य' की स्थापना के पूर्व राष्ट्र सांस्कृतिक इकाइयाँ ही थीं। आज भी अरब राष्ट्रवाद की बात होती है, यूरोपीय राष्ट्रवाद की भी चर्चा होती है, अफ्रीकन राष्ट्रवाद का नारा बुलंद होता है, वैसा ही दक्षिण एशिया का भारतीय राष्ट्रवाद है, आज न कोई अरब 'राष्ट्र-राज्य' है, न ही यूरोप का एक 'राष्ट्र-राज्य' है, अफ्रीका को तो उपनिवेशवाद ने भयानक रूप से बाँट दिया है। एशिया व अफ्रीका की सांस्कृतिक राष्ट्रीयताओं को उपनिवेशवाद ने बाँटा तथा सेनाएँ खड़ी कर दीं। उपनिवेशवाद के पूर्व राष्ट्रों की सीमाएँ सेना-मुक्त थीं। 'राष्ट्र-राज्य' की कृत्रिम स्थापना ने सेनाओं से घिरी सीमाओं का निरूपण किया है। वर्तमान काल में पहुँची इन स्थितियों को समझते हुए प.पू. श्रीगुरुजी

(मा.स. गोलवलकर) ने दो प्रकार के राष्ट्रवादों का विवेचन किया है। प्रथम 'भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' (Geo-Cultural Nationalism) तथा द्वितीय 'राजनैतिक क्षेत्रीय राष्ट्रवाद' (Politico Territorial Nationalism); 'भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' मानवीय है, वसुधैव कुटुम्बकम् का सर्जक है, जबकि 'राजनैतिक क्षेत्रीय राष्ट्रवाद' युद्धकामी तथा साम्राज्यवाद का सर्जक है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मानव की स्वाभाविक वैविध्य का सर्जक है। मानवीय एकता का अर्थ इस स्वाभाविक वैविध्य की समाप्ति नहीं हो सकता। दीनदयालजी के अनुसार—''शून्य में मानव एकता का विचार नहीं किया जा सकता। राष्ट्रीयताओं को समाप्त कर इसलाम व ईसाइयत ने दुनिया को एक करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह अस्वाभाविक था। अतः इनकी असफलता निश्चित थी। इन अप्राकृतिक प्रयत्नों से समाज की हानि हुई, मानवीय एकता की स्थापना व राष्ट्रीयताओं का तिरोहन तो नहीं हो सका, परंतु इन्होंने राष्ट्रीय जनों में मजहबी दरार उत्पन्न कर दी। इसी प्रकार कम्युनिज्म का अंतरराष्ट्रीयतावाद भी असफल हुआ। 'राष्ट्रवाद' के आधार पर स्वयं कम्युनिज्म ही बँट गया। 'विश्ववाद' व 'अंतरराष्ट्रीयता' के सब नारे अंततः 'साम्राज्यवाद' के औजार बने।'' *(१२ जून, १९५९, दिल्ली संघ शिक्षा वर्ग में बौद्धिक वर्ग)*

भू, जन एवं संस्कृति के संघात से राष्ट्र उत्पन्न होते हैं। राष्ट्रीयता कोई कृत्रिम वस्तु नहीं है, यह स्वाभाविक होती है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को ही भारतीय शास्त्रकारों ने चिति का नाम दिया है। दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं, जो चिति के अनुकूल हो, उसे संस्कृति तथा जो चिति के प्रतिकूल हो, उसे विकृति कहते हैं। यह संस्कृति तत्त्व ही राष्ट्रीयत्व का नियामक है। मजहब एवं राजनीति के प्रवेश ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अस्मिताओं को आहत किया है।

अखंड भारत में आस्था

मजहब कहीं भी राष्ट्रीयता का आधार नहीं होता, लेकिन सांस्कृतिक भारत को मजहब के नाम पर बाँटा गया। राजनीति भी राष्ट्रीयता की नियामक नहीं होती, लेकिन कहा गया कि हम १९४७ में नया राष्ट्र बने हैं। परिभाषाहीन राष्ट्रीयता एक मजाक बन गई। एक व्यक्ति जब जनमा तो उसकी राष्ट्रीयता भारतीय थी, युवा हुआ तो उसकी राष्ट्रीयता पाकिस्तानी हो गई तथा प्रौढ़ावस्था में आने पर उसी व्यक्ति की राष्ट्रीयता बँगलादेशी हो गई। राष्ट्रवाद की विकृतिपूर्ण अवधारणा का यह दुष्परिणाम है। अतः सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पोषक दीनदयाल उपाध्याय अखंड भारत के समर्थक हैं। वे अपने ऐतिहासिक 'सिद्धांत और नीतियाँ' प्रलेख में लिखते हैं—''पाकिस्तान की जनता मूलतः भारतीय राष्ट्र की अंग है। वह पृथकतावादी राजनैतिक शक्तियों का शिकार बनकर अलग हुई है। पाकिस्तान की निर्मिति के बाद से वह बराबर पीड़ित है। जिस स्वर्ग की उन्हें आशा दिखाई गई थी, वह मृग-मरिचिका सिद्ध हुई।'' *(क्रमांक ५, सिद्धांत और नीतियाँ, पृ. २३)*

दीनदयाल उपाध्याय भारत की भ्रमोत्पादक राजनीति से अप्रभावित रहते हुए निरंतर 'अखंड भारत' के पक्षधर रहे। १९५२ से लेकर १९६७ तक प्रत्येक घोषणा-पत्र में अखंड भारत का उल्लेख है। १९७१ में दुर्भाग्य से उनकी अनुपस्थिति में चुनाव हुआ तथा घोषणा-पत्र में 'अखंड भारत' को स्थान नहीं मिला।

वे कहते हैं, ''वास्तव में भारत को अखंड करने का मार्ग युद्ध नहीं है। युद्ध से भौगोलिक एकता हो सकती है, राष्ट्रीय एकता नहीं। अखंडता भौगोलिक ही नहीं, राष्ट्रीय आदर्श भी है। देश का विभाजन दो राष्ट्रों के सिद्धांत तथा उसके साथ समझौते की प्रवृत्ति से हुआ। अखंड भारत एक राष्ट्र के सिद्धांत पर मन-वचन एवं कर्म से डटे रहने पर सिद्ध होगा। जो मुसलमान आज राष्ट्रीय दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, वे भी आपके सहयोगी बन सकेंगे, यदि हम राष्ट्रीयता के साथ समझौते की वृत्ति त्याग दें। आज की परिस्थिति में जो असंभव लगता है, वह कालांतर में संभव हो सकता है, किंतु आवश्यकता है कि आदर्श हमारे सम्मुख सदा ही जीवित रहें।'' *('अखंड भारत क्यों?', दीनदयाल उपाध्याय, भारतीय जनसंघ (उ.प्र.), ए.पी. सेन मार्ग, लखनऊ (स्वतंत्रता की पाँचवीं वर्षगाँठ पर, १९५२), पृ. ५)*

दीनदयाल उपाध्याय भारतीय संस्कृति के लिए हिंदू-संस्कृति शब्द का भी उपयोग करते हैं। ''यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता, जो कि हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति, जो कि हिंदू-संस्कृति है, उसका दर्शन करें, उसे मानदंड मानकर चलें। भागीरथी की इस पुण्यधारा में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा की धवल धारा में एकरूप हो जाएगी।'' *('राष्ट्र चिंतन', दीनदयाल उपाध्याय, अध्याय ४६, 'अखंड भारत : साध्य और साधन, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृ. ३३)*

हिंदू राष्ट्रीयता है मजहब नहीं तथा मुस्लिम मजहब है राष्ट्रीयता नहीं। अतः उन्होंने भारत के मुसलमानों के लिए 'मोहम्मद पंथी हिंदू' शब्द का भी प्रयोग किया। भारत के मुसलमान भारत की ओरस संतानें हैं। सांस्कृतिक रूप से वे पृथक् नहीं हैं। सभी भारतीय महापुरुष उनके भी पूर्वज हैं। *(इस संदर्भ में दीनदयाल स्मृति व्याख्यान २०००, डॉ. विष्णुकांत शास्त्री, पठनीय है।)*

क्षेत्रीय संप्रभुता के आधार पर १९४७ में जो नया राष्ट्र बनाने चले थे, वे समझते थे कि भारत के जिस भू-खंड पर अंग्रेजों का राज्य है, वह 'ब्रिटिश इंडिया' ही केवल भारत है। अतः जब नेपाल के कुछ लोगों ने कहा कि जब आप ब्रिटिश इंडिया अनुबंधित सभी रियासतों को भारत में मिला रहे हो, तो नेपाल भी एक रियासत है, उसे भारत में सम्मिलित क्यों नहीं कर रहे। तब उत्तर दिया गया था—हमने अंग्रेजों से उत्तराधिकार में राज्य प्राप्त किया है, उन्होंने ब्रिटिश इंडिया को दो राष्ट्र-राज्यों में विभक्त करके हमें सौंपा है, अतः ब्रिटिश इंडिया के बाहर के किसी प्रदेश को यदि हम भारत में मिलाएँगे तो दुनिया हमें विस्तारवादी कहेगी। यहाँ तक कि पुर्तगाल से गोवा को मुक्त करवाने के लिए भी राष्ट्रवादी लोगों को आंदोलन करना पड़ा। राजनैतिक राष्ट्रीयता के विकृत भाव ने हमें अखंड भारत से साक्षात्कार नहीं करने दिया तथा

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दृष्टि के अभाव के कारण हमने मजहबाधारित भारत विभाजन स्वीकार कर लिया।

चिति का चैतन्य एवं विराट् की शक्ति

चिति द्वारा जो राष्ट्रीयता का साक्षात्कार होता है, पाश्चात्य प्रभावित नेतृत्व ने अपने आपको उसे चिति से काट लिया था। परिणामतः वे मजहबी पृथकतावाद का सामना न कर सके तथा राजनैतिक संप्रभुता एवं सांस्कृतिक एकात्मता का समन्वय नहीं कर सके। इसी कारण हमें विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ी तथा इसी कारण आज हमें कश्मीर समस्या एवं मजहबी आतंकवाद को झेलना पड़ रहा है।

जब कोई जाग्रत् चिति वाला समाज आत्मदर्शन करता है तो उसे विराट् के दर्शन होते हैं। विराट् समाज का शक्ति-भूत तत्त्व है। 'दैशिक शास्त्र' में लिखा है—''चिति से जाग्रत् व एकीभूत हुई समष्टि की प्राकृतिक क्षात्रशक्ति विराट् कही जाती है।'' *('दैशिक शास्त्र' बद्रीशाह टुलधारिया, गौरीशंकर, कैलाश अल्मोड़ा हिमालय (उ.प्र.) चित्रशाला प्रेस, सदाशिव पेठ, पूना, पृ. ६१)*

भविष्य पुराण के अनुसार यह समाज एक ही पिता प्रजापति ब्रह्मा या विराट् ने बनाया है।

''ऋग्वेद में संपूर्ण मानवसमाज की एक विराट् पुरुष के रूप में कल्पना की गई है, जिसके सहस्रों सिर, सहस्रों आँखें, सहस्रों पैर हैं। यह विराट् पुरुष संपूर्ण भूमि विस्तार से भी बढ़कर है। जैसे कि एकात्म मानव देह के मुख, बाहु, उदर और पैर, ये चार प्रमुख अवयव हैं,...उसी प्रकार मानव समाजरूपी विराट् पुरुष के भी समाज में ज्ञान-विज्ञान का विस्तार करनेवाले ज्ञानवान पुरुष, दुर्जनों से समाज की रक्षा करने वाले शूरवीर पुरुष, समाज के भरण-पोषण की सामग्री का उत्पादन एवं विपणन करने वाले उद्यमी पुरुष और विभिन्न समाजोपयोगी कामों में लगे लोगों की सुविधाओं का ध्यान रखनेवाले सेवापरायण पुरुष—ये चार प्रमुख अंग हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू रान्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत॥

(ऋग्वेद १०/९०/१,१२)

(विराट् पुरुष के हजार सिर हैं, हजार आँखें हैं, हजार पैर हैं। संपूर्ण पृथ्वी को चारों ओर से व्याप्त कर वह पुरुष दशांगुल भाग पर स्थित हो गया। उसका मुख ब्राह्मण हुआ, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जंघा वैश्य और पैरों से शूद्र हुआ।) *('पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्तित्व एवं जीवनदर्शन', डॉ. हरिश्चंद्र बर्थवाल, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. १७)*

विराटता का अनुभव समाज को अपनी अपरिमित शक्ति का साक्षात्कार करवाता है। जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र पृथक्-पृथक् जातीय अस्मिताएँ नहीं वरन् एक ही विराट् पुरुष के अंगभूत हैं। समष्टिगत स्वस्थ संपूर्णता का नाम है विराट्। विराट् की इस प्राचीन भारतीय अवधारणा को अधुनातन संदर्भ देने का प्रयास करते हुए दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं, ''जैसे राष्ट्र का अवलंब चिति होती है वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है उसे 'विराट्' कहते हैं। 'विराट्' राष्ट्र की वह कर्मशक्ति है जो 'चिति' से जाग्रत् और संगठित होती है। विराट् का राष्ट्र जीवन में वही स्थान है, जो शरीर में 'प्राण' का। प्राण से ही इंद्रियों को शक्ति मिलती है, बुद्धि को चैतन्य प्राप्त होता है और आत्मा शरीरस्थ रहती है। राष्ट्र में भी विराट् के सबल होने पर ही उसके भिन्न-भिन्न अवयव अर्थात् संस्थाएँ सक्षम और समर्थ होती हैं। 'विराट्' के आधार पर ही 'प्रजातंत्र' सफल होता है और बलशाली बनता है।'' *('एकात्म दर्शन', दीनदयाल, गुरुजी, ठेंगड़ी, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. १६)*

मिश्रित-संस्कृति व संघात्मक विकृति है

चिति और विराट् की अवधारणा मिश्रित-संस्कृति एवं विघटनवादी अस्मिताओं के विचार का निषेध करती है। न तो चिति को तोड़ा जा सकता है, न विराट् को बाँटा जा सकता है। समाज की चिति उसकी संस्कृति में व्यक्त होती है तथा एकात्मता विराट् में। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए दीनदयालजी संस्कृति व क्षेत्र के नाम पर मजहबी व भाषिक पृथकताओं पर करारी चोट करते हैं। वे वैविध्य को समाज का शृंगार व शक्ति मानते, लेकिन विघटन एवं पृथकता को अवांछनीय विकृति मानते हैं। अतः १९४७ में उत्पन्न हुए राष्ट्र-राज्य को ही अपना राष्ट्र माननेवाले, भाषा के आधार पर राज्यों को मूल इकाई तथा भारत को संघ माननेवाले तथा मजहब के आधार पर भिन्न-भिन्न संस्कृति को मान्यता देनेवाले लोग जो सामान्यतः वामपंथी तथा कुछ कांग्रेसी भी हैं, दीनदयालजी द्वारा व्याख्यायित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के कटु आलोचक हैं।

दीनदयाल उपाध्याय सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकात्मता के सबल पुरोधा हैं, वहीं विकेंद्रीकृत अर्थ व राजसत्ता के उग्र समर्थक हैं। सत्ता और वित्त का केंद्रीकरण उन्हें अभिप्रेत नहीं है। वे समाज व्यवस्था में राज यसत्ता के न्यूनतम हस्तक्षेप के हिमायती हैं, ''...समाज की व्यवस्था तथा उसके जीवन का नियमन करनेवाली, व्यवस्था देखनेवाली, समाज की

अनेक संस्थाएँ हैं। उनका प्रादेशिक और व्यावसायिक दोनों आधारों पर गठन हुआ है। पंचायतें और जनपद सभाएँ हमारे यहाँ रही हैं। बड़े से बड़े चक्रवर्ती सार्वभौम राजा ने भी कभी पंचायतों को समाप्त नहीं किया। इसी प्रकार व्यावसायिक संगठन भी रहे, उन्हें भी किसी ने समाप्त नहीं किया, अपितु उनकी स्वायत्तता को सदैव स्वीकार किया गया। अपने-अपने क्षेत्र में उन्होंने नियम बनाए। जाति की पंचायतें, श्रेणियाँ, पूग, निगम, ग्राम पंचायतें तथा जनपद सभाएँ आदि संस्थाएँ स्वतंत्र नियम बनाती थीं। राज्य का काम यही था कि इन नियमों का पालन होता है या नहीं, यह देखें। राज्य ने कभी उनके मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। इस प्रकार हमारे यहाँ राज्य तो जीवन के थोड़े से हिस्से को ही छूता था।'' *(एकात्म दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, अध्याय-३, व्यष्टि-समष्टि में समरसता, पृ. ४६)*

दीनदयाल उपाध्याय एवं उनके भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के वे ही लोग खिलाफ हैं, जिन्हें पाश्चात्योद्भूत 'राष्ट्र-राज्य' की अवधारणा का ही केवल ज्ञान है। वे न भारत की 'चिति' को समझते हैं, न 'विराट्' को। राष्ट्र-राज्य ने चितियों एवं विराट् को खंड-खंड कर रखा है। राष्ट्र-राज्य के चंगुल में फँसा है भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। अफ्रीकी राष्ट्रवाद, अरब राष्ट्रवाद एवं यूरोपीय राष्ट्रवाद आज आकार नहीं ले पा रहा है, भारतीय राष्ट्रवाद भी इसीलिए कसमसा रहा है। हिंदुकुश से शृंगपुर तथा त्रिविष्टप (तिब्बत) से सिंहलद्वीप तक फैला भारतीय विराट् जब अपनी चिति को प्रजागृत करेगा, तभी भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मुखरित होगा।

दक्षेस एवं हिंद-पाक महासंघ

दक्षिण एशिया या दक्षेस देशों का संगठन एक अच्छी शुरुआत है। डॉ. लोहिया व दीनदयाल उपाध्याय ने एक साझे वक्तव्य में 'भारत-पाक महासंघ' की माँग की थी। *('संयुक्त वक्तव्य' दीनदयाल उपाध्याय एवं डॉ. राम मनोहर लोहिया—''जहाँ तक हिंदुस्तान के मुसलमानों का सवाल है, हमारा यह ध्रुव विचार है कि देश के सभी नागरिकों के समान उनके जानमाल की रक्षा हर हालत में होनी चाहिए। कोई घटना और तर्क ऐसा नहीं, जिसके सामने इस सत्य को झुकना जरूरी हो। जो राज्य अपने नागरिकों और जो नागरिक अपने पड़ोसियों को जीने का अधिकार न दिला सके, वह जंगली हैं।*

''हमारा मत है कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान की पृथकता कृत्रिम है। दोनों सरकारों के संबंध बिगड़ने का एक बड़ा कारण उनकी टूटी-फूटी बातचीत है। हम चाहते हैं कि दोनों सरकारें टुकड़े-टुकड़े में बातचीत न करके संपूर्ण बातचीत खुले मन से करें। इससे समस्याओं का निराकरण हो सकेगा और पारस्परिक सद्भावना पैदा होकर, 'हिंद-पाक महासंघ' किसी-न-किसी रूप में बनने का क्रम शुरू हो सकेगा।''

जगदीश प्रसाद माथुर, जनसंघ के मूल विचारक पं. दीनदयाल उपाध्याय, 'पं. दीनदयाल उपाध्याय-व्यक्ति दर्शन', दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. ६०-६१।) अखंड भारत या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कोई राजनैतिक दुराग्रह नहीं है। वस्तुतः यह हमारी चिति का स्वर है। हमें अपने विराट् को जाग्रत् करना है। अपने बंबई के प्रख्यात भाषणों का समापन करते हुए आह्वान किया—''हमें अपने राष्ट्र के विराट् को जाग्रत् करने का काम करना है। अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान यथार्थवादी आकलन कर और भविष्य के प्रति महत्त्वाकांक्षा लेकर इस कार्य में जुट जाएँ। हम भारत को न तो पुराने समय की प्रतिच्छाया बनाना चाहते हैं और न रूस या अमेरिका की अनुकृति।'' *('एकात्म दर्शन', दीनदयाल, गुरुजी, ठेंगड़ी, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, पृ. ७३)*

भारतीयकरण आवश्यक

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का यह चिंतन पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से विरासत में प्राप्त किया था। भारतीय जनसंघ के प्रथम कानपुर अधिवेशन में उन्होंने 'सांस्कृतिक पुनरुत्थान' शीर्षक से एक बीजभूत प्रस्ताव रखा। भौगोलिक किंवा क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की कल्पना को नकारते हुए उन्होंने कहा, ''...हिंदू समाज का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य है कि भारतीय जनजीवन के तथा अपने उन अंगों के भारतीयकरण का महान् कार्य अपने हाथ में ले जो विदेशियों द्वारा स्वदेशपराङ्मुख तथा प्रेरणा के लिए विदेशाभिमुख बना दिए गए हैं। हिंदू समाज को चाहिए कि उन्हें स्नेहपूर्वक आत्मसात् कर लें। केवल इसी प्रकार सांप्रदायिकता का अंत हो सकता है और राष्ट्र का एकीकरण तथा दृढ़ता निष्पन्न हो सकती है।'' *(क्रमांक ५, भाग ४, आंतरिक प्रश्नों पर, प्रस्ताव ५२.२५ सांस्कृतिक पुनरुत्थान (३१ दिसंबर, १९५२, कानपुर पहला सार्वदेशिक अधिवेशन) पृ. २४-२५)*

भारतीयता राष्ट्रीयता को सुपरिभाषित करने में सबसे बड़ी कठिनाई भारत की आजादी के आंदोलन में जिस द्वि-राष्ट्रवाद का हस्तक्षेप हुआ तथा भारत का विभाजन हुआ। खंडित भारत में भी उसी प्रवृत्ति का पोषण होकर मिश्रित-संस्कृति के एक अजनबी तथ्य का इस बहस में प्रवेश करवा दिया गया है। दुनिया का कोई भी राष्ट्र अपने देश की संस्कृति को मिश्रित-संस्कृति नहीं कहता है। भारत एक जन एवं एक संस्कृति है, यहाँ एक सांस्कृतिक राष्ट्र चिरकाल से विद्यमान है। भारतीय संस्कृति मजहबों व उपासना पद्धतियों की बहुलता को न केवल स्वीकार करती है वरन् इस प्रवृत्ति को सम्मान देते हुए उसे संरक्षित रखने की व्यवस्था भी करती है। इस संस्कृति का आधार ही है 'एकं सत् विप्र बहुधा वदन्ति।' आज दिखाई दे रहे टूटे-फूटे तथा टूटते-फूटते भारत की सुरक्षा का एकमात्र उपाय है, 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को समझकर उसे अपने जीवन में अपनाया जाए। तो हम विश्वभर की कसमसाती राष्ट्रीयताओं के लिए एक आशा का दीप बनेंगे। उपनिवेशवादी सीमाओं से निजात पाकर विश्व-मानव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का साक्षात्कार कर सकेगा। यात्रा लंबी है, लेकिन यही लघुतम मार्ग है। इस पर चलना होगा।

सा अ

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन,
३७, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२
ekatmrdfih@gmail.com

महात्मा गांधी की विचार-दृष्टि

मातृभाषा हमारी माँ

हमारे पूजनीय और स्वार्थत्यागी नेता पंडित मदनमोहन मालवीय नहीं आ सके। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि जहाँ तक बने, सम्मेलन में उपस्थित रहिएगा। उन्होंने वचन दिया था कि वे जरूर आएँगे। पंडितजी सम्मेलन में तो उपस्थित नहीं हुए, पर उन्होंने एक पत्र भेज दिया है। मैं उम्मीद करता था कि यदि पंडितजी नहीं आएँगे तो उनका पत्र अवश्य आएगा, और उसे मैं आप लोगों के सामने उपस्थित कर सकूँगा। यह पत्र मुझे आज मिला है। मैंने स्वागतकारिणी सभा को हिंदी के विषय में विद्वानों से दो प्रश्नों पर सम्मति लेने के लिए कहा था, उन्हीं का उत्तर पंडितजी ने पत्र में दिया है। (मालवीयजी का पत्र पढ़कर गांधीजी ने इस प्रकार कहा—)



भाइयो और बहनो,

मैं दिलगीर हूँ कि जो व्याख्यान सम्मेलन में देने का मेरा इरादा था, वह आपके सामने नहीं रख सका हूँ। मैं बड़े झंझटों में पड़ा हूँ। मेरी इस समय बड़ी दुर्दशा है। इससे मैं काम नहीं कर सका। पर मैंने वादा किया था कि मैं आऊँगा और आ गया, किंतु जो चीज सामने रखने का इरादा था, नहीं रख सका। यह भाषा का विषय बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़कर केवल इसी विषय पर लगे रहें तो बस है।

यदि हमलोग भाषा के प्रश्न को गौण समझें या इधर से मन हटा लेंगे तो इस समय लोगों में जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगों के हृदयों में जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जाएगा।

भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है। वास्तव में मुझे तो ऐसे सम्मेलनों से प्रेम नहीं है। तीन दिन का जलसा होगा। तीन दिन कह-सुनकर हमें (आगे) जो करना चाहिए, उसे हम भूल जाएँगे। सभापति के भाषण में तेज नहीं है, जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह वस्तु उसमें नहीं है। इससे बड़ी कंगाली की मैं कल्पना नहीं कर सकता। हम पर और हमारी प्रजा के ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषा में तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, उनमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आएगा, तभी हमारी प्रजा में और हमारी भाषा में तेज आएगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातंत्र्य चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता, क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं हैं।

प्रसन्नता की बात है कि इंदौर में सब कार्य हिंदी में होता है। पर क्षमा कीजिएगा, प्रधानमंत्री साहब का जो पत्र आया है, वह अंग्रेजी में है। इंदौर की प्रजा यह बात नहीं जानती होगी, पर मैं उसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतों में प्रजा की अर्जियाँ हिंदी में ली जाती हैं, पर न्यायाधीशों के फैसले और वकील-बैरिस्टरों की बहस अंग्रेजी में होती है। मैं पूछता हूँ कि इंदौर में ऐसा क्यों होता है? हाँ, मैं यह मानता हूँ कि अंग्रेजी राज्य में यह आंदोलन सफल नहीं हो सकता। यह ठीक है, पर देशी राज्यों में तो सफल होना ही चाहिए। शिक्षित-वर्ग, जैसा कि माननीय पंडितजी ने अपने पत्र में दिखाया है, अंग्रेजी के मोह में फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असंतोष हो गया है। पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर व पानी मिला हुआ है और दूसरी माता (मातृभाषा) से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता। गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षो५ से हम अंग्रेजी के मोह में फँसे हैं। हमारी प्रज्ञा अज्ञानता में डूबी रही है। सम्मेलन की ओर विशेष रूप से खयाल रखना चहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रांतीय भाषाओं में अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज-सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा

बनने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। अब मैं अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ता हूँ।

श्रीमान सभापति महाशय, प्यारे प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो! आपने मुझे इस सम्मेलन का सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिंदी साहित्य की दृष्टि से मेरी योग्यता इस स्थान के लिए कुछ भी नहीं है, यह मैं खूब जानता हूँ। मेरा हिंदी भाषा का असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलाने का कारण हो सकता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि प्रेम की परीक्षा में हमेशा उत्तीर्ण होऊँगा।

साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत की होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक, वैसी भाषा। भाषा-सागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर से पुनीत महात्मा आएँगे तो सागर का महत्त्व स्नान करनेवालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि भी हिंदी भाषा का स्थान विचारणीय है।

हिंदी भाषा की व्याख्या का थोड़ा सा खयाल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिंदी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं, और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। देहाती बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में और न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालय में मिलेगा और उसमें ही रहेगा। हिमालय में से निकली हुई गंगाजी अनंत काल तक बहती रहेगी। ऐसा ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी सी पहाड़ी से निकला हुआ झरना सूख जाता है, वैसे ही संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिंदी की दशा होगी।

हिंदू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिंदी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिंदुओं की बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-जमुना के संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिंदी-उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपि की कुछ तकलीफ जरूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे, हिंदू बहुत करके नागरी लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अंत में जिस लिपि में ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी। भारतवर्ष में परस्पर व्यवहार के लिए एक भाषा होनी चाहिए, इसमें कुछ संदेह नहीं है। यदि हम हिंदी-उर्दू का झगड़ा भूल जाएँ तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाइयों की तो उर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। इस बात से यह सहज में ही सिद्ध हो जाता है कि हिंदी या उर्दू मुगलों के जमाने से राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

आज भी हिंदी से स्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिंदी-उर्दू का झगड़ा छोड़ने से राष्ट्रीय भाषा का सवाल सरल हो जाता है। हिंदुओं को फारसी शब्द थोड़े-बहुत जानने पड़ेंगे। इसलामी भाइयों को संस्कृत शब्दों का ज्ञान संपादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देन से इसलामी भाषा का बल बढ़ जाएगा और हिंदू-मुसलमानों की एकता का एक बढ़ा साधन हमारे हाथ में आ जाएगा। अंग्रेजी भाषा का मोह दूर करने के लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाजिमी है कि हम हिंदी उर्दू-झगड़ा न उठाएँ। लिपि की तकरार भी हमको नहीं करनी चाहिए।

अंग्रेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेजी भाषा का बोझ प्रजा के ऊपर रखने से क्या हानि होती है, हमारी शिक्षा का माध्यम आज तक अंग्रेजी होने से प्रजा कैसे कुचल दी गई है, हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है, इन सब बातों पर मैं अपनी राय भागलपुर और भड़ौच के व्याख्यानों में दे चुका हूँ, इसीलिए यहाँ मैं फिर नहीं देना चाहता। हकीकत में, इस बात में संदेह नहीं हो सकता कि हमारे कविवर सर रवींद्रनाथ टैगोर, विदुषी एनी बेसेंट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित एवं आप्त व्यक्तियों का मंतव्य इस विषय में ऐसा ही है। कार्य की सिद्धि में कठिनाइयाँ तो होंगी ही, किंतु उसका उपाय करना इस सभा पर निर्भर है। लोकमान्य तिलक महाराज ने अपना अभिप्राय कार्य करके बना दिया है, उन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' में हिंदी विभाग शुरू कर दिया है। भारत रत्न पंडित मदनमोहन मालवीयजी का अभिप्राय भी हिंदुस्तान में अज्ञान नहीं है तो भी हमें मालूम है कि हमारे कई विद्वान् नेताओं का अभिप्राय है कि कुछ वषो५ तक तो एक अंग्रेजी ही राष्ट्रीय भाषा रहेगी। इन नेताओं को हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेजी के इस मोह से प्रजा पीड़ित हो रही है। अंग्रेजी शिक्षा पाने वालों के ज्ञान का लाभ प्रजा को बहुत ही कम मिलता है एवं अंग्रेजी शिक्षित-वर्ग और आम लोगों के बीच बड़ा दरियाव आ पड़ा है।

कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेष नहीं करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य-भंडार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा के मार्फत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात।

हिंदी-उर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, इस बात को सिर्फ स्वीकार करने से हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है। तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे? जिन विद्वानों ने इस मंडप को सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृता से हमको इस विषय में जरूर कुछ सुनाएँगे। मैं सिर्फ भाषा-प्रचार के बारे में कुछ कहूँगा। भाषा प्रचार के लिए 'हिंदी-शिक्षक' होना चाहिए। हिंदी-बंगाली सीखने वालों के लिए एक छोटी सी पुस्तक मैंने देखी है। वैसी मराठी में भी है। अन्य भाषा-भाषियों के लिए ऐसी किताबें देखने में नहीं आई हैं। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है। मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन इस कार्य को शीघ्रता से अपने हाथ में लेगा। ऐसी पुस्तकें विद्वान् और अनुभवी लेखकों

के द्वारा लिखवानी चाहिए।

सबसे कष्टदायी मामला द्रविड़ भाषाओं के लिए है। वहाँ तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ। हिंदी भाषा सिखानेवाले शिक्षकों की बड़ी ही कमी है, ऐसे एक शिक्षक प्रयाग से आपके लोकप्रिय मंत्री भाई पुरुषोत्तम दासजी टंडन के द्वारा मुझे मिले हैं।

हिंदी भाषा का एक भी संपूर्ण व्याकरण मेरे देखने में नहीं आया। जो है, सो अंग्रेजी में विलायती पादरियों के बनाए हुए हैं। ऐसा एक व्याकरण डॉ. केलॉग का रचा हुआ है। हिंदुस्तान की अन्यान्य भाषाओं का मुकाबला करने वाला व्याकरण हमारी भाषा में होना चाहिए। हिंदी-प्रेमी विद्वानों से मेरी नम्र विनती है कि वे इस त्रुटि को दूर करें। कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा यह प्रयत्न होना चाहिए। मेरा अभिप्राय है कि यह सभा ऐसी प्रार्थना आगामी कांग्रेस में उसके कर्मचारियों के सम्मुख उपस्थित करे।

हमारी कानूनी सभाओं में भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक प्रजा को राजनीतिक कायो५ में ठीक तालीम नहीं मिलती है। हमारे हिंदी अखबार इस कार्य को थोड़ा सा करते तो हैं, लेकिन प्रजा को तालीम अनुवाद से नहीं मिल सकती है। हमारी अदालतों में जरूर राष्ट्रीय भाषा और प्रांतीय भाषा का प्रचार होना चाहिए। न्यायाधीशों की मार्फत जो तालीम हमको सहज ही मिल सकती है। उस तालीम से आज प्रजा वंचित रहती है।

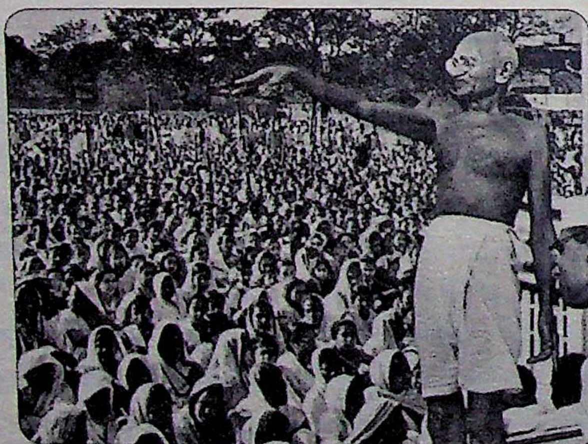
भाषा की जैसी सेवा हमारे राजा-महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होल्कर की कौंसिल में, कचहरी में हर एक काम में हिंदी का और प्रांतीय बोली का ही प्रयोग चाहिए। उनके उत्तेजन से भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है। इस राज्य की पाठशालाओं में शुरू से आखिर तक सब तालीम मादरी जबान में देने का प्रयोग होना चाहिए। हमारे राजा-महाराजाओं से भाषा की बड़ी भारी सेवा हो सकती है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि होल्कर महाराजा और उनके अधिकारी-वर्ग इस महान् कार्य को उत्साह से उठा लेंगे। ऐसे सम्मेलन से हमारा सब कार्य सफल होगा, ऐसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन इसी कार्य की धुन में लगे रहेंगे, तभी इस कार्य की सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थत्यागी विद्वान् जब इस कार्य को अपनाएँगे, तभी सिद्धि संभव है।

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रांतों की मातृभाषा हिंदी है, वहाँ भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह नहीं दिखाई देता है। उन प्रांतों में हमारे शिक्षित-वर्ग में आपस में पत्र-व्यवहार और बातचीत अंग्रेजी में करते हैं। एक भाई लिखते हैं कि हमारे अखबार चलानेवाले अपना व्यवहार अंग्रेजी की मार्फत करते हैं। अपने हिसाब-किताब वे अंग्रेजी में ही रखते हैं। फ्रांस में रहनेवाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेजी में रखते हैं। हम अपने देश में महत् कार्य विदेशी भाषा में करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। इस सम्मेलन द्वारा भारतवर्ष के इस बड़े प्रश्न का निराकरण हो जाए, ऐसी मेरी आशा है और प्रभु के प्रति प्रार्थना है।

□

अहिंसा और लोकतंत्र

आपने अभी जो प्रस्ताव पास किया है, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मैं उन तीन साथियों को भी बधाई देता हूँ, जिन्होंने यह जानते हुए भी कि प्रस्ताव के पक्ष में भारी बहुमत है, अपने संशोधनों पर मत-विभाजन कराने का साहस दिखाया और मैं उन तेरह दोस्तों को भी बधाई देता हूँ, जिन्होंने प्रस्ताव के विरुद्ध वोट दिया। उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं की, जिसके लिए उन्हें शमि५दा होने की जरूरत है। पिछले बीस वषो५ से हम यही सीखने की कोशिश करते आए हैं कि हमारे समर्थकों की संख्या बहुत कम हो और लोग हमारी हँसी उड़ाएँ, तब भी हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। हमने अपने विश्वासों पर दृढ़ रहना सीखा है—यह मानते हुए कि हमारे विश्वास ठीक हैं। यह उचित ही है कि हम अपने विश्वासों के अनुसार काम करने का साहस पैदा करें, क्योंकि ऐसा करने से आदमी का चरित्र ऊँचा



होता है और उसका नैतिक स्तर ऊँचा होता है, इसलिए मुझे यह देखकर खुशी हुई कि इन दोस्तों ने यह सिद्धांत अपना लिया है, जिस पर मैंने पचास वर्षों से या उससे भी अधिक अरसे से अमल करने की कोशिश की है। उन्हें उनके साहस पर बधाई देने के बाद मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने अपने संशोधनों के द्वारा इस कमेटी को जो बात स्वीकार करने को कहा, वह स्थिति को यथार्थ रूप में प्रस्तुत नहीं करता। मौलाना आजाद ने संशोधन वापस लेने के लिए इन दोस्तों से जो अपील की, उस पर उन्हें विचार करना चाहिए था। उन्हें जवाहरलाल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को समझने की कोशिश करनी चाहिए थी। यदि वे ऐसा करते तो उन्हें स्पष्ट हो जाता कि जो अधिकार देने के लिए वे अब कांग्रेस से कह रहे हैं, वह अधिकार कांग्रेस पहले ही दे चुकी है।

एक समय था जब हर मुसलमान दावा करता था कि सारा भारत

उसकी मातृभूमि है। जिन दिनों अली भाई मेरे साथ थे, उनकी हर बातचीत और चर्चा में यह धारणा निहित रहती थी कि भारत जितना हिंदुओं का है, उतना मुसलमानों का भी है। मैं इस बात का गवाह हूँ कि यह उनका सच्चा विश्वास था, ढोंग नहीं था। मैं कई वर्षो५ तक उनके साथ रहा। मैं दिन-रात उनके साथ रहता था और मैं छाती पर हाथ रखकर कह सकता हूँ कि वे जो बात मानते थे, वही मुँह से भी कहते थे। मैं जानता हूँ कि कई ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि मैं हर चीज के प्रकट रूप पर आसानी से विश्वास कर लेता हूँ और मैं आसानी से धोखा खा जानेवाला आदमी हूँ। मैं नहीं समझता कि मैं ऐसा बुद्धू हूँ और न मैं इतनी आसानी से धोखा खानेवाला हूँ, जैसा कि वे दोस्त समझते हैं, लेकिन उनकी आलोचना से मुझे दुःख नहीं होता। मेरे खयाल में यह बेहतर है कि कोई मुझे धोखा देनेवाला समझने के बजाय धोखा खानेवाला समझे।

इन कम्युनिस्ट दोस्तों ने अपने संशोधनों के द्वारा जिस बात का सुझाव दिया है, वह कोई नई नहीं है। इसे हजारों मंचों से दोहराया गया है। हजारों मुसलमानों ने मुझसे कहा है कि अगर हिंदू-मुसलिम सवाल को संतोषजनक रूप से सुलझाना हो तो उसे मेरे जीवनकाल में सुलझा लेना चाहिए। इसमें मुझे अपनी बढ़ाई समझनी चाहिए, परंतु मैं ऐसा सुझाव क्योंकर मान सकता हूँ, जो मेरी बुद्धि को न जँचे? हिंदू-मुसलिम एकता कोई नई बात नहीं है। लाखों हिंदुओं और मुसलमानों ने इसके लिए प्रयास किया है। मैंने अपने लड़कपन से ही इसकी प्राप्ति के लिए सजग प्रयत्न किया है। जब स्कूल में था, तब मैं मुसलमान और पारसी सहपाठियों से दोस्ती करने का खास खयाल रखता था। उस छोटी उम्र में भी मेरा यह विश्वास था कि अगर भारत के हिंदुओं को दूसरे संप्रदायों के साथ शांति और दोस्ती से रहना है तो उन्हें अच्छे पड़ोसी बनने की कोशिश करनी चाहिए। मैं सोचता था कि अगर मैं हिंदुओं के साथ दोस्ती पैदा करने की खास कोशिश न करूँ तो कोई बात नहीं है, मगर मुझे कम-से-कम कुछ मुसलमानों के साथ दोस्ती जरूर करनी चाहिए। एक मुसलमान व्यापारी का वकील बनकर ही मैं दक्षिण अफ्रीका गया था। वहाँ जाकर मैंने दूसरे मुसलमानों के साथ दोस्ती पैदा की, यहाँ तक कि अपने मुवक्किल के विरोधियों के साथ भी मैंने दोस्ती की और मैं ईमानदारी एवं नेकनीयती के लिए प्रसिद्ध हो गया। मेरे दोस्तों और सहयोगियों में मुसलमान और पारसी भी थे। मैंने उनका दिल जीत लिया और जब मैं अंतिम बार भारत के लिए रवाना हुआ तो वे उदास हो गए और जुदाई के दुःख में आँसू बहा रहे थे।

भारत आकर भी मैंने कोशिश जारी रखी और एकता स्थापित करने के लिए कोई कोशिश उठा नहीं रखी। चूँकि एकता मेरे जीवन भर की अभिलाषा थी, इसीलिए मैं खिलाफत आंदोलन में मुसलमानों के साथ पूरा-पूरा सहयोग करने को तैयार हो गया। देश भर के मुसलमानों ने मुझे अपना सच्चा दोस्ता माना।

तो फिर क्या बात है कि आज मुझे इतना बुरा और घृणित समझा जा रहा है? क्या खिलाफत आंदोलन का समर्थन करने का मुझे अपना कोई मतलब निकालना था? यह सच है कि मेरे दिल में यह आशा जरूर थी कि ऐसा करने से मैं गाय की शायद रक्षा कर सकूँगा। मैं गाय की पूजा करता हूँ। मेरा विश्वास है कि गाय और मैं एक ही ईश्वर के पैदा किए हुए हैं और गाय को बचाने के लिए मैं अपने जीवन की बलि देने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा जीवन-दर्शन और मेरी सबसे बड़ी आशा चाहे कुछ ही क्यों न हो, मैं किसी सौदेबाजी के खयाल से उस आंदोलन में शामिल नहीं हुआ था। मैंने खिलाफत के संघर्ष में केवल इसीलिए सहयोग दिया कि मुझे अपने पड़ोसी के प्रति, जिसे मैंने मुसीबत में फँसा पाया, अपना कर्तव्य निभाना था। अगर अली भाई आज जीवित होते तो वे मेरी बात की पुष्टि करते और इसी तरह और बहुत से लोग भी इस बात की पुष्टि करते कि मैंने गाय को बचाने के लिए सौदेबाजी के तौर पर ऐसा नहीं किया। खिलाफत के सवाल की तरह गाय के सवाल के पक्ष में भी कई बातें थीं। एक ईमानदार आदमी, एक अच्छे पड़ोसी और सच्चे दोस्त के नाते मेरा यह कर्तव्य था कि मैं मुसलमानों की मुसीबत की घड़ी में उनका साथ दूँ।

उन दिनों जब मैं मुसलमानों के साथ खाता तो हिंदुओं को आघात लगता था; हालाँकि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, वे इस बात के अब आदी हो गए हैं। मौलाना बारी ने मुझसे कहा कि यद्यपि वे मुझे अपना मेहमान बनाना चाहेंगे, फिर भी वे मुझे अपने साथ नहीं खाने देंगे, ताकि किसी दिन उन पर यह दोष न लगाया जाए कि ऐसा करने में उनका कोई बुरा मकसद था। सो इसलिए जब कभी मैं उनके यहाँ ठहरता, वे एक ब्राह्मण रसोइए को बुलवाते और अलग खाना पकवाने का इंतजाम करते। फिरंगी महल, जहाँ वे रहते थे, पुराने ढंग की इमारत थी और उसमें जगह थोड़ी थी, फिर भी वे खुशी से सब कष्ट झेलते और अपना संकल्प पूरा करते और मैं उनके संकल्प को न बदल पाता। उन दिनों हमारे दिलों में शिष्टता, मान-मर्यादा और सज्जनता की भावना रहती थी। हर संप्रदाय के लोग दूसरे संप्रदाय के लोगों को अपने यहाँ ठहराने के लिए परस्पर होड़ किया करते थे। वे एक-दूसरे की धार्मिक भावनाओं का आदर करते थे और ऐसा करना अपना सौभाग्य समझते थे। कसी के दिल में संदेह का लेशमात्र भी नहीं होता था। मान-मर्यादा और सज्जनता की वह भावना अब कहाँ चली गई है?

मैं सब मुसलमानों और कायदे आजम जिन्ना से भी कहूँगा कि वे उन शानदार दिनों को याद करें और इस बात का पता लगाएँ कि आज हम इस उलझन में क्योंकर फँस गए हैं। एक समय था, जब कायदे-आजम खुद कांग्रेसी थे। अगर आज वे कांग्रेस पर नाराज हैं तो इसका कारण यह है कि उनके दिल में संदेह-विकार पैदा हो गया है। ईश्वर करे उनकी उम्र लंबी हो, मगर जब मैं चल बसूँगा तो वे इस बात को समझेंगे और मानेंगे कि मुसलमानों के प्रति मेरी नीयत खराब नहीं थी और मैंने उनके हितों को कभी हानि नहीं पहुँचाई। अगर मैं उनके उद्देश्यों को हानि पहुँचाऊँ या उनके हितों को हानि पहुँचाऊँ तो मेरे लिए बच निकलने का कौन सा रास्ता रहेगा? मेरी जान उनके लिए हाजिर है। वे जब भी चाहें खुशी से उसका खात्मा कर सकते हैं। अतीत में मुझ पर हमले किए गए हैं, लेकिन ईश्वर ने आज तक मुझे बचाया है और हमला करनेवालों को अपने किए पर पछतावा हुआ है, लेकिन अगर कोई यह सोचकर मुझ पर गोली चलाए कि वह एक दुष्ट से पीछा छुड़ा रहा है

तो वह असली गांधी को नहीं मारेगा, बल्कि उस गांधी को मारेगा, जो उसे दुष्ट प्रतीत होता है।

जिन लोगों ने गालियाँ देने और बदनामी करने की मुहिम चला रखी है, उनसे मैं कहूँगा कि इसलाम आपको हिदायत करता है कि दुश्मन को भी गाली मत दो। हजरत मुहम्मद साहब तो अपने दुश्मनों से भी हमदर्दी का सलूक किया करते थे और उन्हें न्यायप्रियता और उदारता से अपनी ओर कर लेने की कोशिश करते थे। आप उस इसलाम को माननेवाले हैं या किसी और इसलाम को? अगर आप सच्चे इसलाम को माननेवाले हैं तो क्या आपके लिए वाजिब है कि आप उस आदमी की बात पर एतबार न करें, जो अपने मत का खुलेआम ऐलान करता है? मैं आपसे सच कहता हूँ कि आपको एक दिन इस बात पर पछतावा होगा कि आपने एक सच्चे एवं दिली दोस्त पर अविश्वास किया और उसकी जान ले ली। यह देखकर मुझे हार्दिक वेदना होती है कि ज्यों-ज्यों मैं अपील करता हूँ और ज्यों-ज्यों मौलाना मिन्नत-समाजत करते हैं, त्यों-त्यों बदनाम करने की मुहिम तेज होती जाती है। मुझे तो ये गालियाँ गोली की तरह लगती हैं। वे गोली की तरह ही मेरी जान ले सकती हैं। आप मेरी जान ले लें। इसका मुझे दुःख नहीं होगा, लेकिन जो गालियाँ देते हैं, उनका क्या होगा? वे इसलाम को बदनाम करते हैं। इसलाम को बदनामी से बचाने के लिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप गालियों की न रुकनेवाली मुहिम का विरोध कीजिए।



मौलाना साहब को गंदी-से-गंदी गालियों का निशाना बनाया जा रहा है; क्यों? क्योंकि वे मुझ पर दोस्ती का दबाव डालने से इनकार करते हैं। वे जानते हैं कि एक दोस्त को इस बात के लिए मजबूर करना कि वह जिसे झूठ जानता हो, उसे सच मान ले, दोस्ती का दुरुपयोग है।

कायदे आजम में मैं कहूँगा कि पाकिस्तान के बारे में आपके दावे में जो कुछ सच और मान्य है, वह पहले ही आपको मिल चुका है। जो गलत और अमान्य है, वह किसी के हाथ में नहीं है कि वह आपको दिया जा सके। अगर कोई आदमी कोई झूठी बात दूसरे से मनवाने में सफल भी हो जाए तो भी वह ऐसी जोर-जबरदस्ती का फल बहुत समय तक नहीं भोग सकेगा। ईश्वर अभिमान को नहीं पसंद करता और उससे दूर रहता है। ईश्वर किसी झूठी बात का बलपूर्वक मनवाया जाना भी सहन नहीं करता।

कायदे आजम कहते हैं कि वे कड़वी बातें कहने पर मजबूर हैं, लेकिन वे अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त किए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार मैं भी कहूँगा कि मैं अपने-आपको मुसलमानों का दोस्त समझता हूँ, इसलिए मैं उन्हें नाराज करने का खतरा मोल लेकर भी वे बातें क्यों न कहूँ, जिनका मेरे दिल से गहरा संबंध है। मैं अपने हृदय के अंतस्थल के विचार उनसे कैसे छिपा सकता हूँ? मैं कायदे आजम को अपने विचारों और भावनाओं को, चाहे वे सुननेवालों को कड़वी ही क्यों न लगें, स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए बधाई देना चाहूँगा। फिर भी, अगर यहाँ बैठे मुसलमानों के विचार श्री जिन्ना से नहीं मिलते तो उन्हें गालियाँ क्यों दी जाएँ? अगर करोड़ों मुसलमान आपके साथ हैं तो क्या आप उन मुट्ठी भर मुसलमानों को नजरअंदाज नहीं कर सकते, जो आपको गुमराह मालूम होते हैं? जिसके करोड़ों अनुयायी हों, उसे बहुसंख्यक संप्रदाय से डरने की क्या जरूरत है? उसे इस बात का क्या डर है कि बहुसंख्यक संप्रदाय, अल्पसंख्यक संप्रदाय पर हावी हो जाएगा? पैगंबर ने अरबों और मुसलमानों में जाकर कैसे काम किया था? उन्होंने अपने मजहब का प्रचार कैसे किया? क्या उन्होंने यह कहा कि मैं इसलाम का प्रचार तभी करूँगा, जब मेरे साथी बहुसंख्यक हो जाएँगे? इसलाम की खातिर मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप मेरी बात पर विचार करें। ऐसा कहने में न तो ईमानदारी और न इनसाफ ही है कि कांग्रेस वह बात मान ले, जिसे वह ठीक नहीं समझती और जो उसके प्रिय सिद्धांतों के प्रतिकूल है।

राजाजी ने कहा कि 'मैं पाकिस्तान को ठीक नहीं समझता, लेकिन मुसलमान उसकी माँग करते हैं। श्री जिन्ना उसकी माँग करते हैं और उन सबको इसका खब्त हो गया है। तो क्यों न उनकी बात अभी मान ली जाए? वही श्री जिन्ना आगे चलकर पाकिस्तान की हानियों को समझेंगे और अपनी माँग छोड़ देंगे।' जवाब में मैंने कहा कि 'यह ईमानदारी की बात नहीं है कि जिस चीज को मैं गलत समझूँ, उसे मैं ठीक मान लूँ और दूसरों से भी उसे ठीक मान लेने को कहूँ, यह सोचते हुए कि जब माँग का आखिरी फैसला करने का समय आएगा तो उस समय वह माँग पेश नहीं की जाएगी। अगर मैं माँग को उचित समझूँ तो उसे आज ही मान लूँ। केवल जिन्ना साहब को खुश करने के लिए मैं वह माँग स्वीकार नहीं करूँगा। कई दोस्तों ने आकर मुझसे कहा कि मैं जिन्ना साहब को खुश करने के लिए, उनके शक दूर करने के लिए और उनकी प्रतिक्रिया देखने के लिए फिलहाल यह माँग स्वीकार कर लूँ, लेकिन मैं ऐसी किसी काररवाई में शामिल नहीं हो सकता, जिसमें किसी के भी साथ कोर्ट झूठा वादा किया गया हो। बहरहाल यह मेरा तरीका नहीं है।'

कांग्रेस को अपने फैसले मनवाने के लिए नैतिक अधिकार के सिवाय कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेस का विश्वास है कि सच्चा लोकतंत्र अहिंसा से ही स्थापित हो सकता है। विश्व-संघ की इमारत अहिंसा की नींव पर ही खड़ी की जा सकती है और अंतरराष्ट्रीय मामलों में हिंसा का सर्वथा त्याग करना जरूरी है। अगर यह सच है तो हिंदू-मुसलिम सवाल भी हिंसा के द्वारा हल नहीं किया जा सकता। अगर हिंदू मुसलमानों पर अत्याचार करें तो वे किस मुँह से विश्व-संघ की बात कर सकते हैं? इसी कारण से मैं अंग्रेज और अमेरिकी राजनीतिज्ञों की

भाँति हिंसा के द्वारा विश्व शांति की स्थापना की संभावना में विश्वास नहीं करता। कांग्रेस ने सारे मतभेदों को एक निष्पक्ष अंतरराष्ट्रीय अदालत के सामने रखने और उसके फैसले पर अमल करने की बात मान ली है। अगर यह अत्यंत न्यायसंगत सुझाव स्वीकार नहीं किया जा सकता तो फिर केवल तलवार और हिंसा का रास्ता ही रह जाता है। मैं असंभव बात मानने को कैसे तैयार हो सकता हूँ? एक सजीव वस्तु के टुकड़े करने की माँग करने का मतलब है, उसकी जान माँगना। यह तो लड़ाई की ललकार है। कांग्रेस ऐसी लड़ाई में शामिल नहीं हो सकती, जिसमें भाई भाई को मारे। हो सकता है कि डॉ. मुंजे और श्री सावरकर की तरह तलवार के सिद्धांत को मानने वाले हिंदू मुसलमानों को अपने अधीन रखना चाहें। मैं उस वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता। मैं कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करता हूँ। आप कांग्रेस को, जो कि सोने का अंडा देनेवाली मुरगी है, मारना चाहते हैं। अगर आप कांग्रेस पर शक करेंगे तो विश्वास रखिए हिंदुओं और मुसलमानों में सदा लड़ाई होती रहेगी और लगातार जंग और खून-खराबा ही देश का भाग्य होगा। अगर ऐसा खून-खराबा ही देश के भाग्य में बदा है तो मैं उसे देखने के लिए जिंदा नहीं रहूँगा।

इसी कारण मैं जिन्ना साहब से कहता हूँ कि 'मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि पाकिस्तान संबंधी आपकी माँग में जो कुछ न्याय और उचित है, वह तो आपकी जेब में ही है और जो कुछ न्याय और औचित्य के विरुद्ध है, उसे आप तलवार से ही ले सकते हैं, किसी और तरीके से नहीं।'

मेरे दिल में बहुत से विचार उठ रहे हैं, जो मैं इस सभा के सामने रख देना चाहूँगा। जो बात, मेरे दिल में सबसे पहले उठी, वह तो मैंने कह दी है। मैं आपसे सच कहता हूँ कि मेरे लिए यह जिंदगी और मौत का सवाल है, अगर हम हिंदू और मुसलमान ऐसी दिली एकता स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें किसी के मन में कहीं कोई दुराव न हो तो हमें पहले इस साम्राज्य की बेड़ियों से आजाद होने के लिए मिलकर कोशिश करनी होगी, अगर भारत के ही एक अंग को पाकिस्तान बनना है तो मुसलमानों को भारत की आजादी की लड़ाई में शामिल होने में क्या एतराज हो सकता है? इसलिए हिंदुओं और मुसलमानों को चाहिए कि पहले वे आजादी की लड़ाई के लिए इकट्ठे हो जाएँ। जिन्ना साहब का खयाल है कि विश्वयुद्ध लंबे अरसे तक चलेगा। मैं ऐसा नहीं सोचता, अगर युद्ध छह महीने और चलता रहा तो हम चीन को कैसे बचा सकेंगे?

इसलिए मैं कहता हूँ कि अगर हो सके तो आजादी फौरन दे दी जाए, आज रात को ही, कल पौ फटने से पहले ही। अब आजादी के लिए सांप्रदायिक एकता की स्थापना तक इंतजार नहीं किया जा सकता। अगर एकता स्थापित नहीं होती तो आजादी के लिए बहुत ज्यादा कुर्बानियाँ करनी पड़ेंगी, बनिस्बत उस सूरत के, जबकि एकता स्थापित हो जाए, लेकिन कांग्रेस या तो आजादी हासिल करेगी या उस कोशिश में मिट जाएगी और यह मत भूलिए कि कांग्रेस जिस आजादी के लिए लड़ रही है, वह सिर्फ कांग्रेसियों के लिए ही नहीं होगी, वह तो भारत के सभी चालीस करोड़ लोगों के लिए होगी। कांग्रेस-जनों को सदा जनता के विनीत सेवक बनकर रहना चाहिए।

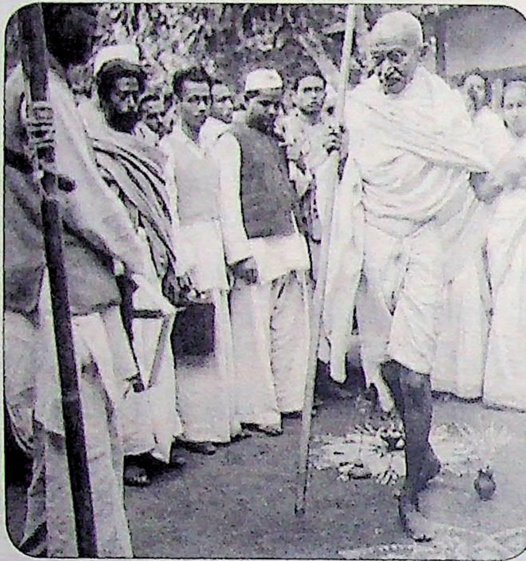
कायदे आजम ने कहा कि चूँकि अंग्रेजों ने साम्राज्य मुसलमानों के हाथ से लिया था, इसलिए अगर वे अब मुसलिम लीग को शासन सौंपना चाहे तो लीग शासन सँभालने को तैयार है, लेकिन वह तो मुसलिम राज होगा। मौलाना साहब और मैंने जो पेशकश की है, उसका मतलब मुसलिम राज या मुसलिम प्रभुत्व नहीं है। कांग्रेस किसी वर्ग या संप्रदाय के प्रभुत्व को ठीक नहीं समझती। वह लोकतंत्र में विश्वास करती है, जिसके दायरे में मुसलमान, हिंदू, ईसाई, पारसी, यहूदी, इस विशाल देश में रहने वाले सभी संप्रदाय आ जाते हैं। यदि मुसलिम राज अनिवार्य हो तो होने दीजिए, लेकिन हम उस पर अपनी स्वीकृति की मोहर कैसे लगा सकते हैं? हम एक संप्रदाय पर दूसरों के प्रभुत्व की बात कैसे मान सकते हैं?

इस देश के करोड़ों मुसलमान हिंदुओं के वंशज हैं। उनका वतन भारत के सिवाय कोई दूसरा कैसे हो सकता है? कुछ वर्ष हुए, मेरा सबसे बड़ा लड़का मुसलमान बन गया। उसकी मातृभूमि क्या होगी? पोरबंदर या पंजाब? मैं मुसलमानों से पूछता हूँ कि 'अगर हिंदुस्तान आपका वतन नहीं है तो आप किस मुल्क के हैं? किस अलग वतन में आप मेरे उस बेटे को रखेंगे, जिसने इसलाम ग्रहण कर लिया था?' उसके मुसलमान बन जाने के बाद उसकी माँ ने उसे लिखा और पूछा कि क्या उसने इसलाम ग्रहण करने के बाद शराब पीना छोड़ दिया है, जिसकी इसलाम, मुसलमानों को मनाही करता है? जो लोग उसके धर्म-परिवर्तन पर खुश हो रहे थे, उन्हें उसने लिखा, 'मुझे उसका मुसलमान बनना इतना नहीं खलता, जितना कि उसका शराब पीना। क्या नेक मुसलमान होने के नाते आप यह गवारा कर सकते हैं कि वह मुसलमान बनने के बाद भी शराब पिए? शराब पी-पीकर वह आवारा और लुच्चा हो गया है। अगर आप उसे फिर इनसान बना दें, तो उसका धर्म बदलना उपयोगी रहेगा। इसलिए कृपया आप इस बात का खयाल रखिए कि वह मुसलमान होने के नाते शराब और औरतों से परहेज करे। अगर ऐसा परिवर्तन नहीं होता तो उसका धर्म-परिवर्तन बेकार होगा और उसके साथ हमारा असहयोग जारी रहेगा।'

इसमें संदेह नहीं कि भारत यहाँ रहनेवाले सब मुसलमानों का वतन है, इसलिए हर मुसलमान को भारत की आजादी की लड़ाई में सहयोग देना चाहिए। कांग्रेस किसी एक वर्ग या संप्रदाय की नहीं है; वह सारी कौम की है। मुसलमानों को इस बात की खुली छूट है कि वे कांग्रेस पर कब्जा कर लें। अगर वे चाहें तो भारी संख्या में कांग्रेस में शामिल होकर उस पर हावी हो सकते हैं और उसे मनचाहे रास्ते पर चला सकते हैं। कांग्रेस हिंदुओं के लिए नहीं, बल्कि सारी कौम के लिए, जिसमें अल्पसंख्यक भी शामिल हैं, लड़ रही है। किसी कांग्रेसी के हाथों किसी मुसलमान के मारे जाने की एक भी घटना सुनकर मुझे दुःख होगा। आनेवाली क्रांति में कांग्रेसजन हिंदुओं के हमलों से मुसलमानों और मुसलमानों के हमलों से हिंदुओं को बचाने के लिए अपनी जान दे देंगे। ऐसा करना उनके विश्वास में शामिल है और अहिंसा का आवश्यक अंग है। ऐसे अवसरों पर आपसे आशा की जाएगी कि आप अपने दिमाग

को ठंडा रखें। यह हर कांग्रेसी का, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, कांग्रेस के प्रति, जो उनका अपना संगठन है, कर्तव्य है। जो मुसलमान ऐसा करेगा, वह इसलाम की सेवा करेगा। आने वाले अंतिम राष्ट्रव्यापी संघर्ष की सफलता के लिए पारस्परिक विश्वास अत्यंत आवश्यक है।

मैंने कहा है कि मुसलिम लीग और अंग्रेजों द्वारा विरोध किए जाने के कारण इस बार हमें अपने संघर्ष के सिलसिले में बहुत ज्यादा कुर्बानियाँ करनी पड़ेंगी। आपने सर फ्रेडरिक पकल का गुप्त परिपत्र देखा है। उन्होंने आत्मघाती तरीका अख्तियार किया है। परिपत्र में बरसात में मेढकों की तरह पैदा होने वाली संस्थाओं को खुल्लमखुल्ला शह दी गई है कि वे मिलकर कांग्रेस का विरोध करें। इसका मतलब है कि हमें ऐसे साम्राज्य से निपटना है, जो सदा टेढ़ी चाल चलता है। हमारा रास्ता सीधा है, जिस पर हम आँखें मूँदकर भी चल सकते हैं। यह सत्याग्रह की खूबी है।



सत्याग्रह में धोखे, जालसाजी या किसी प्रकार के झूठ के लिए जगह नहीं है। धोखा और झूठ आज दुनिया पर छा गए हैं। मैं ऐसी स्थिति को चुपचाप बैठा नहीं देख सकता। मैं सारे भारत में इतना अधिक घूमा-फिरा हूँ, जितना कि वर्तमान युग में शायद कोई भी नहीं घूमा-फिरा होगा। देश के करोड़ों बेजुबान लोगों ने मुझे अपना मित्र और प्रतिनिधि पाया और मैं भी उनसे मिलकर उस हद तक एक हो गया, जिस हद तक कि किसी मनुष्य के लिए ऐसा करना संभव है। मैंने देखा कि वे मुझ पर विश्वास करते हैं और अब मैं झूठ व हिंसा पर खड़े इस साम्राज्य का मुकाबला करने के लिए उनके विश्वास का उपयोग करना चाहता हूँ। साम्राज्य ने चाहे कितनी ही लंबी-चौड़ी तैयारियाँ क्यों न कर रखी हों, हमें उसके शिकंजे से निकलना है। यह कैसे हो सकता है कि मैं इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में चुप बैठा रहूँ और सही रास्ता न दिखाऊँ? क्या मैं जापानियों से कहूँ कि भाई, जरा रुक जाओ? अगर आज मैं चुपचाप निष्क्रिय बैठा रहूँ तो ईश्वर मुझे फटकार देगा कि जब सारी दुनिया में आग फैल रही थी, तब मैंने उसके दिए खजाने का उपयोग क्यों नहीं किया। यदि स्थिति कुछ और होती तो मैं आपसे थोड़ा इंतजार करने को कहता; लेकिन अब स्थिति असह्य हो गई है और कांग्रेस के लिए कोई और रास्ता नहीं रह गया है।

फिर भी वास्तविक संघर्ष इस क्षण नहीं शुरू हो रहा है। आपने अपने सारे अधिकार मुझे सौंप दिए हैं। अब मैं वाइसराय से भेंट करने जाऊँगा और उनसे कांग्रेस की माँग स्वीकार करने का अनुरोध करूँगा। इस काम में दो-तीन सप्ताह लग जाने की संभावना है। इस बीच आप क्या करेंगे? इस अवधि के लिए क्या कार्यक्रम है, जिसमें सब हिस्सा ले सकते हैं? जैसा कि आप जानते हैं, मुझे सबसे पहले चरखे का खयाल आता है। मैंने मौलाना साहब को भी यही जवाब दिया था। वे चरखे की बात नहीं मानते थे, हालाँकि बाद में इसका महत्त्व उनकी समझ में आ गया। चौदह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तो आपके सामने है ही, जिस पर कि आप अमल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आपको क्या करना होगा, मैं आपको बताता हूँ। आपमें से हर स्त्री-पुरुष को इस क्षण से अपने को आजाद समझना चाहिए और यों आचरण करना चाहिए, मानो आप आजाद हैं और इस साम्राज्यवाद के शिकंजे से छूट गए हैं।

मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, इसका मतलब अपने आपको धोखा देना नहीं है। यह तो स्वतंत्रता का सार है। गुलाम की बेड़ियाँ उसी क्षण टूट जाती हैं, जब वह अपने आपको आजाद समझने लगता है। तब वह अपने मालिक से साफ कहेगा कि 'इस क्षण तक तो मैं आपका गुलाम था, लेकिन अब मैं गुलाम नहीं रहा। अगर आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं, लेकिन अगर आप मुझे जिंदा रहने दें तो मैं आपसे कहना चाहूँगा कि अगर आप अपनी मरजी से मुझे बंधन-मुक्त कर दें तो मैं आपसे और कुछ नहीं माँगूँगा। आप मुझे रोटी-कपड़ा देते रहे; हालाँकि मैं खुद अपनी मेहनत से रोटी-कपड़े का प्रबंध कर सकता था। अब तक तो मैं भोजन-वस्त्र के लिए ईश्वर भरोसे रहने के बजाय आपके भरोसे रहता था, लेकिन अब भगवान् ने मेरे अंदर आजादी की अभिलाषा पैदा कर दी है। आज मैं आजाद आदमी हूँ और आगे से आपके भरोसे नहीं रहूँगा।'

आप विश्वास रखिए कि मैं मंत्री पदों आदि के लिए वाइसराय से कोई सौदा करनेवाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वतंत्रता के सिवाय किसी चीज से संतुष्ट होने वाला भी नहीं। हो सकता है कि वे 'नमक-कर' को हटाने, शराब की लत को खत्म करने आदि के बारे में सुझाव रखें, लेकिन मैं कहूँगा, 'स्वतंत्रता के सिवाय कुछ भी नहीं।'

यह एक छोटा सा मंत्र मैं आपको देता हूँ। आप इसे इपने हृदय-पटल पर अंकित कर लीजिए और हर श्वास के साथ उसका जाप किया कीजिए। वह मंत्र है—'करो या मरो।' या तो हम भारत को आजाद करेंगे या आजादी की कोशिश में प्राण दे देंगे। हम अपनी आँखों से अपने देश का सदा गुलाम और परतंत्र बने रहने नहीं देंगे। प्रत्येक सच्चा कांग्रेसी, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री इस दृढ़ निश्चय से संघर्ष में शामिल होगा कि वह देश को बंधन और दासता में बने रहने को देखने के लिए जिंदा नहीं रहेगा, ऐसी आपकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। जेल का खयाल मन में न लाइए। अगर सरकार मुझे कैद न करे तो मैं आपको जेल भरने का कष्ट नहीं दूँगा। ऐसे समय में, जबकि सरकार खुद मुसीबत में फँसी है, मैं उस पर भारी संख्या में कैदियों के प्रबंध का बोझ नहीं डालूँगा। अब से हर पुरुष और हर स्त्री को अपने जीवन का हर क्षण यह जानते हुए बिताना है कि वे स्वतंत्रता की खातिर खा रहे हैं, और जी रहे हैं और अगर जरूरत हुई तो वे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राण दे देंगे। ईश्वर को और अपने अंत:करण को साक्षी मानकर यह प्रण कीजिए कि जब तक आजादी नहीं

मिलती, तब तक हम दम नहीं लेंगे और आजादी लेने के लिए अपनी जान देने को भी तैयार रहेंगे। जो जान देगा, उसे जीवन मिलेगा और जो जान बचाएगा, वह जीवन से वंचित हो जाएगा। स्वतंत्रता कायर को या डरपोक को नहीं मिलती।

अब मैं पत्रकारों से दो शब्द कहूँगा। राष्ट्रीय माँग का अब तक जो समर्थन आप लोगों ने किया है, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। आपको जिन पाबंदियों और बंधनों में रहकर काम करना पड़ता है, उन्हें मैं जानता हूँ, लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि आप उन जंजीरों को तोड़ डालिए, जिनमें आप जकड़े हुए हैं। समाचार-पत्रों की आजादी का रास्ता दिखाने और आजादी के लिए जान देने का उदाहरण प्रस्तुत करने का गौरवमय सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए। आपके हाथ में कलम है, जिसे सरकार नहीं रोक सकती। मैं जानता हूँ कि छापेखाने आदि के रूप में आपके पास बड़ी-बड़ी जायदादें हैं और आपको डर होगा कि सरकार कहीं उन्हें जब्त न कर ले। मैं आपसे नहीं कहता कि आप जान-बूझकर ऐसी बात करें, जिससे कि आपका छापाखाना जब्त कर लिया जाए। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं अपनी कलम को नहीं रोकूँगा, चाहे मेरा छापाखाना जब्त ही क्यों न हो जाए। जैसा कि आप जानते हैं, एक बार मेरा छापाखाना जब्त कर लिया गया था और बाद में मुझे लौटा दिया गया, लेकिन मैं आपसे ऐसी बड़ी कुर्बानी करने को नहीं कहूँगा। मैं बीच का एक रास्ता बताता हूँ। आपको अपनी स्थायी समिति भंग कर देनी चाहिए और आप ऐलान कर सकते हैं कि वर्तमान पाबंदियों के रहते आप लिखना छोड़ देंगे और तभी कलम को हाथ लगाएँगे, जब भारत स्वतंत्र हो जाएगा। आप सर फ्रेडरिक पकल से कह सकते हैं कि 'उन्हें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि जैसा वे कहेंगे, वैसा आप लिखेंगे। आप उन्हें बता सकते हैं कि उनकी प्रेस-टिप्पणियाँ सरासर झूठी होती हैं और आप उन्हें नहीं छापेंगे। आप खुल्लमखुल्ला ऐलान कर सकते हैं कि आप पूरी तरह कांग्रेस के साथ हैं। अगर आप ऐसा करें तो वास्तविक संघर्ष शुरू होने से पहले ही वातावरण बदल जाएगा।'

नरेशों के प्रति उचित आदर प्रकट करते हुए मैं एक छोटी सी विनती करूँगा। मैं नरेशों का हितैषी हूँ। मेरा जन्म एक रियासत में हुआ था। मेरे दादाजी अपनी रियासत के नरेश के सिवाय किसी दूसरे नरेश को दाहिने हाथ से सलाम नहीं करते थे, लेकिन उन्होंने अपने नरेश से कभी यह नहीं कहा, जैसा कि मेरे खयाल से उन्हें कह देना चाहिए था कि उनका अपना मालिक भी उन्हें अर्थात् अपने मंत्री को अपने अंतःकरण की आवाज के विरुद्ध काम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। मैंने नरेशों का नमक खाया है और मैं नमकहरामी नहीं करूँगा। एक वफादार सेवक के नाते मेरा यह कर्तव्य है कि नरेशों को सचेत कर दूँ कि अगर वे मेरे जीते-जी कुछ कर दिखाएँगे तो हो सकता है कि स्वतंत्र भारत में उन्हें सम्मानपूर्ण स्थान मिले। जवाहरलाल ने स्वतंत्र भारत की जो योजना बनाई है, उसमें विशेषाधिकार या विशेषाधिकार संपन्न वर्गों के लिए कोई जगह नहीं है। जवाहरलाल के विचार में सब संपत्ति पर सरकार की मिल्कियत होनी चाहिए। वे योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था चाहते हैं। वे योजना के अनुसार भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं। वे उड़ना पसंद करते हैं, मैं नहीं पसंद करता। मैंने अपनी कल्पना के भारत में नरेशों और जमींदारों के लिए स्थान रखा है। मैं नरेशों से नम्रतापूर्वक कहूँगा कि वे त्याग की भावना से उपभोग करें। वे जायदाद पर अपनी मिल्कियत छोड़ दें और सच्चे अर्थों में उसके न्यासी बन जाएँ।

मुझे जनता में जनार्दन का रूप दिखाई देता है। नरेश अपनी प्रजा से कह सकते हैं कि 'आप रियासत के मालिक और स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं।' मैं नरेशों से कहूँगा कि वे जनता के सेवक बन जाएँ और बताएँ कि उन्होंने जनता की क्या-क्या सेवा की है। साम्राज्य ने भी नरेशों को कुछ अधिकार प्रदान किए हैं, परंतु बेहतर होगा कि वे ऐसे अधिकार अपनी प्रजा से प्राप्त करें। अगर वे छोटी-मोटी सुख-सुविधा का उपभोग करना चाहे तो वे अपनी प्रजा के सेवक के रूप में ऐसा करें। मैं नहीं चाहता कि नरेश कंगाल बनकर रहें, लेकिन मैं उनसे कहूँगा कि 'क्या आप हमेशा के लिए गुलाम बने रहना चाहते हैं? क्यों न आप एक विदेशी राष्ट्र की अधीनता स्वीकार करने के बजाय अपनी प्रजा को अपना स्वामी मानें।' आप राजनीतिक विभाग को लिखें कि 'जनता अब जाग उठी है। हम इस बाढ़ को कैसे रोक सकते हैं, जिसके आगे बड़े-बड़े साम्राज्य मटियामेट हो रहे हैं? इसलिए हम आज से जनता के होकर रहेंगे। हम उनके साथ जिएँगे या मरेंगे।' विश्वास कीजिए कि मैं जो रास्ता आपको बता रहा हूँ, वह तनिक भी अवैध नहीं है। जहाँ तक मुझे मालूम है, ऐसी कोई संधि नहीं हुई है, जिसके कारण साम्राज्य नरेशों पर दबाव डाल सके। रियासतों के लोग भी ऐलान करेंगे कि यद्यपि हम नरेशों की प्रजा हैं, लेकिन भारत राष्ट्र के अंग हैं और हम नरेशों का नेतृत्व तभी स्वीकार करेंगे, जब नरेश हमारे हानि-लाभ में शरीक हो जाएँ, वरना नहीं। अगर ऐसे ऐलान से नरेशों को गुस्सा आ जाए और वे लोगों को मारना चाहे तो लोग बहादुरी से और दृढ़ता मे मौत का सामना करेंगे, परंतु अपनी बात से नहीं टलेंगे।

लेकिन कोई भी काम गुप्त रूप से नहीं करना चाहिए। यह एक खुली बगावत है। इस संघर्ष में गुप्त रूप से काम करना पाप है। स्वतंत्र आदमी किसी गुप्त आंदोलन में शामिल नहीं होता। संभव है कि स्वतंत्र होने के बाद आप मेरी सलाह के विरुद्ध अपनी खुफिया पुलिस रखें, लेकिन वर्तमान संघर्ष में हमें खुल्लमखुल्ला कारवाई करनी है और अपनी छाती पर गोलियाँ खानी हैं, पर भागना नहीं है। सरकारी कर्मचारियों से भी मुझे दो शब्द कहने हैं। अगर वे चाहें तो अभी अपनी नौकरी से इस्तीफा न दें। स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानाडे ने अपने पद से इस्तीफा नहीं दिया था, परंतु उन्होंने खुल्लमखुल्ला ऐलान किया था कि मैं कांग्रेसी हूँ। उन्होंने सरकार से कहा कि यद्यपि मैं न्यायाधीश हूँ, लेकिन मैं कांग्रेसी हूँ और प्रकट रूप से कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लूँगा, परंतु मेरे राजनीतिक विचार न्यायाधीश की हैसियत से मेरी निष्पक्षता पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। वे कांग्रेस के पंडाल में ही समाज-सुधार सम्मेलन किया करते थे। मैं सब सरकारी मुलाजिमों से कहूँगा कि आप रानाडे के पद-चिह्नों पर चलें और सर फ्रेडरिक पकल के गुप्त परिपत्र के जवाब में यह घोषणा करें कि हम कांग्रेस के वफादार हैं।

इस समय तो मैं आपसे इतना ही चाहता हूँ। अब मैं वाइसराय को लिखूँगा। आप मेरे पत्र-व्यवहार को अभी तो नहीं, परंतु उस समय जरूर पढ़ सकेंगे, जब मैं वाइसराय की अनुमति से उसे प्रकाशित कर दूँगा। परंतु आपको यह दृढ़तापूर्वक कहने की खुली छूट है कि आप उस माँग का समर्थन करते हैं, जो कि मैं अभी अपने पत्र में लिखने वाला हूँ। एक न्यायाधीश ने मुझसे आकर कहा कि 'हमें ऊँचे अधिकारियों से गुप्त परिपत्र मिलते रहते हैं। हम क्या करें?' मैंने जवाब दिया कि 'अगर मैं आपकी जगह पर होता तो मैं उनकी उपेक्षा कर देता। आपको सरकार से साफ-साफ कह देना चाहिए, आपका गुप्त परिपत्र मुझे मिला है, लेकिन मैं कांग्रेस के साथ हूँ। यद्यपि मैं जीविका के लिए सरकार की नौकरी करता हूँ तो भी मैं इन गुप्त परिपत्रों पर अमल नहीं करूँगा और न मैं खुफिया तरीके ही बरतूँगा।''

वर्तमान कार्यक्रम सैनिकों के लिए भी है। मैं उनसे अभी यह नहीं कहता कि आप अपने पदों से इस्तीफा दे दें और सेना से अलग हो जाएँ। सैनिक मेरे पास, जवाहरलाल के पास और मौलाना के पास आते हैं और कहते हैं कि 'हम पूरी तरह आपके साथ हैं। हम सरकार के अत्याचार से तंग आ चुके हैं।' इन सैनिकों से मैं कहूँगा कि 'आप सरकार को बता दीजिए कि हमारे दिल कांग्रेस के साथ हैं। हम अपनी नौकरी नहीं छोड़ेंगे, जब तक आप हमें वेतन देते रहेंगे। हम आपकी नौकरी करते रहेंगे, हम आपके उचित हुक्म को मानेंगे, लेकिन अपने देशवासियों पर गोली चलाने से इनकार कर देंगे।'

जिनमें इतना भी करने की हिम्मत नहीं है, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है। वे अपनी राह चलेंगे, लेकिन अगर आप इतना ही कर सकें तो विश्वास कीजिए कि सारे वातावरण में बिजली-सी दौड़ जाएगी। तब फिर अगर सरकार चाहे तो बमों की वर्षा कर ले, लेकिन तब दुनिया की कोई ताकत आपको क्षण भर भी गुलाम नहीं बनाए रख सकेगी।

अगर विद्यार्थी थोड़ी देर संघर्ष में शामिल होकर फिर वापस स्कूलों-कॉलेजों में चले जाना चाहते हों तो मैं उनसे संघर्ष में शामिल होने को नहीं कहूँगा। अलबत्ता, फिलहाल जब तक कि मैं संघर्ष का कार्यक्रम तैयार नहीं कर लेता, तब तक मैं विद्यार्थियों से कहूँगा कि वे अपने प्रोफेसरों से कहें कि 'हम कांग्रेस के हैं। आप सरकार के हैं या कांग्रेस के? अगर आप कांग्रेसी हैं तो आपको नौकरी छोड़ने की जरूरत नहीं है। आप अपने पदों पर बने रहिए, लेकिन हमें पाठ पढ़ाइए और आजादी का रास्ता दिखाइए।' दुनिया भर में हर जगह स्वतंत्रता के संघर्ष में विद्यार्थियों ने बहुत बड़ा योगदान दिया है।

अभी और वास्तविक संघर्ष छिड़ने की घड़ी के बीच जो समय हमें मिलेगा, अगर इस बीच आप जो कुछ थोड़ा मैंने सुझाया है, उतना ही करें तो आप वातावरण ही बदल देंगे और अगले कदम का मार्ग प्रशस्त कर देंगे।

अभी मुझे बहुत कुछ कहना है, लेकिन मेरा दिल भारी है। मैंने पहले ही आपका बहुत समय ले लिया है। अभी मुझे कुछ शब्द अंग्रेजी में भी कहने हैं। मैं आपको धन्यवाद करता हूँ कि आपने इतनी शाम गए भी मेरी बातों को बड़े धीरज व ध्यान से सुना। सच्चे सिपाहियों का यही काम होता है। पिछले २२ वषो५ से मैंने अपनी जबान और लेखनी को काबू में रखा है और इस प्रकार अपनी शक्ति को जमा करके रखा है। वही सच्चा ब्रह्मचारी होता है, जो अपनी शक्तियाँ यों ही नहीं गँवाता। अत: वह अपनी जबान को सदा काबू में रखता है। मैं इन सारे वषो५ में सजगतापूर्वक यही कोशिश करता रहा हूँ, लेकिन आज ऐसा अवसर आया, जबकि मुझे आपके सामने अपने दिल की बात कह देनी थी, सो मैंने कह दी है; हालाँकि मुझे आपको थका ही देना पड़ा, पर मुझे इस बात का कोई अफसोस नहीं है। मैंने आपको अपना संदेश दे दिया है और आपके माध्यम से उसे सारे भारत को पहुँचा दिया है। □

स्वच्छता का संस्कार

श्रम और बुद्धि के बीच जो अलगाव हो गया है, उसके कारण हम अपने गाँवों के प्रति इतने लापरवाह हो गए हैं कि वह एक गुनाह ही माना जा सकता है। नतीजा यह हुआ है कि देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने छोटे-छोटे गाँवों के बदले हमें घूरे जैसे गंदे गाँव देखने को मिलते हैं। बहुत से या यों कहिए कि करीब-करीब सभी गाँवों में घुसते समय जो अनुभव होता है, उससे दिल को खुशी नहीं होती। गाँव के बाहर और आसपास इतनी गंदगी होती है तथा वहाँ इतनी बदबू आती है



कि अकसर गाँव में जानेवाले को आँख मंद कर और नाक दबाकर ही जाना पड़ता है। ज्यादातर कांग्रेसी गाँव के बाशिंदे होने चाहिए; अगर ऐसा हो तो उनका फर्ज हो जाता है कि वे अपने गाँवों को सब तरह से सफाई के नमूने बनाएँ, लेकिन गाँववालों के हमेशा के, यानी रोज-रोज के जीवन में शरीक होने या उनके साथ घुलने-मिलने को उन्होंने कभी अपना कर्तव्य माना ही नहीं। हमने राष्ट्रीय या सामाजिक सफाई को न तो जरूरी गुण माना और न उसका विकास ही किया। यों रिवाज के कारण हम अपने ढंग से नहा भर लेते हैं, मगर

जिस नदी, तालाब या कुएँ के किनारे हम श्राद्ध या वैसी ही दूसरी कोई धार्मिक क्रिया करते हैं तथा जिन जलाशयों में पवित्र होने के विचार से हम नहाते हैं, उनके पानी को बिगाड़ने या गंदा करने में हमें कोई हिचक नहीं होती। इस कमजोरी को मैं एक बड़ा दुर्गुण मानता हूँ। इस दुर्गुण का ही यह नतीजा है कि हमारे गाँवों की और हमारी पवित्र नदियों के पवित्र तटों की लज्जाजनक दुर्दशा तथा गंदगी से पैदा होनेवाली बीमारियाँ हमें भोगनी पड़ती हैं।

गाँवों में करने के कार्य ये हैं कि उनमें जहाँ-जहाँ कूड़े-करकट तथा गोबर के ढेर हों, वहाँ-वहाँ से उनको हटाया जाए और कुओं तथा तालाबों की सफाई की जाए। अगर कार्यकर्ता लोग नौकर रखे हुए भंगियों की भाँति खुद रोज सफाई का काम करना शुरू कर दें और साथ ही गाँववालों को यह भी बतलाते रहें कि उनसे सफाई के कार्य में शरीक होने की आशा रखी जाती है, ताकि आगे चलकर अंत में सारा काम गाँववाले स्वयं करने लगे जाएँ, तो यह निश्चित है कि आगे या पीछे गाँववाले इस कार्य में अवश्य सहयोग देने लगेंगे।

वहाँ के बाजार तथा गलियों को सब प्रकार कूड़ा-करकट हटाकर स्वच्छ बना लेना चाहिए। फिर उस कूड़े का वर्गीकरण कर देना चाहिए। उसमें से कुछ का तो खाद बनाया जा सकता है, कुछ को सिर्फ जमीन में गाड़ देना भर बस होगा और कुछ हिस्सा ऐसा होगा कि जो सीधा संपत्ति के रूप में परिणत किया जा सकेगा। वहाँ मिली हुई प्रत्येक हड्डी एक बहुमूल्य कच्चा माल होगी, जिससे बहुत सी उपयोगी चीजें बनाई जा सकेंगी या जिसे पीसकर कीमती खाद बनाया जा सकेगा। कपड़े के फटे-पुराने चिथड़ों तथा रद्दी कागजों से कागज बनाए जा सकते हैं और इधर-उधर से इकट्ठा किया हुआ मल-मूत्र गाँव के खेतों के लिए सुनहले खाद का काम देगा। मल-मूत्र को उपयोगी बनाने के लिए यह करना चाहिए कि उसके साथ, चाहे वह सूखा हो या तरल, मिट्टी मिलाकर उसे ज्यादा-से-ज्यादा एक फुट गहरा गड्ढा खोदकर जमीन में गाड़ दिया जाए। गाँवों की स्वास्थ्य-रक्षा पर लिखी हुई अपनी पुस्तक में डॉ. पूअरे कहते हैं कि जमीन में मल-मूत्र को नौ या बारह इंच से अधिक गहरा नहीं गाड़ना चाहिए। (मैं यह बात केवल स्मृति के आधार पर लिख रहा हूँ।) उनकी मान्यता यह है कि जमीन की ऊपरी सतह सूक्ष्म जीवों से परिपूर्ण होती है और हवा एवं रोशनी की सहायता से, जो कि आसानी से वहाँ तक पहुँच जाती हैं, ये जीव मल-मूत्र को एक हफ्ते के अंदर एक अच्छी, मुलायम व सुगंधित मिट्टी में बदल देते हैं। कोई भी ग्रामवासी स्वयं इस बात की सच्चाई का पता लगा सकता है। यह कार्य दो प्रकार से किया जा सकता है। या तो पाखाने बनाकर उनमें शौच जाने के लिए मिट्टी तथा लोहे की बाल्टियाँ रख दी जाएँ और फिर प्रतिदिन उन बाल्टियों को पहले से तैयार की हुई जमीन में खाली करके ऊपर से मिट्टी डाल दी जाए, या फिर जमीन में चौरस गड्ढा खोदकर सीधे उसी में मल-मूत्र का त्याग करके ऊपर से मिट्टी डाल दी जाए। यह मल-मूत्र या तो देहात के सामूहिक खेतों में गाड़ा जा सकता है या व्यक्तिगत खेतों में, लेकिन यह कार्य तभी संभव है, जबकि गाँववाले सहयोग दें। कोई भी उद्योगी ग्रामवासी कम-से-कम इतना काम तो खुद भी कर ही सकता है कि मल-मूत्र को एकत्र करके उसको अपने लिए संपत्ति में परिवर्तित कर दे। आजकल तो यह सारा कीमती खाद, जो लाखों रुपए की कीमत का है, प्रतिदिन व्यर्थ जाता है और बदले में हवा को गंदा करता तथा बीमारियाँ फैलाता रहता है।



गाँवों के तालाबों से स्त्री और पुरुष सब स्नान करने, कपड़े धोने, पानी पीने तथा भोजन बनाने का काम लिया करते हैं। बहुत से गाँवों के तालाब पशुओं के काम भी आते हैं। बहुधा उनमें भैंसें बैठी हुई पाई जाती हैं। आश्चर्य तो यह है कि तालाबों का इतना दुरुपयोग होते रहने पर भी महामारियों से गाँवों का नाश अब तक क्यों नहीं हो पाया है? आरोग्य-विज्ञान इस विषय में एकमत है कि पानी की सफाई के संबंध में गाँववालों की उपेक्षा-वृत्ति ही उनकी बहुत सी बीमारियों का कारण है।

पाठक इस बात को स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार का सेवाकार्य शिक्षाप्रद होने के साथ-ही-साथ अलौकिक रूप से आनंददायक भी है और इसमें भारतवर्ष के संताप-पीड़ित जन-समाज का अनिर्वचनीय कल्याण भी समाया हुआ है। मुझे उम्मीद है कि इस समस्या को सुलझाने के तरीके का मैंने ऊपर जो दर्शन किया है, उससे इतना तो साफ हो गया होगा कि अगर ऐसे उत्साही कार्यकर्ता मिल जाएँ, जो झाड़ू एवं फावड़े को भी उतने ही आराम और गर्व के साथ हाथ में ले लें, जैसे कि वे कलम व पेंसिल को लेते हैं, तो इस कार्य में खर्च का कोई सवाल ही नहीं उठेगा। अगर किसी खर्च की जरूरत पड़ेगी भी तो यह केवल झाड़ू-फावड़ा, टोकरी-कुदाली और शायद कुछ कीटाणु-नाशक दवाइयाँ खरीदने तक ही सीमित रहेगा। सूखी राख संभवत: उतनी ही अच्छी कीटाणु-नाशक दवा है, जितनी कि कोई रसायनशास्त्री दे सकता है।

आदर्श भारतीय गाँव इस तरह बसाया और बनाया जाना चाहिए, जिससे वह संपूर्णतया नीरोग हो सके। उसके झोपड़ों और मकानों में काफी प्रकाश व वायु आ-जा सके। ये झोंपड़े ऐसी चीजों के बने हों, जो पाँच मील की सीमा के अंदर उपलब्ध हो सकती हैं। हर मकान के आसपास या आगे-पीछे इतना बड़ा आँगन हो, जिसमें गृहस्थ अपने लिए साग-पात लगा सकें और अपने पशुओं को रख सकें। गाँव की गलियों और रास्तों पर जहाँ तक हो सके, धूल न हो। अपनी जरूरत के अनुसार गाँव में कुएँ हों, जिनसे गाँव के सब लोग पानी भर सकें। सबके लिए प्रार्थना-घर या मंदिर हों, सार्वजनिक सभा वगैरह के लिए एक अलग स्थान हो, गाँव की अपनी गोचर-भूमि हो, सहकारी ढंग की एक गोशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ हों, जिनमें उद्योग की शिक्षा सर्व-प्रधान वस्तु हो और गाँव के अपने मामलों का निपटारा

करने के लिए एक ग्राम-पंचायत भी हो। अपनी जरूरतों के लिए अनाज, साग-सब्जी, फल-खादी वगैरह खुद गाँव में ही पैदा हों। एक आदर्श गाँव की मेरी अपनी यह कल्पना है। मौजूदा परिस्थिति में उसके मकान, जो ज्यों-के-त्यों रहेंगे, सिर्फ यहाँ-वहाँ थोड़ा सा सुधार कर देना अभी काफी होगा। अगर कहीं जमींदार हो और वह भला आदमी हो या गाँव के लोगों में सहयोग व प्रेमभाव हो तो बगैर सरकारी सहायता के खुद ग्रामीण ही, जिनमें जमींदार भी शामिल हैं, अपने बल पर लगभग ये सारी बातें कर सकते हैं। हाँ, सिर्फ नए सिरे से मकानों को बनाने की बात छोड़ दीजिए और अगर सरकारी सहायता भी मिल जाए, तब तो ग्रामों की इस तरह पुनर्रचना हो सकती है कि जिसकी कोई सीमा ही नहीं। पर अभी तो मैं यही सोच रहा हूँ कि खुद ग्रामनिवास की अपने बल पर परस्पर सहयोग के साथ और सारे गाँव के भले के लिए हिल-मिलकर मेहनत करें; तो वे क्या-क्या कर सकते हैं? मुझे तो यह निश्चय हो गया है कि अगर उन्हें उचित सलाह और मार्गदर्शन मिलता रहे तो गाँव की—मैं व्यक्तियों की बात नहीं करता—आय बराबर दूरी हो सकती है। व्यापारिक दृष्टि से काम में आने लायक अकूत साधन-सामग्री हर गाँव में भले ही न हो, पर स्थानीय उपयोग और लाभ के लिए तो लगभग हर गाँव में है। पर सबसे बड़ी बदकिस्मती तो यह है कि अपनी दशा सुधारने के लिए गाँव के लोग खुद कुछ नहीं करना चाहते।

एक गाँव के कार्यकर्ता को सबसे पहले गाँव की सफाई और आरोग्य के सवाल को अपने हाथ में लेना चाहिए। यों तो ग्रामसेवकों को किंकर्तव्यविमूढ़ बना देनेवाली अनेक समस्याएँ हैं, पर यह समस्या ऐसी है, जिसकी सबसे अधिक लापरवाही की जा रही है। फलत: गाँव की तंदुरुस्ती बिगड़ती रहती है और रोग फैलते रहते हैं। अगर ग्रामसेवक स्वेच्छापूर्वक भंगी बन जाए तो वह प्रतिदिन मैला उठाकर उसका खाद बना सकता है और गाँव के रास्ते बुहार सकता है। वह लोगों से कहे कि उन्हें पाखाना-पेशाब कहाँ करना चाहिए, किस तरह सफाई रखनी चाहिए, उसके क्या लाभ हैं और सफाई के न रखने से क्या-क्या नुकसान होते हैं? गाँव के लोग उसकी बात चाहे सुनें या न सुनें, वह अपना काम बराबर करता रहे।

शहरों की सफाई

पश्चिम से हम एक चीज जरूर सीख सकते हैं और वह हमें सीखनी ही चाहिए, वह है शहरों की सफाई का शास्त्र। पश्चिम के लोगों ने सामुदायिक आरोग्य और सफाई का एक शास्त्र ही तैयार कर लिया है, जिससे हमें बहुत-कुछ सीखना है। बेशक, सफाई की पश्चिम की पद्धतियों को हम अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बदल सकते हैं।

'भगवान् के प्रेम के बाद महत्त्व की दृष्टि से दूसरा स्थान स्वच्छता के प्रेम का ही है।' जिस तरह हमारा मन मलिन हो तो हम भगवान् का प्रेम संपादित नहीं कर सकते, उसी तरह हमारा शरीर मलिन हो तो भी हम उसका आशीर्वाद नहीं पा सकते। शहर अस्वच्छ हो तो शरीर स्वच्छ रहना संभव नहीं है।

कोई भी म्युनिसिपैलिटी शहर की अस्वच्छता और आबादी की सघनता का सवाल महज टैक्स वसूल करके तथा सफाई का काम करनेवाले नौकरों को रखकर हल करने की आशा नहीं कर सकती। यह जरूरी सुधार तो अमीर व गरीब, सब लोगों के संपूर्ण और स्वेच्छापूर्ण सहयोग द्वारा ही संभव है।

हम अछूत भाइयों की बस्तीवाले गाँवों की सफाई करते हैं, यह अच्छा है। पर वह काफी नहीं है। अछूत लोग समझाने-बुझाने से समझ जाते हैं। क्या हमें यह कहना पड़ेगा कि तथाकथित उच्च जातियों के लोग समझाने-बुझाने से नहीं समझते; या फिर शहर का जीवन बिताने के लिए आरोग्य और सफाई के जिन नियमों का पालन करना जरूरी है, वे उन पर लागू नहीं होते? गाँवों में तो हम कई बातें किसी किस्म का खतरा उठाए बिना कर सकते हैं, लेकिन शहरों की घनी आबादीवाली तंग गलियों में, जहाँ साँस लेने के लिए साफ हवा भी मुश्किल से मिलती है, हम ऐसा नहीं कर सकते। वहाँ का जीवन दूसरे प्रकार का है और वहाँ हमें सफाई के ज्यादा बारीक नियमों का पालन करना चाहिए। क्या हम ऐसा कर सकते हैं? भारत के हर एक शहर के मध्यवर्ती भागों में सफाई की जो दयनीय स्थिति दिखाई देती है, उसकी जिम्मेदारी हम म्युनिसिपैलिटी पर नहीं डाल सकते और मेरा खयाल है कि दुनिया की कोई भी म्युनिसिपैलिटी लोगों के अमुक वर्ग की उन आदतों का प्रतिकार नहीं कर सकती, जो उन्हें पीढ़ियों की परंपरा से मिली हं। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि अगर हम अपनी म्युनिसिपैलिटी से यह उम्मीद करते हों कि इन बड़े शहरों में जो सफाई-संबंधी सुधार का सवाल पेश है, उसे वे इस स्वेच्छापूर्ण सहयोग की मदद के बिना ही हल कर ले तो यह संभव है। अलबत्ता, मेरा मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि म्युनिसिपैलिटी की इस संबंध में कोई जिम्मेदारी नहीं है।

मुझे म्युनिसिपैलिटी की प्रवृत्तियों में बहुत दिलचस्पी है। म्युनिसिपैलिटी का सदस्य होना सचमुच बड़ा सौभाग्य है, लेकिन सार्वजनिक जीवन का अनुभव रखनेवाले व्यक्ति के नाते मैं आपसे यह भी कह दूँ कि इस सौभाग्यपूर्ण अधिकार के उचित निर्वाह की एक अनिवार्य शर्त यह है कि इन सदस्यों को इस पद से कोई निजी स्वार्थ साधने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। उन्हें अपना कार्य सेवा-भाव से ही करना चाहिए, तभी उसकी पवित्रता कायम रहेगी। उन्हें अपने को शहर की सफाई का काम करनेवाले भंगी कहने में गौरव का अनुभव करना चाहिए। मेरी मातृभाषा में म्युनिसिपैलिटी का एक सार्थक नाम है; लोग उसे 'कचरा-पट्टी' कहते हैं, जिसका मतलब है—भंगियों का विभाग। सचमुच म्युनिसिपैलिटी को सफाई-काम करनेवाली एक प्रमुख संस्था होना ही चाहिए और उसमें न सिर्फ शहर की बाहरी सफाई का, बल्कि सामाजिक और सार्वजनिक जीवन की भीतरी सफाई का भी समावेश होना चाहिए।

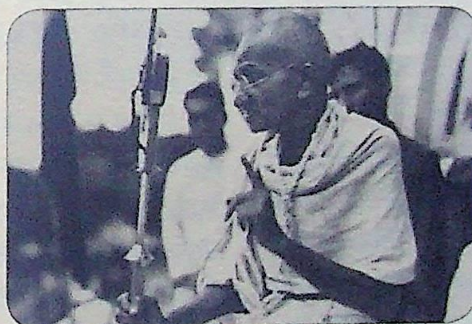
यदि मैं किसी म्युनिसिपैलिटी या लोकल बोर्ड की सीमा में रहनेवाला उसका करदाता होता तो जब तक कर के रूप में हम इन संस्थाओं को जो पैसा देते हैं, वह उससे चौगुनी सेवाओं के रूप में न लौटाया जाता, तब तक अतिरिक्त कर के रूप में एक पाई भी ज्यादा देने से मैं इनकार कर देता और दूसरों को भी ऐसा की करने की सलाह देता। जो लोग लोकल बोडो५ या म्युनिसिपैलिटी में प्रतिनिधियों की हैसियत

से जाते हैं, वे वहाँ प्रतिष्ठा के लालच से या आपस में लड़ने-झगड़ने के लिए नहीं जाते, बल्कि नागरिकों की प्रेमपूर्ण सेवा करने के लिए जाते हैं। यह सेवा पैसे पर आधार नहीं रखती। हमारा देश गरीब है। अगर म्युनिसिपैलिटियों में जानेवाले सदस्यों में सेवा की भावना हो तो वे अवैतनिक मेहतर, भंगी और सड़कें बनाने वाले बन जाएँगे और उसमें गौरव का अनुभव करेंगे। वे दूसरे सदस्यों को, जो कांग्रेस के टिकट पर न चुने गए हों, अपने काम में शरीक होने का न्योता देंगे; और अपने में एवं अपने कार्य में उन्हें श्रद्धा होगी, तो उनके उदाहरण का दूसरों पर अवश्य ही अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि म्युनिसिपल संस्था के सदस्यों को अपना सारा समय उसी काम में लगानेवाला होना चाहिए। उसका काई स्वार्थ नहीं होना चाहिए। उनका दूसरा कदम यह होगा कि म्युनिसिपैलिटी या लोकल बोर्ड की सीमा के अंदर रहनेवाली सारी वयस्क आबादी की गणना कर ली जाए और उन सबसे म्युनिसिपैलिटी की प्रवृत्तियों में योग देने के लिए कहा जाए। इसका एक व्यवस्थित रजिस्टर रखा जाना चाहिए। जो लोग ज्यादा गरीब हैं और पैसे की मदद नहीं दे सकते, उनसे अगर वे सशक्त हों तो श्रमदान करने के लिए कहा जा सकता है।

अगर मैले का ठीक-ठीक उपयोग किया जाए तो हमें लाखों रुपयों की कीमत का खाद मिले और साथ ही कितनी ही बीमारियों से मुक्ति मिल जाए। अपनी गंदी आदतों से हम अपनी पवित्र नदियों के किनारे बिगाड़ते हैं और मक्खियों की पैदाइश के लिए बढ़िया जमीन तैयार करते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारी दंडनीय लापरवाही के कारण जो मक्खियाँ खुले मैले पर बैठती हैं, वे ही हमारे नहाने के बाद हमारे शरीर पर बैठती हैं और उसे गंदा बनाती हैं। इस भयंकर गंदगी से बचने के लिए कोई बड़ा साधन नहीं चाहिए; मात्र मामूली फावड़े का उपयोग करने की जरूरत है। जहाँ-तहाँ शौच के लिए बैठ जाना, नाक साफ करना या सड़क पर थूकना ईश्वर और मानवजाति के खिलाफ अपराध है एवं दूसरों के प्रति लिहाज की दयनीय कमी प्रकट करता है। जो आदमी अपनी गंदगी को ढकता नहीं है, वह भारी सजा का पात्र है, फिर चाहे वह जंगल में ही क्यों न रहता हो। □

अहिंसा और स्वाधीनता

जो बात मेरी आत्मा को कचोट रही थी, उसे जिन लोगों की सेवा का सौभाग्य मुझे अभी मिला था, उनके सम्मुख रखने में मैंने बहुत समय ले लिया है। मुझे उन लोगों का नेता अथवा सेना की भाषा में कहें तो सेनापति कहा जाता है। लेकिन मैं अपनी स्थिति को उस दृष्टि से नहीं देखता। किसी पर हुक्म चलाने के लिए मेरे पास प्रेम के अलावा और कोई अस्त्र नहीं है। हाँ, मेरे पास एक छड़ी जरूर है, जिसे आप एक झटके में ही तोड़ सकते हैं। वह तो मेरी टेकनी है, जिसके सहारे मैं चलता हूँ। ऐसे अपंग व्यक्ति से जब सबसे बड़े काम की जिम्मेदारी लेने के लिए कहा जाए तो उसे खुशी महसूस नहीं हो सकती। आप उसमें मेरा हाथ केवल तभी बँटा सकते हैं, जब मैं आपके सामने आपके सेनापति के रूप में नहीं, बल्कि एक विनम्र सेवक के रूप में आऊँ और जो सबसे अच्छी सेवा करता है, वही बराबर की हैसियतवालों में प्रमुख हो जाता है।



इसलिए मेरे हृदय में जो विचार उठ रहे थे, उनको मुझे आपके सम्मुख रखना ही था और आपको जहाँ तक बन सके, वहाँ तक संक्षेप में यह बताना था कि मैं आपसे सबसे पहले क्या करने की अपेक्षा रखता हूँ।

मैं आपको पहले ही बता दूँ कि असली लड़ाई आज से शुरू नहीं होती। मुझे हमेशा की तरह अभी बहुत सारी औपचारिकताएँ निभानी हैं। बोझ लगभग असहनीय है और मुझे उन लोगों को समझाने-बुझाने की कोशिश जारी रखनी है, जिनमें फिलहाल मेरी कोई साख-भूमिका नहीं रही है। मुझे मालूम है कि पिछले कुछ हफ्तों के दौरान मैं अपने बहुत सारे मित्रों में अपनी साख गँवा बैठा हूँ, यहाँ तक कि उनमें से कुछ तो न केवल मेरे विवेक पर, बल्कि मेरी ईमानदारी पर भी शक करने लगे हैं। जहाँ तक मेरे विवेक का सवाल है, मैं यह मानता हूँ कि यह कोई ऐसी अमूल्य वस्तु नहीं है, जिसके चले जाने से मुझे बहुत ज्यादा दुःख हो, लेकिन ईमानदारी एक ऐसी अमूल्य निधि है, जिसकी क्षति को मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति सत्य का सच्चा अन्वेषक है और जो बिना किसी भय अथवा पाखंड के अपने देश व मानवता की सेवा करने की अपनी समझ से भरसक कोशिश करता है, उसके जीवन में ऐसे अवसर आते ही रहते हैं। पिछले पचास वषो५ से मैं इसके अतिरिक्त कोई और तरीका नहीं जानता। मैं मानवता का विनम्र सेवक रहा और मैंने साम्राज्य की जैसी मुझसे हो सकती थी, एकाधिक बार वैसी सेवा की है और यहाँ मैं निशंक होकर कह सकता हूँ कि अपने पूरे सेवा-काल में मैंने कभी अपने लिए कुछ नहीं माँगा है। मेरे इस दावे को कोई चुनौती नहीं दे सकता। लॉर्ड लिनलिथगो मेरे अच्छे मित्र रहे हैं और आज भी हैं। यह ऐसी मित्रता है, जो सरकारी काम-काज के सिलसिले में स्थापित संबंध खत्म हो जाने के बाद भी कायम है। लॉर्ड लिनलिथगो मेरी इस बात की पुष्टि करेंगे अथवा नहीं, सो मैं नहीं जानता, लेकिन वे और मैं, दोनों एक व्यक्तिगत बंधन में बँध गए हैं। एक बार उन्होंने मेरा परिचय अपनी पुत्री से करवाया था। उनके दामाद, जो उनके अंगरक्षक हैं, मेरी ओर आकर्षित हुए थे। उनका मुझसे भी अधिक महादेव से प्रेम हो गया और वे तथा लेडी एन. मेरे यहाँ आए थे। लेडी एन. लॉर्ड लिनलिथगो की आज्ञाकारिणी और प्यारी पुत्री हैं। उनकी भलाई में मेरी रुचि है। मैं आपको यह रुचिकर प्रसंग इसलिए

बता रहा हूँ, जिससे कि आपको इस बात का अच्छी तरह से अंदाज हो जाए कि हममें आपस में कैसे ताल्लुकात हैं। फिर भी यहाँ मैं यह बता दूँ कि साम्राज्य के प्रतिनिधि के रूप में यदि मुझे दुर्भाग्यवश लॉर्ड लिनलिथगो के विरुद्ध कड़ा संघर्ष छेड़ना पड़ा तो उसमें उन ताल्लुकात से कोई अंतर नहीं आएगा। मुझे ऐसा लगता है कि इस साम्राज्य की ताकत का मुझे करोड़ों मूल लोगों की ताकत से मुकाबला करना होगा और इस संघर्ष के सिवाय इसकी और कोई सीमा नहीं होगी कि हमें अहिंसा की नीति का अनुसरण करना है। जिन वायसराय के साथ मेरे इतने मधुर संबंध हैं, उनके विरुद्ध संघर्ष छेड़ना अत्यंत कष्टदायक कार्य है। उन्होंने अनेक बार मेरे कथन पर, और भारतीय जनता के बारे में मैं जो कहता हूँ, उस पर अकसर विश्वास किया है। मैं अत्यंत गर्व और प्रसन्नता के साथ इसका उल्लेख कर रहा हूँ। मैं इसका उल्लेख यह दिखाने के लिए कर रहा हूँ कि ब्रिटिश राष्ट्र के प्रति, साम्राज्य के प्रति सच्चा रहने की मुझमें कितनी इच्छा रही है। मैं इसका उल्लेख इस बात की साक्षी के रूप में कर रहा हूँ कि जब उस साम्राज्य पर से मेरा विश्वास उठ गया, तब उस अंग्रेज को, जो इस साम्राज्य का वायसराय था, इसके बारे में मालूम हो गया।

इसके अतिरिक्त चार्ली एंड्रयूज की पावन स्मृति भी है, जो इस समय मेरे मन में उमड़ रही है। एंड्रयूज की आत्मा मेरे इर्द-गिर्द मँडराती रहती है। मुझे तो उनमें अंग्रेजी संस्कृति की सबसे उज्ज्वल परंपरा का सार मिलता है। मेरे उनके साथ इतने घनिष्ठ संबंध थे, जितने बहुत से भारतीयों के साथ भी नहीं रहे हैं। मुझे उनका विश्वास प्राप्त था। हम दोनों में आपस में कोई बात छिपी नहीं थी। हम दोनों हर रोज एक-दूसरे से अपने दिल की बात कहते थे। उनके मन में जो कुछ भी होता था, वे निस्संकोच और नि:शंक मुझसे कह देते थे। यह सच है कि गुरुदेव से उनकी मैत्री थी, पर वे गुरुदेव के प्रति श्रद्धा से अभिभूत थे—यद्यपि गुरुदेव ऐसा नहीं चाहते थे। एंड्रयूज में ऐसी ही अनोखी विनम्रता थी, परंतु मेरे तो वे घनिष्ठ मित्र बन गए। बहुत साल पहले जब वे दक्षिण अफ्रीका आए थे तो स्वर्गीय गोखलेजी का परिचय-पत्र अपने साथ लाए थे। दुर्भाग्य से वे अब नहीं रहे। वे एक अच्छे अंग्रेज थे। मैं जानता हूँ कि एंड्रयूज की आत्मा मेरी ये सारी बातें सुन रही है।

और मुझे कलकत्ता के बिशप (डॉ. वेस्टकोट) का तार मिला है, जिसमें उन्होंने मुझे अपना आशीर्वाद दिया है। हालाँकि मैं जानता हूँ कि वे मेरे इस कार्य के विरुद्ध हैं। मैं उन्हें धार्मिक व्यक्ति मानता हूँ। उनके हृदय की भाषा को मैं समझ सकता हूँ और मैं जानता हूँ कि उनका हृदय मेरे साथ है।

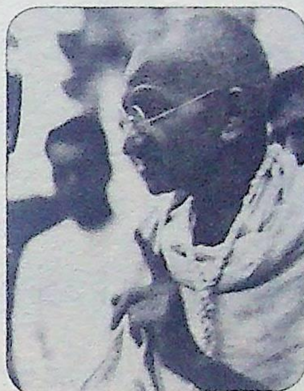
इस पृष्ठभूमि के साथ मैं संसार के सम्मुख यह घोषणा करना चाहता हूँ कि इसके विपरीत लोग चाहे कुछ भी कहें, और हालाँकि मैं पश्चिम में अपने बहुत से मित्रों का आदर-भाव और विश्वास खो बैठा हूँ तथा इसका मुझे खेद है; लेकिन उनकी मित्रता या प्रेम की खातिर भी मुझे अपने हृदय की आवाज को, जिसे आप चाहें तो 'अंतरात्मा' कह सकते हैं अथवा चाहें तो 'मेरी आंतरिक मूल प्रकृति की प्रेरणा' कह सकते हैं, दबाना नहीं चाहिए। मेरे भीतर कोई चीज है, जो मुझे अपनी व्यथा को वाणी देने के लिए बाध्य कर रही है। मैंने मानव-स्वभाव को जाना है। मैंने थोड़ा-बहुत मनोविज्ञान का भी अध्ययन किया है, हालाँकि इस पर मैंने ज्यादा पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं। ऐसा व्यक्ति अच्छी तरह से जानता है कि वह चीज क्या है! मेरे भीतर की वह आवाज, जो मुझे कभी धोखा नहीं देती, अब मुझसे कह रही है—''तुम्हें सारे संसार के विरुद्ध खड़ा होना है, भले ही तुम्हारा साथ कोई न दे और तुम अकेले ही रह जाओ। तुम्हें संसार के आमने-सामने खड़ा होना है, भले ही संसार तुम्हें खूनी आँखों से देखे। डरो नहीं, उस छोटी सी चीज पर विश्वास करो, जो तुम्हारे हृदय में बसती है।'' वह कहती है, ''मित्रों को, पत्नी को और सबको त्याग दो; लेकिन जिसके लिए तुम जीते रहे हो तथा जिसके लिए तुम्हें मरना है, वह सिद्ध करके दिखा दो।''

दोस्तो, मेरा विश्वास करो, मैं मरने के लिए कतई उत्सुक नहीं हूँ। मैं अपनी पूरी आयु जीना चाहता हूँ। मेरे विचारानुसार वह आयु कम-से-कम १२० वर्ष है। उस समय तक भारत स्वतंत्र हो जाएगा, संसार स्वतंत्र हो जाएगा। मैं आपको यह भी बता दूँ कि मैं इंग्लैंड अथवा इस दृष्टि से अमेरिका को भी स्वतंत्र देश नहीं मानता। ये अपने ढंग से स्वतंत्र देश हैं, पृथ्वी की अश्वेत जातियों को दासता के पाश में बाँधे रखने के लिए स्वतंत्र हैं। क्या इंग्लैंड और अमेरिका आज इन जातियों की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं? आप स्वतंत्रता की मेरी परिकल्पना को सीमित न करें। अंग्रेज और अमेरिकी शिक्षकों ने, उनके इतिहास ने, उनके शानदार काव्य ने यह नहीं कहा है कि आप स्वतंत्रता की व्याख्या का विस्तार न करें। मुझे विवश होकर कहना पड़ रहा है कि स्वतंत्रता की मेरी व्याख्या के अनुसार वे उनके कवियों और शिक्षकों ने जिस स्वतंत्रता का वर्णन किया है, उससे सर्वथा अपरिचित हैं। यदि वे सच्ची स्वतंत्रता को जानना चाहते हैं तो उन्हें भारत आना चाहिए। उन्हें यहाँ अभिमान और अहंकार-भाव से नहीं, बल्कि सच्चे सत्यान्वेषी की भावना से आना होगा।

यह वह मूलभूत सत्य है, जिसको पिछले २२ वषो५ से भारत प्रयोग कर रहा है। बहुत पहले, अपने स्थापना-काल से ही कांग्रेस अनजाने ही उस चीज का त्याग करके चलती रही है, जिसे संवैधानिक तरीका कहा जाता है, हालाँकि ऐसा करते हुए भी वह अहिंसा पर कायम रही है। दादाभाई और फिरोजशाह, जो कांग्रेसी भारत के सर्वेसर्वा थे, संवैधानिक तरीके पर आरूढ़ रहे। वे कांग्रेस के प्रेमी थे। वे इसके मालिक थे; लेकिन सबसे पहले वे सच्चे सेवक थे। उन्होंने हत्या, गोपनीयता और ऐसी अन्य बातों का कभी समर्थन नहीं किया। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हम कांग्रेसियों में कई खराब लोग हैं। लेकिन बड़े-से-बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक संघर्ष छेड़ने के लिए मैं सारे भारत पर भरोसा करता हूँ। मानव-स्वभाव की नैसर्गिक अच्छाई पर मुझे भरोसा है, जो सत्य को जान लेता है और संकट के समय मानो अंत:प्रेरणा से काम करता है, लेकिन यदि अपने इस विश्वास में मैं ठगा जाता हूँ तो भी मैं विचलित नहीं होऊँगा। अपने स्थापना-काल से ही कांग्रेस ने अपनी नीति का

आधार शांतिपूर्ण तरीकों को बनाया तथा बाद में आनेवाली पीढ़ियों ने उनमें असहयोग और जोड़ दिया। जब दादाभाई ने ब्रिटिश संसद् में प्रवेश किया तो सेलिसबरी ने उन्हें काले आदमी का खिताब दिया था, लेकिन अंग्रेज जनता ने सेलिसबरी को हरा दिया और दादाभाई उसी के मतों से संसद् में पहुँचे। भारत तब हर्ष से पागल हो उठा था। तथापि इन सब बातों को भारत अब पीछे छोड़ आया है।

मैं चाहता हूँ कि अंग्रेज, यूरोपीय और सभी मित्र-राष्ट्र इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए अपने दिलों से पूछें कि आज भारत ने अपनी स्वतंत्रता की जो माँग की है, उसमें उसने क्या अपराध किया है! मैं पूछता हूँ कि क्या आपका हम पर अविश्वास करना उचित है? क्या यह उचित है कि जिस संस्था की ऐसी पृष्ठभूमि है, आधी सदी से अधिक काल की ऐसी परंपरा एवं ऐसा इतिहास है, उस पर अविश्वास किया जाए और अपनी पूरी शक्ति लगाकर आप संसार के समक्ष उसकी गलत तसवीर पेश करें? मैं पूछता हूँ कि क्या यह उचित है कि आप येन-केन-प्रकारेण विदेशी समाचार-पत्रों की सहायता से, अमेरिका के राष्ट्रपति की मदद से अथवा चीन के जर्नलिज्मों की मदद से, जिन्हें स्वयं अभी सफलता प्राप्त करनी है, भारत की नीति विकृत रूप में पेश करें? वैसे मैं आशा करता हूँ कि इसमें अमेरिकी राष्ट्रपति और जर्नलिज्मों की मदद की बात सच नहीं होगी।



मैं जर्नलिज्मों से मिला हूँ। मैंने उन्हें श्रीमती च्यांग के माध्यम से जाना है, जो मेरी दुभाषिया थीं, हालाँकि वे मुझे दुर्जेय जान पड़े, लेकिन श्रीमती च्यांग मुझे ऐसी नहीं लगीं। उन्होंने मुझे श्रीमती च्यांग के माध्यम से इस बात का अवसर दिया कि मैं उनके हृदयगत भावों को जान सकूँ। उन्होंने अभी तक यह नहीं कहा है कि हम जो स्वतंत्रता की माँग करते हैं, वह गलत है। आज संसार भर में हमारे विरुद्ध असम्मति तथा विरोध का राग अलापा जा रहा है। उनका कहना है कि हम भूल कर रहे हैं, हमारा कदम समय के अनुरूप नहीं है। मेरे मन में अंग्रेजों के लिए बहुत आदर-भाव था, लेकिन अब ब्रिटिश राजनीति से मुझे अरुचि हो गई है। तथापि और लोग अपना सबक सीख रहे हैं। इन साधनों द्वारा वे कुछ समय के लिए संसार के लोकमत को अपनी ओर कर सकते हैं, लेकिन भारत सभी प्रकार के संगठित प्रचार के विरुद्ध अपनी आवाज उठाएगा। मैं इसके विरुद्ध बोलूँगा। यदि सारा संसार मेरा त्याग कर देता है, तब भी मैं कहूँगा कि आप लोग गलत हैं। भारत अहिंसा द्वारा अनिच्छुक हाथों से अपनी स्वाधीनता छीनकर रहेगा।

यदि मेरी आँखें बंद हो जाती हैं और भारत को स्वाधीनता नहीं मिलती, तब भी अहिंसा का अंत नहीं होगा। यदि वे अहिंसक भारत की, जो आज उनके समाने घुटने टेककर बहुत पुराना ऋण चुका देने का अनुरोध कर रहा है, स्वाधीनता की माँग का विरोध करते हैं तो ऐसा करके वे चीन और रूस पर घातक प्रहार करेंगे। क्या कभी लेनदार इस तरह देनदार के पास जाता है? और जब भारत को ऐसे रोष भरे विरोध का सामना करना पड़ता है, तब भी वह कहता है, ''हम ओछा वार नहीं करेंगे। हमने पर्याप्त भलमनसाहत सीख ली है। हम अहिंसा से प्रतिबद्ध हैं।'' कांग्रेस ब्रिटिश सरकार को परेशान नहीं करेगी, इस नीति का प्रणेता मैं ही हूँ। इसके बावजूद आज आप मुझे इतनी कड़ी भाषा का प्रयोग करते देखते हैं। लेकिन परेशान न करने की मेरी दलील के साथ हमेशा यह शर्त जुड़ी रहती थी कि वह हमारे 'प्रतिष्ठा और सुरक्षा के अनुरूप हो'। यदि कोई व्यक्ति मुझे गले से पकड़कर डुबो देना चाहे तो क्या मुझे अपने को उससे छुड़ाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? हमारी आज की स्थिति में कोई असंगति नहीं है।

आज यहाँ विदेशी समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए हैं। इनकी मार्फत मैं संसार से कहना चाहता हूँ कि मित्र-राष्ट्रों के सामने, जो कहते हैं कि उन्हें भारत की जरूरत है, आज यह सुअवसर है कि वे भारत को स्वतंत्र घोषित कर दें और इस तरह अपनी सदाशयता सिद्ध करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे अपने जीवन में मिले इस सुअवसर को खो देंगे एवं इतिहास के पृष्ठों में यह बात सदा के लिए अंकित हो जाएगी कि उन्होंने समय पर भारत के प्रति अपने दायित्व का पालन नहीं किया और लड़ाई हार गए। मैं समस्त संसार की शुभकामनाएँ चाहता हूँ, जिससे कि उनके साथ अपने प्रयास से मैं सफलता हासिल कर सकूँ। मैं नहीं जानता कि वे अहिंसा को स्वीकार करके अभी निरस्त्र हो जाएँ। फासीवाद में और आज मैं जिस साम्राज्य के विरुद्ध लड़ रहा हूँ, उसमें मौलिक अंतर है। अंग्रेज भारत से जो चाहते हैं, क्या वह सब उन्हें मिल जाता है? आज तो उन्हें वही मिलता है, जो वे उससे जबरदस्ती वसूल करते हैं। जरा सोचिए कि अगर भारत एक स्वतंत्र मित्र-राष्ट्र के रूप में अपना सहयोग देगा तो उससे कितना अंतर हो जाएगा। उस स्वतंत्रता को यदि आना है तो आज ही आना चाहिए। यदि आज आप लोग, जिनके पास मदद करने की ताकत है, अपनी उस ताकत का प्रयोग नहीं करते तो उस स्वतंत्रता का कोई आनंद नहीं रह जाएगा। यदि आज उस ताकत का प्रयोग कर सके तो आज जो असंभव लगता है, वह कल स्वतंत्रता की अरुणिमा में संभव हो जाएगा। यदि भारत उस स्वतंत्रता को अनुभव करने लगता है तो वह चीन के लिए उस स्वतंत्रता की माँग करेगा। रूस की मदद को दौड़ पड़ने के लिए रास्ता खुल जाएगा। अंग्रेजों ने मलाया अथवा बर्मा की भूमि पर अपने प्राण नहीं दिए हैं। हम इस स्थिति में कैसे सुधार ला सकेंगे? मैं कहाँ जाऊँगा और भारत की इस चालीस करोड़ जनता को कहाँ ले जाऊँगा? मानवता के इस विशाल सागर को संसार की मुक्ति के कार्य की ओर तब तक कैसे प्रेरित किया जा सकता है, जब तक कि उसे स्वयं स्वतंत्रता की अनुभूति नहीं हो जाती? आज उसमें जीवन का कोई चिह्न शेष नहीं है। उसके जीवन के रस को निचोड़ लिया गया है। यदि उसकी आँखों की चमक को वापस लाना है तो स्वतंत्रता को कल नहीं, बल्कि आज ही आना होगा। इसलिए मैंने कांग्रेस को यह शपथ दिलवाई है और कांग्रेस ने यह शपथ ली है कि वह करेगी या मरेगी। □

मुक्ति की एकमात्र मार्ग : अहिंसा

मैं जानता हूँ कि अहिंसा की प्रगति स्पष्ट रूप से बहुत धीमी है। किंतु अनुभव ने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्य का यही सबसे निश्चित मार्ग है। युद्ध और शस्त्रास्त्र से न तो भारत को मुक्ति प्राप्त हो सकती है, न संसार को। हिंसा तो न्याय-प्राप्ति के लिए भी निष्फल सिद्ध हो चुकी है। यदि इस विश्वास के साथ, अहिंसा में पूरी श्रद्धा रखने में कोई मेरा साथ न दे, तो मैं अकेला ही इस पथ पर चलने के लिए प्रस्तुत हूँ। □

शासन-नीति के रूप में अहिंसा

(अहिंसाशस्त्र का उपयोग केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है अथवा वह स्वतंत्र भारत की शासन नीति के रूप में भी प्रभावशाली हो सकता है? इस बहुचर्चित प्रश्न का उत्तर गांधीजी ने 'कसौटी पर' शीर्षक लेख में दिया है। इस लेख के उद्धरण प्रस्तुत हैं।—संपा.)



कार्यसमिति[1] के सदस्यों के साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि अहिंसाशस्त्र द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ने से आगे उनकी अहिंसा कभी नहीं गई। मैंने इस विश्वास को हृदय में स्थान दे रखा था कि संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी सत्ता के साथ लड़ते हुए कांग्रेसजनों ने अहिंसा के व्यवहार के तर्कपूर्ण परिणाम को पहचान लिया है। किंतु अहिंसा-जैसे बड़े-बड़े प्रयोगों में कल्पित प्रश्नों के लिए मुश्किल से ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में मैं स्वयं कहा करता था कि जब हम वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्त कर लेंगे, तभी हमें ज्ञात होगा कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीके से कर सकते हैं या नहीं।

किंतु आज यह प्रश्न कल्पित नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारे अनुकूल कोई घोषणा करे या न करे, कांग्रेस को ऐसे किसी मार्ग का निर्णय करना ही पड़ेगा, जिसका वह भारत पर आक्रमण होने की स्थिति में अनुसरण करेगी। सरकार के साथ कोई समझौता न हो, तब भी कांग्रेस को अपनी नीति तो घोषित करनी ही होगी। उसे यह बतलाना पड़ेगा कि वह आक्रामक शक्ति का सामना हिंसात्मक साधनों से करेगी अथवा अहिंसात्मक साधनों से?

जहाँ तक मैं विस्तृत चर्चा के बाद कार्यसमिति के सदस्यों की मनोवृत्ति समझ सका हूँ, उनका विचार है कि वे सशस्त्र आक्रमण के समय अहिंसात्मक साधनों द्वारा देश की रक्षा करने के लिए तैयार नहीं हैं।

यह दुःखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घर से शत्रु को बाहर करने के लिए जिन उपायों का प्रयोग किया जाता है, उसे घर से बाहर रखने के लिए भी न्यूनाधिक उन्हीं के अनुरूप साधन अपनाए जाने चाहिए और शत्रु को घर से बाहर रखने का अर्थात् सुरक्षा का उपाय ज्यादा सरल होना चाहिए। अस्तु, वास्तविकता यह है कि हमारी लड़ाई बलवान की अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। वह तो दुर्बल के निष्क्रिय प्रतिरोध की लड़ाई रही है। यही कारण है कि महत्त्व के इन क्षणों में हमारे हृदय से अहिंसा की शक्ति में ज्वलंत श्रद्धा का कोई स्वतःस्फूर्त उत्तर नहीं मिला है। अतः कार्यसमिति ने यह बुद्धिमानी की ही बात कही है कि वह इस तर्कपूर्ण कदम को उठाने के लिए तैयार नहीं है।

इस स्थिति में दुःख बात यह है कि कांग्रेस यदि उन लोगों में सम्मिलित हो जाती है, जो भारत की सशस्त्र रक्षा की आवश्यकता में विश्वास रखते हैं, तो इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि उसके बीस वर्ष यों ही चले गए। कांग्रेसवादियों ने सशस्त्र युद्ध-विज्ञान सीखने के प्राथमिक कर्तव्य के प्रति भारी उपेक्षा दिखलाई। मुझे भय है कि इस दुःखद अयोग्यता के लिए इतिहास मुझे ही, युद्ध के सेनापति के रूप में, उत्तरदायी ठहराएगा। भविष्य का इतिहासकार कहेगा कि मुझे यह पहले ही देख लेना चाहिए था कि राष्ट्र बलवान की अहिंसा नहीं केवल निर्बल का अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है। वह यह भी कहेगा कि ऐसी स्थिति में मुझे कांग्रेसजनों के लिए सैनिक शिक्षा उपलब्ध कर देनी चाहिए थी।

मेरा विचार था कि भारत किसी तरह सच्ची अहिंसा सीख लेगा और इसीलिए मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि सहकर्मियों को सशस्त्र प्रतिरक्षा के लिए प्रशिक्षण लेने को कहूँ। इसके विपरीत मैं तलवार और लाठियों को निरुत्साहित ही करता रहा। अतीत के लिए मुझे आज भी पश्चात्ताप नहीं है। मेरे मन में आज भी यही ज्वलंत श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही ऐसा है जो अहिंसा की कला सीख सकता है। आज भी यदि वह इस कसौटी पर कसा जाए तो संभवतः सहस्रों ऐसे स्त्री-पुरुष मिल जाएँगे, जो अपने उत्पीड़कों के प्रति कोई द्वेषभाव रखे बिना प्रसन्नता से प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत हो जाएँगे।

मैंने सहस्रों की उपस्थिति में बार-बार जोर देकर कहा है कि संभवत: उन्हें अधिक-से-अधिक कष्ट झेलने पड़ेंगे, यहाँ तक कि गोलियों का शिकार होना पड़ेगा। नमक सत्याग्रह के दिनों में क्या सहस्रों पुरुषों और स्त्रियों ने किसी भी सेना के सैनिकों के ही समान वीरता से अनेक उत्पीड़न नहीं झेले थे? भारत में लोग जैसी सैनिक योग्यता अहिंसात्मक युद्ध में प्रदर्शित कर चुके हैं, किसी आक्रमणकारी के विरुद्ध लड़ने के लिए, उससे भिन्न प्रकार की योग्यता की आवश्यकता नहीं। केवल उसका प्रयोग एक वृहत्तर पैमाने पर करना होगा।

एक बात नहीं भूलना चाहिए। नि:शस्त्र भारत के लिए आवश्यक नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमों से ध्वस्त होना पड़े। मैजिनो लाइन[2] ने सिगफ्रीड लाइन[3] को आवश्यक बना दिया है। वर्तमान परिस्थितियों में भारत की रक्षा इसलिए आवश्यक हो गई है कि वह ब्रिटेन का एक अंग है। स्वतंत्र भारत का कोई शत्रु नहीं हो सकता। यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख लें और उसका पूर्ण रूप से व्यवहार करने लगें, तो मैं यह कहने का साहस करूँगा कि भारत पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहेगा। हमारी अर्थनीति ऐसी होगी कि वह शोषकों के लिए किसी प्रलोभन की वस्तु सिद्ध नहीं होगी।

किंतु कुछ कांग्रेसी कहेंगे कि ब्रिटेन की बात छोड़ दी जाए, तब भी भारत के सीमांत पर अनेक सैनिक जातियाँ रहती हैं। देश पर उनका भी उतना ही अधिकार है, जितना हमारा और वे उसकी रक्षा के लिए युद्ध करेंगी। यह बिल्कुल सत्य है, इसलिए अभी मैं केवल कांग्रेसियों की ही बात कह रहा हूँ। आक्रमण की दशा में वे क्या करेंगे? जब तक हम अपने मतानुयायी नहीं बना सकते।

मुझे तो इससे विरुद्ध मार्ग उपयुक्त लगता है। सेना में पहले से ही उत्तर भारत के मुसलमानों, सिखों और गोरखों की बहुत बड़ी संख्या है। यदि दक्षिण और मध्य भारत के जनसाधारण अपना प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था कांग्रेस का सैनिकीकरण कर देना चाहते हैं तो उन्हें मुसलमानों, सिखों आदि से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। कांग्रेस को तब सेना का एक भारी बजट बनाने में भाग लेना पड़ेगा। यह सब बातें संभवत: कांग्रेस की सहमति लिये बिना जो जाएँ। तब सारा संसार चर्चा करेगा कि कांग्रेस ऐसी चीजों में सम्मिलित है या नहीं।

संसार तो आज भारत से कुछ नवीन और अपूर्व कृत्य देखने की प्रतीक्षा में है। यदि कांग्रेस ने भी वही प्राचीन, जीर्ण-शीर्ण कवच धारण कर लिया, जिसे संसार धारण किए हुए है तो उसे संकुल विश्व में कोई नहीं पहचानेगा। कांग्रेस का नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्र के रूप में अहिंसा का प्रतिनिधित्व करती है। कांग्रेस यदि मित्र-राष्ट्रों की सहायता अहिंसा के सक्षम प्रतिनिधि के रूप में करती है, तो वह मित्र-राष्ट्रों के उद्देश्य को ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करेगी, जो युद्ध का अंतिम भाग्य-निर्णय करने में अमूल्य सिद्ध होगी। किंतु-कार्य समिति के सदस्यों ने इस प्रकार की अहिंसा व्यक्त नहीं की। इसमें उन्होंने नैतिकता और साहस का ही प्रदर्शन किया है।

अत: मेरी स्थिति केवल मुझ तक ही सीमित है। मुझे अब यह देखना पड़ेगा कि इस एकांत पथ पर मेरे साथ कोई अन्य सहयात्री है या नहीं। यदि मैं अपने को बिल्कुल अकेला पाता हूँ तो मुझे दूसरों को अपने मन में मिलाने का प्रयत्न करना ही चाहिए। अकेला होऊँ या अनेक के साथ, मैं अपना यह विश्वास अवश्य करना ही चाहिए। अकेला होऊँ या अनेक के साथ, मैं अपना यह विश्वास अवश्य घोषित करूँगा कि भारत अपने सीमांतों की रक्षा के लिए भी हिंसात्मक साधनों का सर्वथा परित्याग कर दे। शस्त्रीकरण की दौड़ में सम्मिलित होगा, उसके लिए आत्मघात करना है।

भारत यदि अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अंतिम आशा पर पानी फिर जाएगा। जिस सिद्धांत का गत अर्धशताब्दी से मैं दावा करता आ रहा हूँ, उसका अनुकरण मैं अवश्य करूँगा। मैं अंतिम श्वास तक आशा रखूँगा कि भारत अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धांत बनाएगा, मानव जाति के गौरव की रक्षा करेगा और जिस स्थिति से मनुष्य को ऊँचा उठा मान लिया गया है, उसमें लौटने से उसे रोकेगा।

* समस्त देशों में भारत ही ऐसा है, जो अहिंसा की कला सीख सकता है।
* नि:शस्त्र भारत के लिए आवश्यक नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमों से ध्वस्त होना पड़े।
* यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख लें और उसका पूर्ण रूप से व्यवहार करने लगें, तो मैं यह कहने का साहस करूँगा कि भारत पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहेगा।
* भारत यदि अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अंतिम आशा पर पानी फिर जाएगा।
* मैं अंतिम श्वास तक आशा रखूँगा कि भारत अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धांत बनाएगा।

---

१. कांग्रेस कार्य समिति।

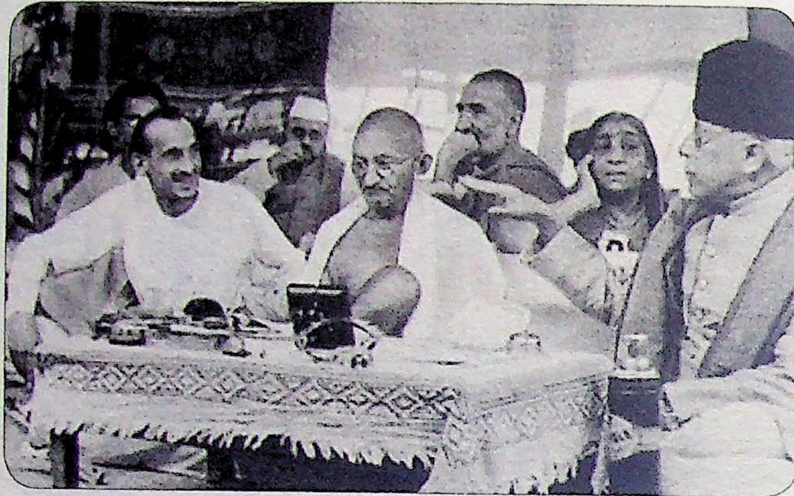
२. द्वितीय महायुद्ध में फ्रांस द्वारा फ्रांस में निर्मित एक यांत्रिक रणपंक्ति।

३. उपर्युक्त रणपंक्ति के प्रतिरोध में जर्मनी द्वारा बनाई गई रणपंक्ति।

□

भारत का भविष्य

आपने यह कहने का सौजन्य दिखाया है कि बहुत व्यस्त रहने के बावजूद इस संस्था के तत्त्वावधान में आयोजित सभा में बोलने के लिए मैंने कुछ समय निकाल लिया है। मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, ब्रिटेन की जनता के संपर्क में आने का हर अवसर का मैं लाभ उठाता हूँ और अपने यहाँ आने का उद्देश्य उसके सामने रखता हूँ। इसलिए मैं आपके पास सर्वथा स्वार्थवश ही आया हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि आज की इस शाम में आपसे जो कुछ कहूँगा, उसे आप अपने हृदय में स्थान देंगे। मुझे जो-कुछ कहना है, उसे कह चुकने के बाद मैं यह चाहूँगा कि आप मुझसे जिरह करें, जो भी प्रश्न पूछना चाहें, पूछें। मैंने अनुभव से यह जाना है कि गलतफहमी के कुहासे को दूर करने का यही एकमात्र उपाय है। मैंने देखा है कि मेरे रास्ते में सबसे बड़ी बाधा यह है कि आप लोग असली तथ्यों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वैसे इसमें आपका कोई दोष नहीं है। कारण, आप दुनिया के सबसे व्यस्त राष्ट्र के सदस्य हैं, आपकी अपनी अलग समस्याएँ हैं और इस समय तो आपका यह महान् द्वीप-समूह ऐसे संकट में से होकर गुजर रहा है, जैसा संकट इसे आपके जीवनकाल में कभी नहीं झेलना पड़ा। आपकी इन कठिनाइयों में आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है और मैं आशा करता हूँ कि अपनी अद्भुत शक्ति के बल पर आप शीघ्र ही इन कठिनाइयों में से कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे, फिर भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपनी समस्याओं में व्यस्त रहने के कारण आपको भारत जैसे सुदूरवर्ती देश को प्रभावित करने वाली समस्याओं के अध्ययन के लिए समय नहीं मिल पाता। इसलिए मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष हो रहा है कि आपमें से इतने सारे लोग समय निकालकर मैं जो कुछ भी कह सकता हूँ, उसे सुनने के लिए यहाँ आए हैं और इस बात के लिए सचमुच मुझे दुःख है कि आपमें से बहुतों को, जो मेरी आवाज सुन रहे हैं, इस कमरे में बैठने का स्थान नहीं मिल पाया है। इन कुछ प्रारंभिक बातों के बाद अब मैं असली विषय पर आता हूँ।



भारत के भविष्य की मेरी जो कल्पना है, उसका चित्र प्रस्तुत करने के लिए मैं यथासंभव कम-से-कम शब्दों में आपको बताऊँगा कि आज भारत क्या है? भारत अपने आप में एक उपमहाद्वीप है, जो उनतीस सौ मील लंबा और पंद्रह सौ मील चौड़ा है तथा वहाँ की आबादी लगभग ३५ करोड़ है। इनमें से कोई २१ करोड़ हिंदू दासों की तरह ही जी रहे हैं। इसे कानून-सम्मत दासता की स्थिति तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन वास्तव में यह स्थिति दासता के बहुत पास तक पहुँचती है। चूँकि जो वर्षा होती है, दो, तीन, चार या बहुत-बहुत कहें पाँच महीने ही होती है, इसलिए इस आबादी को वर्ष में लगभग छह महीने बिना किसी नियमित धंधे में रहना पड़ता है। जिन कुछेक क्षेत्रों में दो फसलें होती हैं, वहाँ चार महीने काम नहीं मिलता, लेकिन मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भारत के किसान आधे वर्ष बिना नियमित धंधे के रहते हैं।

तो स्वभावत: सर्वसाधारण के बीच गरीबी बहुत अधिक है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। भारत के लोगों की औसत आय प्रतिदिन दो पैसे है। अगर इन ३५ करोड़ लोगों की औसत दैनिक आय प्रति व्यक्ति दो पैसे है और यह औसत निकालने में चंद करोड़पतियों की संपत्ति भी शामिल कर ली गई है तो आप आसानी से समझ जाएँगे कि ऐसे लाखों लोग हैं, जो रोजाना ये दो पैसे भी नहीं कमा रहे हैं। नतीजा यह है कि लगभग दस प्रतिशत लोग आधा पेट खाकर जी रहे हैं। उन्हें प्रतिदिन एक बार ही खाने को मिलता है, सो भी सूखी चपाती और चुटकी भर नमक के अलावा और कुछ नहीं। आपकी 'ब्रेड' जैसी कोई चीज वे नहीं जानते, साल-साल भर वे यह नहीं जानते कि दूध क्या होता है, यहाँ तक कि उन्हें मट्ठा भी देखने को नहीं मिलता; उन्हें नहीं मालूम कि मक्खन क्या होता है; वे नहीं जानते कि तेल क्या होता है; उन्हें कभी भी हरी सब्जियाँ नहीं मिलतीं। भारत में विशाल जन-समुदाय आज इसी दलितावस्था में जी रहा है।

अब मुझे आप लोगों को यह बताना है कि भारत का भविष्य होना क्या चाहिए और अगर कांग्रेस का बस चला तो वह क्या होगा! इस वर्णन में भारत के नगरों को शामिल नहीं किया है; क्योंकि भारत नगरों में नहीं, गाँवों में रहता है। इसी तरह मैंने देशी नरेशों की भी बात नहीं कही है। इनके अधीन भी इनमें से कुछ गाँव हैं और इन गाँवों में भी लोगों का जीवन बहुत कुछ वैसा ही है, जैसा ब्रिटिश भारत के अधीनस्थ गाँवों का है। अगर दोनों में कोई अंतर है और अंतर थोड़ा सा है तो वह परिमाण का ही अंतर है, प्रकार का नहीं। राजे-महाराजे आएँगे और चले जाएँगे, साम्राज्य बनेंगे और मिटेंगे, लेकिन गाँवों में रहनेवाला भारत ज्यों-का-त्यों बना रहेगा। सर हेनरी मेन ने 'विलेज कम्युनिटीज ऑफ इंडिया' नामक एक प्रबंध लिखा है। उसमें लेखक ने कहा है कि एक समय ये गाँव आत्मनिर्भर 'लघु गणतंत्रों' के समान थे और एक सीमा तक आज

भी हैं। उनकी अपनी संस्कृति है, अपनी जीवन-पद्धति है, सुरक्षा के अपने तरीके हैं, अपने स्कूल मास्टर हैं, अपने पंडित पुरोहित, बढ़ई-हज्जाम, बल्कि वास्तव में किसी गाँव के लिए आवश्यक सबकुछ हैं। निश्चय ही आज भी गाँवों में किसी प्रकार का शासन या हुकूमत देखने को नहीं मिलती और उनका जीवन चाहे जैसा भी हो, ये आत्मनिर्भर तो हैं ही और अगर आप वहाँ जाएँगे तो देखेंगे कि ग्रामवासियों में एक प्रकार का अनुबंध-सा है, जिस पर ग्रामीण समाज का ढाँचा खड़ा है। शायद इन्हीं गाँवों से उस चीज का जन्म हुआ है, जिसे आप जाति-प्रथा का फौलादी नियम कहते हैं। जाति-प्रथा भारत के लिए अंदर-अंदर सड़ाँध पैदा कर देने वाला कीड़ा साबित हुआ है, लेकिन साथ ही इसने इन ग्रामीण लोगों के लिए एक प्रकार के सुरक्षा-कवच का भी काम किया है। खैर, मुझे जाति-प्रथा की जटिलता और रहस्य समझाने में आपका समय नहीं लेना चाहिए।

मैं कोशिश इस बात की कर रहा हूँ कि आज भारत जैसा है, उसकी जितनी सच्ची तसवीर मैं आपके सामने रख सकूँ; रखूँ। भारत पर अंग्रेजी हुकूमत ने क्या प्रभाव छोड़ा है, वह हुकूमत आज कैसी है और उसके क्या परिणाम हो रहे हैं, यह सब बताने में भी मुझे आपका समय नहीं लेना चाहिए। इस सब पर मैं दूसरी सभाओं में बोल चुका हूँ और आपके पास इसके संबंध में कुछ साहित्य भी है, लेकिन भारत के भविष्य में आपके पास कोई साहित्य नहीं है। यह पृष्ठभूमि बताए बिना मैं आपके सामने भविष्य का चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता था। अगर मैं भारत के इस कृषक समुदाय के बारे में कुछ और कहूँ तो आशा है, अब आपको आश्चर्य नहीं होगा। कांग्रेस ने अपना चरम सिद्धांत बना लिया है कि उसके कार्य और प्रगति का मापदंड उसका प्रमुख रूप से किसानों का संगठन बनाना होगा और हमने यह नियम बना लिया है कि भारत के ऐसे किसी भी हित का हम खयाल नहीं करेंगे, जो देश की आबादी के इन अस्सी प्रतिशत लोगों की आधारभूत कल्याण-साधना के विरुद्ध हो।



अब सवाल यह है कि उस आबादी की सरकार कैसी होनी चाहिए? भारत का भावी राज्य किस चीज का सबसे अधिक ध्यान रखेगा, वह है इस जन-समुदाय का आर्थिक कल्याण। इसलिए आप सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि सरकार किसानों की बेकारी के इन छह महीनों में उन्हें देने के लिए कोई धंधा ढूँढ़ेगी। वास्तव में इस जबरदस्त काम को अपने हाथों में लेने वाले आदमी का सबसे पहले इसी बात की ओर ध्यान देना चाहिए। प्रयोग और अनुभव की पद्धति से जो उपाय हमारे काम के नहीं हैं, उन्हें छोड़ते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आपस में सुसंबद्ध और एक जैसी इस आबादी के लिए कोई एक मुख्य धंधा होना चाहिए। वह आसान धंधा होना चाहिए, उसके लिए ऐसे ही साधन होने चाहिए, जिन्हें गाँवों में ही बनाया जा सके और ग्रामोद्योग से जो चीज तैयार की जाए, उसकी खपत ग्रामवासियों के बीच ही हो सकनी चाहिए। अगर आप ऐसा कोई धंधा उन्हें दे सकें, जो ये तमाम शर्तें पूरी करता हो तो उसमें उत्पादन और वितरण की आत्मनिर्भर है, ७ करोड़ मुसलमान और ३० लाख सिख हैं। इनके अलावा भारतीय ईसाई भी अच्छी-खासी तादाद में हैं और कुछ थोड़े से यूरोपीय, बल्कि ज्यादा ठीक कहूँ तो अंग्रेज लोग भी हैं। संख्या की दृष्टि से ये लोग नगण्य हैं, लेकिन जैसा कि आप जानते हैं, इन्हें वहाँ एक विशेष दर्जा प्राप्त है और इनसे अधिक प्रभावशाली वर्ग तो कोई है ही नहीं। इसका कारण यह है कि ये लोग शासक-जाति के हैं।

इस आबादी के अंदर हमारी एक समस्या है—हिंदू-मुसलिम-सिख समस्या या इसके लिए जिस शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसका प्रयोग करूँ तो कहूँगा—अल्पसंख्यकों की समस्या। यह समस्या दूसरे अल्पसख्यक समुदायों को किस तरह प्रभावित करती है, इसके ब्योरे में मैं नहीं जाऊँगा और न अल्पसंख्यक समुदायों के संबंध में अपने विचार स्पष्ट करने में ही अपका समय लूँगा, लेकिन एक अल्पसंख्यक समुदाय, अभागे अस्पृश्यों की चर्चा किए बिना मैं नहीं कर सकता। अस्पृश्य शब्द भारत के बहुसंख्यक हिंदू समाज के लिए स्थायी कलंक का द्योतक है। अस्पृश्यता हिंदू धर्म के लिए अभिशाप-रूप हैं; और मुझे यह कहने में तनिक भी हिचक नहीं होती कि अगर हिंदू धर्म से अस्पृश्यता का उन्मूलन नहीं किया गया तो यह धर्म एक दिन अवश्य ही नाश को प्राप्त होगा। वह समय आ गया है, जब हर प्रणाली को, चाहे वह जितनी प्रतिष्ठित और प्राचीन हो, तर्क और बुद्धि के प्रकाश को सहन कर सकना चाहिए, तीव्र-से-तीव्र आलोचना की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। और अगर हिंदू धर्म अस्पृश्यता को प्रश्रय देता है तो धरती पर इसके लिए कहीं कोई स्थान नहीं है।

आपको यह बताते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है कि अस्पृश्यता निवारण को कांग्रेस ने अपने कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग बनाया है और कांग्रेस की प्रेरणा से सैकड़ों, बल्कि शायद हजारों युवा हिंदू सुधारकों ने हिंदू धर्म और हिंदुस्तान को इस कलंक से मुक्त करने के लिए अपने जीवन अर्पित कर दिए हैं। ये युवा स्त्री-पुरुष अस्पृश्यों की तरह-तरह से सहायता कर रहे हैं। हम उनके लिए कुएँ खोद रहे हैं, स्कूल खोल रहे हैं, नए मंदिर बनवा रहे हैं और पुराने मंदिरों में उन्हें प्रवेश का अधिकार दिला रहे हैं। हम अधिक नहीं तो कम-से-कम पच्चीस हजार अस्पृश्य महिलाओं को घर बैठे ही काम दे रहे हैं। हमने उनके बीच चरखा चालू करवाया है। कई हजार अस्पृश्यों को हमने फिर से उनके पुराने धंधे, मोटे कपड़ों की बुनाई के धंधे में प्रतिष्ठित किया है। आधुनिक मिलों के बने कपड़ों की प्रतियोगिता के कारण उनका धंधा बंद हो गया था। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने या तो भंगी का काम अपना लिया था या कोई और काम, क्योंकि वे बुनाई के अपने नेक पैतृक धंधे से अपनी जीविका कमाने में असमर्थ हो गए थे। ईश्वर की कृपा से और इन युवा सुधारकों के प्रयत्नों से कई हजार अस्पृश्यों ने मोटे कपड़ों

की बुनाई के अपने पुराने धंधे को फिर से प्राप्त कर लिया है। बहुत से ऐसे परिवार हैं, जो पहले कर्ज के बोझ से दबे हुए थे, किंतु जिन्होंने आज न केवल उस बोझ से छुटकारा पा लिया है, बल्कि अपने पास काफी पैसा भी जमा कर लिया है। मुझे स्मरण है कि एक परिवार ने तो इतनी राशि जमा कर ली है, जो भारतीय परिवार के लिहाज से काफी अच्छी राशि है। उसने दो हजार रुपए जोड़े हैं। शिक्षकों के रूप में इस परिवार की माँग सारे देश में हो रही है, क्योंकि पति-पत्नी दोनों निष्णात बुनकर और ईमानदार तथा कुशल कार्यकर्ता हैं। जहाँ पहले उनकी माँग भंगियों की तरह होती और उनके साथ लगभग ऐसा व्यवहार किया जाता, मानो वे किसी महामारी के वाहक हों, वहाँ आज सर्वत्र शिक्षकों के रूप में उनकी माँग की जा रही है। आप सोच सकते हैं कि इससे उनमें आत्मसम्मान की भावना की कितनी वृद्धि हुई होगी।

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक समुदाय है—महत्त्वपूर्ण इस अर्थ में कि इसे जितनी सहानुभूति और सहायता दी जाए, यह उस सबका पात्र है। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि अस्पृश्यता तेजी से मिटती जा रही है और अगर ईश्वर की कृपा से गोलमेज परिषद् में चली वार्त्ताओं के परिणामस्वरूप अथवा और किसी तरह भारत अपना प्राप्य प्राप्त कर लेता है तो आप देखेंगे कि हमारे देश में अस्पृश्यता सदा के लिए चली गई है।

लेकिन भारत जैसा है, उसका वर्णन मैं अभी पूरा नहीं कर पाया हूँ। ये ३५ करोड़ लोग कर क्या रहे हैं ? इनमें से ८५ प्रतिशत से भी अधिक लोग कृषि-कार्य में लगे हुए हैं और मैंने जिस भूखंड का वर्णन किया है, उसमें फैले सात लाख गाँवों में रह रहे हैं। कुछ गाँवों की आबादी सौ, सौ से ज्यादा नहीं है; मगर कुछ ऐसे भी गाँव हैं, जिनकी आबादी पाँच हजार तक है। भारत में खेती-बाड़ी मुख्यत: अनिश्चित वर्षा पर निर्भर करती है, बल्कि इसे निर्भर रहना पड़ता है। उस उपमहाद्वीप के चेरापूँजी जैसी कुछ हिस्सों में तो प्रलयकारी वर्षा होती है; छह-छह सौ इंच तक। लेकिन सिंध और मध्य भारत जैसे कछ क्षेत्रों में ५ इंच भी मुश्किल से होती है और वह भी उस क्षेत्र में सर्वत्र समान रूप से नहीं; यानी कहीं-कहीं ५ इंच से भी कम होती है।

खेतों का रकबा औसतन एक या पौन एकड़ से लेकर ढाई एकड़ के बीच होता है। यदि हम इस दृष्टि से एक-एक प्रांत को लेकर देखें तो मेरा खयाल है कि किसी भी प्रांत में जोत का रकबा प्रति व्यक्ति ढाई-तीन एकड़ से ज्यादा नहीं आएगा। हो सकता है कि मुझसे भूल हो रही हो, लेकिन मेरा खयाल है, मेरा अनुमान तथ्य से ज्यादा भिन्न नहीं होगा; और हजारों-हजार किसान ऐसे हैं, जिनके पास एक-एक एकड़ जमीन भी नहीं है तथा दसियों हजार किसानों के पास बिल्कुल भी जमीन नहीं है, जिससे वे भारत में कृषि-दासों (सर्फ), बल्कि शायद कहा जा सकता है, प्रक्रिया काम करेगी और किसी बिचौलिये का सहारा लेने की जरूरत नहीं होगी। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई का प्राचीन धंधा इसी तरह का था। अब मैं आपको यह सब नहीं बताऊँगा कि यह धंधा कैसे नष्ट हुआ, लेकिन आप देखते हैं कि कांग्रेस के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप चरखा संघ जितनी शीघ्रता से कर सकता है, उतनी शीघ्रता से भारत के हजारों गाँवों में प्रवेश कर रहा है। इस तरह हम दो हजार गाँवों में प्रवेश कर चुके हैं। इस धंधे ने ग्रामीण लोगों की आय लगभग दूनी कर दी है। आप समझ सकते हैं कि किसी गरीब की दो पैसे की कमाई में दो पैसे और जुड़ जाने का मतलब क्या होता है ! मैं तो कहूँगा कि इसका मतलब भाग्य का खुल जाना होता है। फिर आप कपड़े से संबंधित दूसरे धंधों को लें, जिनमें हाथ-कताई और हाथ-बुनाई से लेकर छपाई-रँगाई और धुलाई तक शामिल है। इन तमाम धंधों पर विचार करने पर आप पाएँगे कि कपड़ा तैयार करने का धंधा दे देंगे तो उसका मतलब होगा कि हमने उनके निराशामय जीवन में थोड़ी आशा, कुछ साहस का संचार किया है और उनकी बुझी आँखों में कुछ चमक पैदा कर दी है। अगर आप मेरे साथ चलकर उड़ीसा के गाँवों का भ्रमण करें तो आप तिहरी मुसीबत के मारे उस प्रदेश में जीती-जागती मृत्यु को चलते-फिरते दिखेंगे। वहाँ आपको मानव-जाति के ऐसे नमूने देखने को मिलेंगे, जो अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि लाचारी के मारे हाड़ व चाम के ढाँचे-मात्र रह गए हैं और जिनके अंगों पर मांस का कहीं नामोनिशान नहीं है। अगर हम उन्हें यह धंधा देते हैं तो ये वास्तव में उनमें नए जीवन, नई आशा का संचार करते हैं।

लेकिन नए राज्य की प्रवृत्तियाँ यहीं समाप्त नहीं हो जाएँगी। ये लोग सफाई के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और हमें इनके स्वास्थ्य की, सफाई की भी देखभाल करनी है। इसलिए हम उनके बीच डॉ. पुअर के स्वास्थ्य-संबंधी उपायों को दाखिल करने की कोशिश करते हैं। डॉ. पुअर ने ग्राम-आरोग्य-शास्त्र पर एक पुस्तक लिखी है। संक्षेप में कहूँ तो इसमें यह बताया गया है कि मानव-मल से खाद कैसे तैयार की जाए ? मानव-मल के उपयोग के ज्ञान की दृष्टि से दुनिया में चीनियों की बराबरी कोई नहीं कर सकता और डॉ. पुअर कहते हैं कि आर्थिक दृष्टि से, लाभकर ढंग से, मानव-मल को ठिकाने लगाने के उपाय की खोज में उनके शिक्षक चीनी ही थे। हम दो काम करने की कोशिश कर रहे हैं—एक तो राष्ट्र का धन बढ़ाने की और दूसरे, उसका स्वास्थ्य सुधारने की। अगर हम लोगों को मानव-मल को ठिकाने लगाने का यह तरीका सिखा देते हैं तो हम किसी हद तक अपने को मक्खियों के उत्पात से मुक्त कर लेंगे और कुछ हद तक जहरीले मच्छरों को भी समाप्त कर देंगे। मैं जानता हूँ कि इस उपाय से यह काम पूरी तरह संपन्न नहीं हो जाएगा, लेकिन यह सही दिशा में उठाया गया कदम तो है ही।

फिर इस मलेरिया-ग्रस्त देश में उन्हें चिकित्सा-संबंधी कुछ सहायता देना भी आवश्यक ही है। भारत में रोग तो बहुत हैं, लेकिन मलेरिया मुख्यत: अभाव की बीमारी है। ग्रामवासियों को केवल कुनैन की गोलियों के पैकेट दे देने से ही यह रोग दूर नहीं हो जाएगा। कुनैन आवश्यक तो है, लेकिन यदि आप उन्हें थोड़ा दूध या फल नहीं देते तो वह बेकार ही है, क्योंकि उनकी पाचन-प्रणाली कोई और चीज ग्रहण करने लायक होती ही नहीं। तो हमसे जहाँ भी बन पड़ता है, वहाँ हम उन्हें चिकित्सा-संबंधी साधारण सी सहायता देने की कोशिश कर रहे हैं। यहाँ मैं आपको यह बताने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ कि हम यह काम कर चुके हैं, मैं तो भावी राज्य की बात कह रहा हूँ, लेकिन कल्पना-

लोक में विचरण करते रहने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक आदमी की हैसियत से। हमने छोटे पैमाने पर इसे आजमाकर देखा है और अगर हम भावी राज्य की सहायता से इस प्रवृत्ति में कई गुना वृद्धि कर सकें तो आप समझ सकते हैं कि बहुत पूँजी लगाए बिना भारत क्या हो सकता है। चिकित्सा-संबंधी यह सहायता हम पश्चिमी डॉक्टरों द्वारा सिखाए अत्यंत व्ययसाध्य तरीके से नहीं देते, बल्कि उपचार के अपने प्राचीन तरीके से हम फिर से काम लेते हैं कि वह नीम हकीम था और हमारी इस छोटी सी काया का नियमन करने वाले मोटे-मोटे सिद्धांतों से भी वह सर्वथा अनभिज्ञ था। यह सब सच है; लेकिन तब यह बात भी तो है कि वह ऐसा आदमी था, जो इन लोगों को थोड़ी-बहुत राहत दे सकता था और चूँकि उसका धंधा पुश्तैनी था, इसलिए यदि वह बेईमान नहीं होता था, तो सचमुच बड़ी कुशलता से अपने समाज की एक आवश्यकता पूरी करता था। अगर आप अरोग्य-विज्ञानी यह प्राथमिक जानकारी उसे दे देते हैं और लोगों को मलेरिया से छुटकारा दिलाने का यह सीधा-सादा तरीका सिखा देते हैं तो समझिए कि आपने इस दिशा में बहुत कुछ कर लिया।



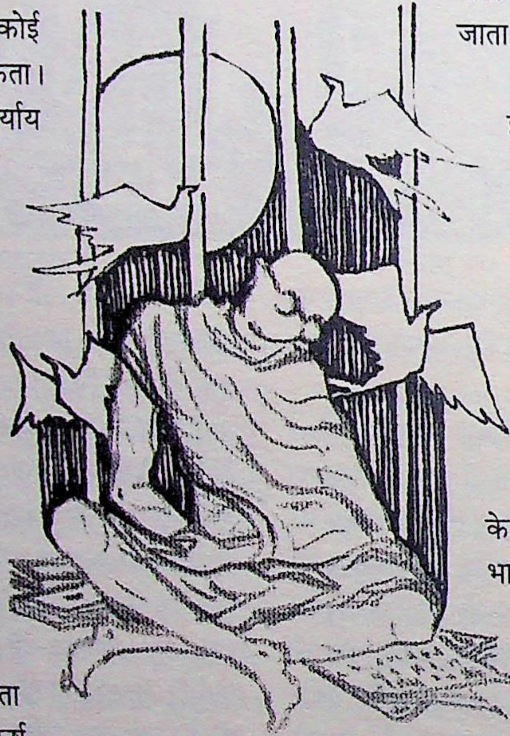
मैंने आज आपको जो कुछ बताया है, उसका अनुमोदन बंबई प्रांत के सर्जन जनरल ने भी किया था। जिन दिनों मैं सैसून अस्पताल में पड़ा था, उन्हीं दिनों जब वे मुझे देखने आए तो उनसे इस विषय पर मेरी चर्चा हुई। इस चर्चा के दौरान मैंने उनसे कहा कि "चिकित्सा की आपकी अंग्रेजी पद्धति तो इस गरीब देश के लिए बड़ी खर्चीली है और अगर आप किसी गाँव में अपनी पद्धति से रोग-निवारण करना चाहें तो उसमें दो-तीन सदियाँ लग जाएँगी।" उन्होंने मेरी बात से सहमति प्रकट करते हुए पूछा कि "लेकिन तब आप क्या करेंगे?" इस पर मैंने उनको अपनी योजना बताई।

भविष्य का यह चित्र इतने से ही पूरा नहीं हो जाता। इस भावी राज्य की शिक्षा की समस्या भी होगी। मेरे दिए आँकड़ों को कोई गलत सिद्ध कर सकेगा, मन में इसकी तनिक भी आशंका रखे बिना मैं कहता हूँ कि आज भारत पचास या सौ साल पहले के बनिस्वत ज्यादा निरक्षर है और यही हाल बर्मा का भी है। इसका कारण यह है कि अंग्रेज प्रशासक जब भारत में आए तो यहाँ की चीजों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करके आगे बढ़ने के बजाय उन्होंने मूलोच्छेद करना शुरू किया। उन्होंने मिट्टी पलटकर जड़ देखना शुरू किया, लेकिन बाद में फिर उस जड़ पर मिट्टी नहीं डाली और नतीजा यह हुआ कि वह सुंदर वृक्ष नष्ट हो गया। ग्राम्य पाठशालाएँ ब्रिटिश प्रशासकों के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त अच्छी नहीं थीं और इसलिए वे एक नई योजना लेकर सामने आए, उनके अनुसार प्रत्येक स्कूल में अमुक साज-समाज, उसका अपना एक भवन आदि होना चाहिए, मगर ऐसे स्कूल देश में नहीं थे। एक ब्रिटिश प्रशासक कुछ ऐसे तथ्य-आँकड़ें छोड़ गया है, जिन्हें देखने से पता चलता है कि उन लोगों ने इस संबंध में जहाँ-जहाँ सर्वेक्षण किया, वहाँ-वहाँ यह पाया कि प्राचीन पाठशालाएँ धीरे-धीरे नष्ट हो गई हैं, क्योंकि उन पाठशालाओं को मान्यता नहीं दी जाती थी और चूँकि यूरोपीय ढंग पर खोले गए स्कूल आम जनता के लिए बहुत खर्चीले थे, इसलिए वे शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सके। मेरी यह चुनौती है कि कोई इस देश में एक सदी के अंदर ऐसी व्ययसाध्य शिक्षा-पद्धति का भार वहन नहीं कर सकता। हमारा राज्य प्राचीन ग्राम-शिक्षक की परंपरा को फिर से चालू करेगा और इस तरह गाँव में लड़कों और लड़कियाँ, दोनों के लिए स्कूल की व्यवस्था अपने आप हो जाएगी।

अब एक दूसरी चीज को लें। अंग्रेजों ने कुछ एक सिंचाई योजनाओं को पूरा करने में करोड़ों रुपए खर्च किए हैं, लेकिन हमारा दावा है कि इस काम में जितनी तेजी से प्रगति की जा सकती थी, उतनी तेजी से वे प्रगति नहीं कर पाए हैं। सैनिक प्रयोजनों से देश भर में तैयार किए गए रेलमार्ग, परिवहन-कार्य निस्संदेह कुछ लाभप्रद सिद्ध हुए हैं, लेकिन सिंचाई के द्वारा देश को जितना लाभ पहुँचाया जा सकता था, वैसा कोई लाभ इनसे नहीं हुआ है। सिंचाई की ये योजनाएँ वास्तव में इतनी व्ययसाध्य थीं और हैं कि पूरे देश में इन्हें लागू किया ही नहीं जा सकता, लेकिन सिंचाई के हमारे प्राचीन तरीके हैं; कुछ हिस्सों में गहरे कुओं से की जानेवाली सिंचाई और कुछ में ऐसे कुओं से की जानेवाली सिंचाई, जो बहुत गहरे नहीं हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस क्षेत्र में कोरा ही हूँ, लेकिन एक अंग्रेज सज्जन, जो सघन कृषि के प्रयोग कर रहे हैं और इस समय यहाँ हैं, मुझसे कह रहे थे कि वे कविगुरु ठाकुर के गाँव में काम करते रहे हैं। उस ग्राम्य प्रयोग को वास्तव में श्री एमहर्स्ट ने जीवन प्रदान किया और उस प्रयोग के परिणामस्वरूप नहर में सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है, जिसके लिए ऐसी किसी कौशल की आवश्यकता नहीं होती, जो गाँववालों को मालूम न हो। उन्होंने बताया है कि अब उन लोगों ने सरकार को यह स्वीकार करने को विवश कर दिया है कि उनका तरीका ज्यादा अच्छा है। मैं तो इन सज्जन द्वारा नहर-सिंचाई के संबंध में दिया साक्ष्य ही आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ, लेकिन खुद इतना जानता हूँ कि सिंचाई के ऐसे प्राचीन तरीके भी हैं, जो जनता की सामर्थ्य के अनुरूप हैं।

आपको मैंने यह तो बता दिया कि हम निर्माण के कौन-कौन से कार्य करेंगे, लेकिन हमें कुछ ध्वंसात्मक कार्य भी करने पड़ेंगे, अन्यथा हमारा काम नहीं चल पाएगा, क्योंकि दुर्वह सैनिक और असैनिक (सिविल) व्यय को वहन करने के लिए भारत से साल-दर-साल जो राजस्व जबरदस्ती वसूल किया जाता है, यह देश वास्तव में उतना देने योग्य नहीं है। सैनिक व्यय ६२ करोड़ का है। जिस देश के लोगों की

औसत दैनिक आय केवल दो पैंस हो उसके लिए यह रकम बहुत बड़ी है। इसकी तुलना आप दुनिया के किसी देश के सैनिक व्यय से देख लीजिए। आप पाएँगे कि भारत एक दुर्वह भार से दबा हुआ कराह रहा है, इसलिए हमें तत्काल पुन: संतुलन करने में जुट जाना होगा और अगर मेरी चले तो हमें तीन-चौथाई सैनिक व्यय से छुटकारा पा लेना चाहिए। अगर हम सचमुच यह दिखा देते हैं कि हमने अपनी स्वतंत्रता अहिंसक साधनों से प्राप्त की है तो भारत के लोगों को इस बात की प्रतीति कराने के लिए कि इसी अहिंसा के बल पर वे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा भी कर पाएँगे; ज्यादा दलील देने की जरूरत नहीं होगी। कांग्रेस को अफगानों अथवा जापानियों के आक्रमण की आशंका नहीं सताती; बोलशेविक रूस के आक्रमण की आशंका तो बिल्कुल भी नहीं। कांग्रेस को ऐसा कोई भय नहीं है और अगर हम अहिंसात्मक असहयोग के पाठ को समझ लें तो दुनिया का कोई भी राष्ट्र हमें अपनी इच्छा के आगे झुका नहीं सकता। अगर हम अंग्रेजी का केवल एक शब्द, जिसके पर्याय भारतीय भाषाओं में भी हैं, सीख लें तो हमें केवल इतना ही कहना होगा—'नो' (नहीं), और भारत पर अपनी लोलुप दृष्टि डालनेवाले किसी भी आक्रमणकारी के पाँव वहीं रुककर रह जाएँगे। हमारा यह निश्चित मत है कि भारत के पास जो शस्त्रास्त्र हैं, उनकी उसे कोई आवश्यकता नहीं है।



असैनिक (सिविल) मामलों से संबंधित व्यय के बारे में मुझे यहाँ भी वह दृष्टांत देना पड़ेगा, जो मैं कई सभाओं में दे चुका हूँ। यहाँ प्रधानमंत्री को औसत राष्ट्रीय आय का पचास गुना वेतन मिलता है। भारत में वायसराय को वहाँ की औसत आय का पाँच हजार गुना मिलता है। इस एक उदाहरण से आप खुद ही यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह असैनिक व्यय भारत के लिएक्या अर्थ रखता है। यह सेवा चाहे जितनी सक्षम और कार्यकुशल हो, भारत इसका बोझ नहीं सह सकता। अगर मैं भारत के प्रत्येक गाँव में चिकित्सा-शास्त्र के विशेषज्ञ भेज सकूँ तो बहुत संभव है कि वहाँ कोई रोग न हो, लेकिन चूँकि प्रत्येक गाँव को ऐसा विशेषज्ञ भेजना हमारे वश का नहीं है; इसलिए हमें उन नीमहकीमों से ही संतुष्ट रहना पड़ेगा, जो हमारे गाँव में सुलभ हैं। दुनिया का कोई भी देश अपनी आमदनी से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता; वह वैसी ही सेवाओं का लाभ उठा सकता, जिनका खर्च उठाना उसके लिए शक्य है। अगर मैं प्रत्येक भारतीय ग्रामीण के लिए स्ट्राबेरी और मक्खन चाहूँ तो मैं जानता हूँ कि वह दिवा-स्वप्न देखना ही होगा और यदि मैं प्रत्येक ग्रामवासी को ये चीजें देना चाहूँ तो मैं महामूर्ख समझा जाऊँगा। तो मैं आपसे कहता हूँ कि यह सैनिक और असैनिक (सिविल) व्यय भारत के लिए स्ट्राबेरी और मक्खन के समान है। मैं अपने देश के भाइयों को यह भोजन नहीं दे सकता। मैं भविष्य का चित्र लगभग पूरा कर चुका हूँ। अगर इससे आपको कहीं कोई स्थान खाली मिले तो मुझे स्मरण दिलाइए। फिर मैं आपके प्रश्नों के उत्तर देकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कर दूँगा।

प्रश्न—क्या आप यह स्वीकार नहीं करेंगे कि फसलों के खराब हो जाने से जो आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता था, वह अब नहीं उठाना पड़ता और अब उपज बढ़ गई है और आज जब किसी जन-साधारण के आर्थिक खुशहाल हो जाने के कारण अकाल कष्ट-निवारण नियमों की वैसी आवश्यकता नहीं रह गई है, इन नियमों की संहिता को और भी निर्दोष-नीरंध्र बना दिया गया है?

उत्तर—मेरा अनुभव तो यह है कि जनता की कष्टों का मुकाबला करने की शक्ति में कोई वद्धि नहीं हुई है। हुआ यह है कि रेलपथ यातायात के कारण अब जो दूसरी जगहों से अन्न मिल जाता है, जबकि पहले नहीं मिलता था।

प्रश्न—सर फिलिप हार्टोग, क्या आपने अपने इस कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण देंगे कि गत पचास वषो५ में भारत में साक्षरता कम हो गई है?

उत्तर—मेरा प्रमाण पंजाब सरकार की रिपोर्ट है, और 'यंग इंडिया' में मैंने पंजाब के शिक्षा-संबंधी आँकड़ों का अध्ययन प्रकाशित किया है।

प्रश्न—सर फिलिप हार्टोग, क्या आप इसका कारण बताएँगे कि पुरुषों के बीच साक्षरों की संख्या चौदह प्रतिशत और स्त्रियों के बीच केवल दो प्रतिशत ही क्यों है? और ब्रिटिश भारत की अपेक्षा कश्मीर व हैदराबाद में अधिक निरक्षरता क्यों है?

उत्तर—स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा की गई है, जो पुरुषों के लिए बड़ी शर्मनाक बात है। कश्मीर के आँकड़ों के संबंध में तो मैं ऐसा कु छ अनुमान ही लगा सकता हूँ कि अगर वहाँ ज्यादा निरक्षरता है तो उसका कारण या तो शासक की उदासीनता है या यह कि वहाँ मुख्यत: मुसलमान रहते हैं, लेकिन मेरा खयाल है कि वास्तव में दोष दोनों का बराबर-बराबर ही है।

प्रश्न—क्या कांग्रेसी ब्राह्मण अस्पृश्यों की सहायता कर रहे हैं? अगर बात ऐसी है तो अस्पृश्यों के लिए अलग कुएँ खोदने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? क्या वे ब्राह्मणों के कुओं को ही इस्तेमाल नहीं कर सकते? क्या अस्पृश्यों के बीच अधिकांश काम करने का श्रेय साल्वेशन आर्मीवालों और मिशनरियों को ही नहीं है?

उत्तर—जब मैंने यह कहा कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अभिशाप है तो आपके इस सवाल का उत्तर तो दे ही दिया कि अस्पृश्य लोग ब्राह्मणों के कुओं को उपयोग क्यों नहीं कर सकते। अगर सभी ब्राह्मणों में यह सुधार आ गया होता, तब तो कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती; लेकिन यह सही है कि जो कार्यकर्ता अस्पृश्यों के लिए कुएँ खोदने और

उनकी अन्य सेवाओं में लगे हुए हैं, उनमें ज्यादातर ब्राह्मण ही हैं। वे ऐसा मानते हैं कि इस तरह, उनके जातिवालों ने अस्पृश्यों को जो कष्ट दिया है, वे उसका थोड़ा सा प्रायश्चित्त करते हैं। साल्वेशन आर्मीवालों और मिशनरियों का काम हिंदू सुधारकों द्वारा किए जा रहे काम से भिन्न हैं और इस समय मैं इस मसले की चर्चा नहीं करना चाहता।

प्रश्न—प्रस्तावित सुधारों का भारत की आबादी पर क्या असर होगा? अगर स्वास्थ्य-सफाई की अवस्था सुधर गई तो उससे मृत्यु-दर कम हो जाएगी और आबादी बढ़ेगी और अगर व्यवस्थित उद्यमशीलता तथा सार्वजनिक व्यय में किफायतशारी के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा हो जाएगा तो क्या किसी ऐसी व्यवस्था की तजवीज है, जिससे जन्म-दर इतनी न बढ़े कि जनसंख्या में बहुत वृद्धि हो जाए और फलत: लोग फिर ऐसी अवस्था में पहुँच जाए कि किसी प्रकार निर्वाह भर कर सकें? क्या जन्म-दर पर रोक न लगाना स्थायी सुधार में बाधक न होगा?



उत्तर—यह समस्या केवल भारत के साथ ही तो नहीं है; यह तो एक आधुनिक मान्यता है। जन्म-दर में स्वाभाविक वृद्धि को मैं बुराई नहीं मानता और अगर कांग्रेसी कार्यकर्ता यह दिखा सकें कि स्वास्थ्य-सफाई की दिशा में तथा अन्य क्षेत्रों में उनके किए सुधारों के परिणामस्वरूप भारत की जन्म-दर में वृद्धि हुई है तो मैं उन्हें बधाई ही दूँगा। जन्म-दर में वृद्धि के परिणामस्वरूप गरीबी बढ़ने से मुझे भय नहीं लगता। हम अपने देश के भाइयों को ऐसे जीवन की शिक्षा दे रहे हैं, जिसमें जन्म-दर में होनेवाली स्वाभाविक वृद्धि को एक चीज और विषय-भोग के अतिरेक से होनेवाली वृद्धि को बिल्कुल दूसरी चीज माना जाता है और इस तरह की शिक्षा पर जितना जोर दिया जाए, कम ही होगा। मैंने इस प्रश्न पर बहुत शांत एवं एकाग्र मन से विचार किया है और इस विषय पर मैं सारे यूरोप व अमेरिका के विचारकों से पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक सुधारकों द्वारा सुझाए संतति-निग्रह के तरीके अंततः मृत्युपाश साबित होंगे। अगर यह सिद्ध कर भी दिया, जो कि इंग्लैंड, फ्रांस तथा यूरोप के दूसरे हिस्सों में और अमेरिका के कुछ भागों में जन्म-दर रोकने के लिए आधुनिक तरीकों से कुछ लाभ हुआ है, तब भी भारत को तो इससे अपरिमित हानि ही होगी, क्योंकि वहाँ आम लोगों को इन उपायों का लाभ नहीं दिया जा सकता। जब भारत इन तरीकों को किसी भी रूप में समझ ही नहीं सकता तो उसके लिए इनका सुझाव देना दुष्टतापूर्ण बात होगी।

प्रश्न—क्या आप संक्षेप में यह बताएँगे कि भारत में किस सिद्धांत के आधार पर एक सबल और सुस्थिर कार्यकारिणी का गठन किया जा सकता है?

उत्तर—सबल और सुस्थिर कार्यकारिणी बनाने का सबसे अच्छा तरीका सबल और सुस्थिर हृदयवाले व्यक्ति ढूँढ़ निकालना है तथा भारत में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। मैंने प्रश्न के राजनीतिक पहलू पर विचार नहीं किया है, क्योंकि भारत के भविष्य की मेरी जो कल्पना है, उसमें बहुत अधिक राजनीतिक उपायों की गुंजाइश नहीं है। आर्थिक कष्ट का इलाज आर्थिक ही है, लेकिन मैं राजनीति में इसलिए हाथ-पैर मार रहा हूँ कि राजनीति में पड़े बिना आर्थिक समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। अपनी राजनीतिक मान्यताओं का इजहार मैं कई मंचों से कर चुका हूँ और मैंने यह माना था कि आप सिद्धांतों से अवगत हैं, जिन पर कांग्रेस चलती है, लेकिन अगर आप चाहें तो मैं अपनी राजनीतिक मान्यताएँ आपको फिर से बताने को तैयार हूँ। मैं टालस्टॉय के इस विचार से सहमत हूँ कि उस देश का शासन सबसे अच्छा है, जहाँ सबसे कम शासन किया जाता है और अगर कांग्रेस का वश चला तो राजनीतिवालों को घरेलू जीवन में जो कुछ निजी एवं पवित्र है, उस पर हाथ नहीं डालने दिया जाएगा, बल्कि उनसे अपनी सीमा के भीतर रहने की अपेक्षा की जाएगी।

प्रश्न—ब्राह्मण सुधारकों के प्रशस्त दृष्टिकोण से देश भर के सवर्ण हिंदू कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर—जो अपने को कांग्रेसी कहते हैं, उनमें से तो बहुत अधिक लोग उनके दृष्टिकोण से सहमत हैं, लेकिन अभी बहुत कुछ करना शेष है। फसल तो पक चुकी है, लेकिन कटाई करनेवाले मजदूर बहुत कम हैं। ऐसे कुछ एक हजार लोग हैं, लेकिन जिस दोष ने राष्ट्र के ढाँचे को खोखला बना दिया है, उससे मुक्त होने के लिए इस तरह के दसियों हजार लोगों की जरूरत है। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि अस्पृश्यता तेजी से दम तोड़ रही है, क्योंकि कुछ लोगों ने अपने जीवन तक होम कर दिए हैं और इस अभिशाप को दूर करने के लिए अपने प्राणों को कोई मूल्य नहीं समझा है। अब तो स्थिति यह है कि या तो हिंदू धर्म खंड-खंड होकर बिखर जाएगा या फिर चंद वषोंप में ही अस्पृश्यता मिट जाएगी।

इसके बाद अध्यक्ष ने पूछा कि आप राजनीतिक स्थिति के बारे में कुछ और कहने की कृपा करेंगे।

श्री गांधी ने कहा कि कांग्रेस पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता और इसलिए सेना, विदेश मामलों और वित्त पर संपूर्ण नियंत्रण से कम किसी भी चीज से संतुष्ट होनेवाली नहीं है। कांग्रेस की मनोवृत्ति का सही अंदाज लगाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप अपने को भारतीयों की स्थिति में रखकर सोचें। कल्पना कीजिए कि आप सब भारत में रह रहे हैं और भारतीय लोग ग्रेट ब्रिटेन में। अब मान लीजिए,

ब्रिटिश द्वीप समूह में रहनेवाले भारतीय आप से कहें कि 'आप लोग अपना शासन चलाने लायक नहीं हैं; हमें यह देखना होगा कि आप अपनी सेना की व्यवस्था खुद कर सकते हैं अथवा नहीं या आपके यहाँ से हमारे हट जाने पर चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान या रूस से जो आक्रमणकारी आप पर टूट पड़ेंगे, उनसे आप अपनी रक्षा कर सकते हैं अथवा नहीं।' इस पर आपका उत्तर यही तो होगा कि 'हम अपना हित-अहित खुद देख लेंगे या कम-से-कम वैसी कोशिश तो करेंगे।' ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होगा कि भारतीय लोग एक राष्ट्र के रूप में दुनिया से मिट जाएँगे। मौजूदा परिस्थिति से हजारों भारतीयों को ममा५तक पीड़ा हो रही है और वे विदेशी दासता के जुए को अपने कंधों से किसी भी कीमत पर उतार फेंकने को कटिबद्ध हैं, चाहे ब्रिटिश सिंह अपने पंजे फटकारकर भारतीयों द्वारा की जानेवाली सविनय अवज्ञा का कितना भी विरोध करे। भारत में ब्रिटेन के बहुत बड़े आर्थिक हित हैं। लॉर्ड रॉदर मेयर के अनुसार उसकी कीमत एक अरब पौंड है। अगर ये हित उचित और न्यायसम्मत हैं तो भारतीय उनकी रक्षा करेंगे, क्योंकि वे जो लड़ाई लड़ रहे हैं, वह बदला लेने के लिए नहीं, बल्कि भारत के जन्मसिद्ध अधिकार का उपयोग करने के लिए लड़ रहे हैं। भारतीय अंग्रेजों की तरह शस्त्रसज्जित नहीं हैं। वे युद्ध-कला नहीं जानते, उन्हें एक विनम्र जाति कहा जाता है और मुझे इस बात का हर्ष है कि मैं उस जाति में जनमा हूँ, लेकिन अगर उनके हृदय मजबूत हैं तो शारीरिक कमजोरी से कोई फर्क नहीं पड़ता। भारतीय महिलाओं के हृदय फौलादी हैं। उन्होंने सीना तानकर लाठियों के प्रहार झेले, उन्होंने भागने की बात नहीं सोची, प्रहारों की ओर अपनी पीठ नहीं फेरी। ऐसे ही मजबूत हृदय ग्रामवासियों के हैं, जिन्होंने अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा नहीं पाई है और उनमें भी सबसे बहादुर एक स्त्री है, जो खुद अपनी मातृभाषा का एक अक्षर भी शायद ही पढ़ सकती है। वे ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि अपने देश की आजादी हासिल कर सकें।

भारत के जनसाधारण में जागृति आ रही है और अब वह समय बीत चुका है, जब उन्हें ऐसा समझाया जा सकता था कि विदेशी सुशासन स्वदेशी कुशासन से बेहतर है। सर हेनरी कैंबेल-बैनरमैन ने कहा था कि स्वशासन का स्थान सुशासन नहीं ले सकता। गलती करने में तो ब्रिटेन के लोग लासानी हैं और लॉर्ड सैलिसबरी ने कहा भी था कि अंग्रेज लोग गलतियाँ करते हुए और उनसे सबक लेते हुए सफलता की मंजिल तक पहुँचने की कला जानते हैं। फिर अंग्रेज भारतीयों को ही गलती करने के अधिकार से वंचित क्यों रख रहे हैं? जो अंकुश भारत को अपने उस अधिकार के प्रयोग से वंचित रख रहा है, उससे वे तंग आ चुके हैं। यद्यपि मेरा धर्म अहिंसा है, फिर भी जिसका उल्लेख सर हेनरी गिडनी ने किया, वह विपत्ति अगर आने लगे तो वह खतरा भी उठाने को मैं तैयार हूँ, लेकिन हम कौन सी गलतियाँ कर सकते हैं? सभी अल्पसंख्यक समदायों को सुरक्षा मिलनी चाहिए, लेकिन सुरक्षा देने के अनेक तरीके हैं। जिस स्वतंत्रता से भारत इतने दिनों तक वंचित रहा, उसे उसको प्राप्त करना ही है, मिले तो ब्रिटेन की सहायता से और न मिले तो उसके बिना ही। मैं न केवल ब्रिटेनवालों से, बल्कि समग्र मानव जाति से यह अनुरोध करता हूँ कि इस राष्ट्र को, जो इतने व्यापक पैमाने पर अहिंसा का प्रयोग कर रहा है, जिसका इतिहास में कहीं कोई उदाहरण नहीं है, दुनिया के सभी राष्ट्रों का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिए।

अंग्रेजी हुकूमत से भारत को लाभ हुआ है, यह बात अंग्रेजों के जानने की है या भारतीयों के? ब्रिटेनवालों का किया सही है अथवा गलत। इसका निर्णय खद ब्रिटेनवाले करेंगे या इस संबंध में दादा भाई नौरोजी, रानाडे, गोखले, सर फीरोजशाह मेहता जैसे उन लोगों के साक्ष्य को निर्णायक माना जाएगा, जिन्हें इंग्लैंड से एक प्रकार का मोह और पाश्चात्य सभ्यता का गर्व था, किंतु जिन्होंने कहा कि यद्यपि अंग्रेजों का आशय शुभ है, फिर भी उनका शासन कुल मिलाकर भारत के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ है, क्योंकि उन्होंने इस राष्ट्र को पुंस्त्वहीन बना दिया है? ब्रिटेन ने सौ वषो५ तक भारत में शासन किया है और अगर इसके बाद भी उसके वहाँ से हट जाने का परिणाम यही होना है कि वहाँ के लोग आपस में लड़ने लगेंगे तो इसके लिए दोषी कौन है? मैं मानता हूँ कि हम असहाय हैं और मैं ब्रिटेन की सहायता भी चाहता हूँ, लेकिन अपनी शतो५ पर। भारत ऐसे द्वार-रक्षक नहीं रख सकता, जो इतना ऊँचा पारिश्रमिक माँगें। अगर आप अपनी कमाई का ७५ प्रतिशत उन्हीं को दे देंगे तो शेष २५ प्रतिशत पर वह अपना जीवन कैसे बिता पाएँगे? यह तो सामान्य गणित का विषय है। देश आज जिन अनेक बोझों के नीचे पड़ा कराह रहा है, उन्हीं के कारण वह दरिद्र हुआ है और चूँकि मैं सिवाय उन अवधियों के, जब मैं जेल में रहा, १९१६ से १९३१ तक बराबर सारे भारत का दौरा करता रहा हूँ, इसलिए मैं यह दावा कर सकता हूँ कि वहाँ के गाँवों की दशा ब्रिटिश अधिकारियों की अपेक्षा मुझे ज्यादा जानकारी है।

अपने देश के लिए संविधान तैयार करने को मैं प्रस्तुत हूँ और जब मुझे निरुपाय करने के लिए मेरे सामने अल्पसंख्यकों की समस्या रखी जाती है तो मेरा धीरज समाप्त हो जाता है। अल्पसंख्यक-समस्या का यह हौआ आखिर क्या है? कांग्रेस अनेक राजनीतिक संगठनों में से एक संगठन-मात्र नहीं है। यही वह संगठन है, जो आजादी के लिए मुख्य रूप से लड़ा है और जिसने कष्ट सहे हैं। सैकड़ों गाँवों पर जुल्म ढाए गए हैं, उनकी फसलें नष्ट कर दी गइ५ और हजारों रुपए की जमीन जब्त करके बेच दी गई। कांग्रेस के कहने पर उन लोगों ने यह सब खुशी-खुशी सहा। क्या कोई छोटी-मोटी चीज के लिए ऐसा कष्ट सहन कर सकता है? मैं ब्रिटेनवालों के चरित्र में जो कुछ उत्तम है, उसी को जाग्रत् कर उन्हें संपूर्ण सत्य बताने को यहाँ आया हूँ। अगर इस अध्याय के अंत में मुझसे यही कहा जाता है कि जब तक मुसलमानों और दूसरे तमाम लोगों से सारे मतभेदों को आप मिटा नहीं लेते, तब तक कुछ नहीं किया जा सकता, तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा; लेकिन उसका मतलब

यही होगा कि ब्रिटेन ने एक और भारी भूल की है।

आपको यह याद रखना चाहिए कि गोलमेज परिषद् के सभी सदस्य प्रधान मंत्री द्वारा मनोनीत हैं, उन्हें कॉमन्स सभा के उन निर्वाचित सदस्यों ने नहीं चुना है, जिन्हें कोई हटा नहीं सकता। वे प्रधानमंत्री की इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं और किसी का नहीं। संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाला एकमात्र संगठन कांग्रेस ही है, जो लोग लड़े और जेल गए, वे सबके सब हिंदू ही नहीं थे। उनमें कई हजार मुसलमान और सिख तथा ईसाई भी थे। अगर आप चाहें तो कांग्रेस को बहुसंख्यक समुदाय कह सकते हैं, लेकिन जब कांग्रेस के पास अल्पसंख्यक-समस्या के समाधान की अपनी योजना है। जो योजना प्रस्तुत की गई है, वह एकता के हक में एक ठोस योजना है। बहुसंख्यक कांग्रेस जो कुछ करती है, हिंदू संस्था के रूप में नहीं करती। उसमें हिंदुओं को बहुसंख्यकों की स्थिति में पहुँचाया जा सकता है। संविधान का निर्माण हिंदुओं के लिए नहीं, हिंदुस्तानियों के लिए करना है। यह कैसे हो सकता है कि कांग्रेस भारत को हिंदू समाज के अनेक हिस्सों, भारतीय ईसाई समाज के अनेक विभागों, आंग्ल-भारतीयों तथा अन्य समुदायों के बीच टुकड़े-टुकड़े करके बाँट दे? इन परस्पर विभक्त समूहों से कोई राष्ट्र कैसे बन सकता है?

और अल्पसंख्यक समुदाय यही चाहते हैं। इन्हें पूर्ण नागरिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का पूरा हक है और वे खुले मैदान में निर्वाचकों से अपनी बात कह सकते हैं, लेकिन वे विशिष्ट निर्वाचक-मंडल क्यों चाहते हैं? आंग्ल-भारतीय समाज आम निर्वाचक-समुदाय का विश्वास करने से भय क्यों खाता है? इसलिए नहीं कि वे आंग्ल-भारतीय हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने भारत की कोई सेवा नहीं की है। पारसी लोग कोई विशेष सुरक्षा नहीं चाहते। इसका कारण सिर्फ यह है कि उन्होंने भारत की सेवा की है और उन्हें पूरा विश्वास है कि सेवा के बल पर प्राप्त अधिकार के कारण उन्हें योग्य प्रतिनिधित्व मिलेगा ही। दादा भाई नौरोजी की पौत्रियों का लालन-पालन यद्यपि बड़े ऐशो-आराम के बीच हुआ, लेकिन उन्होंने भारत की इतनी सेवा की है कि उनको जनता का प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने से कोई भी इनकार नहीं करेगा। अगर दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य भी खुले दरवाजे से प्रवेश करें और भारत की सेवा करें तो उन्हें भी चुना जाएगा। यह बड़ी लज्जा का विषय है कि अंग्रेज लोग इतने गरीब देश में विशेष सुविधाओं का आग्रह करें और ऐसे गरीब लोगों के विधानमंडल में अपने लिए विशेष स्थानों की माँग करें। विधानमंडल में प्रवेश करने के लिए उन्हें हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों तथा अन्य सभी लोगों के मतों पर क्यों नहीं भरोसा रखना चाहिए? और मुट्ठी भर अंग्रेजों के मतों के बल पर उन्हें विधानमंडल में प्रवेश करने की जरूरत भी क्या है? अंग्रेजों के हाथों में तो अब भी बहुत सत्ता है। भारतीयों को उनके संगठन की अद्वितीय कौशल एवं क्षमता की और शायद उनकी पूँजी की अब भी जरूरत है। फिर उन्हें अपनी-अपनी सुरक्षा की चिंता क्यों होती है? वे भारत में सर्वथा सुरक्षित अवस्था में रह सकते हैं। अगर वे सुरक्षा का पासपोर्ट माँगें तो उसे मैं समझ सकता हूँ, लेकिन अगर वे विधानमंडल में प्रवेश करने की विशेष सुविधा चाहें तो इस अपराध-कर्म में मैं नहीं शरीक होऊँगा। उनकी संख्या बीस लाख भी नहीं है। यह ऐसी माँग है, जिसे न्यायाधीशों की कोई भी मंडली अस्वीकार कर देगी। जो भी हो, पूरे राष्ट्र को बाँटकर टुकड़े-टुकड़े कर देने की किसी योजना में मेरी सहमति नहीं होगी। (२० अक्तूबर, १९३१ ई.)

सा अ

सत्य की जीत

राजकोट के हाई स्कूल में शिक्षक व विद्यार्थी जोर-शोर से तैयारियों में जुटे हुए थे। वहाँ पर कुछ ही समय में शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर स्कूल का मुआयना करने के लिए आनेवाले थे। शिक्षकों ने सभी विद्यार्थियों को समझा दिया था कि किस प्रकार जवाब देना है। किस प्रकार प्रश्न हल करना है आदि। कुछ ही देर में तत्कालीन शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर जाइल्स स्कूल का मुआयना करने के लिए आ पहुँचे। नौवीं कक्षा के विद्यार्थियों को उन्होंने अंग्रेजी में श्रुतलेख बोला। उन्होंने बच्चों को अंग्रेजी में पाँच शब्द लिखवाए। उनमें एक शब्द 'केटल' भी था। कक्षा का एक विद्यार्थी मोहनदास इस शब्द की सही स्पेलिंग नहीं लिख सका। स्कूल के शिक्षक घूम-घूमकर सभी विद्यार्थियों की कॉपी देख रहे थे कि किसी ने गलती तो नहीं की है। सहसा उनकी नजर मोहनदास की कॉपी पर पड़ी तो उन्हें 'केटल' शब्द की स्पेलिंग गलत लिखी हुई मिली। उन्होंने इशारे से मोहनदास को अन्य विद्यार्थी की नकल कर स्पेलिंग ठीक करने के लिए कहा, किंतु मोहनदास ने ऐसा नहीं किया। मोहनदास को छोड़कर अन्य सभी विद्यार्थियों के सभी स्पेलिंग सही पाए गए। अकेले मोहनदास ही ऐसे थे, जिन्हें इस परीक्षा में शत-प्रतिशत अंक हासिल नहीं हुए थे। इंस्पेक्टर के जाने के बाद शिक्षक उससे गुस्से से बोले, 'तू तो बड़ा बुद्धू है, मोहनदास। मेरे इशारा करने पर भी तूने अपने साथवाले विद्यार्थी की कॉपी से नकल करके स्पेलिंग ठीक नहीं की! लगता है, तुममें अक्ल ही नहीं है।' शिक्षक की बात सुनकर मोहनदास ने दृढ़ता से कहा, 'सर, ऐसा करना धोखा देने और चोरी करने जैसा है। ऐसे में नकल करना भी तो गलत ही हुआ।' शिक्षक बालक मोहनदास की बात सुनकर हैरान रह गए। उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने मोहनदास को गले लगाते हुए कहा, 'मोहनदास, तुम आगे चलकर बहुत कामयाब बनोगे।' और वाकई मोहनदास के शिक्षक की बात शत-प्रतिशत सही साबित हुई। वही बालक आगे चलकर 'राष्ट्रपिता महात्मा' के रूप में पहचाने गए।

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गांधी की पत्रकारिता का भारतीय मॉडल

• कमल किशोर गोयनका

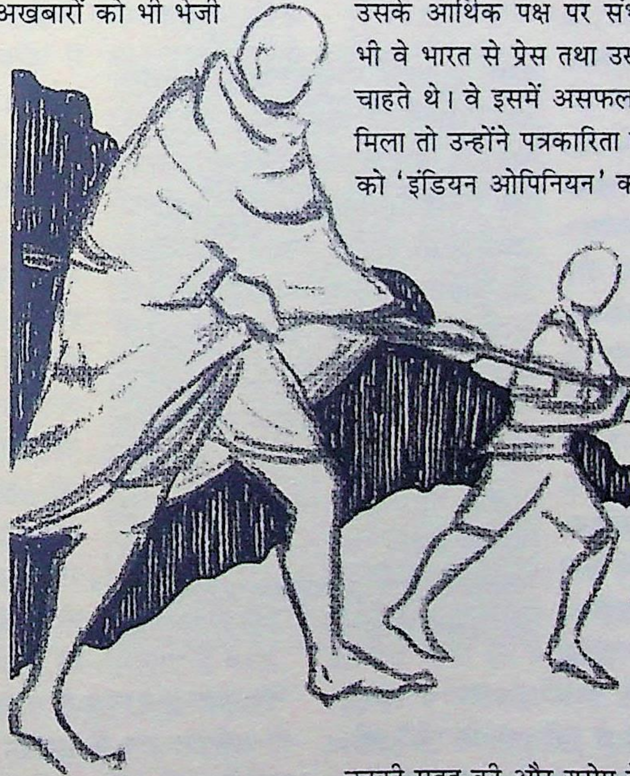


जाने-माने साहित्यकार। इकतालीस वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अब तक प्रेमचंद पर बाइस तथा अन्य साहित्यकारों पर बीस पुस्तकें प्रकाशित। एक नवीनतम विषय 'गांधी की पत्रकारिता' पर एक पुस्तक। प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में ख्यात। विभिन्न संस्थाओं, एकेडमियों द्वारा सात पुरस्कार तथा मॉरीशस से एक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष।

महात्मा गांधी बौद्धिक संसार में अध्ययन के शाश्वत विषय हैं। गांधी का जीवन तो हम भूलते जा रहे हैं, किंतु उनके विचारों की व्यापक दुनिया हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है। नाथूराम गोडसे ने गांधी को तीन गोलियों से मारा था और हम विगत ७० वर्षों से उन्हें असंख्य गोलियों से मारते आ रहे हैं, परंतु गांधी हैं कि मरते ही नहीं। गांधी ने मशीनी सभ्यता के दुष्परिणामों के विरुद्ध विश्व को चेताया था तथा ग्रामीण एवं प्राकृतिक जीवन के निरंतर नाश से उत्पन्न होनेवाले संकटों से सावधान किया था, परंतु विज्ञान एवं तकनीक जिस प्रकार जीव-सृष्टि के अस्तित्व के लिए संकट पैदा कर रही है, तब हमें गांधी की याद आती है और हम उनके विचारों में समाधान ढूँढ़ने लगते हैं, लेकिन यह भी सत्य है कि गांधी के विचारों से कोई जागृति, कोई चिंतन तथा सभ्यता की दिशा मोड़ने की कोई कल्पना भी दिखाई नहीं देती और गांधी केवल बौद्धिक बहस के केंद्र बनकर रह जाते हैं। गांधी का वैचारिक वाङ्मय बहुत व्यापक है और यह कहा जा सकता है कि जीवन का कोई ऐसा विषय नहीं है, जिस पर गांधी ने विचार न किया हो और संभवतः यह भी एक कारण है कि विश्व की भाषाओं में जितने लेख तथा पुस्तकें गांधी पर लिखी गई हैं, उतनी किसी विश्व नायक पर न लिखी गई होंगी। इस सत्य के बावजूद यह भी सच है कि गांधी की पत्रकारिता और उनके पत्रकार के रूप में उनके अनुभवों को उनके देहावसान के बाद ही भुला दिया गया, जबकि लगभग चार दशकों तक उन्होंने पत्रकारिता की, अंग्रेजी-हिंदी-गुजराती-तमिल-उर्दू आदि भाषाओं की पत्रकारिता की और अंग्रेजी भाषा के साथ भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को भी समान महत्त्व दिया और इस रूप में वे पहले राष्ट्रीय पत्रकार थे। गांधी स्वयं को शौकिया पत्रकार कहते थे, लेकिन वे वास्तविक अर्थ में राष्ट्रीय पत्रकार थे और अंग्रेजी पत्रकारिता से वे वैश्विक पत्रकार बन गए थे। अतः भारत में गांधी जैसा कोई शौकिया पत्रकार नहीं हुआ, जिसने अपने राष्ट्र की धड़कनों और संघर्षों एवं सरोकारों को अपने समाचार-पत्रों का मूलाधार बनाकर राष्ट्रीय जागरण किया हो तथा अपनी राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं एवं चिंताओं के बावजूद विश्व की पत्रकारिता में अपने विचारों, कार्यों तथा आंदोलनों के पदचापों को अंकित किया हो। गांधी अपनी कर्मशीलता एवं विचारों के कारण राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, अर्थ, आदि क्षेत्रों में महान् बने और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान एवं महत्ता अस्वीकार नहीं की जा सकती।

गांधी की पत्रकारिता का इतिहास ४ जून, १९०३ से आरंभ होता है, जब 'इंडियन ओपिनियन' का पहला अंक प्रकाशित हुआ और इस प्रवेशांक में गांधी का अग्रलेख 'अपनी बात' चार भाषाओं में छपा, लेकिन गांधी के इस दायित्व को ग्रहण करने तक की पृष्ठभूमि को समझना और जानना आवश्यक है। गांधी ने इंग्लैंड बैरिस्टरी करने जाने तक कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा था, जबकि इंग्लैंड जाने के विदाई समारोह में उनके वक्तव्य का अंश 'काठियावाड़ टाइम्स' के १२ जुलाई, १८८८ के अंत में छपा था। गांधी इंग्लैंड पहुँचे तो दलपतराम शुक्ल के सुझाव पर उन्होंने लगभग एक घंटे तक 'डेली टेलीग्राफ', 'डेली न्यूज' आदि अंग्रेजी समाचार-पत्र पढ़ना शुरू किया, 'वेजिटेरियन' समाचार-पत्र में लेख छपवाए और उसमें ही उनका विदाई भाषण तथा उनसे लिया इंटरव्यू प्रकाशित हुआ। इस प्रकार गांधी २२ वर्ष की आयु तक अंग्रेजी समाचार-पत्रों की दुनिया के अंग बन गए थे और वे जब वकालत करने एवं सेठ अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका पहुँचे तो उनकी पगड़ी एवं 'अंवेलकम विजिटर' की समाचार-पत्रों में खूब चर्चा हुई तो वे तीन-चार दिन में ही अनायास प्रसिद्ध हो गए और जब उन्होंने अदालत से वकालत करने का प्रमाण-पत्र लिया तो 'वकील सभा' के विरोध करने पर समाचार-पत्रों ने गांधी का साथ दिया और गांधी के समर्थन तथा वकीलों की

निंदा के समाचार प्रकाशित किए और इस प्रकार फिर समाचार-पत्रों ने गांधी की प्रसिद्धि बढ़ाने तथा उनके समर्थन में वातावरण बनाने में योगदान किया। इसके बाद गांधी को दक्षिण अफ्रीका में लगभग बीस वर्ष तक रहने और प्रवासी भारतीयों के लिए संघर्ष करने का अवसर भी समाचार-पत्र की एक खबर से मिला। गांधी सेठ अब्दुल्ला का मुकदमा निपटाकर अंतिम रूप से भारत लौट रहे थे और उनका विदाई समारोह था कि गांधी ने एक अखबार में 'इंडियन फ्रेंचाइज' शीर्षक खबर देखी, जिसमें हिंदुस्तानियों से मताधिकार छीनने का सुझाव छपा था। गांधी ने इसका अर्थ सेठ अब्दुल्ला को समझाया कि हिंदुस्तानियों की आजादी एवं स्वाभिमान को नष्ट करने की साजिश की जा रही है। इस पर वह भोज-समारोह संघर्ष समिति में बदल गया। गांधी ने नेटाल में रहने का निर्णय किया, बिल के विरोध में प्रार्थना-पत्र धारा-सभा को भेजा, समाचार-पत्रों में खबर छपी; यद्यपि बिल पास हो गया, लेकिन गांधी ने बिल के विरोध में उपनिवेश मंत्री लॉर्ड रिपन को अर्जी भेजी और भारत एवं इंग्लैंड के अखबारों को भी भेजी तथा भारत के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' एवं इंग्लैंड के 'टाइम्स' ने इस अर्जी का समर्थन करते हुए इसे प्रकाशित किया। इस प्रकार गांधी पत्रकारिता के लिए एक विषय बनते चले गए। इसी प्रकार के दो प्रसंगों का उल्लेख भी जरूरी है। गांधी जनवरी, १८९७ में दक्षिण अफ्रीका पहुँच तो गोरों ने उनका बड़ा विरोध किया, उन पर कई आरोप लगाए और गोरों की भीड़ उन्हें फाँसी देने के लिए नारे लगाती रही, लेकिन गांधी ने गोरों के इस आक्रमण को दोष न मानते हुए उन पर मुकदमा करना अस्वीकार कर दिया। समाचार-पत्रों ने इस बार भी गांधी का साथ दिया, उन्हें निर्दोष माना और गांधी ने भी १३ अप्रैल, १८९७ को 'नेटाल मर्क्युरी' को अपना स्पष्टीकरण भेजा तो गांधी की प्रतिष्ठा बढ़ी। गांधी १८९६ में जुलाई-दिसंबर तक भारत में रहे थे और उन्होंने कोलकाता, प्रयाग, राजकोट, पूना आदि स्थानों पर समाचार-पत्रों के संपादकों से मिले थे। 'पायोनियर' ने उनके पत्रों-लेखों को प्रकाशित करने का आश्वासन दिया, 'स्टेट्समैन' तथा 'इंग्लिशमैन' ने उनकी लंबी मुलाकातें छापीं, इस प्रकार वे अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादकों से अपने संबंध बनाने में सफल हुए। वे कई समाचार-पत्रों के नियमित पाठक थे, संपादकों को प्रकाशनार्थ पत्र लिखते थे और संपादकों से निजी संबंध बनाए रखते थे। गांधी ने समाचार-पत्रों के समुचित उपयोग की कला सीख ली थी। गांधी ने २७-२८ वर्ष की आयु तक यह समझ लिया था कि वे समाचार-पत्रों से ही अपने विचारों एवं कार्यों का विस्तार कर सकते हैं, प्रवासी भारतीयों में स्वाधीनता एवं स्वाभिमान की चेतना उत्पन्न कर सकते हैं तथा साम्राज्यवादी शासकों तक अपनी बात पहुँचा सकते हैं। संभवतः गांधी भारतीयों में अकेले थे, जो अपने समकालीनों में समाचार-पत्र की जादुई शक्ति को सबसे अधिक पहचानते थे और उसका अपने उद्देश्यों के लिए उपयोग करते थे।



गांधी की पत्रकारिता का श्रीगणेश दक्षिण अफ्रीका के उनके प्रवास काल में हुआ। गांधी के महत्त्वपूर्ण कार्यों तथा विचारों का आरंभ प्रायः दक्षिण अफ्रीका से ही हुआ, इसी कारण इतिहासकार मानते हैं कि गांधी को महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका ने ही बनाया। गांधी ३४-३५ वर्ष तक आते-आते अंग्रेजी पत्रकारिता की शक्ति समझ चुके थे और पत्रकारिता की रीति-नीति, विचार एवं उद्देश्यपरकता, प्रबंधन तथा मुद्रण एवं विवरण आदि जानने की प्रक्रिया में थे, लेकिन उसके आर्थिक पक्ष पर संभवतः उनकी गहरी दृष्टि नहीं थी, फिर भी वे भारत से प्रेस तथा उसके लिए एक व्यक्ति की व्यवस्था करना चाहते थे। वे इसमें असफल हुए तो उन्हें जब सन् १९०३ में अवसर मिला तो उन्होंने पत्रकारिता में अपना कदम रखा और ४ जून, १९०३ को 'इंडियन ओपिनियन' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। इस कार्य में मदनजीत ने उनका सहयोग किया और अपनी प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित किया। इस प्रवेशांक में तथा बाद के कई अंकों में गांधी ने अपने उद्देश्यों का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने लिखा कि हिंदुस्तानियों के दुःखों एवं दोष को दूर करने के साथ उन्हें शिक्षित तथा मजबूत बनाना चाहता हूँ और 'साम्राज्य की सेवा' तथा 'साम्राज्य भावना का पोषण' करके उनकी न्यायबुद्धि को जाग्रत् करना चाहता हूँ। इस नीति का यह लाभ हुआ कि अनेक अंग्रेज उनके सहायक बने, अंग्रेजी समाचार-पत्रों ने उनकी मदद की और यूरोप के अनेक बुद्धिजीवी उनके समर्थक बने।

गांधी इस लड़ाई को अपने आत्मबल से ही लड़ना चाहते थे, परंतु वे समाचार-पत्र की शक्ति को भी जान गए थे, अतः उन्होंने लिखा कि जिस लड़ाई का आधार आंतरिक बल हो तो वह अखबार के बिना चलाई जा सकती है, किंतु साथ ही मेरा अनुभव यह भी है कि 'इंडियन ओपिनियन' के होने से हमें कौम को आसानी से शिक्षा दे सकने और संसार में जहाँ-जहाँ हिंदुस्तानी रहते हैं, वहाँ-वहाँ हमारी हलचलों की खबरें भेजने में आसानी हुई, जो दूसरी रीति से संभव नहीं। लड़ाई में 'इंडियन ओपिनियन' एक बड़ा उपयोगी और सबल साधन बना। गांधी ने माना कि पत्रकारिता में आत्मबल

के मिलने से उसकी प्रभाव शक्ति में वृद्धि होती है, क्योंकि उसका मूलाधार सेवा और समाज-हित है। समाचार-पत्र निजी नहीं, समाज की संपत्ति है, अत: जनता ही उसकी मालिक है और यदि संचालकों में स्वदेशाभिमान है तो कर्मचारी निम्नतम वेतन पर भी काम करेंगे।

गांधी ने अपने जीवन में सन् १९०३ से ३० जनवरी, १९४८ तक चार समाचार-पत्र निकाले—'इंडियन ओपिनियन', 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन'। इसके अतिरिक्त 'बॉम्बे क्रॉनिकल' तथा 'सत्याग्रही' का उल्लेख भी मिलता है, परंतु एक-दो अंकों के बाद ही ये समाचार-पत्र बंद हो गए। इस प्रकार ये चार समाचार-पत्र गांधी की पत्रकारिता के मूलाधार हैं और उसकी प्रकृति एवं विचार-दर्शन को समझने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराते हैं। 'इंडियन ओपिनियन' जून, १९०३ से जुलाई, १९१४ तक गांधी के संपादकत्व में निकला और उसके बाद सन् १९५८ तक मणिलाल गांधी तथा सुशीला गांधी के नेतृत्व में निकलता रहा। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' सन् १९१९ से जनवरी, १९३२ तक और 'हरिजन' ११ फरवरी, १९३३ से ३० जनवरी, १९४८ तक गांधी के संपादकत्व में निकलता रहा, लेकिन इन समाचार-पत्रों का इतिहास अनेक बाधाओं और विपत्तियों से भरा पड़ा है। 'इंडियन ओपिनियन' से 'हरिजन' तक कई बार प्रकाशन बंद हुआ, प्रेस और कार्यालय की तलाशी हुई, पुराने रिकार्ड नष्ट किए गए और प्रेस सेंसरशिप का शिकार होना पड़ा। गांधी कई बार जेल में रहे, उनकी अनुपस्थिति में दूसरों ने संपादन का दायित्व उठाया और जुर्माना न जमा करने पर समाचार-पत्र के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इतने विकट अवरोधों तथा कठोर बाधाओं के होने पर भी गांधी का साहस, धैर्य तथा अभिव्यक्ति की व्याकुलता कभी कम नहीं हुई। सन् १९०८ में कस्तूरबा बीमार पड़ीं तो वे जेल में थे और अपनी मुक्ति के लिए जुर्माना अदा करने को तैयार न थे, जब 'नवजीवन' पर प्रतिबंध लगा तो उसकी दस हजार प्रतियाँ साइक्लोस्टाइल मशीन से मुद्रित करके बाँटी गईं। गांधी में स्वराज्य, स्वतंत्रता, स्वाभिमान, राष्ट्रोत्थान तथा लोक जागरण की इतनी प्रबल प्रतिबद्धता थी कि जेल की सलाखें, अपनी एवं पत्नी की बीमारी तथा सरकारी दंडात्मक कारवाइयाँ उनकी पत्रकारिता की मशाल को बुझा न सकीं। आप सहमत होंगे कि पत्रकार के रूप में गांधी जैसी सरकारी सेंसरशिप से टक्कर तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सबकुछ समर्पित करने की क्षमता आपातकाल में केवल रामनाथ गोयनका में दिखाई देती है। मैं उस समय जेल में था और मैंने देखा कि बड़े-बड़े पत्रकार राग दरबारी का हिस्सा बन गए थे। क्या यह स्वाधीन भारत में इमरजेंसी युग की उपलब्धि थी कि गांधी जैसी आत्मबली एवं आत्म-बलिदानी वाली पत्रकारिता तानाशाही की गुलाम बनकर रह गई थी और दमन एवं दासता के विरुद्ध लेखनी निस्तेज हो गई थी? यह भारतीय पत्रकारिता का अंधकार युग था, जबकि देश को गांधी की पत्रकारिता की लोकतंत्र की रक्षा के लिए आवश्यकता थी। यह और भी खेदजनक है कि भारतीय पत्रकारों ने संकट की इस घड़ी में गांधी की पत्रकारिता को याद तक नहीं किया।

गांधी ने अपनी पत्रकारिता के लगभग चार दशकों में पत्रकारिता का एक भारतीय मॉडल बना लिया था, बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अपनी पत्रकारिता के आधारभूत तत्त्वों का निर्धारण कर लिया था और जब उन्होंने भारत में अपनी पत्रकारिता शुरू की तो उन्होंने उन्हीं तत्त्वों तथा विशेषताओं का उपयोग किया; यदाकदा उनकी पुष्टि के साथ उनका विस्तार किया और दृढ़ता से उनका पालन किया। इनमें सर्वप्रमुख पत्रकारिता को देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता का आधार देना था। उनके संपूर्ण जीवन के कार्यों तथा विचारों में भारत माता का पुत्र होने तथा उसके हित के लिए अपना सबकुछ अर्पित करने का संकल्प है। उनके चार समाचार-पत्रों में 'इंडियन', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' तथा 'हरिजन' सभी के केंद्र में भारत की गुलाम जनता तथा उसके उद्धार की प्रबल कामना है। गांधी ने लिखा है कि पत्रकारिता उनका लक्ष्य नहीं है, बल्कि वह भारतीय स्वराज्य संघर्ष में उसके पूरक के रूप में ही उसका उपयोग है। इंग्लैंड में बैरिस्टरी करते समय अपने भारतीय संस्कारों की रक्षा की, दक्षिण अफ्रीका में अदालत के आदेश पर भी अपनी भारतीय पगड़ी नहीं उतारी, 'नेटाल इंडिया कांग्रेस' की स्थापना की, 'इंडियन ओपिनियन' में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' तथा उसके नेताओं के समाचार छापते रहे और भारतीय पत्रकारों एवं समाचार-पत्रों से संपर्क बनाया, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के स्वाभिमान एवं अधिकारों की लड़ाई लड़ी, 'हिंद स्वराज' पुस्तक में भारत को एक राष्ट्र माना, भारतीय संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ रूप में स्थापित किया और भारत आने पर तो उनकी पत्रकारिता की बुनियाद ही भारत को दासता से मुक्ति का संघर्ष था।

गांधी ने अपनी पत्रकारिता के लगभग चार दशकों में पत्रकारिता का एक भारतीय मॉडल बना लिया था, बल्कि यह कहना उपयुक्त होगा कि दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अपनी पत्रकारिता के आधारभूत तत्त्वों का निर्धारण कर लिया था और जब उन्होंने भारत में अपनी पत्रकारिता शुरू की तो उन्होंने उन्हीं तत्त्वों तथा विशेषताओं का उपयोग किया; यदाकदा उनकी पुष्टि के साथ उनका विस्तार किया और दृढ़ता से उनका पालन किया। इनमें सर्वप्रमुख पत्रकारिता को देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता का आधार देना था।

गांधी ने अपनी पत्रकारिता में हिंदी, तमिल, उर्दू, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं का महत्त्व देकर अपनी राष्ट्रीयता एवं देशाभिमान का परिचय दिया। पत्रकार के रूप में गांधी ने नए राष्ट्रीय समाचार-पत्रों का स्वागत किया, उन्हें अपने संदेश दिए, दूसरे समाचार-पत्रों की विपत्ति के समय उनका समर्थन किया और 'हिंदुस्तान टाइम्स' जैसे समाचार-पत्रों को निकम्मा मानते हुए उनकी कटु आलोचना से भी पीछे नहीं रहे। गांधी ने अंग्रेजी में पत्रकारिता की और अंग्रेजी में खूब लिखा भी, पर उन्हें इससे बहुत प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने लिखा कि उनके लिए अंग्रेजी में अखबार निकालना इसलिए जरूरी

है कि वे मुट्ठी भर अंग्रेजी भाषियों तक अपनी बात पहुँचाना चाहते हैं, लेकिन वे भारतीय जनता तक तो भारतीय भाषाओं से ही पहुँच सकते हैं। गांधी की इस भाषा-नीति ने उन्हें देश के अधिकांश भाषा-क्षेत्रों तक पहुँचा दिया और इसके मूल में उनकी राष्ट्रीयता ही थी, जो उन्हें देश के लोकजीवन का सर्वाधिक स्वीकृत राष्ट्रनायक बना रही थी। अपनी इसी राष्ट्रभक्ति तथा राष्ट्रीय हित के लिए वे बार-बार कहते हैं कि वे अपने देश के लिए जीते हैं और उसी के लिए मरेंगे। गांधी की यही राष्ट्रनिष्ठा उनकी पत्रकारिता में फलती-फूलती दिखाई देगी। गांधी की पत्रकारिता का आधार भारत और भारतीयता है, दक्षिण अफ्रीका तथा भारत मे उनके स्वराज्य संघर्ष के आधार भी यही थे—सत्य, अहिंसा, सहयोग, स्वाधीनता, नैतिकता, शुद्धता, प्रामाणिकता, धन एवं यश से विमुखता और लोकजागरण एवं लोकशिक्षा तथा देशहित के लिए निजता का त्याग।



गांधी की पत्रकारिता उनके राजनीतिक उद्देश्यों की पूरक थी, इस कारण भी दोनों के उद्देश्यों, लक्ष्यों, कार्यप्रणालियों और उनके मूल में प्रेरक विचारों का एक रूप होना स्वाभाविक था। गांधी स्वयं को 'शौकिया संपादक' कहते थे, किंतु वे पूर्ण पत्रकार थे, स्वकर्मी और सर्वज्ञ थे। दक्षिण अफ्रीका में तो उन्होंने प्रेस की मशीन तक चलाई, पाठकों का हिसाब-किताब रखा, कर्मचारियों को काम बाँटा और वितरण तक पर ध्यान रखा। गांधी ने लिखा कि वे हर सप्ताह समाचार-पत्र में अपनी आत्मा उड़ेलते हैं। वे आजीविका कमाना अपराध तथा सेवाभाव को सर्वोच्च कर्तव्य मानते थे। उनके विचारानुसार पत्रकार को देशसेवक होना चाहिए, कलम पर अंकुश होना चाहिए, सरकारी सेंसरशिप का विरोधी होना चाहिए तथा जुर्माना आदि आर्थिक दंड की अदायगी न करके जेल जाने तथा जान तक देने को तैयार रहना चाहिए। गांधी कहते हैं कि समाचार-पत्र एक जबरदस्त ताकत है और संपादक की निरंकुशता नाशवान है; बाहरी निरंकुशता और भी अधिक विषैली है, अतः आत्मानुशासन तथा अंदर का अंकुश ही लाभदायक है। गांधी प्रेस की स्वतंत्रता के समर्थक थे और स्वराज्य के लिए भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की स्वतंत्रता चाहते थे। गांधी ने तिलक की उक्ति को उद्धृत किया है कि स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूँगा।

गांधी कई बार सेंसरशिप से दंडित हुए, जेल गए, प्रेस बंद हुई, परंतु वे पत्रकारों से कहते रहे कि सरकार सबकुछ कर सकती है, लेकिन आपकी कलम नहीं छीन सकती और न वाणी, और यदि वह छीन भी ले तो सरकार राष्ट्र का संकल्प नहीं दबा सकती। गांधी का यह संकल्प हमें तब दिखाई देता है जब वे सेंसरशिप की अवज्ञा करके 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' को हस्तलिखित रूप में निकलवाते हैं और 'इंडिपेंडेंट', 'मदरलैंड' आदि समाचार-पत्रों का आपातकाल में हस्तलिखित समाचार-पत्र निकालने का समर्थन करते हैं। लिखते हैं कि हस्तलिखित समाचार-पत्र एक असाधारण समय के लिए असाधारण वीरोचित उपाय है। गांधी तो सरकारी तथा संपादकीय दोनों की निरंकुशता के विरोधी हैं, लेकिन आजादी के लिए संपादक-पत्रकार द्वारा जान देने को गौरवमय सौभाग्य मानते हैं। गांधी पत्रकारिता को 'चौथा स्तंभ' मानते हैं और 'पत्रकार संघ' द्वारा पत्रकारों के लिए एक आचार-संहिता बनाने पर बल देते हैं। वे कहते हैं कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता एक बहुमूल्य अधिकार है, लेकिन रोकथाम की कोई आंतरिक व्यवस्था होनी चाहिए। आज देश में हर भाषा के पत्रकार-संघ हैं, लेकिन कोई आचार-संहिता ऐसी नहीं है, जो शत-प्रतिशत व्यवहार में आती हो।

गांधी समाचार-पत्र के संवाददाता और संवाद समितियों के दायित्व पर तथा उनके सत्यासत्य पर गंभीरता से विचार करते हैं। गांधी इंग्लैंड में युद्ध-संवाददाता बन चुके थे और दक्षिण अफ्रीका में 'रायटर' के एक झूठे समाचार के कारण गोरों की भीड़ द्वारा पीटे गए तथा कठिनाई से अपनी जान बचा सके। गांधी ने लिखा है कि पत्रकारिता में सबकुछ अच्छा नहीं है और उसकी नैतिकता एवं प्रतिबद्धता में असत्य, पक्षपात, दायित्वहीनता तथा अश्लीलता का विषैला चेहरा छिपा है, जो इस पवित्र कार्य को कलंकित करता है। गांधी इसी कारण झूठे समाचार, अफवाहों तथा गोपनीय एवं निजी पत्र-व्यवहार, भेंट, समझौता आदि का प्रकाशन घोर अनैतिक मानते हैं। वे खोजी पत्रकार के विरुद्ध हैं और जब किसी अखबार ने सुभाषचंद्र बोस तथा जिन्ना के साथ उनके निजी पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कर दिया तो उनके लिए यह असहनीयता तथा अनैतिकता का प्रसंग था। गांधी इस निरंकुश एवं स्वच्छंद पत्रकारिता के विरोधी थे। गांधी इसे अयोग्य आचरण का अपराध कहते हैं और पत्रकारिता के लिए 'शुद्ध प्रामाणिकता का तथा सच्चे व्यवहार' की नीति को सर्वोपरि मानते हैं। इस विचार के कारण गांधी एक बार तानाशाह बनकर सभी समाचार-पत्रों को बंद करना चाहते हैं, क्योंकि वे देश के शत्रु हैं, अतः वे 'बाइबिल', 'कुरान' और 'गीता' नहीं हैं। अतः ऐसे समाचार-पत्रों का बहिष्कार करना चाहिए।

गांधी की पत्रकारिता में समाचार-पत्र का प्रबंधन और उसका अर्थतंत्र महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारी पत्रकारिता इस संबंध में बहुत कम जानती है। गांधी के समय में समाचार-पत्र प्रकाशन उद्योग नहीं था और

न मीडिया के शिक्षण आदि की कोई व्यवस्था थी। गांधी पत्रकारिता में आने तक संपादकों को पत्र लिखना, समाचार प्रकाशित कराना, इंटरव्यू देना और संपादकों को मित्र बनाने की कला जान चुके थे। समाचार-पत्र के प्रबंधन के दो मुख्य भाग हैं—एक समाचार-पत्र का प्रकाशन विवरण-तंत्र तथा दूसरा उसका आर्थिक तंत्र, जो उसके आर्थिक साधनों की व्यवस्था करता है। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' के पहले अंक के प्रकाशन का अनुभव अपनी आत्मकथा में 'पहली रात' शीर्षक से लिखा है। समाचार-पत्र कैसे तैयार हुआ, छपा और विवरण के लिए रेलवे स्टेशन तक पहुँचा, उसकी बड़ी रोचक कहानी आपको उसमें मिलेगी। गांधी को संपादक के रूप में कई काम करने होते थे—समाचारों का चयन, समाचारों की कतरनें खरीदना, संवाद समितियों से संपर्क, मशीन और कर्मचारियों की व्यवस्था, कंपोजिंग तथा प्रूफ रीडिंग की देखभाल, लेखकों से संपर्क, अनुवाद, आय-व्यय का लेखा-जोखा रखना, पाठकों के पत्रों के उत्तर, समाचार-पत्र का विवरण तथा पाठकों की संख्या बढ़ाना आदि लगभग सभी काम गांधी के द्वारा ही होते थे। समाचार-पत्र का संपादन, प्रकाशन, वितरण और हिसाब-किताब सब गांधी के हाथ में था और उनके प्रबंधन में उनका निर्णय अंतिम था। इस प्रबंधन में उसके आर्थिक पक्ष में कुछ ऐसी मौलिकता एवं विशिष्टता थी कि स्वाधीन भारत में उसे अपनाने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गांधी ने बैरिस्टरी करते समय हिसाब-किताब रखना और किफायत से रहना सीख लिया था और जिसे वे जीवन पर्यंत करते रहे।

गांधी को 'इंडियन ओपिनियन' के कार्यकाल में आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई और उन्हें अपनी जेब से हजारों पौंड लगाने पड़े। यदि उन्हें टाटा से पच्चीस हजार रुपयों की मदद नहीं मिलती तो 'इंडियन ओपिनियन' बंद हो गया होगा। उन्हें दक्षिण अफ्रीका में पत्रकारिता के लिए कुल एक लाख बीस हजार रुपयों की मदद मिली थी। इस अनुभव से गांधी ने आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने की नीति बनाई, घाटे में होने पर समाचार-पत्र को बंद करने की सोची, ग्राहकों को मालिक बनाया और उन्हें नए-नए ग्राहक बनाने की जिम्मेदारी सौंपी, लेकिन अपनी नैतिकता, शुद्धता एवं समाज-हित के लिए विज्ञापन का बहिष्कार करते रहे। गांधी का मत था कि विज्ञापन पश्चिमी पत्रकारिता की बुराई है, जो मूल उद्देश्यों से भटकाती है और पाठकों को भ्रम में रखती है। विज्ञापन अभिशाप है, उससे मुक्ति आवश्यक है, अन्यथा उन्हें नैतिक, विश्वसनीय और समाजोपयोगी बनाना होगा। गांधी की आर्थिक नीति में समाचार-पत्र से लाभ होने पर उसे सामाजिक कार्यों में लगाने का संकल्प था।

गांधी को 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' से पचास हजार का लाभ हुआ तो उसे गरीबों के उत्थान में लगाया और इसकी सूचना समाचार-पत्रों में प्रकाशित की। गांधी की अर्थनीति में व्यक्ति के आर्थिक हितों पर पूर्णतः अंकुश था; वे चाहते थे कि संपादक और मालिक पत्रकारिता को आजीविका का साधन न बनाएँ और कर्मचारी अवैतनिक या कम वेतन पर काम करें, लेकिन गांधी के अलावा किसी अन्य के द्वारा ऐसा करना असंभव ही था। गांधी ने भारत आकर अपनी आजीविका की कभी चिंता नहीं की। समाज ने उन्हें इतना धन दिया कि उन्हें राष्ट्रीय कार्यों में कभी धन का अभाव नहीं रहा और इसके साथ घनश्यामदास बिड़ला तथा जमना प्रसाद बजाज जैसे मारवाड़ी पूँजीपतियों का आर्थिक सहयोग भी उन्हें मिला हुआ था। गांधी का यह ऐसा आदर्श था, जो केवल गांधी अथवा गांधी का कोई प्रतिरूप व्यक्ति ही कर सकता था।

गांधी की पत्रकारिता के इस विवेचन से यह कहा जा सकता है कि वे 'फ्रीलांस जर्नलिस्ट' नहीं थे, जैसा कि वे स्वयं को कहते थे, बल्कि वे राष्ट्रीय पत्रकार थे और थे सर्वज्ञ एवं सर्वकर्मी। गांधी संपादक थे, प्रबंधक थे, नीति नियामक थे, अर्थतंत्र एवं प्रकाशन के नियंत्रक थे और उनका कोई बॉस या अधिकारी नहीं था, लेकिन यह सब ब्रिटिश दासता से मुक्ति एवं स्वराज्य संघर्ष के लिए था और भारत का कल्याण तथा भारतीयता की रक्षा मुख्य लक्ष्य था। गांधी समझ गए थे कि समाचार-पत्रों में लोक-जागरण एवं लोक-चेतना में परिवर्तन तथा राष्ट्रीय अस्मिता को जाग्रत् करने की अद्‌भुत शक्ति है और इसी कारण वे अपने कार्यों, विचारों, सिद्धांतों तथा प्रतिमानों को चार दशकों तक अपने चार समाचार-पत्रों के द्वारा देश-विदेश में प्रचारित-प्रसारित करते रहे और इसके लिए उन्होंने अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं का भरपूर उपयोग किया। गांधी जानते थे कि वे भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्र निकालकर ही देश के सभी क्षेत्रों तक पहुँच सकते हैं। उनकी चिंताएँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक थीं और इसके लिए संपूर्ण भारत को एक साथ जाग्रत् करना आवश्यक था। गांधी ने इस प्रकार अपना एक पत्रकारिता दर्शन निर्मित किया, उसे अभिनव एवं विशिष्ट रूप में पत्रकारिता का भारतीय मॉडल बनाया, जिसमें राष्ट्र व समाज के हित में संपूर्णतः निजी लाभ एवं स्वामित्व का परित्याग है और सत्यता, नैतिकता एवं प्रमाणिकता के साथ लोकसेवा का संकल्प है।

गांधी राजनीति की तरह पत्रकारिता में भी विशिष्ट एवं अकेले हैं और इसमें भी वे सर्वोत्तम परंपराओं की रचना करते हैं। गांधी की पत्रकारिता-दर्शन भारतीय पत्रकारिता का आदर्श दर्शन कहा जा सकता है, जिसे आज की पत्रकारिता छोड़ चुकी है, लेकिन उनकी यह चिंता हमें सावधान करती है कि समाचार-पत्र दुरुस्त नहीं होंगे और अपने धर्म को नहीं पहचानेंगे तो आजादी किस काम की होगी? आज पत्रकारिता की जो दुर्दशा है, उसमें गांधी की इस चिंता-चेतावनी की सार्थकता अवश्य है कि नई नस्ल के पत्रकार और मालिक पत्रकारिता की पतनशीलता पर सोचें तथा गांधी से कुछ सीखें। गांधी का यह पत्रकारिता मॉडल उन्हें भारतीय प्रतिमानों की आत्मा से परिचित कराता रहेगा और उसकी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की जा सकेगी। (सा/अ)

ए-९८, अशोक विहार,
फेज प्रथम, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ९८११०५२४६९

मोहन से महात्मा

• विजयदत्त श्रीधर



ख्यातिलब्ध पत्रकार-संपादक। 'भारतीय पत्रकारिता कोश', 'पहला संपादकीय', 'मध्य प्रदेश में पत्रकारिता का इतिहास', 'मध्य प्रदेश में पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास', 'शब्दसत्ता', 'चौथा पड़ाव' तथा 'शह और मात' पुस्तकें चर्चित। इनके अलावा 'स्मृति बिंब', 'एक भारतीय आत्मा', 'समय से साक्षात्कार' तथा 'तेवर' संपादित पुस्तकें। 'पद्मश्री' अलंकरण से सम्मानित।

२ अक्तूबर, १८६९ को पोरबंदर में जन्म। राजकोट और भावनगर में शिक्षा। ४ सितंबर, १८८८ को कानून की पढ़ाई के लिए विलायत रवाना। १० जून, १८९१ को बैरिस्टर हुए। मुंबई वापसी और राजकोट तथा मुंबई में वकालत। सन् १८९३ में मुकदमे के लिए दक्षिण अफ्रीका गए, पंच-फैसला कराया। नेटाल सुप्रीम कोर्ट के वकील बने।

सार्वजनिक जीवन में सक्रियता का पहला संकेत सन् १८८९ में मिला, जब इंग्लैंड में निरामिष-आहारियों की सभा में उन्होंने पहला भाषण दिया। सन् १८९५ में नेटाल भारतीय कांग्रेस का संगठन किया। अगले साल छह माह के लिए भारत आए। इस अवधि में बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले से भेंट कर विचार-विमर्श किया। सन् १८९७ में डरबन में विरोध प्रदर्शन किया। सन् १९०१ में कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में भाग लिया। सन् १९०३ में 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की। इसी वर्ष 'इंडियन ओपीनियन' पत्र का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। सन् १९०४ में 'गीता' का अध्ययन किया। रस्किन की किताब 'अन टू द लास्ट' का 'सर्वोदय' शीर्षक से अनुवाद किया। इसी समय गांधीजी ने 'सत्याग्रह' शब्द अपनाया। सत्य का आग्रह और अहिंसा का व्यवहार उनके जीवन-दर्शन बने। यहीं से सत्याग्रह और गिरफ्तारी का सिलसिला चल पड़ा। गांधीजी के जीवन में यह समय क्रांतिकारी परिवर्तन का रहा। 'फिनिक्स आश्रम' की स्थापना हुई। महान् लेखक-विचारक लियो टालस्टाय से पत्र-संपर्क बना। सन् १९०९ में शिष्टमंडल के साथ दूसरी इंग्लैंड यात्रा से वापसी में जहाज पर 'हिंद स्वराज' की रचना की। यह किताब गांधी का बीजमंत्र है, उनकी दृष्टि और विचारों का सार-संक्षेप।

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के अहिंसक अस्त्र का सफल प्रयोग कर सन् १९१५ में भारत लौटते हैं। परंतु उनकी यश-कीर्ति पहले ही स्वदेश पहुँच चुकी होती है। सन् १९१३ में गांधीजी पर हिंदी, संभवत: सभी भारतीय भाषाओं में पहली कविता लिखी गई। 'निःशस्त्र सेनानी' शीर्षक इस रचना के कवि थे 'प्रभा' संपादक माखनलाल चतुर्वेदी और गणेशशंकर विद्यार्थी के साप्ताहिक 'प्रताप' में इसका प्रकाशन हुआ था। 'प्रताप' के विजयदशमी विशेषांक-१९१४ में माखनलालजी की ही एक और कविता 'हृदय' प्रकाशित हुई। प्रभा ने अक्तूबर-१९१३ के अंक में गांधीजी का चित्र प्रकाशित किया और 'कर्मवीर गांधी' शीर्षक संपादकीय टिप्पणी भी लिखी। तात्पर्य यह कि बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी भारत वापस लौटने तक 'कर्मवीर गांधी' के विशिष्ट नाम से जाने और पुकारे जाने लगे थे। गांधीजी ने स्वदेश-वापसी के बाद भारत और भारतवासियों को भलीभाँति जानने-पहचानने के लिए देश-भ्रमण किया था। गोपालकृष्ण गोखले के परामर्श से उन्होंने यह निर्णय लिया था। गोखले को वे अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। गोखले भारत में कांग्रेस के नरमपंथी समूह के नेता थे। गांधीजी ट्रेन के तीसरे दर्जे में सफर करते थे। लोगों से घुलने-मिलने में यह कदम कारगर सिद्ध हुआ। उन्होंने अहमदाबाद में आश्रम की स्थापना की।

कर्मवीर गांधी

सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में कर्मवीर गांधी ने भाग लिया। उनकी सत्याग्रह-कीर्ति से आश्वस्त चंपारन के किसान राजकुमार शुक्ल ने गांधीजी को निलहे अँगरेजों के हाथों भीषण प्रताड़ना झेल रहे किसानों की करुण-कथा सुनाई। शुक्ल को भरोसा था कि गांधीजी के हस्तक्षेप से किसानों के कष्ट दूर हो सकेंगे। उन्हें निलहे गोरों के आतंक और अत्याचार से मुक्ति मिल सकेगी। गांधीजी ने उनसे वादा कर लिया कि समस्या का अध्ययन करने के उपरांत ही वे अपनी राय बना सकेंगे। राजकुमार शुक्ल ने हिम्मत नहीं हारी। वे पीछे पड़े रहे। अंततः अप्रैल १९१७ के दूसरे हफ्ते में गांधी चंपारन पहुँचते हैं। कृपलानी, राजेंद्र प्रसाद, ब्रजकिशोर बाबू को साथ लेते हैं। किसानों के बयान दर्ज कराते हैं। जिला प्रशासन उन्हें क्षेत्र छोड़कर चले जाने का नोटिस थमाता है। गांधी हुक्म मानने से इनकार कर देते हैं। अदालत में भी दो टूक शब्दों में

कह देते हैं कि चंपारन आने और किसानों से बात करने में कुछ भी गैर-कानूनी नहीं है। इसके बावजूद प्रशासन को गलत लगता है तो वे सजा भुगतने के लिए तैयार हैं। भारत के फिरंगी प्रशासन को पहली बार गांधी के सत्याग्रह का सामना करना पड़ा था। वह हतप्रभ था, किंकर्तव्यविमूढ़ भी। आखिरकार गांधी को ससम्मान आरोप-मुक्त कर प्रशासन ने अपनी इज्जत बचाई। सत्याग्रह के सामने झुकी सरकार ने चंपारन में अत्याचारों का कारण बनी 'तिनकठिया प्रथा' को समाप्त कर दिया। उन्नीस लाख चंपारन वासियों ने इस तरह आजादी के पहले स्वाद का अनुभव किया। चंपारन सत्याग्रह के फलितार्थ का भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर गहरा असर पड़ा। इसे इस प्रकार से भी समझा जा सकता है—

(१) किसानों की कठिनाइयाँ और समस्याएँ राष्ट्रीय एजेंडा बनीं।

(२) भारतीयों के मन-मस्तिष्क से गिरफ्तारी और जेल जाने का भय मिटा। उन्हें खुलकर बोलना सिखाया। मैदानी संघर्ष की ताकत को पहचाना।

(३) भारत में गरीबी की भयावहता का अहसास हुआ। गांधी ने काठियाबाड़ी पगड़ी और परिधान त्यागे। एक धोती से बदन ढकना शुरू किया।

(४) एक रसोई में सबका भोजन पकने और एक कतार में बैठकर साथ-साथ भोजन करने की शुरुआत हुई। सामाजिक समरसता की दिशा में यह पहला बड़ा कदम था।

(५) जन-सामान्य में गांधी और सत्याग्रह पर भरोसा बढ़ा। 'कर्मवीर गांधी' का 'महात्मा गांधी' में रूपांतरण हुआ।

इस बीच दो और महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। एक, काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के अवसर पर गांधीजी का भाषण (१९१६) और दो इंदौर में हिंदी साहित्य सम्मेलन (१९१८) की अध्यक्षीय आसंदी से गांधीजी का हिंदी को राष्ट्रभाषा का अधिकारी घोषित करना और दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार का अनुष्ठान आरंभ करना। सन् १९१५ में काका कालेलकर और सन् १९१७ में महादेव भाई देसाई से संपर्क भविष्य के गांधी-मार्ग का दिशा-सूचक सिद्ध हुआ।

महात्मा गांधी

सन् १९१८ में अहमदाबाद में मिल मजदूरों की हड़ताल हुई। गांधीजी ने पहली बार भारत में तीन दिन का उपवास रखा। 'खेड़ा सत्याग्रह' हुआ। इसी वर्ष स्वदेशी और स्वावलंबन के प्रतीक 'चरखा' का पुनरुद्धार हुआ। सन् १९१९ में रौलट कानून आया, विरोध हुआ। गांधीजी ने ६ अप्रैल को प्रार्थना और उपवास-दिवस का आह्वान किया। बैसाखी-पर्व पर १३ अप्रैल, १९१९ को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में अँगरेज हुकूमत ने भीषण नरसंहार किया। सन् १९१९ में गांधीजी ने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का संपादन आरंभ किया। १ अगस्त, १९२० को जननायक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का देहावसान हुआ। दो अक्तूबर को 'तिलक स्वराज्य फंड' की स्थापना हुई। गांधीजी के द्वारा तैयार किया हुआ कांग्रेस का संविधान स्वीकार किया गया। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई। गांधीजी के आह्वान पर असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में १९२० का साल संधिकाल बना। तिलक-युग समाप्त हुआ और गांधी-युग आरंभ हुआ। सन् १९२१ में प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आते हैं, उनका बहिष्कार किया जाता है। अशांति भड़क उठती है और गांधीजी शांति-स्थापना के लिए पाँच दिन का उपवास करते हैं। सन् १९२२ में चौरी-चौरा कांड के कारण सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर देते हैं। फिर पाँच दिन का उपवास करते हैं। दस मार्च को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया जाता है और छह वर्ष के कारावास की सजा सुनाई जाती है। सन् १९२४ की पाँच फरवरी को उन्हें रिहा कर दिया जाता है। वे बेलगाँव कांग्रेस के अध्यक्ष चुने जाते हैं। इस वर्ष को गांधीजी के २१ दिवसीय उपवास के लिए याद किया जाता है। हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने यह कदम उठाया था। सन् १९२५ में गांधीजी ने 'चरखा संघ' की स्थापना की और १९२७ में खादी यात्रा निकाली।

गांधी-नीत स्वतंत्रता संग्राम के ये दो प्रतीक चरखा और खादी ग्राम स्वराज के उपकरण बन जाते हैं। सत्याग्रह आंदोलन और उपवास अमोघ अस्त्र सिद्ध होते हैं। सन् १९२८ में साइमन-कमीशन आता है। उसका विरोध होता है। पुलिस की लाठी से गंभीर चोट खाए लाला लाजपतराय की शहादत हो जाती है। कांग्रेस में गरम दल की विचारधारा की अगुआई करनेवाली त्रिमूर्ति में बाल-पाल-लाल (बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल और लाला लाजपत राय) प्रतिष्ठित थे। इस वर्ष किसान संघर्ष की अलख जगानेवाला 'बारदोली सत्याग्रह' वल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

महात्मा गांधी के सत्याग्रह के प्रयोगों और स्वतंत्रता संग्राम की इन दस वर्षों की परिघटनाओं का निचोड़ मानो वर्ष १९२९ की प्रतीक्षा कर रहा था। रावी के तट पर लाहौर कांग्रेस में पहली बार 'पूर्ण स्वराज्य' का शंखनाद किया गया। जवाहरलाल नेहरू इस संकल्प के प्रस्तावक और सरदार पटेल अनुमोदक बने। हर साल २६ जनवरी को पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञा दोहराई जाने लगी। १२ मार्च, १९३० को महात्मा गांधी ने नमक-कानून तोड़ने के लिए 'दांडी-यात्रा' आरंभ की। नमक-कानून के माध्यम से गांधीजी ने देश के जनमानस को झकझोरा। गुलामी के अभिशाप की पराकाष्ठा से अवगत कराया। गांधी के प्रयोगों ने स्वतंत्रता संग्राम से आम भारतीयों को जोड़ने का काम किया। राष्ट्रीय आंदोलन को जन-आंदोलन में परिणत किया। किसानों-मजदूरों को जोड़ा। ५ मई, १९३० को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। नमक-आंदोलन देशभर में हुआ। मध्य प्रांत में 'जंगल सत्याग्रह' हुआ। २५ जनवरी, १९३१ को गांधीजी को रिहा कर दिया गया। यह वर्ष कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं का साक्षी बना। ४ मार्च को गांधी-इरविन पैक्ट हुआ। तात्पर्य यह कि ब्रिटिश हुकूमत ने अपने नुमाइंदे वायसराय इरविन के समक्ष भारत और भारतीयों के प्रतिनिधि के रूप में महात्मा गांधी को मान्यता दी। दो हृदय-विदारक घटनाएँ भी हुईं। २३ मार्च, १९३१ को महान् क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह को फाँसी दी गई। क्रांतिकारियों ने अँगरेजों में दहशत पैदा कर दी थी। २५ मार्च, १९३१ को महान् संपादक और स्वातंत्र्य-योद्धा गणेशशंकर विद्यार्थी का बलिदान हो गया। विद्यार्थीजी दंगाग्रस्त

कानपुर में सांप्रदायिक सद्भावना की स्थापना के लिए काम करते हुए दंगाइयों की हिंसा के शिकार हुए। गांधीजी ने विद्यार्थीजी की शहादत को अद्वितीय-प्रेरक-अनुकरणीय निरूपित करते हुए स्पृहा व्यक्त की थी।

सन् १९३१ में दूसरी गोलमेज परिषद् भी असफल हो चुकी थी। कांग्रेस को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। सत्याग्रह फिर आरंभ हो गया। ४ जनवरी, १९३२ को गांधीजी गिरफ्तार कर लिए गए। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' पत्र बंद हो गए। सांप्रदायिक निर्णय के विरोध में उन्होंने २ सितंबर से आमरण अनशन शुरू कर दिया। अंततः २४ सितंबर को 'यरवदा-पैक्ट' हुआ और २६ सितंबर को गांधीजी ने उपवास समाप्त कर दिया। सन् १९३३ में ८ मई से २१ दिन का उपवास शुरू हुआ। 'हरिजन' पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। गिरफ्तारी और रिहाई का सिलसिला चलता रहा। इसी साल गांधीजी ने साबरमती आश्रम का विसर्जन कर वर्धा में रहने का निश्चय किया। महत्त्वपूर्ण यह भी कि ७ नवंबर से हरिजन-दौरा आरंभ किया। छुआछूत का निवारण, दलितों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने की दिशा में गांधीजी के अनुष्ठान का अत्यंत महत्त्व है। हरिजन-दौरे में ही गांधीजी की 'लोकदेवता' छवि का साक्ष्य प्रकट हुआ। १ दिसंबर, १९३३ को नर्मदा के बरमान घाट पर बापू को नाव से नदी पार कराने से पहले मल्लाह ने उनके पाँव पखारे थे। एकदम भगवान् राम-केवट प्रसंग की तरह। सन् १९३६ में सेवाग्राम आश्रम की स्थापना हुई। २६ अक्तूबर, १९३४ को ग्रामोद्योग संघ तथा ३ सितंबर, १९४१ को गो-सेवा संघ की स्थापना गांधीजी की विचार-सरणि के दो महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं।

सन् १९३९ की त्रिपुरी कांग्रेस राष्ट्रीय घटनाक्रम का नया मोड़ लेकर आई। सन् १९३८ की हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्ष चुने गए नेताजी सुभाषचंद्र बोस त्रिपुरी कांग्रेस के भी अध्यक्ष चुने गए। गांधीजी इस चुनाव से सहमत नहीं थे। अंततः नेताजी ने अध्यक्ष पद त्याग दिया। फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की और अंततः देश छोड़ दिया। 'आजाद हिंद फौज' का गठन कर अँगरेजों के खिलाफ सशस्त्र संग्राम छेड़ दिया। यह नेताजी सुभाषचंद्र बोस ही थे, जिन्होंने ६ जुलाई, १९४४ को 'आजाद हिंद रेडियो' से महात्मा गांधी के नाम प्रसारित संदेश में पहले-पहल उन्हें 'राष्ट्रपिता' संबोधित किया था।

सन् १९४० में ११ अक्तूबर से व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ हुआ। आचार्य विनोबा भावे प्रथम सत्याग्रही घोषित किए गए। विनोबा ही महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी और भाष्यकार हैं। 'हरिजन' पत्र पर रोक लग गई। ७ अगस्त, १९४१ को रवींद्रनाथ टैगोर का देहावसान हुआ। कवींद्र रवींद्र गांधीजी को 'महात्मा' और गांधीजी उन्हें 'गुरुदेव' कहते थे। दोनों महामानवों में प्रगाढ़ आत्मीयता थी, यद्यपि पूरी तरह मतैक्य नहीं हो पाता था। बापू विश्वभारती विश्वविद्यालय (शांति निकेतन) को अर्थ-संकट से उबारने में भी सहयोगी बने थे।

सन् १९४२ में क्रिप्स मिशन असफल हो गया। आठ अगस्त को कांग्रेस ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया। उधर नौ अगस्त को देशभर में कांग्रेस-कार्यकर्ताओं और नेताओं की गिरफ्तारियाँ होने लगीं। स्वतंत्रता संग्राम से जनता के जुड़ाव का यह अन्यतम प्रमाण है कि तमाम नेताओं के जेल चले जाने के बाद भी जन-आंदोलन गतिशील रहा। सन् १९४३ में गांधीजी ने आगा खाँ महल में २१ दिन का उपवास किया। २२ फरवरी को कस्तूरबा गांधी का देहावसान हो गया। अब परिस्थितियाँ अँगरेजों की पकड़ से छिटक रही थीं। छह मई १९४४ को गांधीजी को रिहा कर दिया गया। सन् १९४५ में नेताओं की रिहाई हो गई। पहली शिमला कॉन्फ्रेंस हुई। कैबिनेट मिशन आया। गांधी-जिन्ना वार्ता विफल हो चुकी थी। उधर सन् १९४६ में १६ अगस्त को सीधी काररवाई कर जिन्ना और मुस्लिम लीग ने सांप्रदायिक दंगों का खूनी खेल शुरू कर दिया। भीषण रक्तपात और लाखों परिवारों की बरबादी ने स्वतंत्रता को रक्तरंजित कर डाला।

१५ अगस्त, १९४७ को जब भारत दो टुकड़ों में बँटकर आजादी का स्वागत कर रहा था, तब महात्मा गांधी नोआखाली में बंगाल और बिहार में शांति स्थापना के लिए प्राणपण से जुटे थे। इसी दिन उन्होंने कोलकाता में ७३ घंटे का उपवास किया था। सन् १९४८ में दिल्ली में भी उन्होंने शांति स्थापना के लिए आमरण अनशन किया, जो पाँच दिन चला।

३० जनवरी, १९४८ की शाम ५:१७ बजे प्रार्थना सभा में नराधम नाथूराम गोडसे ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या कर दी। देश ही नहीं, पूरी दुनिया समूची मानवता शोक में डूब गई। अमेरिकी लेखक पर्ल बक ने कितनी सटीक टिप्पणी की, ''जिस तरह लोगों ने महात्मा ईसा को मारा था, उसी तरह लोगों ने महात्मा गांधी को मार डाला।''

फिलिप नोएल बेकर ने कहा है, ''आधुनिक इतिहास में किसी भी एक व्यक्ति ने अपने चरित्र की वैयक्तिक शक्ति, ध्येय की पावनता और अंगीकृत उद्देश्य के प्रति निस्स्वार्थ निष्ठा से लोगों के दिमाग पर इतना असर नहीं डाला होगा। मेरा विश्वास है कि दूसरे पैगंबरों की भाँति उनका महान् कार्य आगे चलकर सामने आएगा।''

उन्नीसवीं सदी महात्मा गांधी के 'जन्म' की और बीसवीं सदी 'कर्म' की रही। मानवता के विनाश के कगार पर खड़ी इक्कीसवीं सदी गांधीजी को विकल्प के रूप में देखती है। उन्हीं का दिखाया मार्ग परित्राण की आशा जगाता है। अकारण नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने गांधी जयंती २ अक्तूबर को विश्व अहिंसा दिवस घोषित किया है। यह महात्मा गांधी के विश्ववंद्य स्वरूप की वैश्विक मान्यता है।

माधवराव सप्रे स्मृति समाचार-पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
माधवराव सप्रे मार्ग, मुख्य मार्ग क्र. ३,
भोपाल-४६२००३ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५०११४६७



महात्मा गांधी और कश्मीर

• कुलदीप चंद अग्निहोत्री

संसद् द्वारा अनुच्छेद ३७० को निरस्त कर दिए जाने के कारण जम्मू-कश्मीर, विशेषकर कश्मीर संभाग को लेकर चर्चा शुरू हो गई है। इस पूरी बहस में कश्मीर को लेकर महात्मा गांधी का क्या मत था; यह जान लेना रुचिकर होगा। वैसे तो जिस समय अक्तूबर १९४९ में उस समय की संविधान सभा में जब अनुच्छेद ३७० को लेकर बहस हो रही थी, तब महात्मा गांधी यह संसार छोड़कर जा चुके थे, लेकिन अनुच्छेद ३७० का जन्म अक्तूबर १९४९ में हुआ था, यह तो ठीक है, लेकिन उसका बीजारोपण पं. जवाहरलाल नेहरू, माउंटबेटन दंपती और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला अक्तूबर १९४७ में ही कर चुके थे, इसलिए इस विषय पर महात्मा गांधी के मानस को जान लेना उचित होगा।

जम्मू कश्मीर के डोगरा शासकों के साथ महात्मा गांधी का संबंध किसी-न-किसी प्रकार से बना हुआ था। डोगरा शासक महाराजा प्रताप सिंह ने महात्मा गांधी को १९१५ में श्रीनगर आने का निमंत्रण दिया था। ध्यान रहे, महाराजा प्रताप सिंह को ब्रिटिश सरकार प्रताड़ित ही नहीं कर रहे थी, बल्कि उनको पदच्युत करने का प्रयास भी कर रही थी। महात्मा गांधी न निश्चित मत था कि रियासतों में कांग्रेस को अपना संगठन शुरू नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने अधिकांश भारत पर तो कब्जा कर ही रखा था। रियासतों में अभी भी भारतीय शासक थे। चाहे उनके अधिकारों को भी ब्रिटिश सरकार ने सीमित किया हुआ है। गांधीजी मानते थे कि भारतीयों को मिलकर अंग्रेजी शासन से लड़ना चाहिए कि रियासतों के भारतीय शासकों से, लेकिन १९१५ में अनेक कारणों से गांधीजी जम्मू-कश्मीर नहीं जा सके। १९३२ में जब शेख अब्दुल्ला ने ब्रिटिश सरकार की प्रत्यक्ष परोक्ष सहायता से स्थानीय शासकों के खिलाफ मोर्चा खोल दिया था और राज्य में हिंदू-मुसलिम विवाद पैदा करने का प्रयास शुरू कर दिया था, तो महात्मा गांधीजी एक बार फिर श्रीनगर जाना चाहते थे, क्योंकि गांधीजी किसी भी तरह हिंदू-मुसलिम खाई को बढ़ने देना नहीं चाहते थे; लेकिन अनेक कारणों से गांधीजी वहाँ उस समय भी नहीं जा सके।

१९४६ में गांधीजी ने एक बार फिर श्रीनगर जाने का कार्यक्रम बनाया, लेकिन किन्हीं कारणों से वह भी संभव नहीं हो सका। उधर जिन्ना कश्मीर की वादियों में जहर घोल रहे थे। मुसलिम नेतृत्व को लेकर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का विवाद इन्हीं दिनों शुरू हुआ था। गांधीजी को लगा कि अब उनकरे हर हालत में जम्मू-कश्मीर में जाना ही चाहिए, जैसे ही उनके श्रीनगर जाने की भनक लगी, निहित स्वार्थी तत्त्वों ने प्रचार करना शुरू कर दिया कि गांधीजी महाराजा हरिसिंह पर दबाब डालने जा रहे हैं कि वे भारत में शामिल हो जाएँ। मुसलिम लीग तो यह प्रचार कर ही रही थी, लेकिन उससे भी ज्यादा चिंता माउंटबेटन दंपती की थी। लार्ड माउंटबेटन कुछ दिन पहले ही श्रीनगर में जाकर भारत में न शामिल होने के लिए डरा-धमका आए थे, इसलिए जम्मू-कश्मीर जाने से कुछ दिन पहले २९ जुलाई, १९४७ को गांधीजी अपनी प्रार्थना सभा में इस दुष्प्रचार का उत्तर दिया। उन्होंने कहा, ''मैं महाराजा को यह सलाह देने के लिए जम्मू-कश्मीर नहीं जा रहा कि उन्हें भारत में शामिल होना चाहिए या पाकिस्तान में। राज्य में असली सत्ता तो लोगों के हाथ में होती है। शासक तो जनता का नौकर है, यदि वह अपने आपको नौकर नहीं मानता तो वह असली शासक है ही नहीं। मेरा तो अंग्रेजों के साथ झगड़ा ही इस बात को लेकर है। वे अपने आपको इस देश का शासक बताते हैं। मैंने उन्हें शासक मानने से इनकार कर दिया। शासक तो एक दिन मर जाएगा। महाराजा भी एक दिन मर जाएँगे, लेकिन लोग सदा रहेंगे। पाकिस्तान में जाना है या हिंदुस्तान में इसका निर्णय तो लोग ही करेंगे। अभी तक रियासतों पर वायसराय का डंडा चलता था, लेकिन अब अंग्रेज तो जानेवाले हैं, इसलिए असली प्रभुसत्ता

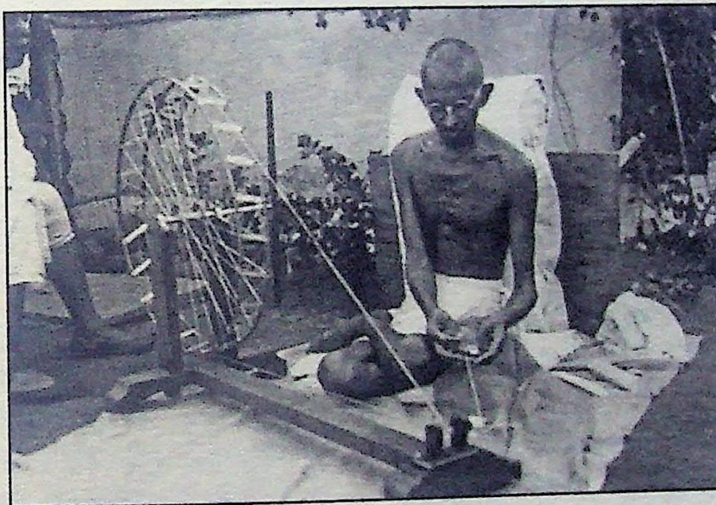


सुपरिचित लेखक। हि.प्र. केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला के कुलपति हैं और भीमराव आंबेडकर पीठ के अध्यक्ष रहे। हि.प्र. में दीनदयाल उपाध्याय महाविद्यालय की स्थापना की। लगभग दो दर्जन से अधिक देशों की यात्रा, पंद्रह से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति भारत-तिब्बत सहयोग मंच के अखिल भारतीय कार्यकारी राष्ट्रीय संरक्षक और दिल्ली में 'हिंदुस्थान समाचार' के निदेशक।

जनता के हाथ में आ गई है। कश्मीर के गरीब लोग मुझे जानते हैं।''

महात्मा गांधी ने अपनी इस सभा में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कही थी कि कश्मीर के लोग मुझे जानते हैं। गांधीजी तो भारत विभाजन के ही खिलाफ थे। वे अंत तक अखंड भारत के समर्थक रहे थे। वे हिंदू भारतीय और मुसलमान भारतीय का विभाजन भी स्वीकार नहीं करते थे। उनके लिए वे एक ही राष्ट्र के एकात्म अंग थे। मतांतरण को वे राष्ट्रांतरण का आधार नहीं मानते थे, इसलिए उन्होंने संकेत दे दिया था कि कश्मीर के लोग मुझे जानते हैं। अब देखना था कि श्रीनगर में क्या होता है? इसलिए सबकी आँखें श्रीनगर की ओर लगी थीं।

महात्मा गांधी ७७ साल की उम्र में पहली बार १९४७ में प्रथम अगस्त को जम्मू-कश्मीर गए थे। अंग्रेजों के भारत से चले जाने में कुछ दिन ही बचे थे। गांधीजी को चिंता थी कि साम्राज्यवादी और सांप्रदायिक शक्तियों जम्मू-कश्मीर में अराजकता पैदा करेंगी। गांधी माउंटबेटन को समझते-समझते इतना तो समझ ही गए होंगे कि ब्रिटिश रणनीति जम्मू कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करवाने की रहेगी। वैसे भी एक महीना पहले माउंटबेटन जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह को समझाने और डराने के लिए स्वयं श्रीनगर जा चुके थे, लेकिन महाराजा किसी भी तरह पाकिस्तान में जाने के लिए तैयार नहीं थे। राज्य के एक हिस्से, कश्मीर घाटी में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने भी अंग्रेजों की प्रत्यक्ष-परोक्ष सहायता से अपने लिए स्थान बना लिया था। वह भी इस मामले में सौदेबाजी कर रहा था। उसके प्रतिनिधि पाकिस्तानी नेताओं के बराबर संपर्क में थे, लेकिन जिन्ना उससे व्यक्तिगत कारणों से काफी खफा थे, इसलिए वहाँ उसकी दाल गलती नजर नहीं आ रही थी। ऐसे समय में महात्मा गांधी रियासत में पहुँचे थे। वे तीन दिन कश्मीर घाटी में रहे और दो दिन जम्मू में।



श्रीनगर में घाटी की आम जनता में उनका भरपूर स्वागत किया। गाँव-गाँव से हजारों की संख्या में लोग गांधीजी को सुनने और उनकी एक झलक पाने के लिए श्रीनगर पहुँचे। इनमें से अनेक तो पहली बार श्रीनगर पहुँचे थे, जहाँ गांधीजी ठहरे थे, वह स्थान लोगों के लिए जियारतखाना बन चुका था। श्रीनगर में गांधीजी ने एक विशाल सभा को भी संबोधित किया। उनकी बातचीत का विषय चाहे आध्यात्मिक था, लेकिन जनता गांधीजी की दीवानी है, यह साफ दिखाई दे रहा था। गांधीजी ने कहा कि घाटी में हिंदू और मुसलमान कश्मीरी में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही भाषा बोलते हैं और दोनों की संस्कृति भी एक समान है। अप्रत्यक्ष रूप से गांधीजी इस बात पर जोर दे रहे थे कि मतांतरण से राष्ट्रांतरण नहीं होता। कश्मीर के कुछ लोगों ने मजहब बदला है, अपनी संस्कृति और विरासत नहीं बदली। गांधीजी के लिए राजा और रॉक दोनों के मन में समान सम्मान भाव था। रियासत के प्रधानमंत्री रामचंद्र काक गांधीजी से आग्रह करने पहुँचे कि वे महाराजा हरि सिंह के निवासस्थान में भी अपने चरण डालें। गांधीजी ३ अगस्त को महाराजा हरि सिंह से मिलने के लिए गए और उनसे उनकी विस्तृत बातचीत हुई। वहाँ कर्ण सिंह भी मौजूद थे। अलबत्ता कर्ण सिंह का कहना है कि बातचीत क्या हुई, यह उन्हें याद नहीं है। गांधी के श्रीनगर प्रवास में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की नैशनल कॉन्फ्रेंस के लोग भी गांधी को मिले थे। शेख उन दिनों १८४६ की संधि रद्द करवाने वाले आंदोलन के कारण जेल में थे। शेख के प्रतिनिधि शायद गांधीजी को आश्वस्त कर रहे थे कि घाटी के लोग भारत में रहने के लिए तैयार हो जाएँगे, बशर्ते महाराजा हरि सिंह शेख अब्दुल्ला को जेल से छोड़ दें; लेकिन गांधीजी ने शायद रियासत की प्रशासनिक व्यवस्था में दखलंदाजी करना उचित नहीं समझा और न ही महाराजा से ऐसी कोई सार्वजनिक अपील की; परंतु नेहरू शेख को जेल से छुड़वाने के लिए अड़े थे। शेख भी किसी तरह बाहर आकर नेहरू की सहायता से नई बन रही परिस्थितियों में अपने लिए स्थान बना लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने माफीनामा लिखकर दे दिया और सितंबर १९४७ को जेल से बाहर आ गए।

रामचंद्र गुहा का दावा है कि गांधीजी की जब महाराजा हरि सिंह से बातचीत हुई तो इस बातचीत में कर्ण सिंह हिस्सेदार थे और गांधी ने इस बातचीत की रपट दिल्ली आकर नेहरू व पटेल को भेजी थी। गांधीजी ने लिखा कि सभी पक्ष यह मानते हैं कि ब्रिटिश पैरामाउंटेंसी के समाप्त हो जाने के कारण प्रभुसत्ता आम लोगों के पास आ गई है। वैसे तो यह कोई रहस्योद्घाटन नहीं था। अंग्रेजों के चले जाने के बाद प्रभुसत्ता देश के लोगों के पास ही स्थानांतरित हो गई थी। यह ब्रिटिश के लिए भी सत्य था और उन रियासतों के बारे में भी सत्य था, जिन पर अंग्रेजों ने परोक्ष रूप से अपना शिकंजा कसा हुआ था। रामचंद्र गुहा यह कहते हैं कि गांधीजी ने यह भी लिखा कि दोनों पक्ष जिस डोमीनियन में शामिल होना चाहते हैं, उसके लिए उनको आम लोगों की राय भी जान लेनी होगी, लेकिन कर्ण सिंह अपनी आत्मकथा में इस का कहीं जिक्र नहीं करते। गांधीजी जब महाराजा हरि सिंह से मिले थे, तब कर्ण सिंह वहीं बैठे थे। उसके बाद गांधीजी की हरि सिंह से कोई भेंट नहीं हुई। यह मानने का कोई कारण नहीं कि कर्ण सिंह झूठ बोल रहे होंगे।

मान लो, गांधीजी ने आम लोगों की राय जानने की बात कही

भी हो तो नवंबर १९४७ को इस पर उन्होंने खुद ही विराम लगा दिया। अक्तूबर १९४७ को पाकिस्तान ने जम्मू कश्मीर पर हमला कर इसे पाकिस्तान में मिलाने की कोशिश की, बहुत सा हिस्सा कब्जे में भी ले लिया। शेख अब्दुल्ला तुरंत दिल्ली पहुँच गए। घाटी में उनके लिए खतरा बढ़ गया था। भारतीय सेना २७ अक्तूबर, १९४७ को श्रीनगर पहुँच गई और उसके दो दिन बाद महात्मा गांधी ने अपनी प्रार्थना सभा में कहा कि ''कश्मीर को हिंदू और मुसलमान कश्मीरी, राजपूत और सिख ही बचा सकते हैं। कश्मीर अकेले महाराजा नहीं बचा सकते।'' इसके लगभग एक महीना बाद २८ नवंबर को महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा में शेख अब्दुल्ला भी पहुँचे। उन्हें देखकर गांधी ने कहा, ''शेख ने एक काम तो किया है। उसने संकट काल में हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों को एकसाथ जोड़े रखा है। ऐसे हालात बन गए हैं, जिसमें ये तीनों एकसाथ जीने-मरने के लिए तैयार हैं।'' जाहिर है, जब तीनों एकसाथ मिलकर पाकिस्तान का सामना करने के लिए तैयार थे तो वे पाकिस्तान में ही चले जाने का तो निर्णय नहीं कर सकते थे। इसका एक अर्थ यह भी था कि अब कश्मीर में अब हिंदू-सिख कश्मीरियों और मुसलमान कश्मीरियों के हित एक समान हैं। उनके हित अलग-अलग नहीं हो सकते।

छह अगस्त को राष्ट्रपति ने राज्यसभा की अनुशंसा को स्वीकार करते हुए छह अगस्त को अनुच्छेद ३७० के सभी हिस्सों को निरस्त करते हुए इस अनुच्छेद को नया रूप दिया। इस नए रूप में अनुच्छेद ३७० में प्रावधान है कि पूरा संघीय संविधान जम्मू-कश्मीर में भी लागू होगा। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर के निवासियों के साथ पिछले सत्तर साल से हो रहे अन्याय का अंत हो गया। राजनीति शास्त्र के विद्वान् प्रदेश के लोगों के साथ हो रहे इसी अन्याय को ही राज्य का स्पेशल दर्जा कहकर प्रचारित कर रहे थे।

गांधीजी से किसी ने पूछा था कि क्या जम्मू कश्मीर में सेना को भेजा जाना उचित था? यह प्रश्न इसलिए भी उठा था, क्योंकि गांधीजी अहिंसा के पक्षधर थे और किसी भी स्थिति में सेना द्वारा समस्याएँ सुलझाने के पक्ष में नहीं थे, लेकिन कश्मीर के मामले में गांधीजी ने ९ नवंबर, १९४७ को स्पष्ट कहा कि श्रीनगर में सेना भेजकर बिल्कुल सही किया है। इससे कश्मीरियों का आक्रमणकारियों से लड़ने का आत्मविश्वास बढ़ा है। इससे हिंदू-सिख-मुसलिम कश्मीरियों का आपसी भेद भी समाप्त हो गया है। उसके बाद बारह जनवरी, १९४८ को गांधीजी ने फिर कहा कि कश्मीर पर आक्रमण में पाकिस्तान का ही सक्रिय हाथ है। यह हैरानी की बात है कि पाकिस्तान इसे मानने को तैयार नहीं है। पाकिस्तान का तो यह फर्ज है कि वह जम्मू-कश्मीर से कबाइलियों को बाहर निकालने में सहायता करे। गांधीजी ने यह चेतावनी भी दी कि इस लड़ाई में दोनों देश तबाह हो सकते हैं। एक दूसरे के प्रति घृणा रखना सही नहीं है। यह गांधीजी भी जानते थे कि इस लड़ाई में ज्यादा नुकसान पाकिस्तान को ही होगा।

लेकिन पाकिस्तान तो ब्रिटिश साम्राज्यवादी रणनीति की शतरंज पर एक मोहरा मात्र था। न तो लड़ाई रुकी और न ही पाकिस्तान ने रियासत में से अपनी सेना हटाई, तब नेहरू इस प्रश्न को माउंटबेटन दंपती की सलाह पर संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गए। सरदार पटेल इसके खिलाफ थे, परंतु नेहरू ने पटेल की अब तक कश्मीर के मामले में स्पष्ट ही अवहेलना शुरू कर दी थी। जाहिर है, महात्मा गांधी से भी नेहरू के इस कदम के बारे में प्रश्न पूछे जाते।

४ जनवरी, १९४८ को महात्मा गांधी ने दिल्ली की अपनी प्रार्थना सभा में इस विषय को लेकर कुछ बातें कही थीं। गांधीजी ने जो कहा, उसको सार रूप में लिपिबद्ध किया जा रहा है—

१. भारत और पाकिस्तान में जम्मू-कश्मीर का विषय चाहे मामूली ही क्यों न हो, लेकिन उसको लेकर दोनों देशों में युद्ध का खतरा बढ़ गया है। इसमें कोई शक ही नहीं कि युद्ध विनाशकारी होता है।

२. युद्ध से बचने के लिए ही भारत इस विषय को संयुक्त राष्ट्र संघ में लेकर गया है, लेकिन इस विषय को संयुक्त राष्ट्र संघ में लेकर जाना ठीक है या गलत, मैं एक प्रकार से इसके पक्ष में भी हूँ और विपक्ष में भी।

३. भारत सरकार पाकिस्तान को कश्मीर में से निकल जाने के लिए कह रही है, लेकिन वह ऐसा नहीं करता तो युद्ध के सिवा उपाय ही क्या है? भारत उस युद्ध से बचने के लिए सुरक्षा परिषद् में गया है। ऐसा करके उसमें ठीक किया है या गलत, यह तो भगवान् ही जानता है।

४. यदि मेरे बस में होता तो मैं पाकिस्तान के प्रतिनिधियों को बुलाकर कहता कि चाहे आज हम दो देश हैं, लेकिन मूलतः हम एक ही हैं, इसलिए अच्छे पड़ोसियों की तरह रहना सीखो। मैं उनसे कहता, मान लो, सारे हिंदुस्तानी बुरे हैं, लेकिन तुमने तो मजहब के नाम पर देश बनाया है, इसलिए तुम तो साफ पाक रहो, क्योंकि मजहब तो पाक रहना ही सिखाता है।

५. लेकिन अब तो मामला ही सुरक्षा परिषद् में चला गया है। वहाँ से वापिस नहीं लिया जा सकता, परंतु यदि भारत और पाकिस्तान दोनों स्वयं यह मामला निपटा लें, फिर सुरक्षा परिषद् इस पर आपत्ति नहीं कर सकती।

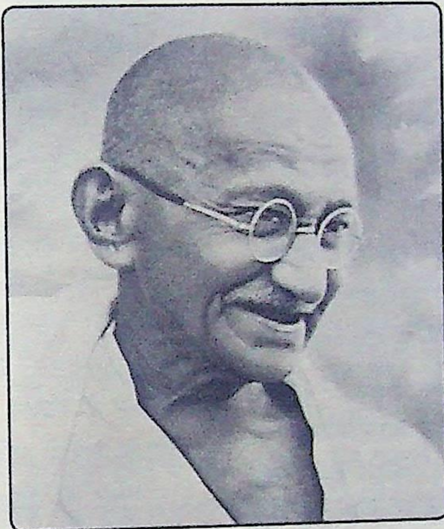
६. यदि यह निर्णय नहीं हो पाता तो युद्ध अनिवार्य है और उससे हमारा शुद्धीकरण हो जाएगा।

युद्ध से शुद्धीकरण हो जाएगा, यह एक नई बात थी। गीता में इसी को धर्मयुद्ध कहा गया है। अनेक अवसरों में युद्ध करना भी कर्तव्य में ही शामिल हो जाता है। कश्मीर को लेकर भारत-पाक के बीच भी यही स्थिति हो गई थी, लेकिन युद्ध से पहले सभी विकल्पों का प्रयोग कर लेना चाहिए। युद्ध पहला विकल्प नहीं है, बल्कि यह अंतिम विकल्प

होता है। महात्मा गांधी गीता के उपासक ही नहीं, बल्कि उसके साधक भी थे। अत: उन्हें धर्मयुद्ध से भी परहेज नहीं है।

लेकिन इसके बाद दुर्भाग्य से जम्मू-कश्मीर को लेकर अगला घटनाचक्र देखने या उसे प्रभावित करने के लिए महात्मा गांधी इस दुनिया में नहीं रहे। ३० जनवरी, १९४८ को गांधीजी की हत्या कर दी गई। अब सारा नियंत्रण पं. नेहरू के हाथ में आ गया था।

शेख अब्दुल्ला अब महात्मा गांधी की इस विवेचना को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि कश्मीरियों में सांस्कृतिक स्तर पर कोई भेद नहीं है। हिंदू, सिख, कश्मीरी और मुसलमान कश्मीरी स्वभाव य प्रकृति और संस्कृति में एक ही हैं। मजहब ऐसा मामला है, जिसमें राज्य या शासन को दखलंदाजी नहीं करनी चाहिए, यही असली पंथनिरपेक्ष है, लेकिन शेख अब्दुल्ला अब जम्मू कश्मीर को मजहब के आधार पर परिभाषित कर रहे थे। वे भारत से इस बात की कीमत वसूलना चाहते थे कि एक मुसलिम रियासत भारत में मिलने के लिए तैयार है। यह रियासत भारत में मिलने के लिए तैयार है, इसका श्रेय भी वे स्वयं लेना चाहते थे, जबकि यह अवधारणा दोनों स्तरों पर निराधार थी। वैधानिक लिहाज से इसका श्रेय महाराजा हरि सिंह को जाता था। जनता के स्तर पर इसका श्रेय उस कश्मीरी संस्कृति को जाता था, जिसे महात्मा गांधी तो पहचान गए थे, लेकिन कश्मीरी होने के बावजूद शेख मोहम्मद अब्दुल्ला और पं. जवाहरलाल नेहरू या तो पहचान नहीं पा रहे थे या फिर उसे राजनीतिक कारणों से अनदेखा कर रहे थे। कश्मीर के लोगों में जो ऐतिहासिक एकजुटता महात्मा गांधी के आगमन पर दिखाई थी, उसी मजहबी आधार पर तोड़ने में शेख अब्दुल्ला और नेहरू दोनों ही व्यस्त थे। अक्तूबर १९४९ में संविधान सभा में अनुच्छेद ३७० को जो ताना-बाना बुना जा रहा था, उसका आधार नेहरू-शेख की यही सोच थी। जम्मू-कश्मीर रियासत मुसलमान बहुल है, इसलिए उस पर भारत का संविधान लागू नहीं होगा, यह धारणा इसी दूषित मजहबी सोच से निकली थी।



जाहिर है, महात्मा गांधी जिंदा होते तो वे जम्मू कश्मीर को इस प्रकार की बनावटी मजहबी रंगत देने न देते और अनुच्छेद ३७० को संविधान में शामिल न करने देते। यदि नेहरूजी फिर भी इसे शामिल करने के लिए अड़े रहते तो हो सकता था कि महात्मा गांधी अनशन पर बैठ जाते। महात्मा गांधी की हत्या का लाभ उठाकर नेहरू और शेख में समस्त कांग्रेसजनों के विरोध के बावजूद अनुच्छेद ३७० को संविधान का अंग बना दिया। यह अलग बात है कि वे इसे स्थायी प्रावधान बनाने की हिम्मत फिर भी नहीं जुटा सके। जिस प्रकार महात्मा गांधी की हत्या के बाद नेहरूजी ने गांधी की विचारधारा से किनारा कर लिया, उसी प्रकार वे व्यावहारिक स्तर पर इस अस्थायी अनुच्छेद को स्थायी मानने का आग्रह करते रहे, लेकिन अभी तक कांग्रेस में महात्मा गांधी की मूल भारतीय विचारधारा फिर भी बची हुई थी, इसलिए नेहरू के देहांत के तुरंत बाद लोकसभा में अनुच्छेद ३७० को लेकर पेश किए गए एक विधेयक में बहस के दौरान सभी कांग्रेसियों ने एक स्वर से इसे निरस्त करने के पक्ष में आवाज बुलंद की। उस समय के गृहमंत्री गुलजारी लाल नंदा ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि समय आने पर यह अनुच्छेद निकाल दिया जाएगा, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि महात्मा गांधी ने कहा था कि अब क्योंकि नेहरू इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में ले गए हैं, इसलिए इसे वापिस तो नहीं लिया जा सकता, लेकिन यदि दोनों पक्ष आपस में द्विपक्षीय वार्त्ता का निर्णय कर लें तो सुरक्षा परिषद् रास्ते में रुकावट नहीं बन सकती, तब इस मामले में उसका हस्तक्षेप अपने आप समाप्त हो जाएगा।

इंदिरा गांधी को जैसे ही यह अवसर मिला तो उसने भारत पाकिस्तान में शिमला समझौता कर इस मामले में सुरक्षा परिषद् की भूमिका समाप्त कर दी। कांग्रेस के ही प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने अपने कार्यकाल में संसद् में सर्वसम्मति से यह संकल्प पास करवाया कि जम्मू-कश्मीर का वह हिस्सा, जो पाकिस्तान और चीन के अवैध कब्जे में है, वह भारत का हिस्सा है और भारत इसे मुक्त करवाएगा, लेकिन इसे भारत का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि नरसिम्हा राव के कार्यकाल के उपरांत भारत की सबसे पुरानी पार्टी इतालवी मूल की सोनिया गांधी के कब्जे में आ गई, जिसका भारत में प्रवेश नेहरू वंश के एक बेटे राजीव गांधी से शादी के माध्यम से हुआ था। उसका न तो कांग्रेस की परंपरा से कोई संबंध था और न ही महात्मा गांधी के वैचारिक अनुष्ठान से। यही कारण है कि जब संसद् ने अनुच्छेद ३७० को समाप्त कर जम्मू कश्मीर में भारतीय संविधान को लागू कर दिया तो उसका सबसे ज्यादा विरोध सोनिया माईनो गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने ही किया। इसके लिए कांग्रेस देश भर में मुसलमानों को भड़काने में अग्रणी हो गई, जैसे अनुच्छेद ३७० के हटने से भारत के तमाम मुसलमानों के अधिकारों का हनन हो रहा हो। मामला यहाँ तक पहुँचा कि इस प्रश्न को लेकर धीरे-धीरे कांग्रेस और पाकिस्तान का स्वर एक हो गया।

दरअसल अनुच्छेद ३७० की समाप्ति महात्मा गांधी को समस्त भारतीयों की ओर से दी गई सच्ची श्रद्धांजलि थी, लेकिन सोनिया गांधी ने उसका विरोध कर स्वर्ग में भी गांधीजी की आत्मा को कष्ट पहुँचाया है, जिसे न गांधीजी माफ करेंगे और न ही भारतीय।

कुलपति
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला-१७६२१५ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९४१८१७७७७८

गांधी की पर्यावरण दृष्टि

● मनोज कुमार

जब हम पारिस्थितिकी, पर्यावरण और प्रकृति का विचार करते हैं तो सहज ही भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक पर्यावरण के अंतरर्संबंधों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। जीव जब अन्य जीवों के साथ अभिक्रिया करता है तो जैव पर्यावरण का निर्माण होता है। जीवित प्राणी न केवल जीवों के साथ, बल्कि परिवेश से भी अभिक्रिया करता है। यह अजैविक पर्यावरण प्रकाश, ताप, जल और मृदा के साथ अभिक्रिया का परिणाम है। इस प्रकार जीव और उसका परिवेश, जो परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर होता है, मिलकर एक तंत्र या इकाई बनाता है, को 'परिवेशिकी' कहा जाएगा। ऐसा माना जाता है कि पारिस्थितिकी शब्द की व्युत्पत्ति १९३५ में टेन्सले महोदय ने दी। इनकी परिभाषा में 'The Living World and its Habitat' अर्थात् पृथ्वी पर मौजूद जीव-जंतु, पौधे और अजैविक तत्त्वों को समाहित कर उनके बीच परस्पर अभिक्रिया कर उन तत्त्वों का उत्पादन करता है, जिनका विनिमय उस बास के जैविकी और अजैविक तत्त्वों के बीच होता है, को परिवेशिकी, पारिस्थितिकी और साधारणतया पर्यावरण कहते हैं। जितने भी जीवधारी हैं, उनके अध्ययन से लगता है कि उनमें आपसी संबंध है और उनका उद्‌भव प्राचीन सरल व साधारण जीवों से हुआ है। होमोंसेपिएंस (बुद्धिमान मानव) तक के विकास-यात्रा में जीवों के बीच एकता का पता चलता है। विकास को जैविक प्रक्रिया माना गया है। विकास के अनेक मत प्रचलित हैं। चाहे डार्विन का प्राकृतिक वरण का सिद्धांत (थ्योरी ऑफ नेचुरल सेलेक्शन) हो, नवडार बिनवाद हो, लैमार्क का लैमार्कवाद या नव लैमार्कवाद, चाहे ह्यूगो डी ब्रीज का उत्परिवर्तन सिद्धांत (म्यूटेशन थ्योरी) हो, चाहे ओसबार्न, हरबर्ट स्पेंसर, मैक्डूगल, मोर्गन, हक्सले आदि के सिद्धांत से विकासवाद को वातायन मिला; लेकिन विज्ञान और संस्कृति के संबंधों पर भी विचार शुरू हुआ। डार्विन के जीवन-संघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता वाले विचार-सूत्र आधुनिक जीवन का तकिया-कलाम बन गए। इससे भौतिकवाद को बढ़ावा मिला और इसने धर्म, राजनीति तथा जीवन को प्रभावित किया।

विकास के इस सूत्र से मौकापरस्त मानव में परमुखी वृत्ति का ह्रास और स्वमुखी वृत्ति का विकास हुआ। यों तो भारत व पूर्व की विचार परंपरा 'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'बहुजन हिताय' की रही है। पौर्वात्य परंपरा कभी स्वमुखी या आत्मकेंद्री नहीं रही है, जबकि स्वमुखी व आत्मकेंद्री विकासवाद से प्रेरित पाश्चात्य भौतिकवादी विचारधारा का परिणाम है।



निदेशक/प्रोफेसर महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

जब हम गांधी के पर्यावरण और प्रकृति संबंधी विचारों को समझने की कोशिश करते हैं तो हमें गांधी के सभ्यता संबंधी दृष्टिकोण के अंतर्गत विकास और पर्यावरण, गाँव और शहर, खासकर गांधी के अहिंसा संबंधी विचारों को समझने की जरूरत होती है। अस्तित्वमूलक एकता के विचार को गांधी के चिंतन का प्रस्थान बिंदु माना जा सकता है, जो वैज्ञानिक नियम के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

गांधी की चिंतन-परंपरा में भारतीय धर्म-दर्शन का गहरा असर दिखता है। भारतीय परंपरा में जीवन के प्रारंभ से मानव की यात्रा में ८४ लाख योनियों (Species) के बारे में कहा गया है। अनेक आचार्यों ने योनिज, अयोनिज तथा जलचर, थलचर, नभचर, चरक ने जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्‌भिज आदि रूपों में वर्गीकृत किया है। वैदिककाल से ही भारत में प्रकृति के निरीक्षण-परीक्षण एवं विश्लेषण की प्रवृत्ति रही है। 'महाभारत', 'विष्णु पुराण', 'मत्स्यपुराण', 'शुक्रनीति', 'वृहत् संहिता पराशर', चरक, सुश्रुत, उद्‌यन आदि द्वारा वनस्पति, उसकी उत्पत्ति, उसके अंग, क्रिया, उसके प्रकार उपयोग आदि का वर्णन किया गया है। पौधों की संवदेनशीलता का हमारा ज्ञान अत्यंत प्राचीन है। 'महाभारत' के शांति पर्व के 184वें हुए अध्ययन में महर्षि भरद्वाज व भृगु का संवाद है, जिसमें भृगु कहते हैं—''हे मुने, यद्यपि वृक्ष ठोस जान पड़ते हैं तो भी उनमें आकाश है, उसमें स्पर्श ज्ञान का होना भी सिद्ध है। वे सुनते हैं, दिखते हैं, सूँघते हैं। वृक्ष में रसनेंद्रिय भी हैं। वे अचेतन नहीं हैं। *(सुरेश सोनी, भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा, भोपाल, अर्चना प्रकाशन, २००५, पृ. १३५-३९)*

साफ-साफ और सीधे तौर पर देखने में गांधी के विचारों में पर्यावरण, प्रकृति आदि शब्द न दिखते हों, लेकिन बैरिस्टरी के अध्ययन के दरमियान उनका पहला लेख, जो 'वेजिटेरियन' में प्रकाशित हुआ। वह गांधी के पर्यावरणीय दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए काफी है। ७ फरवरी, १८९१ के अपने प्रथम लेख 'भारतीय अन्नाहारी' में वे स्पष्ट करते हैं कि भारत के हिंदू गाय को पूजनीय मानते हैं, उनका दूध लेकर उनकी हत्या

नहीं करते। लंदन में उन्होंने ९ लेख इसी प्रकार के लिखे हैं। लेकिन १९०९ ई. में जब 'हिंद स्वराज्य' प्रकाश में आई तो उसे विद्वानों ने पश्चिमी व पूर्वी सभ्यता के बीच विमर्श के रूप में स्वीकार किया। दरअसल पूर्व और पश्चिम के बीच का यह द्वंद्व या सभ्यता दृष्टि प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण को दरशाता है। गांधी भारतीयों को यह बताने के लिए चिंतित थे कि उनके लिए आधुनिक सभ्यता साम्राज्यवाद से बड़ी चुनौती खड़ी कर रही है। उपनिवेशवाद आधुनिक सभ्यता की उपज है, इसीलिए वे कहते हैं कि अंग्रेज हमारे गुलामी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि हम स्वयं हैं। हमने आधुनिक सभ्यता के सामने अपने आपको समर्पित कर दिया है। स्वैच्छिक सादगी और गरीबी का सौंदर्य भारतीय संस्कृति में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आधुनिक सभ्यता के पैरोकारों ने बड़े-बड़े दावे किए। अभाव और गरीबी से मुक्ति का मोहक सपना दिखाया। औद्योगिक क्रांति के घोड़े पर चढ़कर आधुनिक सभ्यता जहाँ पहुँची है, उसने यह साफ कर दिया है कि एक ओर अभाव और गरीबी बढ़ी है, विषमता की खाई चौड़ी हुई है। वहीं दूसरी ओर पर्यावरण के असंतुलन ने मानव सहित संपूर्ण जैव-जगत् के लिए अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया है। एलविन टॉफ्लर वर्तमान सभ्यता को अंतर्विरोध बढ़ाने वाला, गॉलब्रेथ निरर्थक समानों के उत्पादन की सभ्यता तथा शुमाकर इसे शांति का नाश करनेवाली बताते हैं। इस सभ्यता से पूँजी का केंद्रीकरण तो हुआ है, लेकिन श्रम का समाजीकरण नहीं हुआ।

'हिंद स्वराज्य' में गांधी ने सभ्यता के प्रतीकों के प्राकृतिक विनाश का स्वागत किया था (रेल, अस्पताल आदि), क्योंकि यह शुद्ध व उच्च सभ्यता की निशानी नहीं है। दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों से उन्होंने समझ लिया था कि आधुनिक सभ्यता ही साम्राज्यवाद का मूल कारण है। लेनिन साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की उपज मानते हैं। वही गांधी साम्राज्यवाद को आधुनिकता से जोड़ते हैं। गांधीजी ने १८९६ में क्रिसमस के दिन तथा १९०८ में जोहान्सबर्ग में इस विषय पर व्याख्यान दिया था। *(स.गां.वा.खं. ०८, पृ. २४४)*

गांधी कहते हैं कि पूर्वी सभ्यता आस्तिकतावादी है, जबकि पश्चिमी सभ्यता का झुकाव अनीति को दृढ़ करने की ओर है और नास्तिकवादी है। पश्चिमी सभ्यता के ये दोष यूरोप की आधुनिक सभ्यता का है। वह सभ्यता असभ्यता है। एडवर्ड कारपेंटर ने सभ्यता को एक प्रकार का रोग कहा है। गांधीजी कहते हैं कि हम उसी सभ्यता की मोह में फँसते जा रहे हैं। दरअसल मनुष्य जो स्वप्न देखता है, उसे निद्रा के वश में रहने पर सच ही मान लेता है। आधुनिक सभ्यता की निशानी को गांधी ने निम्नलिखित संदर्भों में देखा है—भौतिक खोज और शारीरिक सुख, शरीर का शृंगार, अत्याधुनिक मारक हथियार, तीव्रगति के वाहन, पैसे और सुख का लालच, रोग एवं अस्पताल की भरमार, यह सब सभ्यता की निशानी मानी जाती है। यह अधर्म है। यह नाशकारी एवं नाशवान है। गांधी भारतीय सभ्यता को संसार की सर्वोत्तम सभ्यता मानते हैं। गांधी की दृष्टि में आधुनिक और प्राचीन सभ्यता के बीच संघर्ष का प्रतीक ही अंग्रेजी राज है।

'१८८९ में सिविलाइजेशन : इटस कोर्स ऐंड क्योर' पुस्तक में कारपेंटर भी स्वीकार करते हैं कि पूरी मानव जाति इस सभ्यतारूपी बीमारी से त्रस्त एवं ग्रस्त है। उन्होंने माना है कि इस सभ्यता से मानव जाति बहुत जल्द खत्म हो जाएगी। 'गीता' और 'ईशोपनिषद्' का प्रभाव गांधी पर गहरा पड़ा है। जो ईश्वर को सारे जगत् का संचालक मानता है और जीवन को उसका आधार बताता है, इसलिए उसके नाम से त्याग को जायज मानता है और आवश्यकतानुसार भोग की स्वीकृति देता है। 'हिंद स्वराज' के पूर्व सखाराम गणेश देउसकर की पुस्तक 'देशेर कथा' १९०४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में अंग्रेज विद्वानों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि भारत के पर्यावरणीय विनाश से अंग्रेजों की औद्योगिक सभ्यता का विकास हुआ है। मिस्टर डिग्वी के हवाले से उन्होंने बताया है कि खेती की जमीन में वृद्धि हुई, लेकिन उपज कम होती गई। उन्नीसवीं सदी में कुल १८ बार अकाल पड़ा, जिससे करोड़ों लोग मरे और पालतू पशुओं की संख्या लगातार कम होती गई। ऐसे ही तथ्य दादाभाई नौरोजी की पुस्तक 'मोरल पॉवर्टी ऑफ इंडिया' में भी उद्धृत किया है। जिसके आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि अंग्रेजों के धनहरण से भारत केवल गरीब ही नहीं हुआ है, बल्कि उसका ज्ञान और अनुभव भी विनष्ट हो गया है। *(देउसकर, सखाराम गणेश, २००६ देश की बात; नेशनल बुक्स ट्रस्ट ऑफ इंडिया)*

शारडींगर, हाइजनवर्ग आदि वैज्ञानिकों ने विज्ञान एवं आत्मज्ञान के बीच समन्वय बनाने का प्रयास किया है। भारतीय धर्म और संस्कृति में पुरुष और प्रकृति, भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का अनुपम सामंजस्य हुआ है। यहाँ मनुष्यों में, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों एवं जड़ पदार्थों में पूज्य भाव पाया जाता है। यह तत्त्वमीमांसा और वैज्ञानिकता पर आधारित है। यहाँ चर-अचर भौतिक और अभौतिक का भेद समाप्त हो जाता है। 'ऋग्वेद' की देवमीमांसा में वायु, जल, अग्नि, आकाश, सूर्य, चंद्र, तारिकाएँ, नक्षत्र आदि प्राकृतिक जगत् के सारे तत्त्वों में देवतत्त्व आरोपित करने का भाव प्राकृतिक संरक्षण का आध्यात्मिक आधार है। भारतीय दृष्टि में प्रकृति को माता माना गया और उसकी सुरक्षा को धर्म कहा गया है। धार्मिक परंपरा में दशावतार का वर्णन है। वृक्ष एवं पर्वत की पूजा कर भारतीय धर्म ने पर्यावरण की सुरक्षा का पदार्थ पाठ सिखाया है। साथ ही देव-देवी के वाहनों में गणेश को चूहा, लक्ष्मी को उल्लू, सरस्वती को हंस, विष्णु को गरुड़ आदि देकर पशु संरक्षण का अव्यक्त विधान किया है। उसी तरह नागपंचमी में नाग की पूजा, कूप और तालाब बनाकर जल-संरक्षण को धर्म बनाना आदि कई उदाहरण हैं। इस प्रकार भारतीय धर्म परंपरा में व्यक्त रूप से विज्ञान को जोड़कर ज्ञान-संप्रेषण की समवाय पद्धति का उपयोग प्राकृतिक संरक्षण के लिए किया गया है। इस संदर्भ में कुछ प्रसिद्ध मंत्र उल्लेखनीय हैं—''ॐ धौ शान्तिः ! अन्तरिक्ष शान्तिः । पृथ्वी शान्तिः आपः शान्तिः । औषधयो शान्तिः । वनस्पत्यः शान्तिः । विश्वेदेवा शान्तिः । ब्रह्म शान्तिः । सर्वं शान्तिः । शांति देव शान्तिः । सामाशान्ति रोध।

दूसरी ओर ईसाई, यूनानी और रोमन परंपराओं में बताया गया है कि ईश्वर ने मानव को अपनी आकृति देकर कहा कि जाओ और अपनी जनसंख्या बनाने एवं बढ़ाने में सफल हो, प्रकृति पर अपनी सत्ता कायम

करो। इस विचार परंपरा में यह माना गया है कि प्राकृतिक जगत् में नैतिक दृष्टि से मनुष्य महत्त्वपूर्ण है तथा सभी प्राणी और वनस्पति मनुष्य की ही सुख-समृद्धि के लिए है। थामस एक्वेनस एवं अरस्तू ने प्रकारांतर से इसी विचार को संवर्धित किया। पशु-पक्षी मनुष्य के भोज्य बन गए। चमड़े और हड्डियों का भी उपयोग होने लगा। जंगल कटे, पहाड़ तोड़े गए, बीहड़ों को धीरे-धीरे समाप्त किया जाने लगा। रत्नगर्भा प्रकृति का अप्राकृतिक दोहन शुरू हुआ। १६वीं और १७वीं शताब्दी में इंग्लैंड में बाजार की अर्थव्यवस्था फैली, जिससे किसानों और खेती के बीच पारंपरिक रिश्ते टूट गए। 'European Ecology in Transition' नामक लेख में कोरोलिन मरचेंट ने यहाँ की जमींदारी व्यवस्था और जमीन के शोषण का वर्णन किया है। इस कारण किसान विद्रोह और गृहयुद्ध भी हुए, लेकिन विकास के नाम पर बाजारीकरण का दौर प्रारंभ हो गया। यूरोप की इसी सभ्यता ने विश्व के अन्य देशों को भी शोषण का शिकार बनाया। औपनिवेशिक काल में लूट की अर्थव्यवस्था ने पर्यावरण की समस्या के सभी मापदंडों को तोड़ डाला। भारत का गाँव जिन सामानों को स्थानीय स्तर पर सिर्फ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाता था, बल्कि अपने पड़ोसी देशों में हाथ के बने हुए सामान का निर्यात भी करता था। वे धीरे-धीरे बड़े उद्योगों द्वारा निर्मित होने लगे। भारत की लूट से इंग्लिस्तान ने आश्चर्यजनक रूप से औद्योगिक तंत्र में उन्नति की। रिचर्डस लॉर्ड वेलेसली और हेनरी गूगर ने विस्तार से भारत के ग्रामीण उद्योगों के विनाश और अंग्रेजों के अत्याचार को रेखांकित किया है।



वोल्ट्स ने रेशम लपेटने वाले के साथ हुए अत्याचार का वर्णन किया है तथा हरबर्ट स्पेंसर ने तो यहाँ तक कहा है कि इससे बढ़कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या किसी जमाने में भी नहीं होगा। इसी कारण टीरने ने कहा कि हम हिंदुस्तान का अपने को दुश्मन कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सुंदरलालजी ने 'भारत में अंग्रेजी राज' नामक पुस्तक में लिखा है कि ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेज सरकार के जबरदस्त प्रयत्नों से १९वीं शताब्दी के अंत तक भारत के प्राचीन उद्योग-धंधे इतिहास मात्र बनकर रह गए और जो देश करीब सौ साल पहले संसार का सबसे अधिक धनवान देश माना जाता था, वह सौ साल के विदेशी शासन के परिणामस्वरूप २०वीं सदी के शुरू तक संसार का सबसे अधिक निर्धन हो गया। *(सुंदरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, द्वितीय भाग, प्रकाशन विभाग, २००० चतुर्थ)*।

विनोबा अध्यात्म और विज्ञान को एक रूप देते हैं। एक सृष्टि का बाह्य पहलू है तो दूसरा आंतरिक, इसलिए वे कहते हैं कि विज्ञान और आत्मज्ञान के मिलन से ही धरती पर स्वर्ग आएगा। विज्ञान नीति निरपेक्ष है, न वह नैतिक है, न अनैतिक। इस अंग का काफी विस्तार हुआ है, यानी विज्ञान ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। वैसे ही आत्मा के अनंत गुणों का विकास होना चाहिए। विनोबा मनुष्यरूपी पक्षी के दो पंख आत्मज्ञान और विज्ञान को बताते हैं। आज की समस्या विज्ञान के एकांगी विकास के कारण पैदा हुई है। आत्मज्ञान नियंत्रण की विचार बताता है। विज्ञान गति देता है और आत्मज्ञान दिशासूचक है। इस प्रकार विज्ञान पाँव है और आत्मज्ञान आँख। सृष्टि की शक्तियों का भाव होना, उनका ज्ञान होना और काबू में आना अच्छी बात है, लेकिन उसका उपयोग, बँटवारा, नियोजन और उपभोग कैसे करें, यह आज मनुष्य जानता नहीं है या जानता है तो गलत जानता है। न जानना और गलत जानना, दोनों कारणों से वह दु:खी है। *(विनोबा साहित्य, खंड-१२, पृ. ४७३)* आत्मज्ञान को विज्ञान के आगे चलना होगा, विज्ञान तो उसका अनुगामी होगा। अध्यात्म को भी विस्तार देना होगा, विज्ञान जितना बढ़ेगा, आत्मज्ञान को उतना ही विस्तार मिलना चाहिए। दोनों ही सत्य की खोज करते हैं, ज्ञान की खोज करते हैं। इन दोनों के मिलन से विश्व-ज्ञान बनता है। विज्ञान और आत्मज्ञान दोनों के ही हमले मन पर हैं। उपनिषदों में कहा गया है, 'प्राणों ब्रहोति, मनो ब्रहोति, विज्ञान ब्रहोति।'

पर्यावरण प्रदूषण को लोग प्रगति की निशानी मानते हैं। ब्राजील के प्रतिनिधिमंडल ने यहाँ तक कह डाला कि धुआँ तो प्रगति की निशानी है। ब्रिटेन के मार्ग्रेट थेचर सरकार के पर्यावरण मंत्री ने १९८२ ई. के संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में कहा था कि पश्चिम में पर्यावरण संबंधी कोई समस्या नहीं है, यह मुख्यत: तीसरी दुनिया के देशों की ही समस्या है। दूसरी ओर तीसरी दुनिया के लोगों को यह लगता है कि पर्यावरण की बात पश्चिमी षड्यंत्र है। तीसरी दुनिया के देश मानते हैं कि विकसित देशों ने अपने विकास के लिए उनका पर्यावरण बिगाड़ा है। विकासशील देशों को सिर्फ अपने उद्योगों के लिए ही नहीं, बल्कि पश्चिमी दुनिया के उद्योगों के लिए भी कच्चा माल आपूर्ति करने का बोझ उठाना पड़ रहा है। दूसरी ओर उनके यहाँ औद्योगिक और एटमी कचरे को खपाने तथा तेजाबी बारिश का खतरा है। वायुमंडल में ताप संतुलन की समस्या हो गई है। ग्रीन हाउस प्रभाव से ग्लेशियर पिघलने के कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। औद्योगीकरण से कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है, जिससे 'एग्रो इको सिस्टम' प्रभावित हो रहा है।

वस्तुत: उपभोक्तावादी विलासी जीवन-संस्कृति एवं दोषपूर्ण विकास नीति के कारण प्राकृतिक संसाधनों—जंगल, जल एवं खनिज-संपदा का तेजी से ह्रास हुआ। पहाड़ नंगे हो गए, जंगल कट गए। जंगलों के कटने से भूमि का क्षरण हुआ। दोषपूर्ण सिंचाई-योजनाओं एवं पानी के व्यवहार, रासायनिक खादें और कीटनाशकों के उपयोग, खनिज संपदा के दोहन आदि ने धरती को भारी नुकसान पहुँचाया। बड़े बाँध बनाने की अंधी और अविवेक पूर्ण होड़ के कारण देश के जलस्रोत को भारी नुकसान पहुँचा है। कारखानों से निकलने वाले जहरीले तत्त्व से नदी, तालाब, भूमि

आदि प्रदूषित हुई है। भारत की स्वतंत्रता के बाद भारत के निर्माताओं का स्पष्ट मत था कि जब तक उत्पादन नहीं बढ़ेगा, उद्योगों में काफी धन नहीं लगाया जाएगा, तब तक राष्ट्र की आय नहीं बढ़ेगी। औद्योगिकीकरण के बगैर विकास असंभव है; लेकिन गांधीजी ने १९०९ ई. में ही अपनी पुस्तिका 'हिंद स्वराज' के माध्यम से इस अंधे विकास के खतरों से हमें सचेत कर दिया था।

खेती के प्रमुख आधार जल, जंगल और जमीन आज प्रदूषण के शिकार हो चुके हैं। तीन-चौथाई उपलब्ध जल में से एक प्रतिशत जल का ही हम उपयोग कर पाते हैं। सबसे अधिक जल का उपयोग खेती के लिए ही होता है। पेयजल के अधिकांश स्रोत प्रदूषित हो चुके हैं। पूरे देश की अधिकांश नदियों को कल-कारखानों ने प्रदूषित कर दिया है। गोमती, गंगा, ताप्ती, दामोदर आदि नदियाँ विषैली हो गई हैं। दूसरी ओर, सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण के नाम पर किए गए प्रयासों का परिणाम भी उलटा ही हुआ है। तटबंध बनाने के बाद भी बाढ़-क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। विश्व की ६० प्रतिशत विपदा भारत में ही होती है। लगभग १० मिलियन हेक्टेयर जमीन प्रतिवर्ष बाढ़ से प्रभावित हो रही है। यह भी अनुमान किया गया है कि विश्व में बाढ़ से मरनेवालों में हर पाँचवाँ व्यक्ति भारत का होता है। बाढ़ के कारण लाखों लोग प्रतिवर्ष विस्थापित होते हैं। भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिर रहा है। जंगलों की कटाई से भू-क्षरण बढ़ रहा है। नदियाँ उथली हो गई हैं। नतीजतन बाढ़ और सुखा हमारे लिए स्थायी विपदा बन गए हैं। ग्लेशियर अदृश्य होते जा रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण के लिए मुख्य रूप से जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, कल-कारखानों का विकास, वाहनों की वृद्धि और आणविक विस्फोट को जिम्मेदार माना जाता है। पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने कहा है कि "भोगवादी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव से मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। यदि समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो इसका असामयिक अंत निश्चित है।"

पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकार ने कई कानून बनाए हैं। देश में पर्यावरण से संबंधित २०० से अधिक कानून मौजूद हैं। ४२वें संशोधन के तहत संविधान में पर्यावरण संबंधी मुद्दों को शामिल किया गया। नीति निर्देशक तत्त्वों में अनुच्छेद ४८(अ) जोड़ा गया, जिसके तहत राज्य सूची से इसे समवर्ती में कर दिया गया।

पांडुरंग हेगड़े, जो 'चिपको आंदोलन' के नेता हैं, ने कहा है कि सरकार पर्यावरण आंदोलन को मदद देने की बजाय अपने विशेषज्ञों के जरिए इसके खिलाफ काम करती है। वस्तुतः संकट जितना गहरा हुआ है, समाधान के उपाय भी उतने दुरूह होते चले जा रहे हैं। पर्यावरण के प्रति लोगों की चिंता बढ़ी है। मानवीय आधारों पर पर्यावरण के सवालों का विश्लेषण किया जाने लगा है। विश्व के अलग-अलग भागों में जागरूक नागरिक पर्यावरण का सवाल खरे कर रहे हैं। परिस्थिति अनुकूल हुई है। पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र की पुस्तक 'राजस्थान की रजत बूंदें' और 'आज भी खरे हैं तालाब' ने लोगों को जाग्रत् किया है। कई रचनात्मक आंदोलन गांधीय आंदोलन का ही विस्तार है। पर्यावरण की समस्या के जितने भी समाधान सुझाए जा रहे हैं, उनपर गांधी विचार की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि पर्यावरण की समस्या के मूल में भोगवादी संस्कृति है तो उसका विकल्प निश्चित रूप से भोगवाद-विरोधी संस्कृति ही हो सकती है और गांधी ने सदैव भोगवादी संस्कृति की भर्त्सना की थी। गांधी ने कहा था—"प्रकृति के पास उतना सबकुछ है, जिससे वह मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके, लेकिन एक भी व्यक्ति के लोभ को पूरा करने की क्षमता प्रकृति के पास नहीं है।" उन्होंने कहा, "मनुष्य की वृत्तियाँ चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़-धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे-जैसे ज्यादा दिया जाए, वैसे-वैसे ज्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है।" गांधी गाँवों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे। उन्होंने कहा था, "अगर हमें अहिंसा की दृष्टि से काम करना हो तो इसके सिवा मैं उसका कोई हल नहीं देखता।" गांधी ने भारत को पश्चिमी औद्योगीकरण के शाप से बचाना चाहते थे।

भारतीय परंपरा में नाशकारी होड़ को जगह नहीं दी गई है। हाथ-पैरों का इस्तेमाल करने में सच्चा सुख माना गया है। गांधीजी ने कहा था कि "यंत्रों के कारण शहर बनते हैं, पर शहर खड़े करना बेकार की झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। गरीब अमीरों से लूटे जाएँगे।" उन्होंने स्वदेशी का विचार दिया। स्वदेशी व्रत अपना कर शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठा दी जा सकती है। गांधी शारीरिक श्रम को अनिवार्य कर जीवन-संग्राम के बजाय परस्पर-सेवा की होड़ पैदा करना चाहते थे। उनका मानना था कि इससे पशु धर्म के स्थान पर मानव धर्म कायम हो जाएगा।

भारतीय दर्शन में जीवों के प्रति प्रेम के धार्मिक नियम का आधार ईश्वर पर विश्वास है। ईश्वर ने जंतुओं को मनुष्य के विनाश के लिए नहीं रचा है। गांधी ने कहा है कि "शेर, साँप, दूसरे जहरीले जानवर और रेंगने वाले जानवर हमारे सजातीय हैं तथा हमारी ही तरह ईश्वर की सृष्टि होने के नाते उनको भी जीवित रहने का उतना ही अधिकार है, जितना कि हमको। हम जिस जीवन को उत्पन्न नहीं कर सकते, उसके विनाश का हमको कोई अधिकार नहीं है।" गांधी प्रेम के जीवन और अहिंसा के समाज पर जोर देते थे। उन्होंने हिंदुस्तान की पारंपरिक ईश्वरीय और मानवीय सभ्यता के आधार पर पर्यावरण संरक्षण का सिद्धांत दिया, जो प्राकृतिक जीवन-पद्धति से अलग नहीं है।

गांधी विकास के विरोधी नहीं हैं, बल्कि वे विकास को आत्मज्ञान की दृष्टि देना चाहते हैं। समुचित तकनीक की दृष्टि में इसे संपूर्ण रूप से देखा जा सकता है। हजारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद ने सर्वांगीण उन्नति की व्याख्या करते हुए कहा था, 'यतोभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः' जिस माध्यम से अभ्युदय अर्थात् भौतिक दृष्टि से तथा निःश्रेयस, यानी आध्यात्मिक दृष्टि से सभी प्रकार की उन्नति प्राप्त होती है, उसे धर्म कहते हैं। *(भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा, सुरेश सोनी, पृ.सं. १२)*।

वर्धा (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९४२२४०४२७७
manojkumardean@rediffmail.com

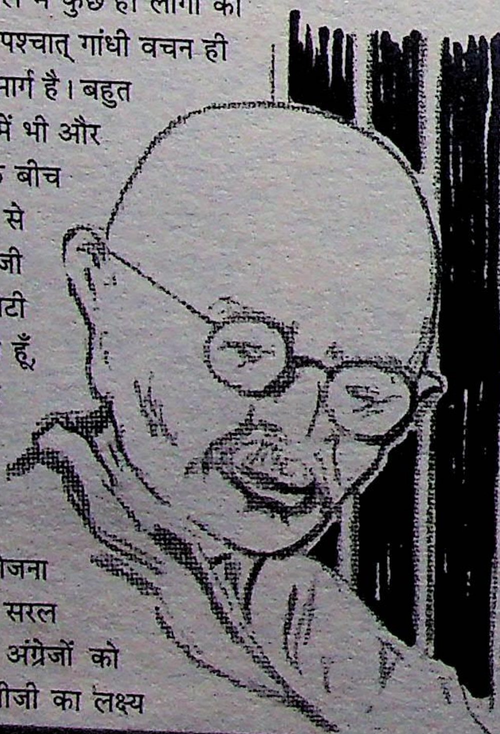


गांधी ने क्या चाहा, हमने क्या लिया

• जवाहरलाल कौल

मोहनदास करमचंद गांधी कोई असाधारण नाम नहीं और यदि इस नाम के व्यक्ति को देख लेते तो भी किसी असाधारण कद-काठी, सौंदर्य के पुरुष के दर्शन नहीं होते। लेकिन महात्मा गांधी का प्रसंग आते ही मन में तरह-तरह की विचार-तरंगें तैरने लगती हैं। वास्तव में गांधी नाम ही एक विचार-सारिणी का है, जो असाधारण और अतुलनीय है। इस पर बहते ही नित नए आयाम खुलते हैं, नए प्रश्न उठते हैं। जितने आयाम सामने आते हैं, उनके अर्थ भी प्रकट होते हैं और प्रश्नों के समाधान भी होते हैं। हो सकता है कि बहुत से उत्तर आप को अचंभित करें, बहुत सी व्याख्याएँ कभी सुनी न हों। वे आपको कुछ ऐसे भी चित्र या बिंब दिखाएँ, जिनके पास से गुजरने का अवसर आपको भी मिला, पर आप ने देखा ही न हो। कभी-कभी लग सकता है कि अहिंसा के पुजारी असहमति व्यक्त करते समय कठोर भाषा का उपयोग करते हैं। वैसे तो गांधीजी को समझने के लिए उन का अनुचर होना सब से सुगम मार्ग होगा। लेकिन यह अवसर तो उनके जीवन-काल में कुछ ही लोगों को मिला था, लेकिन उन के जाने के बहत्तर साल पश्चात् गांधी वचन ही उन्हें जानने का सब से सरल और विश्वसनीय मार्ग है। बहुत कुछ लिखा गया है गांधीजी के बारे में, विरोध में भी और समर्थन में भी। दूसरों की अपनी मान्यताओं के बीच से छनकर कभी-कभी गांधी के विचारों में से गांधी ही गायब हो जाते हैं। जब भी मुझे गांधीजी की आवश्यकता होती है तो मैं उनकी सबसे छोटी पुस्तिका 'हिंद स्वराज्य' को फिर से पढ़ लेता हूँ, क्योंकि इस पुस्तिका में गांधीजी अपने अनगढ़ रूप में दिखाई देते हैं।

स्वराज्य सामान्यतः अपना राज्य होता है। वह राज्य जहाँ किसी और के अधीन न रहना हो, जहाँ अपनी इच्छा और अपनी ही योजना के तहत देश का शासन चलता हो। यानी इस सरल व्याख्या के अनुसार तो स्वराज्य भारत को अंग्रेजों को हटाकर अपना शासन स्थापित करना ही गांधीजी का लक्ष्य




वरिष्ठ पत्रकार। १९६४ से 'हिंदुस्थान समाचार' से आरंभ करके 'दिनमान' और 'जनसत्ता' में अधिसंख्य वर्ष सेवा दी। सर्वेश्वरजी के आग्रह पर उनकी पत्रिका 'पराग' में बच्चों के लिए कुछ विज्ञान कथाएँ भी लिखीं।

था। लेकिन गांधीजी पूछते हैं कि क्या अंग्रेज देश से चले जाएँ तो इतने भर से ही स्वराज्य होगा। अंग्रेज जाएँ और अंग्रेजियत को हमारे पास ही छोड़ जाएँ, यह तो स्वराज्य नहीं हो सकता है। इससे तो यही आशय निकलता है कि हम स्वयं ही अंग्रेज बनना चाहते हैं। इस से तो यही साबित होगा कि हम पर अंग्रेजियत पूरी तरह छा गई है। किसी पराई जाति से अभिभूत ऐसे देश में अगर अपने ही देश के लोग शासन कर रहे हों तो वह पराधीनता से भिन्न नहीं हो सकता है। गांधीजी इसी बात से चिंतित थे कि हममें अंग्रेजों से भिन्न सोचने-जानने की क्षमता ही घटती जा रही है। अंग्रेज हिंदोस्तानियों को अंग्रेज मनाने में कामयाब हो रहे हैं, इसीलिए कहीं अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भारतीय अंग्रेजियत के ही मोहजाल में फँसे ही न रहें। गांधीजी के अंग्रेजियत से ऐसी क्या नाराजगी थी, इसके लिए अंग्रेजी सभ्यता यानी यूरोपीय सभ्यता पर उनके विचार उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजों की विश्व-विख्यात संस्थाओं, जैसे पार्लियामेंट और उसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था को वे अमानवीय और जनहित के विपरीत मानते थे। ऐसे ही संदर्भ में उन्होंने उसे बेसवा यानी वेश्या कहा था।

अंग्रेजों को हम क्यों निकालना चाहते हैं और अगर निकल गए तो हम क्या करेंगे, इस बात का एहसास जब तक नहीं होगा, तब तक अंग्रेज रहें या जाएँ, अधिक फर्क नहीं पड़ता।

गांधीजी को डर था, कहीं राजनैतिक नेताओं के बहकावे में भारतीय समाज इसी बात पर संतोष न करे कि जैसी सत्ता और व्यवस्था अंग्रेजों के पास है, वैसी ही हमें सौंपकर चले जाएँ। गांधी इसे स्वराज्य नहीं मानते थे। हम उन की सोच, उनकी शासन व्यवस्था, उनका मशीन की गुलामी के दर्शन से इतने अभिभूत हैं कि हम स्वयं ही अंग्रेजों का प्रतिबिंब बनना चाहते हैं। गांधी कहते थे कि जब हिंदोस्तान अंग्रेज बन जाएगा तो वह हिंदोस्तान नहीं रहेगा, वह मेरी कल्पना का स्वराज्य नहीं होगा।

इसी संदर्भ में उन्होंने लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की प्रतिनिधि सभा, जिसे हम संसद् कहते हैं, के बारे में कुछ कठोर शब्द कहे थे। ब्रितानी पार्लियामेंट को गांधी ने बाँझ कहा था, यानी ऐसी संस्था, जो किसी उपयोगी, जीवित और समाज हितैषी व्यवस्था को जन्म नहीं दे सकती। उस पार्लियामेंट ने अपने आप कोई अच्छा काम किया ही नहीं। जब तक कि उस पर दबाव डालनेवाला व्यक्ति या गुट न हो, तब तक वह कुछ भी न करे, ऐसा इस का स्वभाव है। पार्लियामेंट का इस्तेमाल अकसर सशक्त सत्तारूढ़ गुट या व्यक्ति ने ही किया है। इसलिए गांधी मानते थे कि जो इस बाँझ संस्था को हाँक ले जाएगा, उसी की हो जाती है। गांधी के शब्दों में आज इसका मालिक एस्क्वथ है तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा। गांधी दरअसल ऐसे कठोर शब्दों का उपयोग इसलिए करते हैं कि जनता, खासकर शिक्षित वर्ग के मन में जड़ें जमा चुकी मान्यताओं पर चोट करना आवश्यक था। स्वतंत्रता के लिए आंदोलन चलानेवाले लोगों में भी यह धारणा पैदा हो गई थी कि अगर अंग्रेज चले भी जाएँ तो उनकी शासन व्यवस्था के सहारे ही भारत आधुनिक युग में प्रवेश कर पाएगा। इसलिए गांधी अंग्रेजों पर नहीं, अंग्रेजी व्यवस्था को, उससे भी आगे जाकर पश्चिमी सभ्यता की निरर्थकता को साबित करना चाहते थे। अंग्रेजी लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोक कौन है, वोटर। गांधी के अनुसार अंग्रेज जनता का धर्म तो बाइबल है, लेकिन वोटर होने के नाते उसकी असली किताब, जिसके अनुसार वह चलता है, वह है अखबार। अखबार जो आज किसी को महान् बताता है तो कल किसी और को। एक ही समय पर एक अखबार की नजर में एक नेता बड़ा है तो दूसरे की नजर में उसके विरोधी को ही महानता मिल जाती है। ऐसे में वोटर के विचार भी स्थिर नहीं होते। मान्यताएँ लगातार बदलती रहती हैं। संस्कृति और सभ्यता के बारे में भी कोई स्थायी मान्यता नहीं रहती। सिद्धांत भी स्थिर नहीं रहते। इसलिए अगर हम अग्रेजों की नकल करें तो हम बरबाद हो जाएँगे।

अंग्रेज एक व्यापारी कौम है। वे जहाँ जाते हैं, व्यापार के ही कारण जाते हैं। हमारे देश में भी वे व्यापार के ही कारण आए थे। गांधीजी का मानना है कि अंग्रेज यहाँ रहने के लिए नहीं आए, हमने ही उन्हें अपने लोभ के लिए यहाँ रखा। अंग्रेजों की फौज, उनकी हुकूमत सब व्यापार के लिए ही होती है। इस संदर्भ में गांधीजी ने एक उक्ति का उल्लेख भी किया है। किसी ने राष्ट्रपति क्रूगर से पूछा कि क्या चाँद पर सोना है तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे विचार से तो नहीं है, क्योंकि अगर होता तो अब तक ब्रिटेन ने चाँद को अपने साम्राज्य में मिला लिया होता। वास्तव में गांधीजी मानते थे कि यूरोपीय सभ्यता शोषण पर ही आधारित है, उसकी नजर में हर काम के भीतर किसी स्वार्थ को खोजने की इच्छा होती है। ऐसी सभ्यता के आश्रय में बनी संस्थाएँ कभी मानव के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकती हैं। वकील और डॉक्टर पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। वे नहीं कहते थे कि कोई वकील और डॉक्टर अच्छा नहीं होता है, वे केवल इन के पेशों के मूल में बसी प्रवृत्ति को बुरा कहते हैं। उनका अनुभव था कि अगर दो व्यक्ति झगड़ रहे हों और कोई पड़ोसी आ या रिशतेदार बीच में पड़कर सुलह करवाना चाहे तो विवाद सुलझ सकता है। लेकिन अगर कोई वकील बीच में पड़े तो विवाद और बढ़ने की ही संभावना होती है। डॉक्टर के पेशे को उसमें व्यापारिक मनोवृत्ति के प्राधान्य से सेवा के बदले व्यापार ही होना उसे सेवा नहीं रहने देता है। गांधीजी सेवा के नाम पर होनेवाले कामों में स्वार्थ की प्रमुखता के विरुद्ध थे और उनमें आमूल परिवर्तन चाहते थे।

गांधीजी ने मशीनीकरण के विरुद्ध एक अभियान ही चलाया था और इस संदर्भ में काफी विवाद भी उठा था। कुछ लोगों ने उन पर आक्षेप भी किए कि जिस चरखे को आप इतना महत्त्व देते हैं, वह भी तो एक मशीन है, जिस चश्मे से देखते हैं, वह भी किसी मशीन का ही उत्पाद है और जिस रेलगाड़ी से यात्रा करते हैं, वह भी मशीनी कलपुर्जों का ही समूह है। गांधीजी मशीन का विरोध इसलिए करते हैं कि उन को लगता है कि मनुष्य को प्रकृति ने अपने सारे काम करने में समर्थ बनाया है। जो काम इतना बढ़ा है कि एक आदमी नहीं कर ही सकता है, उसे कई लोग मिलकर करेंगे। मशीन अगर हमें अपना काम करने से वंचित करती है तो वह अच्छी कैसे हो सकती है। यंत्र को एक उपकरण के बदले एक व्यवस्ता का अंग मानकर देखें तो बात समझ में आ जाएगी। जहाँ मशीनीकरण का दबदबा है, वहाँ शोषण होगा। मिलों-कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के लिए मिलें नहीं बनतीं, उनके पास कोई चारा नहीं है, इसलिए वे वहाँ हैं, उन के पुश्तैनी काम-धंधे नष्ट कर दिए गए हैं, इसलिए वे मजदूर बने और अपनी आजादी सहित अपना आराम और सुख चैन भी गँवा बैठे। गांधीजी के समय में मैनचेस्टर की मिसाल दी जाती थी, जिसके रन केवल भारत के कारीगर, किसान ही नहीं उनके साथ ही मैनचेस्टर के मिल मजदूर भी पीड़ित थे।

अहिंसा गांधीजी के स्वराज्य का अनिवार्य अंग था। अहिंसा के बिना सत्याग्रह संभव ही नहीं है। सत्याग्रह आत्मबल का उपयोग होता है, जब मानव किसी पवित्र कार्य को पूर्ण करने के लिए अपने भीतर की शक्ति का उपयोग करता है और दूसरों के बदले अपने आप का बलिदान देने का निश्चय करता है तो वह सही मायने में सत्याग्रही कहलाता है। अंग्रेज शासकों के खिलाफ भी वे हिंसा का उपयोग करना सही नहीं मानते थे। उन की मान्यता थी कि हिंसा से प्राप्त किसी सफलता से स्थायी सुख नहीं मिल सकता है।

अहिंसा गांधीजी के स्वराज्य का अनिवार्य अंग था। अहिंसा के

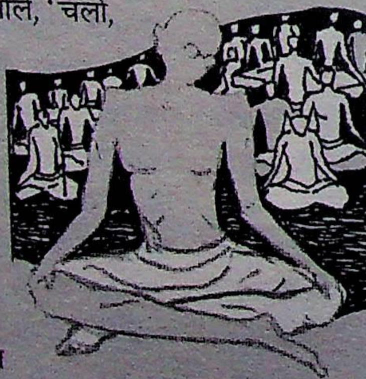
बिना सत्याग्रह संभव ही नहीं है। सत्याग्रह आत्मबल का उपयोग होता है, जब मानव किसी पवित्र कार्य को पूर्ण करने के लिए अपने भीतर की शक्ति का उपयोग करता है और दूसरों के बदले अपने आप का बलिदान देने का निश्चय करता है तो वह सही मायने में सत्याग्रही कहलाता है। अंग्रेज शासकों के खिलाफ भी वे हिंसा का उपयोग करना सही नहीं मानते थे। उन की मान्यता थी कि हिंसा से प्राप्त किसी सफलता से स्थायी सुख नहीं मिल सकता है। उन्हें विश्वास था कि अगर हम इस स्तर का अहिंसक सत्याग्रह के माध्यम से विदेशी शासकों को निकालने में सफल हो जाएँ तो हम इसी साधन का उपयोग अपने देशी राजाओं के साथ करके उहें भी शोषण, असमता, हिंसा और प्रतिशोध रहित समाज का विकास करने में सहायक बना सकते हैं।

लेकिन विश्वास और आशा के बावजूद गांधीजी के मन में कुछ आशंकाएँ भी थीं। उन्हें डर था कि कहीं जल्दबाजी में स्वतंत्रता के सत्याग्रही छोटा रास्ता अपना कर अंग्रेजों को देश से निकाल अंग्रेजियत से चिपके ही न रहें। यह आशंका काल्पनिक नहीं थी, वास्तविक थी। कांग्रेस का आकार बढ़ने के साथ उसमें उन सब वर्गों की संख्या भी बढ़ने लगी थी, जिनके व्यवसायों को वे अंग्रेजी शासन को ताकतवर बनानेवाले घोषित करते थे। लेकिन गांधीजी शायद इस बात से अनजान रहे कि यह खतरा उन्हीं अनुयायियों से है, जो देश में स्थानीय लोगों के स्थापित होने की संभावना भाँपकर स्वदेशी के समर्थक हो गए थे। जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का मन बना लिया था, यानी वास्तविक स्वतंत्रता के लगभग दस साल पहले ही यह दिखने लगा था कि जो भारत अंग्रेज छोड़कर जाएँगे, वह गांधीजी के सपनों का भारत नहीं होगा अपितु अंग्रेजों की योजना का भारत होगा। हिंदू-मुसलमानों के बीच की खाई पट नहीं सकी। शिक्षा में, प्रशासन में, उद्योगों में अंग्रेजी प्रभाव कम होने के बदले बढ़ने लगा। हम गांधीजी के सपनों का भारत तो प्राप्त नहीं कर सके, विरासत में हमें अंग्रेजी सोच के बाबू और अंग्रेजी सोच के शासकों की जमात ही मिल गई। इसलिए गांधीजी को याद करने की प्रासंगिकता यह देखना-समझना है कि गांधीजी ने जो चाहा था और जो हमने लिया, उसके बीच जो चौड़ी खाई है, उसे हम पाट सकते हैं कि नहीं?

३०१, रामा अपार्टमेंट, सेक्टर-११,
द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
kauljawaharlal@gmail.com
दूरभाष : ९७११३६१९३७

अहिंसा की शक्ति

जोहांसबर्ग से दो मील दूर 'माउंट व्यू' नाम की सुंदर जगह में कैलनबैक रहते थे। कैलनबैक प्रारंभ से ही गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित थे। कुछ ही समय में उनकी गांधीजी से अच्छी दोस्ती हो गई थी। गांधीजी भी उनके पास रहने के लिए आ गए थे। उन्होंने देखा कि कैलनबैक बहुत ही मस्ती व मौज से रहते हैं और जरा भी शारीरिक श्रम नहीं करते हैं। कैलनबैक का अपना मकान था, लेकिन फिर भी वे अपनी सुख-सुविधा पर बहुत रुपए बरबाद करते थे। एक दिन कैलनबैक गांधीजी से बोले, 'चलो, घूमने चलें।' गांधीजी बोले, 'जोहांसबर्ग में रहनेवाले यहाँ घूमने आते हैं, तब हम क्या वापस जोहांसबर्ग की तरफ जाएँ? हवा यहाँ की अच्छी है और यदि घूमना श्रम के लिए ही है तो चलो, खुरपी पकड़ो, बगीचे में काम करेंगे। शारीरिक श्रम भी हो जाएगा, साथ ही बगीचे का काम भी।' कैलनबैक गांधीजी के साथ बगीचे के काम में लग गए। इसके बाद प्रतिदिन गांधीजी कैलनबैक के साथ नियमित रूप से बगीचे का काम करने लगे। कुछ दिनों में मि. कैलनबैक को यह अहसास हो गया कि उन्होंने अपने बगीचे के लिए जो दो माली रखे हुए हैं, वे व्यर्थ हैं। उन्होंने बगीचे की जिम्मेदारी स्वयं लेकर उनकी छुट्टी कर दी। इसके बाद एक दिन गांधीजी स्नान करने से पहले अपनी कमीज धो रहे थे। कैलनबैक गांधीजी को कमीज धोते देखकर बोले, 'अरे भाई, आप क्यों धो रहे हैं? कपड़े धोने के लिए धोबी तो है न!' गांधीजी बोले, 'कल से मैंने अपने कपड़े आप ही धोना शुरू कर दिया है। मुझे अपना काम स्वयं करना अच्छा लगता है।' अब कैलनबैक इसका क्या जवाब देते? गांधीजी अपने कपड़े स्वयं धोएँ और वे अपने कपड़े धोबी से धुलवाएँ, भला यह कैसे संभव था? इसलिए उन्होंने अपने कपड़े भी स्वयं धोने शुरू कर दिए। कुछ दिनों बाद भोजन का प्रश्न उठा। दोनों ही अलोना और उबला हुआ खाना खाते थे। एक दिन गांधीजी बोले, 'हमारा आहार अप्राकृतिक है। सूरज के ताप से पका हुआ भोजन ही प्राकृतिक माना जाएगा। पकी हुई खुराक को फिर आग पर हम या तो अपनी स्वादेंद्रिय को पोषण देने के लिए पकाते हैं या अपनी गलत आदत के कारण।' बस फिर दोनों ने फलाहार करने का निश्चय किया। आवश्यकता पड़ने पर गेहूँ की रोटी फलों के साथ ली जा सकती थी। अब रसोइए का काम भी नहीं रह गया था, इसलिए उसे भी विदा कर दिया गया। इस तरह मात्र कुछ ही दिनों में गांधीजी ने कैलनबैक को सब झंझटों से मुक्त कर दिया और हर महीने बारह सौ रुपए खर्च करनेवाले कैलनबैक का खर्च घटकर मात्र सौ-सवा सौ मासिक पर आ गया।



(श्रीमती रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गांधी विशेषांक

भारतीय साहित्य को गांधीजी का प्रदेय

● जी. गोपीनाथन



सुपरिचित लेखक-अनुवादक। दक्षिण केरल के बालरामपुरम गाँव में जन्म। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति। वारसा, पेरिस, हेलसिंकी विश्वविद्यालयों में अतिथि आचार्य रहे। संप्रति कालिकट में निवास तथा स्वतंत्र लेखन।

भारतीय भाषाओं एवं आधुनिक भारतीय साहित्य के क्षेत्र में गांधीजी का आगमन एक नए युग का सूचक है। गांधी युग १९२० से १९५० तक का काल माना जाता है। लेकिन १९२० से पहले का, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका का काल और १९४९ में गांधीजी के देहावसान के बाद का समय, दोनों में भारतीय भाषाओं की ऊर्जा का प्रमुख स्रोत गांधीजी रहे हैं। स्वदेशी भावना को पल्लवित करने में और भारतीयों में अपनी भाषा का स्वाभिमान पैदा करने में गांधीजी का प्रमुख योगदान रहा है। लंदन में शिक्षित गांधीजी के लिए अंग्रेजी में लेखन करना सरल और सहज था। किंतु अपनी प्रमुख रचनाएँ मातृभाषा गुजराती में रचकर मातृभाषा का उन्हें ने गौरव बढ़ाया। दक्षिण अफ्रीका में हिंदी शिक्षण की नींव रखकर और राष्ट्र-भाषा हिंदी के प्रचार का आंदोलन शुरू कर राष्ट्र भाषा और विश्वभाषा के रूप में हिंदी के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में और उस को दिशा-निर्देश देने में गांधीजी का प्रत्यक्ष-परोक्ष योगदान रहा है। महात्माजी के इन सब प्रदेयों पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचार करने का समय आ गया है। यहाँ पर इन सब दिशाओं का एक संक्षिप्त अवलोकन हम करेंगे।

स्वदेशी एवं भाषाई स्वाभिमान

गांधीजी द्वारा प्रस्तावित एवं व्यावहारिक रूप से प्रयुक्त स्वदेशी का विकल्प भूमंडलीकरण के संदर्भ में भी अत्यंत सार्थक एवं कारगर विकल्प लगता है। स्वदेशी एक तरह से पश्चिमीकरण एवं भू-मंडलीकरण के संदर्भ में राष्ट्रीय अस्मिता से प्रेरित विकल्प है, जिसके अंतर्गत देशी भाषाओं की प्रतिष्ठा, स्वदेशी प्रौद्योगिकी का नवोत्थान, जैविक खेती का विकास, ग्रामों का पुन: निर्माण, बड़े उद्योगों की अपेक्षा ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योगों, देशी शिल्प कला एवं अन्य कलाओं का नवोन्मेष, आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक चिकित्सा आदि का नया अनुप्रयोग, नूतन शैक्षणिक पद्धति का आविष्कार एवं मौलिक अनुसंधान आदि अनेक पहलू हैं। अंग्रेजी भाषा के राष्ट्रीय एवं वैश्विक महत्त्व को मानते हुए भी भारतीयों में व्याप्त सांस्कृतिक गुलामी और हीन भावना से हमारी भाषाओं को बचाने के लिए और देशवासियों में भाषाई स्वाभिमान पैदा करने के लिए अनेक प्रयास गांधीजी ने किए। १९०९ में प्रकाशित अपने 'हिंद स्वराज' में ही उन्होंने यह व्यावहारिक सुझाव रखा था कि अनुवाद तथा भाषा विकास के प्रयासों द्वारा भारत की प्रांतीय भाषाओं का खूब विकास किया जाए और साथ ही उनके बीच एक सामान्य संपर्क भाषा (Lingua franca) के रूप में हिंदी का विकास एवं प्रचार-प्रसार किया जाए। हमारी परंपरागत धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्रोत भाषाओं के रूप में संस्कृत, अरबी एवं फारसी भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन उन्होंने अत्यंत आवश्यक माना। सभी भारतीय भाषाओं को आपस में जोड़ने में सक्षम हिंदी भाषा को उन्होंने राष्ट्रीय भावना की प्रतीक माना और हिंदी-प्रचार आंदोलन को स्वतंत्रता संग्राम के साथ सफल ढंग से जोड़ दिया। इस कारण से हिंदी-प्रेम, देश-प्रेम का पर्याय बन गया। विश्व मैत्री की भाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने में गांधीजी के भाषा संबंधी कार्य-कलाप ऐतिहासिक महत्त्व के साबित हुए।

राष्ट्रभाषा हिंदी एवं गांधीजी की भूमिका

वैश्विक स्तर पर हिंदी सिखाने का प्रारंभिक प्रयास १९०४ में दक्षिण अफ्रीका में गांधी ने शुरू किया था। यह अध्यापन कार्य गांधीजी के इस निजी परीक्षण या खोज का परिणाम था कि गुजराती, मराठी, हिंदी, तमिल, तेलुगु आदि भाषाएँ बोलनेवाले भारतीय मजदूर और उनके बच्चे आपस में बातचीत करते समय सामान्य भाषा या अंतर-संप्रेषण की भाषा के रूप में हिंदी का इस्तेमाल करते हैं। भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की आम सभाओं में भी गांधीजी अंग्रेजी की अपेक्षा हिंदी का प्रयोग करते थे। जब सन् १९१४ में गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीका की यात्रा पर गए, तब गांधीजी के आग्रह करने पर गिरिमिटिया मजदूरों को संबोधित करते समय वे अंग्रेजी छोड़कर मराठी में भाषण देते थे और गांधीजी उसका हिंदी में अनुवाद करते थे। गांधीजी का विचार था हिंदी का इस्तेमाल करने से भारतीयों के बीच अपनापन बढ़ेगा और

उनके बीच भारतीय अस्मिता की भावना पनपेगी। १९१५ में देश लौटने के बाद हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के पक्ष में उन्होंने काम करना शुरू किया। कांग्रेस की अखिल भारतीय सभाओं में हिंदी में बोलने की परंपरा शुरू कराई। सन् १९१८ में मद्रास (चेन्नै) में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा स्थापित करने का जो ऐतिहासिक कदम उठाया, उससे पूरा युगांतर आया। हिंदी, जो अब तक उत्तर प्रदेश के कुछ प्रांतों की भाषा समझी जाती थी, वह पूरे देश की राष्ट्रीय भाषा हो गई। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार-प्रसार का अब १०० वर्ष पूरा हो गया है, इन सौ वर्षों में हिंदी भाषा का व्यापन और विकास पूरे विश्व में हो गया है। १९०४ के बाद दक्षिण अफ्रीका में हिंदी सिखाने का गांधीजी का उपक्रम, १९१८ में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना, १९३६ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना आदि से प्रेरणा ग्रहण कर उपनिवेशों के गिरमिटिया और भारतवंशी लोगों, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, सूरिनाम, त्रिनिदाद, फिजी, गुयाना आदि के प्रवासियों ने हिंदी समितियाँ और सभाएँ स्थापित कर हिंदी का प्रचार आरंभ किया।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से १९०३ में 'इंडियन ओपीनियन' नाम से जो पत्रिका शुरू की, उस में हिंदी, गुजराती, तमिल के अनुभाग होते थे। उस से प्रेरित होकर और स्वयं गांधीजी द्वारा भेजे गए मणिलाल गांधी आदि के परिश्रम से मॉरीशस जैसे देशों में भी हिंदी पत्रकारिता शुरू हुई। इन सबके परिणामस्वरूप इन उपनिवेशों के स्वतंत्र होने पर इन देशों की भी सह राजभाषा और प्रमुख सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता मिली। सन् १९७५ में मधुकर राव चौधरी, अनंत गोपाल शेवड़े, शंकर राव लोढ़े जैसे गांधीजी के अनुयायियों और हिंदी प्रेमियों के प्रयास से आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के साथ विश्वभाषा के रूप हिंदी की औपचारिक प्रतिष्ठा हुई। इस तरह राष्ट्रभाषा और विश्वभाषा के रूप में हिंदी को विकसित करने में गांधीजी का प्रत्यक्ष-परोक्ष योगदान रहा है।

भारतीय भाषाएँ : गांधीजी की भूमिका

भारतीय राजनीति और साहित्यिक क्षेत्र में गांधीजी के पदार्पण करने के बाद भारतीय भाषाओं में बड़ा परिवर्तन आ गया, इस का उल्लेख प्रारंभ में कर चुके हैं। गांधी द्वारा प्रकाशित 'इंडियन ओपीनियन' और 'नवजीवन' पत्रिका में यह लिखा रहता था कि इस पत्रिका में एक भी शब्द बिना सोचे, बिना तौले नहीं लिखा जाएगा। जान-बूझकर तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं की जाएगी, हकीकत में जो कला है, वह निरर्थक विशेषणों में नहीं होती। संस्कृत शब्दों की बोझिलता की जगह सरल देशी शब्दों और बोलचाल के शब्दों को उन्होंने प्रमुखता दी। उनकी आत्मकथा 'नवजीवन' में १९२५-१९२९ के अंकों में प्रकाशित हुई। 'हिंद स्वराज' १९०९ में प्रकाशित हुआ था। आलोचक मानते हैं कि इन दोनों रचनाओं के प्रकाशन के कारण गुजराती भाषा सरल, सुबोध, विचारप्रधान और आधुनिक बनी। गद्य भाषा पत्रकारिता की भाषा से बहुत प्रभावित हुई। चूँकि उस समय गांधी साहित्य का बहुभाषिक अनुवाद चलता था, इसलिए भाषा विषयक गांधीजी के दृष्टिकोण का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर भी पड़ा। १९४२ से हिंदुस्तानी का आंदोलन भी शुरू होने से हिंदी-उर्दू भाषाएँ एक-दूसरे के करीब आईं। हिंदी की साहित्यिक भाषा में विशेषकर हिंदी कथा साहित्य में उर्दू शब्दों का प्रयोग सहज रूप से होने लगा। गांधी ने गुजराती भाषा के मानकीकरण के लिए हक समिति स्थापित कर 'वर्तनी कोश' तैयार कराया और यह घोषणा की कि अब कोई मनमाने ढंग से वर्तनी न लिखे। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना के साथ दक्षिणवासियों को हिंदी सीखने के लिए सरल पाठ्यपुस्तक, द्विभाषिक, बहुभाषिक शब्दकोश, व्यावहारिक व्याकरण आदि गांधीजी के निर्देश के अनुसार तैयार कराए गए थे। राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास यहीं से शुरू हुआ। महादेव देसाई, विनोबा भावे, काका कालेलकर तथा अन्य अनेक हिंदीतर भाषी गांधी के शिष्यों द्वारा हिंदी में लेखन करने से हिंदी साहित्य अखिल भारतीय बनता गया। गांधीजी की प्रेरणा से अनुवाद कार्य तेजी से चलने लगा। रवींद्रनाथ टेगोर, शरतचंद्र आदि की रचनाओं का गुजराती अनुवाद गांधीजी के ही निर्देश पर महादेव देसाई ने किया था। बहुभाषिक पत्रकारिता, गांधी की आत्मकथा, हिंद स्वराज आदि का अन्य भाषाओं में अनुवाद स्वयं गांधी द्वारा गुजराती, हिंदी, अंग्रेजी में दिए गए भाषण और लिखे गए बहुभाषिक पत्र आदि से एक नया बहुभाषिक वातावरण भारत में बना। ग्रामीण शैली और बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से भारतीय भाषाओं का रूप ही बदल गया। प्रेमचंद की भाषा-शैली गांधीजी के ही प्रत्यादर्शों के अनुसार बनी है। गांधी की प्रेरणा से डायरी, रेखाचित्र, जीवनी, पत्र, रिपोर्ट आदि साहित्य की नूतन विधाएँ आरंभ हुईं। हिंदी, मराठी, गुजराती के संत साहित्य की ओर लोगों का ध्यान गांधीजी के कारण गए। महाकवि वेणिक्कुलम के लिखा है कि रामचरितमानस का मलयालम अनुवाद करने की प्रेरणा उन्हें 'यंग इंडिया' में प्रकाशित गांधीजी के एक लेख से मिली। गांधीजी की आत्मकथा का भारतीय एवं विश्व भाषाओं में इतना अनुवाद हुआ कि वह अनुवाद की एक अद्भुत कहानी बनी। इस तरह गांधी युग को भारतीय भाषाओं के परिमार्जन, मानकीकरण और उन्नति का काल माना जा सकता है।

आधुनिक भारतीय साहित्य पर गांधीजी का प्रभाव

आधुनिक भारतीय साहित्य पर गांधीजी का प्रभाव करीब १९२० से पड़ने लगा। विषय वस्तु एवं भाषा-शैली-शिल्प में यह परिवर्तन बहुत ही स्पष्ट है। गांधीजी की प्रेरणा से साहित्य ज्यादा सोद्देश्यक बन गया। स्वतंत्रता आंदोलन, ग्राम-सुधार, अस्पृश्यता निवारण, हरिजनोद्धार, शराबबंदी, स्त्री-मुक्ति आदि भारतीय साहित्य के विषय हो गए। कविता,

कथा साहित्य, आत्मकथा, नाटक, पत्रकारिता तथा अन्य विधाओं में गांधीजी का जो प्रभाव पड़ा, वह साहित्यिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। तमिल के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती ने अपने प्रसिद्ध 'गांधी पंचक' में दिखाया कि गांधी ने किस तरह नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का राजनीति में समावेश किया। तमिल के नामक्कल रामलिंग पिल्लै ने न केवल सत्याग्रह आंदोलनों में भाग लिया, बल्कि अपने ओजस्वी गीतों से गांधीजी के आंदोलन को सामान्य जन तक पहुँचाया। इस कवि का विचार था कि गांधी मार्ग को छोड़कर भारत का कोई रास्ता ही नहीं है। मलयालम के राष्ट्रीय कवि वल्लत्तोल ने तो गांधी को अपना गुरु ही मान लिया है 'मेरे गुरुनाथ' शीर्षक कविता में। शंकर कुरूप, इटश्शेरि गोविंदन नायर, जी. कुमार पिल्लै जैसे कवियों ने अहिंसा, सर्वोदय आदि के सिद्धांतों पर कविताएँ लिखीं। अचलांबिकै अय्यर ने तमिल में 'गांधी पुराण' लिखा। तमिल के कवि भारती दासन ने लिखा कि गांधी यद्यपि मर गए हैं, उनकी आत्मा सर्वत्र व्याप्त हो गई है। मार्क्सवादी और प्रगतिवादी कवि प्रारंभ में गांधी दर्शन, अहिंसा आदि का विरोध कर रहे थे, लेकिन अब वे गांधीजी के समर्थक बन गए हैं। एन.वी. कृष्ण वारियर की कविता 'गांधी और गोडसे' बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें कवि ने गांधी को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक माना।

मराठी, गुजराती काव्य तो गांधीजी से प्रत्यक्ष प्रभावित है। मराठी के मास्कर राव तांबे, माधव जूलियन, साने गुरुजी, कुसुमाग्रज, वा.भा. बोरकर, माडगूलकर आदि कवियों ने गांधी तत्त्वों का ही विस्तार अपनी कविताओं में किया है। कश्मीर के महजूर, जिंदा कौल जैसे कवियों ने गांधी का संदेश काश्मीर के लोगों को सुनाया। तेलुगु के रायप्रोलु, सुब्बराव, बसवराव अप्पाराव, गेरिमेल्ल सत्यनारायण, काटूरी वेंकटेश्वर आदि राष्ट्रीय भावधारा के कवियों ने गांधीजी के अहिंसा, समाज-सुधार, एवं सत्याग्रह के संदेश को जन-जन तक पहुँचाया। उन्नव लक्ष्मीनारायण ने हरिजनों का मंदिर प्रवेश, देशप्रेम, त्याग, सर्वधर्म समभाव, मानवता आदि गांधीजी के संदेशों को अपने नाटकों और कविताओं के माध्यम से तेलुगु भाषी जनता तक पहुँचाया। गुजराती के कवि सुंदरम्, उमाशंकर जोशी, रमणलाल देसाई, मनसुख लाल झावरी, स्नेह रश्मि आदि कवि गांधी के निकट संपर्क में आए और उनके रचनात्मक कार्यक्रमों का भाष्य जनता के बीच किया। हिंदी काव्य साहित्य तो गांधी से सीधे अपनी ऊर्जा प्राप्त करता था। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत, यशोधरा, जयभारत तीनों काव्यों में सत्याग्रह, साधन की शुद्धि, स्वावलंबन, ग्राम-सुधार आदि गांधी तत्त्वों की व्याख्या की है। सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय, गयाप्रसाद सनेही, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी, समित्रानंदन पंत, बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि हिंदी की एक पूरी पीढ़ी गांधीजी के प्रभाव में काव्य-साधना कर रहे थे। नए कवियों में गांधी चिंतन के सबसे सशक्त अनुगायक भवानी प्रसाद मिश्र ही थे। संपूर्ण भारतीय साहित्य में समकालीन कवि फिर गांधी चिंतन की ओर लौट रही है, यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का कथा साहित्य गांधी के आदर्शों, रचनात्मक कार्यक्रमों और तत्त्वदर्शन की कथात्मक व्याख्या करता सा लगेगा। गांधी विचारधारा एवं रचनात्मक कार्यक्रमों को ही प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यास का आधार बनाया है। प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गोदान जैसे उपन्यासों के नायक गांधीजी की विचारधारा के जीवंत प्रतीक हैं। रंगभूमि का सूरदास औद्योगिक सभ्यता से त्रस्त गांधी का ही प्रतिरूप है। अपरिग्रह, हृदय परिवर्तन, ग्राम सुधार, पंचायती राज, अछूतोद्धार आदि गांधीजी की परिकल्पनाओं को ही प्रेमचंद ने अपने कायाकल्प, सेवा सदन जैसे उपन्यासों, पंच परमेश्वर, ठाकुर का कुआँ, जैसी अनेक कहानियों के द्वारा उजागर किया है। जैनेंद्र जैसे कथाकारों ने सर्वोदय, अहिंसा जैसे गांधी की परिकल्पनाओं को अपनी कहानियों के द्वारा साकार किया। यशपाल ने गांधीवाद की 'शवपरीक्षा' लिखी, लेकिन अब मार्क्सवाद की ही शवपरीक्षा हो रही है, तेलुगु कथाकार उन्नव लक्ष्मीनारायण ने अपने 'मालहल्ली' में और तकशी ने अपने 'मंत्री का बेटा' जैसे उपन्यास के माध्यम से हरिजनोद्धार का गांधीजी का स्वप्न साकार किया। बँगला कथाकार ताराशंकर बनर्जी, नारायण गंगोपाध्याय, वनफूल, सतीनाथ भादुई आदि ने असहोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि पर अपने प्रख्यात उपन्यास लिखे। गुजराती के पन्नालाल पटेल, रमणलाल देसाई, पीतांबर पटेल आदि ने गांधी के व्यावहारिक एवं रचनात्मक कार्यों और अहिंसा की सार्थकता को ही अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया था। तमिल के कल्कि ने अपने लोकप्रिय उपन्यासों 'शौलै मले इलवरशी', 'अलै ओलिरौ' आदि में गांधी के आंदोलन को दृश्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया। गांधी तत्त्व की कहानियों और निबंधों के माध्यम से व्याख्या प्रस्तुत करने का कार्य तमिल में राजाजी ने किया। गांधीजी अपने दर्शन और सिद्धांतों का जो सूत्र देते थे, उसे पंडित सुंदरलाल, काका कालेलकर, विनोबा भावे आदि ने भाष्य करके लोगों को समझाया। मराठी के मामा वरेरकर, मलयालम के इटश्शेरी गोविंदन नायर, जी. शंकरपिल्लै आदि ने गांधी तत्त्वों की व्याख्या अपने अनेक नाटकों के माध्यम से की।

गांधी साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा आत्मकथा ही है। गांधी की आत्मकथा आधुनिक भारतीय साहित्य में आत्मकथा का सर्वोत्तम नमूना सिद्ध हुई। देश के अनेक साहित्यकारों और समाजसेवी मनीषियों ने उसी नमूने पर अपनी आत्मकथाएँ लिखीं, जैसे गुजराती में ही काका कालेलकर, के.एम. मुंशी, धूमकेतु, रमण लाल देसाई, इंदुलाल याज्ञिक आदि की आत्मकथाएँ, तेलुगु में वेकंटेशप्पा, कालेश्वर राव, मलयालम में के.पी. केशव मेनोन, हिंदी में बाबू राजेंद्र प्रसाद, बच्चन आदि की आत्मकथाएँ निश्चित ही गांधीजी की आत्मकथा से प्रभावित हैं। इस तरह आधुनिक भारतीय साहित्य को सार्थक दिशाबोध प्रदान करने और उसे समाज से जोड़ने में गांधीजी का प्रदेय ऐतिसाहिक महत्त्व का है। (सा अ)

सौपर्णिका, काक्कंचेरी
कालिकट यूनिवर्सिटी-६७३६३५
gopinathan.govindapanicker@gmail.com
दूरभाष : ९७४७०२८६२३



गांधी : कुछ प्रेरक प्रसंग

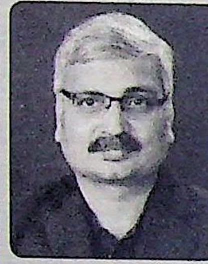
• हेमंत शर्मा

गांधी युगपुरुष हैं। वे एक युग के सपनों, संघर्षों और आकांक्षाओं का नेतृत्व करते हैं। गांधी किसी क्षेत्र विशेष या वर्ग विशेष की सीमा में नहीं समाहित हैं। वे सर्वव्यापी हैं, सर्वहितकारी हैं। चंपारण और बारदोली के किसानों के आंदोलन से लेकर मार्टिन लूथर किंग और नेलसन मंडेला के संघर्षों तक वे जगतव्यापी हैं। आज के दौर का विश्वव्यापी अहिंसक प्रदर्शन, धरना और हड़ताल उनके ही तरकश का तूणीर है। आमरण अनशन के अहिंसक अस्त्र से जीती जानेवाली बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ उनके ही दिखाए मार्ग की पुष्पांजलि है। गांधी एक नहीं, अनेक रूप में आज भी संपूर्ण जगत् में प्रासंगिक और लक्ष्यसिद्ध हैं। अपने निधन के ७० सालों बाद भी उन्हें दुनिया में शिद्दत से याद किया जा रहा है। सब अपनी-अपनी समस्याओं का हल गांधी में देख रहे हैं। इतिहास गवाह है कि गांधी कल भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं, कल भी रहेंगे। ऐसा लगता है कि संसार में ऐसी कोई भी समस्या नहीं, जिसका समाधान गांधी के पास न हो। ऐसा कोई संकट नहीं है, जिसका हल उनके विचारों में न मिलता हो।

गांधी का नाम आते ही आइंस्टाइन याद आते हैं, जिन्होंने सबसे पहले कहा था कि आनेवाली नस्लें शायद मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस से बना हुआ कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर था। गांधी आज वैश्विक हैं। वे जिन सिद्धांतों पर अड़े और खड़े हुए, दुनिया आज उन सिद्धांतों की दुहाई दे रही है। जिस विचार ने गांधी की हत्या की, वह भी आज गांधी को पूजने के लिए मजबूर है। यही महात्मा गांधी की ताकत है।

गांधी जादूगर थे। अपने अनुभवों को करोड़ों लोगों से जोड़ वे उनके हक की लड़ाई लड़ते थे। जनता से उनका गजब का संवाद था। दक्षिण अफ्रीका में खुद को फर्स्ट क्लास के बाहर फेंके जाने की घटना को उन्होंने करोड़ों अश्वेतों की तकलीफों से जोड़कर जनांदोलन खड़ा कर दिया। उनके हक के लिए वे उतनी ही निष्ठा से लड़े, जितनी निष्ठा से अपनी मातृभूमि की आजादी की लड़ाई लड़ी। यही उनके महामानव होने की निशानी थी।

महात्मा गांधी की सैद्धांतिक विरासत का डंका समूची दुनिया में बज रहा है। वे पहले भारतीय थे, जो भारत को वैश्विक नक्शे पर ले गए। पृथ्वी पर जहाँ भी गैर-बराबरी और अन्याय की बात होती है, गांधी याद आते हैं, प्रेरणा देते हैं। यह गांधी के विचारों की ही ताकत है कि समूची



पत्रकारिता का जाना-माना नाम। जन्म और संस्कार पाया काशी में। नौकरी के लिए लखनऊ में रहे। पंद्रह साल तक 'जनसत्ता' के राज्य संवाददाता रहने के बाद दो साल 'हिंदुस्तान' लखनऊ में संपादकी की। इंडिया टी.वी. में नींव से निर्माण तक। कैलास-मानसरोवर की अंतर्यात्रा कराती पुस्तक 'द्वितीयोनास्ति', 'तमाशा मेरे आगे' प्रकाशित एवं अयोध्या पर दो पुस्तकें 'युद्ध में अयोध्या', 'अयोध्या का चश्मदीद' अत्यंत चर्चित।

दुनिया में जहाँ भी जाइए, महात्मा गांधी की प्रतिमाएँ मिलेंगी। यहाँ तक उस दक्षिण अफ्रीका में भी, नस्ली भेदभाव के चलते जहाँ उन्हें ट्रेन से फेंका गया था। उस ब्रितानिया हुकूमत की संसद् के सामने भी, जिसकी सत्ता को उन्होंने भारत से उखाड़ फेंका था।

गांधी को पढ़ना, उनको समझना, फिर उन तक पहुँचने की कोशिश साधारण काम नहीं है। कल्पना कीजिए उस सादगी की, जहाँ देश को आजादी दिलानेवाला हाड़-मांस का आदमी चरखे पर सूत कातकर अपना कपड़ा पहनता था। जिसकी अगवानी करने के लिए वायसराय का जहाज हर वक्त तैयार रहता था। उस शख्स ने अपनी पूरी उम्र रेल के तीसरे दर्जे में सफर करते हुए काट दी। यह उस महात्मा का आत्मबल था कि हताशा और गुलामी से पथराए देश में उन्होंने स्वाधीनता संग्राम की प्राणवायु भर दी। यही प्राणवायु आँधी बन गई। अंग्रेजों की नौकरी करते हुए मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी को भी कहना पड़ा—

'बुद्धू मियाँ भी हजरते गांधी के साथ है
गो मुश्तखाक है मगर आँधी के साथ है।'

गांधी के आलोचक मिल जाएँगे। उनके लिए आज भी गांधी जिंदा हैं। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी गांधी की विफलताएँ तलाशेंगे। उन्हें गालियाँ देंगे। उनकी बौद्धिक कंगाली यह है कि उनके पास अपना कोई प्रेरक प्रतीक पुरुष नहीं है, दुनिया में जो आज भी प्रासंगिक और प्रेरक हो। महात्मा गांधी की अपनी सीमाएँ थीं। गांधी मनुष्य थे, संत नहीं। मनुष्य की कमजोरियाँ उनमें हो सकती हैं। पर वे ईमानदार थे। इसका ऐलान वे खुद करते थे। अपनी कमजोरियों पर परदा डालनेवाले बेईमानों को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। गांधीजी के जन्म के १५० साल पर गांधीजी की शख्सियत के हर पहलू पर बात हुई है। मुझे जब प्रभातजी ने लिखने

को कहा तो जाने क्यों एक विचार सूझा, मुझे लगा कि क्यों न गांधीजी के जीवन के अनसुने या कम सुने किस्सों को खोजा जाए। गांधीजी कहते भी थे कि 'माई लाइफ इस ए मैसेज'। इन किस्सों को पढ़कर गांधीजी के व्यक्तित्व का रेखाचित्र और बेहतर तरीके से खींचा जा सकता है। हम गांधीजी के वे किस्से आपको बताएँगे, जो उनकी महानता को आयाम देते हैं।

सेवाग्राम के दिनों की बात है। उस रोज गांधीजी का जन्मदिन था। कस्तूरबाजी ने शाम को आश्रम में घी का दीया जलाया। गांधीजी उस वक्त वहाँ नहीं थे। लौटने पर उन्होंने आश्रम में दीया जलते देख वहाँ बैठे आश्रमवासियों से पूछा कि यह दीया किसने जलाया है? कस्तूरबा बोलीं, 'मैंने जलाया है।' गांधीजी ने उदासी भरे स्वर में कहा, 'मेरे जन्मदिन पर यह दीया जलाना बुरी बात हुई।' कस्तूरबा विचार करने लगीं कि इसमें इतनी बुरी बात क्या हो गई। आश्रमवासी भी चकित होकर सोचने लगे।

गांधीजी ने सफाई दी, 'कस्तूरबा! तुम जानती हो न कि गाँव के लोग कितने निर्धन हैं। उन्हें रोटी पर चुपड़ने के लिए तेल नहीं मिलता और तुम मेरे जन्मदिन पर घी के दीये जला रही हो। इससे बड़ी फिजूलखर्ची क्या हो सकती है?' कस्तूरबा इससे संतुष्ट नहीं हुईं। उन्होंने नम्रता से गांधीजी से पूछा, 'आप ही ने तो कुछ दिन पहले एक प्रवचन में कहा था कि गलत और बुरी जगह खर्च करना फिजूलखर्ची है। मैंने तो पवित्र भावना से एक पवित्र काम से इस दीये को जलाया है।'

गांधीजी ने कस्तूरबा से कहा, 'जो वस्तु निर्धन लोगों को नसीब नहीं होती, उसका उपयोग करने का हमें भी कोई अधिकार नहीं है। यह घी किसी किसान परिवार में बीमार व्यक्ति के भोजन की पौष्टिकता बढ़ा सकता था। तब यह सही खर्च कहा जाता। गलत जगह खर्च करना ही फिजूलखर्ची है।' गांधीजी ने कहा उपलब्ध संसाधनों का इस्तेमाल सबसे ज्यादा जरूरतमंद व्यक्ति की प्राथमिकता के हिसाब से होना चाहिए।

बहुत कम लोग जानते होंगे कि महात्मा गांधी अपने जीवन में एक बार दाई भी बने थे। उस समय गांधीजी साउथ अफ्रीका के नेटाल प्रांत में रहते थे। यह घटना नेटाल की राजधानी पीटरमारित्जबर्ग की है। गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा उस समय गर्भवती थीं। एक बार रात को अचानक कस्तूरबा को प्रसव पीड़ा होने लगी। महात्मा गांधी उस समय वहीं बैठे कुछ पढ़ रहे थे। जैसे ही गांधीजी को इस बात की जानकारी हुई तो उन्होंने अपने बड़े बेटे हरिलाल को दाई को बुलाने भेजा, लेकिन इस बीच कस्तूरबा का दर्द असहनीय हो गया। बा का दर्द बढ़ता देख गांधीजी ने दाई का इंजतार न कर खुद प्रयास करना उचित समझा और अपने सबसे छोटे बेटे की डिलीवरी कराई। मालूम हो कि गांधीजी जाने-अनजाने दाई नहीं बने। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आंदोलन और अपनी वकालत की व्यस्तता से समय निकालकर गांधीजी दो घंटे के लिए एक चैरिटेबल हॉस्पिटल में मुफ्त अपनी सेवाएँ देते थे। इसके साथ वह समय निकालकर नर्सिंग और डिलीवरी कैसे कराएँ, जैसे विषयों पर किताबें भी पढ़ते थे। इसी का नतीजा था कि उन्होंने बड़ी सरलता से अपने चौथे बेटे का प्रसव खुद कराया।

यह किस्सा साल १९०९ का है, जब महात्मा गांधी अपनी चर्चित किताब 'हिंद स्वराज' लिख रहे थे। उस वक्त गांधीजी जिन-जिन शहरों मसलन पोरबंदर, राजकोट, बंबई में रहे थे, वहाँ एक कहावत प्रचलित थी कि मियाँ और महादेव की नहीं बनती और बन भी नहीं सकती है। दोनों में बहुत फर्क है। महात्मा गांधी को यह बात बिल्कुल भी समझ नहीं आती थी कि यह कहावत किस आधार पर बनी है और इस तरह से क्यों कही जाती है। उनका पूरा जीवन और बचपन के तमाम दोस्त ऐसे ही थे। इनमें शेख महताब भी थे, जिनके साथ वह खेलते थे। गांधीजी को गोश्त खाना इन्होंने ही सिखाया था। गांधी की पहली नौकरी लगी तो उन्हें नौकरी देनेवाले दक्षिण अफ्रीका के दादा अब्दुल्ला थे। गांधी लौटकर भारत आए। उन्होंने तय किया कि अगर मार्च के दौरान उनकी गिरफ्तारी हुई तो मार्च का नेतृत्व अब्बास तैयबजी करेंगे। इसीलिए गांधी को यह नहीं समझ आता था कि यह मुहावरा क्यों बना, कैसे बना और क्यों लोगों में प्रचलित है? जब उनसे किसी ने पूछा कि मुसलिम लीग की 'टू नेशन थिअरी' (द्वि राष्ट्र सिद्धांत) पर आपका क्या कहना है? तो उनका कहना था कि 'यह बिल्कुल गलत है।' इस देश में 'टू नेशन थिअरी' हो ही नहीं सकती है और अगर हो सकती है तो थ्री, फोर फाईव नेशन थियरी क्यों नहीं है? ईसाई कहाँ जाएँगे, जैन का क्या होगा, बौद्धों का क्या करेंगे आप? अगर धर्म ही आधार है तो इनका क्या होगा, इन धर्मों ने कौन सा गुनाह किया है? तो यह हो नहीं सकता, यह संभव नहीं है। उस समय भारत के वायसराय वॉवेल थे। गांधी की उनसे कलकत्ता में मुलाकात हुई तो उन्होंने कहा कि 'हम जिस हाल में हैं, हमें छोड़ दीजिए। हमें छोड़कर चले जाइए, हम अपनी समस्याएँ खुद हल कर लेंगे, क्योंकि आप रहेंगे तो आग में घी डालने का काम करते रहेंगे।' उन्होंने लगभग इन शब्दों में वॉवेल से कह दिया कि आपकी जरूरत नहीं है, क्योंकि आपके रहते हिंदू-मुसलमान एकता हो ही नहीं सकती है।

आजाद हिंद फौज के तमाम लोग जब गिरफ्तार हुए और उन पर मुकदमा चलनेवाला था तो गांधी उनसे मिलने गए। ये सभी लाल किले में बंद थे। गांधी ने पाया कि उन्होंने कलकत्ता में वॉवेल से जो बात कही थी कि आपके रहते एकता नहीं हो सकती, वह कितनी सच थी। आजाद हिंद फौज के लोगों ने गांधी को बताया कि यहाँ सुबह हाँक लगती है कि हिंदू चाय तैयार है और मुसलमान चाय अभी आनेवाली है। गांधी ने पूछा कि 'आप क्या करते हैं, अगर हिंदू चाय और मुसलमान चाय अलग अलग दी जाती है?' उनका कहना था कि 'हमने एक बड़ा सा बरतन रखा है और उसमें हिंदू चाय और मुसलमान चाय मिला देते हैं, और फिर बाँटकर पी लेते हैं।' महात्मा गांधी ने सुभाष चंद्र बोस के काम करने के ढंग, हिंसा पर उनकी राय, आजाद हिंद फौज के गठन और फौज के जरिए आजादी हासिल करने की कोशिश की कई बार आलोचना की थी। लेकिन लाल किले से लौटने के बाद गांधी ने साफ-साफ शब्दों में कहा कि 'सुभाष चंद्र बोस एक राष्ट्रवादी नेता हैं और उनका सबसे बड़ा योगदान एक पूरा संगठन खड़ा करना और उसमें हिंदू-मुसलमान का भेद मिटा देना है और इसके लिए मैं उन्हें सलाम करता हूँ।'

महात्मा गांधी की जिंदगी का एक पहलू उनका मजाकिया होना था। गांधी खुद अपने बारे में कहते थे कि अगर मुझमें 'सेंस ऑफ ह्यूमर' न होता, मैं मजाक न कर पाता तो मैंने आत्महत्या कर ली होती। जब मौका मिलता था, गांधी खुद भी ठहाका लगाकर हँसते थे। एक बार एक अंग्रेज रिपोर्टर ने उनसे पूछा, 'आप तीसरे दर्जे में सफर क्यों करते हैं?' जवाब में उन्होंने कहा, 'बहुत आसान है, इसलिए कि चौथा दर्जा नहीं होता।' दूसरा किस्सा लंदन के बकिंघम पैलेस में किंग जॉर्ज पंचम से उनकी मुलाकात का है। जब गांधीजी गोल मेज सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए लंदन गए थे, वह धोती पहनकर ही बकिंघम पैलेस चले गए। इस पर तमाम लोगों को एतराज था। उन्हें लगता था कि गांधी को ठीक-ठाक कपड़े पहनकर जाना चाहिए। इस पर गांधी ने कहा, 'मुझे कपड़े पहनने की क्या जरूरत है, जितने कपड़े आपके राजा के बदन पर हैं वे हम दोनों के लिए काफी हैं।' यह अंदाज था गांधी के बात करने का और बातों-बातों में सत्ता के अहंकार को लाजवाब कर देने का।



यह बात साल १९१० की है। गांधीजी जोहन्सबर्ग में थे। वहाँ सरकारें हर रोज नए फरमान जारी करती थी। उसी दौरान एक फरमान आ गया कि जिनकी शादियाँ दक्षिण अफ्रीका में रजिस्टर्ड नहीं हैं, उनको पति पत्नी नहीं माना जाएगा। यह बात बहुत गंभीर थी, क्योंकि इससे कई लाख भारतीय मूल के लोग प्रभावित होनेवाले थे। गांधी घर लौटे और उन्होंने बा से कहा, 'तुम आज से मेरी रखैल हो गई।' बा ने कहा, 'क्या बात हुई? मेरी शादी हुई है, आप इस तरह की बात कैसे कह रहे हैं?' गांधी ने कहा, 'सरकार ने कानून बना दिया है, अब हमारी शादी मान्य नहीं है और अब अगर तुम मेरे साथ रहोगी तो मेरी रखैल रहोगी।' यह बात सिर्फ घर के अंदर नहीं रही, यह बात फैलने लगी। पूरे दक्षिण अफ्रीका में जो भारतीय समाज था, उसके बीच यह बात फैल गई। बा ने वहाँ भारतीय लोगों को संगठित किया। पहली बार दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन के समय औरतें और बच्चे अपने-अपने घरों से बाहर निकले। उन्होंने छह मील लंबा जुलूस निकाला और सरकार को यह कानून वापस लेना पड़ा। यह सिर्फ एक बात को कहने का ढंग ही था, जो बताता है कि गांधी कैसे सोचते थे और कैसे चीजों को अपने हक में बदल देते थे।

महात्मा गांधी बेखौफ इनसान थे। उन्हें किसी चीज से डर नहीं लगता था। वे चाहते थे कि उनके आसपास के लोगों के दिल से भी डर नाम की चीज न रहे। लेकिन एक चीज थी, जिससे गांधी खुद हमेशा डरते रहे थे। यह डर था कि कोई उन्हें ईश्वर न बना दे। भगवान् बनाकर उनकी मूर्ति न स्थापित कर दे। उनकी पूजा न शुरू कर दे। उनको लगता था कि वह दुनिया को कोई मैसेज देने के काबिल नहीं हैं। वे कहते थे, 'आई हैव नो मैसेज फॉर द वर्ल्ड। बट माई लाइफ इज माइ मैसेज।' यह चीज गांधी के लिए हमेशा डर का सबब रही।

अमरीका से, इंग्लैंड से तमाम लोग उन्हें खत लिखते थे। खासतौर पर माएँ, जिनके बच्चे बीमार होते थे, उनसे अनुरोध करती थीं, प्रार्थना करती थीं कि अगर वे उनके बच्चे के लिए दुआ करेंगे तो वह ठीक हो जाएगा, क्योंकि उनके अंदर ईश्वर का अंश है। गांधी ने एक-एक चिट्ठी का जवाब दिया और हर बार एक ही बात लिखी कि मैं कोई चमत्कार नहीं करता। मेरे अंदर ईश्वर का अंश है, लेकिन ईश्वरत्व नहीं है। मुझे वह मत दीजिए, जो मेरे पास नहीं है। मैं वह लेना ही नहीं चाहता। एक बार एक बहुत मजेदार किस्सा हुआ। गांधी अपने तमाम सत्याग्रहियों, सहयोगियों के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक गाँव पड़ा। एक बड़ा सा पेड़ था और उसके नीचे एक कुआँ था। गांधी को लगा कि यहाँ थोड़ी देर आराम कर सकते हैं, क्योंकि धूप निकल आई थी और पैदल चलना मुमकिन नहीं था। गांधी बैठ गए। लोग खाना पकाने के लिए पानी निकालने गए। तो पता लगा कि कुएँ में पानी नहीं है। कुआँ सूखा हुआ है। अब लोगों ने आकर महात्मा से बहुत हिम्मत जुटाकर कहा कि बापू, कुएँ में पानी नहीं है, सूखा है। उन्होंने कहा कि जो भी है, अब मैं बैठ गया हूँ। अब पानी का बंदोबस्त यहीं करिए। साथ के कार्यकर्ता दूसरे गाँव जाकर पानी ले आए। उनके नहाने का इंतजाम किया। खाना बना। जब गांधी शाम को वहाँ से उठकर चले गए तो अचानक एक सोता फूटा और कुएँ में पानी आ गया। गाँव के लोग इतने खुश कि उनको लगा कि यह गांधी बाबा का चमत्कार है। गाँव के लोगों ने 'चमत्कारी बाबा' कहा। वे न आए होते तो हमारे सूखे कुएँ में पानी न आता। हमें कई-कई मील जाकर पानी लाना पड़ता। उन्होंने सोचा कि इसके लिए महात्मा को धन्यवाद देना चाहिए तो घर से लोटा, थाली, गिलास, जिसके हाथ जो आया, बजाते हुए, भजन गाते हुए ये लोग अगले गाँव पहुँचे, जहाँ तब तक गांधी पहुँच गए थे। उन्हें वहीं रुकना था। शोर हुआ, बापू उठे। झोंपड़ी से बाहर आए और उन्होंने कहा कि पहले तो यह शोर बंद करो और सुनो, मैं क्या कह रहा हूँ। उन्होंने कहा कि अगर कोई कौवा बरगद के पेड़ पर बैठ जाए और पेड़ गिर पड़े तो वह कौवे के वजन से नहीं गिरता। कौवे को यह मुगालता हो सकता है कि उसके वजन से पेड़ गिरा, लेकिन मुझे ऐसा कोई मुगालता नहीं है। मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है। बेहतर होगा कि तुम लोग यह भजन-कीर्तन बंद करो और अपने गाँव वापस जाओ।

कम ही लोगों का पता है कि गांधी संगीत-प्रेमी भी थे। गांधी का मानना था कि सत्याग्रह को संगीत से जोड़िए। उससे और लोग जुड़ेंगे। वे 'वैष्णव जन' गाते थे। उनका प्रिय भजन था 'रघुपति राघव राजा राम'। गांधीजी यरवदा जेल में थे। दलितों के पक्ष में आंदोलनरत गांधीजी आमरण अनशन पर बैठने जा रहे थे। अनशन पर बैठने से पहले उन्होंने सरदार पटेल और महादेव देसाई को बुलाया और 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है' यह गीत गाने लगे। बाद में सरदार

पटेल और महादेव देसाई सबने गाना शुरू किया। फिर जेल में जितने और कैदी थे, वे भी गाने लगे। पूरा माहौल बन गया। उनकी दिलचस्पी सिर्फ हिंदुस्तानी संगीत में नहीं थी। पाश्चात्य संगीत में भी उनकी रुचि थी। गोल मेज सम्मेलन के लिए गांधी लंदन में थे। वहाँ एक आश्रम था, जिसको किंग्सले हॉल कहा जाता था। यह पूर्वी लंदन का इलाका था। गांधी रोज शाम काम निपटाकर किंग्सले हॉल के सभागार में चले जाते। वहाँ कुछ स्थानीय लोग इकट्ठा हो भजन गाते। स्कॉटलैंड का एक लोकगीत था, जिसको रॉबर्ट बर्न्स ने बाद में नए ढंग से लिखा। 'आउड लैंग साइन', यानी गए जमाने की बात। गांधी इसे भी गाते थे।

एक दिन शनिवार को जब वे किंग्सले हॉल पहुँचे और गाना शुरू हुआ तो अचानक एक महिला ने हाथ उठाकर गांधीजी से कहा कि आप हमारे साथ नाचना चाहेंगे? गांधी ने देखा कि वहाँ जितने लोग थे, वे या तो पति-पत्नी थे या दोस्त थे, एक लड़का, एक लड़की साथ में नाच रहा था। गांधी ने कहा जरूर। मैं नाचूँगा लेकिन एक शर्त पर कि मेरा जोड़ीदार मेरी छड़ी होगी और गांधी अपनी छड़ी के साथ किंग्सले हॉल के उस सभागार में नाचे।

उसी गोल मेज सम्मेलन के बाद गांधीजी रोम्या रोलाँ से मिलने फ्रांस गए। उन्हें पता था कि रोम्या रोलाँ बहुत अच्छा पियानो बजाते हैं। उन्होंने कहा कि आप मुझे बिथोविन की पाँचवीं सिंफनी सुना दीजिए। रोम्या रोलाँ बीमार थे। बहुत मुश्किल से उन्हें बिस्तर से उठाकर पियानो पर बिठाया गया। उनकी उँगलियाँ पियानो पर रखी गईं और रोम्या रोलाँ ने वो सिंफनी बजाकर गांधी को सुनाई। रोम्या रोलाँ ने एक गीत अपनी तरफ से बजाया और गांधी ने उस गाने की अगली पंक्तियाँ दोहराईं। उन्हें वह भी मालूम था।

महात्मा गांधी छुआछूत के सख्त खिलाफ थे। सभी को एक ही ईश्वर ने बनाया है, इसलिए उनमें भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। दक्षिण भारत के दौरे में जब गांधी मायावरम पहुँचे, तब उनका एक नए शब्द पंचम से सामना हुआ। पंचम शब्द का प्रयोग दक्षिण भारत में दलितों के लिए किया जाता था। वहाँ यह मान्यता थी कि पंचम हिंदू धर्म में चार वर्णों की व्यवस्था से बाहर पाँचवाँ दलित वर्ण हैं। मायावरम में पंचमों से मुलाकात के बाद महात्मा गांधी को दक्षिण अफ्रीका के अपने वे दिन याद आए, जब वे दलितों को अपने घर खाने के लिए बुलाते थे और महसूस करते थे कि कोई उनका विरोध कर रहा है। यह एक तरह का दबा हुआ विरोध खुद कस्तूरबा गांधी की तरफ से होता था। कस्तूरबा को लगता था कि शायद भारत लौटकर यह समस्या और बड़ी तथा विकराल होगी। कस्तूरबा गांधी का यह अनुमान गलत नहीं था। जब गांधी चंपारण जानेवाले थे और बाँकीपुर स्टेशन उतरे, जो पटना का पुराना नाम था, तो कुछ लोग उन्हें राजेंद्र प्रसाद के घर ले गए। उस समय राजेंद्र प्रसाद घर पर नहीं थे और वहाँ मौजूद नौकर गांधी को पहचानते नहीं थे। इसलिए उन्हें बाहरवाले कमरे में ठहरा दिया गया। उन्हें लगा कि यह शख्स पता नहीं किस जाति या धर्म का होगा। इस व्यवहार से गांधी बहुत ही खिन्न हुए।

बाद में गांधी ने जब अहमदाबाद के पास अपना आश्रम बनाया, तब ठक्कर बापा का पत्र लेकर एक आदमी उनके पास आया। उस पत्र में ठक्कर बापा ने लिखा था, ''आप कहते हैं कि सभी लोग बराबर हैं और अगर आश्रम के नियमों का पालन करेंगे तो उन्हें आश्रम में रहने की जगह दी जाएगी। इसलिए मैं एक आदमी को आपके आश्रम में रहने के लिए भेज रहा हूँ। वे एक दलित हैं और आपको उन्हें आश्रम में रखने पर विचार करना है।'' गांधी ठक्कर बापा को मना नहीं कर सकते थे। जो व्यक्ति आश्रम में रहने आए, उनका नाम दूदा भाई था। उनके साथ उनकी पत्नी दानी बेन और एक छोटी बच्ची थी। इन तीनों को गांधी ने आश्रम में जगह दी तो अहमदाबाद में हंगामा हो गया। जुलूस निकला और नारे लगे। जो सवर्ण आश्रम को चंदा देते थे, उन्होंने चंदा देना बंद कर दिया। आश्रम बंद होने की नौबत आ गई। आसपास के लोगों ने गाली देना शुरू कर दिया और दूदा भाई का जीना हराम कर दिया। लेकिन गांधी अपने फैसले पर टस-से-मस नहीं हुए।

जब गांधी को यह पता चला कि कस्तूरबा जाने-अनजाने आश्रम के इस विरोध का केंद्र बन गई हैं और दूदा भाई को आश्रम में रखने का विरोध कर रही हैं तो गांधी ने कहा कि यह नहीं होगा। गांधी कहते हैं कि उन्होंने बहुत ऊँची आवाज में कस्तूरबा से कहा कि वे अपना फैसला नहीं बदलेंगे। उन्होंने कस्तूरबा से यहाँ तक कह दिया कि अगर वे चाहें तो अपना अलग रास्ता अपना सकती हैं। इसे झगड़ा नहीं माना जाएगा, लेकिन अब वे दोनों एक साथ नहीं रह सकते। यह उनका तलाक होगा। बाद में कुछ नहीं हुआ। दूदा भाई आश्रम में रहे और उनकी पत्नी भी रहीं। सबकुछ ठीक-ठाक हो गया। जो धन बंद हो गया था, वह दूसरे स्रोत से आने लगा था। गांधी दलितों को मुख्यधारा में लाने के लिए जो कुछ भी कर सकते थे, उन्होंने किया। इस हद तक किया कि अगर इससे उनका परिवार प्रभावित हो जाए या उनका वैवाहिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाए, उन्हें फर्क नहीं पड़ता था।

गांधीजी क्रिकेट के न केवल खिलाड़ी थे, बल्कि यह खेल उनकी पसंद में पहले नंबर पर था। मशहूर लेखक कौशिक बंद्योपाध्याय यदि 'Mahatma On the Pitch : Gandhi and Cricket in India' नामक किताब नहीं लिखते तो दुनिया जान ही नहीं पाती कि कद-काठी में दुबला-पतला यह इनसान क्रिकेट का भी बेपनाह शौक रखता था। सही मायने में उन्हें भी ठीक उसी तरह का क्रिकेट जुनून था, जैसा आज के युवाओं में होता है। 'Mahatma On the Pitch : Gandhi and Cricket in India' पुस्तक में गांधीजी के क्रिकेट प्रेम की झलक साफ दिखाई देती है। रतीलाल गेलाभाई मेहता गांधीजी के करीबी दोस्त हुआ करते थे। दोनों हाईस्कूल तक साथ पढ़े थे। बचपन के सखा रतीलाल के मुताबिक भले ही मोहनदास करमचंद गांधी को स्कूली दिनों में व्यायाम में दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन क्रिकेट में वे अव्वल रहते थे। गांधीजी गेंदबाज और बल्लेबाज दोनों थे।

रतीलाल गेलाभाई मेहता ने कौशिक बंद्योपाध्याय की किताब में एक किस्से का भी जिक्र किया, जो बेहद मजेदार होने के साथ ही गांधीजी के क्रिकेट पारखी होने का सबूत भी देता है। मेहता बताते हैं कि

एक बार हम राजकोट सिटी और राजकोट सदर का क्रिकेट मैच देख रहे थे। यह मैच जब निर्णायक मोड़ पर आ गया था, तभी गांधीजी ने कहा कि देखना, अब यह खिलाड़ी आउट होगा, और सचमुच वह आउट हो गया। अहिंसा के पुजारी का यह भी एक बेहद दिलचस्प रूप था।

स्वतंत्रता के आंदोलन में हिस्सा लेनेवाले प्रमुख नेताओं में से एक बिहार के डॉ. सैयद महमूद थे। एक बार वह सेवाग्राम स्थित गांधीजी के आश्रम में उनसे मिलने गए। उस समय डॉ. महमूद बीमार थे। जब गांधीजी ने उनको बीमार देखा तो तबीयत ठीक होने तक आश्रम में रहने को कहा। लेकिन डॉ. महमूद ने इनकार कर दिया। जब गांधीजी ने जोर दिया तो उन्होंने अपनी मजबूरी बताई। दरअसल डॉक्टरों ने उनको ठीक करने के लिए 'चिकन सूप' लेने को कहा था। लेकिन आश्रम में मांसाहारी खाने की अनुमति नहीं थी। गांधीजी ने कहा कि उनको आश्रम छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। 'क्या आश्रम के रहनेवाले लोग इस बात को नहीं समझेंगे? मैं सुनिश्चित करूँगा कि आपको अच्छी तरह बना चिकन सूप मिले।' गांधीजी के जवाब से डॉ. महमूद हैरान हो गए। वे आश्रम में रुक गए।

गांधी महामानव थे। उनके भीतर की अथाह मानवता ही उनके विचारों का प्राणतत्त्व थी। उनका एक-एक विचार उनके कर्म की कसौटी पर खरा उतरता है। पर उपदेश कुशल बहुतेरे की इस दुनिया में गांधी एक अजूबे की तरह हैं। सत्य और अहिंसा को लेकर उनके प्रयोग संपूर्ण विश्व के उद्धार का मोक्ष-द्वार हैं। सविनय अवज्ञा के अमोघ अस्त्र से विश्व की सबसे शक्तिशाली ताकत को घुटने के बल झुका देने का उनका जज्बा अप्रतिम है, अतुलनीय है। विश्व मानवता की प्रेरणा का शाश्वत स्तंभ है। आज के दौर में जब अन्याय, असत्य और अनाचार लोकतंत्र का मुखौटा ओढ़कर हमले कर रहा है, गांधी और भी प्रासंगिक हो उठे हैं। समाज के अंतिम व्यक्ति की आँख से आँसू पोंछने का उनका दर्शन आज भी विश्व की आर्थिक खुशहाली का मूल मंत्र है। गांधी व्यक्ति नहीं हैं, विचार हैं। विचारों का विस्फोट हैं। जीवन जीने की कला हैं। उनका वाद मानवता के भविष्य का वाद है। मूल्यों की स्थापना का वाद है। वास्तविक रामराज्य का वाद है। सा अ

आसावरी, जी-१८०, सेक्टर-४४
नोएडा-२०१३०१
hemantmanusharma@gmail.com

महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति

• रामधारी सिंह 'दिनकर'

गांधीजी के दर्शन मैंने असंख्य बार किए थे, मगर उनके साथ मुलाकात या साक्षात्कार करने का सुयोग मुझे कभी नहीं मिला।

सबसे पहली बार मैंने गांधीजी के दर्शन सन् १९२० के दिसंबर महीने में किए थे, जब वे बरौनी जंक्शन और सिमरियाघाट होकर कलकत्ता जा रहे थे। उस समय मेरी उम्र बारह साल की थी। हमारे प्राइमरी स्कूल के मास्टर साहब साहित्यिक प्रवृत्ति के थे और 'साप्ताहिक प्रताप' मँगाया करते थे। उसमें कर्मवीर मोहनदास गांधी का नाम मैंने कई बार पढ़ा था। गांधीजी की ट्रेन बरौनी से रात में निकलनी थी। जनता की ओर से यह आयोजन किया गया था कि जितनी देर गाड़ी बरौनी जंक्शन के प्लेटफॉर्म पर ठहरे, उतनी देर में प्लेटफॉर्म पर ही एक सभा कर ली जाए और गांधीजी सभा में आकर जनता को दर्शन दें।

शाम को मास्टर साहब ने मुझसे पूछा, "क्या तुम भी चलोगे?" मैंने बड़े उत्साह से उनके साथ बरौनी जाना चाहा। घर के लोगों से राय लेना मैंने ठीक नहीं समझा; क्या पता वे कोई बाधा उपस्थित कर दें।

सभा छोटी ही थी। सभा के बीच में मेज पर दो कुरसियाँ डाल दी गई थीं। हम लोग उसी उत्सुकता से गांधीजी की राह देख रहे थे, जिस उत्सुकता से किसी देवता की प्रतीक्षा की जा सकती है। थोड़ी देर में आगे-आगे मौलाना शौकत अली और पीछे-पीछे गांधीजी ने सभा में प्रवेश किया। शौकत अली पनियाले का कुरता पहने हुए थे, जो रात में भी चमचमा रहा था। मौलाना का शरीर बहुत बड़ा था और कुरता उससे भी कुछ ज्यादा बड़ा।

गांधीजी मौलाना के पीछे-पीछे आए थे। वे धोती, कुरता और गांधी टोपी पहने हुए थे। जाड़े से बचने के लिए वे एक सूती दोहर भी लपेटे हुए थे। चूँकि मौलाना आगे-आगे आ रहे थे, हमने उन्हीं को गांधीजी मानकर प्रणाम किया। किंतु सभा में आकर मौलाना कुरसी पर बैठे और गांधीजी पालथी मारकर मेज पर। फिर मौलाना ने भाषण शुरू किया—'यही छोटा सा आदमी गांधी है। मैं चाहूँ तो इसे अपनी जेब में डाल ले सकता हूँ। मगर इसकी रूहानी ताकत के सामने मैं तो क्या, ब्रिटिश एंपायर भी कुछ नहीं है।'

गांधीजी को दुबला और कमजोर पाकर हम लोगों को निराशा हुई थी। किंतु मौलाना शौकत अली ने गांधीजी की जो बड़ाई की, उससे हमारा हौसला बढ़ा।

गांधीजी ने उस दिन लंबा भाषण नहीं दिया था। लंबा भाषण देने का समय ही नहीं था। उन्होंने हिंदू-मुसलिम एकता एवं चरखे पर सबसे ज्यादा जोर दिया था और यह भी कहा था कि अगर हिंदुओं व मुसलमानों के बीच पूरा मेल हो जाए तथा भारतवासी स्वदेशी का व्रत ले लें तो एक साल में स्वराज्य आ सकता है।

गांधीजी की सादगी, विनम्रता और धीरे-धीरे बोलने की अदा का हम पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। गांधीजी के प्रथम दर्शन का दिन मेरे लिए बड़े सौभाग्य का दिन था और उस रात मैं फूलता हुआ घर को लौटा था। सा अ

(श्री शंकरदयाल सिंह की पुस्तक 'महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति' से साभार)

आलेख



महात्मा गांधी की संप्रेषणीयता

• सच्चिदानंद जोशी

भारतीय जीवन में भावनाओं का विशेष महत्त्व है। हम भावनाओं में जीते हैं और कई बार अति भावुकता का शिकार हो जाते हैं। इसीलिए हमारे लिए प्रायः व्यक्ति विचार से बड़ा हो जाता है। हमारा देश आस्थाओं और परंपराओं का देश है। हमारी परंपराएँ पुरातन हैं और हमारी आस्थाएँ दृढ़ हैं। फिर भी अति भावुकता के कारण हम कई बार विचारों के साथ न्याय नहीं कर पाते। हम विचारों को भी भावनाओं के धरातल पर परखने की कोशिश करते हैं और इस प्रक्रिया में धोखा खा जाते हैं।

हमारे इस गुण के कारण अकसर ऐसा होता है कि हम किसी भी व्यक्ति या विचार का आकलन पूरे तथ्यपरक ढंग से नहीं कर पाते। महात्मा गांधी के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही हुआ है। एक व्यक्ति के रूप में हमने महात्मा गांधी को इतना अधिक पूज्य माना है कि उनके देवतुल्य व्यक्तित्व की हम लोग उपासना करने लगे हैं। उनके नाम का स्मरण ईश्वरीय हो गया है और धारणा यह बनने लगी है कि उनके नाम का स्मरण करने मात्र से ही हमें परेशानियों के समाधान उपलब्ध होने लगेंगे। फलतः एक व्यक्ति के रूप में तो गांधीजी बहुत गहरे तक हमारे भारतीय समाज में पहुँचे हुए हैं, लेकिन एक विचार के रूप में, एक दर्शन के रूप में हम उन्हें उस रूप में ग्रहण नहीं कर पाए, जिस रूप में हमें करना चाहिए था। आज हम अपने आप को गांधी का अनुयायी कहने के बावजूद ऐसी अनेक प्रवृत्तियों और परेशानियों के शिकार हैं, जिनके बारे में गांधीजी वर्षों पूर्व ही हमें आगाह कर चुके थे। गांधीजी ने जीवन के विभिन्न आयामों पर इतना विस्तृत और कालजयी चिंतन किया है कि समूचा विश्व उन्हें एक जीवन-द्रष्टा के रूप में स्वीकार करने को बाध्य है। महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन से लेकर अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा तक सभी गांधीजी के विचारों से प्रेरणा पाते रहे हैं। समूचे विश्व में आज भी यदि कोई एकमात्र भारतीय नाम पूरे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है तो वह महात्मा गांधी का ही है।

एक विचार के रूप में गांधीजी उनके विराट् व्यक्तित्व से भी कहीं अधिक ऊँचे और महान् थे। गांधीजी के विचारों की थाह ले पाना बड़े बड़े चिंतकों, विचारकों और बुद्धिजीवियों के लिए कठिन है। गांधीजी के विचार आज के इस दौर में भी सर्वथा उचित और महत्त्वपूर्ण हैं, जो विचारों की विजय है।


पत्रकारिता एवं संचार के साथ-साथ संप्रेषण कौशल, व्यक्तित्व विकास, लैंगिक समानता, सामाजिक सरोकार और समरसता चिंतन तथा लेखन के मूल विषय। कविता, कहानी, व्यंग्य, नाटक, टेलीविजन धारावाहिक, यात्रा-वृत्तांत, निबंध, कला-समीक्षा आदि विधाओं में विपुल लेखन। विश्वविद्यालय के कुलसचिव और कुलपति होने का गौरव प्राप्त।

सन् १९०९ में रचित ग्रंथ 'हिंद स्वराज' की पंक्तियाँ, जिसमें गांधीजी ने लिखा है, ''यह किताब द्वेष धर्म की जगह प्रेम धर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है तथा पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।'' आज भी प्रासंगिक हैं तथा विश्व की तमाम समस्याओं का हल इन्हीं पंक्तियों में छुपा नजर आता है।

हिंद स्वराज के माध्यम से गांधीजी कई ऐसी बातों की ओर इशारा किया था, जो आनेवाले समय में देश और समाज के लिए मानक सिद्ध होंगी। गांधीजी ने इसके माध्यम से यांत्रिकीकरण यानी मेकैनाइजेशन, व्यवसायीकरण, यानी प्रोफेशनलिज्म, औद्योगिकीकरण, यानी इंडस्ट्रीलाइजेशन और संवादहीनता जैसी बातों पर कड़ा प्रहार किया है। जब ये बातें लिखी गईं, तब यह धारणा बनाई गई कि गांधीजी ने यह पुस्तक भावनाओं के प्रवाह में लिखी है, अतः उसकी कई बातों को बाद में ठीक किया जा सकेगा। कई लोग तो उस समय भी इन विचारों से सहमत नहीं थे, जिनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू भी शामिल थे। लेकिन उसके प्रकाशन के तीस वर्ष बाद भी वे शब्दों पर अटल थे और उन्होंने स्पष्ट कहा कि इस पुस्तक में से वे कुछ भी बदलना नहीं चाहेंगे, सिवाय एक शब्द के, जहाँ उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट को 'बेसवा' यानी वेश्या कहा है। 'हिंद स्वराज' को आज सौ वर्ष से अधिक हो गए हैं, लेकिन उसमें लिखे शब्द आज भी अपनी कसौटी पर खरे उतरते हैं। यह गांधीजी के विचारों की दृढ़ता, स्पष्टता और गहराई का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

विश्वप्रसिद्ध संचार विशेषज्ञ मार्शल मैकलूहान ने सन् १९६४ में 'अंडरस्टैंडिंग द मीडिया' में अपना बहुचर्चित कथन 'मीडियम इज द मैसेज' प्रतिपादित किया था। इसका आशय था कि संदेशों के संप्रेषण के लिए अभिव्यक्ति का, जो माध्यम चुना जाता है, वही स्वयं अभिव्यक्ति

बन जाता है।'' प्रकारांतर से यह भी कहा जा सकता है कि संवाद की प्रक्रिया में कभी-कभी संदेश पर माध्यम हावी हो जाता है। संप्रेषण प्रक्रिया को जानने और रेखांकित करने के लिए अकसर मार्शल मैकलूहान के इस कथन का प्रयोग किया जाता है।

संप्रेषण और मीडिया के विद्यार्थियों के लिए यह वाक्य एक ब्रह्म वाक्य की तरह होता है, जिससे वे अपने अध्ययन और भावी कार्यकलापों का ताना-बाना बना सकते हैं। लेकिन इस कथन के शाब्दिक अभिप्राय और सतही वैचारिकता तक ही सारे अध्ययन का ताना-बाना सिमटकर रह जाता है। वर्तमान दौर में विशेषकर संचार माध्यमों में तथा उसके द्वारा प्रभावित होनेवाले समाज में विचारों का जो उथलापन दिखाई देता है, उसका कारण संभवत: यही है कि हम माध्यम और संदेश की अवधारणा को गहराई तक समझ ही नहीं पा रहे हैं।

आज के दौर में हम देखते हैं कि संप्रेषण माध्यमों, विशेषकर दृश्य-श्रव्य माध्यमों जैसे टेलीविजन या रेडियो के संदर्भ तो यह उक्ति शत-प्रतिशत खरी उतरती है। आज संदेश गौण होता जा रहा है और माध्यम उस पर हावी होते जा रहे हैं। सोशल मीडिया के आ जाने के बाद तो स्थिति और भी विस्फोटक होती जा रही है। विचारों की स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और उश्रृंखलता में बदलती जाती दिखाई देती है। इसमें मूल संदेश कहाँ गुम हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। समाज की वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए यह स्थिति आज के दौर में बहुत अधिक स्वस्थ नहीं मानी जा सकती। इसका कारण यह है कि हम माध्यमों का प्रयोग बाजारीकरण को बढ़ावा देने के लिए कर रहे हैं और माध्यमों की वैचारिकता समाप्त होती जा रही है। आज 'क्या देखा, सुना या पढ़ा से' ज्यादा महत्त्वपूर्ण 'कैसे देखा, सुना या पढ़ा' हो गया है। लेकिन मैकलूहान ने जिस समय अपने इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया था, उस समय यह वैचारिकता की सकारात्मक अभिव्यक्ति थी।

महात्मा गांधी ने मैकलूहान के इस सिद्धांत को उसके प्रतिपादन से कई वर्ष पूर्व ही अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सिर्फ सिद्ध कर दिया था बल्कि ग्राह्य भी बना दिया था। महात्मा गांधी एक व्यक्ति के रूप में अपने संदेश के लिए सबसे बड़े माध्यम बन गए थे। यह वह दौर था, जब संदेशों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए आधुनिक साधन नहीं थे। जो साधन थे, वे भी भारत की गरीब और गुलाम जनता के लिए आसानी से मुहैया नहीं थे। इस दौर में गांधी स्वयं एक बहुत व्यापक साधन के रूप में उभरकर सामने आए।

यदि हम गांधीजी के व्यक्तित्व का आकलन परंपरागत व्यक्तित्व मानकों पर करें तो देखेंगे कि वे एक साधारण कद-काठी वाले, बहुत प्रभावशाली वक्तृत्व न रखनेवाले, अपने कामों में ही मगन रहनेवाले थे। लेकिन क्या कोई व्यक्ति उनके व्यक्तित्व के जादुई प्रभाव की बराबरी आज तक कर पाया है। गांधीजी के दौर में वे क्या करते हैं और क्या सोचते हैं, यह भारतीयों के लिए ही नहीं वरन् समूचे विश्व के लिए कौतूहल और आकर्षण का विषय रहता था। उन्हें अपने संदेशों को प्रसारित करने के लिए विशेष प्रयास नहीं करने पड़ते थे। उनके संदेश या उनके विचार उनकी कृति के माध्यम से ही पूरे देश में प्रसारित हो जाया करते थे। यही कारण था कि उनका अहिंसा और सत्याग्रह का संदेश इतना अधिक कारगर सिद्ध हुआ कि अंग्रेजी हुकूमत की सारी सेनाएँ उसके सामने नतमस्तक हो गईं। गोलियों और लाठियों के उत्तर में सत्याग्रह और अहिंसा का प्रयोग बहुत जोखिम भरा था, जिसके लिए न सिर्फ वैचारिक दृढ़ता की आवश्यकता थी वरन् सामने उदाहरण बनकर प्रस्तुत होने की भी जरूरत थी। गांधीजी ने इस प्रयोग के लिए हिम्मत दिलाई और एक उदाहरण बनकर राष्ट्र के सामने खड़े हुए।

एक माध्यम के रूप में गांधीजी प्रभाव को सन् १९३० में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान उस सत्याग्रह में दांडी यात्रा में उनके प्रभाव से जाना जा सकता है। कुछ लोगों से शुरू हुई यात्रा में लगभग एक लाख लोग शामिल हुए। ८०,००० लोगों ने गिरफ्तारी दी। प्रारंभ में बहुत साधारण लगनेवाली कृति सिर्फ गांधीजी के स्पर्श के कारण विराट् हो गई। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने सन् १९६० में अमेरिका में जब काले लोगों के नागरिक अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी तो उन्होंने नमक सत्याग्रह से ही प्रेरणा ली थी। असहयोग आंदोलन में १९२२ में चौराचौरी कांड के बाद इस तथ्य के बावजूद कि समूचे आंदोलन ने जोर पकड़ लिया है, गांधीजी ने आंदोलन रोकने की बात कह दी। कारण था प्रतिहिंसा। अधिकांश देशवासी गांधीजी के इस कदम पर आश्चर्यचकित थे। लेकिन गांधीजी की वैचारिक दृढ़ता के आगे पूरा देश नतमस्तक हुआ और आंदोलन रोक देना पड़ा। प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने स्वयं पाँच दिन का उपवास किया था। ऐसी वैचारिक दृढ़ता और उसका संदेश में ऐसा अवतरण बहुत कम ही देखने को मिलता है।

गांधीजी ने अपने आग्रहों को स्वयं पर सिद्ध किया और कृति में उसे दूसरों को करने के लिए प्रेरित किया। चाहे सत्य का आग्रह हो या खादी का, वे सारे प्रयोग स्वयं पर ही करते थे। उनकी कृति ही उनका संदेश बन जाती थी, जिसका बहुसंख्यक भारतीय स्वेच्छा से और आनंदपूर्वक अनुसरण करते थे। गांधीजी के संदेशों और कृति का प्रसार बहुत जल्दी और व्यापकता से होता था। इन संदेशों के लिए गांधीजी का प्रत्यक्ष संपर्क या संवाद आवश्यक नहीं था। इन संदेशों के माध्यम से पूरा वातावरण गांधीमय हो उठता था और अलग-अलग स्थानों पर गतिविधियाँ संचालित होने लगती थीं। गांधीजी ने अपने व्यक्तित्व और कृति से यह सिद्ध कर दिया था कि विचारों की दृढ़ता व्यक्ति को अपने संदेश का सबसे सशक्त माध्यम बना सकती है।

वे अपने विचारों और आग्रहों के सबसे बड़े अनुयायी स्वयं थे। उनका आग्रह नहीं था कि कोई उनके साथ किसी दबाव या जोर-जबर्दस्ती से आए। जिसे उनका मार्ग पसंद था, उसका उनके पास स्वागत था। उनके व्यवहार में यह आग्रह अलग-अलग रूपों में परिलक्षित होता है। उनके लिए आश्रम में संविधान सभा पर चर्चा करने के लिए आए व्यक्तियों की बातबीच में छोड़कर बकरी को चारा खिलाने जाना महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि चारे का समय हो रहा था।

गांधीजी की संप्रेषणीयता का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है

कि पूरे विश्व से लेखक, विचारक, पत्रकार, छायाकार, कलाकार उनसे मिलने और उनकी छटा पाने के लिए आते थे। न सिर्फ आते थे बल्कि उन्हें जानने के लिए, समझने के लिए उनके साथ कई-कई दिन तक प्रवास करते थे। गांधीजी स्वयं कभी अपने चित्र बनवाने या छायाचित्र खिंचवाने के लिए उत्सुक नहीं रहते थे, बल्कि वे तो कई बार हतोत्साहित ही करते थे। जो छायाकार उनका फोटो लेने आते, वे उन्हें साफ कह देते कि उनके लिए समय नहीं है। यदि वे चाहे उनके साथ चलकर चित्र ले सकते हैं। लेकिन उस दौर में संभवत: सबसे ज्यादा चित्र उन्हीं के खींचे गए और उन पर ही सबसे ज्यादा कलाकारों ने चित्र बनाए। गांधीजी इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि उनके चित्र भी जहाँ-जहाँ जाएँगे, उनकी बात का प्रभाव बढ़ेगा, क्योंकि चित्र के माध्यम से ही उनका संदेश भी प्रसारित होगा। आधुनिक भाषा में कहें तो उन्होंने अपने लिए एक ऐसे 'स्टाईल' का निर्माण किया, जिसके 'ट्रेंड सेंटर' भी वही थे और 'ब्रांड एंबेसडर' भी।

मनोविज्ञान और सौंदर्य विज्ञान के उस दौर में जहाँ कपड़ों से, चाल-ढाल से, हाव-भाव से व्यक्ति की मनोदशा का आकलन करने की कोशिश की जाती है, गांधीजी अपने व्यक्तित्व के माध्यम से एक ऐसा अद्भुत समिश्रण प्रस्तुत करते हैं, जो किसी भी मानक पर खरा नहीं उतरता। लेकिन फिर भी उनके कपड़े, चाल-ढाल, रहन-सहन, बोलना या न बोलना भी एक फैशन बन जाता था, अनुकरणीय बन जाता था, आज भी है। व्यक्तित्व की संप्रेषणीयता का ऐसा करिश्मा शायद किसी भी व्यक्तित्व विकास की पुस्तक में व्याख्यायित नहीं होगा।

सिर्फ अपने व्यक्तित्व से ही नहीं, गांधीजी ने अपने जीवन में संप्रेषण के अलग-अलग माध्यमों का उपयोग कर जन-जन तक अपनी बात पहुँचाई। आज के दौर में जब हम कम्यूनिकेशन टेक्नीक्स पढ़ते हैं या आउटरीच के सिद्धांतों को जानने की कोशिश करते हैं, तब भी हम महसूस नहीं करते कि गांधीजी ने कैसे इन साधनों का उपयोग कर जन-जन तक अपनी बात पहुँचाने में सिद्धता हासिल की होगी।

गांधीजी ने समाचार-पत्रों के माध्यम से अपनी बात पहुँचाई। 'हरिजन' और 'यंग इंडिया' का प्रकाशन इसके लिए साधन बना। इसमें विभिन्न ज्वलंत विषयों पर अपने विचारों से गांधीजी ने अपना मानस व्यक्त किया। इसके साथ ही उन्होंने लगातार कई प्रमुख लेखकों और पत्रकारों से बातचीत की। उसका भी प्रकाशन निरंतर होता रहा। वे नियमित रूप से पत्र लिखा करते थे तथा लोगों को भी पत्र लिखने के लिए प्रेरित करते थे। 'गांधी एनीव्हेयर इन इंडिया' जैसे पतों पर भी लोग उन्हें चिट्ठियाँ लिखते और वे उन्हें मिल जातीं। न जाने कितनी बार उन्होंने पत्रों के माध्यम से ही अपनी बात को पुरजोर ढंग से पहुँचाने का प्रयास किया। उन पत्रों में हर बार ही कोई राष्ट्रीय विचार हो या बात हो ये जरूरी नहीं था। 'मेरी गाय बीमार हो गई' या 'मेरे रिश्तेदार ने मेरी प्रॉपर्टी ले ली' जैसी अपनी समस्या भी लोग उन्हें लिखते थे और गांधीजी उसी श्रद्धाभाव से ऐसे पत्रों का भी उत्तर देते थे।

इसके अलावा उनकी यात्राएँ भी संप्रेषण का सशक्त माध्यम बनीं। यात्राओं के माध्यम से, विशेषकर पदयात्राओं के माध्यम से उन्होंने समाज के अंतिम व्यक्ति से सीधा संवाद स्थापित किया। आज की जानेवाली अधिकांश पदयात्राएँ दिखावा और व्यापक ढकोसला बनकर दब गई हैं। फिर उसके साथ चलनेवाली सारी यंत्रणा आम आदमी को उससे जोड़ने की बजाय अलग करती है। गांधीजी की यात्राएँ उन्हें जमीन से जोड़ने का काम करती थीं। जन-जागृति के लिए की गई उनकी यात्राएँ पूरे देश का संदेश बन जाती थीं। गांधी के नाम पर आह्वान की गई यात्रा फिर चाहे उसमें गांधी स्वयं हों या न हों, व्यापक संदेश का प्रसार करने में कारगर सिद्ध होती थी।

अधिकांश लोगों की धारणाएँ हैं कि ज्यादा बोलने से ही सामनेवाले को प्रभावित किया जा सकता है। गांधी ने उस धारणा को ध्वस्त करते हुए सिद्ध कर दिया कि मौन और उपवास भी संप्रेषण के सशक्त माध्यम हैं। गांधीजी ने अपने मौन के माध्यम से बड़ी-बड़ी समस्याओं के समाधान सुझा दिए और अपनी बात को मनवा लिया। उनका मौन भी उनकी वाणी की तरह ही मुखर था। वर्तमान दौर में जहाँ सार्वजनिक जीवन में वाणी का संतुलन एक बहुत बड़ी चुनौती बनता जा रहा है, गांधीजी के मौन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

गांधीजी के संप्रेषण को लेकर किए गए विभिन्न प्रयोगों के आधार पर एक पूरा शास्त्र विकसित किया जा सकता है, जो निश्चित ही वर्तमान दौर के लिए उपयोगी और प्रभावी हो सकता है। हो सकता है कि मार्शल मैकलूहान ने 'मीडियम इज द मैसेज' की प्रेरणा भी गांधीजी से ही ली हो।

आज के इस दौर में जहाँ हम संप्रेषण माध्यमों पर बहुत अधिक आश्रित हो गए हैं और इनके बगैर हमारा जीवन शून्य सा नजर आने लगा है, हमें गांधीजी का स्मरण अवश्य करना चाहिए। गांधीजी के स्मरण से एक माध्यम के रूप में हम अपनी पहचान खुद कर सकेंगे और संप्रेषण माध्यमों पर हमारी निर्भरता में कुछ कमी आ सकेगी। गांधीजी की वैचारिकता उनके समूचे व्यक्तित्व में समाई हुई थी और वे अंतर्बाह्य एक विचार के रूप में प्रकट होते थे। हमारी अति भावुकता और व्यक्ति उपासना की प्रवृत्ति ने हमें गांधीजी की इस वैचारिकता से दूर कर दिया है। साथ ही हम अति महत्त्वाकांक्षा और महत्त्वोन्माद से ग्रसित होते चले जा रहे हैं। तथाकथित सोशल मीडिया ने इन सबमें वृद्धि करने में सहायता प्रदान की है। यही कारण है कि समाज में आज गांधीजी को जाननेवाले तो बहुत होंगे, लेकिन उनके विचार को ग्रहण कर आत्मसात् करनेवालों की संख्या में निरंतर कमी आती जा रही है।

अतिभौतिकतावादी, अतिमहत्त्वाकांक्षी, बाजार आश्रित इस दौर में यदि हमें कहीं कोई आशा की किरण नजर आती है तो वह गांधीजी के विचारों में तथा उनकी कृतियाँ ही हैं।

आज विश्व में जहाँ एक ओर कई वैचारिक मान्यताएँ खंडित हो रही हैं, गांधीजी का दर्शन शाश्वत है। गांधी एक दर्शन के रूप में इसीलिए चिरंतन हैं, क्योंकि उसके तत्त्व हमारे व्यावहारिक जीवन की दैनंदिन अभिव्यक्ति से जन्म लेते हैं।

सा अ

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र
११, मानसिंह रोड, नई दिल्ली-११०००११
sjoshi09@yahoo.com
दूरभाष : ०९२०५५००१६४



कृषि, कुटीर उद्योग और गांधी

• अनुज कुमार सिन्हा

भारत उसके शहरों में नहीं बसता, बल्कि उसके सात लाख गाँवों में बसता है। हम नगरवासी यह समझते हैं कि भारत नगरों में बसता है और गाँव केवल हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हैं। हमने कभी यह जानने का कष्ट नहीं उठाया है कि उन निर्धन ग्रामवासियों के पास खाने और पहनने के लिए पर्याप्त व्यवस्था है या नहीं? उनके पास धूप और वर्षा से अपनी रक्षा करने के लिए कोई आश्रयस्थली भी है या नहीं? अब तक गाँववालों ने हजारों की संख्या में अपने जीवन की बलि दी है, ताकि हम नगरवासी जीवित रह सकें। अब उनके जीवन के लिए हमको अपना जीवन देने का समय आ गया है। ये विचार किसी और के नहीं, बल्कि महात्मा गांधी के हैं, जो उन्होंने १९३६ में अपनी पत्रिका 'हरिजन' में व्यक्त किए थे। गांधीजी के ये विचार बताते हैं कि गाँव और ग्रामीणों का उनके जीवन में क्या महत्त्व था। गांधीजी ने जब भी सुखी-समृद्ध और विकसित भारत की कल्पना की तो उसके केंद्र में गाँव और ग्रामीण ही थे। गांधीजी की नीति स्पष्ट थी कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है और देश का विकास तब तक नहीं होगा, जब तक गाँवों का विकास नहीं हो। इसलिए गांधीजी के विकास का आर्थिक मॉडल भी गाँव और व्यक्ति पर आधारित रहा है। गांधीजी का सपना था—'हर गाँव आत्मनिर्भर बने, उसे उन्हीं चीजों के लिए बाहर की दुनिया पर निर्भर न रहना पड़े, जो गाँवों में नहीं बनती हो या गाँवों में उपलब्ध नहीं हो।' उन्होंने खेती और कुटीर उद्योग को गाँवों के विकास का मुख्य आधार रखा था। गांधीजी का मानना था कि गाँव जब तक आत्मनिर्भर नहीं होंगे, देश का विकास नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने पर पूरा जीवन लगा दिया। इसके लिए रास्ता सुझाया।

जब गांधीजी ने गाँवों के स्वावलंबी होने की बात कही तो उसका आशय था कि गाँव के लोगों की बुनियादी जरूरतें गाँव में ही पूरी हो जाएँ। इसके लिए उन्हें भटकना नहीं पड़े। जीवन जीने के लिए सबसे आवश्यक है भोजन, फिर कपड़ा। अगर इन दोनों चीजों की व्यवस्था गाँव में ही हो जाए तो किसी भी व्यक्ति का आधा भार हल्का हो जाए। वह कम-से-कम जिंदा तो रह सकता है। इसलिए गांधीजी ने भोजन और कपड़े की व्यवस्था पर ज्यादा जोर दिया। शिक्षा और स्वास्थ्य के अलावा कुछ अन्य जरूरतें बाद में आती हैं। जब भोजन की बात आई तो गांधीजी ने खेती पर जोर दिया। इस बात पर जोर दिया कि किसान इतना अनाज उत्पादन कर लें, जिससे सालभर वे और उनका परिवार भरपेट भोजन कर सकें। खेती भी तभी होगी, जब किसानों के पास जमीन हो। इसलिए उन्होंने जमीन की नीति पर भी अपने विचार खुलकर रखे थे। गांधीजी का मानना था कि गाँव को स्वावलंबी बनाने का सपना तभी पूरा होगा, जब काम करने लायक हर व्यक्ति अनाज-कपड़ा आदि की जरूरत पूरा करने के लिए गाँव के संसाधनों का पूरा उपयोग करें।



सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार। 'प्रभात खबर' में वरिष्ठ संपादक। 'शंकर नियोगी पत्रकारिता पुरस्कार', 'झारखंड रत्न' समेत कई अन्य सम्मान-पुरस्कार। 'झारखंड आंदोलन का दस्तावेज : शोषण, संघर्ष और शहादत', 'ब्यूरोक्रेट्स और झारखंड', 'झारखंड के आदिवासी : पहचान और संकट', 'महात्मा गांधी की झारखंड यात्रा' पुस्तकें प्रकाशित।

गांधीजी देश के किसानों के हालात से परिचित थे। उनके कई आंदोलनों में हिस्सा ले चुके थे। खुद गाँवों का दौरा करते थे और समाज के सबसे गरीब तबके के लिए सोचते भी थे। वे मानते थे कि देश की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि होना चाहिए। उन्हें पता था कि बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं, जो खेती तो करते हैं, लेकिन उनके पास या तो अपनी जमीन नहीं है या अगर है भी तो इतनी कम, जिससे उसका काम चल नहीं सकता। कई किसानों को दूसरे के खेतों में काम करना पड़ता था। ऐसे जमींदारों की संख्या भी कम नहीं थी, जिनके पास सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीन होती थी। गांधीजी चाहते थे कि खेती करनेवाले के लिए अपनी जमीन चाहिए। जमीन पर उन्हीं का कब्जा होना चाहिए, जो खुद खेती करते हैं। दरअसल उस समय ऐसी व्यवस्था थी कि जमींदारों के खेत में लोगों को मजदूरी करनी पड़ती थी। वे रात-दिन कड़ी मेहनत कर खेती तो करते थे, लेकिन उस खेती का अधिकांश हिस्सा जमींदार के खाते में जाता था। कठिन श्रम करने के बावजूद किसानों को वह लाभ मिल नहीं पाता था, जिसका वह हकदार है। फसल उपजाने के बावजूद उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं होता था। बेचारा गरीब किसान किसी तरह सिर्फ अपना पेट पाल सकता था। किसानों की सबसे बड़ी इस समस्या से गांधीजी परिचित थे। इसलिए वे कहते थे कि प्राकृतिक संसाधनों पर समाज और समुदाय का अधिकार होना चाहिए, किसी खास व्यक्ति का नहीं।

गांधीजी का स्पष्ट मत था कि किसानों को भी बेहतर जीवन जीने का हक है और यह तभी संभव है, जब खेती से उसकी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति हो जाए। खेती और अन्य स्रोतों से इतनी आय हो कि किसान और उसके परिवार के सदस्य बेहतर शिक्षा और बेहतर स्वास्थ्य सुविधा ले सकें।

वे खुशहाली का जीवन बिताएँ। उन्हें पता था कि जब गाँवों में पर्याप्त अनाज उपजेगा, तभी नगर में रहनेवाले लोगों को भोजन नसीब होगा। गाँव तब भी महत्त्वपूर्ण था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा, क्योंकि अनाज तो खेतों में ही उपजेगा। गांधीजी इस सच्चाई को समझते थे, इसलिए वे गाँवों को मजबूत करने में, स्वावलंबी बनाने में लगे रहे। जब भी किसानों को जरूरत पड़ी, गांधीजी उनके समर्थन में खड़े रहे, लड़ाइयाँ लड़ीं। दरअसल मोहनदास करमचंद गांधी को महात्मा गांधी बनाने में किसानों (चंपारण की घटना को याद कीजिए) की बड़ी भूमिका रही थी। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद १९१७ में जब चंपारण में किसानों ने संघर्ष आरंभ किया तो पहली बार गांधीजी बिहार आए, किसानों के आंदोलन की अगुवाई की, सत्याग्रह किया और अंततः किसानों को न्याय दिलाया।

गांधीजी देशज पद्धति पर आधारित अर्थव्यवस्था चाहते थे। वे मानते थे कि इसी रास्ते भारत का विकास किया जा सकता है। इसमें खेती-बारी, कुटीर उद्योग और खादी के प्रयोग पर वे खास जोर देते थे। मौका मिलने पर बहुत ही जोरदार तरीके से गांधीजी अपनी बात रखते थे। १९१७ में संत स्टीफन कॉलेज में प्रो. राधा कमल मुखर्जी को कृषि और उद्योग विषय पर बोलने के लिए बुलाया गया था। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता गांधीजी ने की थी। बड़े-बड़े अर्थशास्त्री अपने विचार रख रहे थे। गांधीजी ने वहाँ कहा था—अर्थशास्त्र को कक्षा से बाहर निकालें, खेतों-खलिहानों, किसानों की झोंपड़ियों और मजदूरों की बस्तियों का निरीक्षण करें, तभी असली बात सीख पाएँगे। गांधीजी के विचार इस बात को स्पष्ट कर रहे थे कि कैसे गाँवों-किसानों का सही तौर पर भला किया जा सकता है। दिसंबर १९१७ में कोलकाता में प्रथम बंग कृषि विशेषज्ञों की सभा को संबोधित करने का गांधीजी को अवसर मिला था। वहाँ भी उन्होंने साफ-साफ अपनी बात रखते हुए कहा था—'कृषि भारतीयों का मुख्य व्यवसाय है और यह एक बहुत ही प्रतिष्ठित पेशा है। मैं किसानों के साथ काम कर चुका हूँ, इसलिए मैं उनकी सब माँगों-शिकायतों और तकलीफों को जानता हूँ। मैं शीघ्र ही कृषि का धंधा करनेवाला हूँ।'



चंपारण आंदोलन के बाद भी जब मौका मिला, गांधीजी ने किसानों की लड़ाई लड़ी। एक बड़ा मौका आया था मार्च १९१८ में। गुजरात के खेड़ा में फसल खराब होने के बाद किसानों ने नियम के अनुसार लगान माफ करने की सरकार से अपील की थी। इस अपील को पहले ठुकरा दिया गया था। फसल बरबाद हो चुकी थी और किसान लगान देने की स्थिति में नहीं थे। गांधीजी ने किसानों को सुझाव दिया कि वे लगान का भुगतान नहीं करें। अंततः सरकार को किसानों की माँगों के आगे झुकना पड़ा। गांधीजी को पता था कि कैसे खेती को बढ़ावा दिया जाए, ताकि किसान खुशहाल रहें। खेती, किसान, गोरक्षा, गोशाला आदि सभी कहीं-न-कहीं एक कड़ी के तौर पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जुड़े हुए थे। अगर गांधीजी की दूरदृष्टि पर बात करें तो गोरक्षा की बात भी आती है। गांधीजी गोरक्षा के पक्षधर थे, पशुधन बढ़ाने के पक्ष में रहते थे। उन्हें पता था कि गाय के पालन से किसानों को खेती में भी कितना लाभ मिल सकता है। दूध-दही और घी जहाँ किसानों के स्वास्थ्य को बेहतर करेगा, वहीं गोबर का उपयोग खाद के तौर पर किसान कर सकते हैं। इससे उपज बढ़ाने में मदद मिलती है। इसलिए जब भी मौका मिलता, गांधीजी तरीके से अपनी बात रख देते थे। नवंबर १९४७ के 'हरिजन' के अंक में गांधीजी ने लिखा था—'आज जो लोग गोशाला चलाते हैं, वे खर्च करना तो जानते हैं, लेकिन वे पशुपालन विज्ञान में बिल्कुल कोरे हैं। वे यह नहीं जानते कि गाय को कैसे पाला जाए, ताकि वह अधिक-से-अधिक दूध दे और बैलों व साँड़ों की नस्लें कैसे सुधारी जाए। इसका परिणाम यह हुआ है कि संसार भर में सबसे अधिक गोधन और शुद्ध दूध-घी से भरपूर देश होने के बजाय हमारा देश इस मामले में सबसे नीचे आ गया है। हमारे लोग यह नहीं जानते कि पशुओं के गोबर और पेशाब का क्या उपयोग किया जाए।'

गांधीजी का मानना था कि शहर के लोग गाँव के लोगों का शोषण करते हैं। रोजगार की तलाश में गाँव के लोग शहरों की ओर भागते हैं और वहाँ सभी को नियमित तौर पर काम मिल नहीं पाता। शहरों में गाँव के लोगों की परेशानी बढ़ जाती है। ये लोग मजबूरी में गाँव छोड़ते हैं, क्योंकि गाँवों में उन्हें रोजगार मिल नहीं पाता, खेती के लिए पर्याप्त जमीन हर परिवार के पास नहीं है। इसका उपाय गांधीजी ने खोजा और उन्होंने राय दी थी कि शहरों की ओर भाग रही आबादी को गाँव में ही रोजगार देकर, काम देकर रोका जा सकता है। खेती और कुटीर उद्योग को प्रमुखता देनी होगी। खेती तो तभी कर पाएँगे, जब जमीन हो। जिन लोगों के पास जमीन नहीं है, उनके लिए भी गांधीजी की योजना थी। वे कहते थे कि हर व्यक्ति चरखे का उपयोग करे, सूत काते और खादी बनाए। गाँव में ही पहनने के लिए वस्त्र तैयार कर ले। खाली समय में चरखे से सूत कातकर अच्छी-खासी आय की जा सकती है। महिलाएँ घर का कामकाज पूरा कर खाली समय में सूत कातकर पैसा कमा सकती हैं। गांधीजी के आह्वान का इतना गहरा असर था कि बड़े पैमाने पर शहर-गाँव हर जगह लोगों ने खुद सूत कातना आरंभ किया था, खादी का उपयोग किया था। इससे न सिर्फ उनकी जरूरतों की पूर्ति हुई थी, बल्कि कपड़ों की कई विदेशी मिलें बंद हो गई थीं।

गांधीजी चाहते थे कि गाँव में जो कुटीर उद्योग लगें, उसके लिए कच्चा माल भी गाँववाले पैदा करें। इस उद्योग का तात्कालिक लाभ भी गाँववालों को पहले मिले। गांधीजी ऐसे उद्योग के खिलाफ थे, जो गाँववालों की जरूरतों को पूरा नहीं करते हों। वे मानते थे कि बड़े उद्योग लगाने से मशीनों का ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग होगा और इसके कारण बेरोजगारी बढ़ेगी। लेकिन छोटे-छोटे उद्योगों से गाँव में रहनेवाले हर व्यक्ति को कुछ-न-कुछ रोजगार मिल जाएगा। लगभग सौ साल पहले दिए गए गांधीजी के विचार आज भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने की राह दिखाते हैं।

सा अ

फ्लैट नं. २ ए, श्रीवाटिका अपार्टमेंट
चेशायर होम रोड, दीपाटोली, राँची (झारखंड)
anuj.sinha@prabhatkhabar.in



अलोकप्रिय-उपेक्षित गांधी

• हितेश शंकर



वरिष्ठ पत्रकार। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक्स सहित जनसंचार की विविध विधाओं का अनुभव। 'दैनिक जागरण', 'इंडिया टुडे', 'हिंदुस्तान' आदि मीडिया संस्थानों में अहम भूमिका निभाने के बाद 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक के संपादक का दायित्व निभा रहे हैं।

मोहनदास करमचंद गांधी कहिए या महात्मा गांधी। एक ऐसा व्यक्तित्व, जिसे आधुनिक भारत की सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त विभूतियों में एक कहा जा सकता है। किंतु जितना आप गांधजी के बारे में पढ़ेंगे, उनके विचारों को जानने की कोशिश करेंगे तो आपको यह अनुभव होगा कि इस व्याप्त ख्याति में नाम का 'शोर' तो बहुत है, लेकिन गांधी के कुछ अत्यंत आग्रही विचारों की 'गूँज' देश में है ही नहीं।

ऐसा क्यों है कि खुद गांधी के देश में गांधी कहीं खो गए हैं? हमने 'पाञ्चजन्य' में एक स्टोरी कराई, जो शोध पर आधारित थी। उसमें पाया गया कि गांधीजी के कुछ विशेष विचारों की ही बात होती है, जबकि उनके अत्यंत महत्त्वपूर्ण और मानवता के लिए उपयोगी बहुत से विचारों से लोग कन्नी काटते हैं। देश में स्वराज्य के लिए ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अलख जगाने तथा जनाधार को व्यापक बनाने का महती काम उन्होंने किया। लक्ष्य बड़ा था, उद्देश्य शुद्ध। किंतु इसके लिए मुसलमानों के कट्टर और जिहादी मानसिकता वाले हिस्से के सामने उनकी शरणागति से पूरा समाज सहमत नहीं था। इसके बावजूद स्वतंत्रता आंदोलन में नितांत सामान्य लोगों के भी सहज सहभाग को प्रेरित करने, सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने चरखा जैसा सहजता से उपलब्ध साधन और प्रतीक दिया। सत्याग्रह जैसा सहज स्वीकार्य तरीका समझाया। यह निश्चित ही गांधीजी की महानता है। ग्राम स्वराज्य, स्वदेशी, गौरक्षा, अस्पृश्यता निर्मूलन आदि उनकी रुचि तथा आग्रह के विषयों से भारत के मूलभूत हिंदू चिंतन से उनका लगाव साफ दिखता है। उनका स्वयं का मूल्याधारित जीवन अनेक युवाओं को आजीवन समाज की सेवा में लगने की प्रेरणा तथा संकल्प देनेवाला था।

होना यह चाहिए था कि अपने नायकों का आकलन करते समय हम उनकी बातों-विचारों को पूर्णता में समाज के समाने रखते। सही-गलत, हलके-भारी पक्षों पर बहसते। इस छान-फटक से जो सार आता, उसे लेकर आगे बढ़ते। लेकिन जिन लोगों ने भारत की आजादी के आंदोलन में गांधीजी को आगे रखा, वे आजादी मिलते ही सत्ता एवं समाजवाद की तरफ दौड़ पड़े, और गांधी कहीं पीछे रह गए। कहा जा सकता है कि गांधी तो राम और रामराज्य की बात करते थे। इसमें समाजवाद कहाँ से आ गया? फिर जब गांधीजी की हत्या हो जाती है तो उन लोगों ने गांधी के नाम को अपने राजनीतिक विरोधियों पर आक्रमण के औजार में ढाल दिया। अहिंसा के पुजारी की हत्या के प्रतिशोध में निरपराध चित्तपावन ब्राह्मणों का नरसंहार किया। ऐसी ही कई और बातें भी हुईं।

स्वतंत्रता आंदोलन में गांधीजी को आगे रखना, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ता की आपाधापी में गांधी को पीछे कर समाजवाद की ओर दौड़ पड़ना और गांधीजी की हत्या के बाद अपने राजनीतिक विरोधियों पर हमले के लिए गांधी के नाम का इस्तेमाल—इन तीनों कथानकों के पीछे जो प्रमुख किरदार उभरकर दिखाई देता है, वह हैं पंडित जवाहरलाल नेहरू।

उल्लेखनीय है कि जब राजनीतिक रूप से गांधी एक सत्ता के लिए असुविधाजनक होते हैं तो गांधी को दबा दिया जाता है। जैसे गौरक्षा को लेकर कभी गांधी की बात लोगों के सामने नहीं आने दी। धर्मांतरण पर गांधीजी के विचारों पर जानबूझकर धूल डालने का काम किया। गांधीजी को दबानेवाले लोग सत्तारूढ़ तो हो सकते हैं, पर गांधीप्रेमी नहीं हो सकते। वे अपने राजनीतिक विरोधियों पर हल्ला बोल और कुरसी की तरफ दौड़ के लिए गांधीजी के नाम का इस्तेमाल करते रहे, लेकिन गांधीजी के वे तमाम विचार, जो उपयोगी थे, मगर उनको असुविधाजनक लगे, उनसे किनारा कर लिया। गाँवों की स्थिति सुधारने, समाज से छुआछूत मिटाने, गौरक्षा आदि पर गांधीजी का बहुत जोर था''ये सारे विषय संघ परिवार और अन्य संगठनों ने उठाए। इनकी कहीं कोई बात नहीं करता। समय-समय पर गांधीजी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बीच दरार दिखाने की कोशिश भी होती है। यह गांधीजी के साथ दूसरा अन्याय होता है, क्योंकि तथ्य कुछ और ही बात कहते हैं। तथ्य उस 'कपट' को उजाकर करते हैं, जो गांधीजी और संघ के बीच दरार तथा स्वतंत्रता आंदोलन में संघ की निष्क्रियता जैसे झूठे आरोपों के पीछे निहित हैं।

सन् १९२१ के 'असहयोग आंदोलन' और १९३० के 'सविनय अवज्ञा आंदोलन'—इन दोनों सत्यग्रहों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक व प्रथम सरसंघचालक डॉ. हेडगेवार सहभागी हुए थे। इस कारण उन्हें १९ अगस्त, १९२१ से १२ जुलाई, १९२२ तक और २१ जुलाई, १९३० से १४ फरवरी, १९३१ तक दो बार सश्रम कारावास की सजा भी हुई।

गांधीजी और संघ के बीच खाई को लेकर कुछ लोगों ने राजनीतिक स्वार्थ साधने की कोशिश की है, वह कितनी मनगढ़ंत है, इसकी कलई कई बार खुली है। १८ मार्च, १९२२ को महात्मा गांधी को छह वर्ष की सजा हुई। तब से उनकी मुक्ति तक प्रत्येक महीने की १८ तारीख को 'गांधी दिन' के रूप में मनाई जाती थी। सन् १९२२ के अक्तूबर मास में 'गांधी दिन' के अवसर पर अपने भाषण में डॉ. हेडगेवारजी ने कहा, ''आज का दिन अत्यंत पवित्र है। महात्माजी जैसे पुण्यश्लोक-पुरुष के जीवन में व्याप्त सद्गुणों के श्रवण और चिंतन का यह दिन है। उनके अनुयायी कहलाने में गौरव का अनुभव करनेवालों के सिर पर तो उनके इन गुणों का अनुसरण करने की जिम्मेदारी विशेषकर है।''

जिस अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए गांधीजी निरंतर संघर्षरत रहे, उसे लेकर संघ के कार्यों से गांधीजी कितना प्रभावित थे, इसे जानने के लिए सन् १९३४ में घटी घटना का उल्लेख आवश्यक है। वर्धा में श्री जमनालाल बजाज के यहाँ गांधीजी का निवास था। पास में ही संघ का शीत सत्र चल रहा था। उत्सुकतावश गांधीजी वहाँ गए। संघ के अधिकारियों ने उनका स्वागत किया। स्वयंसवेकों से वार्त्तालाप के दौरान गांधीजी को पता चला कि शिविर में अनुसूचित जाति से भी स्वयंसेवक हैं और उनसे किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। सब भाईचारे के साथ स्नेहपूर्वक रहते हैं, सारे कार्यक्रम साथ करते हैं। इस पर गांधीजी ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की।

स्वतंत्रता के पश्चात् जब गांधीजी दिल्ली में मैला ढोनेवाले समाज की कॉलोनी में रहते थे, तब सामने मैदान में संघ की प्रभात शाखा चलती थी। सितंबर में गांधीजी ने प्रमुख स्वयंसेवकों से बात करने की इच्छा व्यक्त की और संबोधित किया, ''बरसों पहले मैं वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिविर में गया था। स्व. जमनालाल बजाज मुझे वहाँ ले गए थे। उस समय संघ के संस्थापक श्री हेडगेवार जीवित थे। मैं उन लोगों का कड़ा अनुशासन, सादगी और छुआछूत की पूर्ण समाप्ति देखकर अत्यंत प्रभावित हुआ था। तब से संघ काफी बढ़ गया है। जो भी संस्था सेवा और आत्मत्याग के आदर्श से प्रेरित है, उसकी ताकत बढ़ती ही है।'' यह संबोधन 'गांधी समग्र वाङ्मय' के खंड ८९ में २१५-२१७ पृष्ठ पर प्रकाशित है, जो संघ के प्रति गांधीजी के उन भावों की अभिव्यक्ति है। उन्हें षड्यंत्रपूर्वक छिपाकर कुछ लोगों ने गांधीजी के नाम पर अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के लिए समाज को भ्रमित करने की कोशिश की है।

विडंबना यह कि अपनी राजनीतिक सफलता को दृष्टि में रखते हुए हिंदू धर्म को लेकर गांधीजी के विचार भी आम लोगों तक नहीं पहुँचने दिए गए। अपने जीवन और राजनीति में सत्य-अहिंसा के सूत्र उन्हें हिंदू धर्म से मिले, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा, ''मैं कट्टर हिंदू हूँ, इसलिए केवल मानवों से ही नहीं, संपूर्ण जीवमात्र से प्रेम करता हूँ।''

६ अक्तूबर, १९६९ को महात्मा गांधी की जन्मशताब्दी के समय महाराष्ट्र के सांगली में गुरुजी ने गांधीजी को उद्धृत करते हुए कहा कि ''आज हिंदू धर्म थका हुआ सा, आगे जाने की प्रेरणा देने में सहायक प्रतीत होता अनुभव में नहीं आता। इसका कारण है कि हम थक गए हैं, पर धर्म नहीं थका। जिस क्षण हमारी यह थकावट दूर होगी, उसी क्षण हिंदू धर्म अपने प्रभाव और प्रकाश से दुनिया में चमक उठेगा।''

३० जनवरी, १९४८ को सरसंघचालक श्रीगुरुजी मद्रास में एक कार्यक्रम में थे, जब उन्हें गांधीजी की मृत्यु का समाचार मिला। उन्होंने तुरंत ही प्रधानमंत्री पंडित नेहरू, गृहमंत्री सरदार पटेल और गांधीजी के सुपुत्र देवदास गांधी को टेलीग्राम द्वारा अपनी शोक संवेदना भेजी। गुरुजी ने लिखा, ''प्राणघातक क्रूर हमले के फलस्वरूप एक महान् विभूति की दु:खद हत्या का समाचार सुनकर मुझे बड़ा आघात लगा। वर्तमान कठिन परिस्थिति में इससे देश की अपरिमित हानि हुई है। अतुलनीय संगठक के तिरोधान से जो रिक्तिता पैदा हुई है, उसे पूर्ण करने और जो गुरुतर भार कंधों पर आ पड़ा है, उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भगवान् हमें प्रदान करें।'' गांधीजी के प्रति सम्मान रूप शोक व्यक्त करने के लिए देश भर में १३ दिन तक संघ के दैनिक कार्य स्थगित रहे।

राजनीतिक षड्यंत्र तो छोड़िए, गांधीजी का नाम लेकर गांधीजी के मन के काम करनेवाली संस्था गीताप्रेस, गोरखपुर तक के बारे में भ्रम परोसे गए। गीताप्रेस पर आधारित पुस्तक 'गीताप्रेस ऐंड द मेकिंग ऑफ हिंदू इंडिया' के लिए लेखक अक्षय मुकुल को पत्रकारिता पर देश का कथित बहुप्रतिष्ठित 'रामनाथ गोयनका पुरस्कार' दिया गया। सरासर झूठ पर आधारित पुस्तक में गीताप्रेस को निशाना बनाते हुए कहा गया कि गांधीजी की हत्या पर गीताप्रेस की मासिक पत्रिका 'कल्याण' में एक श्रद्धांजलि आलेख (ओबिचुएरी) तक नहीं छापा गया। हमने 'पाञ्चजन्य' के लिए जो स्टोरी कराई, उसमें ये बातें गलत साबित हुईं। ३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हुई थी। आज आधुनिक तकनीक के युग में भी मासिक पत्रिका के अंक दस दिन पहले छपते हैं तो तब के दौर में कितना पहले छपते होंगे! हालाँकि बाद में बचे हुए अंकों में गीताप्रेस ने अलग से कागज लगाकर गांधीजी पर श्रद्धांजलि आलेख भी छापा। ये तमाम बातें छिपाकर गांधीजी को लेकर एक राजनीतिक षड्यंत्र लोगों के सामने किया गया।

गांधीजी के प्रिय और आग्रह के क्षेत्रों पर उनके विचारों से लोगों को अनजान रखने में किन लोगों की दिलचस्पी हो सकती है, उसे पहचानना बहुत मुश्किल नहीं है। इसे तीन कसौटियों पर परखें तो वे चहेरे स्वयं प्रकट हो जाएँगे—एक, भारत की आजादी के आंदोलन में गांधीजी को आगे किन लोगों ने किया। दो, आजादी के बाद सत्ता-प्राप्ति के लिए समाजवाद की तरफ कौन भागा और गांधीजी को पीछे छोड़ दिया। तीन, गांधीजी की हत्या होने पर किन लोगों ने अपने राजनीतिक विरोधियों पर हमले के लिए गांधीजी के नाम को औजार बनाया। इन विनाशक शक्तियों के कब्जे से बाहर निकालकर गांधीजी को समग्र वास्तविकता के साथ समाज में मंथन-विमर्श-आचरण के केंद्र में लाने की आज महती आवश्यकता है।

सा अ

संस्कृति भवन, २३२२, लक्ष्मीनारायण स्ट्रीट
पहाड़गंज, नई दिल्ली-११००५५
दूरभाष : ९८६८४६१६७६



साहित्य और गांधी

• रीतारानी पालीवाल

पिछली सदी के पूर्वार्ध में विश्व-पटल पर गांधी की उपस्थिति एक अद्‌भुत परिघटना है। संकुचित राष्ट्रवाद के चरम उत्कर्ष और विश्व-युद्धों के भीषण नर-संहार के भयानक दौर में गांधीजी ने सत्य और अहिंसा को औजार बनाते हुए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और बौद्धिक गुलामी के खिलाफ लड़ाई लड़ी, स्वाधीनता हासिल की; असंभव को संभव बनाया। अन्याय, शोषण और गुलामी को दूर करने के लिए 'सत्य' ने सत्याग्रह यानी शांतिपूर्ण प्रतिरोध का रूप धारण कर उपनिवेशवाद, नस्लवाद, कट्टरतावाद को चुनौती दी। वहीं दरिद्रता को मिटाने के लिए सत्य ने चरखे का, श्रम का रूप धारण किया। गांधी के समस्त प्रयत्नों का मूल-मंत्र है मानवमात्र की प्रतिष्ठा और कर्म की (किए जानेवाले कार्य की) मनुष्य के लिए उपयोगिता, सार्थकता। यानी जाति, धर्म के कारण कोई ऊँचा अथवा नीचा नहीं है और जो भी कार्य किए जाएँ, वे मनुष्य के लिए, समाज के लिए उपयोगी हों—ऐसा कोई भी ज्ञान, विज्ञान, कला या कर्म, जो मनुष्य के हित के लिए नहीं, वह बुद्धि का व्यसन मात्र है। इस तरह कर्म यानी किए जानेवाले कार्यों का एक नया मानदंड हमें गांधी से मिला।

सत्य का यह औजार गांधी को साहित्य से, परंपरा से मिला था। भारतीय परंपरा में कहा गया है कि सत्य के व्रत से दरिद्र व्यक्ति जैसा चाहे वैसा धन प्राप्त कर सकता है; सत्य का पालन करने से दासता की बेड़ियों में बँधे हुए व्यक्ति के बंधन टूट जाते हैं—

दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्चयेत बंधनात।
भीतो भयात् प्रमुच्च्येत सत्यमेव न संशय॥

सत्य की जीवन-मूल्य के रूप में उपस्थिति हमारी साहित्य-परंपरा में मौजूद है। साहित्य हमें बेहतर मनुष्य बनाता है, हमारे चित्त का उन्नयन करता है, हमारी संवेदनशीलता का विस्तार करता है। साहित्य से विमुख होकर मनुष्य असभ्य और बर्बरता की ओर अग्रसर हो जाता है।

साहित्य संगीत कला विहीना।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीना॥

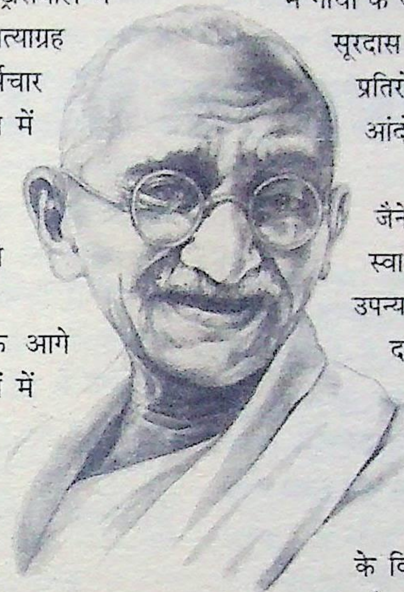
गांधी का साहित्य से गहरा और जीवंत संबंध रहा। उनकी मनोभूमिका की निर्मिति में नरसी मेहता, तुलसीदास, कबीरदास, मीराबाई आदि संत-भक्त कवियों की परंपरा और परिवेश का योगदान रहा, जिसमें 'पर' को हमेशा 'स्व' से ऊपर रखा गया है, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाणे रे।' अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने लिखा है कि बचपन में देखे नाटक 'सत्य हरिश्चंद्र' ने उनके बाल मन पर अमिट छाप छोड़ी। सत्य उनके लिए जीवन-आदर्श बन गया। 'रामायण', 'महाभारत' और 'गीता' उनके प्रेरणा-स्रोत रहे। बुद्ध और ईसा मसीह की करुणा उनकी सहचर रही, जैन-बौद्ध दर्शन का अहिंसा मार्ग उनका पथ-प्रदर्शक रहा। गुजरात के वैष्णव परिवेश और संत काव्य की निर्मल मानसिकता में गढ़े उनके चित्त के संस्कारों को आधुनिक भारतीय नवजागरण की चेतना ने आलोकित किया। वैश्विक ज्ञान-विज्ञान के आलोक में उन्होंने अपनी परंपरा का पुनरावगाहन किया। नए से सीखा, पुराने को माँजा-तराशा, जरूरत के अनुरूप उसका अनुकूलन किया। प्राचीन वाङ्मय से जीवंत रिश्ता कायम रखे गांधीजी अपने समय के वाङ्मय से निरंतर जुड़े रहे, रचनाकारों के जीवंत संपर्क में रहे।



सुपरिचित लेखिका। 'रंगमंच : नया परिदृश्य', 'अनुवाद प्रक्रिया', 'अनुवाद की सामाजिक भूमिका', 'अनुवाद और भाषिक संस्कृति', 'जापानी रंग कला : नोह, काबुकी और बुनराकु', 'जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश की रंग दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन' सहित सोलह पुस्तकें प्रकाशित। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं निदेशक रहीं।

रस्किन और टालस्टॉय उनके प्रेरणा-स्रोत बने। रवींद्रनाथ अनेक असहमतियों के बावजूद उनके प्रशंसक रहे। महात्मा की उपाधि भी गांधी को उन्हीं से मिली। रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दि लास्ट' ने गांधीजी की सामाजिक-आर्थिक सोच को प्रभावित किया। इसकी प्रेरणा से उन्होंने सन् १९०४ में दक्षिण अफ्रीका के नेटाल में फीनिक्स फार्म बनाया और 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की। आश्रमवासियों को अहिंसा एवं सत्याग्रह का मार्ग दिखाया। यहीं से शिक्षा, श्रम और स्वावलंबन का प्रशिक्षण दिया और जाति-धर्म-रंग-भेद की खिलाफत शुरू की। १९०७ के काले कानून के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन चलाया। उन्होंने रस्किन की इस पुस्तक का 'सर्वोदय' नाम से गुजराती में अनुवाद किया।

टालस्टॉय की पुस्तक 'दि किंगडम ऑफ गॉड इज विदइन यू' और ईसाई करुणा ने गांधीजी को गहराई से प्रभावित किया तथा सत्य में उनकी आस्था को दृढ़ता प्रदान की। टालस्टॉय शोषणहीन समाज और व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा में आस्था रखते थे। गांधी का कहना था कि स्वतंत्रता का अर्थ है—प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता। दोनों का दृढ़ मत था कि हिंसा हर हालत में त्याज्य है। गांधी ने ट्रांसवाल में टालस्टॉय फार्म की स्थापना की, जहाँ से चलाई गई सत्याग्रह गतिविधियों ने गोरी हुकूमत को अपने निर्णयों पर पुनर्विचार के लिए मजबूर किया। टालस्टॉय को जब अफ्रीका में चल रहे आंदोलनों की सूचना मिली तो सितंबर १९१० में उन्होंने अपनी डायरी में नोट किया, 'ट्रांसवाल में अहिंसक सत्याग्रहियों की बिरादरी बन गई है, इसकी मुझे खुशी है।'



प्रेमचंद ने लिखा है कि साहित्य समाज के आगे चलनेवाली मशाल है। यह मशाल भारतीय भाषाओं में उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में नवजागरण चेतना के रूप में जल उठी थी। बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ, विवेकानंद, सुब्रह्मणय भारती, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे लेखक-विचारक देशवासियों में गुलामी के कारणों के प्रति जागरूकता पैदा करने और उससे उबरने के उपाय खोजने में सक्रिय थे। 'भारतेंदु पै स्वधन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी', 'स्वत्व निज भारत गहै' कहकर, महावीरप्रसाद द्विवेदी 'भारत की सांपत्तिक लूट' लिखकर देश की गिरी हुई दशा को सुधारने का प्रयास कर रहे थे; १९०३ में 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' कविता लिख रहे थे—

विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं?
न सूझे है अरे भारत भिखारी!
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी?
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,
न जावो पास उनके दूर भागो।

अफ्रीका में गांधी द्वारा चलाए जा रहे सत्याग्रह की ओर हिंदी पाठक का ध्यान दिलाते हुए माखनलाल चतुर्वेदी ने १९१३ में कविता लिखी, 'निःशस्त्र सेनानी।' भारत आकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में गांधी की सक्रियता ने देश में एक नई जागृति पैदा की। उन्होंने रास्ता दिखाया और जन-मन उनके साथ हो लिया। भारतीय साहित्य में उनकी सजग सजीव उपस्थिति प्रकट हुई। सन् १९१७ में चंपारण सत्याग्रह से जनता उन्हें अपना असाधारण हितैषी महापुरुष मानने लगी। असहयोग आंदोलन (१९२०-२१) के बाद उन्होंने लोकगीतों में स्थान पा लिया, भारतीय भाषाओं के लेखकों की रचनाओं में स्थान पाने लगे। असहयोग आंदोलन के दौरान उनके भाषण से प्रभावित होकर सुमित्रानंदन पंत ने कॉलेज की पढाई छोड़ी, प्रेमचंद ने नौकरी छोड़ दी। कुछ समय बाद 'स्वराज के फायदे' शीर्षक से लेख छपवाया', गांधी का उनके लेखन पर गहरा प्रभाव है। उनके लेखन में अहिंसा, असहयोग, अस्पृश्यता, स्त्रियों की दशा में सुधार को पुरजोर मुददा बनाया गया है—'प्रेमाश्रम', 'सेवाश्रम', 'गबन', 'निर्मला', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' उपन्यासों 'टाकुर का कुआँ', 'सद्‌गति', 'दूध का दाम' आदि कहानियों में गांधी के जीवन-मूल्यों की छाप दिखाई देती है। 'रंगभूमि' का सूरदास अपनी जमीन फैक्टरी के लिए नहीं देता, शांतिपूर्ण प्रतिरोध करता है। 'कर्मभूमि' में सुखदा और मुन्नी अवज्ञा आंदोलन में जेल जाती हैं।

गांधीजी की जीवन-दृष्टि का गहरा प्रभाव जैनेंद्र कुमार के रहन-सहन और लेखन पर है। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की उनके उपन्यासों के पात्र आस्था, करुणा, सहिष्णुता, आत्म-दमन, आत्मपीडन, सविनय प्रतिरोध के माध्यम से दूसरों का हृदय परिवर्तन का प्रयास करते हैं। जैनेंद्र स्वतंत्रता संग्राम में गांधी के अनुयायी रहे, जेल गए।

हिंदी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी पर गांधी के विचारों और कार्यशैली का गहरा प्रभाव था। उनकी रचनाएँ—'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' गांधी के प्रयोगों और वचनों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हैं। सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी राष्ट्रीय चेतना की कविताओं के माध्यम गांधी के स्वाधीनता संघर्ष में भाग लिया. गांधी पर अनेक कविताएँ—'सेवाग्राम', 'युगावतार गांधी', 'खादी गीत' आदि लिखीं। माखनलाल चतुर्वेदी गांधी के प्रति आस्थावान कवि-पत्रकार और स्वाधीनता सेनानी थे। गांधीजी भी उनके कद्रदान थे। उनकी गिरफ्तारी पर गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा—मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त पर गांधी का गहरा प्रभाव था। 'भारत भारती' से गांधीजी बहुत प्रभावित हुए थे और गुप्तजी को राष्ट्रकवि की उपाधि दी थी। सियारामशरण गुप्त का जीवन गांधी-दर्शन को समर्पित था। 'बापू' नामक काव्य-ग्रंथ उनकी इसी भावना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।

छायावादी कवियों में जागरण, राष्ट्रीयता और स्त्री-शक्ति तथा स्वातंत्र्य कामना के पीछे गांधी का सत्याग्रह आंदोलन सक्रिय है। महादेवी ने गांधी की प्रेरणा से प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की। विजय देव नारायण साही ने तो अपने निबंध 'लघु मानव के बहाने हिंदी कविता पर एक बहस' में इस काल (१९१८-१९४७) को 'सत्याग्रह युग' नाम दिया है। इस काल में बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर, सुमित्रानंदन पंत, भवानीप्रसाद मिश्र ने कविताएँ लिखीं। गांधी की हत्या पर मर्म-स्पर्शी कविताएँ लिखी गईं। दिनकर जिनकी गांधी से सहमति बनी रही, बोल उठे—

दौड़ो पकड़ो वे चरण दासता
जिनके सेवन से छूटी
पकड़ो वे दोनों पद जिनसे
जिनसे आजादी की गंगा फूटी

अनेक भारतीय भाषाओं के रचनाकारों ने गांधी-विचार और कर्म को अपना विषय बनाया। मलयालम कवि वल्लतोल ने गांधी पर कविताएँ लिखीं। विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर गांधी की कार्य-पद्धति से सहमत भले ही न रहे हों, उन्होंने गांधी को महात्मा की उपाधि दी। इतना ही नहीं, उन्होंने कविता लिखी—

गांधि महाराजेर शिष्य,
केऊ बा धनी केऊ बा नि:स्व,
एक जायगाय आछे मोदर मील;

नाटक, निबंध अदि विधाओं में भी गांधी की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपस्थिति रही। उनसे असहमत लोगों ने विरोध में लिखा, कुछ मार्क्सवादियों ने खिल्ली उड़ाई। किंतु गजानन माधव मुक्तिबोध की सुप्रसिद्ध कविता 'अँधेरे में' में गांधी की प्रतीकात्मक उपस्थिति अथवा केदारनाथ अग्रवाल की निम्नलिखित कविता गांधी से मार्ग पूछती प्रतीत होती है—

दुःख से दूर पहुँचकर गांधी!
सुख से मौन खड़े हो
मरते खपते इनसानों के
के इस भारत तुम्हीं बड़े हो।

गांधी के बाद भी साहित्य में उनकी प्रखर उपस्थिति रही। आजाद भारत गांधी के जीवन-मूल्यों की हत्या पर आक्रोश, पीड़ा, उनसे पुनः मार्गदर्शन की तलाश, उनके जीवन और दर्शन की नए सिरे से खोज, व्याख्या-पुनर्व्याख्या हुई और हो रही है। भवानीप्रसाद मिश्र ने उन पर बहुत सी कविताएँ लिखीं, जो 'गांधी पंचशती' में संगृहीत हैं। गिरिराज किशोर ने उनके आरंभ से दक्षिण अफ्रीका प्रवास तक के जीवन को केंद्र में रखते हुए 'पहला गिरमिटिया' नामक जीवनीपरक उपन्यास लिखा। नंद किशोर आचार्य ने उनके जीवन के अंतिम वर्षों में अकेले पड़ जाने की पीड़ा को केंद्र में रखते हुए 'गांधी' नाटक लिखा है। इसमें कांग्रेस के भीतर, निकटवर्तियों के बीच गांधी की उपेक्षा और अवमानना को ठोस प्रमाणों के आधार पर उद्घाटित किया है।

गांधी की इकहत्तरवीं जयंती के अवसर पर एक पुस्तक तैयार की गई थी, जिसमें दुनिया भर के उनके समकालीनों, परिचितों, मित्रों, सहयोगियों गांधी के विषय में अपने विचार किए। विभिन्न विषयों, कार्यक्षेत्रों से जुड़े इन विद्वानों के लेख गांधी की बहुस्तरीय महत्ता की पुष्टि करते हैं। इसका हिंदी अनुवाद सस्ता साहित्य मंडल ने 'गांधी अभिनंदन ग्रंथ' नाम से प्रकाशित किया है। गांधी के चिर स्थायी महत्त्व को समझने के लिए यह एक पठनीय ग्रंथ है।

सा अ

ए-१०२/३,
एस.एफ.एस. फ्लैट्स, साकेत
दिल्ली-११००१७
rrpaliwal@hotmail.com

गांधीजी की विनम्रता

गांधीजी के चलाए आंदोलनों में अनेक भारतीय तन-मन-धन से लगे हुए थे।

उन दिनों गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे। ब्रिटिश सरकार से उन्हें इसी कारण लगातार दमन का शिकार होना पड़ रहा था, किंतु गांधीजी अहिंसा पर बल देते हुए अपने कार्य में लगे थे। दक्षिण अफ्रीका का तानाशाह जनरल स्मट्स उन्हें बार-बार जेल भेजकर उनका मनोबल तोड़ने की कोशिश में लगा हुआ था और उनकी अहिंसावादी प्रवृत्ति को परखना चाहता था। गांधीजी अनेक अत्याचार सहकर भी अहिंसा के मार्ग पर चल रहे थे। जब जनरल स्मट्स ने उन्हें जेल भिजवा दिया तो उन्होंने जेल में सभी कैदियों के साथ अत्यंत अहिंसक व प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। वहीं पर एक कैदी बहुत अच्छे जूते बनाना जानता था। गांधीजी ने जब उसकी इस कला को देखा तो उन्होंने उसका उत्साह बढ़ाया और उसकी कला की प्रशंसा की। कैदी अपनी प्रशंसा सुनकर बेहद खुश हो गया। इसके बाद गांधीजी ने स्वयं भी उससे जूते बनाना सिखाने के लिए कहा। कैदी खुशी-खुशी गांधीजी को जूते बनाने सिखाने लगा। जब गांधीजी जेल से रिहा होने लगे तो उन्होंने जनरल स्मट्स को एक पैकेट भेंट किया। पैकेट देखकर जनरल बोला, 'गांधीजी, क्या इसमें कोई बम है?' गांधीजी विनम्रता से बोले, 'महोदय, यह मेरी तरफ से आपको मेरी विदाई का उपहार है।' जनरल ने पैकेट खोलकर देखा तो वह यह देखकर हैरान रह गया कि पैकेट में हाथ से बने हुए सैंडल का बहुत ही खूबसूरत एक जोड़ा था। यह प्रेमपूर्ण उपहार देखकर एक पल को जनरल द्रवित-सा हो गया। वर्षों बाद गांधीजी के जन्मदिन पर जनरल ने उन्हें एक पत्र भेजा और उसमें लिखा, 'आपके द्वारा बनाए हुए उन सैंडलों को मैंने गरमियों में पहना। हालाँकि अब मैं यह महसूस करता हूँ कि मैं उन्हें पहनने का सही हकदार नहीं हूँ। मैं आपकी विनम्रता और अहिंसा की प्रवृत्ति को नमन करता हूँ।'

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



गांधीजी का पत्राचार

गांधीजी का पत्र वल्लभभाई के नाम

१५-१-'३४

भाई वल्लभभाई,

अभी शाम के ४ बजे हैं। मौनवार है। कालीकट में नागजी पुरुषोत्तम[१] के बँगले में बैठा हूँ। देवदास और लक्ष्मी आज आ गए। कल ठक्करबापा और शंकरलाल आएँगे। कल दोपहर को २:३० बजे जामोरिन[२] से मिलूँगा। पाँच बजे त्रिचुर के लिए निकल पड़ूँगा।

लक्ष्मी दिल्ली जाय या मद्रास में प्रसूति कराई जाय, यह प्रश्न है। वे दो दिन में राजाजी से मिलेंगे। बाद में अंतिम निर्णय करेंगे। देवदास को दिल्ली जाने की इजाजत मिल गई है। फिर भी अनुभव लेने के लिए वह छह मास शायद मद्रास में बिताएगा। दोनों विचार कर रहे हैं। लक्ष्मी देवदास की गैर-मौजूदगी में प्रसूति नहीं चाहती। राजाजी अपनी अनुपस्थिति नहीं चाहते। इस तरह समस्या में समस्या पैदा हो गई है। जीवन की सफलता तो ऐसे छोटे दिखाई देने वाले मसले भी सीधे ढंग से हल करने में ही है न?

शंकरलाल को मैंने खादी के बारे में थोड़ी बात कर जाने को खास तौर पर बुलाया है। मैं देखता हूँ कि हमारे विभाग में शायद अनावश्यक खर्च होता है। मैंने जो कुछ देखा है, वह उनके सामने रखना है। ऐसा महसूस होता है कि एक प्रांत की खादी दूसरे प्रांत में भेजने का बोझ अब तो बिल्कुल छोड़ना चाहिए। अंत में मेरा मन अनंतपुर की पद्धति की तरफ झुक रहा है। सावली भी ठीक लगती है। कृष्णदास (गांधी) और जाजूजी[३] उस्ताद हैं और एक-दूसरे की खूब पूर्ति करते हैं।

कृष्णदास खूब चमक रहा है। केशू शांत है।...

देवदास बा से मिल आया। बा की बहादुरी की बड़ी तारीफ करता है। बा को सताया तो जा रहा है। ऐसा न हो तब तक मजा कैसे आए?

गुरुवायुर हो आया। वहाँ कुछ भी नहीं है। परंतु यह कहा जा सकता है कि वर्णाश्रम संघ ने उत्तर के पहलवानों को काले झंडे फहराने और थोड़ी मार खाने को भेज दिया था। दो जनों ने प्लैटफार्म पर कब्जा कर लिया था। एक भाई के पैर पकड़ लिये। जिस पर नौजवानों ने उन्हें उतर जाने का कहा। गुत्थमगुत्था हुई। इन पहलवानों पर भी कुछ मार पड़ी। हैं सकुशल, मगर स्वभाव के अनुसार बरताव कर दिखाया। इन दोनों को मैंने अस्पताल भेज दिया और सभा शुरू कर दी। पूरी की। मनुष्यों की अनुपस्थिति होती ही रहती है। अधन्ने और नोट मिलते ही रहते हैं। अन्नपूर्णा जैसी एक कौमुदी प्रकट हुई है। उसने अपने तमाम गहने दे दिए। जिसका राम रक्षक है, उसे कौन मार सकता है? इसलिए वह रखेगा, वैसा रहूँगा, वह कहेगा वैसा करूँगा, वह नचाएगा वैसा नाचूँगा।

बंगलोर में हंगरी की दो महिलाएँ—माँ-बेटी मिलीं। दोनों चित्रकला में बड़ी कुशल हैं। सादगी से रहती हैं। अभी तो सर्वस्व हिंदुस्तान को अर्पण कर दिया है। ये माँ-बेटी भजनों के स्वर में सहज ही नाचती हैं।

नागिनी अमरीका जाएगी, ऐसा जान पड़ता है। कदाचित् सिरियस भी जाए। इसकी फजीहत के बारे में तो आपको बहुत नहीं लिखा। क्या लिखूँ? समय भी तो चाहिए न?

अमला का काम चल रहा है।

मणि का पत्र साथ में है। पूनियों और पुस्तकों के बारे में स्वामी को लिखा है। पुस्तकें एक ही आकार की न हों तो जिल्द बँध सकेगी या नहीं, यह पता नहीं चलता। स्वामी उस्ताद हैं, इसलिए हो सकेगा तो जरूर कर देंगे।

आपके नाम का मणि का पत्र डाह्याभाई ने भेजा था।

बेलगाँव जाऊँगा तब तो दोनों से मिलने का बंदोबस्त करूँगा। लेकिन वहाँ जाने का तय नहीं है।

मणि को लिखिए, बड़ों की सेवा उनके पास रहकर ही नहीं की जाती। जो बुजुर्गों का काम करता है, वह उनकी सेवा ही करता है। पास रहने का लोभ भले ही हो। वह स्वाभाविक भी है किंतु सेवा और सान्निध्य का अनिवार्य संबंध नहीं है। वह बेचारी मानती है कि उपरोक्त पत्र सीधा भेजा गया होगा। लेकिन आपने देखा होगा कि वह साबरमती में स्नान[४] करके आया है। इसलिए चार-पाँच जगह भीग गया है। यह हमें कोई नया अनुभव नहीं है। येन-केन-प्रकारेण चित्त को संतुष्ट तो रखना है न?

गोरधनभाई को आखिर शांत नहीं कर सका। परंतु अब मुझे कुछ लिखते नहीं। मैंने उनके प्रति भी जो धर्म लगा, उसका पालन किया है। विट्ठलभाई की तरफ से आए हुए रुपयों का हिसाब मैंने मँगवाया है और पत्र-व्यवहार भी मँगवाया है। वह मिल जाए तो उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता जरूर मानता हूँ।

मुझे लिखे तब भले वर्धा ही पत्र लिखे। परंतु आपको ही सब कुछ लिखा करे और वह पत्र मुझे मिल जाए, तो भी मुझे पूरा संतोष रहेगा। आप ही इस बारे में इसे रास्ता दिखाइए। बाकी हाल तो आप लिखेंगे ही। लक्ष्मी का हाल मैं आपको लिख चुका हूँ। मृदुला को और नंदूबहन[५] को पत्र लिख रहा हूँ। ब्रजकृष्ण को देवदास देख आया। वह अच्छा है। जी गया। आराम की जरूरत है और वह ले रहा है।

राजाजी ६ फरवरी को अवश्य छूट जाएँगे।

किसी भी कारण से मन विचार में न रहे, यह सीख लेने की जरूरत है। इसके लिए या तो गीता कंठस्थ कर ली जाय, संस्कृत सीखी जाय या रामधुन उलटी-सुलटी रटी जाय।

मुझे तो चिंता करने की फुरसत ही नहीं मिलती, इसलिए चिंता न करने की सलाह देने की जरूरत नहीं रह जाती।

दोनों को बापू के आशीर्वाद

---

१. कालीकट के एक कांग्रेसी।

२. जामोरिन—कोजीकोड (कालीकट) के एक बड़े जमींदार की आदरसूचक पदवी। मलयाली शब्द 'सामुदिरि' का अपभ्रंश। दंत कथा यह है कि नवीं सदी में मलाबार के राजा ने अपनी जमीन का बँटवारा किया, तब उसने जामोरिन को इतनी जमीन दी, जितनी में वहाँ के तल्ली मंदिर के मुर्गे की आवाज सुनाई देती थी।

३. श्रीकृष्णदास जाजू। श्री शंकरलाल बैंकर के बाद कई वर्ष तक अखिल भारत चरखा संघ के मंत्री रहे।

४. बेलगाँव जेल के स्टाफ में कोई गुजराती न होने से बेलगाँव जेल से जाने-आनेवाले गुजराती पत्र जाँच के लिए साबरमती जेल में भेजे जाते और वहाँ से संबंधित मनुष्यों के पास भेजे जाते थे। पू. बापू के नाम के पत्रों की विधि तो बहुत लंबी हो जाती थी। साबरमती जेल से वे आई.जी.पी. के पास जाते और वहाँ से नासिक जेल में जाते, जहाँ बापू रखे गए थे।

५. स्व. विजयागौरी कानूगा। अहमदाबाद के प्रसिद्ध स्व. डॉ. कानूगा की पत्नी। पू. बापू ने १९३० में अपना अहमदाबाद का मकान उठा दिया, इसके बाद जब वे अहमदाबाद आते, तब डॉ. कानूगा के यहीं ठहरते।



मुजफ्फरपुर
२३-४-'३४

भाई वल्लभभाई,

आपके दो पत्र मिले। अभी दातुन करके लिखने बैठा हूँ। ३:४० हुए हैं। इसे तो उठने में सुधार मानेंगे न? मुजफ्फरपुर में गोखलेपुरी में हैं। कल रात को १० बजे आसाम से आए। गोखले के नाम से एक छोटा-सा उपनगर गोखले संस्थावाले वाजपेयीजी ने बसाया है। आज मौन खुलने के बाद उसका उद्घाटन करना है। राजेंद्र बाबू मुझे कल कटिहार में मिले थे।

वालजी जरा बीमार हो गए थे, इसलिए आकर तुरंत सो जाने के बजाय डॉक्टर को बुलवाया। जिससे १२ बजे बाद सोना हुआ। नींद किसी न किसी तरह पूरी कर लेता हूँ।

नारणदास गांधी (जेल में से) निकलने के बाद काफी बीमार हो गए हैं। नकसीर खूब छूटती है। मगर अब ठीक हैं। राँची में मिलेंगे।

आप परेशान हैं, यह आश्चर्य की बात है। मैंने तो सबसे कहा था कि आपको यह कदम समझने में देर ही नहीं लगेगी। परंतु आपके पत्र आपका दुःख बता रहे हैं। बाहर रहनेवालों में किसी की आप जैसी हालत हुई नहीं लगती। जवाहर के बारे में ऐसा जरूर खयाल था, परंतु उनके बारे में यह मान रखा था कि वे थोड़ी ही देर में समझ लेंगे। मेरा यह खयाल कि जेल में बैठे हुए बाहर की बात नहीं समझ सकते, क्या आपके लिए भी सही साबित हो रहा है? या मैं ही सही रास्ते से बिल्कुल भटक गया हूँ? मुझे अभी तक ऐसा कुछ नहीं लगता। किया हुआ निर्णय ठीक है, यह दीये की तरह साफ दिखाई देता है। पूना में ही मुझे यह बात क्यों न सूझी, यह कहना भी व्यर्थ है। उस वक्त यह सूझने जैसी बात नहीं थी। वक्त पर ही जो बात सूझती है, वही शोभा देती है। पूना के समय पूना की बात ठीक थी और इस वक्त यही मुनासिब है। बुआजी के कहने का हर्ष या शोक बिल्कुल नहीं हो सकता। अगर हमने यह निर्णय न किया होता, तो अपार हानि होती।

मुश्किलें तो जरूर हैं। लेकिन एक भी मेरी नजर से बाहर न थी। उन्हें पार कर लेंगे। जिस कदम से जनता ऊँची उठी है; वह और उठेगी। किसानों को जवाब दिया जा सकता है। देंगे। जवाब नहीं दिया जाता, अगर मैं भी हार गया होता। इसमें अहंकार हो सकता है, जैसा आपको तो स्वप्न में भी खयाल नहीं होगा। सब दलीलें कैदी के नाते आपसे नहीं की जा सकतीं, इसलिए इतना ही काफी समझता हूँ। धीरज का फल मीठा होता है। धीरज रखें। सब अच्छा ही होगा।

स्वराज दल के पुनर्जीवित होने के बारे में तो साफ समझ में आने जैसी बात है। इसके पुनर्जीवित होने की अत्यंत आवश्यकता थी। जैसा लगा कि जो दल कभी ठोकरें खाने पर भी टिका हुआ है, इसके लिए कांग्रेस में स्थान होना ही चाहिए। मैं मानता हूँ कि यह बात केवल इसी वक्त के लिए नहीं, परंतु हमेशा के लिए सही है। इसमें भी मुश्किलें हैं। स्वार्थ भी है। अनुभव की कमी भी है। जो कहिए सो है। फिर भी जो है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। उसमें सुधार हो सकते हैं। उस पर अंकुश रखा जा सकता है। इससे अधिक या कम कुछ नहीं हो सकता। यह कहने में भी हर्ज नहीं कि मैंने हिम्मत बँधाकर स्वराज दलवालों को खड़ा किया है। उनकी इच्छा थी, परंतु हिम्मत नहीं हो रही थी। पूना में मैंने जो सुझाया था, वह अब फलने लगा है। कांग्रेस को धारासभाओं से सर्वथा अलिप्त रख सके होते तो दूसरी बात थी। परंतु वह तो जबरदस्ती करने जैसी बात होगी। 'सन'[१] के दर्शन आपने ही पहले-पहल कराए।

इसमें तो ऐसी ही बातें आएँगी न? इनमें थोड़ा-बहुत सत्य है जरूर। बेचारी लेस्टर! वह और अगाथा कल पटना में मिलेंगी। उन दोनों को तो यह निर्णय बहुत ही पसंद आया। अपनी शक्ति के अनुसार वे खूब मेहनत कर रही हैं। परंतु आज उनकी आवाज कौन सुनता है? इतने पर भी वे इतना सब समझ लेती हैं, यह बहुत है। दोनों निर्मल हैं, बहादुर हैं। स्विट्जरलैंड से सेरेसोल आ रहे हैं। वे होशियार इंजीनियर हैं। बिहार की मदद के लिए आ रहे हैं। शांतिप्रेमी हैं। मैं उनसे वीलनेव में मिला था। भले आदमी हैं। अगर उनका शरीर टिका रहा, तो बहुत कुछ कर सकते हैं।

फूलचंद बापूजी[२] के स्वर्गवास का तार मुझे कल ही मिला। एक भला सेवक चला गया। यह मौत बहुत भारी मानी जाएगी। साथ की टिप्पणी नरसिंहभाई[३] ने लिखी है। आपको पसंद आएगी। नरसिंहभाई लिखते हैं कि वे रात को बिना किसी रोग के महानिद्रा में सो गए। आखिरी दिन तक काम में जुटे रहे। कुछ भी नहीं हुआ था। तब फिर कोई उनके पास क्यों रहने लगा? रात को ही घड़ी बंद हो गई। चंद्रशंकर पंड्या[४] तार से पूछते हैं कि लिखिए क्या किया जाय? इस वक्त स्मारक की तो बात ही क्या? आपको कुछ सुझाना है?

ठक्करबापा दादा[५] से मिलने गए थे। संकट-निवारण के पैसे के मामले में। दादा आनंद में हैं। उनका शरीर खूब अच्छा बन रहा है। उन्हें खास जल्दी नहीं है। भले ही न हो। यह भी ठीक ही है।

बापू के आशीर्वाद

---

१. उन दिनों बंबई से निकलनेवाला एक अंग्रेजी अखबार।
२. स्व. फूलचंद बापूजी शाह। नड़िया के निवासी। गुजरात के एक बहुत पुराने राष्ट्रीय कार्यकर्ता।
३. स्व. नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल। वे अपने सार्वजनिक जीवन के शुरू में कुछ समय के लिए बम-आंदोलन में शरीक हो गए थे। फिर पूर्व अफ्रीका और शांतिनिकेतन में रह आने के बाद आणंद में बस गए। गांधीजी की प्रवृत्तियों में भाग लेते और 'पाटीदार' मासिक निकालते थे।
४. एक गुजराती विद्वान्। नड़ियाद के निवासी।
५. श्री गणेश वासुदेव मावलंकर।



वाल्मीकि मंदिर,
नई दिल्ली,
२४-७-'४७

चि. वल्लभभाई,

मैं ज्यों-ज्यों विचार करता हूँ, त्यों-त्यों मुझे लगता है कि कश्मीर का मामला तय हो जाने पर मुझे यहाँ से चल देना चाहिए। जो हो रहा है, वह ज्यादातर मुझे पसंद नहीं आता। इससे मैं यह नहीं कहता कि उसे बदल दिया जाए, परंतु यह कहता हूँ कि मेरे यहाँ रहने के कारण लोगों को यह कहने का मौका न मिले कि मैं भी उसमें शामिल हूँ। फिर मुझे १५ तारीख से पहले बिहार और वहाँ से नोआखाली पहुँचना चाहिए। यह भी महत्त्व का काम है। इसलिए मैं इतना ही चाहता हूँ कि आप मुझे न रोकें। ५-७ दिन तो वैसे भी हैं ही।

मेरा यह भी खयाल है कि 'हरिजन' अब बंद कर दिया जाय। मुझे देश को उलटे रास्ते ले जाना ठीक नहीं मालूम होता। यह सब फुरसत से सोच लीजिए।

बापू के आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल,
१, औरंगजेब रोड,
नई दिल्ली



गांधीजी का पत्र जवाहरलाल के नाम

[हिंदुस्तान के असहयोग-आंदोलन में पहला सामूहिक जेल-यात्रा-काल दिसंबर १९२१ में शुरू हुआ। दसियों हजार लोग कानून को खास तरीके से भंग करने के कारण कैदखाने भेज दिए गए। जब हमने सुना कि महात्मा गांधी ने इस आंदोलन को वापस लेने का अचानक हुक्म दे दिया, तब हममें से ज्यादातर जेलखाने में थे। उनमें मेरे पिताजी भी शामिल थे। कारण यह बताया गया कि उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरीचौरा के किसानों की एक उत्तेजित भीड़ ने एक पुलिस चौकी पर हमला करके उसे जला दिया और जो थोड़े-से पुलिसवाले वहाँ थे, उन्हें मार डाला। जेल में हम सबको बड़ा दुःख हुआ कि किसी गाँव में लोगों के एक समूह के दुराचरण के कारण एक महान् आंदोलन इस तरह अचानक वापस ले लिया गया। महात्मा गांधी उस समय आजाद थे, यानी जेलखाने में नहीं थे। हमने जेलखाने से किसी तरह, जो कदम उन्होंने उठाया था उसपर, अपनी गहरी तकलीफ उन तक पहुँचा दी। यह पत्र गांधीजी ने उसी अवसर पर लिखा था। यह मेरी बहन सरूप (अब विजयालक्ष्मी पंडित) को मुलाकात में हमारे सामने जेल में पढ़कर सुनाने को दिया गया था।]

बारडोली,
१९ फरवरी, १९२२

प्रिय जवाहरलाल,

मुझे मालूम हुआ है कि तुम सबको कार्य-समिति के प्रस्ताओं पर भयंकर पीड़ा हुई है। मुझे तुमसे हमदर्दी है और पिताजी की बात सोचकर मेरा दिल टूटता है। उन्हें जो पीड़ा हुई होगी, उसकी मैं अपने मन में कल्पना कर सकता हूँ। परंतु मुझे यह भी महसूस होता है कि यह पत्र अनावश्यक है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि पहले आघात के बाद स्थिति सही तौर पर समझ में आ गई होगी। बेचारे देवदास की

बचपन-भरी नासमझियों का हमारे दिमाग पर बहुत बोझा नहीं होना चाहिए। बिल्कुल संभव है कि उस गरीब लड़के के पैर उखड़ गए हों और उसका मानसिक संतुलन जाता रहा, परंतु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि असहयोग आंदोलन से सहानुभूति रखनेवाली गुस्से से पागल भीड़ ने पुलिस के सिपाहियों की बहशियाना ढंग से हत्या की। इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वह भीड़ राजनैतिक चेतना रखनेवाली भीड़ थी। ऐसी साफ चेतावनी पर ध्यान न देना बड़ा अपराध होता।

मैं बता दूँ कि यह चरम सीमा थी। वाइसराय के नाम मेरी चिट्ठी शंकाओं से खाली नहीं थी, जैसा कि उसकी भाषा से जाहिर है। मद्रास की करतूतों से भी मैं बहुत अशांत हुआ था, लेकिन मैंने चेतावनी की आवाज को दबा दिया। मुझे कलकत्ता, इलाहाबाद और पंजाब से हिंदुओं और मुसलमानों के पत्र मिले थे। यह सब गोरखपुर की घटना से पहले की बात है। उनका कहना था कि सारा दोष सरकारी पक्ष का ही नहीं है; हमारे लोग आक्रमणकारी, हेकड़ और धमकानेवाले बनते जा रहे हैं, हाथ से निकले जा रहे हैं और उनका रवैया अहिंसक नहीं है। जहाँ फीरोजपुर जिरके की घटना सरकार के लिए अपयशकारी है, वहाँ हम भी एकदम निर्दोष नहीं हैं। हकीमजी ने बरेली के बाबत शिकायत की। मेरे पास झज्जर के बारे में कड़ी शिकायतें हैं। शाहजहाँपुर में भी टाउन हाल पर जबरदस्ती कब्जा करने की कोशिश की गई। कन्नौज से भी खुद कांग्रेस के मंत्री ने तार दिया कि स्वयं सेवक उद्दंड हो गए हैं और हाईस्कूल पर धरना लगाकर सोलह वर्ष से छोटे लड़कों को स्कूल जाने से रोक रहे हैं। गोरखपुर में छत्तीस हजार स्वयंसेवक भरती किए गए, जिनमें से सौ भी कांग्रेस की प्रतिज्ञा का पालन नहीं करते। जमनालालजी मुझे बताते हैं कि कलकत्ता में घोर असंगठन है। स्वयंसेवक विदेशी कपड़े पहनते हैं और अहिंसा की प्रतिज्ञा से कतई बँधे हुए नहीं हैं। ये सब खबरें और दक्षिण से इससे भी ज्यादा खबरें मेरे पास थीं; तब चौरीचौरा के समाचारों ने बारूद में जबरदस्त चिनगारी का काम दिया और आग लग गई। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अगर यह चीज मुल्तवी न कर दी जाती तो हम एक अहिंसक आंदोलन के बजाय असल में हिंसक संग्राम को चलाते। यह बेशक सच है कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अहिंसा गुलाब के इत्र की खुशबू की तरह फैल रही है। परंतु हिंसा की दुर्गंध भी अभी तक जबरदस्त है और इसकी उपेक्षा करना, उसे तुच्छ समझना, बुद्धिमानी नहीं है। हमारे इस तरह पीछे हटने से काम आगे बढ़ेगा। आंदोलन अनजाने में सही रास्ते से हट गया था। अब हमने अपनी पतवार फिर सँभाल ली है और सीधे आगे जा सकते हैं। घटनाओं को सही रूप में देखने के लिए तुम्हारी स्थिति जितनी प्रतिकूल है, मेरी उतनी ही अनुकूल है।

गांधीजी की हस्तलिपि

चि. जवाहरलाल,
उपवास छोडो.
साथ में [illegible] के
तार की नकल भेजता
हूं. [illegible] ने मैंने
जो कहा वही कहा है.
बहुत वर्ष जीयो
और हिंद के जवाहर
बने रहो.
बापुके आशीर्वाद
१२-१-४८

दक्षिण अफ्रकी का मेरा अपना अनुभव बताऊँ? जेलों में हमारे पास तरह-तरह की खबरें पहुँचाई जाती थीं। अपने पहले अनुभव के दो-तीन दिनों में तो मैं इधर-उधर के समाचार सुनकर खुश होता रहा, लेकिन मैंने फौरन समझ लिया कि इस रिश्वतखोरी में मेरा दिलचस्पी लेना बिल्कुल व्यर्थ है। मैं कुछ कर नहीं सकता था। मेरे किसी संदेश के भेजने से कोई लाभ नहीं था और मैं व्यर्थ अपनी आत्मा को कष्ट पहुँचाता था। मैंने अनुभव किया कि जेल में बैठकर आंदोलन का पथ-प्रदर्शन करना मेरे लिए असंभव है। इसलिए मैं तो तबतक प्रतीक्षा ही करता रहा जबतक बाहरवालों से मुलाकात होकर खुलकर बातें नहीं हुई। फिर भी मेरी बात सच मानो कि मैंने दिमागी दिलचस्पी ही लीं; क्योंकि मैंने महसूस किया कि किसी बात का निर्णय करना मेरे अधिकार के बाहर हे और मुझे मालूम हो गया कि मैं बिल्कुल सही रास्ते पर हूँ। मुझे याद है कि किस तरह हर बार मेरे जेल से छूटने के समय तक जो विचार बनते थे, वे रिहाई के बाद और रूबरू जानकारी मिलने पर तुरंत बदल

जाते थे। जो हो, जेल के वायुमंडल के कारण हमारे मन में सारी बातें नहीं रहतीं। इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम बाहर की दुनिया को अपने खयाल से ही निकाल दो और यह समझ लो कि वह है ही नहीं। मैं जानता हूँ कि यह काम बहुत ही कठिन है, परंतु यदि कोई गंभीर अध्ययन शुरू कर दो और कोई शरीर-श्रम का काम हाथ में ले लो तो यह काम हो सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि तुम कुछ भी करो, मगर चरखे से न उकताओ। तुम्हारे और मेरे पास बहुत-सी बातें करने और बहुत-सी मान्यताएँ रखने पर अपने आपसे अरुचि होने के कारण हो सकते हैं, मगर इस बात पर अफसोस करने का कभी कारण नहीं मिलेगा कि हमने चरखे पर श्रद्धा केंद्रित क्यों कर ली या मातृभूमि के नाम पर हमने रोज इतना अच्छा सूत क्यों काता। तुम्हारे पास 'सांग सिलेशियल' है। मैं तुम्हें एडविन आर्नल्ड जैसा बेमिसाल अनुवाद तो नहीं दे सकता, मगर मूल संस्कृत का उल्था यों है, ''शक्ति बेकार नहीं जाती, नष्ट तो होती ही नहीं। थोड़े-से धर्म से भी मनुष्य कई बार गिरने से बच जाता है।'' इस धर्म का आशय कर्मयोग से है और हमारे युग का कर्मयोग चरखा है। प्यारेलाल के मार्फत तुमने मुझे खून सुखानेवाली खुराक पिलाई है, उसके बाद तुम्हारा उत्साहवर्धक पत्र आना चाहिए।

तुम्हारा,
मो.क. गांधी



गांधीजी का पत्र सुभाष बाबू के नाम

नई दिल्ली
३० मार्च, १९३९

प्रिय सुभाष,

अपने तार का जवाब पाने की खातिर मैंने तुम्हारे २५ तारीख के पत्र का उत्तर देने में देर की है। सुनील का तार मुझे कल रात को मिला। अब प्रात:काल की प्रार्थना के समय से पहले उठकर यह उत्तर लिख रहा हूँ।

चूँकि तुम्हारे खयाल में पंडित पंत का प्रस्ताव अनियमित था और कार्य-समिति संबंधी कलम स्पष्ट रूप में अवैधानिक और नाजायज है, इसलिए तुम्हारा मार्ग नितांत स्पष्ट है। समिति का तुम्हारा चुनाव अबाधित होना चाहिए।

इसलिए इस विषय में तुम्हारे कई प्रश्नों को मेरे उत्तर की जरूरत नहीं।

जब हम फरवरी में मिले थे, तब से मेरी राय मजबूत हुई है कि जहाँ मौलिक बातों पर मतभेद हों, जैसा हम सहमत थे कि हैं, वहाँ मिलीजुली समिति हानिकर होगी। इसलिए यह मानकर कि तुम्हारी नीति को महा-समिति के बहुमत का समर्थन प्राप्त है, तुम्हें बिल्कुल उन्हीं लोगों की बनी हुई कार्यसमिति रखनी चाहिए, जो तुम्हारी नीति में विश्वास करते हैं।

हाँ, मैं उसी विचार पर कायम हूँ, जो मैंने हमारी फरवरी की मुलाकात में सेगाँव में प्रकट किया था कि मैं किसी भी प्रकार से तुम्हारे आत्म-दमन में भागीदार होने का अपराधी नहीं बनूँगा। स्वेच्छापूर्वक आत्मविलय दूसरी चीज है। किसी ऐसे विचार को दबा लेना, जिसे तुम देशहित के लिए प्रबल रूप में रखते हो, आत्म-दमन होगा। इसलिए अगर तुम्हें अध्यक्ष के रूप में काम करना है तो तुम्हारे हाथ खुले रहने चाहिए। देश के सामने जो परिस्थिति है, उसमें किसी मध्यम मार्ग की गुंजाइश नहीं है।

जहाँ तक गांधीवादियों का संबंध है (यदि यह गलत शब्द-प्रयोग करें तो) वे तुम्हें बाधा नहीं पहुँचाएँगे। जहाँ संभव होगा, तुम्हारी सहायता करेंगे और जहाँ सहायता नहीं कर सकेंगे, वहाँ अलग रहेंगे। अगर वे अल्पमत में हैं, तब तो कुछ भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। जहाँ वे स्पष्ट बहुमत में होंगे, वहाँ शायद वे अपने आपको दबाकर न रख सकें।

लेकिन मुझे जिस चीज की चिंता है, वह यह हकीकत है कि कांग्रेस के मतदाता फर्जी हैं; इसलिए बहुमत और अल्पमत का पूरा अर्थ नहीं रह जाता। फिर भी जबतक कांग्रेस की भीतरी सफाई नहीं हो जाती, तबतक जो हथियार हमारे पास है, फिलहाल उसी से काम चलाना होगा। जहाँ कार्यकर्ताओं में परस्पर अविश्वास हो, वहाँ मिल-जुलकर काम करना असंभव हो जाता है।

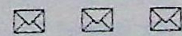
मेरे खयाल से तुम्हारे पत्र के और किसी मुद्दे का जवाब देने की आवश्यकता नहीं है।

जो कुछ करो, भगवान से मार्ग-दर्शन लेते रहो। डॉक्टरों की आज्ञाओं का पालन करके जल्दी अच्छे हो जाओ।

प्यार,

बापू

(जहाँ तक मेरा संबंध है, हमारे पत्र-व्यवहार को प्रकाशित करने की जरूरत नहीं। परंतु तुम्हारा दूसरा विचार हो तो छापने की मेरी इजाजत है।)



गांधीजी का पत्र मुन्नालाल गंगादास शाह को

७ मई, १९४०

चि. मुन्नालाल,

मुझे लगता है, अभी तुम्हारा कंचन के पास जाना उचित नहीं होगा। मुझे डर है, वहाँ झगड़ा होगा। ठीक यह लगता है कि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उसे लिखकर देखूँ और उसका मन टटोलूँ। वहाँ वह गई

है, तो अब उसे अव्यवस्थित करना ठीक नहीं। पति के नाते भी तुम्हारा संयम बरतना उचित है। उसकी स्वतंत्रता तुम्हें सुरक्षित रखनी चाहिए। उसे सलाह दी जा सकती है, हुक्म नहीं दिया जा सकता। जल्दबाजी में कुछ न करना। बदरीनारायण या कलकत्ते जाना हो, तो इसमें उससे पूछने की क्या बात है? लेकिन जैसा तुम्हें अच्छा लगे वैसा करना।

बापू के आशीर्वाद

(गुजराती की फोटो-नकल (जी.एन. ८५४४) से। सी.डब्ल्यू. ७०८६ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं. शाह)



गांधीजी का पत्र राजेंद्र प्रसाद को

(७ मई)[१] १९४० (के पश्चात्)

तुम्हारा खत मिला। मैंने 'स्टैटमेंट'[२] भी देखा था। हमारे लिए तो नैतिक प्रश्न है। और जब सलतनत हठ से न्याय देना नहीं चाहती है तो हम कैसे मदद करें? अगर गुलामखोरी बुरी है तो मालिक की पसंदगी क्या? कांग्रेस की तो यही नीति चली आती है। बेचैनी का कोई कारण नहीं है। अगर हम सब स्वतंत्रता चाहते हैं तो हमसे कोई छीन नहीं सकता है। अगर थोड़े ही चाहते हैं तो उसी की तलाश में मर जाएँगे। हमारे पास देने को नैतिक बल के सिवाय है क्या? और वह तो इनसाफ के साथ ही दिया जा सकता है न? पैसा वगैरा तो हम चाहें या नहीं, उनको मिल ही रहा है। उनकी सरदारी है तब तक वे लेते रहेंगे। जवाहरलाल ने अपना उत्तर मुझे बताया है। बिल्कुल ठीक है। हम सी.डी.[३] न करें, वह कोई छोटी चीज नहीं है। आराम खूब लो।

बापू के आशीर्वाद

(महादेव देसाई की हस्तलिखित डायरी से; सौजन्य : नारायण देसाई)

---

१. साधन-सूत्र में यह और इससे अगला पत्र, दोनों ७ मई, १९४० की प्रविष्टि के बाद दिए गए हैं।

२. साधन-सूत्र से पता चलता है कि राजेंद्र बाबू ने 'घबराहट में' ब्रिटिश शासकों के पक्ष में एक वक्तव्य दे डाला था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है : ''फिर जब उसने (जर्मनी ने) हॉलैंड, बेलजियम, डेनमार्क और नॉर्वे पर भी चढ़ाई कर दी तो मेरे दिल पर इसका बहुत असर पड़ा। मुझे मालूम होने लगा कि किसी भी कमजोर देश को जर्मनी स्वतंत्र नहीं रहने देगा। अंग्रेजों के प्रति जो थोड़ा-सा गुस्सा था, वह कम हो गया और मुझे ऐसा भान होने लगा कि हमको ब्रिटिश की मदद करनी चाहिए, जिससे वह जर्मनी को हरा सके और इस अन्यायी शक्ति का दमन कर सके। यह भाव इतना प्रबल हो गया कि मैंने एक छोटे बयान में अपने उद्गार को प्रकाशित भी कर दिया।''

३. 'सी.डी.' (सिविल डिसओबिडियंस = सविनय अवज्ञा) अंग्रेजी लिपि में लिखा गया है।



गांधीजी का पत्र कैलाशनाथ काटजू को[१]

(७ मई, १९४० के पश्चात्)

मेरी जो स्थिति पहले थी, वह सही तो थी ही, लेकिन उसे यंत्रवत् नहीं अपनाया जा सकता था। जो स्थिति कांग्रेस ने अपनाई है, वह भी सही है। हमारी समस्या विशुद्ध रूप से नैतिक है। जिस क्षण ब्रिटेनवाले नैतिकतापूर्ण आचरण करने लग जाएँगे, उसी क्षण से कांग्रेस का नैतिक सहयोग-समर्थन उनके साथ होगा। कांग्रेस के पास देने को और कुछ है ही नहीं। मैं नहीं समझता कि युद्ध के बादल और भी घनीभूत हों, मेरी सहानुभूति तो हो सकती है, लेकिन जब तक वह गलत राह पर चल रहा है, तब तक मेरा नैतिक समर्थन उसके किसी काम नहीं आएगा। और भारत से ब्रिटेन भौतिक सहायता तो प्राप्त कर ही रहा है। उसमें हमारे चाहने या न चाहने से कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हम जो कर सकते हैं वह यह कि जल्दबाजी में कोई कदम उठाकर ब्रिटेन को परेशानी में न डालें। जब तक रास्ता बिल्कुल साफ नहीं हो जाता, तब तक मैं सविनय अवज्ञा का सहारा नहीं लूँगा। जो कुछ मैंने कहा है, वह अगर आपको न जँचे तो आप जवाहरलाल और दूसरे लोगों से इस पर चर्चा कीजिए।

(अंग्रेजी से)

(महादेव देसाई की हस्तलिखित डायरी से; सौजन्य : नारायण देसाई)

---

१. कैलाशनाथ काटजू ने लिखा था : ''आपने बिना शर्त सहयोग के बारे में जो कुछ लिखा वह बिल्कुल सही है। आज एक अंतरराष्ट्रीय संकट उपस्थित हो गया है। अब भी मौका है कि हम अपने कदम पर फिर से विचार करें और बने तो सहायता देने का निश्चय करें। अभी तो हाल यह है कि सभी छोटे राष्ट्रों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है।''



गांधीजी का पत्र नीलकंठ बी. मशरूवाला को

२९ जनवरी, १९३२

चि. नीलकंठ,

तुम्हारा पत्र मिला। किशोरलाल क्या खाता है? 'यंग इंडिया' मेरे साथ आ गया है। 'गांधी विचार दोहन'[१] भी यहीं होने की ज्यादा संभावना है। उसे यहाँ से सुधारकर नहीं भेज सकता। इसलिए फिलहाल वह जैसा है, वैसा ही छपा लिया जाए तो कोई हर्ज नहीं। सभी कैदी एक साथ ही रहते हैं न? नाथजी से कहना कि आश्रम का चक्कर लगा आएँ। उनकी खाज का क्या हाल है? तुम किशोरलाल से कितनी बार मिल पाते हो? तारा[२] कहाँ है? कैसी है? क्या करती है?

बापू के आशीर्वाद

(पुनश्च:)

लखू कौन है ? मैं भूल गया हूँ।

(गुजराती की फोटो-नकल (सी.डब्ल्यू. ९४१९) से; सौजन्य : नीलकंठ बी. मशरूवाला)

१. किशोरलाल मशरूवाला द्वारा लिखित पुस्तक की पांडुलिपि, जो उसी वर्ष प्रकाशित हुई।
२. तारा मशरूवाला, सुशीला गांधी छोटी बहन।



गांधीजी का पत्र प्रभावती को

२९ जनवरी, १९३२

चि. प्रभावती,

तेरा सीवान से लिखा हुआ पत्र मिल गया है। उससे पहले लिखा हुआ पत्र भी बाद में मिल गया। मेरे पत्र मिलते रहते होंगे। स्वरूपरानीजी[१] से कहना कि स्वरूप और कृष्णा[२] के चले जाने पर भी वे कोई चिंता न करें। ईश्वर सबकी खबर रखता ही है। उनकी तबीयत कैसी रहती है ? मेरा आहार लगभग वैसा ही है जैसा बाहर था। इस समय वजन १०६ रतल है। सरदार वल्लभभाई साथ हैं। दोनों मजे में हैं। तू कोई समाचार-पत्र पढ़ती है ?

बापू के आशीर्वाद

(गुजराती की फोटो-नकल (जी.एन. ३४२३) से।)

१. जवाहरलाल नेहरू की माँ।
२. पंडित मोतीलाल नेहरू की बेटियाँ।



गांधीजी का पत्र मनु गांधी को

११ फरवरी, १९३२

चि. मनुड़ी,[१]

तेरा मत्र मिला। तुझे मौसी की तो सेवा करनी चाहिए। अब तुझे बच्चा नहीं कहा जा सकता। तू तो सयानी हो गई है। मौसी ने तो तेरी बहुत सेवा की है और तुझसे लाड़ भी बहुत किया है। मुझे तो ऐसा लाड़ भी नहीं करना आता। अपने [स्वास्थ्य] का ध्यान रखकर ज्ञान भी खूब बढ़ा। तेरे लिए तसवीर वाले कार्डों का ढेर बढ़ता जा रहा है। मुझे पत्र लिखती रहना।

बापू के आशीर्वाद

(गुजराती की फोटो-नकल (सी.डब्ल्यू. १५१०) से; सौजन्य : मनुबहन मशरूवाला।)

१. हरिलाल गांधी की बेटी।

गांधीजी का पत्र रवींद्रनाथ ठाकुर को

सेवाग्राम, वर्धा
५ मई, १९४०

प्रिय गुरुदेव,

रथीन के[१] पत्र का उत्तर देने में विलंब करने के लिए सहस्रदश क्षमा-याचनाएँ। मेरे पास समय कम और कार्य-भार अत्यधिक है, फलत: पत्रोत्तर आदि के काम पिछड़ते ही जा रहे हैं। लेकिन आपके प्रस्ताव के संबंध में मैं निष्क्रिय नहीं रहा हूँ। रॉजर हिक्स के साथ उस पर पूरी चर्चा की। स्वतंत्र रूप से स्वयं भी उस पर विचार करता रहा हूँ। मेरा निष्कर्ष साथ के संशोधित मसौदे से[२] जान लीजिए। इसमें आप जैसा चाहें वैसा सुधार कर लें। इसको वह सँवार-निखार भी देंगे, जो केवल आप ही दे सकते हैं।

पता नहीं क्यों, कक्ष और अस्पताल-संबंधी अपील मुझे जँच नहीं पाई। शांतिनिकेतन जितना आपका है, उतना ही उनका भी था। जिस चीज को उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था और जो उनकी प्रेरणा का स्रोत थी, उसको एक स्थायी आधार प्राप्त हो जाए, इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? जितनी राशि की माँग की गई है, वह शायद बहुत कम हो। ऐसा लगा तो उसे बढ़ाया जा सकता है। मैंने कहा है कि शांतिनिकेतन की स्थापना मूलत: महर्षि ने[३] की। इस कथन में प्रत्यक्ष अंतर्विरोध है। कृपया इसका समाधान कीजिएगा।

अपील पर हम तीनों[४] हस्ताक्षर करें, यह विचार मुझे ठीक लगा है।

बिशप को इसकी प्रति नहीं भेजी है।

अगर आपको मेरा प्रस्ताव ठीक न लगे और आप मूल को ही रखना चाहें तो उसमें संकोच न करें।

आशा है, आप स्वस्थ-प्रसन्न होंगे।

स्नेह,

हृदय से आपका,
मो.क. गांधी

(अंग्रेजी की फोटो-नकल (जी.एन. २२९०) से)

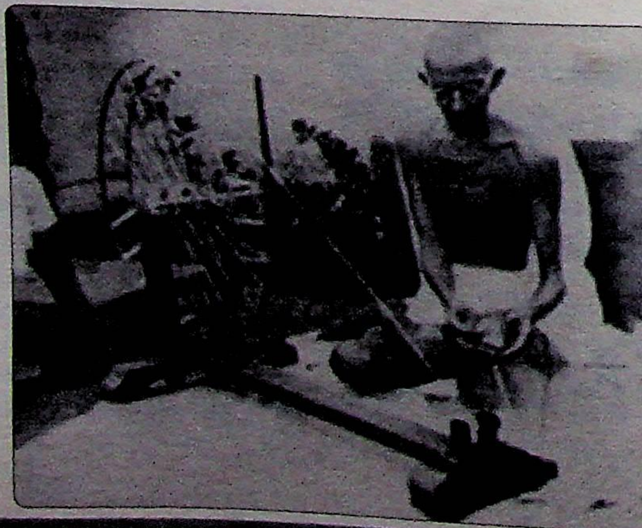
१. रवींद्रनाथ ठाकुर के पुत्र रथींद्रनाथ ठाकुर।
२. यह १.६.१९४० के हरिजन में 'देशबंधु मेमोरियल' (देशबंधु-स्मारक) शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।
३. रवींद्रनाथ ठाकुर के पिता देवेंद्रनाथ ठाकुर।
४. अंत में अपील पर गांधीजी, अबुल कलाम आजाद, एस.के. दत्त, मदनमोहन मालवीय, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, वी.एस. श्रीनिवास शास्त्री और बिशप फॉस वेस्टकॉट ने हस्ताक्षर किए थे।



भारत के पर्याय महात्मा गांधी

• गिरीश्वर मिश्र

महात्मा गांधी ने विचार, निजी जीवन और सार्वजनिक कर्म के स्तर पर दुनिया के सामने एक अखंड भारतीय बिंब प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने स्वयं गढ़ा-रचा था और अपने विवेक से उसे समृद्ध भी करते रहे। उनका योगदान आधुनिक विश्व के सम्मुख एक वैकल्पिक समग्र जीवन दृष्टि प्रस्तुत करने में है। इसका उद्गम निश्चय ही साम्राज्यवादी ब्रिटिश सत्ता के अत्याचारों के प्रतिकार में था, परंतु अपने कार्य को शीघ्र ही गांधीजी ने मानवता के सार्वभौम और एक हद तक शाश्वत सरोकारों से जोड़ लिया तथा उसी के परिप्रेक्ष्य में उन सवालों के उत्तर भी ढूँढ़ते रहे, जो नितांत स्थानीय थे। वे मनुष्य जाति के समकालीन समय अर्थात् वर्तमान और भविष्य से संवाद के लिए तर्क, पदावली और कसौटियों को खुद अपने अनुभव से तैयार करते रहे। अपने वैचारिक औजारों को वे अनुभव की धार देते रहे। उन्होंने भारतीय प्रत्ययों को सहज रूप में स्थापित किया। अमूर्त सत्य को, जो नाना रूपों में अभिव्यक्त होता है। अपने विचार, कर्म और साधना का केंद्र बनाया। ऐसे ही अहिंसा के चरम मूल्य को सामाजिक-राजनैतिक जीवन के सारे क्रिया-कलापों की धुरी बनाया। अभय को महत्त्व दिया और मृत्यु से नहीं डरे। उनके जीवन में कई अवसरों पर ऐसा प्रयास हुआ, पर वे निर्भीक रहे। अपरिग्रह को भी उन्होंने व्यावहारिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। व्यष्टि और समष्टि के द्वंद्व को कम करने के उपाय भी वे करते रहे।



स्वराज को आत्म-नियंत्रण, आत्म-बोध और आत्म-संयम के साथ जोड़कर गांधीजी ने पूरी सभ्यता की गतिकी को समझने का आधार बनाया और सभ्यता-विमर्श का एक खाका प्रस्तुत किया। यह सब लोक, अर्थात् सामान्य जन के स्तर पर उसकी गहन साझेदारी सुनिश्चित करते हुए किया। यह अनपढ़ जनता के साथ एक अनोखा सर्जनात्मक प्रयोग था। कठिन समय में ठाने गए इन सारे उपक्रमों में निरंतर संवाद की खास भूमिका थी, हालाँकि उपलब्ध संचार-साधन बड़े ही सीमित थे। गांधीजी पत्रों का उत्तर खुद लिखकर देते रहे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। किताबें लिखीं। अनगिनत लेख लिखे। गुजराती, अंग्रेजी और हिंदी में उनके द्वारा रचित साहित्य को पाठकों द्वारा आदर भी मिला। उनका विपुल लेखन आश्चर्यचकित करनेवाला है।



मनोविद्, विचारक एवं संस्कृति के अध्येता लेखक। लिखित एवं संपादित अनेक पुस्तकें प्रकाशित। गोरखपुर, इलाहाबाद, भोपाल तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापन के बाद महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति पद से सेवानिवृत्त। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। अनेक सम्मान एवं पुरस्कार भी मिले हैं।

इन सबके साथ राष्ट्र, उसकी चेतना और सामाजिक नीतिगत विचार भी प्रस्तुत किए। समाज, सभ्यता और संस्कृति को लेकर भी उनका चिंतन चलता रहा। इतिहास गवाह है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने जो शुरुआत की थी, उसकी फलश्रुति तीन सदियों में ब्रिटेन के स्वार्थी प्रयासों के द्वारा भारत की आधार संरचनाएँ अर्थ-व्यवस्थाएँ, शिक्षा तथा सामाजिक संरचना सबकुछ ध्वस्त कर अपना अधिकार जमाने में हुई। जो निरे व्यापारी बनकर आए थे, वे राजा बन बैठे। भारत को चूसकर अंग्रेजों को ज्यादा-से-ज्यादा आर्थिक

फायदा पहुँचाने के हर संभव उपाय किए गए। उन्नीसवीं सदी का अंत होते-होते कालचक्र घूमा और समय-देवता ने अँगड़ाई ली। जो विरोध की चिनगारी शुरू हुई थी, उसे महात्मा गांधी ने अहिंसक आंदोलन में ढाल दिया और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा।

गांधीजी ने बड़े ही कठोर ढंग से अंग्रेजी और पश्चिमी सभ्यता की प्रवृत्तियों, विशेषत: मशीनों और उद्योगों को लेकर आपत्ति दर्ज की। वे सोचते थे कि जरूरतों और मशीनों को बढ़ाते जाने से व्यापक समाज का हित नहीं होगा। गांधीजी ने समय और दूरी को खत्म करने की चाह को भी एक पागलपन करार दिया था। पाशविक भूख को बढ़ाना और उनकी संतुष्टि के लिए कुछ भी करते जाना उचित नहीं है। यदि आधुनिक सभ्यता इन्हीं सबके लिए है तो यह शैतानी है। वे यह भी कहते हैं कि यदि समृद्धि का मतलब यह है कि हर किसी के पास खाने-पीने और पहनने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हों। इतना कि वह अपने को शिक्षित, प्रशिक्षित कर सके तो मुझे संतोष होगा। परंतु मैं अपने पेट में उससे ज यादा नहीं भरूँगा, जो पचा न सकूँ और ज्यादा वस्तुएँ नहीं चाहिए जिनका उपयोग ही न कर सकूँ। पर मैं गरीबी, कंगाली, दु:ख-गंदगी और धूल-धक्कड़ भी भारत में नहीं चाहता। उनके विचार में अपनी दैनिक जरूरतों को अंधाधुंध बढ़ाने की प्रवृत्ति घातक है। जो असंतोषी है उसके पास कितना भी हो, वह अपनी इच्छाओं का दास होगा। इच्छाओं की दासता जैसी कोई दासता नहीं है।

स्वराज को आत्म-नियंत्रण, आत्म-बोध और आत्म-संयम के साथ जोड़कर गांधीजी ने पूरी सभ्यता की गतिकी को समझने का आधार बनाया और सभ्यता-विमर्श का एक खाका प्रस्तुत किया। यह सब लोक, अर्थात् सामान्य जन के स्तर पर उसकी गहन साझेदारी सुनिश्चित करते हुए किया। यह अनपढ़ जनता के साथ एक अनोखा सर्जनात्मक प्रयोग था। कठिन समय में ठाने गए इन सारे उपक्रमों में निरंतर संवाद की खास भूमिका थी, हालाँकि उपलब्ध संचार-साधन बड़े ही सीमित थे। गांधीजी पत्रों का उत्तर खुद लिखकर देते रहे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। किताबें लिखीं।

भारत की एक देश के रूप में चेतना विकसित करना राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन का मुख्य ध्येय था। इस अवधारणा का उनके जीवन में क्रमश: विकास हुआ। उनका विचार से अधिक कर्म में विश्वास और भरोसा है। वे देशज और बाहरी चिंतन के प्रभावों को भी स्वीकार करते हैं, परंतु इन सबके बीच वे एक भारतीय समाज और देश की अपनी उस परिकल्पना से विचलित नहीं होते हैं, जो यहीं से उपजी है। वे भारत की परंपरा, उसके वर्तमान और भविष्य पर भी विवेकपूर्वक विचार करते हैं। वे मनुष्य की गरिमा का सम्मान करते हैं और साध्य तथा साधन पर बार-बार ध्यान देते हैं एवं उनकी दृष्टि में भारत राष्ट्र की (स्व) देश की ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय भूमिका भी है। एक अर्थ में इसी की पृष्ठभूमि के आलोक में उनका सारा जीवन-संग्राम संचालित होता चलता है। उनकी कल्पना में एक भारत सतत छाया हुआ है, जिससे प्रेरित होकर और जिसके लिए सन्नद्ध होकर वे स्वयं को समर्पित करते हैं और सारे देश की अगुवाई करते हैं। उनका भारत-विमर्श एक संकल्प है, जिसके प्रति उनकी अकाट्य प्रतिबद्धता है। वे भारत को एक विराट् मानवीय मूल्य-दृष्टि के रूप में ग्रहण करते हैं, जिसका दायित्व समस्त मानवता के कल्याण से है।

आज जब देश उनकी डेढ़ सौवीं जयंती मना रहा है तो यह समीचीन होगा कि महात्मा गांधी के परिकल्पित भारत की प्रकृति पर चिंतन किया जाए और उसकी प्रगति एवं चुनौतियों को समझा जाए। यह भी लाभप्रद होगा कि यह देखा जाए कि देश की आज की समस्याओं को बापू की दृष्टि में कैसे समझा जा सकता है और उनका क्या समाधान हो सकता है। बापू के माध्यम से भारत को समझना-बूझना एक गहन आत्ममंथन की अपेक्षा रखता है। कृतज्ञ राष्ट्र के लिए यह आत्म-साक्षात्कार का भी अवसर है। जब हम अपने आपको गांधीजी के आईने में देखने की कोशिश करेंगे। इस प्रयास से संभव है भ्रम के जाले दूर हों और आगे का मार्ग सूझ सके। गांधी, उनके विचार और दृष्टि के अनेक पाठ होते रहे हैं, जिनमें आग्रह और दुराग्रह काम करते रहे हैं। गांधी मार्ग को अपने को समृद्ध करने की गुंजाइश है। इस हेतु महात्मा गांधी की विचारों में उपस्थिति को रेखांकित किया जाना चाहिए।

गांधीजी के साथ भारतीय समाज में पार्थिव पूजा और श्रद्धा का भाव तो विकसित हुआ, परंतु यदि कुछ एक अपवादों को छोड़ दें तो उनके विचारों और कार्यक्रमों को लेकर सामान्यत: उत्साह की जगह उदासीनता और तटस्थता के भाव प्रखर होते गए। अन्य आधुनिक और उत्तर-आधुनिक विचारों ने जगह बनानी शुरू की। साम्यवाद और पूँजीवाद ने विकल्प देने का दावा तो किया, परंतु अब इक्कीसवीं सदी के दो दशक बीतते-बीतते इनके प्रयोगों का खोखलापन जग-जाहिर हो रहा है। लोग असमंजस में हैं कि क्या विज्ञान और प्रौद्योगिकी सभी समस्याओं का हल निकाल सकेंगी। आर्थिक प्रगति और जीवन-संतुष्टि के रिश्ते सीधी रेखा में या लीनियर ढंग के नहीं हैं। भारत समेत विश्व मानवता बढ़ती आपदाओं और त्रासदियों के बीच अपनी सीमाओं और संभावनाओं के पुनर्पाठ के लिए तत्पर है। परिस्थितियों का निदान करनेवाले विचारकों के बीच जिन उपायों पर विचार हो रहा है वे गांधी के विचारों के निकट हैं। बहुतों को अब लगने लगा है कि महात्मा गांधी को समझना अब ज्यादा जरूरी हो गया है।

टॉवर-१, फ्लैट नं. ३०७
पार्श्वनाथ मैजिस्टिक फ्लोर्स
१८ ए, वैभव खंड, इंदिरापुरम,
गाजियाबाद-२०१०१४ (उ.प्र.)

गांधी विशेषांक

मैंने मार्टिन लूथर किंग और मंडेला के जरिए गांधी को समझा

• यशवंत देशमुख

मैं उस भारतीय पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता हूँ, जिसने न तो गांधी को देखा, न गांधी को पढ़ा और न ही गांधी को जाना-समझा। यहाँ पढ़ने से तात्पर्य किताबी ज्ञान से नहीं है। गांधीजी को पढ़ने का आशय उनके लिखे हुए को पढ़ने, गुनने और उस पर चिंतन-मनन करने से है। शायद इसीलिए हमारी पीढ़ी को सालहा-साल एक ही बात सुनने पर मजबूर होना पड़ा कि 'मजबूरी का नाम महात्मा गांधी'। ये मजबूरी भी हम पर थोपी गई थी। जिस गांधी को हमारे भीतर से स्वतः स्फूर्त प्रेरणा की शक्ल में उठना था, उसे महज किताबी औपचारिकताओं में समेटकर सीमित कर दिया गया। मेरा साफ मानना है कि अगर किसी भी देश के नागरिकों के मन-मस्तिष्क में किसी व्यक्ति या किसी विषय के बारे में खराब भाव जाग्रत् करना हो, तो उसे उनके ऊपर जबरिया थोप दिया जाए। थोपने का सबसे आसान तरीका है, उस व्यक्ति या विषय के बारे में स्कूलों में जबरदस्ती की पढ़ाई कराना और उसके आधार पर पास-फेल का चक्रव्यूह तैयार करना। इस बेहद ही यांत्रिक सी प्रक्रिया में न तो सहज अभिरुचि शेष रह जाती है और न ही सहज जिज्ञासा। ज्ञान की सारी प्रेरणाएँ स्कूली परीक्षा की मजबूरियों और प्रतिस्पर्धा के सींखचों में फँसकर बंजर हो जाती हैं। इस मुल्क में पिछले ७० सालों से गांधी को जानने और समझने के नाम पर केवल यही खेल चल रहा है। यही वजह है कि देश की आजादी के बाद जनमी पीढ़ी गांधी को कभी भी ठीक से समझ नहीं सकी, क्योंकि उसने कभी भी गांधी को अभिरुचि और आस्था की गहराइयों से देखने की कोशिश ही नहीं की।

इसे और बेहतर तरीके से समझने के लिए आप अपने आपसे कुछ सवाल कीजिए। आप स्वयं से यह पूछिए कि आपने गांधी को स्कूली किताबों की बाध्यता और २ अक्तूबर की औपचारिकताओं के बाहर कितना जाना-समझा है? थोड़ा पीछे जाइए और यही सवाल अपने बुजुर्गों यानी कि आजादी के बाद की पीढ़ी से भी कीजिए। इस सवाल के जवाब में ही गांधीवाद के प्रति हमारी पीढ़ीगत गंभीरता की तल्ख असलियत छिपी हुई है। यह सवाल विशेषकर उन पीढ़ियों से है, जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय शिक्षा व्यवस्था की मजबूरियों के तहत गांधी को जबरदस्ती पढ़ने और पढ़ाने की कोशिशें की हैं। सच्चाई यही है कि ९९ फीसदी भारतवासी स्कूल की पाठ्यपुस्तकों और २ अक्तूबर की सरकारी



वरिष्ठ पत्रकार एवं अंतरराष्ट्रीय चुनाव विशेषज्ञ और देश की जानी-मानी सर्वेक्षण संस्था सी-वोटर के संस्थापक। चुनावी दुनिया से अलग दुनिया भर के पचास से ज्यादा देशों में डिजास्टर मिटिगेशन और कनफ्लिक्ट रेजील्यूशन जैसे विषयों पर शोधपरक काम कर चुके हैं।

खानापूर्ति वाले समारोह के दायरे के बाहर गांधी के बारे में न तो कुछ जानते हैं और न ही जानने के इच्छुक दिखाई देते हैं। उनके लिए गांधी शब्द के मायने स्कूली शिक्षा और आम जीवन, दोनों ही की बेहद सीमित औपचारिकताओं में दर्ज हैं। मेरी नजर में एक कड़वा पर ठोस सत्य यह भी है, अगर गांधी पर बनी दो खास फिल्में समय के इस कालखंड में रिलीज नहीं होतीं तो गांधी को और भी ज्यादा बड़ी 'आइडेंटिटी क्राइसिस' का सामना करना पड़ता। गांधी पर बनी पहली फिल्म का श्रेय रिचर्ड एटनबरो को जाता है। 'गांधी' के नाम से बनी फिल्म ने अपने दौर की समझदार पीढ़ी के लिए गांधी शब्द की नई परिभाषाएँ गढ़ीं। गांधी को विश्व स्तर पर नए संदर्भों में परिभाषित किया। उनके जीवन और विचारों के प्रति आम कौतूहल और जिज्ञासा की सिमटती दुनिया को विस्तार के नए अर्थ दिए।

मुझे अब भी याद है कि उस दौर में हम स्कूल में थे। स्कूल की तरफ से हमें जबरदस्ती इस फिल्म को दिखाने के लिए ले जाया गया। आशय यही था कि हम गांधी की पहचान कर सकें। उनके होने के मायने समझ सकें। ये फिल्म चूँकि अंग्रेजी में थी, इसलिए स्वाभाविक तौर पर हमारे जैसे हिंदी मीडियम टाइप के विद्यार्थी के सर के ऊपर से निकल गई। निर्माण, निर्देशन, परिकल्पना, रिसर्च, छायांकन, हर दृष्टि से बेहद शानदार फिल्म होने के बावजूद, उन विद्यार्थियों के लिए यह थोड़ी मुश्किल जरूर थी, जिन्हें न तो इतिहास का ठीक से बोध था और जो इसके किरदारों से भी काफी हद तक नावाकिफ थे, फिर भी इस फिल्म ने उस दौर के विमर्श पर एक गहरी छाप छोड़ी। एटनबरो की गांधी उस जमाने के ग्रैजुएट या फिर उसके ऊपर की शिक्षा वाले युवाओं के लिए गांधी को समझने, जानने और उनके प्रति कौतूहल पैदा करने के एक सुनहरे अवसर सरीखी थी। आज जब इस फिल्म को देखता हूँ तो मुझे इसकी प्रासंगिकता के अर्थ और भी स्पष्ट होते हैं। इसी कड़ी में

अगली फिल्म का नाम है, 'लगे रहो मुन्ना भाई'। इस फिल्म ने गांधी को मौजूदा संदर्भों में लोकप्रियता और चर्चा के नए आयाम दिए। इस फिल्म ने देशकाल और परिस्थितियों के लिहाज से नई पीढ़ी को गांधीवादी विचारों की छाप से सर्वाधिक समृद्ध करने का काम भी किया। इसमें गांधीगीरी के नाम से गांधीवाद की बेहद ही रोचक और सहज व्याख्या की गई। यह गांधी को, उनके वाद को, उनके आध्यात्मिक विजन को बिल्कुल ही नए और दिलचस्प तरीके से आम जनता के दिलो-दिमाग में स्थापित करने का अद्‌भुत प्रयास था। सत्य तो यही है कि आजादी के बाद इस देश में गांधीवाद से लेकर गांधीगीरी तक की जो यात्रा रही है, वही गांधी को लोक से जोड़ने की आधारशिला भी रही है।

आज जब मैं इस लेख को लिखने बैठा तो कुछ अर्थों में खुद पर भी शर्मिंदगी महसूस हो रही है। यह वाकई हैरान करने की बात है कि जिन गांधीजी के नाम पर इस देश की संपूर्ण विश्व में विशिष्ट पहचान बनी, जो हमारे बापू हैं, हमारे राष्ट्रपिता हैं, उनके बारे में हमारी जानकारी कितनी कम और किस हद तक अधूरी है! इस देश की राजनीति के नैरेटिव ने भी हमारा बड़ा नुकसान किया। गांधी पर विमर्श के मायने ही बदल दिए। आज की तारीख में गांधी पर विचार का मतलब गांधी के आदर्शों पर विचार नहीं रह गया है। उसकी जगह गांधी के नाम की राजनीति, विभाजन के राग और गांधी की हत्या के लांछन ने ले ली है। यह भी एक दुर्भाग्य है कि आज की तारीख में जब हम गांधी की १५०वीं जयंती मना रहे हैं तो इस देश में गांधी पर बहस के संदर्भ बदल गए हैं। आज गांधी पर बहस का आशय गांधी के विचारों या उनके दर्शन पर बहस नहीं, बल्कि गांधी के हत्यारे गोडसे के नाम पर बहस है। बहस गोडसे की देशभक्ति के सवालों पर भी हो रही है। पता नहीं अगर गांधी आज जीवित होते तो कितना प्रासंगिक होते, मगर इस पर सोचने की गुंजाइश ही कहाँ है? आज गांधी के जीवन के बजाय उनकी मृत्यु बहस के केंद्र में है। यह भी इस मुल्क की राजनीति का ही स्तर है, जिसमें अपने फायदे की खातिर एक महामानव की मृत्यु के अवसर को भी भुनाने से परहेज नहीं किया जाता है।

यह भी एक कटु सत्य है कि मेरे लिए अपने जन्म से लेकर आज तक समझदारी के जो भी ३०-४० साल बीते हैं, उनमें गांधी को गंभीरता से जानने और समझने के पिछले दस साल ही रहे हैं। अब इससे अधिक शर्मनाक बात दूसरी क्या होगी कि गांधीजी को जानने-समझने के ये अवसर मुझे भारत में नहीं, बल्कि यहाँ से हजारों मील दूर मिले। मेरे जीवन में यह पहला अवसर उस वक्त आया, जब मैं दक्षिण अफ्रीका में था। दूसरा मौका अमेरिका में मिला। मेरी पीढ़ी ने गांधी को नहीं देखा, मगर हमने नेल्सन मंडेला को जरूर देखा। नेल्सन मंडेला अपने आप में गांधी की छाप थे। वह आज के गांधी थे। नेल्सन मंडेला को पढ़ने, जानने और समझने की प्रक्रिया में मैंने गांधीजी को भी समझने की कोशिश की। मुझे यह दुर्लभ मौका तब मिला, जब मैं चुनाव सर्वे के सिलसिले में दक्षिण अफ्रीका में था। चूँकि मसला दक्षिण अफ्रीका के चुनाव का था, इसलिए मुझे कई बार दक्षिण अफ्रीका जाने का अवसर मिला। यह मेरे लिए व्यक्तिगत तौर पर गांधी को जानने-समझने और गुनने का एक अद्‌भुत क्षण था। हालाँकि इस विचार की शुरुआत बनारस से ही हो चुकी थी। उस वक्त नेल्सन मंडेला भारत आए थे। वह एक दिन की यात्रा पर बनारस भी आए। हम लोग उस समय स्कूल के विद्यार्थी थे और सड़क पर उनका स्वागत करने के लिए कतार लगाए खड़े थे। हमने उनके आने पर अभिवादन किया। उन्होंने हाथ हिलाकर हमारे अभिवादन को स्वीकार किया। वह मेरे लिए एक 'फ्रैक्शन ऑफ सेकंड' का अद्‌भुत अवलोकन था। मैं केवल हाथ जोड़कर खड़ा रहा। ऐसा लगा कि मानो किसी ईश्वर को देख रहा हूँ। मंडेला वाकई में किसी ईश्वर से कम नहीं थे। अगर आप दक्षिण अफ्रीका में रॉबेन आईलैंड गए हैं और आपने वह कालकोठरी देखी है, जहाँ उन्होंने अपने जीवन के अधिकांश वर्ष बिताए थे तो आपको इस बात के मायने समझ में आएँगे।

दक्षिण अफ्रीका की आजादी के लिए नेल्सन मंडेला ने जो संघर्ष किया, वह अद्वितीय था, पर यहाँ इस बात को भी समझना जरूरी है कि नेल्सन मंडेला की अगुवाई में दक्षिण अफ्रीका का स्वाधीनता संग्राम दरअसल गांधीजी के ही बोए हुए बीज का परिणाम था। न गांधी होते, न दक्षिण अफ्रीका का स्वाधीनता संग्राम होता और न नेल्सन मंडेला ही होते। उस दौर में जब नेल्सन मंडेला गांधी को आदर्श मानते हुए अपना आंदोलन चला रहे थे, मेरे लिए यह पूरी तरह स्थापित होता जा रहा था कि गांधी कोई साधारण मानव नहीं थे। वे महामानव थे। वे एक आध्यात्मिक अनुष्ठान थे। एक ऐसा दैवीय अनुष्ठान, जिसे आंदोलन की शक्ल में संपूर्ण विश्व में गुंजायमान करने के उद्‌देश्य से उन्हें धरती पर भेजा गया था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए मैंने इस बात का अहसास किया कि गांधी ने राजनीति को सत्य और अहिंसा के नए शब्दकोश से परिभाषित करने की जो प्रक्रिया शुरू की थी, वह आज भी गतिमान थी। गांधीजी से ही प्रेरित होकर ही नेल्सन मंडेला आजादी की इस महान् लड़ाई को अपने अंजाम तक पहुँचा सके।

रंगभेद की समाप्ति के बाद दक्षिण अफ्रीका में 'ट्रुथ एंड रिकॉन्सिलिएशन कमीशन' की स्थापना की गई। यह कमीशन अपने आप में गांधीगीरी का अद्‌भुत उदाहरण था। यह गांधी के सत्याग्रह का ही आधुनिक अनुष्ठान था। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति के बाद गोरे और कालों के बीच में बैर का भाव न हो, वे एक राष्ट्र के लिए मिलकर काम कर सकें, इसके लिए बेहद जरूरी था कि गोरे इस बात को मानें कि उन्होंने इतने साल जो कुछ किया वह गलत था। साथ ही उनकी क्षमा-याचना को दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत दिल से स्वीकार करें और उन्हें माफ करें। इस पूरी काररवाई में यथार्थ की कठिनाइयों को हल करने का संकल्प था। माफी माँगने और माफी स्वीकारने के बाद राष्ट्र के निर्माण में साथ मिलकर आगे बढ़ने का संकल्प था। इस गांधीवादी अनुष्ठान ने दक्षिण अफ्रीका की आजादी के बाद वहाँ वर्ग संघर्ष की कटुता के बजाय समन्वय की राजनीति को बढ़ावा दिया। मंडेला ने इस गांधीवादी अनुष्ठान का संकल्प लिया। इस संकल्प को वहाँ की जनता आज तक निभाती आ रही है। हजारों की तादाद में दक्षिण अफ्रीकी गोरों

ने आगे बढ़कर अपने द्वारा किए गए कृत्यों को स्वीकार किया और अपनी गलतियों का प्रायश्चित्त किया। उन्होंने खुले दिल से वहाँ के अश्वेत लोगों से क्षमा माँगी और अत्याचार सहने वाल अश्वेतों ने भी खुले हदय से उन्हें क्षमा किया। सब आपस में मिलकर एक नए देश को बनाने के काम में जुटे। यह गांधी के सत्याग्रह का प्रयोग ही था, जो दक्षिण अफ्रीका के ट्रुथ एंड कॉन्सिलिएशन कमीशन की नींव बना।

जरा सोचिए कि ब्रिटेन में पढ़ा-लिखा एक बैरिस्टर, जो दक्षिण अफ्रीका पहुँचकर और बड़ा वकील बनकर अथाह संपत्ति कमा सकता था, वहाँ हो रही अनीति के प्रति आँखें मूँद सकता था, कैसे मानवता के उद्धार के संकल्प के साथ आगे बढ़ा। उसने कैसे एक पूरे युग की सोच को प्रभावित किया। ये सब आम जीवन कल्पना के बहुत परे दीखता है। केवल एक घटना ने बैरिस्टर गांधी को महात्मा गांधी के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ा दिया। उस रात बैरिस्टर गांधी अगर ट्रेन के डिब्बे से निकालकर बाहर न फेंके गए होते तो आज परिदृश्य ही दूसरा होता। उस रात अगर टिकट चेक करने वाला अधिकारी इस बात के लिए दुराग्रह नहीं करता कि बैरिस्टर गांधी टिकट होने के बावजूद श्वेतों के लिए आरक्षित डिब्बे में यात्रा नहीं कर सकते थे, तो भी आने वाली स्थितियाँ शायद अलग होतीं। अगर उस रात गांधी के स्वाभिमान पर चोट नहीं लगती, अगर गांधी की अंतर-चेतना जाग्रत् न होती तो गांधी से महात्मा बनने का उनका सफर भी शुरू न होता। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी का आश्रम खोलना और वहाँ की आजादी की लड़ाई को शुरू करना ही उस देश की मुक्ति के मूल में था। नेल्सन मंडेला के सत्याग्रह के मूल में था।

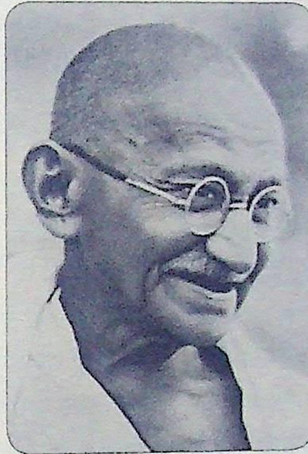
मुझे लगता है कि नेल्सन मंडेला ने न केवल गांधीजी के द्वारा किए गए कामों की सही व्याख्या की, बल्कि गांधीजी के बाद के भारत की विसंगतियों पर भी काम किया। यह एक ऐसी कोशिश थी, ताकि गांधीजी के बाद के भारत में आई बुराइयों और कमियों को भी पाटा जा सके। दूसरे शब्दों में गांधीजी के बाद के भारत में जिस तरह से उनके रास्ते को लेकर भ्रम और उदासीनता का वातावरण पैदा किया गया, दक्षिण अफ्रीका उस रास्ते पर न जाने पाए, इसी बहाने इसे सुनिश्चित करने का काम किया गया। मेरा मानना है कि मंडेला ने गांधी के सच्चे प्रारूप के तौर पर काम किया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के ऊपर सबसे बड़ा उपकार यह किया कि अपनी पत्नी और बच्चों को राजनीति में आने से पूरी तरह से रोक दिया। यही नहीं उन्होंने अपने पहले राष्ट्रपति के कार्यकाल को भी केवल एक कार्यकाल तक सीमित रखने का बड़ा काम किया। यह उनकी दूरदर्शिता ही थी कि दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला के बाद उनके परिवार का राजनीति में दखल शून्य है। किसी भी तरीके की खानदानी राजनीतिक व्यवस्था दक्षिण अफ्रीका की राजनीति से बाहर हो चुकी है। यह भी सोचने की बात है कि गांधीजी के परिवार से भी कोई प्रत्यक्ष तौर पर राजनीति में नहीं आया। कुछ समय के लिए उनके पोते राजनीति में जरूर आए, मगर उन्होंने भी किसी वंशानुगत तरीके से अपने कामों का फायदा अपनी आने वाली पीढ़ियों को नहीं होने दिया।

यह भी अपने आप में बेहद विचित्र बात है कि गांधी शब्द का शोषण और उसे भुनाने का काम गांधी के परिवार ने नहीं, बल्कि नेहरू के परिवार ने किया। यह शोषण इतना अधिक था कि जब इंदिराजी के नाम के आगे इंदिरा नेहरू के बजाय इंदिरा गांधी लगा तो फिर पूरा परिदृश्य ही बदल गया। बीते ७० सालों में स्थिति ऐसी पैदा हो गई कि आज की तारीख में अगर आप सर्वेक्षण करें तो नई पीढ़ी में ज्यादातर लोग इंदिराजी को गांधीजी का रिश्तेदार बताते हैं। दुर्भाग्य से गांधी ब्रांड का सबसे ज्यादा उपयोग करने वाले लोगों ने ही गांधी की सोच का सबसे ज्यादा अवमूल्यन किया। यह अपने देश के राजनीतिक इतिहास का वह तल्ख हिस्सा है, जिसे समझते सभी हैं, लेकिन जिस पर टिप्पणी करना कोई नहीं चाहता। इस देश के राजनीतिक मूल्यों की कतार में से गांधीवादी दर्शन के मर्दन के लिए जो परिवार जिम्मेदार था, वह गांधीजी का परिवार नहीं था। यह वह परिवार था, जिसने रातोरात गांधीजी के नाम को ओढ़ लिया और उस नाम को अर्श से फर्श पर पहुँचा दिया। शायद इसी बात को देख समझकर नेल्सन मंडेला इतना ज्यादा सतर्क हो चुके थे। नेल्सन मंडेला की इस सतर्कता ने यह सुनिश्चित कर दिया कि कम-से-कम उनके जीते-जी कोई भी व्यक्ति, चाहे वह उनके परिवार का हो या फिर बाहर का, मंडेला ब्रांड का राजनीतिक दुरुपयोग न कर सके। दक्षिण अफ्रीका की राजनीति खानदानी नीतियों से ऊपर उठकर दलीय पार्टियों और लोकतंत्र की नीति आधारित राजनीति बन सके।

गांधीजी को इस दृष्टि से दोबारा समझने का अवसर मुझे तब मिला, जब अमेरिका में अश्वेतों को मिले हुए मताधिकार की ५०वीं जयंती मनाई गई। इस मौके पर मुझे भी एक चुनाव विशेषज्ञ और वहाँ के सर्टिफाइड इलेक्शन एडमिनिस्ट्रेटर होने के नाते एक विश्वविद्यालय में बोलने के लिए बुलाया गया। यह विश्वविद्यालय उसी जगह पर था, जहाँ मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अपना विश्वप्रसिद्ध मार्च निकाला था। उसी जगह पर जहाँ पर अश्वेतों को समान अधिकार के नाम पर मार्टिन लूथर किंग ने अपने आंदोलन की नींव रखी थी। मार्टिन लूथर किंग

गांधीजी को इस दृष्टि से दोबारा समझने का अवसर मुझे तब मिला, जब अमेरिका में अश्वेतों को मिले हुए मताधिकार की ५०वीं जयंती मनाई गई। इस मौके पर मुझे भी एक चुनाव विशेषज्ञ और वहाँ के सर्टिफाइड इलेक्शन एडमिनिस्ट्रेटर होने के नाते एक विश्वविद्यालय में बोलने के लिए बुलाया गया। यह विश्वविद्यालय उसी जगह पर था, जहाँ मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अपना विश्वप्रसिद्ध मार्च निकाला था। उसी जगह पर जहाँ पर अश्वेतों को समान अधिकार के नाम पर मार्टिन लूथर किंग ने अपने आंदोलन की नींव रखी थी। मार्टिन लूथर किंग पूरी तरह गांधीवादी थे। दरअसल वह ऐसे एकलव्य थे, जिन्होंने एक तरह से गांधी को द्रोण मान करके अपनी राजनैतिक आराधना की थी।

पूरी तरह गांधीवादी थे। दरअसल वह ऐसे एकलव्य थे, जिन्होंने एक तरह से गांधी को द्रोण मान करके अपनी राजनैतिक आराधना की थी। मार्टिन लूथर किंग का राजनीतिक सफर और उनका सत्याग्रह गांधी के दर्शन से शुरू होता था और गांधी के दर्शन पर समाप्त होता था। यह भी अपने आप में अजीब इत्तेफाक और दुर्भाग्य ही था कि जब मार्टिन लूथर किंग के स्वप्न हकीकत में बदलने की ओर लगभग अग्रसर थे तो उनकी भी हत्या कर दी गई। यह कुछ उसी तरीके था, जैसे महात्मा के साथ हुआ था। वह अपने सत्याग्रह के प्रसाद के रूप में भारत की आजादी तो पक्का कर गए, लेकिन भारत की आजादी के बाद अपनी विचारधारा और ग्राम स्वराज्य के ऊपर देश के विकास की नींव रखने से पहले ही उनकी हत्या हो गई।



गांधी मेरे लिए विश्वव्यापी और विश्वप्रेरक हैं। जितनी बार भी मैंने मार्टिन लूथर किंग के ऊपर बनी कोई भी फिल्म देखी, कोई पुस्तक पढ़ी या कोई भी लेख पढ़ा, उतनी ही बार गांधी मेरी आँखों के आगे विश्वविजयी बनकर सामने आए। सत्य और अहिंसा के अपने अमोघ अस्त्र के जरिए संपूर्ण विश्व को विजित करते हुए। यह गांधी को नए सिरे से समझने की मेरी कोशिश थी। सोचने को कई पहलू सामने थे। एक पहलू यह भी था कि दुनिया का सबसे पुराना लोकतंत्र अमेरिका है, लेकिन उस आधे-अधूरे लोकतंत्र में वहाँ की इतनी बड़ी आबादी को बराबरी के अधिकार नहीं थे। आज से ५० साल पहले तक वहाँ के अश्वेतों को वोट डालने का भी अधिकार नहीं था, जबकि ७० साल पहले ही भारत में प्रत्येक नागरिक को बराबरी से वोट करने का अधिकार मिल गया था। यह सब बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करता है। वाकई हम भारत की राजनीति, भारत के लोकतंत्र और भारत की आजादी को कितना कम करके आँकते हैं! एक विचित्र से 'इंफीरियारिटी कॉम्पलेक्स' में जीते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि भारत की आजादी, भारत का लोकतंत्र, संविधान और बराबरी का अधिकार, ये सब पूरे विश्व के लिए अनुकरणीय है। इन सबकी खातिर बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर सहित तमाम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने जी-जान लगाकर कार्य किया। पर सच्चाई यह भी है कि इस कार्य के मूल में केवल और केवल गांधीजी की ही प्रेरणा थी। यह समझना और जानना बेहद रोमांचित करता है कि बमुश्किल ५० साल पहले अमेरिका में बराबरी की सही मायने में लड़ाई जिन मार्टिन लूथर किंग ने लड़ी, उनके प्रेरणास्रोत केवल और केवल गांधी थे। गांधी के सत्याग्रह को ही उन्होंने सही मायने में अमेरिकी सत्याग्रह में बदल दिया। यह गांधी होने की एक अलग ही परिभाषा है। मैंने दरअसल गांधी को रिवर्स इंजीनियरिंग के माध्यस से समझा। गांधी मुझे मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मंडेला के जीवन के जरिए समझ में आए। आज भी मैं अपने छात्रों को गांधी को समझने की खातिर भारत की आजादी की लड़ाई के बजाय पहले दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका के बराबरी के सत्याग्रह व मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मंडेला के जीवन संघर्षों को समझने की सलाह दूँगा। जब हम दुनिया को प्रभावित करने वाले गांधी के इन रूपों को समझने की शुरुआत करेंगे, तभी शायद हम भारत के गांधी को भी ठीक से समझ पाएँगे।

गांधीजी को लेकर मेरा एक ऑब्जर्वेशन बहुत ही पारिवारिक और व्यक्तिगत भी रहा है। यह कोई छिपी हुई बात नहीं है कि मेरा जन्म और लालन-पालन एक ऐसे परिवार में हुआ, जो पूरी तरह से संघ यानी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को समर्पित था। मेरे पिताजी, ताऊजी और चाचाओं की पूरी पीढ़ी संघ के पहली प्रचारकों की श्रेणी में शामिल है। संघ के आनुषंगिक संगठनों में दो तरह के लोग होते हैं। एक, वह जिनकी राजनीतिक चेतना बहुत ज्यादा है और दूसरे, वह जिनके सेवा कार्य की चेतना बेहद विराट् है। भारत के वर्तमान राजनीतिक वातावरण में जो वाद-विवाद और राजनीतिक नैरेटिव चलते हैं, उनमें स्वाभाविक रूप से संघ का नाम जोर-जोर से उछलकर सामने आता है। पहला, इस कारण से कि संघ का एक पूर्णकालिक प्रचारक इस समय देश का प्रधानमंत्री है और दूसरा, इस वजह से कि गांधी की हत्या में नाथूराम गोडसे की विचारधारा की बनिस्बत संघ का नाम गाहे-बगाहे उछाला जाता है। इसमें दो राय नहीं कि खासतौर पर देश के दक्षिणपंथी समुदाय में बार-बार नाथूराम गोडसे को हीरो की तरह से प्रोजेक्ट किए जाने की एक प्रवृत्ति दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो संघ के लोगों के ऊपर यह आरोप लगता आया है कि वे न केवल गांधी हत्या में शामिल थे, बल्कि गांधीवादी विचारधारा के विरोधी भी रहे हैं, मगर मेरे अनुभव इससे अलग हैं। बचपन से लेकर आज तक संघ परिवार से मेरा सीधा जुड़ाव रहा है। इस बीच संघ से जुड़े हुए तमाम राजनीतिक, गैर-राजनीतिक और सेवा कार्यों से जुड़े हुए लोगों से मिलने का मुझे मौका मिला है।

दो बातें बहुत ही साफ हैं। पहली कि राजनीतिक विचार से जुड़े हुए संघ के लोगों के मन में गांधीजी और पाकिस्तान के बनने पूर्वग्रह जरूर रहा है, लेकिन मैंने संघ के सेवा कार्य में लगे हुए लोगों के मन में गांधीजी के प्रति अटूट श्रद्धा का भाव भी देखा है। यह बेहद अचंभित करने वाला रहा है, यानी एक तरफ भारत के विभाजन में गांधीजी की भूमिका को लेकर पूर्वग्रह जो नाथूराम गोडसे को एक हीरो के रूप में प्रस्तुत करने की सीमा तक जाता है और दूसरी तरफ मानव मात्र के कल्याण के उनके विचारों के प्रति अटूट निष्ठा। उनकी ग्राम स्वराज की अवधारणा, भारत की सामाजिक पुनर्रचना के स्वरूप और छुआछूत के विरुद्ध सत्याग्रह की जिजीविषा की संघ पर सहज छाप रही है। संघ के सेवा कार्य में लगे रहे लोग और राजनीतिक लोग इस मायने में आपस के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की तरह दिखाई देते हैं। मैंने संघ के जिन लोगों को सेवाकार्य में जीवन खपाते देखा है, उनके भीतर गांधी के दर्शन और विचारों के प्रति अद्भुत श्रद्धाभाव रहा है। सेवा कार्यों में लगे संघ के प्रचारकों को गांधी ने जिस तरीके से प्रेरित किया है, उसे समझना

बेहद जरूरी है। उसको समझे बगैर संघ की गांधीजी के प्रति सोच पर किसी भी प्रकार की टिप्पणी बेमानी होगी। 'भारत रत्न' नानाजी देशमुख संघ की उस पीढ़ी से थे, जिसने राजनीतिक और सेवाकार्य दोनों ही क्षेत्रों में बराबरी का दखल दिया। निसंदेह उनके जीवन में जयप्रकाश नारायण का आना अपने आपमें एक बड़ी घटना थी। जयप्रकाशजी से प्रेरित होकर १९७५ के आंदोलन का सूत्रधार बनना और फिर सात साल बाद राजनीतिक जीवन से संन्यास लेकर पूरी तरह देश के सामाजिक जीवन के प्रति स्वयं को समर्पित कर देना, सिर्फ गांधीजी की प्रेरणा से ही संभव हुआ था। मेरे पिताजी यादव देशमुख जो कि 'पाञ्चजन्य' के संपादक भी रहे, के न जाने कितने संपादकीय गांधीजी से प्रभावित रहे, उनके ऊपर लिखे गए। उनका पूरा जीवन केवल समाज हित और सेवाकार्यों को समर्पित रहा। उन्हें जिस स्तर तक मैंने गांधीजी से प्रेरित पाया, शायद बड़े-बड़े गांधीवादियों को भी उस तरीके से गांधी को जीते हुए नहीं देखा। आप अगर गौर करेंगे तो गांधीजी के ग्राम स्वराज की परिकल्पना और संघ के प्रचारकों के गाँव को एक स्वावलंबी इकाई बनने के संकल्प में अद्भुत समन्वय पाएँगे।

गांधीजी के ग्राम स्वराज की परिकल्पना भी अद्भुत थी। भारत के छोटे-से-छोटे गाँव को अपने ही तरीके से स्वावलंबी बनाने की उनकी योजना भारत की जरूरतों पर आश्रित थी। देश की अर्थव्यवस्था को स्थानीय उद्योगों, स्थानीय कार्यों, स्थानीय श्रम और स्थानीय आर्थिक गतिविधियों के ऊपर अवलंबित करने की उनकी कार्ययोजना से अधिक दूरदर्शी आर्थिक मॉडल आज तक तैयार नहीं हो सका है। आज के इस ग्लोबलाइजेशन के दौर में दुनिया भर में जिस तरह की अस्थिरता और असंतोष पनप रहा है, केवल गांधी ही उससे निजात दिला सकते हैं। इस आर्थिक अराजकता से निजात पाने का एकमात्र तरीका गांधीजी का ग्राम स्वराज ही है। इस ग्राम स्वराज की परिकल्पना ग्लोबलाइजेशन की परिकल्पना के ठीक उलट है।

समय ने गांधी को सही साबित किया है। आज की तारीख में यह साबित हो चुका है कि ग्लोबलाइजेशन यानी भूमंडलीकरण का वर्तमान प्रारूप कहीं से भी टिकाऊ और स्थिर नहीं है। मुनाफे और कारोबार की इस अंधाधुंध दौड़ में पर्यावरण पर जो घातक असर पड़ रहा है, वह तो अक्षम्य है। आज के दौर की ग्लोबल वार्मिंग भी गांधी के ग्राम स्वराज की परिकल्पना की अवहेलना की सजा ही है। पूरी दुनिया ही इस आर्थिक अराजकता से उत्पन्न विषाद की चपेट में है। गांधीजी शायद इस विषाद की जड़ों को बहुत अच्छे तरीके से जानते थे। उन्होंने इसका स्थायी विकल्प पहले ही तैयार कर दिया था। जिस इंपीरियलिज्म और औपनिवेशिक वृत्ति के खिलाफ उन्होंने लड़ाई लड़ी, वही वृत्ति आज के जमाने में ग्लोबलाइजेशन के रूप में मुँह बाए हमारे सामने खड़ी है। अंतर सिर्फ इतना है कि उस जमाने की ईस्ट इंडिया कंपनी की जगह आज की तारीख की मल्टीनेशनल कंपनियों ने ले ली है। इसके अलावा दोनों में कोई अंतर नहीं है। समस्याएँ विकराल होती जा रही हैं। समाधान केवल और केवल सत्याग्रह एवं ग्राम स्वराज की परिकल्पना में है। गांधीजी ने उपनिवेशवाद के इस घातक सिद्धांत के विरोध में ग्राम स्वराज्य की परिकल्पना की थी। उनका मानना था कि छोटे से छोटा गाँव जब खुद में पूरी तरह से आत्मनिर्भर होगा, स्वावलंबी होगा, तभी दुनिया में शांति आ पाएगी। तभी प्रकृति और मानव के बीच का सही बैलेंस स्थापित होगा। तभी लोकतंत्र के सही मायने सामने आएँगे।

आज के दौर में दुनिया जिस क्राइसिस की तरफ बढ़ रही है, उस क्राइसिस के चरम पर हमें एक बार फिर फिर गांधी के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। याद रखिएगा, वह वक्त करीब आता जा रहा है, जब हम सब मिलकर गांधी को दोबारा खोजने के लिए निकलने वाले हैं, इसलिए समय रहते हमें चेत जाना चाहिए। गांधीजी को गए हुए ७१ वर्ष बीतने को हैं। दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया आज भी उसी भुलभुलैया में उलझी हुई है, जिससे निकलकर आगे बढ़ने का गांधी हमे मंत्र सुझा गए थे। शायद यही वजह है कि गांधी के जीवनकाल में देश और समाज में आया परिवर्तन उनके न रहने पर सिकुड़ता गया। गांधीजी के होते हुए जो परिवर्तन आए थे, उनके न रहने की सूरत में उनका स्पेस ही खत्म हो गया। उनके विचार को मूर्त रूप में लाने के बजाय दुनिया दूसरी ही दिशा में आगे बढ़ गई। अब भी वक्त है। गांधी को पढ़िए, गुनिए, समझिए और मथिए। गांधी को सिनेमा की नजर से भी समझने की कोशिश कीजिए। गांधी की तसवीर जबरदस्त लोकप्रियता के इस माध्यम के जरिए आज के संदर्भों में और भी स्पष्ट हो सकेगी। सिर्फ गांधी ही नहीं, नेल्सन मंडेला और मार्टिन लूथर किंग पर बनी फिल्में भी जरूर देखिए। उन पर लिखी किताबें पढ़िए। इससे गांधीवाद के नाम पर पूरे विश्व में हुए महान् परिवर्तनों की प्रकाश-रेखा सी आपकी आँखों के आगे कौंध जाएगी। गांधी पर बनी हुई फिल्में एक बार फिर से देखिए। आखिर में गांधी के ग्राम स्वराज को पढ़िए। गांधी आज के संदर्भों में और भी प्रासंगिक हो उठे हैं। यह देशकाल और परिस्थितियों के संदर्भ में गांधी को नए सिरे से समझने और समझाने का वक्त है।

टीम सी. वोटर
ए-१७५, सेक्टर-६३
नोएडा (उ.प्र.)
yashwantdeshmukh@gmail.com

आज के दौर में दुनिया जिस क्राइसिस की तरफ बढ़ रही है, उस क्राइसिस के चरम पर हमें एक बार फिर फिर गांधी के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। याद रखिएगा, वह वक्त करीब आता जा रहा है, जब हम सब मिलकर गांधी को दोबारा खोजने के लिए निकलने वाले हैं, इसलिए समय रहते हमें चेत जाना चाहिए। गांधीजी को गए हुए ७१ वर्ष बीतने को हैं। दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया आज भी उसी भुलभुलैया में उलझी हुई है, जिससे निकलकर आगे बढ़ने का गांधी हमे मंत्र सुझा गए थे।



महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत

• किशोर मकवाणा



वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक। 'स्वामी विवेकानंद', 'राष्ट्रीय घटनाचक्र', 'आर.एस.एस. का लक्ष्य', 'डॉ. बाबासाहब आंबेडकर', 'सफलता का मंत्र' आदि अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक। 'सामाजिक समरसता' एवं 'आपणा नरेंद्रभाई' जैसी सैकड़ों पुस्तकों सहित श्री नरेंद्र मोदी के आलेखों और प्रवचनों का भी संपादन। पाञ्चजन्य मिश्र युवा साहित्य पुरस्कार, तथागत पुरस्कार, गुजरात गौरव पुरस्कार से सम्मानित।

ईशोपनिषद् का एक मंत्र ही महात्मा गांधी का जीवन व्यवहार है, इसे समझाने में सहाय करता है। मंत्र है—जगत्यां यत् किं च जगत् अस्ति इदं सर्वम् ईशावास्यम्। तेन त्यक्तेन भूञ्जिथा:। अर्थात् इस वैश्व गति में, इस अत्यंत गतिशील समष्टि-जगत् में जो भी यह दृश्यमान गतिशील, वैयक्तिक जगत् है—यह सबका सब ईश्वर के आवास के लिए है। इस सबके त्याग द्वारा तुझे इसका उपभोग करना चाहिए। संक्षिप्त में कहें तो इसके तीन अर्थ हैं—१. ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्वीकार करना २. त्यागपूर्वक सांसारिक पदार्थों को भोगना ३. लालच न करना।

इस मंत्र को महात्मा गांधी के जीवन का एक प्रसंग हमें राह दिखाता है, जो ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को व्यवहार में देखने को मिलता है। गांधीजी साबरमती नदी के तट पर बने आश्रम में रहते थे, उस समय वे सुबह दातून करते [illegible] केवल एक छोटा लोटा भरकर ही पानी का उपयोग करते थे। एरबीर मोहनलाल पंड्या ने गांधीजी से कहा, 'बापू, पानी की क्या कमी है। साबरमती नदी तो सामने ही बह रही है, तो फिर पानी की कंजूसी क्यों करते हो?' जवाब में गांधीजी ने पूछा, 'पहले यह बताओ कि मेरा मुँह साफ हुआ है या नहीं?'

पंड्याजी ने कहाँ, 'हाँ, साफ तो हुआ है।'

गांधीजी—'तो परेशानी किस बात की है? तुम लोटे भर-भरकर पानी का उपयोग करते हो। मैं एक लोटे पानी से ही मुँह ठीक से साफ कर लेता हूँ, तो मेरे लिए इतना ही पानी पर्याप्त है।'

पंड्याजी बोले, 'पर नदी में इतना सारा पानी है और…'

गांधीजी—'नदी का पानी किसके लिए है? मेरे अकेले के लिए है?'

पंड्याजी—'सबके लिए है। हमारे लिए भी है और पानी भरपूर है।'

गांधीजी—'नदी का पानी सारे पशु, पक्षी, मानव, जीव-जंतु, सभी के लिए है, मेरे अकेले के लिए नहीं है। मैं अपनी जरूरत भर लूँ तो ठीक है, पर अधिक लेने का मुझे हक नहीं है। साझी संपत्ति में से जरूरत से ज्यादा हम नहीं ले सकते।'

भारतीय संस्कृति की सदैव से यही मान्यता रही है कि संपत्ति समाज की है। ईशावास्य के प्रथम मंत्र में ही यह मूलभूत प्रश्न पूछा गया है कि संपत्ति किसकी है, 'कस्य स्विद्धनम्।' वस्तुत: संपत्ति के स्वामित्व का प्रश्न मनुष्य समाज के संगठन की एक मुख्य शिला है और शास्त्र में जब यह कहा गया कि 'सुखस्य मूलं धर्म, धर्मस्य मूलं अर्थ, अर्थ एव प्रधान:' तब यह स्वीकार कर लिया गया कि सुख और धर्म दोनों के लिए अर्थ का समुचित संतुलन आवश्यक है। तो फिर पुन: यही प्रश्न पैदा होता है कि यह संतुलन किस प्रकार हो। इसके उसी मंत्र में प्रश्न का उत्तर भी देते हुए ऋषि ने असंदिग्ध रूप से यह घोषणा कर दी, हाथ उठाकर यह घोषणा कर दी कि संपत्ति समाज रूप ईश्वर की है। भारतीय संस्कृति के आर्थिक पहलू का नियमन करनेवाली यह आद्य और मूलभूत घोषणा है। इसी को आधार मानते हुए समाज के कुछ व्यक्तियों को अथवा एक वर्ग को संपत्ति का ट्रस्टी बनाकर उसके संयम और विनियोग के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में पारंगत बनाने की दृष्टि से व्यवस्था की गई और ऐतिहासिक रूप में यह ध्यान देने की बात है कि जब संसार के अन्य देशों, विशेषकर यूरोप में जन-समाज राजाओं तथा सामंतों द्वारा विकृत अर्थव्यवस्था में शोषित हो रहा था, तब भारत में ट्रस्टीशिप के इस सिद्धांत के अंतर्गत संपूर्ण राष्ट्र विविध धन-धान्य से सुखी अपने जीवन को आध्यात्मिक, नैतिक तथा कलात्मक दिशाओं में विकसित करता हुआ जीवनयापन कर रहा था। आज भले ही ट्रस्टीशिप का यह सिद्धांत बिगड़ गया हो और राष्ट्र की संपत्ति के ट्रस्टी व्यक्तिगत सुख-संपन्नता बढ़ाने में ही उसका उपयोग करने लग गए हों, यह निर्विवाद है कि जब तक संपत्ति को समाज की मानने की यह भावना उनमें जीवित रही, तब तक उन्होंने आधी टाँगों तक धोती-मिरजई और सिर पर पगड़ी लगाकर ही अपने कर्तव्य का पालन किया और देश को सुख-समृद्धि से भर दिया। भारतीय संस्कृति का यह दर्शन ही गांधीजी

के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत की मूल प्रेरणा थी।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

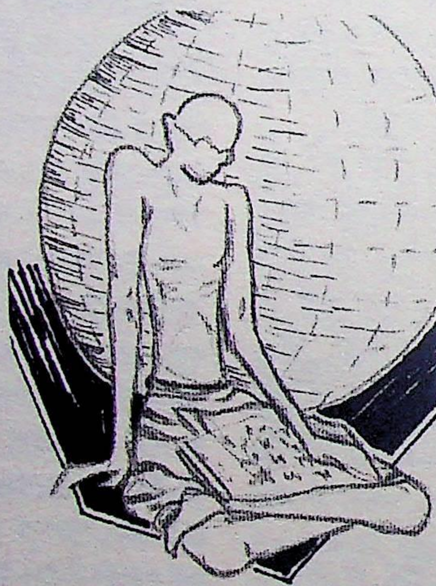
अर्थात् जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है (ऐसे यज्ञ को करनेवाले) जिस मनुष्य की ब्रह्म में ही कर्मसमाधि हो गई है, उसके द्वारा प्राप्त करने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।'

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।

अर्थात् सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः,
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि॥

अर्थात् हे जगत् के परम सत्ता परब्रह्म परमेश्वर, शांति स्थापित करें तीनों लोकों में, जल में, धरती में और आकाश में, अंतरिक्ष में, अग्नि में, पवन में, औषधि में, वनस्पति वन में, उपवन में, संपूर्ण विश्व में अवचेतन में शांति करें।



महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत की नींव में यह भारतीय परंपरा और ज्ञान का अधिष्ठान था। गांधीजी ने हमेशा सत्य, स्नेह, सहकार, समन्वय, स्वच्छता, स्वावलंबन, समता और समरसता, इन आठ शब्दों को अपने कार्य का आधार माना।

ट्रस्टीशिप प्रेरणा उन्हें ईशवास्योपनिषद् एवं भगवद्गीता से मिली थी। इस उपनिषद् के पहले ही श्लोक में कहा गया है—

'ईश्वर इस सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है—जड़-चेतन, राई से लेकर पहाड़ तक सब उसी का विस्तार है। सभी ईश्वरस्वरूप है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि इस सृष्टि का भोग निष्काम भाव से, परमात्मा का अंश समझते हुए करे। पृथ्वी पर मौजूद धन-संपदा किसी की नहीं है, इसलिए उसका उपयोग निरासक्ति भाव से करना चाहिए।'

ट्रस्टीशिप भारत का पुराना आदर्श है। हमारे ऋषियों ने गाया है—'सर्वेपि सुखिनः सन्तु।' ट्रस्टीशिप सिद्धांत भी नया नहीं है। जैन मुनि समंतभद्र कहते हैं—सर्वापदामंतकरं निरंतं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।'सर्व खल्विदं ब्रह्म', 'वसुधैव कुटुंबकम्' अथवा 'सोऽहम्' और 'तत्त्वमसि' के हमारे पुरातन आदर्शों में 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत अंतर्निहित हैं। ट्रस्टीशिप का सरस अर्थ है—'सबका साथ, सबका विकास।'

गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' का विचार पहले-पहल पत्रकारों द्वारा आर्थिक समानता को लेकर किए गए प्रश्न के उत्तर में प्रकट किया था। पृथ्वी पर मौजूद संपूर्ण संपदा पर समस्त मानव समुदाय का अधिकार मानते हुए वे उसका उतना ही उपयोग करने के पक्ष में थे, जितना सम्मानजनक जीवन, वैसा जीवन जैसा अन्य करोड़ों नागरिक जीते हैं, जीने के लिए आवश्यक हो। बाकी बचा हुआ धन समाज का है, अतएव उसका उपयोग समाज-कल्याण के निमित्त ही किया जाना चाहिए—ऐसा उनका मानना था। उन्होंने लिखा था कि यह सिद्धांत वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समतावादी समाज में बदलने की युक्ति से परचाता है। इसमें पूँजीवाद एवं एकाधिकारवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। यह वर्तमान शक्तिशाली वर्ग को स्वयं को बदलने का अवसर उपलब्ध कराता है। यह इस विश्वास पर टिका है कि मानवीय प्रकृति सहयोग और सामंजस्य से भरपूर है। मनुष्य स्वभाव से भला होता है। मात्र अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को मुश्किल में डालना उसकी मूल प्रवृत्ति नहीं है। वे चाहते थे कि समाज के शक्तिशाली वर्ग, यानी पूँजीपति और सामंतवर्ग अपने से छोटे लोगों के बारे में सोचें। यह मानकर चलें कि उनका धन-संपदा परमात्मा की ओर से उन्हें लोककल्याण के निमित्त सौंपी गई है। इसलिए उनका कर्तव्य है कि अपनी संपत्ति को लोकनिधि मानते हुए उसका उपयोग बहुजन के कल्याण के निमित्त करें।

उनका मानना था कि समस्त संपत्ति ईश्वर की है। पूँजीपतियों और जमींदारों को चाहिए कि वे ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को अपनाएँ। जमींदार स्वयं को भूमि का संरक्षक-मात्र मानते हुए जमीन जोतने-बोने का अधिकार किसानों को खुशी-खुशी सौंप दें। पूँजीपति अपने कारखानों में कार्यरत मजदूरों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। मान लें कि उनके पास जो पूँजी और धन-संपदा है, वह समाज की धरोहर है। 'हरिजन' में उन्होंने लिखा था कि 'मान लीजिए, मेरे पास व्यापार, उद्योग अथवा अन्य किसी वैधानिक तरीके से अर्जित किया गया पर्याप्त धन जमा हो जाता है, तो मुझे जानना चाहिए कि वह सारा का सारा धन मेरा नहीं है। उसमें से सिर्फ उतना ही धन मेरा है, जो मेरे सम्मानजनक जीवन जीने के अधिकार के अंतर्गत आता है, उस अवस्था में शेष धन का उपयोग समाज के दूसरे लोग भी करें, इससे बेहतर तो कुछ हो ही नहीं सकता। मुझे यह मान लेना चाहिए कि शेष धन पूरे समुदाय का है, अतएव उसका उपयोग सामुदायिक कल्याण के लिए ही किया जाना चाहिए।'

ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को समझाने के लिए गांधीजी धर्म का सहारा लेते हैं। संभवतः वे उम्मीद करते हैं कि धर्म का आकर्षण अथवा डर पूँजीपतियों को लोककल्याण के पथ पर चलने का विवश कर देगा। गांधीजी के शब्दों में ट्रस्टीशिप क्या है''' ऊँच-नीच का समतलीकरण

आर्थिक समानता अहिंसक स्वाधीनता की सर्वकुंजी है। आर्थिक समानता के लिए कार्य करने का मतलब है पूँजी और श्रम के अंतहीन संघर्ष का उन्मूलन। इसका अर्थ है, एक ओर तो उन मुट्ठी भर धनवानों के स्तर को नीचे लाना, जिनके हाथ में राष्ट्र की अधिकांश संपदा केंद्रित है और दूसरी ओर, आधा पेट भोजन पर जीवन-निर्वाह करनेवाले लाखों-करोड़ों लोगों के स्तर को ऊपर उठाना। जब तक धनवानों और लाखों-करोड़ों भूखे लोगों के बीच की खाई नहीं पटती, तब तक अहिंसक सामाजिक समानता नितांत असंभव है। 'सर्व जनहिताय, सर्व जनसुखाय', इसमें गांधीजी को विश्वास है।

गांधीजी के ट्रस्टीशिप का आधार है—संपूर्ण संपत्ति भगवान् की या समाज की है और व्यक्ति उसका मात्र संरक्षक या ट्रस्टी है। केवल भौतिक धन संपत्ति ही नहीं, मानव की शारीरिक या बौद्धिक जो भी शक्तियाँ या गुण हैं, वे सब ईश्वर प्रदत्त हैं, समाज प्रदत्त हैं। इसलिए व्यक्ति अपने गुण और शक्ति का ट्रस्टी है, मालिक नहीं। ईश्वर ही सबका मालिक है, विश्व का सृजन किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं किया है, बल्कि समस्त प्राणियों के लिए किया है। मनुष्य उसी ईश्वर का छोटा-सा रूप है, अतः उसे भी उत्पादन समाज-हित की भावना से करना चाहिए, स्वार्थ की भावना से नहीं।

ट्रस्टीशिप : ट्रस्टीशिप एक सामाजिक-आर्थिक दर्शन है, जिसे गांधीजी द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यह अमीर लोगों को एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है, जिसके द्वारा वे गरीब और असहाय लोगों की मदद कर सकें। यह सिद्धांत गांधीजी के आध्यात्मिक विकास को दरशाता है, जो कि थियोसोफिकल लिटरेचर और भगवद्गीता के अध्ययन से उनमें विकसित हुआ था।

पृथ्वी पर मनुष्यों के उपयोग में आनेवाली सारी संपत्ति पर किसी एक या सीमित व्यक्तियों का ही हक नहीं है, संपत्ति पर सबका बराबर हक है, हम सिर्फ उस संपत्ति के न्यासी (रक्षक) हैं। जिस तरह सूर्य की रोशनी और हवा पर अपना कोई अधिकार नहीं है, उसी तरह भूमि पर भी अपना कोई अधिकार नहीं है। गांधीजी संपत्ति को समाज की धरोहर के रूप में देखते थे। 'कोई भी व्यक्ति, चाहे वह शहजादा हो या व्यापारी, वंशगत या स्वार्जित संपत्ति का स्वयं मालिक नहीं हो सकता और न ही इस संपत्ति के मामले में उसका स्वैच्छिक अधिकार हो सकता है।' ट्रस्टीशिप (न्यासिता) शब्द अंग्रेजी के 'ट्रस्ट' शब्द से बना है। ट्रस्ट की अवधारणा जमीन और अन्य संपत्ति को सुरक्षित या संरक्षक के रूप में लिया जाता है। विनोबाजी ने संरक्षकता (ट्रस्टीशिप) का अनुवाद 'विश्वस्तवृत्ति' किया है। संस्कृत भाषा के शब्दकोश में ट्रस्टीशिप का अर्थ 'विश्वासवृत्ति' बताया गया है। गांधीजी ने सत्य के शोधक की तरह इस शब्द का अर्थ मौलिक रूप में रखने का प्रयास किया था। 'हरिजन सेवक' में गांधीजी ने लिखा है कि 'ट्रस्टीशिप का अंतिम मसविदा इस बात का प्रमाण है कि इसमें पूँजीवाद की गुंजाइश ही नहीं है, बल्कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था को यह समतावादी व्यवस्था में बदलना चाहता है, जहाँ संपत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अधिकार ही स्वीकार नहीं किया जाता है। राज्य द्वारा नियंत्रित संरक्षकत्व में कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए समाज के हित के विरुद्ध संपत्ति पर अधिकार रखने या उसके उपयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं होगा।'

गांधीजी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संकट को समझा था और साफ-साफ कहा था कि, 'अहिंसा की सफलता के क्षेत्र में सबसे बड़े बाधक हमारे देश में उपस्थित अमीर लोग, सट्टेबाज, भूस्वामी, दस्तावेज बनानेवाले, कारखानेदार आदि हैं। वे सब शायद नहीं समझते हैं कि वे जनता का खून चूसकर ही जी रहे हैं।' इस तरह प्रकृति मानव की कृति नहीं है, उसकी संपदा भी मानव कृत नहीं है। ट्रस्टी संपत्ति का स्वामी भी नहीं है।

गांधीजी के ट्रस्टीशिप का आधार है—संपूर्ण संपत्ति भगवान् की या समाज की है और व्यक्ति उसका मात्र संरक्षक या ट्रस्टी है। केवल भौतिक धन संपत्ति ही नहीं, मानव की शारीरिक या बौद्धिक जो भी शक्तियाँ या गुण हैं, वे सब ईश्वर प्रदत्त हैं, समाज प्रदत्त हैं। इसलिए व्यक्ति अपने गुण और शक्ति का ट्रस्टी है, मालिक नहीं। ईश्वर ही सबका मालिक है, विश्व का सृजन किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं किया है, बल्कि समस्त प्राणियों के लिए किया है। मनुष्य उसी ईश्वर का छोटा-सा रूप है, अत: उसे भी उत्पादन समाज-हित की भावना से करना चाहिए, स्वार्थ की भावना से नहीं। मानव के अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य धन-संपत्ति नहीं और न वह कुछ सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति मात्र है। न्यासिता (ट्रस्टीशिप) समाज की वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था को समतावादी व्यवस्था में रूपांतरित करने का एक साधन है। न्यासिता पूँजीवाद को बख्शती नहीं है, पर वह वर्तमान मालिक वर्ग को सुधार का एक अवसर प्रदान करती है। गांधीजी संपत्ति को समाज की धरोहर के रूप में देखते थे और इस तरह गांधीजी संपत्ति का सदुपयोग समाज-हित तथा राज्य-हित में करना चाहते थे। विनोबाजी के अनुसार, सही अर्थों में ट्रस्टीशिप-सिद्धांत का अभिप्राय है, 'शरीर, बुद्धि और संपत्ति—तीनों में से जो भी प्राप्त हो, उसे सबके हित में लगाना।' विनोबाजी का मानना था कि भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर कुछ लोगों को भूमिहीन रखना एक प्रकार का अन्याय है। ईश्वर ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश जैसे पंचभूतों का निर्माण सभी प्राणियों के लिए किया है। अत: प्रकृति की चीजों पर सभी को समान अधिकार प्राप्त है। जल, तेज, वायु तथा आकाश का उपयोग सभी जीव स्वाभाविक रूप से करते हैं। इसी तरह पृथ्वी के उपभोग का भी सभी को समान अवसर मिलना चाहिए। यदि किसी को कुछ क्षण के लिए वायु से अलग कर दिया जाए तो उसके प्राण निकलने लगेंगे और ऐसा करना अन्याय होगा, उसी प्रकार जमीन के ऊपर मनुष्य को भोजन, वस्त्र तथा आवास की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति निर्भर है। अत: उससे मानव समुदाय को वंचित रखना अन्याय है। प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक दादा धर्माधिकारी का मानना है कि 'केवल धनिक ही ट्रस्टी नहीं है, श्रमिक भी ट्रस्टी है।

बहुत संपत्ति या धन संग्रहवाला ही नहीं, अल्प संग्रहवाला भी ट्रस्टी है। उसे भी अपने आपको ट्रस्टी मानना चाहिए। श्रमिक का काम समाज का काम है। उस काम के उपकरण भी समाज के हैं, उसके अपने नहीं हैं। उसका वह ट्रस्टी है, न्यासी है।' इस प्रकार गरीब व्यक्ति या अल्प-संग्रहवान व्यक्ति का भी अपनी मेहनत की उपज पर और अपनी मेहनत के उपकरणों पर अपना स्वामित्व नहीं है।

'अपरिग्रह ट्रस्टीशिप का पर्याय शब्द है।' अपरिग्रह का अर्थ—संग्रह नहीं करना, परंतु वास्तविक अर्थ में अपने लिए पर की आवश्यकता न रखना है। परिग्रह में उपभोग है, अपरिग्रह में उपयोग। चारों ओर से परिग्रह करना ही परिग्रह है। संपत्ति की वासना सबसे बड़ी वासना है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ ज्यों-ज्यों विज्ञान और तकनीक का विकास हो रहा है, त्यों-त्यों परिग्रह और वस्तु-संग्रह की प्रवृत्ति भी बढ़ती ही जा रही है। इस प्रवृत्ति ने समाज में अनेक संकटों को जन्म दिया है, जो मानवकृत है। इस तरह ट्रस्टीशिप की कल्पना किसी स्वप्न-गगन में विहार की कल्पना मात्र नहीं, बल्कि वह तो समकालीन आर्थिक संकट का एक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विकल्प है। इसमें गीता के अपरिग्रह एवं समत्व भावना और ईशोपनिषद् के 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का समन्वय है। मनुष्य को जो साधन उपलब्ध होते हैं, उनका वह दुरुपयोग न करे, सदुपयोग करना ही सभ्यता है और दुरुपयोग करना असभ्यता की निशानी है। राग और द्वेष का मुख्य कारण भोग की प्रवृत्ति है,भोग की कोई सीमा नहीं है। भोग भोगने से भोग की इच्छा और भी प्रबल होती चली जाती है। इस तरह भोग की प्रवृत्ति ही परिग्रह के लिए प्रेरित करती है।

गांधीजी ने 'हरिजन सेवक' में लिखा है कि 'उत्पादन का स्वरूप समाज कि जरूरत से निश्चित होगा न कि व्यक्ति की सनक या लालच से।' गांधीजी ने १९४६ में कहा था कि 'ट्रस्टीशिप संपत्ति के स्वामित्व एवं उपयोग के संबंध में कानून बनाने को कभी मना नहीं करता।' ट्रस्टीशिप पर कानून बनाने के संबंध में गांधीजी ने अन्यत्र भी कहा है कि 'पूँजीपतियों को ट्रस्टी के रूप में परिवर्तन मात्र उनकी स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाएगा। इसके लिए आवश्यक कानून का भी सहारा लिया जाएगा। यदि वे तर्क एवं समझाने-बुझाने से भी स्वेच्छया ट्रस्टी बनने से इनकार करते हैं तो अहिंसक असहकार के साधन का उपयोग करना ही पड़ेगा।' ३१ मार्च, १९४६ को भी गांधीजी ने कहा था कि 'यदि कल भारत स्वतंत्र हो जाता है तो सभी पूँजीपतियों को कानूनी ट्रस्टी बनने का अवसर आएगा।'

गांधीवाद के चार प्रमुख आयाम माने जाते हैं—सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और ट्रस्टीशिप। गांधीवाद महात्मा गांधी के उन राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों पर आधारित है, जिनको उन्होंने सबसे पहले व्यवहार में प्रयोग किया तथा उनको व्यवहार में उपादेय पाने पर सिद्धांत का रूप देकर सार्वजनिक किया। उदाहरण के लिए, 'सत्य के प्रयोग' नाम से महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा का प्रकाशन १९२७ में किया था। स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों के विरुद्ध अहिंसक सत्याग्रह गांधीजी का प्रमुख अस्त्र रहा है, जिसने भारत को आजादी दिलाने प्रमुख भूमिका निभाई।

स्वावलंबन का प्रयोग भी गांधीजी ने पहले अपने आप पर किया। इसके बाद उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वावलंबन और ग्राम स्वराज की, का सिद्धांत विकसित किया। चरखा, तकली, और खादी स्वावलंबन के प्रतीक बन गए। गांधीजी का कहना था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो युवाओं को स्वावलंबी बनाए। इसीलिए उन्होंने बुनियादी तालीम पर जोर दिया। गांधीवाद का चौथा प्रमुख आयाम ट्रस्टीशिप है, इस पर बहुत कम लेखन हुआ है। वर्तमान भारत के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता के बारे में चर्चा करना जरूरी है। गांधीजी के आर्थिक सिद्धांतों में उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धांत सर्वोपरि है। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में १९०३ में ट्रस्टीशिप के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। गांधीजी ने इसका आधार ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक को माना था, जिसका अर्थ है, 'इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है, वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है, इसलिए ईश्वर के नाम से त्याग करके तू यथाप्राप्त भोग किया कर। किसी के धन की वासना न कर।' उनके अनुसार जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक संपत्ति एकत्र करता है, उसे केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके पर्याप्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार है, शेष संपत्ति का प्रबंध उसे एक ट्रस्टी की हैसियत से, उसे धरोहर समझकर, समाज कल्याण के लिए करना चाहिए। ट्रस्टीशिप सिद्धांत के पक्ष में गांधीजी मानते थे कि प्रकृति की रचना ही ऐसी है कि सभी की क्षमता एक-सी नहीं हो सकती, इसलिए प्राकृतिक रूप से कुछ लोगों की कमाने की क्षमता अधिक होगी और दूसरों की कम। वे कहते हैं कि मैं बुद्धिवादी व्यक्तियों को अधिक कमाने दूँगा, उनकी बुद्धि को कुंठित नहीं करूँगा, परंतु उनकी अधिकांश कमाई राज्य की भलाई के लिए वैसे ही काम आनी चाहिए, जैसे कि बाप के सभी कमाऊ बेटों की आमदनी परिवार के कोष में जमा होती है। वे अपने कमाई का संरक्षक बनकर ही रहेंगे। इस तरह यह स्पष्ट है कि यह महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया है कि उस समय गांधीजी किसके साथ खड़े थे, परंतु महत्त्वपूर्ण यह है कि गांधीजी किन लोगों के पक्ष में खड़े थे।

आधुनिक ऋषि तुल्य जीवन का व्यवहार था, ऐसे चिंतक पं. दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं, 'एक वर्ग को संपत्ति के संचय और विनियोग का समस्त कार्य सौंप देने का कारण यह था कि भारतीय संस्कृति हर व्यक्ति को हर कार्य के उपयुक्त नहीं मानती है। उसने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य को वृत्तियों के आधार पर दायित्व दिया। मानव समाज को कुछ भागों में बाँटने का यह भारतीय प्रयोग प्रायः सभी देशों में किसी-न-किसी रूप में किया जाता रहा है। अति प्राचीन काल में ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी अपनी आदर्श समाज-जीवन की कल्पना देते हुए समाज को तीन भागों में बाँटने की बात कही थी और आज कम्युनिस्ट देशों में चलनेवाला वर्गविहीन समाज का प्रयोग भी उसे तीन वर्गों तक ही बाँटकर रह गया है। अतः इन सबसे पहले किया गया भारतीय प्रयोग निस्संदेह विश्व इतिहास की एक सफल व्यवस्था

कहा जाएगा। ट्रस्टीशिप की इस व्यवस्था की ओर ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह अमर्याद नहीं था। उस पर सदा मर्यादाएँ रहीं और इसी कारण वह समाज के लिए लाभकर सिद्ध हुआ। मर्यादित ट्रस्टीशिप अपने शुद्ध रूप में और शुद्ध भावनाओं के साथ चलने पर समाज के कल्याण का कारण होती है। यहाँ ट्रस्टीशिप से भी अधिक महत्त्व की बात मर्यादा की है। व्यक्ति, निगम या राज्य कोई भी ट्रस्टी हो, यदि वे अमर्याद हुए तो अव्यवस्था शुरू हो जाएगी। कम्युनिस्ट देशों में राज्य की अमर्याद ट्रस्टीशिप है और उसके राजनीतिक दुष्परिणामों से कौन अपरिचित है। भारत की वर्तमान परिस्थितियों में जब उसे राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गई है, आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का सवाल खड़ा होता है। यह आज का मुख्य राष्ट्रीय प्रश्न है। इस प्रश्न को हल करने के विभिन्न उद्योग विभिन्न प्रणालियों से तथा विभिन्न दिशाओं में किए जा रहे हैं। हमारे लिए यह प्रश्न इस रूप में आता है कि हम उसको भारतीय ढंग से किस प्रकार हल कर सकते हैं। हम जानते हैं कि भारतीय ढंग सदा से धर्म का (मजहब का नहीं) ढंग रहा है और धर्म के इस ढंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के नए नियमों को तैयार करने की जरूरत है। भारतीय वाङ्मय में धर्म की जो व्याख्याएँ समय-समय पर दी गईं, उनमें से सबसे पुरातन होने के कारण वेदों की व्याख्या को हम लेते हैं, जिसमें उसके १२ लक्षण गिनाए गए हैं। इनमें धर्म का आद्य लक्षण सबसे महत्त्वपूर्ण है। (श्रमेण तपसा सृष्टा⋯) और वह है 'श्रम'। भारतीय ऋषियों ने जीवन में श्रम की अन्यतम महत्ता को भलीभाँति जान लिया था और इसीलिए उन्होंने 'श्रम' को धर्म का पहला लक्षण बताया। श्रम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एंजेल्स के जन्म तक रुका नहीं रहा, वह अति पुरातन काल में सहज अनुभूति से हमने मानवता को दे दिया था।

> 'आर्थिक समानता, अर्थात् जगत के पास समान संपत्ति का होना, यानी सबके पास इतनी संपत्ति का होना कि जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। कुदरत ने ही एक आदमी का हाजमा अगर नाजुक बनाया हो और वह केवल पाँच ही तोला अन्न खा सके और दूसरे को बीस तोला अन्न खाने की आवश्यकता हो, तो दोनों को अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार अन्न मिलना चाहिए। सारे समाज की रचना इस आदर्श के आधार पर होनी चाहिए। अहिंसक समाज का दूसरा आदर्श नहीं रखना चाहिए।

महात्मा गांधी के दर्शन की नींव भी यही थी। महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के बारे में उनके विचार के निम्न चार बिंदु पठने से हम समझ पाते हैं कि उनकी दृष्टि में ट्रस्टीशिप यानी क्या?

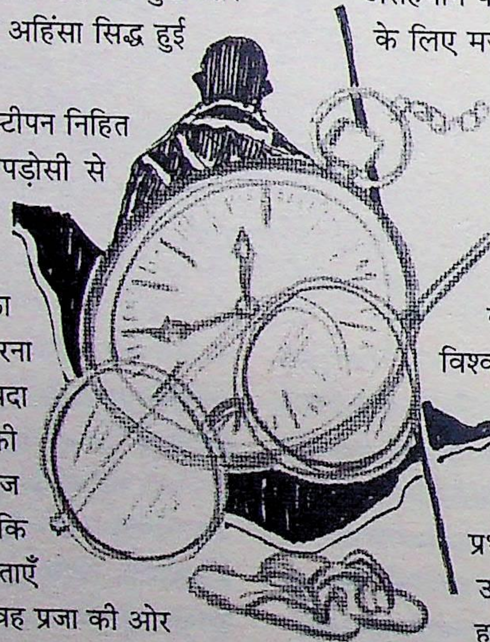
१. 'आप कह सकते हैं कि ट्रस्टीशिप तो कानून-शास्त्र की एक कल्पना मात्र है; व्यवहार में उसका कहीं कोई अस्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यदि लोग उस पर सतत विचार करें और उसे आचरण में उतारने की कोशिश भी करते रहें, तो मनुष्य-जाति के जीवन की नियामक शक्ति के रूप में प्रेम आज जितना प्रभावशाली दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक दिखाई पड़ेगा। बेशक, पूर्ण ट्रस्टीशिप तो युक्लिड की बिंदु की व्याख्या की तरह एक कल्पना ही है और उतनी ही अप्राप्य भी है। लेकिन यदि उसके लिए कोशिश की जाए, तो दुनिया में समानता की स्थापना की दिशा में हम दूसरे किसी उपाय से जितनी दूर तक जा सकेंगे।⋯मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि राज्य ने पूँजीवाद को हिंसा के द्वारा दबाने की कोशिश की, तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फँस जाएगा और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा। राज्य हिंसा का एक केंद्रित और संघटित रूप ही है। व्यक्ति में आत्मा होती है, परंतु चूँकि राज्य एक जड़ यंत्रमात्र है, इसलिए उसे हिंसा से कभी नहीं छुड़ाया जा सकता। क्योंकि हिंसा से ही तो उसका जन्म होता है। इसीलिए मैं ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को तरजीह देता हूँ। यह डर हमेशा बना रहता है कि कहीं राज्य उन लोगों के खिलाफ, जसे उससे मतभेद रखते हैं, बहुत ज्यादा हिंसा का उपयोग न करे। लोग यदि स्वेच्छा से ट्रस्टियों की तरह व्यवहार करने लगें, तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी। लेकिन यदि वे ऐसा न करें तो मेरा खयाल है कि हमें राज्य के द्वारा भरसक कम हिंसा का आश्रय देकर उनसे उनकी संपत्ति ले लेनी पड़ेगी।⋯(यही कारण है कि मैंने गोलमेज परिषद् में यह कहा था कि सभी निहित हितवालों की संपत्ति की जाँच होनी चाहिए और जहाँ आवश्यक मालूम हो, वहाँ उनकी संपत्ति राज्य को⋯मुआवजा देकर या मुआवजा दिए बिना ही, जहाँ जैसा उचित हो, अपने हाथ में कर लेनी चाहिए। व्यक्तिगत तौर पर तो मैं यह चाहूँगा कि राज्य के हाथों में शक्ति का ज्यादा केंद्रीकरण न हो, उसके बजाय ट्रस्टीशिप की भावना का विस्तार हो। क्योंकि मेरी राय में राज्य की हिंसा की तुलना में वैयक्तिक मालिकी की हिंसा कम हानिकर है। लेकिन यदि राज्य की मालिकी अनिवार्य ही हो, तो मैं भरसक कम-से-कम राज्य की मालिकी की सिफारिश करूँगा।' (*'दि मॉडर्न रिव्यू' १९३५, पृष्ठ-४१२*)

२. फर्ज कीजिए कि विरासत के या उद्योग-व्यवसाय के द्वारा मुझे प्रचुर संपत्ति मिल गई। तब मुझे यह जानना चाहिए कि वह सब संपत्ति मेरी नहीं है, बल्कि मेरा तो उस पर इतना ही अधिकार है कि जिस तरह दूसरे लाखों आदमी गुजर करते हैं, उसी तरह मैं भी इज्जत के साथ अपना गुजर भर करूँ। मेरी शेष संपत्ति पर राष्ट्र का हक है और उसी के हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन मैंने तब किया था, जब कि जमींदारों और राजाओं की संपत्ति के संबंध में समाजवादी सिद्धांत देश के सामने आया था। समाजवादी इन सुविधा-प्राप्त वर्गों को खत्म कर देना चाहते हैं, जब कि मैं यह चाहता हूँ कि वे (जमींदार और राजा-महाराजा) अपने लोभ और संपत्ति के बावजूद उन लोगों के समकक्ष बन जाएँ, जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं। मजदूरों को भी यह महसूस करना होगा कि मजदूर का काम करने की शक्ति पर जितना अधिकार है, मालदार आदमी का अपनी संपत्ति की अर्थात् पर उससे भी कम है। यह दूसरी बात है कि इस तरह के सच्चे ट्रस्टी कितने हो सकते हैं। अगर सिद्धांत ठीक है, तो यह बात गौण है कि उनका पालन अनेक लोग कर सकते हैं या केवल एक ही आदमी कर सकता है। यह प्रश्न आत्मविश्वास का है। अगर आप अहिंसा के सिद्धांत को स्वीकार

करें तो आपकी उसके अनुसार आचरण करने की कोशिश करनी चाहिए, चाहे उसमें आपको सफलता मिले या असफलता। आप यह तो कह सकते हैं कि इस पर अमल करना मुश्किल है, लेकिन इस सिद्धांत में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके लिए यह कहा जा सके कि वह बुद्धि-ग्राह्य नहीं है।' *('हरिजनसेवक', ३ जून, १९३९)*

३. 'आर्थिक समानता, अर्थात् जगत के पास समान संपत्ति का होना, यानी सबके पास इतनी संपत्ति का होना कि जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। कुदरत ने ही एक आदमी का हाजमा अगर नाजुक बनाया हो और वह केवल पाँच ही तोला अन्न खा सके और दूसरे को बीस तोला अन्न खाने की आवश्यकता हो, तो दोनों को अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार अन्न मिलना चाहिए। सारे समाज की रचना इस आदर्श के आधार पर होनी चाहिए। अहिंसक समाज का दूसरा आदर्श नहीं रखना चाहिए। पूर्ण आदर्श तक हम कभी नहीं पहुँच सकते। मगर उसे नजर में रखकर हम विधान बनावें और व्यवस्था करें। जिस हद तक हम इस आदर्श को पहुँच सकेंगे, उसी हद तक सुख और संतोष प्राप्त करेंगे और उसी हद तक सामाजिक अहिंसा सिद्ध हुई कही जा सकेगी।

आर्थिक समानता की जड़ में धनिक या ट्रस्टीपन निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं। तब उसके पास जो ज्यादा है, क्या वह उससे छीन लिया जाए? ऐसा करने के लिए हिंसा का आश्रय लेना पड़ेगा। और हिंसा के द्वारा ऐसा करना संभव हो, तो भी समाज को उससे कुछ फायदा होनेवाला नहीं है। क्योंकि द्रव्य इकट्ठा करने की शक्ति रखनेवाले एक आदमी की शक्ति को समाज खो बैठेगा। इसलिए अहिंसक मार्ग यह हुआ कि जितनी मान्य हो सकें उतनी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो पैसा बाकी बचे, उसका वह प्रजा की ओर से ट्रस्टी बन जाए। अगर वह प्रामाणिकता से संरक्षक बनेगा तो जो पैसा पैदा करेगा, उसका सद् व्यय भी करेगा। जब मनुष्य अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज की खातिर धन कमावेगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आएगी। उसके साहस में भी अहिंसा होगी। इस प्रकार की कार्य-प्रणाली का आयोजन किया जाए, तो समाज में बगैर संघर्ष के मूक क्रांति पैदा हो सकती है।



समाज में से धर्म को निकालकर फेंक देने का प्रयत्न बाझ के घर पुत्र पैदा करने जितना ही निष्फल है; और अगर कहीं सफल हो जाए तो समाज का उसमें नाश है। धर्म के रूपांतर हो सकते हैं। उसमें निहित प्रत्यक्ष वहम, सड़न और अपूर्णताएँ दूर हो सकती हैं, हुई हैं और होती रहेंगी। मगर धर्म तो जहाँ तक जगत् है, वहाँ तक चलता ही रहेगा, क्योंकि एक धर्म ही जगत् का आधार है। धर्म की अंतिम व्याख्या है ईश्वर का कानून। ईश्वर और उसका कानून अलग-अलग चीजें नहीं हैं। ईश्वर अर्थात् अचलित, जीता-जागता कानून। उसका पार कोई नहीं पा सकता। मगर अवतारों ने और पैगंबरों ने तपस्या करके उसके कानून की कुछ-न-कुछ झाँकी जगत् को कराई है।' *('हरिजनसेवक' २४ अगस्त, १९४०)*

४. 'मेरा ट्रस्टीशिप का सिद्धांत कोई ऐसी चीज नहीं है, जो काम निकालने के लिए आज घड़ लिया गया हो। अपनी मंशा छिपाने के लिए खड़ा किया गया आवरण तो वह हरगिज नहीं है। मेरा विश्वास है कि दूसरे सिद्धांत जब नहीं रहेंगे, तब भी वह रहेगा। उसके पीछे तत्त्वज्ञान और धर्म के समर्थन का बल है। धन के मालिकों ने इस सिद्धांत के अनुसार आवरण नहीं किया है, इस बात से यह सिद्ध नहीं होता कि वह सिद्धांत झूठा है; इससे धन के मालिकों की कमजोरी मात्र सिद्ध होती है। अहिंसा के साथ किसी दूसरे सिद्धांत का मेल ही नहीं बैठता। अहिंसक मार्ग की खूबी यह है कि अन्यायी यदि अपना अन्याय दूर नहीं करता, तो वह अपना नाश खुद ही कर डालता है। क्योंकि अहिंसक असहयोग के कारण या तो वह अपनी गलती देखने और सुधारने के लिए मजबूर हो जाता है या वह बिल्कुल अकेला पड़ जाता है। *('हरिजन' १६ दिसंबर, १९३९)*

'मैं इस राय के साथ नि:संकोच अपनी सम्मति जाहिर करता हूँ कि आम तौर पर धनवान—केवल धनवान ही क्यों, बल्कि ज्यादातर लोग—इस बात का विशेष विचार नहीं करते कि वे पैसा किस तरह कमाते हैं। अहिंसक उपाय का प्रयोग करते हुए यह विश्वास तो होना ही चाहिए कि कोई आदमी कितना ही पतित क्यों न हो, यदि उसका इलाज कुशलतापूर्वक और सहानुभूति के साथ किया जाए तो उसे सुधारा जा सकता है। हमें मनुष्यों में रहने वाले दैवी अंश को प्रभावित करना चाहिए और अपेक्षा करनी चाहिए कि उसका अनुकूल परिणाम निकलेगा। यदि समाज का हर एक सदस्य अपनी शक्तियों का उपयोग वैयक्तिक स्वार्थ साधने के लिए नहीं, बल्कि सबके कल्याण के लिए करे, तो क्या इससे समाज की सुख-समृद्धि में वृद्धि नहीं होगी? हम ऐसी जड़ समानता का निर्माण नहीं करना चाहते, जिसमें कोई आदमी योग्यताओं का पूरा-पूरा उपयोग कर ही न सके। ऐसा समाज अंत में नष्ट हुआ बिना नहीं रह सकता। इसलिए मेरी यह सलाह बिल्कुल ठीक है कि धनवान लोग चाहे करोड़ों रुपए कमाएँ (बेशक, ईमानदारी से), लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याण में समर्पित कर देने का होना चाहिए। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' मंत्र में असाधारण ज्ञान भरा पड़ा है। मौजूदा जीवन-पद्धति की जगह, जिसमें हरएक आदमी पड़ोसी की परवाह किए बिना केवल अपने ही लिए जीता है, सर्व-कल्याणकारी नई जीवन-पद्धति का विकास करना हो, तो उसका सबसे निश्चित मार्ग यही है।' *('हरिजन, १ फरवरी, १९४२)*

गांधीवादी अर्थशास्त्र इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले उनके

प्रसिद्ध अनुयायी अर्थशास्त्री जे.सी. कुमारप्पा ने किया था। उनके अनुसार महात्मा गांधी का अर्थशास्त्र एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का अवधारणा पर आधारित है, जिसमें समाज के सभी वर्ग को स्थान था। गांधीजी का अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय और समता के सिद्धांत पर आधारित है। समाज के अंतिम छोर पर बैठे व्यक्ति का जीवन सुखमय बने, यही गांधीजी का सपना था। गांधीवादी अर्थशास्त्र के प्रणेता जे.सी. कुमारप्पा ने मद्रास से अपनी स्नातक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इंग्लैंड और अमेरिका में अर्थशास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। अध्ययन के दौरान उन्होंने अपने एक आलेख में प्रमाणों सहित यह सिद्ध किया था कि भारत की गरीबी का प्रमुख कारण अंग्रेज सरकार की शोषणवादी नीतियाँ हैं। जे.सी. कुमारप्पा की यह विशेषता रही है कि उन्होंने स्वयं जमीनी सर्वेक्षण करके अपनी अर्थशास्त्र की पुस्तकें एवं आलेख लिखे। उन्होंने 'यंग इंडिया' के संपादन में महात्मा गांधी के सहयोगी के रूप में कार्य किया था। महात्मा गांधी जब दक्षिण अफ्रीका में थे, तब १९०३ में उन्होंने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत और उनके अर्थदर्शन में भारतीयता की सुगंध थी। गांधीजी के ट्रस्टीशिप अर्थात् न्यासिता के सिद्धांत के मूल में यह है कि पूँजी का असली मालिक पूँजीपति नहीं बल्कि पूरा समाज है, पूँजीपति तो केवल उस संपत्ति का रखवाला है। पूँजीपति और श्रमिकों के बीच संवेदना, समन्वय और समरसता अनिवार्य है। गांधीजी का यह मानना था कि जो संपत्ति पूँजीपतियों के पास है, वह उसके पास धरोहर के रूप में है। महात्मा गांधी का कहना था कि पूँजीवाद के कारण दुनिया भर में बेरोजगारी बढ़ी है और श्रम की महत्ता कम हुई है। बेरोजगारी ने समाज की सबसे छोटी इकाई को कमजोर किया है। अगर धनवानों ने अपनी धन-दौलत और उससे प्राप्त शक्ति का स्वेच्छा से त्याग नहीं किया और आम जनता को उसके हित में साझीदार नहीं बनाया तो निश्चित रूप से एक दिन हिंसक और रक्तरंजित क्रांति हो जाएगी।

महात्मा गांधी का कहना था कि इन सारी समस्याओं का समाधान ट्रस्टीशिप सिद्धांत में निहित है। पूँजीवाद और साम्यवाद आधारित अर्थतंत्र असफल रहा है, ऐसे में भारतीयता अर्थदर्शन तीसरा विकल्प बन सकता है। गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत के अनुसार जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक संपत्ति एकत्र करता है, उसे केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संपत्ति के उपयोग करने का अधिकार है, शेष संपत्ति का प्रबंध उसे एक ट्रस्टी की हैसियत से देखभाल कर समाज कल्याण पर खर्च करना चाहिए। समाज के सूख और शांति यह कल्पना गांधी की थी। महात्मा गांधी मानते थे कि सभी लोगों की क्षमता एक सी नहीं होती है, कुछ लोगों की कमाने की क्षमता अधिक होती है तो कुछ लोगों की कम होती है, इसलिए जिनके कमाने की क्षमता अधिक है, उन्हें कमाना तो अधिक चाहिए किंतु अपनी जरूरतों को पूरी करने के बाद शेष राशि समाज के कल्याण पर खर्च करना चाहिए। महात्मा गांधी के अनुसार पूँजीपति और अधिक व्यावसायिक आमदनीवाले व्यक्तियों को अपनी जरूरतों को सीमित करना चाहिए, तभी बची हुई आमदनी जरूरतमंदों पर खर्च की जा सकेगी। महात्मा गांधी के न्यासिता सिद्धांत को बुद्धिजीवियों के एक बड़े वर्ग ने काल्पनिक आदर्शवाद निरूपित करके अव्यावहारिक करार दिया। अनेक लोग उनके ट्रस्टीशिप सिद्धांत की खिल्ली उड़ाते थे, किंतु गांधीजी को अपने ट्रस्टीशिप सिद्धांत पर विश्वास था। इसलिए उन्होंने पूँजीपतियों और धनी व्यक्तियों से ट्रस्टीशिप सिद्धांत समझाने के लिए बैठकें प्रारंभ कीं तथा उन्हें समझा-बुझाकर इसके परिपालन के लिए सहमत करवाने में बड़ी हद तक सफलता पाई।

गांधीवाद के चार प्रमुख आयाम—सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और न्यासिता। न्यासिता (ट्रस्टीशिप) का सिद्धांत आज भी प्रासंगिक आर्थिक सिद्धांत है। इस सिद्धांत के आधार पर विश्व शांति, न्याय और आर्थिक समानता के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत से सहमत सैकड़ों उद्योगपतियों ने चैरिटेबल ट्रस्ट व फाउंडेशन स्थापित करके दर्जनों शिक्षण संस्थान, चिकित्सालय, तालाब का निर्माण करवाया। ट्रस्टीशिप सिद्धांत का पालन करनेवाले सैकड़ों उद्योगपतियों में परिवार सहित सादगीपूर्ण रहन-सहन अपनाने वाले जमनालाल बजाज को महात्मा गांधी का सबसे प्रिय उद्योगपति शिष्य माना जाता है। दूसरी ओर जमशेदजी टाटा ने १९०३ से पहले ही ट्रस्टीशिप को व्यवहार में प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया था। सवाल उठता है कि क्या आधुनिक भारत में क्या ट्रस्टीशिप को प्रासंगिक माना जा सकता है? हाँ, आज भी यह सिद्धांत प्रासंगिक है। आज भारत में हजारों उद्योगपति ऐसे हैं, जिन्हें महात्मा गांधी से मिलने का सौभाग्य तो नहीं मिल पाया किंतु वे चैरिटेबल फाउंडेशन और ट्रस्ट स्थापित करके सहर्ष अपनी संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा, चिकित्सा, देशी खेलों के विकास एवं लोक-कल्याण कार्यों पर निरंतर व्यय कर रहे हैं। आज देश के कई उद्योगपति स्वेच्छा से ट्रस्टीशिप सिद्धांत का व्यवहार में प्रयोग समाज सेवा हेतु सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं, तो यह सिद्धांत को व्यावहारिक माना जा सकता है तथा इसको आधुनिक भारत में प्रासंगिक कहा जा सकता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. ई.एफ. शुमाखेर ने श्री वादीलाल भाई मेहता की पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है कि 'यदि भारत ट्रस्टीशिप के द्वारा समतावादी समाज के रास्ते पर बढ़े तो विश्व को एक प्रकाश दे सकता है। इस प्रकार वह अपने परंपरागत सिद्धांतों को आधुनिक विश्व में अत्यधिक प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में अपने को प्रस्तुत कर सकता है, साथ-ही-साथ अपनी प्राचीन परंपरा को भी बनाए रख सकता है।' समतामूलक समाज रचना में 'सबका साथ, सबका विकास' एक सार्थक सूत्र बन रहा है और गांधीजी के सपनों को पूरा करने में एक मजबूत-व्यावहारिक मंत्र बन रहा है ऐसे में गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत पर अमल करने से इस दिशा में ओर तेजी आ सकती है।

सा/अ

आई-९, वरदान टावर, नीयर विमल हाउस,
लकहुदी ४ रास्ता, स्टेडियम रोड
नवरंगपुरा, अहमदाबाद-३८००१४
namaskar.kk2@gmail.com
दूरभाष : ९८८५०४४७३४

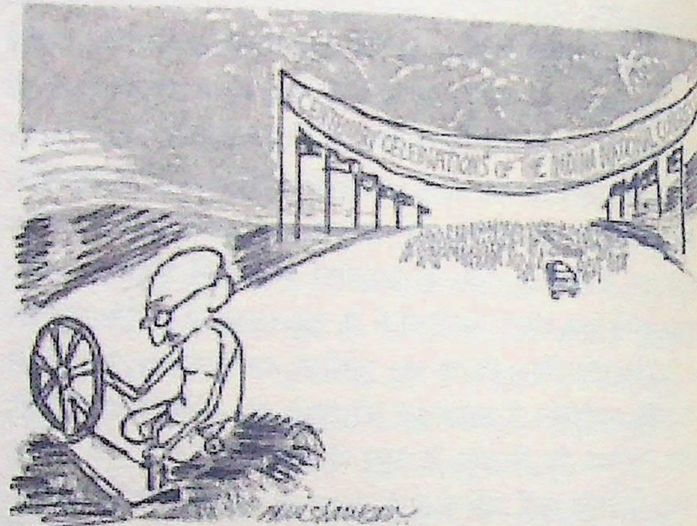


गांधी
विशेषांक

कार्टूनों में गांधी



यह महात्मा गांधी मार्ग तो हो सकता है पर महात्मा गांधी का दिखाया हुआ मार्ग नहीं हो सकता।
बहुराष्ट्रीय
महात्मा गांधी मार्ग

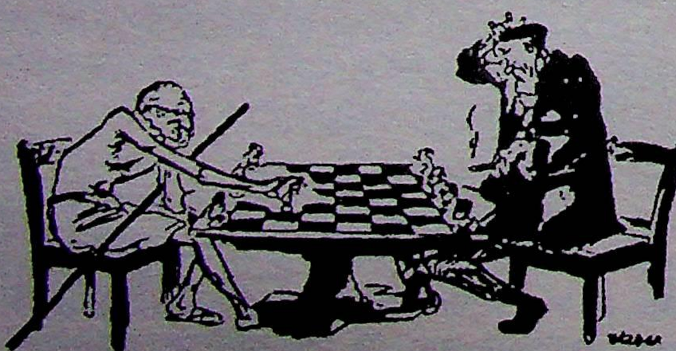


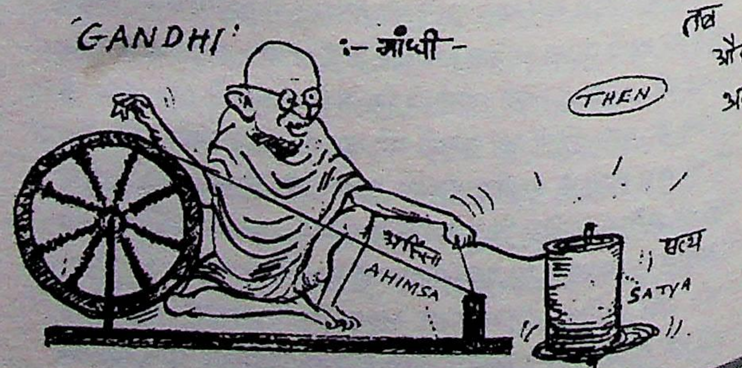


BANDH
TAX BILL
BUS FARE



"गांधी वादी"
— तब.
अब...
आगे...
CONGRESS

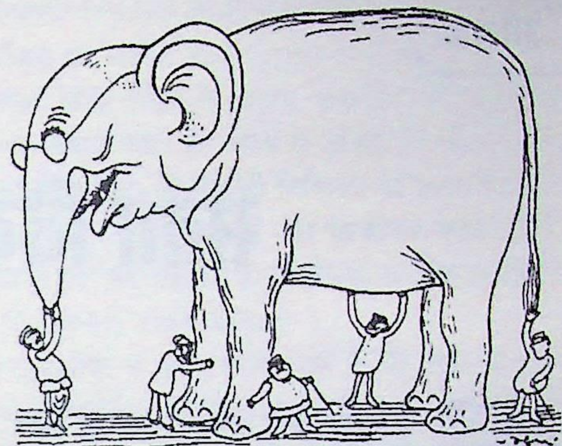


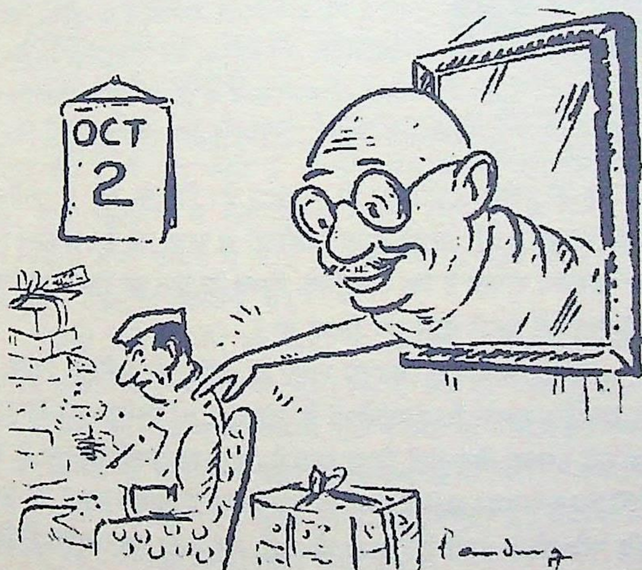


'GANDHI' :- गांधी -
तब और अब
THEN
अहिंसा
AHIMSA
सत्य
SATYA















(श्री शिवानंद कामड़े की पुस्तक 'कार्टूनों में गांधी' से साभार)

गांधी विशेषांक

सतत विकास के परिदृश्य में गांधी

• अतुल जैन

हम महात्मा गांधी जैसी पवित्र और महान् आत्मा के ऋणी है। उन्होंने विश्व-मानवता को अहिंसा और आत्मनिर्भरता का संदेश दिया था। ऐसे महात्मा का यह एक सौ पचासवाँ जयंती-वर्ष है। यह समय है, जब हमें उनके सिद्धांतों पर दोबारा से विचार करना चाहिए। गांधीजी के सिद्धांत हमारे जीवन में परिलक्षित होते हैं। उनके विचारों का असर हमारी सोच, हमारे कार्यों, हमारे सिद्धांतों में व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में दृष्टिगोचर होता है। भारतीय परिदृश्य में इसे ही हम पुरुषार्थ के रूप में जानते-समझते हैं।

यह सच है कि गांधीजी के विचारों ने न सिर्फ भारतीय मानस को बल्कि पूरे विश्व को प्रभावित किया है। गौरतलब है कि गांधीजी के दर्शन का प्रभाव अंतरराष्ट्रीय समझौतों और सिद्धांतों पर भी पड़ा। करीब सौ वर्ष पहले उन्होंने जो विचार हमें दिए हैं, शायद ही कोई उससे असहमत हो। लेकिन हमने अपनी दुनिया को सँवारने के लिए उनके विचारों को कतिपय ही अपनाने की कोशिश की है।

इन दिनों पूरे विश्व में समेकित विकास के लक्ष्य की चर्चा हो रही है। सभी इस पर विचार कर रहे हैं। पिछले पचास दशकों से हम इस लक्ष्य को हासिल करने के प्रयास में भी जुटे हैं। पर यह कैसा विरोधाभास है कि हम अब तक सहमत होते हुए भी पूरे विश्व को इस विषय पर सहमत नहीं कर पाए हैं।

करीब एक सौ ग्यारह साल पहले यानी सन् १९०८ में गांधीजी ने सतत विकास और संयमित उपभोग की बात की थी। उन्होंने अपनी किताब 'हिंद स्वराज' के माध्यम से भविष्य में मानवता को वस्तु और सेवा के अंधाधुंध उपभोग के प्रति सचेत किया था। वर्ष २०१५ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने १७ समेकित विकास लक्ष्य को स्वीकार किया। जिसमें १२वें बिंदु में समेकित उत्पादन और उपभोग अवधारणा की बात की गई है। वास्तव में अगर हम इस अवधारणा को अपना लेते हैं, तो यह गांधीजी को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। पर इस उद्घोषणा के प्रस्तावना में न गांधीजी के नाम का उल्लेख है और न ही भारतीय मूल्य का ही, जो हमेशा से सयंमित उपभोग की बात करते रहे हैं।

विश्व जिस 'समेकित विकास लक्ष्य १२' की बात आज कर रहा है, उसके बारे में गांधीजी ने एक सौ छह साल पहले ही कह दिया था। उन्हें इसकी चिंता भी थी और इसका समाधान भी उनके पास था। अगर हम 'समेकित विकास लक्ष्य १२' को ध्यान से पढ़ते हैं तो हमें लगता है



कई समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं में विभिन्न दायित्व निभा चुके हैं। 'मंथन' पत्रिका का संपादन तथा कई सरकारी संस्थाओं में सलाहकार की भूमिका निभाई। 'विराट पुरुष नानाजी देशमुख समग्र' का संपादन। पं. दीनदयाल उपाध्याय के जीवन, कर्तृत्व व विचारों पर १३ कड़ियों की डॉक्यूमेंट्री का निर्माण व निर्देशन। संप्रति दीनदयाल शोध संस्थान के प्रधान सचिव तथा एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के सचिव हैं।

कि यह तो गांधी-दर्शन का ही प्रतिरूप है। जिसके बारे में गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' और अपने अन्य आलेखों में चर्चा की है। अकसर लोगों को आश्चर्य लगता है कि आधुनिक विश्व के हित का चिंतन गांधीजी ने एक शताब्दी पहले कैसे कर लिया था?

पहला, समेकित विकास लक्ष्य के दर्शन को स्वीकार किया गया है। हालाँकि इसके लिए गांधीजी के योगदान को विस्मृत कर दिया गया है। उन्हें इसका श्रेय नहीं दिया गया है। पर यह प्रमाणित तथ्य है, कोई कोरी कल्पना मात्र नहीं है। बल्कि यह साध्य है। इसमें भारत की यथार्थ छवि परिलक्षित होती है। इतना ही नहीं, यह आने वाले समय में विश्व का भी यही सच होगा।

इसका दूसरा पहलू भी है कि यह लक्ष्य साध्य है। दीनदयाल शोध संस्थान और अन्य संस्थाओं के कामों में विकास का यह प्रारूप साफ दिखाई देता है। गांधी युग के महान् राजनेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना की गई थी। उन्होंने गांधीजी की अवधारणा को बखूबी अपनाया है। उन्होंने एकात्म मानव दर्शन के जरिए आध्यात्मिक विकास पर बल दिया है। पंडित दीनदयाल की मृत्यु के बाद सन् १९६८ में उनके समकालीन नानाजी देशमुख ने उनकी अवधारणा को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ली। उन्होंने गांधीवादी तरीके से इसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया।

यह हर्ष का विषय है कि वर्ष २०१९ में नानाजी देशमुख को मरणोपरांत 'भारत रत्न' सम्मान से सम्मानित किया गया, जो देश का सबसे बड़ा नागरिक सम्मान है। समकालीन समय में संतुलन बनाते हुए, नानाजी देशमुख ने देश के मूल को कायम रखते हुए सामाजिक परिवर्तन लाने का अनूठा काम किया है। उनका योगदान अविस्मरणीय है। नानाजी गांधीजी के सच्चे समर्थकों में से एक हैं। उन्होंने देश के

पिछड़े जिलों में विकास का काम किया। उन क्षेत्रों में मानव जीवन के श्रेष्ठ पहलुओं और मूल्यों को समाहित कर समेकित विकास की धारणा के साथ काम किया। शिक्षा, आजीविका, स्वास्थ्य, तकनीक के साथ जीवन के व्यावहारिक पक्ष को जोड़कर सामाजिक परिवर्तन लाए। उनके इस सफल प्रयास को सफलीभूत होते हुए चित्रकूट, गोंडा, बीड और नागपुर में देखा जा सकता है।

गांधीजी ने ईमानदारी से यह स्वीकार किया था कि उन्होंने अपने शुरुआती आलेखों में जो विचार प्रस्तुत किए हैं, वे अब पुराने हो गए हैं। इसलिए समय के साथ उनमें कुछ बदलाव करने में उन्हें कोई परेशानी नहीं है। लेकिन उनके बुनियादी विचारों का मूल अब भी वही है। उदाहरण के लिए गांधीजी और पंडित दीनदयालजी, दोनों ही महापुरुष स्वाभाविक और देसी ज्ञान का सम्मान करते थे। उन्होंने परंपरागत बौद्धिकता, सांस्कृतिक रीति-रिवाज को महत्त्व दिए जाने पर बल दिया। अति उपभोग हमारे लालच का कारण और परिणाम है।

गांधीजी ने बार-बार कहा कि देश के प्राकृतिक साधनों पर पहला हक ग्रामीणों का है। गांधीजी की तरह नानाजी भी सोचते थे। उनके अनुसार गाँववासी ही इन संसाधनों के सच्चे हकदार हैं। वे प्रकृति के संरक्षक होते हैं, वे प्रेम करते हैं, वे अंधाधुंध दोहन नहीं करते और उनका अपने संसाधनों से भावनात्मक लगाव होता है। वे उनकी रक्षा और विकास अपने तरीके से करते हैं। इसलिए गांधीजी भी प्रकृति के अनावश्यक दोहन के खिलाफ थे।

गांधीजी निश्चित तौर पर मानते थे कि बाहरी प्रभाव के बजाय स्थानीय चीजों का प्रयोग किया जाए। किसी क्षेत्र के विकास के लिए सिर्फ आँकड़ों को विकास का पैमाना नहीं बनाया जा सकता है। क्योंकि हर क्षेत्र विशेष का भौगोलिक और सामाजिक ढाँचा विशिष्ट एवं भिन्न होता है। भारत में ही १२७ कृषि आधारित विभाग हैं; जबकि नीति निर्धारक उन्हीं आँकड़ों का उपयोग करते हैं।

फ्रांस के राष्ट्रपति निकोलस सरकोजी ने अपने देश के सामाजिक और आर्थिक आँकड़े को खारिज करते हुए एक नए आयोग का गठन किया, ताकि सकल घरेलू उत्पाद के बजाय सामाजिक और आर्थिक विकास को आधार बनाया जाए। इस तरीके से आँकड़े जब एकत्र किए गए, तब पाया गया कि किसी भी क्षेत्र की विविधता का प्रभाव विकास पर पड़ता है। इस संदर्भ में समाजवेत्ताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को विचार करना चाहिए और उन्हें क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक वातावरण को भी समझने की कोशिश करनी चाहिए।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि महात्मा गांधी ने सौ साल पहले ही आर्थिक विकास के विकेंद्रीकरण की बात की थी। सच तो यह है कि संयमित उपभोग की बात किए बिना सतत विकास की बात करना ही बेमानी है। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी ने भी भारतीय नैतिक मूल्य और संयमित उपभोग की वकालत की थी। इस संदर्भ में उन्होंने भारतीय मनीषी और संस्कृति चलन को आधार बनाया। उन्होंने भारतीयों द्वारा अपने धर्म के अनुसार मर्यादित जीवन की प्रशंसा की। उन्होंने व्याख्या की कि संयमित जीवन जीने से प्रकृति का न्यूनतम दोहन होता है। उन्होंने अनावश्यक संपत्ति के प्रदर्शन और दिखावेवाली जीवनशैली की भी निंदा की। 'समेकित विकास लक्ष्य-१२' में संसाधनों के कौशलपूर्ण उपयोग के जरिए बेहतर सुविधा विकसित करने की ही तो बात कही गई है।

समेकित विकास के सत्रह लक्ष्यों को भारतीय मूल्यों और सांस्कृतिक रीति-नीति के प्राचीन आलोक में देखना उचित होगा। जिन मूल्यों की बात महात्मा गांधी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय और नानाजी ने की थी। हम अपने इन मनीषियों के दर्शन के प्रति आभारी हैं। सा/अ

५१८६, बसंत रोड
पहाड़गंज, नई दिल्ली-११००५५

अहिंसक सत्याग्रह

यह घटना तब की है, जब वर्षा न होने के कारण गुजरात में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अकाल का बुरा असर पूरे देश पर पड़ा और इस स्थिति का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव तो बारदोली के किसानों पर पड़ा। उनकी फसल ही नहीं हुई। अनाज नहीं उग पाया। इस कारण वे उस वर्ष लगान नहीं भर पाए। किसानों का लगान न दे पाना सरकार को बुरी तरह अखर गया और उन्होंने सबकुछ जानते हुए भी बारदोली तहसील का लगान 66 प्रतिशत तक बढ़ा दिया। यह सूचना जब बारदोली के किसानों तक पहुँची तो वे बुरी तरह भड़क उठे। उन दिनों इन किसानों के साथ गांधीजी एवं सरदार वल्लभभाई पटेल थे। गांधीजी का समर्थन पाकर सरदार वल्लभभाई पटेल ने बारदोली किसानों का नेतृत्व किया। किसानों का अहिंसक सत्याग्रह देखकर अंग्रेज सरकार भड़क उठी और अहिंसा का जवाब हिंसा से देते हुए उन्होंने अनेक सत्याग्रहियों को जेल में भरना शुरू कर दिया। जेलें असंख्य सत्याग्रहियों से भर गईं। अंग्रेज सरकार ने बर्बरता दिखाते हुए अनेक लोगों की संपत्तियों, घरों और पशुओं आदि को भी जब्त कर लिया। अनेक स्त्रियाँ भी इस सत्याग्रह में बराबर की शरीक थीं। सत्याग्रह को चरम पर पहुँचते देखकर बंबई के गर्वनर ने सरदार पटेल को तुरंत गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। सरदार पटेल की गिरफ्तारी की खबर पाकर गांधीजी भी बारदोली पहुँच गए। अंग्रेज सरकार गांधीजी को भी गिरफ्तारी के लिए तैयार देखकर घबरा गई। उन्हें लगा कि यदि बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तो स्थिति बिगड़ जाएगी। अंग्रेज सरकार द्वारा यह सोचकर समझौते का मार्ग अपनाया गया और दोनों पक्षों को मान्य लगान की व्यवस्था लागू कर दी गई। इस प्रकार गांधीजी ने अहिंसा का मार्ग अपनाकर अंग्रेजों को किसानों की माँग मनवाने पर मजबूर कर दिया।

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गांधीजी और सत्याग्रह

• दीपंकर श्रीज्ञान

'सत्याग्रह' शब्द संस्कृत भाषा के दो शब्दों 'सत्य और आग्रह' के योग से बना है। इस शब्द का सामान्य अर्थ है—सत्य पर अडिग रहना या सत्य पर दृढ़ता। सत्य पर वही अडिग रह सकता है, जो अहिंसा को आत्मसात् करेगा। सबसे पहले सत्याग्रह की राह को चुनने के लिए यह आवश्यक है कि 'स्व' में अहिंसा को धारण किया जाए। अभिप्राय यह है कि हम अहिंसा को जीवन में दृढ़ता से शामिल करें और उसके बाद हम सत्याग्रह के मार्ग पर चल सकते हैं। निहितार्थ यह है कि दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक हैं।

सत्याग्रह के सेनानी में सशस्त्र सेना के सभी गुण पाए जाते हैं, पर उसमें हिंसा का दोष नहीं होगा। अर्थात् वह सभी तरह के दोष से रहित होगा। सत्याग्रह का सेनानी बनने की प्रक्रिया सशस्त्र सेना की ट्रेनिंग से ज्यादा कठिन है। शरीर की साधना और मन की साधना दो अलग-अलग हैं। शरीर की साधना के लिए समय सीमा हो सकती है, लेकिन मन साधना एक निरंतर प्रक्रिया है, जो व्यक्ति की दृढ़ता और अनुशासन पर निर्भर करता है। सत्याग्रही के हृदय में शुभ भावना का निवास होता है। उसमें लोककल्याण की भावना अंतर्निहित होती है। सच्चे सत्याग्रही के जीवन में आनंद-ही-आनंद है। यह आनंद सत्य की दृढ़ता है। सत्याग्रही मनुष्य जीवन में आध्यात्मिक सुख का अनुभव करने लगता है।

गांधीजी के सत्याग्रह में व्यापकता है। यह मनुष्य की मुक्ति का एक सशक्त मार्ग है। यह मुक्ति पारलौकिक नहीं लौकिक है। लोक में जीवन-दर्शन विस्तार पाता है।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका की अहिंसक लड़ाई को सर्वप्रथम 'पैसिव रजिस्टेंस' नाम दिया था। जैसे-जैसे आंदोलन आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्द की सीमा गांधीजी को समझ में आ गई। अब वे अफ्रीका की इस लड़ाई को कोई व्यापक और सार्थक नाम देना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' में उपयुक्त शब्द के लिए विज्ञापन प्रकाशित किया। इस संग्राम के लिए जो भी उपयुक्त शब्द खोजेगा, उसे इनाम दिया जाएगा। इंडियन ओपिनियन में दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई की व्यापक चर्चा होती रही थी। पाठक वर्ग के सामने कोई विशेष दुविधा नहीं थी। मगनलाल गांधी ने इसके लिए 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस नाम के विषय में उन्होंने अपना पक्ष रखा, 'हिंदुस्तानियों का यह आंदोलन एक महान् 'आग्रह' है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात्



प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक व लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में गांधी विषयक लेख प्रकाशित। पुस्तक 'चंपारण की दास्ताँ' का संपादन। संप्रति गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली में निदेशक पद पर कार्यरत।

शुभ है, इसीलिए उन्होंने यह नाम चुना है।' यह नाम गांधीजी को पसंद आया। परंतु इस नाम में व्यापकता का अभाव था। जैसा कि गांधीजी चाहते थे। और गांधीजी ने इसमें बदलाव कर किया' 'द' का 'त' करके उसमें 'य' जोड़ दिया और 'सत्याग्रह' नाम बना दिया। सत्य के भीतर शांति का समावेश मानकर और किसी भी वस्तु का आग्रह करने से उसमें बल उत्पन्न होता है। इसलिए आग्रह में बल का समावेश करके मैंने (गांधीजी) भारतीयों के इस आंदोलन से 'सत्याग्रह' अर्थात् सत्य और शांति से उत्पन्न होनेवाले बल का नाम दिया और उसी नाम से इसका परिचय कराया। तब से 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्द का उपयोग इस आंदोलन के लिए बंद कर दिया। इस प्रकार जो वस्तु सत्याग्रह के नाम से पहचानी जाने लगी, उस वस्तु का और सत्याग्रह नाम का जन्म हुआ। गांधीजी ने इसे और स्पष्ट किया कि 'मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। सत्याग्रह केवल आत्मा का उपयोग होता है अथवा उसकी कल्पना रहती है, वहाँ उतने ही अंश में आत्मबल का कम प्रयोग होता है। मेरी मान्यता के अनुसार ये दोनों शक्तियाँ शुद्ध विरोधी शक्तियाँ हैं; और ये विचार सत्याग्रह आंदोलन के जन्म के समय भी मेरे हृदय में तो पूरी तरह उतर गए थे।' गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह शब्द मिला। यह छोटा शब्द समझ लिया जाना चाहिए कि गांधीजी के जीवन का संपूर्ण आंदोलन इसके भाव से जरा इस लंबी लड़ाई में गांधीजी का आत्मविश्वास और उनका आत्मबल हमेशा साथ रहा। दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई तो एक बानगी भर थी। अभी तो भारत में गांधीजी को आकर एक बड़ा काम करना था। इस बात का पता उन्हीं को नहीं था कि भारत में उन्हें लंबी लड़ाई लड़नी होगी।

गांधीजी के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में सत्याग्रह का क्रम चलता था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में 'घर में सत्याग्रह' विषय

पर सुंदर मार्मिक चित्रण किया है। वे लिखते हैं—'अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी तो अच्छा ही होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा। पर मैं ली हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकूँगा। मुझे तो इससे लाभ ही है। मनुष्य किसी भी निमित्त से संयम क्यों न पाए, उसमें उसे लाभ ही है। अतएव तुम मुझसे आग्रह न करो। फिर मेरे लिए भी यह एक परीक्षा हो जाएगी और इन दो पदार्थों को छोड़ने का जो निश्चय तुमने किया है, उस पर दृढ़ रहने में तुम्हें मदद मिलेगी।' 'इसके बाद मुझे उसे मनाने की जरूरत तो रही ही नहीं।' 'आप बहुत हठीले हैं। किसी की बात मानते ही नहीं।' कहकर और अंजली भर आँसू बहाकर वह शांत हो गई। मैं इसे सत्याग्रह का नाम देना चाहता हूँ और इसको अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में से एक मानता हूँ।'



गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में दिसंबर १९१४ के इंडियन ओपिनियन में सत्याग्रह की विशेषता पर लिखते हैं—'आत्यंतिक रूप में यह शक्ति किसी भी प्रकार की आर्थिक या दूसरी किसी भौतिक सहायता से स्वतंत्र है और शरीर-बल या हिंसा से तो अपने प्रारंभिक रूप में भी वह बिल्कुल स्वतंत्र है। हिंसा तो इस महती आध्यात्मिक शक्ति का तिरोभाव है। यह ऐसी शक्ति है, जिसका प्रयोग व्यक्ति और समाज दोनों के द्वारा किया जा सकता है। राजनीतिक और घरेलू मामलों में, एक समान इसका प्रयोग किया जा सकता है। सार्वदेशिक रूप से इसके प्रयोग का संभव होना इसके स्थायित्व और इसकी अजेय शक्ति का द्योतक है। पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे सब इस पर अमल कर सकते हैं। यह कहना बिल्कुल गलत है कि यह ऐसी शक्ति है, जो दुर्बलों के द्वारा तभी तक काम में लाई जाती है, जब तक वे हिंसा का सामना हिंसा से करने में असमर्थ होते हैं। जो अपने को दुर्बल समझते हैं, उनके लिए तो इस शक्ति का प्रयोग करना असंभव ही है। सफल सत्याग्रही केवल वे ही हो सकते हैं, जो यह अनुभव करते हैं कि मनुष्य में कोई ऐसी चीज अवश्य है, जो उसकी पशुवृत्ति से महान् है और उसकी पशुता उस महती शक्ति के सामने सदैव पराजित होती है। यह शक्ति हिंसा या सब प्रकार के अत्याचार तथा अनीति के लिए ठीक वही काम करती है, जो प्रकाश अंधकार के प्रति करता है।'

आज दुनिया में जो शांति है या शांति स्थापित की जा सकती है, उसके मूल में सत्याग्रह ही होगा। सत्याग्रह का दायरा बहुत बड़ा है। इसमें अहिंसा को शामिल किए बिना यह अधूरा है। मनुष्य की प्रकृति में अहिंसा का वास है। इसके बिना जीवन संभव ही नहीं। जीवन और जगत् के लिए सत्य और अहिंसा दो सबसे प्रबल हथियार हैं। 'हिंद स्वराज' में गांधीजी लिखते हैं—'पाठक, आप जिस सत्याग्रह की अथवा आत्मबल की बात करते हैं, क्या उसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण है? आज तक एक भी राष्ट्र ने वैसे बल के अधार पर उन्नति की हो, ऐसा देखने में नहीं आता। दुष्ट मारकाट के बिना सीधा नहीं होता। संपादक : कवि तुलसीदास ने कहा है, 'दया धरम का मूल है, पाप-मूल अभिमान। तुलसी दया न छोड़िए, जब लगि घट में प्राण॥' मुझे तो यह वाक्य शास्त्र-वचन की तरह लगता है। दया बल आत्मबल है; वह सत्याग्रह है। इस बल का प्रमाण पग-पग पर दिखाई पड़ता है। वह बल न होता तो पृथ्वी रसातल में समा गई होती। दुनिया में आप इतने लोग जीवित हैं, इससे सिद्ध होता है कि संसार की नींव शस्त्रबल पर नहीं है बल्कि सत्य, दया अथवा आत्मबल पर है। इसलिए प्रबल ऐतिहासिक प्रमाण तो यही है कि संसार युद्ध के हंगामों के बाद भी बचा हुआ है। शस्त्र-बल के बजाय यह दूसरा बल ही उसका आधार है।'

हमारा इतिहास-पुराण भी सत्यागृह के उदाहरणों से भरा पड़ा है। हम श्रीराम का जीवन देख लें। राम का जीवन सत्य को समर्पित था। राम और रावण का युद्ध शरीर बल और आत्मबल का सूचक है। भक्त प्रह्लाद, कबीर, मीराबाई के जीवन का सूक्ष्मावलोकन करें तो सत्याग्रह की पराकाष्ठा दिखाई देती है। भगवान् बुद्ध महावीर जैसे महापुरुषों ने जीवन में सत्य और अहिंसा की राह पर अपने जीवन का आत्मोत्सर्ग किया। आज हम अपने महापुरुषों को याद करते हैं कि उनका जीवन हमें प्रेरणा देता रहता है। सत्य का रास्ता कठिन अवश्य है, पर यही वह मार्ग है, जिसपर सच्चे अर्थों में मनुष्य को आध्यात्मिक सुख के साथ शांति प्रदान करता है।

आज गांधीजी सत्याग्रह के पर्याय बन गए हैं। गांधी के विरोधियों का भी गांधीजी पर अटल विश्वास था। विरोधी का विश्वास उन्होंने अपने सत्यनिष्ठा से जीता था। गांधीजी का भारत आगमन के बाद पहला सत्याग्रह चंपारण में हुआ। १९१७ में चंपारण जाने से पहले गांधीजी ने भारत का भ्रमण कर पूरे देश को समझने की कोशिश की थी। राजकुमार शुक्ल के अथक प्रयास से गांधीजी चंपारण पहुँचे। वहाँ उन्होंने नील किसानों की समस्या को समझने की कोशिश की। गांधीजी पर धारा १४४ के तहत मुकदमा दायर किया गया और उनको जिला छोड़ने का आदेश प्रशासन द्वारा मिला। इस पर गांधीजी ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा कि १६ अप्रैल, १९१७ को जिला मजिस्ट्रेट को चिट्ठी लिखी—'महोदय, भारतीय दंड विधान की धारा १४४ के अंतर्गत मुझ पर अभी जो हुक्म तामील हुआ है, उसके संबंध में मेरा निवेदन है कि आपको वह हुक्म जारी करने की जरूरत महसूस हुई, इसका मुझे दुःख है। लेकिन साथ ही मुझे इस बात का भी दुःख है कि कमिश्नर ने मेरी स्थिति को बिल्कुल गलत समझा है। सार्वजानिक दायित्व को समझते हुए मैं यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं इस जिले से नहीं जा सकता; किंतु यदि अधिकारी चाहते हैं तो मैं इस हुक्म की उदूली की सजा भुगत लूँगा।' इस पत्र में गांधीजी सविनय अपनी बात को प्रशासन के सामने रखते हैं। चंपारण का आंदोलन गांधीजी द्वारा घोषित नहीं था। लेकिन उन्होंने किसानों की दुर्दशा को समझा और इस बात को आगे तक ले जाने का मन बनाते, उससे पहले ही, प्रशासन का शिकंजा कसना शुरू हो गया। गांधीजी को जिला अदालत में प्रस्तुत होना

पड़ा। १८ अप्रैल, १९१७ को अदालत में गांधी कहते हैं—'मैं इस प्रांत में मानव-जाति और राष्ट्र की सेवा करने के इरादे से प्रविष्ट हुआ हूँ; मुझे यहाँ आने और रैयत की सहायता करने का जो आग्रहपूर्ण आमंत्रण भेजा गया था, उसी को स्वीकार करके मैं यहाँ आया हूँ''मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि मेरे आने से सार्वजानिक शांति भंग होगी या कुछ लोग जान से हाथ धो बैठेंगे। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ऐसे मामलों का मुझे काफी अनुभव है। परंतु प्रशासन का खयाल कुछ और है। मैं उसकी कठिनाई से बखूबी समझ रहा हूँ और मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि प्राप्त जानकारी के आधार पर करवाई करने के अलावा उनके सामने और कोई रास्ता नहीं है। मुझे यह बात भली-भाँति मालूम हो कि भारत के सार्वजानिक जीवन में मेरी जैसी स्थिति के जनसेवक को उदाहरण उपस्थित रहते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। मेरे यह उस विधान में स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए मेरी जैसी विधान के अंतर्गत रहते हैं। उस विधान में स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए मेरी जैसी परिस्थिति में सही और सम्मानस्पद केवल एक ही मार्ग रह जाता है, अर्थात् हुक्म-उदूली की सजा विरोध किए बिना सहन करना और यही मैंने स्वीकार किया है। मैंने इस वक्तव्य को देने का साहस, जो सजा मुझे दी जानेवाली है, उसमें किसी प्रकार की रियायत करने की इच्छा से नहीं बल्कि यह जताने के लिए किया है कि जो हुक्म दिया गया था, उसे न मानने का कारण सरकार के प्रति आदर भाव में कमी नहीं बल्कि अपने जीवन के उच्चतर विधान-अंतरात्मा के आदेश का पालन था।' चंपारण सत्याग्रह में गांधीजी की नैतिकता सत्य, अहिंसा, विनम्रता, मानवता का सकरात्मक सत्याग्रह था। आगे गांधीजी बारदोली, अहमदाबाद, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन और जीवन के अंतिम समय तक सत्याग्रह के मार्ग पर चलते रहे। कथनी और करनी में कोई फर्क नहीं किया।

जनता गांधीजी की एक आवाज पर सबकुछ त्यागकर सत्याग्रह में हिस्सा लेती थी। तात्पर्य यह है कि गांधीजी के व्यक्तित्व का आकर्षण लोगों के हृदय में था। गांधीजी का यह आकर्षण त्याग और बलिदान से निर्मित हुआ था। आधुनिक समय में विश्वशांति के लिए गांधी से बड़ा कोई नायक नहीं हो सका। युद्ध-आतंक से मानवता को नहीं बचाया जा सकता और न ही यह मानवता की कीमत पर यह रुक सकती है। मानवता को बचाने के लिए विश्व को गांधी जीवन-दर्शन को आत्मसात् करने की आवश्यकता है। इस दर्शन से जीवन के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में नैतिकता और शुचिता का समावेश करना होगा। दरअसल गांधीजी ने संपूर्ण स्वाधीनता आंदोलन में जनमानस को लड़ाई लड़ने के लिए तैयार किया। गांधी सत्य और अहिंसा के मार्ग पर आजीवन चलते रहे। विश्व को उन्होंने मानवता का जो धर्म सिखाया, वह धर्म चिर शांति का है।

निदेशक, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट
नई दिल्ली-११०००२

भारतीय संस्कृति की महानता

मार्टिन लूथर किंग भारतीय संस्कृति एवं गांधीवाद से बेहद प्रभावित थे। शांति स्थापित करने के लिए उन्हें विश्व का सर्वोच्च पुरस्कार 'नोबेल शांति पुरस्कार' प्रदान किया गया था। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने के कुछ समय बाद वे भारत की यात्रा पर आए। राष्ट्रपति भवन में उनके अभिनंदन समारोह में मिस्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर तथा ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ भी उपस्थित थीं। अभिनंदन समारोह के बाद अनेक विषयों पर चर्चा चलती रही। देश-विदेश से अनेक पत्रकार आए हुए थे, जो अनेक तरह के प्रश्न कर रहे थे। तभी एक विदेशी पत्रकार ने पूछा, 'आपको शांति प्रयासों के लिए विश्व का सर्वोच्च पुरस्कार प्रदान किया गया है। निश्चित रूप से आपने पूरे विश्व में शांति स्थापित करने के लिए अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आपको शांति स्थापित करने की प्रेरणा कहाँ से मिली?' इस पर मार्टिन लूथर मुसकराकर बोले, 'भारत देश से मुझे इसकी प्रेरणा मिली। मुझे भारतीय सिद्धांतों व गांधीजी ने अत्यधिक प्रभावित किया। गांधीजी की अहिंसक नीति और उनके कार्य करने के तरीके ने मेरे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है।' इस पर पत्रकार बोला, 'भारत के सिद्धांतों व गांधीजी के प्रति आपका लगाव कैसे उत्पन्न हुआ? विश्व में शांति स्थापित करने के लिए आपका क्या सुझाव है?' मार्टिन लूथर किंग फिर मुसकराए और बोले, 'मैंने अपने देश के अति भौतिकवादी माहौल के दुष्परिणामों को देखने के बाद 'गीता' तथा भारतीय दर्शन का अध्ययन किया। इसने मुझे बेहद प्रभावित किया। मैंने अनुभव किया कि भारतीय दर्शन ही मानवतावाद, सेवा व शांति की प्रेरणा देने में सक्षम है। गांधीजी के बताए सत्य-अहिंसा के मार्ग से ही विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। मैंने इस प्रयोग को कसौटी पर कसा और सही पाया।' उनके जवाब को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी शीर्षस्थ नेता उनकी भारतीय दर्शन और गांधी में अटूट निष्ठा तथा विश्वास देखकर भावविभोर हो गए। गांधी के प्रति एक विदेशी का प्रेम देखकर सभी जान गए कि गांधीजी ने अपने महान् कार्यों से पूरे विश्व में अहिंसात्मक नीति और भारतीय संस्कृति को स्थापित किया है।

(श्रीमती रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

लाजवाब कम्युनिकेटर गांधी

अरविंद मोहन



जाने-माने पत्रकार। लगभग पाँच सौ लेखों का अनुवाद तथा 'प्रवासी मजदूर की पीड़ा', 'मीडिया की खबर', 'पत्रकारिता और पत्रकार' पुस्तकें प्रकाशित होकर चर्चित। कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन।

गांधी की पत्रकारिता बहुत बड़ा विषय है—शायद मेरे जैसे लोगों से न सँभलने वाला। उनके एक अखबार 'इंडियन ओपिनियन' पर वर्षों का समय लगाकर एलिजाबेथ हाफ्मेयर ने 'द गांधी प्रेस' जैसी अद्‍भुत किताब लिखी है, उस तरह का काम किया जाए, तब शायद गांधी की पत्रकारिता कुछ-कुछ समझ आए। गांधी संभवत: सबसे बड़े पत्रकार थे और पत्रकारिता जिस उद्‍देश्य के लिए की जाती है और की जानी चाहिए, उसके सबसे बड़े उदाहरण थे। पर इस महामानव को पत्रकारिता करने, जिसमें पढ़ाई-लिखाई और सामग्री जुटाने से लेकर मशीन की चिंता, वितरण की सिरदर्दी और घाटे को भरने का इंतजाम करने तथा प्रतिबंध और जेल जाने का जिम्मा भी उठाने का काम था, की जरूरत क्यों पड़ी? जाहिर तौर पर अपनी बात, सम्माज के लिए जरूरी और उपयोगी संदेश को उस तक पहुँचाने के लिए, समाज के लिए नुकसानदेह तंत्र के कुप्रचार और गलत बातों का जबाव देने के लिए। मैंने गांधी के एक आंदोलन पर काम किया है। और उस दौर में उनके पास कोई अखबार न था। पर उसमें जो गांधी का कम्युनिकेशन कौशल दिखा, वह आज तक असर कर रहा है। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव रहा।

महात्मा गांधी १५ अप्रैल, १९१७ को चंपारण आए थे। सात दिन बाद ही जिले के कलक्टर ने अपने वरिष्ठ जनों को चिट्‍ठी लिखी, उसमें यह उल्लेख सबसे पहले आता है कि आज गांधी की चर्चा जिले के हर किसी की जुबान पर है। गांधी ने चंपारण के एक सक्रिय किसान राजकुमार शुक्ल के अलावा किसी को अपने आने की सूचना नहीं दी थी और निपट अकेले उन्हीं के संग आए थे, बल्कि शुक्लजी उनको मुश्किल से पकड़कर ले आए थे। पटना ही नहीं, मुजफ्फरपुर तक गांधी के साथ अकेले शुक्लजी ही थे। गांधी ने उन्हीं से अपने पूर्व परिचित आचार्य कृपलानी को तार दिलवाया था, जो तब मुजफ्फरपुर में अध्यापन कर रहे थे। वे अपने कुछ बच्चों को लेकर गांधी को रिसीव करने स्टेशन तक आए थे। गांधी मुजफ्फरपुर में कमिश्नर से मिलना और उन्हें चंपारण जाने की सूचना देना चाहते थे। कमिश्नर ने तीन दिन मिलने का समय नहीं दिया। इस दौरान गांधी स्थानीय वकीलों से चंपारण में नील की खेती के कानूनी पक्ष को जानने की कोशिश करते रहे।

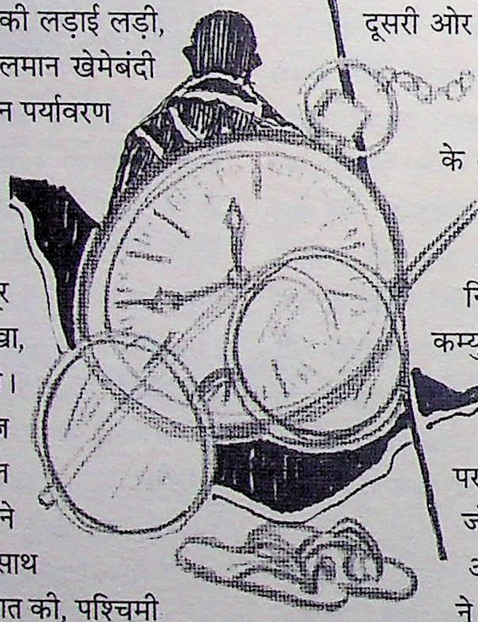
जब यह अनुमति नहीं मिली तो १८ अप्रैल को वे मोतिहारी चल पड़े, जो चंपारण जिले का मुख्यालय था। मोतिहारी में उनके आने की सूचना शुक्लजी ने कई लोगों को दी थी। वे स्टेशन पर उन्हें लेने आए थे और वहाँ पहुँचते ही गांधी सक्रिय हुए तथा अगले ही दिन हाथी पर सवार होकर उस गाँव में चल पड़े, जहाँ निलहों का अत्याचार होने की खबर मिली थी। रास्ते में ही उनको जिला छोड़ने का आदेश मिला, जिसे उन्होंने यह कहते हुए मानने से इनकार किया कि आप कानूनी रूप से ठीक हो सकते हैं, लेकिन मेरी अंतरात्मा मुझे कह रही है कि अपने देश में कहीं भी आने-जाने की आजादी मुझे है। और इस आदेश का उल्लंघन करने के लिए मुझे जो भी सजा मिले, मैं भुगतने के लिए तैयार हूँ। जिस दिन गांधी का मुकदमा चला, उस दिन अदालत में हजारों रैयत मौजूद थे और शासन ने गांधी को छोड़ दिया।

और जो गांधी निपट अकेले आए थे, उनके साथ अब हजारों लोग जेल जाने को तैयार थे। गांधी ने सबसे ज्यादा चिंता आंदोलन को अहिंसक रखने की की, और नौ महीने से ज्यादा के उनके चंपारण प्रवास में कहीं भी हिंसा नहीं हुई, शासन की तरफ से बार-बार उकसावे के बावजूद। और यही गांधी जब २२ अप्रैल को मोतिहारी से बेतिया, जो नील उत्पादन का केंद्र था, पहुँचे तो स्टेशन पर दस हजार से ज्यादा लोग थे, इतने कि स्टेशन सँभाल नहीं पा रहा था और लोग पटरी पर तक खड़े थे। रेलगाड़ी को स्टेशन से पहले रोकना पड़ा और पटरी खाली कराने के बाद गांधी स्टेशन तक आ पाए। लोग उनकी गाड़ी को खुद से खींच रहे थे, उनके पूरे रास्ते में फूलों की बरसात होती रही, नारे लगते रहे। तो मेरे लिए अध्ययन का यही विषय प्रमुख था कि गांधी का संदेश चंपारण में इस तेजी से कैसे फैला। अपनी किताब 'प्रयोग चंपारण' (भारतीय ज्ञानपीठ) में मैंने इसी गुत्थी को सुलझाने की कोशिश की है।

वे न चंपारण को जानते थे न वह नील का पौधा देखा था, जिसकी

खेती से परेशान किसानों को राहत देने के लिए वे गए थे। पर डेढ़ महीने बाद जब जाँच आयोग बना तो गांधी किसानों के प्रतिनिधि बनकर न सिर्फ गए बल्कि उन्होंने अपने तर्कों से सबको चित्त कर दिया और वह सबकुछ हासिल कर लिया, जो पाना चाहते थे। चंपारण की चर्चा वे जब करते हैं, बहुत प्रफुल्लित मन से करते हैं। यह जादू हुआ कैसे और तब कैसे हुआ, जब जानकारियाँ लेना-देना, संदेश का आदान-प्रदान, कहीं आना-जाना बहुत मुश्किल था। कम्युनिकेशन के सारे साधनों के आदिम अवस्था में होने पर भी गांधी कैसे इतने जबरदस्त कम्युनिकेटर साबित हुए। उन्होंने कैसे चंपारण का हर मर्ज जान लिया और कैसे अपना संदेश दिया कि सभी लोग सारे भेदभाव भूलकर उनके पीछे हो लिये और जो एक बार उनके प्रभाव में आया, जीवन भर के लिए उनके रंग में रँग गया और ऐसी ही उलझन यह रही है कि गांधी ने तब वहाँ न तो राष्ट्रवाद का नारा बुलंद किया, न जमींदारी के खिलाफ झंडा उठाया, न अँगरेजी शासन से लड़ाई घोषित की, न जुल्मी निलहों के खिलाफ कोई तीखी बात की, न अगड़ों के खिलाफ बोला, न पिछड़ों का मजाक उड़ाया, न दलितों का अपमान किया, न छुआछूत की लड़ाई लड़ी, न औरतों के सवाल को ही उठाया, न हिंदू-मुसलमान खेमेबंदी कराई, न जिले का विकास करने का दावा किया, न पर्यावरण बचाने का, न जमींदारों-महाजनों के रिकार्ड/बही खाते फुँकवाए, जो प्राय: हर किसान-आंदोलन की सबसे परिचित तरीका है, और न कहीं हिंसा होने दी। और तो और उन्होंने अखबारों को दूर रखा, कांग्रेस को दूर रखा, दूसरे नेताओं को दूर रखा, जिले में एक पैसा भी चंदा लेने की मनाही कर दी।

पर उनको हर वर्ग, हर इलाके, हर समाज का समर्थन मिला और उन्होंने वह सबकुछ हासिल कर लिया, जिसकी चर्चा पहले की गई है। उन्होंने नील की खेती को सदा के लिए, विदा करने के साथ विश्वव्यापी अँगरेजी शासन को उखाड़ने की शुरुआत की, पश्चिमी शैतान सभ्यता का अपना विकल्प देने की शुरुआत की, हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को जमीन पर उतारा और एक इलाके की बार-बार हिंसक हो रही लड़ाई को शांतिपूर्ण ढंग से राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ दिया। उन्होंने दलितों की, औरतों की स्थिति सुधारने की क्रांतिकारी शुरुआत की, उन्होंने ऐसी हिंदू-मुसलमान एकता बनाई कि फिर चंपारण में दंगे की खबर नहीं मिलती। औरतों को राष्ट्रीय आंदोलन में जोड़ने और परदे से बाहर लाने का काम किया। यह काम गांधी ने मुख्यत: कम्युनिकेशन के अपने तौर-तरीकों से किया और इसके दूरगामी प्रभाव हुए, सिर्फ चंपारण की तात्कालिक बीमारियाँ दूर करना उनका मकसद भी नहीं था। चंपारण का संदेश पूरे मुल्क और दुनिया को गया, सैकड़ों कार्यकर्ताओं में जीवन भर बना रहा, गांधी और उनके काम के जरिए आगे और प्रचारित-प्रसारित हुआ। गोरी चमड़ी तथा ब्रिटिश हुकूमत का खौफ एक बार चंपारण से उतरा तो उतरता ही गया। हम पाते हैं कि गांधी महात्मा ने चंपारण में कसरत करने, डंडा भाँजने, परेड करने की जगह बड़ी सावधानी से यही खौफ भगाने का काम किया। पूरी शांति से काम करने की रणनीति अपनाई। इस क्रम में उन्होंने खुद को जान से मारने के प्रयास की खबर एकदम गायब करने से लेकर अपने हर सहयोगी के आने-जाने की सूचना स्वामिभक्त नागरिक की तरह ब्रिटिश हुक्मरानों को देने जैसे न जाने कितने प्रयोग किए।



उनको पुरानी कम्युनिकेशन प्रणालियों की मदद मिली, पर सामने अति विकसित और ताकतवर ब्रिटिश इंपीरियल कम्युनिकेशन प्रणाली थी, जिसे गांधी ने मात दे दी। अँगरेजी और निलहा नेटवर्क ऐसा था कि किसके घर में क्या खाना पक रहा है, किसके कटहल में फल आए हैं, किसकी भैंस कितना दूध देती है, कब कोल्हू से गन्ना पेरना और बड़े चूल्हे से हल्दी पकाना शुरू हो रहा है, जैसी सूचनाएँ उनके पास होती थीं, क्योंकि लगान के अलावा पचास से ज्यादा तरह के कर (आबवाब) इन्हीं चीजों पर वसूले जाते थे और इन्हीं से किसानों को नील की खेती के लिए अपने हल और बैलगाड़ी देने के लिए दबाव बनाया जाता था। दूसरी ओर सारी ताकत, सारे संसाधन, सारे चुस्त-चौकस लोग और जबरदस्त खुफिया व्यवस्था लिये ब्रिटिश हुक्मरान हर कदम पर गलती करते गए, गांधी के आने की पहली गलत सूचना से लेकर तिनकठिया प्रथा की समाप्ति पर भ्रामक सूचना देनेवाला पोस्टर छपवाने तक। फिर अँगरेजी हुकूमत और निलहे भी गांधी को लेकर अफवाह फैलाने लगे, जो कम्युनिकेशन में कमजोर पड़ने की निशानी है।

और तो और, सारी फौजी और खुफिया तैयारी तथा पुराने प्रशासनिक उदाहरणों के आधार पर कमिश्नर ने गांधी को चंपारण से बाहर करने का जो आदेश दिलवाया, उसकी नीचे से लेकर ऊपर तक आलोचना खुद साम्राज्य के लोगों ने ही की। पर गांधी ने चालाकी या किसी प्रबंधकीय योजना की जगह अपनी निष्ठा, सच के प्रति जबरदस्त आग्रह और भरोसा, सबसे पहले अपना उदाहरण पेश करने के नैतिक बल, अपनी कुर्बानी देने का जज्बा और निश्चय को ही सबसे ज्यादा मददगार बनाया। मेरे पढ़ने और समझ में तो यही आया है और उसे ही आलेख में परोसने की कोशिश की है। पर तीसेक वर्षों से ज्यादा समय से मन में घूम रहे ये सवाल या यह विषय मुझसे सँभल पाया, इतना पढ़ने और यह लिखने के बाद अभी भी भरोसे से नहीं कह सकता। इधर जब लगकर पढ़ाई कर रहा था, तब साधनों और समय का अभाव भी रहा, स्वतंत्र पत्रकारिता कुछ स्वतंत्रता देती है, पर ज्यादा मुश्किलें ही लाती है, खासकर तब जब आप हिंदी में काम करते हों। फिर सोचते-सोचते जब मैदान में उतरा तो पता चला कि वह लगभग पूरी पीढ़ी विदा हो चुकी है, जिसने अपने पुरखों से सीधे गांधी के समय के किस्से सुने थे। सौ साल की अवधि में चार पीढ़ियाँ आ जाती हैं।

और जब जिले के पुस्तकालयों और निजी संग्रहों को छानने लगा तब यह एहसास हुआ कि पढ़ने-लिखने और पुस्तक-संग्रह का यह हिसाब तो गांधी के इस आंदोलन के बाद ही बना है—चंपारण ही क्या बिहार और देश में राष्ट्रीय आंदोलन ने गांधी के चंपारण प्रयोग के बाद ही। पर यह भी हुआ कि इसी आंदोलन से कोई राजेंद्र प्रसाद भी निकले, जिन्होंने अपनी कई किताबों के जरिए इस आंदोलन के हर पक्ष को सहेजा है। उनकी पहल पर ही प्रसिद्ध इतिहासकार बी.बी. मिश्र ने इस आंदोलन से जुड़े दस्तावेजों का भारी-भरकम और अद्‍भुत संग्रह किया है। गांधी हेरिटेज जैसा विलक्ष्ण साइट आधुनिक तकनीक और संचार के सहारे बनी है, पर मन भर देने लायक सामग्री देता है। संपूर्ण गांधी वाङ्मय भी काफी मददगार संग्रह है। जाहिर तौर पर इन छपी चीजों के अंदर से भी कुछ नया ढूँढ़ना था और बाहर से भी। पर जिसे जो काम सौंपा, उसने खुशी-खुशी करके दिया, जिसके दरवाजे पर पहुँच गया, उसने अपनी तरह से मदद में कोई कसर नहीं छोड़ी और यह अपने रिश्ते से ज्यादा उसी महात्मा का प्रताप लगा, जिसके नाम में अभी भी जादू बचा हुआ है। पर चंपारण प्रयोग का गांधी का जादू सिर्फ तब और चंपारण तक नहीं रहा। जो सरदार पटेल गांधी से मिलने पर उनके तौर-तरीके की खिल्ली उड़ा रहे थे, चंपारण की सफलता की खबर सुनकर कुरसी से उछल पड़े और अपने खेड़ा किसान आंदोलन की अगुवाई के लिए गांधी को बुलाने लगे।

चंपारण के पड़ोस के जिलों, जहाँ भी नील की खेती होती थी, तो उनको रोज बुलावा आता था। अहमदाबाद के मिल मजदूरों का बुलावा आया। गांधी चंपारण से निकले तो अपने 'अधूरे प्रयोग' को लेकर संशय में थे। लेकिन चंपारण सत्याग्रह किसानों की मुश्किलों का निवारण करने के साथ राष्ट्रीय आंदोलन को नई पटरी पर लानेवाला बना। गांधी के अपने जीवन में निर्णायक बदलाव वाला बना। जिस किसी को अन्याय से लड़ने के नए तरीके के बारे में पता करना था, वह चंपारण से सीखने आया। विश्वयुद्ध जैसी हिंसा से त्रस्त दुनिया में गांधी का अहिंसक सत्याग्रह नया हथियार साबित हुआ। गांधी ने अपने उदाहरण से चंपारण के कमजोर और बदहाल किसानों के मन से अँगरेजी सत्ता और गोरी चमड़ी का डर जिस तरह निकाला, वह हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का रंग-ढंग बदलने वाला तो हुआ ही, पूरी दुनिया से गोरी चमड़ीवालों के उपनिवेशवाद को विदा करनेवाला साबित हुआ।

और पश्चिमी सभ्यता तथा विकास के मॉडल के जवाब में गांधी ने चंपारण में स्वास्थ्य, हाइजीन, शिक्षा, ग्रामीण कौशल, खेती, बागवानी, गोशाला चलाने जैसे जो प्रयोग शुरू किए, वे आज भी आकर्षण के केंद्र हैं। चंपारण से निकलते हुए गांधी को यही अफसोस रहा कि वे अपने इन प्रयोगों और उसके माध्यम से पूरी दुनिया को जो नया संदेश देना चाहते थे, वह अधूरा रहा। पर बिल्कुल नई जमीन पर हुआ यह प्रयोग जितने तरह के संदेश जितने लोगों तक देने में सफल रहा और आज तक असरदार है, वह जानने-समझने की चीज है, खासकर कम्युनिकेशन में काम करनेवाले लोगों के लिए।

सा
अ

ए-५०४, जनसत्ता अपार्टमेंट, सेक्टर-९,
वसुंधरा, गाजियाबाद-२०१०१२ (उ.प्र.)
arvindmohan2000@yahoo.com
दूरभाष : ९८११८२६१११

राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रयोग

सन् 1919 में कलकत्ता में राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर 'राष्ट्रभाषा सम्मेलन' का आयोजन किया गया। सम्मेलन में उपस्थित अधिकतर लोग अपना भाषण अंग्रेजी में दे रहे थे। कई अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में भी देने का प्रयास कर रहे थे। वहाँ मौजूद अनेक लोग ऐसे भी थे, जिनकी राष्ट्रभाषा हिंदी पर अच्छी पकड़ नहीं थी। वे भी सम्मेलन में राष्ट्रभाषा हिंदी सीखने का प्रयास नहीं कर रहे थे। महात्मा गांधीजी को इस बात का पता लगा तो उन्हें बहुत बुरा लगा। वे राष्ट्रभाषा हिंदी से बहुत प्रेम करते थे और उसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करना चाहते थे। उन्हें यह जानकर बहुत बुरा लगा कि राष्ट्रभाषा सम्मेलन में राष्ट्रभाषा की ही अनदेखी की जा रही है। यह सोचकर गांधीजी ने एक योजना बनाई कि वहाँ उपस्थित लोगों को किस प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। सम्मेलन में भाषण बोलने के लिए गांधीजी को बुलाया गया तो वे हिंदी भाषा में बोले, 'यदि राष्ट्रभाषा सम्मेलन के अंतर्गत किसी विदेशी भाषा में बोला जाएगा तो राष्ट्रभाषा सम्मेलन आयोजित करने का औचित्य ही क्या रह जाएगा? मैं आप सभी से प्रार्थना करता हूँ कि सम्मेलन में भाषण राष्ट्रभाषा हिंदी में ही दें, ताकि इस सम्मेलन के औचित्य को सार्थक सिद्ध किया जा सके। यदि इस सम्मेलन के अंतर्गत हमने हिंदी भाषा का प्रयोग ही नहीं किया तो यह हमारे लिए ही शर्मनाक बात होगी।' गांधीजी की बातें सुनकर सम्मेलन में मौजूद सभी अतिथियों को अपनी गलती का अहसास हुआ और फिर तो मंच पर बोलने के लिए आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति ने राष्ट्रभाषा हिंदी का ही प्रयोग किया। जिनको हिंदी भाषा नहीं आती थी, उन्होंने भी हिंदी भाषा में बोलकर सम्मेलन का उद्देश्य सार्थक सिद्ध करने का निश्चय किया।

सा
अ

(श्रीमती रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



गांधी में दुनिया, दुनिया में गांधी

• पुष्पिता अवस्थी

विश्व शांति के लिए मानवीय संस्कृति की अस्मिता के लिए सूर्य सरीखे महात्मा गांधी विश्व की अनंत दीप्ति और ऊर्जा से दुनिया को आज भी आलोकित और प्रकाशित कर रहे हैं, जिससे संसार में जीवनदायी भारतीय अस्मिता अपने वैभवानुसार आकार ले सके। बापू ने अत्यंत मनोयोग एवं व्यावहारिक सिद्धियों के साथ वैश्विक भारतीय संस्कृति की एकात्मकता का साक्षात्कार किया और उसे अनेक माध्यमों से पृथ्वी पर अवतरित किया, जिससे विश्व में हिंसा और असत्य के विरुद्ध मानवीय एवं प्राकृतिक शांति का शंखनाद हो सके।

किसी भी देश की देशजता ही मनुष्यता की अस्मिता के मूल में है, जिसे गांधीजी ने बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया था। किसी भी देश की सामाजिक व्यवस्था उसके शासनकाल से कहीं अधिक व्यापक होती है, जो सीधे जनमानस के संस्कारों और विश्वासों से संबद्ध रहती है। आज जिस शासन-व्यवस्था में हम साँस ले रहे हैं, वह डेढ़-दो सौ वर्ष पुरानी है, जिसमें एक ओर हम अंग्रेजों से अनुशासित व आतंकित होते रहे थे और आज न चाहते हुए भी अंग्रेजियत से प्रभावित हैं। हमारे धार्मिक अंधविश्वास और विश्वास, हमारे दैनिक जीवन की मान-मर्यादाएँ उस अनुशासन से परे हैं। इस तरह से गत दो सौ वर्षों से हमारा भारतीय समाज दो सीमांतों के बीच जीते हुए अपनी अस्मिता की तलाश में सक्रिय है, बेचैन है। इसी के बीच एक ऐसी अभिजात संस्कृति ने हम सबकी आचरण संहिता के गर्भ से जन्म ले लिया है, जो सतही तौर पर मानववादी और लोकतांत्रिक दिखती है, लेकिन अपने आचरण और स्वभाव में उसका हमारी जीवनधारा, हमारी व्यापकता, सांस्कृतिक भूख और उसकी आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं है। ऐसे में गांधीजी ने स्वराज्य व स्वदेशी के गुणसूत्र के जो रास्ते दिखाए, उसे ही सामाजिक कार्याकर्ताओं को अपनाना चाहिए, क्योंकि उसी में धरती और धरती के उपासकों एवं भारतीय संस्कृति की सुरक्षा संभव है।

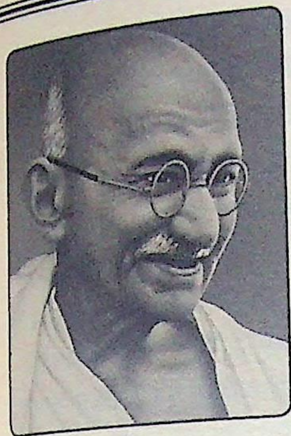
आत्म-उत्खनन अथवा आत्म-अन्वेषण का सबसे सक्षम आयुध भाषा है। भाषा ही मनुष्य के देह का वह अदृश्य अंग है, जो उसे आत्मदृष्टि देता है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपने अधूरेपन की पहचान कर संपूर्णता का स्वप्न देखता है। भाषा के माध्यम से कुछ भी कहना अपनी अनुभूतियों की छाया को उतारने जैसा है।

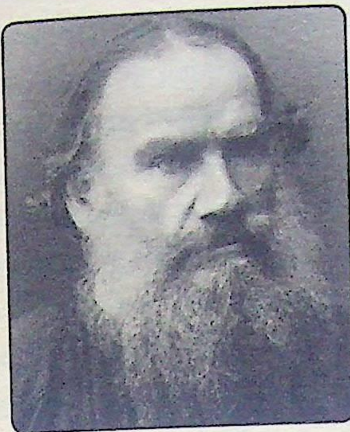


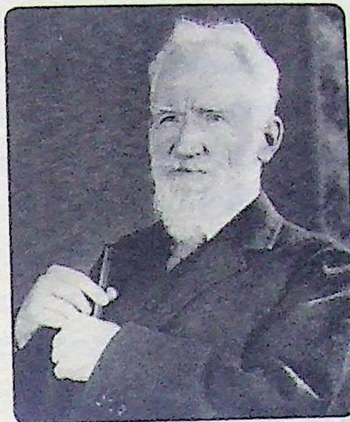
हिंदी यूनीवर्स फाउंडेशन (नीदरलैंड) की निदेशक। संत विनोबा के आचार्यकुल की राष्ट्रीय अध्यक्षा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की अंतरराष्ट्रीय संयोजक। अम्स्टल-गंगा और सृजन समय की संरक्षक एवं संपादक। सभी विधाओं में ५० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

टी.एस. इलियट ने एक बार कहा था कि हम क्या हैं, यह हम तभी जान सकते हैं, जब हम यह जान लें कि हमें क्या होना चाहिए, लेकिन हमें क्या होना चाहिए, यह तभी जाना जा सकता है, जब हमें ज्ञात हो कि हम क्या हैं? बापू ने विदेश-प्रवास के काल में ही जैसे यह जान लिया था। यह जानना या यों कहें आत्मबोध उनकी चेतना में बहुत पहले ही घटित हो चुका था, तभी उन्होंने काउंट लियो टालस्टॉय के आलेख में लिखा है—'तीन पुरुषों ने मेरे जीवन में बहुत ही प्रभाव डाला है, उसमें पहला स्थान मैं राजचंद्र कवि को देता हूँ, दूसरा टाल्सटॉय को और तीसरा रस्किन को। टाल्सटॉय के जीवन के विषय में बहुतेरों ने जितना पढ़ा होगा, उतना मैंने नहीं पढ़ा है। उनकी पुस्तकों में से जिस पुस्तक का प्रभाव मुझपर बहुत अधिक पड़ा है, उसका नाम है—'Kingdom of Heaven is suitin you.' इसका अर्थ यह है कि ईश्वर का राज्य तुम्हारे हृदय में है। उसे बाहर खोजने जाओगे तो वह कहीं नहीं मिलेगा। फिर मैंने उनके दूसरे कई ग्रंथ पढ़े। उनमें से प्रत्येक का क्या प्रभाव पड़ा, सो तो मैं नहीं कह सकता, परंतु उनके समग्र जीवन का क्या प्रभाव पड़ा, वह कह सकता हूँ।'

गांधीजी के व्यक्तित्व की अंतश्चेतना से गुजरने के लिए उनकी इस आत्मस्वीकृति की अनुभूति करना अनिवार्य है, ''उनके जीवन में से मैं अपने लिए दो बातें खूब समझता हूँ। वे जैसा कहते थे, वैसा ही करनेवाले पुरुष थे। उनकी सादगी अद्भुत थी, बाह्य सादगी तो थी ही, वे अमीर वर्ग के मनुष्य थे। इस जगत् के छप्पन भोग उन्होंने भोगे थे। फिर भी उन्होंने भरी जवानी में अपना ध्येय बदला। दुनिया के विविध रंग देखने, उनके स्वाद चखने पर भी, जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें कुछ नहीं है तो उनसे मुँह मोड़ लिया और अंत तक अपने विचारों पर पक्के रहे। इसलिए मैंने एक जगह लिखा है कि टालस्टॉय युग की सत्य की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य को जैसा माना, वैसा ही पालने का उग्र प्रयत्न







एस.वच ने जो उस समय कहा था, वह आज भी प्रासंगिक है—''वे सही थे, वे जानते थे कि वे सही हैं। हम सब जानते हैं कि वे सही थे। उनकी हत्या करनेवाला भी जानता था कि वे सही हैं। हिंसा की अज्ञानता चाहे जितनी लंबी चले, वे यही साबित करते हैं कि गांधी सही थे।''

आध्यात्मिक ज्ञान को गांधीजी ने सामाजिक अध्यात्म में रूपांतरित कर उसे समाज की शक्ति घोषित की और अपनी

किया। टालस्टॉय अपने युग के लिए अहिंसा के बड़े भारी प्रवर्तक थे। अहिंसा के विषय में परिश्रम के लिए जितना साहित्य टालस्टॉय ने लिखा है, जहाँ तक मैं जानता हूँ, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसी ने नहीं लिखा है। उससे भी आगे जाकर कहता हूँ कि अहिंसा का सूक्ष्म दर्शन जितना टालस्टॉय ने किया था और उसका पालन करने का प्रयत्न जितना टालस्टॉय ने किया था, उतना प्रयत्न करनेवाला आज हिंदुस्तान में कोई नहीं। ऐसे किसी व्यक्ति को मैं नहीं जानता।

व्यक्ति, साहित्य और व्यक्तित्व की इतनी गहरी दूरदृष्टि रखनेवाले बापू ने आगे लिखा है—''गीता में कहा है कि बिना यज्ञ किए जो खाता है, वह चोर है, पापी है। वही चीज टालस्टॉय ने बतलाई है—'ब्रेड लेबर' का सीधा अर्थ यह है कि जो शरीर खपाकर मजदूरी नहीं करता, उसे खाने का अधिकार नहीं है, हम भोजन के मूल्य के बराबर मेहनत कर डालें तो जो गरीबी जगत् में दिखाई देती है, वह दूर हो जाए! एक आलसी दो भूखों को मारता है।' टालस्टॉय की विचारधारा के विश्लेषण के क्रम में गांधीजी ने हि.न. २०.०९.१९२८ में स्पष्ट लिखा कि ''निश्चय कर लो कि हम सत्य की आराधना छोड़नेवाले नहीं हैं। सत्य के लिए दुनिया में सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेम का सागर है। जीवन यज्ञ के लिए है, सेवा के लिए है, जो ऐसा समझेगा, वह भोगों को कम करता जाएगा। इस आदर्श साधन में ही पुरुषार्थ है।''

गांधीजी के ये विचार जो १९२८ में थे, अपनी जीवन-यात्रा में हर स्तर पर संघर्ष करते हुए १० जून, १९४७ में कहा, ''टालस्टॉय एक बड़ा योद्धा था, पर जब उसने देखा कि लड़ाई अच्छी चीज नहीं है, तब लड़ाई को मिटा देने की कोशिश करते-करते वे मर गए। उन्हें कहा कि दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति लोकमत है और वह सत्य व अहिंसा से पैदा हो सकती है।'' *(प्रा.प. १०.६.१९४७)*

गांधीजी की वैचारिक यात्रा का पुनरावलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि टालस्टॉय उनके आत्मीय सहयात्री मिल रहे। उनके शब्द ही उनकी शक्ति बने, जिससे उन्होंने समाज और विश्व की संरचना के लिए अहिंसा व सत्य के प्रयोग के चरितार्थ होनेवाले स्वप्न देखे। यद्यपि पश्चिम में गांधी का महिमामंडन और खंडन १९२० के दशक में शुरू हो गया था। वे अपने अनोखे प्रयोगों से प्रेम, घृणा, जिज्ञासा, उत्तेजना के विषय शुरू से ही बन गए थे, जो आज भी जारी है। लेकिन पर्ल

योजनाओं के माध्यम से उसे चरितार्थ कर दिखाया, जिसके प्रयोग और अनुशीलन आज भी जारी हैं, इसलिए जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा था, ''गांधी की छाप? आप किसी से हिमालय की छाप के बारे में पूछ सकते हैं?''

अपने समय की महान् विभूतियों से गांधीजी जितना प्रभावित हुए, उतना ही उन्होंने अपने कृतित्व से विश्व को प्रभावित किया।

बापू के निष्कर्ष रहे हैं—अत्यंत स्पष्ट और पारदर्शी। वे उनकी चेतना में विलय होकर पुनः जीवन प्राप्त करते थे, जिसमें गांधीजी की अस्मिता बोलती थी। उनकी आत्मा ध्वनित होती थी। उनका मानना है कि 'अहिंसा का अर्थ होता है—प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा।' अहिंसा का अर्थ है—प्रेम, दया, क्षमा। अहिंसा एक महाव्रत है, उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ है—त्याग और ज्ञान। गांधीजी आगे लिखते हैं—मैं ऐसा मानता हूँ कि अहिंसा-धर्म जिस मूल मान्यता से उत्पन्न होता है, वह यह है कि एक भी उन्नति में सबकी उन्नति है और एक की अधोगति में सबकी अधोगति है। सत्याग्रह एक ऐसी अहिंसक चमकीली तलवार है, जिसे हृदय के ज्ञान पर चढ़ाकर तेज किया जाता है, दूसरी ओर वह ऐसा उज्ज्वल प्रकाश भी है, जिससे शत्रु चौंधिया जाता है और सत्य के आगे झुक जाता है। गांधीजी का यह दृढ़ विश्वास था कि सत्य का आग्रह रखने की कला हस्तगत होते ही अन्याय का सामना करने की शक्ति आ ही जाती है। बापू १९१४ में अफ्रीका से भारत लौटते हुए यह उद्देश्य बना लिया था कि जीवन के हर क्षेत्र में हिंसा और झूठ के बजाय सिर्फ सत्य व अहिंसा का ही प्रचार करूँगा। उनके इस सत्याग्रह व अहिंसा के ज्ञान एवं विश्वास की कभी पराजय नहीं हुई। गांधीजी का यह भी मत रहा है कि जो सत्य वचन सरीखा ही है कि 'आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा-धर्म का पालन सर्वथा असंभव है। अशुद्ध आत्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ रहती है, अतएव जीवन-मार्ग के सभी क्षेत्रों में शुद्धि की आवश्यकता है। यह शुद्धि साध्य है, एक ही शुद्धि अनेक की शुद्धि के बराबर हो जाती है।' गीता में श्रीकृष्ण के कहे के संदर्भ गांधीजी कहते हैं, ''श्रीकृष्ण कहते हैं कि अच्छे व्यक्ति को अपने जीवन में कर्म करते हुए मुझे मन में रखना चाहिए। यह एकदम सच है। जब हमें कोई देखनेवाला होता है तो वह हमारे दोषों और गुणों को ध्यान से देखता

है। जो व्यक्ति एक उत्तम कार्य प्रारंभ करना चाहता है, उसे किसी के आशीर्वाद की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। एक उत्तम कार्य में अपना आशीर्वाद खुद निहित रहता है।'' *(गांधी की नैतिकता)*

यह विश्वास ही आत्मविश्वास का जनक है और कई धर्मों का प्रेरणास्रोत है, जो गांधीजी के उद्देश्यों का शक्तिस्रोत बन सका। इस संदर्भ में दलाईलामा का कथन अत्यंत प्रासंगिक है, ''अहिंसा को राजनीति में ही नहीं बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी में भी प्रभावी तरीके से लागू किया जा सकता है। अपने उदाहरण से इसे साबित करना गांधीजी की महान् उपलब्धि है।''

सामाजिक अध्यात्म से परिपुष्ट अपनी वैज्ञानिक सोच-समझ के कारण ही सिक्ख के चिंतकों, संगीतकारों, कलाकारों, कार्यकर्ताओं, वैज्ञानिकों और चित्रकारों पर उनका प्रभाव दिखाई देता है। जीवन भर ब्रिटिश सरकार की नौकरी करनेवाले अकबर इलाहाबादी ने १९१९ से १९२१ के बीच 'गांधीनामा' लिखकर दुनिया से विदा ली। सितारवादक रविशंकर ने 'मोहनकौंस' नाम से एक राग हरिया तो शास्त्रीय गायक कुमारगंधर्व ने भी महात्मा गांधी को अपनी श्रद्धांजलि में एक नया राग 'गांधी मल्हार' की रचना की। 'नेल्सन मंडेला' नाम के साथ ही गांधीजी महसूस होने लगते हैं। यह महसूस होना, तभी संभव है, जब आपके विचारों के संवेदन-तंत्र का सोच-तंत्र में विलय हो जाता है और यह विचार व्यक्ति के व्यक्तित्व की रगों का हिस्सा बन जाता है, जिससे उसके व्यक्तित्व की अस्मिता निर्मित होती है। गांधीजी की संघर्ष-शक्ति की नींव में यही भावधारा है।

अपनी परंपरा, संस्कृति, ऐतिहासिकता से जुड़कर व्यक्ति विश्व नागरिक हो सकता है। विश्व नागरिकतावाद के विश्लेषक मार्था तास्बुम, आइजक बर्लिन को यह बात सूझी कि नेशन की धारणा से हटकर कॉस्मापालिटिन बनना है, पर राष्ट्र परंपरा से संबद्ध होकर भी विश्व नागरिक हो सकते हैं। इस देश में धार्मिक बहुलवाद को स्वीकृति मिलने के पीछे गांधी दृष्टि का प्रभाव है।

कुछ वर्षों के बाद ही गांधी एक ऋषि, विष्णु अवतार के रूप में देखे जाने लगे थे। हजारों की संख्या में लोग दूर-दराज से उन्हें सुनने के लिए आने लगे, रेलवे स्टेशन पर घंटों उनकी प्रतीक्षा में इंतजार करने लगे, राजपथ पर उनके दर्शन के लिए प्रचंड गरमी और बर्फीली हवा को सहते रहे। गांधीजी ने भारत की प्रत्येक भाषा के लेखक की कल्पना को रूप दिया और भारत के लोकगीतों में अपना स्थान बना लिया। हजारों की संख्या में अज्ञातनाम लोक-गीतकार ग्रामीण बोलियों में उन पर कविताएँ लिखने लगे या किंवदंतियाँ रची जाने लगीं। सन् १९२१ तक महात्मा गांधी भारत के एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और कदाचित् सबसे बड़े नेता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। एक तरह की नई राष्ट्रवादी काव्यधारा के केंद्र में आ चुके थे। उनके जीवन के विभिन्न पत्रों के आश्रय से साहित्य में नए-नए अध्याय जोड़े जाने लगे, चाहे वह पक्ष दक्षिण अफ्रीका सरकार के विरुद्ध उनका साहसपूर्ण प्रतिरोध था अथवा चंपारण में उनका वीरतापूर्ण संघर्ष था या फिर सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत थी अथवा उनकी दांडी यात्रा या फिर जेल में उनके जीवन के कई वर्षों का बीतना अथवा नौआखली में उनकी वह महत्त्वपूर्ण यात्रा; और अंत में उनकी हत्या, इन सबको लेकर साहित्य का एक नया रूप प्रतिष्ठित हुआ। गांधीजी बहुत शीघ्र दंत, परंपरा और आप्त-पुरुष में बदल गए। वे सच्चे अर्थों में देश प्रतिनिधि और राष्ट्र चिंतक-पुरोधा सिद्ध हुए।

गांधीजी के सिद्धांतों के आश्रय से उसी समय से साहित्य में एक नई दुनिया रची गई, जहाँ सत्य ही जीवन का आदर्श है, जहाँ सत्यमय होने के लिए अहिंसा एकमात्र कारण है—

- अहिंसा का अर्थ है अधिक से अधिक प्रेम। अहिंसा ही परम धर्म है, केवल इसी के बल पर मानव जाति की रक्षा हो सकती है।
- वह जो अहिंसा में विश्वास रखता है, जीवन रूप परमात्मा में विश्वास करता है।
- अहिंसा शब्दों द्वारा नहीं सिखाई जा सकती है, हृदय से प्रार्थना करने पर ही वह प्रभु की कृपा से अंत:करण में जगती है।
- अहिंसा और सत्य अभिन्न है। एक का ध्यान करो कि दूसरा पहले ही आ जाता है।
- अहिंसा के लिए सच्ची विनम्रता चाहिए, क्योंकि अहं पर नहीं, केवल ईश्वर पर निर्भर होने का नाम अहिंसा है।

पिछली कुछ शताब्दियों में पश्चिम के तौर-तरीकों और विचार संस्कारों ने फैलकर पृथ्वी के अधिकांश भाग को आच्छादित कर लिया था। गांधीजी का उद्देश्य भारत को पश्चिमी सभ्यता के पंजे से छुड़ाकर सत्य, अहिंसा और धर्म के मार्ग पर ले जाना था। उनका कहना था कि मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्तव्य नहीं है—

- सत्य से परे कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही सर्वप्रथम खोजने की वस्तु है।
- सत्याग्रही के लिए आवश्यकता है कि शुद्धि के लिए प्रार्थना करके ऐंद्रिक और अहंगत समस्त वासनाओं पर काबू पाया जाए।
- सत्याग्रही न्याय के रास्ते से नहीं डिगेगा, पर वह सदैव शांति के लिए उत्सुक रहता है, दूसरों में उसको अत्यंत निष्ठा है, अनंत धैर्य है और अमित आशा है।

सभी धर्म उनके लिए सत्य थे, सभी धर्म उनके लिए उतने ही प्रिय थे, जितना हिंदू धर्म। उनके मतानुसार धर्म वह सेतु है, जो मनुष्य को पूर्ण सत्य तक पहुँचाता है। धर्म के प्रति निष्ठा के कारण ही गांधीजी ने मध्ययुगीन संत-भक्तों का अनुशरण करते हुए समाज में सक्रिय कुरीतियों के विरुद्ध अभियान चलाया। उन्होंने भारत की धरती से तुलसी, कबीर, नानक आदि की तरह ही वे तत्त्व तलाशे, जिससे समाज में सुधार संभव हो। उनका कहना था कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग नहीं है, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़ांध है, वहम है, पाप है और इसका निवारण करना प्रत्येक हिंदू का धर्म है। समाज में पूर्ण सुख लाने के लिए गांधीजी ने

'सर्वोदय' का विचार दिया। सब सुखी हों, सब निरामय हों, सब श्रेय को देखें, यही गांधीजी का सर्वोदय है। इन सबके लिए गांधीजी ने सत्यग्रह का आश्रय लिया। हिंदी में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने गांधीजी को 'सर्वोदय दूत' कहा है। कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने 'शांति-प्रेम संबोधि वृक्ष' माना। तेलुगु के विख्यात कवि कृष्ण शास्त्री ने 'गांधी जुगनू' के नाम से एक काव्य लिखा। प्रेमचंदजी महात्मा गांधी के काव्यमय दार्शनिक व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंदजी गांधी के मानसपुत्र थे। गांधीजी के मन में एक मानवीय संवेदनशील कवि-हृदय था, जिसे ईश्वर का वरदहस्त प्राप्त था, जिसने गांधी के व्यक्तित्व को ईश्वरत्व की सत्याग्रही अहिंसात्मक शक्ति प्रदान की।

गांधीजी के नेतृत्व में होने वाले राष्ट्रीय आंदोलन में सत्य और अहिंसा की सोच के आधार पर अस्पृश्यता निवारण को व्यावहारिक रूप मिला। गांधीजी का कहना था—''जिस देश में जनमा हूँ मैं, उस देश की संस्कृति ने मुझे पाला है और इसीलिए उस देश की आर्थिक संपन्नता को बनाए रखने के लिए हमें प्रयत्नशील होना है तथा उसके लिए स्वदेशी का प्रसार करना है।'' स्वराज, स्वदेश तथा सर्वोदय के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्ति के लिए गांधी ने सत्याग्रह की अवधारणा का आविष्कार किया। यह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं था, सक्रिय था, जिसने अपने प्रेम, विश्वास और आत्म-त्याग की तीन सम्मिलित शक्तियों के साथ सत्याग्रह की परिभाषा प्रस्तुत की है। गांधी का विचार था कि भारत की स्वाधीनता हिंसा के मार्ग से नहीं हो सकती है। स्वराज्य संभव है एकमात्र अहिंसात्मक सत्याग्रह से, आत्मा की शक्ति से, सत्य और प्रेम की शक्ति से—ये ही भारतीयता के अनुरूप उपकरण तब भी थे और आज भी। ब्रिटिश शासन को जब इन्हीं शक्तियों से परास्त किया गया है तो अंग्रेजियत के भूत को भी इन्हीं शक्तियों से, भारतीय मानस से बहिष्कृत किया जा सकता है।

गांधीजी के साथ अपने २५ वर्ष के अनुभव को लिखते हुए महादेव भाई देसाई ने एक जगह लिखा है—'कहीं हम कमजोर न हो जाएँ, इसलिए हमने अपने को प्रतिज्ञा से बाँध लिया है, इस प्रकार प्रतिज्ञा किए बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं करता है। प्रतिज्ञा का अर्थ है—अटल निश्चय। जो निश्चय नहीं कर सकता, वह मनुष्य बिना केवट के नाव की तरह इधर-उधर टकराकर नाश को प्राप्त होता है।

गांधीजी ही संसार में एक ऐसे पुरुष हैं, जिन्होंने एक बार पुनः साधुता और नीतिपरक सत्य-निष्ठा की शक्ति की विधायकता को एक बड़े पैमाने पर संसार के समक्ष सत्य-निष्ठा के साथ उद्घाटित कर दिया है। अब जबकि पश्चिम सभ्यता की अपनी भौतिक शक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। महात्मा गांधीजी ने उस समय धन और अन्य शस्त्रों की संगठित शक्ति से मोरचा लेने और परास्त करने के लिए अध्यात्म का अवलंब लिया। नैतिकता को अपनी आचरण-संहिता का जेनेटिक बनाया। रूसो के आदर्श शासक के समान 'सत्ता न रखते हुए भी सत्तावान है।' उन्होंने जनसंकल्प को जाग्रत् किया और भारत को विश्व के अन्य राष्ट्रों के समानांतर विकसित और समृद्ध किया।

वस्तुतः स्वतंत्रता की हरेक लड़ाई में से गांधीजी ने भावी रणनीति के लिए सार गहा और यह निष्कर्ष निकाला कि जिस हद तक सत्य और अहिंसा का पालन होगा, वहीं तक सफलता हासिल होगी। इसी चिंतन में से व्यक्तिगत सत्याग्रह निकला। यह सत्याग्रह उसी से सध सकेगा, जिसने जीवन में सत्य और अहिंसा अपनाई है। इसीलिए सत्याग्रही गांधीजी ने विनोबा को अपना प्रथम सत्याग्रही चुना। ऐसे संत विनोबाजी की १२५वीं जयंती है। वे लिखते हैं—''तत्त्व विचार में शंकराचार्य, भक्तिमार्ग में ज्ञानदेव और कर्मयोग में बापू, ये मेरी त्रयी हैं। गांधीजी के विचारों का और ग्रंथों का अध्ययन मेरा हुआ ही, परंतु उनकी संगति का लाभ भी मुझे मिला। संगति, विचारों का लाभ और तदनुसार काम करने का अवसर, तीनों मिलकर महापुरुष संश्रय होता है, वह मुझे प्राप्त हुआ।''

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ (गी. ५.७)

गीता में निष्कार्म कर्मयोग का विविध कार्य उल्लिखित हैं—''मन-बुद्धि सहित अंतःकरण की शुद्धि (आत्मशुद्धि), मन तथा इंद्रियों को जीतना (आत्मविजय) और खुद को एक देह में सीमित न मानकर व्यापक देखना अर्थात् सर्वभूतों में खुद को देखना (आत्मविकास अथवा आत्मविस्तार) इस आदर्श अवस्था तक पहुँचने के लिए गांधीजी एक पद्धति अपनाई थी कि दृष्टि आत्मशुद्धि की रहे, प्रेरणा भूतदया की रहे, कार्य-पद्धति में संयम रहे और वृत्ति में अलिप्तता का वास रहे।''

कर्मयोग द्वारा आत्मज्ञान, यह गांधी-विनोबा के युग की इस दुनिया के लिए महान् देन है। यह विज्ञान युग के अनुकूल है। इसमें जिन बातों की सिद्धियाँ हैं कि जो व्रत तथा आध्यात्मिक मूल्य व्यक्तिगत साधना के लिए माने गए थे, वे सबके लिए आवश्यक मानकर कार्यान्वित और प्रसारित किए जाएँ।

इसीलिए विनोबाजी ने अपने १५ वर्षों की लगातार पदयात्रा के दौरान यह प्रचारित किया कि गांधीजी के सामुदायिक अहिंसा के विचार को समझने के लिए जो मनोबल चाहिए, जो कल्पना-शक्ति चाहिए, जो पुरुषार्थ चाहिए, वह हममें कम है। इस विचार को अमल में लाने की शक्यता जितनी जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा है, क्योंकि आपके इस भीषण-दारुण समय में जो महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन का संजीवनी तत्त्व है और संपूर्ण मानवता की सुरक्षा के लिए औषधि है, वही आज कुतर्कों के चक्रव्यूह में है। साध्वी प्रवीण देसाई के सामुदायिक अहिंसा के आह्वान का पुनः उद्घोष करते हुए उन्हीं के शब्दों में—

गांधी तू आज देश की एक शान बन गया है
सारी मनुष्य जाति का अभिमान हो गया है
तेरी नसीहतों में जादू का वह अस्त्र है
जिसको लगी तेरी हवा, वह इनसान बन गया है। सा अ

राष्ट्रीय अध्यक्षा, आचार्यकुल
निदेशक, हिंदी यूनीवर्स फाउंडेशन, नीदरलैंड
info@pushpitaawasthi.com

चंपारण सत्याग्रह और गांधीजी

• अरुण कुमार

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के स्वर्णिम इतिहास में 'चंपारण सत्याग्रह' का महत्त्व एक शानदार प्रस्थान बिंदु की तरह है। गांधीजी के चंपारण आगमन से बहुत पूर्व ही यहाँ के पीड़ित किसान लामबंद होने लगे थे और उनका भीषण असंतोष उभार पाने लगा था। सन् १८६७ के आसपास तक चंपारण में नीलवरों द्वारा 'पंचकठिया प्रणाली' लागू थी, जिसके अनुसार किसानों को अपनी ही जमीन के प्रति बीघे में पाँच कट्ठे जमीन पर नील की खेती अनिवार्य रूप से करनी पड़ती थी। सन् १८६० से १८६७ तक यह 'पंचकठिया प्रणाली' लागू रही, जिसका व्यापक विरोध करते हुए लालसरैया और जौकठिया के रैयतों ने नील की खेती बंद कर अपने खेतों में रबी की बुआई शुरू कर दी। नील की खेती के बरखिलाफ रैयतों का यह प्रथम प्रतिकार था। इस संदर्भ में डॉ. राजेंद्र प्रसाद कहते हैं, "इस शांतिभंग से नीलवरों में बड़ी खलबली मची। नील का बोना बंद सा हो गया और मालूम होने लगा कि नील की खेती एकबारगी चंपारण से उठ जाएगी।"

परंतु सरकार द्वारा नीलवरों के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैयों की वजह से एक विशेष अदालत का गठन कर नील का दाम साढ़े छह रुपए एकड़ से बढ़ाकर नौ रुपए एकड़ कर मामले को रफा-दफा कर दिया गया। यह फैसला प्रांतीय सरकार का था, जिसपर टिप्पणी करते हुए भारत सरकार ने कहा था, "इस व्यवस्था में बुराइयाँ इतनी हैं कि जब तक इस व्यवस्था के अन्यायपूर्ण और दमनात्मक तत्त्वों को दूर करने के उपाय नहीं किए जाते, तब तक सरकार का हस्तक्षेप अनिवार्य हो सकता है।"

सन् १८७१ के आसपास किसानों ने फिर से सिर उठाना शुरू कर दिया था। हालाँकि १८६८ ई. तक की 'पंचकठिया प्रणाली' को 'तीनकठिया प्रणाली' में बदल दिया गया था, जिसके अनुसार किसानों को एक बीघा जमीन में से तीन कट्ठे पर नील की खेती अनिवार्य रूप से करने को बाध्य किया जाता था। इस प्रथा को ही 'तीनकठिया' कहा जाता था।

इस लादी गई प्रथा से चंपारण के किसान एक बार फिर से लामबंद हुए। १८८७ के भीषण अकाल ने चंपारण के किसानों की कमर ही तोड़



सुपरिचित लेखक। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. और डॉक्टरोत्तर उपाधि। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध निबंधों एवं लेखों का प्रकाशन। अंतरभाषिकता, काव्य विनिमय और हिंदी गजल नाम से पुस्तक प्रकाशित। आधुनिक काव्य, गजल और संगीत में विशेष रुचि।

दी। पूर्व से चले आ रहे असंतोष ने उग्र रूप धारण कर लिया। आग भड़कती चली गई और १९०६ ई. में तेलहड़ा कोठी के रैयतों ने कोठी के मैनेजर मि. ब्लूमफील्ड को लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला। चंपारण में किसी अंग्रेज अफसर की हत्या की यह दूसरी घटना थी। इसके पूर्व १८५७ ई. के सिपाही विद्रोह में विद्रोही सैनिकों ने १२वीं इरेगुलर कैवलरी के मेजर ई.एस. होम्स को मार डाला था।

कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रिटिश नीलवरों द्वारा लादे गए विभिन्न टैक्स और उनके अमानवीय शोषण ने किसानों को हद दर्जे तक उग्र कर दिया था, जिसकी अभिव्यक्ति जहाँ-तहाँ हिंसात्मक प्रतिकारों के रूप में हो रही थी। अंग्रेजों की अंतहीन शोषण पद्धति ने अनेक प्रकार के करों का प्रावधान किया था, जिसके अंतर्गत खुरकी कोतवाली, बपही-पुतही, बंगलही, घोड़ही, भैंसटी इत्यादि टैक्स किसानों से जबरी वसूल किए जाते थे। नील की कोठियों ने यातना-शिविरों का रूप ग्रहण कर लिया था और किसानों की स्थिति दासों की तरह हो गई थी।

चंपारण के इस दीर्घकालिक आंदोलन का गांधीजी के आगमन के पूर्व शेख गुलाब, शीतल राय और पं. राजकुमार शुक्ल आदि नेतृत्व कर रहे थे। १९०६ ई. में शेख गुलाब ने बेतिया सब-डिवीजन के प्रत्येक गाँव में घूम-घूमकर जन-जागरण करने का प्रयत्न किया। इनके सहयोगियों में शेख मुनव्वर, लाला जगनलाल, हाजी मोहम्मद दीन, शीतल राय, मुसद्दीलाल, राधेमल मोटानी, पीर मोहम्मद मुनीस, हरिवंश राय, खेंडर राय और पं. राजकुमार शुक्ल प्रमुख थे। शेख गुलाब और उनके सहयोगियों ने साठी, परसा, तिलहरा और कुड़िया कोठी क्षेत्र में जबरदस्त आंदोलन की नींव डाली, जिसकी परिणति में तेलहरा कोठी

के क्रूर मैनेजर मि. ब्लूमफील्ड की हत्या हुई। सन् १९०७ ई. में साठी कोठी के किसानों ने विद्रोह का बिगुल फूँक दिया तथा अंग्रेजों को किसी भी तरह का टैक्स देने से इनकार कर दिया। उन्होंने नील की खेती करने से भी स्पष्ट इनकार कर दिया। गाँव-के-गाँव प्रतिरोध की इस अग्नि में सुलगने लगे। साठी कोठी का मैनेजर एफ.सी. कैफिन यह परिदृश्य देखकर घबरा गया और उसने फौरन जिला कलेक्टर को इस बाबत पत्र भेजा। शेख गुलाब और शीतल राय की पटल पर लौरिया, मलहिया, बैरिया तथा कुड़िया कोठी के किसान भी इस आंदोलन में कूद पड़े। उन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में नील की खेती बंद कर दी। शेख गुलाब को पकड़कर काल कोठरी में डाल दिया गया और शीतल राय को ३० महीने की जेल की सजा सुनाई गई।

सन् १९१४ में अंग्रेजों ने शेख गुलाब और शीतल राय को कैदखाने से मुक्त कर दिया। जेल-यात्रा से लौटे शेख गुलाब की आँखों की रोशनी कम हो चुकी थी, परंतु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। शेख, शीतल और शुक्ल की इस तिकड़ी ने अंग्रेजों के बरखिलाफ अपना प्रतिरोध जारी रखा। लगातार चल रहे प्रतिरोध ने पूरे चंपारण के गाँव-गाँव में ब्रिटिश नीलवरों के विरुद्ध घृणा और अस्वीकार का माहौल तैयार कर दिया था। अब आवश्यकता थी एक ऐसे रहनुमा की, जो लोगों के आक्रोश को शृंखलाबद्ध कर एक सकारात्मक लड़ाई का नेतृत्व कर सके और किसानों को इस त्राण से मुक्ति दिला सके।

उन्हीं दिनों सतवरिया गाँव के पं. राजकुमार शुक्ल को नीलवरों ने बुरी तरह से उत्पीड़ित किया। उनका दोष मात्र इतना था कि उन्होंने ३ अप्रैल, १९१५ को छपरा में आयोजित कांग्रेस के प्रांतीय अधिवेशन में चंपारण के नील किसानों की दुःसह्य दुर्दशा को अत्यंत सशक्त ढंग से मंच पर उठाया। इस घटना के प्रतिक्रियास्वरूप बेलवा कोठी का दुष्ट व अत्याचारी मैनेजर मि. एमन भड़क गया और उसने मुरली भरहवा गाँव में लगी आलू एवं केले की खेती को मवेशियों द्वारा चरवा दिया और घोड़ों से रौंदवा दिया। साथ ही लगभग ढाई हजार रुपए की उनकी संपत्ति भी लुटवा दी। एमन के कारिंदों ने वहाँ मौजूद लोगों के साथ मारपीट भी की।

मि. एमन के इस कुकृत्य ने पं. राजकुमार शुक्ल के दिलोदिमाग पर उसी तरह असर किया, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों द्वारा चलती ट्रेन से गांधीजी को फेंके जाने पर गांधीजी के मन में हुआ था। अब शुक्लजी मनसा-वाच-कर्मणा अंग्रेजों के बरखिलाफ आखिरी लड़ाई लड़ने हेतु मन बना चुके थे। अंग्रेजों के खिलाफ नफरत का बीजारोपण हो चुका था।

गांधीजी ने शोषणकारी 'तीनकठिया प्रणाली' की समाप्ति के पश्चात् चंपारण में सामाजिक क्रांति का सूत्रपात करते हुए चंपारणवासियों को 'शिक्षा' और 'स्वास्थ्य' का पाठ पढ़ाया। ८ नवंबर, १९१७ को गांधीजी पुनः चंपारण लौटे। इस बार उनके साथ सुसंस्कृत पुरुषों और महिलाओं की एक छोटी सी टोली भी आई थी, जिनमें नारायण तम्माजी करघरे, डॉ. हरिकृष्ण देव, अवंतिका बाई, सदाशिव लक्ष्मण सोमन, बालकृष्ण योगेश्वर पुरोहित, नरहरि द्वारिका दास पारिख और महादेव हरिभाई देसाई आदि के नाम प्रमुख हैं। इन लोगों ने चंपारण के गाँव में स्वच्छता और स्वास्थ्य संबंधी अभियान चलाकर लोगों को चिकित्सकीय सुविधाएँ भी प्रदान कीं।

सतवरिया (प. चंपारण) के पीड़ित किसान पं. राजकुमार शुक्ल ने पहली बार नीलहों के द्वारा किसानों के उत्पीड़न के मसले को कांग्रेस के 'बिहार प्रांतीय सम्मेलन' छपरा में तो उठाया ही था, फिर सन् १९१६ के लखनऊ में आयोजित 'अखिल भारतीय कांग्रेस' के वार्षिक अधिवेशन में चंपारण के रैयतों की दुःस्थिति का परिचय कराने पहुँचे। उन्होंने गांधीजी को चंपारण आने और किसानों की महात्रासद दुःखगाथा सुनने का आमंत्रण दिया। इसके पश्चात् वे गांधीजी के पीछे-पीछे कानपुर गए और उन्हें चंपारण आने का न्योता दिया। फिर कलकत्ता गए और गांधीजी से चंपारण चलने का आग्रह किया। इस संदर्भ में बकलम खुद गांधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"राजकुमार शुक्ल नामक चंपारण के एक किसान थे। उनपर दुःख पड़ा था। यह दुःख उन्हें अखरता था; लेकिन अपने इस दुःख के कारण उनमें नील के इस दाग को सबके लिए धो डालने की तीव्र लगन पैदा हो गई थी। जब मैं लखनऊ कांग्रेस में गया तो वहाँ इस किसान ने मेरा पीछा पकड़ा। 'वकील बाबू, आपको सब हाल बताएँगे' वाक्य वे कहते जाते थे और मुझे चंपारण आने का निमंत्रण देते जाते थे।"

कहना न होगा कि व्यष्टि के दर्द को पंडित शुक्ल ने समष्टि का दर्द बना लिया था। गमे-जानां के दर्द की परिणति अब गमें-दौरां के दर्द में हो चुकी थी। गांधीजी ने उनकी पीड़ा को समझा और कहा, "अपने भ्रमण में मैं चंपारण को भी सम्मिलित कर लूँगा और एक-दो दिन वहाँ ठहरूँगा।"

लखनऊ से कानपुर और कानपुर से कलकत्ता तक की शुक्लजी की उद्देश्यपरक यात्रा ने गांधीजी के चंपारण आने का मार्ग प्रशस्त किया और अंततः पटना व मुजफ्फरपुर होते हुए गांधीजी दिनांक १५ अप्रैल, १९१७ को तीन बजे दिन में रेलगाड़ी द्वारा मोतिहारी पहुँचे। यहाँ उन दिनों के प्रसिद्ध वकील गोरखबाबू के यहाँ उन्हें ठहराया गया।

उन दिनों जसौली पट्टी में अंग्रेजों ने वहाँ के जमींदार किसान बाबू लोमराज सिंह को प्रताड़ित किया था, अतः सर्वप्रथम जसौली पट्टी जाने की योजना बनी। १६ अप्रैल, १९१७ को हाथी पर सवार होकर गांधीजी बाबू धरणीधर प्रसाद तथा बाबू रामनवमी प्रसाद जसौली पट्टी के लिए रवाना हुए। मोतिहारी से चलकर चंद्रहिया पहुँचते ही साइकिल की सवारी से एक दारोगा वहाँ पहुँचा और कहा कि कलेक्टर साहब ने आपको सलाम भेजा है। गांधीजी सबकुछ समझ गए। दारोगा ने एक बैलगाड़ी पर गांधीजी को बिठा लिया और मोतिहारी की ओर चल पड़ा। कुछ दूरी तय होने पर एक इक्के पर पुलिस के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आते दिखाई दिए। उन्होंने बैलगाड़ी को रुकवाकर गांधीजी को तत्कालीन

जिला मजिस्ट्रेट डब्ल्यू.बी. हिकॉक की नोटिस थमा दी। इस नोटिस में कहा गया था, ''चूँकि इस डिवीजन के कमिश्नर के पत्र से, जिसकी नकल इसके साथ भेज रहा हूँ, मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि जिले के किसी भी इलाके में आपकी उपस्थिति से इस जिले की शांति भंग और भारी गड़बड़ी होने का डर है, जिसमें लोगों की जान भी जा सकती है, इसलिए आपको आदेश दिया जाता है कि आप जिले में बने रहने से परहेज कीजिए और पहली उपलब्ध गाड़ी से चंपारण छोड़कर चले जाइए।''

गांधीजी ने इस नोटिस पर अमल करने से साफ इनकार कर दिया। जहाँ तक चंपारण सत्याग्रह के महत्त्व और इसके दूरगामी परिणामों का सवाल है तो यह स्वीकार करना होगा कि यह भारत में गांधीजी के अहिंसक राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम बीज-बिंदु था; जब गांधीजी १८ अप्रैल, १९१७ को तत्कालीन कोर्ट में सम्मन का जवाब देने जानेवाले थे तथा मोतिहारी के प्रसिद्ध वकील गोरख बाबू के घर से एस.डी.ओ. कोर्ट तक हजारों किसान प्रशांत भाव से खड़े थे। इस भीड़ में गांधीजी ने 'अहिंसा के देवता' का साक्षात्कार किया था। कचहरी में जब गांधीजी इजलास में गए, तब उनके पीछे-पीछे प्राय: २००० लोगों ने घुसने की कोशिश में कचहरी के दरवाजों के शीशे तोड़ डाले। इन परिस्थितियों में हाकिम जॉर्ज चंदर ने उन्हें वापस मुख्तारखाने में जाने को कहा। शस्त्रधारी पुलिसवालों को वहाँ बुलाया गया। इजलास में खड़े होकर गांधीजी ने अपना ऐतिहासिक बयान दिया और कहा कि ''मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जिस जटिल व्यवस्था के तहत हम लोग जी रहे हैं और इन परिस्थितियों में जो मेरे सामने हैं, आत्मसम्मान रखनेवाले एक व्यक्ति के लिए वही करना एकमात्र सुरक्षित व सम्मानजनक रास्ता है, जो मैंने करना तय किया है, अर्थात् कोई प्रतिवाद या विरोध किए बिना आदेशपालन न करने की सजा को स्वीकार कर लेना।''

मजिस्ट्रेट ने गांधीजी से १०० रुपए की जमानत माँगी। परंतु गांधीजी ने उत्तर दिया, ''मेरे पास कोई जमानतदार नहीं है और न मैं जमानत ही दे सकता हूँ।'' लाचार मजिस्ट्रेट ने उनसे स्वयं मुचलका लेकर उन्हें जाने की आज्ञा दे दी। सांकेतिक अर्थों में यह ब्रिटिश सरकार की गांधी के हाथों प्रथम पराजय थी। २० अप्रैल तक गांधीजी पर से मुकदमा उठा लिया गया और सरकारी पदाधिकारियों द्वारा रैयतों का हाल जानने की उन्हें छूट दे दी गई।

उनपर से मुकदमा उठाए जाने को लेकर 'इंडियन पेट्रिओट' (मद्रास), 'द मेसेज' (बंबई), 'न्यू इंडिया' (मद्रास), 'द पंजाबी' (लाहौर), 'द इंडियन सोशल रिफॉर्मर' (बंबई), 'द एडवोकेट' (लखनऊ), 'द लीडर' (प्रयाग), 'द टाइम्स' (मद्रास), 'बॉम्बे क्रॉनिकल' (बंबई), 'द बेंगाली' (कलकत्ता), 'हिंदू', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'मरहट्ठा' तथा लाहौर के 'द ट्रिब्यून' ने इस घटना की जमकर आलोचना करते हुए सरकार व सरकारी आदेश की भर्त्सना की और अंग्रेजों द्वारा गांधीजी पर लगाए गए प्रतिबंध की धज्जियाँ उड़ाईं।

गांधीजी द्वारा एस.डी.ओ. कोर्ट में दिए गए उपरोक्त बयान में ही 'सविनय अवज्ञा' और 'सत्याग्रह' के बीज-बिंदु निहित हैं। चंपारण के नील आंदोलन के गर्भ से गांधीजी ने 'सत्याग्रह' तथा 'सविनय अवज्ञा' जैसे अस्त्रों का आविष्कार किया, जिसकी अगली परिणति आगे चलकर 'असहयोग आंदोलन के रूप में हुई। समग्र देश को गांधीजी द्वारा चंपारण की भट्ठी में तपाकर ईजाद किए गए अस्त्रों—'सत्याग्रह' और 'सविनय अवज्ञा' पर अटूट भरोसा कायम हो गया तथा लोगों ने इन दो अहिंसक हथियारों की मारक क्षमता को पहचाना। समग्र देश में अहिंसक तरीके से इन्हीं दोनों अस्त्रों के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई लड़ी गई और अंग्रेजों के बरखिलाफ इन्हें भरपूर इस्तेमाल किया गया। अंतत: देश को आजादी मिली।

यह 'सविनय अवज्ञा' इसलिए की गई कि रैयतों की दुस्थिति की जाँच का 'सत्याग्रह' चलता रहे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गांधीजी ने अपनी अहिंसा की नीति के दोनों राजनीतिक अस्त्रों 'सत्याग्रह' तथा 'सविनय अवज्ञा' का भारत में प्रथम प्रयोग चंपारण में ही किया। इस प्रकार गांधीजी ने आनेवाले वर्षों में कांग्रेस को राजनीतिक स्वतंत्रता के ध्येय तक ही सीमित नहीं रहने देकर चंपारण की ग्रामीण दुर्दशा से प्रेरित होकर 'ग्राम स्वराज' तथा 'आर्थिक राष्ट्रवाद' की चिंतनधारा का भी विकास किया।

इस महान् और अहिंसक आंदोलन के वृत्त से ही गांधीजी ने 'शिक्षा' और 'स्वच्छता' का भी व्यापक संदेश दिया। इस आंदोलन की अपरिमित सफलता ने देशवासियों में गांधीजी के सुयोग्य नेतृत्व के प्रति अपार आस्था का ज्वार पैदा किया। देशवासी आश्वस्त हो गए कि उन्हें उनका उद्धारक मिल गया है। आगे के दिनों में चंपारण के नील आंदोलन से प्रेरित होकर अनेक राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ, जिनमें 'खेड़ा आंदोलन', 'सविनय अवज्ञा आंदोलन', 'नमक आंदोलन' और 'भारत छोड़ो' जैसे आंदोलनों का आजादी की लड़ाई में अविस्मरणीय योगदान रहा। 'चंपारण सत्याग्रह' के बाद ही विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने गांधीजी को 'महात्मा' कहकर संबोधित किया। 'चंपारण सत्याग्रह' के महान् यज्ञ में गांधीजी के साथ बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, शंभूशरण तथा अनुग्रह नारायण सिंह आदि के महती सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता।

गांधीजी ने शोषणकारी 'तीनकठिया प्रणाली' की समाप्ति के पश्चात् चंपारण में सामाजिक क्रांति का सूत्रपात करते हुए चंपारणवासियों को 'शिक्षा' और 'स्वास्थ्य' का पाठ पढ़ाया। ८ नवंबर, १९१७ को गांधीजी पुन: चंपारण लौटे। इस बार उनके साथ सुसंस्कृत पुरुषों और महिलाओं की एक छोटी सी टोली भी आई थी, जिनमें नारायण तम्माजी करघरे, डॉ. हरिकृष्ण देव, अवंतिका बाई, सदाशिव लक्ष्मण सोमन, बालकृष्ण योगेश्वर पुरोहित, नरहरि द्वारिका दास पारिख और महादेव हरिभाई देसाई आदि के नाम प्रमुख हैं। इन लोगों ने चंपारण के गाँव में स्वच्छता और स्वास्थ्य संबंधी अभियान चलाकर लोगों को चिकित्सकीय सुविधाएँ भी प्रदान कीं। अवंतिका बाई ने ग्रामीण महिलाओं को रजोधर्म के दिनों में स्वच्छता बरतने एवं सुरक्षित प्रसव कराने की सीख दी। कुओं और

जलस्रोतों की सफाई की गई। साक्षरता और स्वावलंबन का पाठ पढ़ाया। आश्रम में रामायण-पाठ और प्रार्थना सभा के बहाने महिलाओं को पर्दा-प्रथा से बाहर निकालने की पहल की। इस रचनात्मक आंदोलन में गांधीजी की धर्मपत्नी कस्तूरबा की भी सराहनीय भूमिका रही।

चंपारण में ज्ञान की ज्योति जलाने के उद्देश्य से गांधीजी ने बड़हरवा-लखनसेन से लेकर वृंदावन तक ३५ बुनियादी विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में कौशल विकास के साथ ही चरखा चलाने का भी प्रशिक्षण प्रदान किया गया। विद्यालयों की स्थापना के लिए चंपारण के भू-स्वामियों ने स्वेच्छा से अपनी जमीन दान में दी।

कहना न होगा कि 'चंपारण सत्याग्रह' अपने गुण-धर्म में महज एक राजनीतिक आंदोलन ही नहीं, एक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक आंदोलन की रचनात्मकता की मिसाल बनकर उभरा। 'शिक्षाग्रह' और 'स्वच्छाग्रह' जैसे आंदोलन 'चंपारण सत्याग्रह' की क्रोड से ही निकलकर बाहर आए। इस संदर्भ में आचार्य कृपलानी लिखते हैं—''यह आंदोलन शुद्ध रूप से आर्थिक था, लेकिन गांधीजी ने कभी भी अर्थकारण को राजनीतिक व सामाजिक सुधार से अलग नहीं किया। चंपारण और सामान्यतः बिहारी जनता के आत्मसम्मान की उपलब्धि राजनीतिक मूल्यों से महान् थी।'' स्वतंत्रता आंदोलन का यह अहिंसात्मक शुभारंभ था। सा अ

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
एम.एस. कॉलेज, मोतिहारी
पूर्वी चंपारण (बिहार)

महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति

• काका साहेब कालेलकर

मैं शांति निकेतन में अवैतनिक अध्यापक बन गया था। वहाँ मैंने देखा कि दीनबंधु एंड्रूज की सिफारिश से गांधीजी के दक्षिण अफ्रीकावाली पिनिक्स सेटलमेंट के कई साथी शांति निकेतन में मेहमान के तौर पर रह रहे हैं। मैंने कर्मवीर गांधीजी के बारे में काफी पढ़ा-लिखा था। उनकी देशभक्ति के प्रति मेरे मन में काफी आदर था। मेरे क्रांतिकारी समय के साथी दक्षिण अफ्रीका जाकर गांधीजी के साथ रह आए थे। उनसे और रंगूनवाले बैरिस्टर जौहरी, डॉ. प्राणजीवन दास मेहता से भी गांधीजी के बारे में सुना था। गांधीजी के साथियों के साथ शांति निकेतन में चार-छह महीने रहने का मौका मिला। यह तो विशेष लाभ हुआ। आखिरकार स्वयं गांधीजी सन् १९१५ में दो बार शांति निकेतन में आए थे। उनके साथियों ने ही मेरे साथ गांधीजी का परिचय कराया था। मैंने उनसे अपनी भूमिका की चर्चा की और अपने राजनीतिक व आध्यात्मिक आदर्शों के अंदर जो विसंगति थी, उसका भी जिक्र किया। गांधीजी ने कहा, ''मैं आश्रम कायम करने के लिए भारत लौटा हूँ। अपना एक आश्रम खोलना चाहता हूँ। उसमें तुम आ सकते हो।'' मैंने कहा, ''क्रांतिकारी की हैसियत से अंग्रेजों को धोखा दे सकता हूँ। आप तो मेरे देश के नेता हैं। आपको मेरी भूमिका स्पष्ट करनी ही चाहिए। आध्यात्मिक दृष्टि से और मोक्ष की दृष्टि से अहिंसा के रास्ते बहुत हुआ तो दक्षिण अफ्रीका में आप भारतीयों के सिर पर लादा हुआ तीन पौंड का कर हटा सकेंगे। लेकिन जिसे अंग्रेज लोग ब्रिटेन के ताज का कोहिनूर हीरा समझते हैं, उस भारत के राज्य से अंग्रेजों को अहिंसा के बल हटाना मैं तो नामुमकिन मानता हूँ। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिंसा करके दस बार नरक जाने को तैयार हूँ। संतों की अहिंसा का मुझे आदर है; किंतु स्वराज्य का आग्रह उससे भी अधिक है। ऐसे को आप अपने आश्रम में लेंगे?''

गांधीजी का जवाब था तो सादा, लेकिन सुनकर मैं चकित हो गया। उन्होंने कहा, ''दुनिया का बहुमत तुम्हारे ही सिद्धांत का है। मैं लघुमत में हूँ। अहिंसा का सामर्थ्य सिद्ध करने का भार मेरे सिर पर है। तुम्हारे जैसे को आश्रम में मैं न लूँ तो मुझे लोग कहाँ से मिलेंगे? आश्रम में आओ, रहो, मेरी कार्य-पद्धति देखो। मेरी बात जँच गई, विश्वास बैठ गया तो रहो। विश्वास न हुआ तो उड़कर चले जा सकते हो। मैं तुम्हारे पंख काटने वाला नहीं हूँ।''

गांधीजी चले गए। उनके आश्रमवासी भी चले गए। तब मैं गुरुदेव के पास गया। मैंने कहा, ''आपके शांति निकेतन में मैं चार-छह महीने रहने को आया था। आपने मुझे थोड़े ही दिन पहले शांति निकेतन में काम करने के लिए रहने का आमंत्रण दिया। मैंने एक तरह से आपके आमंत्रण को स्वीकार भी किया। मेरी कठिनाई दूर करने के लिए आपने मुझे कहा कि शांति निकेतन में न रहना हो तो विधुशेखर शास्त्री की मदद से मैं 'विश्व भारती' खोलने वाला हूँ, उसमें दाखिल हो सकते हो। मैंने आपको अपना हृदय अर्पित किया है। आपका तत्त्वज्ञान और आपका साहित्य पढ़कर मैं प्रभावित हुआ हूँ। आपके वायुमंडल में रहकर सेवा करने का मौका मिले, यह मैं एक असाधारण गौरव समझता हूँ। लेकिन इन दिनों गांधीजी से मेरी जो बातचीत हुई है उससे मुझे लग रहा है—मुझे माफ कीजिए, दिल की बात खोलकर कहे बिना चारा नहीं—जिस स्वराज्य-प्राप्ति के लिए मैं तड़प रहा हूँ अथवा यों कहूँ कि जिस स्वराज्य के लिए मैं जी रहा हूँ, वह गांधीजी के प्रयत्न से जल्दी नजदीक आएगा। मैं आशा करता हूँ कि अगर उनके पास मैं गया तो आपके आशीर्वाद मुझे मिलेंगे।''

शायद गांधीजी ने मेरे बारे में गुरुदेव से कुछ बातचीत की होगी। गुरुदेव के आशीर्वाद मैं प्राप्त कर सका। सा अ

(श्री शंकरदयाल सिंह की पुस्तक 'महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति' से साभार)



गांधीजी और हिंदी

● उमेश चतुर्वेदी

हिंदी को लेकर महात्मा गांधी की सोच क्या थी, इसे समझने के लिए एक ही उदाहरण काफी है। १५ अगस्त, १९४७ को जब भारत आजाद हुआ, तब उनसे ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, यानी बी.बी.सी. के एक पत्रकार ने उनसे आजाद भारत के लिए संदेश और प्रतिक्रिया की माँग की थी। उसके जवाब में गांधीजी ने जो कहा था, वह न सिर्फ स्वतंत्र भारत की भाषा नीति को लेकर उनके मन में चल रहे विचार को जाहिर करता है, बल्कि वह हिंदी के प्रति उनके भाव को भी स्पष्ट करता है। गांधी ने उस पत्रकार से कहा था, ''पूरी दुनिया से कह दो, गांधी अंग्रेजी भूल गया।'' गांधी एक तरह से भाषा को लेकर आजाद भारत की भावी नीति को ही जाहिर नहीं कर रहे थे, बल्कि उन्होंने इस एक घटना के जरिए दुनिया और देश को संदेश दे दिया था कि भारत न सिर्फ अपनी शासन व्यवस्था अपनी पारंपरिक व्यवस्था से चलाएगा, बल्कि भाषा को लेकर उस पश्चिमी दुनिया के नक्शेकदम पर नहीं चलेगा, जिन्होंने दुनिया के बड़े हिस्से पर अपना औपनिवेशिक साम्राज्य कायम कर रखा था और उसके जरिए पूरी दुनिया पर उनकी भाषा, उनके संचार-तंत्र और इस बहाने उनकी संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा था।

भारत को आजादी बेशक १५ अगस्त, १९४७ को मिली, लेकिन गांधीजी ने भावी आजाद भारत की व्यवस्था कैसी होगी, वह किन नीतियों पर चलेगा, इस पर अपने विचार आजादी की स्वर्णिम वेला आने से करीब ३८ साल पहले ही दर्ज कर लिया था। लंदन से दक्षिण अफ्रीका के केपटाउन की २१ दिनों की जहाज यात्रा में गांधीजी करीब तीस हजार शब्दों की जो पुस्तिका 'हिंद स्वराज' लिखी, उसमें उन्होंने भावी भारत की भाषा पर सीधे तौर विचार तो नहीं किया है, लेकिन राष्ट्र की भावी शिक्षा व्यवस्था को लेकर इस पुस्तिका में चर्चा करते हुए इसके १८वें अध्याय में गांधीजी स्पष्ट कहते हैं, ''करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना, उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच में गुलामी की बुनियाद थी।''यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी गुलामी की भाषा में करते हैं।'' गांधीजी का अंग्रेजी से विरोध नहीं था, लेकिन वे अंग्रेजी को अपनी गुलामी ही नहीं, भारतीयों के प्रति भारतीयों के खराब व्यवहार



विगत २५ वर्षों से सक्रिय पत्रकारिता में। टाइम्स ऑफ इंडिया समूह की साप्ताहिक पत्रिका 'दिनमान' का मोनोग्राफ लिखा। 'बाजारवाद के दौर में पत्रकारिता' पुस्तक प्रकाशित। माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और भारतीय जनसंचार संस्थान में विजिटिंग फैकल्टी पत्रकारिता पढ़ाते हैं।

को भी जिम्मेदार मानते थे। तभी वे हिंद स्वराज के इसी अध्याय में वे कहते हैं, ''अंग्रेजी शिक्षा को लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दंभ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों ने प्रजा (आम लोगों) को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ उठा नहीं रखा है।''

ध्यान देना चाहिए कि जिस समय गांधीजी ने ये बातें अपनी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव को लेकर सोची थीं, उस समय तक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी प्रत्यक्ष तौर पर सीधी कोई भूमिका भी नहीं थी। लेकिन वे मान रहे थे कि गुलामी की भाषा ने हमारे ही लोगों को अपने ही लोगों को गुलाम बनाने में बड़ी भूमिका निभाई है। दुनिया भर के संस्कृतिकर्मी और भाषा वैज्ञानिक मानते हैं कि भाषा अपने साथ अपनी संस्कृति को लेकर भी समाहित करती चलती है और प्रकारांतर वह अपनी संस्कृति और उसके बहाने उसके गुण-दोष को भी खुद का व्यवहार करनेवाले लोगों पर चाहे-अनचाहे ढंग से आरोपित करती चलती है।

गांधीजी 'हिंद स्वराज' में साफ तौर पर कहते हैं कि गुलामी की भाषा गुलामी और अत्याचार की संस्कृति को बढ़ावा देती है। हिंद स्वराज लिखते वक्त कहीं इस बात का प्रमाण नहीं मिलता कि अंग्रेजी के बरक्स वे हिंदी को स्थापित करना चाहते थे। अलबत्ता उनके मन में अंग्रेजी के विकल्प के तौर पर भारतीय भाषाओं का गौरवबोध वापस लौटाने को लेकर स्पष्ट सोच जरूर थी। भारतीय भाषाओं को स्थापित करने और अंग्रेजी के विरोध में वे जो उदाहरण देते हैं, वह अंग्रेजों की ही धरती का है। हिंद स्वराज के इसी अध्याय में गांधीजी लिखते हैं—

''वेल्श (ब्रिटेन का एक प्रांत) के बच्चे वेल्श की भाषा में ही बोलें, ऐसी कोशिश वहाँ चल रही है। इसमें इंगलैंड के खजाँची लॉयड जॉर्ज बड़ा हिस्सा लेते हैं। और हमारी दशा कैसी है ?...हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रगट करने का जरिया है अंग्रेजी, हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेजी में ही चलता है। अगर ऐसा लंबे समय तक चला, तो मेरा मानना है कि आनेवाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप हमारी आत्मा को लगेगा।'' यह दुर्भाग्य ही है कि ११० साल बीतने के बाद भी गांधीजी के भाषा संबंधी इस विचार को आजाद भारत ने पूरी तरह आत्मसात् नहीं कर पाया। आज कांग्रेस ही क्यों कहें, हर राजनीतिक दल का प्रमुख और नीतिगत काम अंग्रेजी में ही होता है। जाहिर है कि इसका असर भारत की शासन-व्यवस्था पर भी पड़ा।

आज भाषा संस्कृति उत्थान न्यास और अधिवक्ता परिषद् संयुक्त रूप से न्यायपालिका की भाषा अंग्रेजी की बजाय भारतीय भाषाओं को बनाने का अभियान चला रहे हैं। लेकिन गांधीजी को न्याय की भाषा अंग्रेजी होना ११० साल पहले ही कचोट रही थी। यहाँ यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि तब गांधीजी बैरिस्टर थे और इसी बैरिस्टरी से उन्हें तब भी अच्छी-खासी कमाई हो रही थी। लेकिन हिंद स्वराज के 'शिक्षा' नामक अध्याय में गांधी न्याय की देवी की भाषा अंग्रेजी के होने की कचोट को इस तरह व्यक्त करते हैं, ''यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे न्याय पाना हो, तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना चाहिए। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता।...यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है ?'' गांधीजी यहीं नहीं रुकते, वे कहते हैं, ''हिंदुस्तान को गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी बोलनेवाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।''



दक्षिण अफ्रीका में रहते और रंगभेद के खिलाफ अभियान चलाते-चलाते गांधीजी अंग्रेजी के दुष्प्रभाव के साथ ही स्वभाषा के जरिए हासिल सांस्कृतिक गौरव और स्वाभिमान को समझ चुके थे। लेकिन भारत के लिए हिंदी को लेकर स्पष्ट सोच उनकी तब बनी, जब १९१५ में स्वदेश वापसी के बाद उन्होंने अपने गुरु गोपालकृष्ण गोखले की सलाह पर पूरे साल देशव्यापी रेलयात्रा की। तब उन्हें अहसास हो गया कि हिंदी ही एक मात्र ऐसी भाषा है, जो पूरे देश को ना सिर्फ एक सूत्र में पिरोने की ताकत रखती है, बल्कि वह भारतीय भाषाओं के बीच संवाद का माध्यम भी बन सकती है। हिंदी की ताकत को उन्होंने चंपारण आंदोलन के दौरान नजदीक से देखा और समझा। हिंदी के ही जरिए उन्होंने चंपारण आंदोलन को ना सिर्फ देश का प्रमुख किसान आंदोलन बना दिया, बल्कि अंग्रेज सरकार के खिलाफ लोगों को जागरूक और संगठित करने में बड़ी भूमिका निभाई।

हिंदी को भावी भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का विचार गांधीजी को इन्हीं दिनों आया। हालाँकि हिंदी को भावी भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का सुझाव १८७५ में ब्राह्म समाज के प्रमुख स्तंभ केशवचंद्र सेन दे चुके थे। इसके बाद १९०५ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यक्रम को मुख्य अतिथि के रूप में संबोधित करते हुए लोकमान्य तिलक ने भी हिंदी को ही देश की एकता के लिए जरूरी बताया था। लेकिन राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी को सुचिंतित तौर पर स्थापित करने का विचार गांधीजी ने पहली १९१८ में इंदौर में दिया था। इंदौर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए २९ मार्च, १९१८ को गांधीजी ने अपने संबोधन में कहा था, ''जैसे अंग्रेज मादरी जबान यानी अंग्रेजी में ही बोलते हैं और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।''

हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन को अध्यक्ष पद से संबोधित करते हुए गांधीजी ने आगे जो कहा, उसने वहाँ उपस्थित लोगों को तो मोह ही लिया, स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को अपने आंदोलन में हिंदी को बनाने और स्थापित करने को लेकर प्राणपण से जुटने के संदेश भी दिया। गांधीजी ने कहा था, ''हिंदी वह भाषा है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी संस्कृतमयी नहीं है, न ही वह एकदम फारसी अल्फाज से लदी हुई है।'' गांधीजी के उद्बोधन के आखिरी शब्दों ने जैसे जादू-सा असर किया। उन्होंने कहा था, ''मेरा नम्र, लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी को राष्ट्रीय दर्जा और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।''

हालाँकि हिंदी को लेकर गांधीजी को आशंका थी कि उन प्रांतों से विरोध उठ सकता है, जहाँ वह कम व्यवहृत होती है। शायद इसी वजह से गांधीजी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन स्थल से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी के पाँच दूतों को दक्षिण भारत भेजा। उसी में से एक उनके सबसे छोटे बेटे देवदास गांधी भी थे।

हिंदी के दक्षिण भारत में प्रचार-प्रसार के लिए गांधीजी ने इसके साथ ही यज्ञ की शुरुआत की। उन प्रयासों की जानकारी प्राप्त करने से पहले जानते हैं कि गांधीजी राष्ट्रभाषा को लेकर क्या सोच थी और क्यों वे हिंदी को उसकी जगह पर स्थापित करना चाहते थे। 'यंग इंडिया' के २० अक्तूबर, १९२० के अंक में गांधीजी ने 'हिंदी-भारत की राष्ट्रभाषा' शीर्षक एक लेख लिखा था। इस लेख में किसी भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान हासिल करने के लिए पाँच सूत्री मापदंड का उल्लेख करते हैं। वे लिखते हैं—''हमारे शिक्षित वर्गों की हालत देखकर यह खयाल होता है कि अगर हम अंग्रेजी का इस्तेमाल बंद कर दें तो हमारे सब कामकाज

ठप हो जाएँगे। परंतु गहरे विचार से सिद्ध हो जाएगा कि अंग्रेजी भारत की राष्ट्रभाषा न कभी हो सकती है और न होनी चाहिए। राष्ट्रभाषा की कसौटी क्या है?''

गांधीजी के अनुसार राष्ट्रभाषा की कसौटी इन पाँच बिंदुओं पर कसी जानी चाहिए। उनके अनुसार ये मानदंड हैं—

१. सरकारी कर्मचारियों के लिए वह सीखने में आसान होनी चाहिए।

२. उस भाषा में भारत का आपसी धार्मिक, व्यापारिक और राजनीतिक कामकाज देशभर में संभव होना चाहिए।

३. वह भारत के अधिकांश निवासियों की बोली होनी चाहिए।

४. सारे देश के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए।

५. इस प्रश्न का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी परिस्थितियों पर जोर नहीं देना चाहिए।

गांधी अपने इसी लेख में कहते हैं कि अंग्रेजी चूँकि इन शर्तों में से एक भी शर्त पूरा नहीं करती। गांधीजी के सम्मुख शासन में अंग्रेजी बढ़ती व्यावहारिकता का प्रश्न भी उठा था। लेकिन गांधीजी अपने इस लेख में तत्कालीन बौद्धिकों और अंग्रेजी समर्थकों के इस तर्क को खारिज करते हैं कि व्यवहार के कारण से अंग्रेजी सरकारी कर्मचारियों के लिए आसान भाषा है। अपने लेख में गांधीजी लिखते हैं—''अधिक विचार करने पर हमें मालूम हो जाना चाहिए कि आज भी सरकारी कर्मचारियों के लिए वह (अंग्रेजी) कोई आसान भाषा नहीं है।...इसे सभी स्वीकार करेंगे कि उनके लिए (भारतीय कर्मचारियों के लिए) किसी भी देशी भाषा की अपेक्षा अंग्रेजी सीखना ज्यादा मुश्किल है। दूसरी शर्त जाँच करने पर हमें पता चलता है कि जब तक आम जनता अंग्रेजी नहीं बोल सकती, तब तक उस भाषा के द्वारा धार्मिक कामकाज होना असंभव है। और जनसाधारण में उस हद तक अंग्रेजी फैलना भी नामुमकिन है।''

गांधीजी के मुताबिक राष्ट्रभाषा के लिए अंग्रेजी तीसरी और चौथी शर्त भी पूरी नहीं कर सकती। क्योंकि भारत में उसे अधिकांश लोग बोल नहीं सकते और सारे भारत के लिए सीखने में वह कोई आसान भाषा नहीं है।

राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी को सीखने की गांधीजी की अपील का उन दिनों कम-से-कम दो प्रांतों बंगाल और मद्रास में कम असर हुआ था। गांधीजी ने इस पर भी विचार किया। 'यंग इंडिया' के २ फरवरी, १९२१ के अंक में गांधीजी ने लिखा—''बंगाल और मद्रास ही दो ऐसे प्रांत हैं, जो हिंदुस्तानी न जानने के कारण शेष भारत से कटे हुए हैं। बंगाल इसलिए कि वह भारत की और कोई भाषा सीखने के खिलाफ है और मद्रास इसलिए कि द्राविड़ियों को हिंदुस्तानी सीखने में कठिनाई होती है।'' गांधीजी दोनों प्रांतों के लोगों से हिंदी सीखने की अपील करते हुए इसी लेख में आगे लिखते हैं—''औसत बंगाली तीन घंटे रोज दे सचमुच दो महीने में हिंदुस्तानी सीख सकता है और द्राविड़ी उसी हिसाब से छह महीने में। उतने ही समय में कोई बंगाली या द्राविड़ी यही परिणाम अंग्रेजी के विषय में प्राप्त करने की आशा नहीं रख सकता।''

इस लेख में भी गांधीजी अंग्रेजी और हिंदी के ज्ञान की तुलना करते हुए एक तरह से भारतीयता के लक्षण भी बताते हैं। गांधीजी कहते हैं, ''अंग्रेजी ज्ञान से थोड़े से अंग्रेजी जानने वाले भारतीयों के साथ संपर्क हो सकता है, जबकि हिंदुस्तानी का ज्ञान होने से हम अपने देश के अधिक-से-अधिक लोगों के साथ संपर्क रख सकते हैं।'' वैश्विक गाँव होती दुनिया के दौर में भी गांधीजी की यह सलाह प्रासंगिक है। लेकिन दुर्भाग्य से अब तक हमने उनकी सलाह को पूरी शिद्दत से स्वीकार नहीं किया है।

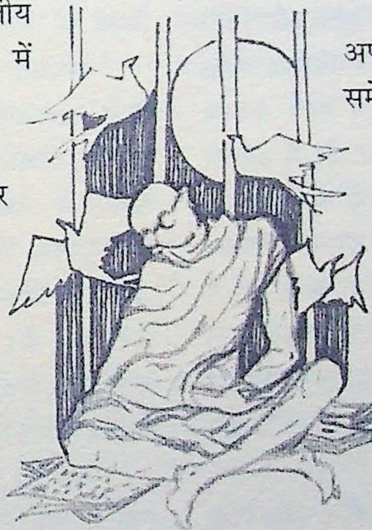
गांधीजी इसी लेख में लोगों से हिंदुस्तानी, यानी हिंदी सीखने की अपील करते हुए कहते हैं, ''क्षणभर के लिए भी यह न सोचिए कि आप अंग्रेजी को आम लोगों के व्यवहार का सामान्य माध्यम बना सकते हैं। २२ करोड़ (उन दिनों की जनसंख्या) भारतीय हिंदुस्तानी भाषा जानते हैं और उन्हें कोई और भाषा नहीं आती। अगर आप उनके दिलों में प्रवेश करना चाहते हों तो इसके लिए हिंदुस्तानी ही एक भाषा है।''

यहाँ स्पष्ट कर देना चाहिए कि गांधीजी हिंदी के लिए हिंदुस्तानी शब्द का इस्तेमाल बार-बार क्यों करते थे। दरअसल उन दिनों सांप्रदायिक विचारों का प्रसार होने लगा था। माना जाने लगा था कि हिंदी जहाँ हिंदुओं की भाषा है, वहीं उर्दू मुसलमानों की भाषा है। इसे लेकर समाज में विभाजनकारी तत्त्व सक्रिय हो चुके थे। इस विचार को खासतौर पर वे लोग बढ़ावा दे रहे थे, जो हिंदू और मुसलमान को दो कौम ही नहीं दो मुल्क भी मानने लगे थे। गांधीजी ने 'हिंदी-भारत की राष्ट्रभाषा' शीर्षक लेख में इस विवाद पर पटाक्षेप करने की कोशिश भी की थी। गांधीजी को संभवत: अंदेशा था कि अगर हिंदी और उर्दू के नाम पर भाषा के जरिए दोनों कौमों का बँटवारा हुआ तो वह बँटवारा गहरा होगा। उन्होंने अपने लेख में लिखा—''मैं उस भाषा को हिंदी कहता हूँ, जिस उत्तर भारत के हिंदू और मुसलमान बोल सकते हैं और जो देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती है।...दलील यह दी जाती है कि हिंदी और उर्दू दो भिन्न भाषाएँ हैं। यह वाजिब दलील नहीं है। बारत को उत्तरी भागों में हिंदू और मुसलमान एक ही जबान बोलते हैं। भेद पढ़े-लिखे वर्गों ने पैदा किया है। विद्वान् हिंदुओं ने हिंदी को संस्कृतमय बना दिया है। इसलिए मुसलमान उसे समझ नहीं पाते। लखनऊ के मुसलमानों ने अपनी भाषा को फारसीमय करके हिंदुओं की समझ में आने लायक नहीं रखा है।'' गांधीजी इस परिपाटी का विरोध करते हुए आगे लिखते हैं—''मैं उत्तर में रहा हूँ। मैं हिंदुओं और मुसलमानों आजादी के साथ मिला हूँ और मेरा हिंदी का ज्ञान तो बहुत थोड़ा है। लेकिन उनके साथ व्यवहार करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई।''

ऐसा नहीं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की महात्मा गांधी की मंशा का विरोध नहीं हुआ। अपने प्रसिद्ध निबंध 'गांधीजी की देन' में प्रसिद्ध स्वतंत्रता-सेनानी और देश के पहले राष्ट्रपति डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद लिखते हैं। ''मुझे याद है कि १९२१ में असहयोग आंदोलन के संबंध में गांधी जब उड़ीसा रहे थे तो किसी ने पूछा था कि आप अंग्रेजी शिक्षा का तो विरोध करते हैं, किंतु आप भी तो अंग्रेजी पढ़कर इतने

बड़े आदमी बने हैं। तब महात्मा गांधी ने उत्तर दिया था कि महाराज, मैं कोई विशेष पढ़ा-लिखा हुआ, बड़ा आदमी नहीं हूँ। अत: अपने बारे में तो कुछ कह नहीं सकता।'' राजेंद्र प्रसाद के लेख के मुताबिक गांधीजी ने मातृभाषा की शिक्षा के लिए जो उदाहरण चुना वह जबरदस्त था। गांधीजी ने उस व्यक्ति से कहा, ''इसमें कोई शक नहीं कि तिलकजी यदि आंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा न पाकर मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाए होते तो कौन कह सकता है कि वह जितने बड़े हुए हैं, उससे भी बढ़कर नहीं होते? वह गीता के भाष्यकार यों ही हुए तो मातृभाषा द्वारा शिक्षा पाने पर न जाने और कितने बड़े विद्वान् होते है।'' राजेंद्र प्रसादजी के लेख के मुताबिक गांधीजी ने उस व्यक्ति के सामने शंकराचार्य और तुलसी दास का उदाहरण रखते हुए पूछा था कि उन्होंने कौन सी अंग्रेजी शिक्षा हासिल की थी।

गांधीजी की कार्यशैली अपने विरोधियों को निबटाने की बजाय उनके सम्मुख बड़ी लकीर खींचकर उन्हें अपने खेमे में लाने की रही है। उन्हें पता था कि अंग्रेजी राज्य के चलते भारतीय संस्कृति और भाषाओं का प्रशासन और नीति-निर्माण में जो वर्चस्व बढ़ा है, उसका विरोध हिंदीभाषी क्षेत्र की बजाय उन क्षेत्रों से ज्यादा होगा, जो या तो निजी वजहों या अपने श्रेष्ठता बोध से हिंदी सीखने में खुद कमजोर पाते हैं। इसीलिए उन्होंने दक्षिण भारतीय हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की, ताकि दक्षिण के लोगों को हिंदी ना सिर्फ सिखाई जा सके, बल्कि उन्हें हिंदी के प्रति प्रेरित किया जा सके। यह कुछ ही दिनों में देखने को मिला, जब १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के तहत १९३७ में राज्यों में चुनाव हुए और आठ विषयों पर शासन करने का अधिकार इन चुनी हुई सरकारों को दिया गया। तब मद्रास प्रांत के प्रीमियर (तब मुख्यमंत्री को प्रीमियर ही कहा जाता था) चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने हिम्मत दिखाई और हिंदी को राजभाषा के तौर पर स्थापित किया। लेकिन हैरत की बात रही कि बंगाल में हिंदी की सहज स्वीकार्यता नहीं बन पाई। बंगाल के प्रीमियर बिधानचंद्र राय ने हिंदी को लागू करने से इनकार कर दिया था। मद्रास प्रांत से विरोध की आवाज विपक्ष से उठी। वहाँ सी. राजगोपालाचारी के आदेश का विरोध डोरई मुरुगन ने किया था। इसी विरोध की नींव पर २५ जनवरी, १९६५ को तमिलनाडु में हिंदी के उग्र विरोध के रूप में दिखा। कहा जा सकता है कि गांधीजी की कोशिशों को इस राज्य के नेताओं ने पलीता लगा दिया।



तमिलनाडु में जब हिंदी का उग्र विरोध शुरू हुआ, तब गांधीजी को गुजरे सत्रह साल से ज्यादा हो चुके थे। लेकिन उन्हें इसका आभास था। गांधीजी ने राजभाषा के लिए स्वयं जो पाँच सूत्री कसौटी तय की थी, उस निकष पर कसने के बाद ही उन्होंने हिंदी को भावी राजभाषा के लिए स्वीकार किया था। इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए कि भावी भारत के लिए हिंदी को स्वीकार्य बनाने की कोशिशों के साथ ही उसकी तत्कालीन ताकत के चलते उसे स्वतंत्रता आंदोलन का हथियार भी बनाया। प्रेमचंद समेत उस दौर में सक्रिय रचनाकारों की रचनाओं में राष्ट्रीयता के जो सुर सुनाई देते हैं, उनका एक कारण हिंदी का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य भी है। बेशक इसकी शुरुआत भारतेंदु कालीन लेखकों ने कर दी थी, लेकिन गांधी के प्रभाववाले दौर में इसका विस्तार ज्यादा दिखता है। प्रेमचंद जहाँ ठेठ भारतीय समाज से पात्र और घटनाएँ उठाते हैं, वहीं जयशंकर प्रसाद सांस्कृतिक भारत के महान् चरित्रों के जरिए भारतीय राष्ट्रीयता और उसकी महानता का गुणगान करते हैं। गांधी का असर पत्रकारिता पर भी दिखता है। उनके प्रभाव मर्यादा, माधुरी, जागरण, हंस आदि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में भारतीय समाज का जो लोकवृत्त रचा गया, जो सामाजिक मूल्य गढ़े गए, सबकी प्रेरणा गांधी का समाज-दर्शन है। जिसका एक हथियार हिंदी भी है। इस हथियार के दम पर हिंदी की सामाजिक और सांस्कृतिक मोर्चे पर अपनी धाक जमाती चलती है।

गांधीजी 'यंग इंडिया' के लेखों में हिंदी सीखने की अपील करते रहे। उनकी ही प्रेरणा से तत्कालीन मद्रास प्रांत समेत दक्षिण के सभी राज्यों में हिंदी को सहज और सुगम बनाने के लिए १६ जून, १९१८ को दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की गई। गांधीजी इस कार्य को कितना महान् समझते थे कि इसके काम के लिए अपने बेटे देवदास गांधी और सत्यदेव परिव्राजक को मद्रास भेजा। इसकी आर्थिक जिम्मेदारी सेठ जमनालाल बजाज ने सँभाली। उनकी ही प्रेरणा पर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' के लिए डेढ़ महीने तक बजाज के साथ धन जुटाने के लिए तमिलनाडु के गाँव-गाँव घूमते रहे। गांधी की प्रेरणा से स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने जमनालाल बजाज के आग्रह पर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का निदेशक का दायित्व सँभालने के लिए मना लिया। हिंदी सेवी गोवर्धन लाल पुरोहित अपने आलेख 'राजाजी की हिंदी सेवा' में लिखते हैं—''निदेशक बनने के बाद वह (राजाजी) १९२८ लेकर १९४६ तक इस सभा (दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा) के निधि पालक रहे। इस तरह बीस वर्षों तक हिंदी प्रचार सभा को राजाजी का पितृवत् स्नेह मिलता रहा। राजाजी की क्षत्रछाया में सभा एक संपन्न, सुस्थिर तथा यशस्वी संस्था बन गई और दक्षिण भारत की सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का केंद्र बनी और मूर्तिमान राष्ट्रीयता का पर्याय बन गई।''

गांधीजी की प्रेरणा और राजगोपालाचारी की मेहनत का ही परिणाम था कि राजगोपालाचारी के निदेशक का दायित्व सँभालने के बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने 'अंग्रेजी-हिंदी शिक्षक' का प्रकाशन हुआ। उसके पहले संस्करण की प्रस्तावना में राजाजी ने लिखा है—''हिंदी को (हमें) केंद्रीय सरकार एवं परिषद की और प्रांतीय सरकारों के बीच आपसी कामकाज की भाषा मानना है। यदि दक्षिण भारत के भारतीय

क्रियात्मक रूप से पूरे भारत देश के साथ एक सूत्र में बँधकर रहना चाहते हैं और अखिल भारतीय मामलों और तत्संबंधी निर्णयों के प्रभाव से दूर नहीं रहना चाहते तो उन्हें हिंदी पढ़ना जरूरी है।''

हिंदी के लिए गांधीजी रखी नींव पर बाद में केरल में १९३४ में 'केरल हिंदी प्रचार सभा', आंध्र प्रदेश में १९३५ में 'हिंदी प्रचार सभा', हैदराबाद और कर्नाटक में १९३९ में कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति और १९४३ में 'मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्' की स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने हिंदी को सुगम बनाने और प्रचारित करने के लिए अपने-अपने ही प्रभाववाले इलाके में बहुत मेहनत की, जिनसे करोड़ों लोगों ने हिंदी सीखी, हिंदी की परीक्षाएँ पास की और हिंदी बोलने-लिखने में सक्षम हुए। गांधीजी द्वारा पोषित हिंदी का बिरवा ही था कि संविधानसभा में जब राजभाषा का प्रश्न उठा तो रामास्वामी अयंगार से लेकर हिंदी भाषी प्रदेशों तक के नेताओं ने हिंदी को ही यह दर्जा दिए जाने पर अपनी राय रखी। यहाँ यह याद दिलाना जरूरी है कि जब संविधान सभा में राष्ट्रभाषा और राजभाषा के सवाल पर विचार हुआ और हिंदी को इस योग्य पाया गया, तब उस बहस में गांधीजी के लिखे कुछ लेखों को भी उद्धृत किया गया था, जिनमें से एक लेख २३ मार्च, १९४७ के अंक 'हरिजन' के अंक में प्रकाशित हुआ था। उस दौर में अंग्रेजी समर्थकों की तरफ से एक माँग यह उठ रही थी कि हिंदी को देवनागरी की बजाय रोमन लिपि स्वीकार कर लेना चाहिए। इसका प्रतिकार करते हुए अपने लेख में गांधीजी रोमन लिपि का हिंदी के संबंध में विचार करते हुए लिखते हैं, ''उर्दू और नागरी लिपियों के बजाय रोमन लिपि अपनाने के बारे में मेरी राय यह है कि यह प्रस्ताव कितना ही आकर्षक मालूम हो, फिर ऐसा करना घातक भूल होगी और हम कुएँ से निकलकर खाई में पड़ जाएँगे।''

आजाद भारत में जब भी हिंदी को व्यापक राजकीय स्वीकार्यता दिलाने या राष्ट्रभर में एक समान रूप से शैक्षिक पाठ्यक्रम में शामिल करने की चर्चा होती है, तब यह डर दिखाया जाता है कि हिंदी से प्रांतीय भाषाओं को खतरा है। दुर्भाग्य से यह दुश्चर्चा गांधीजी के दौर में भी होती रहती थी। आश्चर्य की बात है कि प्रांतीय भाषाओं को अंग्रेजी से खतरा महसूस नहीं होता, लेकिन भारतीय भाषाओं से जरूर होता है। बहरहाल गांधीजी ने इस सवाल पर भी विचार किया था और प्रांतीय भाषाओं की ओट में हिंदी का विरोध करनेवालों जवाब देते हुए 'हरिजन' के १८ अगस्त, १९४६ में एक लेख लिखा था। इस लेख में गांधीजी कहते हैं, ''यह भय प्रगट किया गया है कि राष्ट्र भाषा का प्रचार प्रांतीय भाषाओं के लिए हानिकर सिद्ध होगा। इस डर की जड़ अज्ञान है। प्रांतीय भाषाएँ ही वह मजबूत बुनियाद हैं, जिस पर राष्ट्र भाषा की इमारत खड़ी होनी चाहिए। दोनों एक-दूसरे की पूर्ति के लिए हैं, न कि एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए।''

हिंदी की राह में एक बाधा खासतौर पर अंग्रेजी समर्थक बुद्धिजीवी एक और कुतर्क के जरिए देते हैं। अंग्रेजी के मशहूर पत्रकार खुशवंत सिंह कई बार हिंदी पर इस वजह से सवाल उठा चुके थे। जब गांधीजी ने हिंदी को राष्ट्र भाषा के तौर पर स्थापित करने के विचार को बढ़ाना शुरू किया था, हिंदी की विपन्नता का सवाल तब भी उठाया गया था। तब भी तर्क दिया गया था कि हिंदी के पास ज्ञान-विज्ञान का साहित्य नहीं है। उसके पास अंग्रेजी की तुलना में पर्याप्त शब्द भंडार नहीं है। गांधीजी ने इस सवाल पर भी विचार किया था और हिंदी के विरोध में उठनेवाले इस तर्क का विरोध किया था। यंग इंडिया के नौ फरवरी १९२१ के अंक में उन्होंने लिखा था, ''आप हिंदी साहित्य की गरीबी की बात करते हैं, वर्तमान हिंदी की गरीबी की बात करते हैं, लेकिन अगर आप तुलसीदास की रामायण में गहरा गोता लगाएँ, तो शायद आप मुझसे सहमत होंगे कि कोई और पुस्तक नहीं है, जो आधुनिक भाषाओं में संसार के साहित्य में इसकी बराबरी कर सके। इस एक पुस्तक ने मुझे वह श्रद्धा और आस्था प्रदान की है, जो और किसी किसी पुस्तक ने नहीं की। मेरे खयाल से यह ऐसी पुस्तक है, जो साहित्यिक लालित्य में, कवित्व में और धार्मिक भावों की गहराई में किसी भी आलोचना और किसी भी परीक्षा में टिक सकती है।''

संभवत: गांधीजी को यह बता नहीं था कि 'टोकरी भर मिट्टी' जैसी कालजयी कहानी के लेखक हिंदी के यशस्वी कथाकार और पत्रकार माधवराव सप्रे और हिंदी के पहले आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अर्थशास्त्र जैसे गूढ़ विषय पर उनके इस कथन से पहले पाठ्यपुस्तक जैसी पुस्तकें लिख चुके थे। अन्यथा हिंदी के विरोध में उठनेवाले विपन्नता के उसके तर्क के खिलाफ इन लेखकों का उल्लेख कर सकते थे। वैसे उनके ही सान्निध्य में रह चुके पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने हिंदी को पत्रकारिता के जरिए माँजने और राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाने में बहुत योगदान दिया।

गांधीजी चूंकि मूलत: राजनीतिक व्यक्ति थे, हालाँकि उनके अंदर एक धार्मिक शख्सियत भी वास करती थी, लिहाजा वे धार्मिक ग्रंथों से परिचित तो थे, लेकिन अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के चलते वे हिंदी के तत्कालीन लेखन से परिचित नहीं थे। यही वजह है कि इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते वे यह सवाल पूछने की हिम्मत कर सके कि हिंदी में कौन है रवींद्रनाथ टैगोर? दरअसल हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति के तौर पर गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया था, ''इस मौके पर अपने दु:ख की भी कुछ कहानी कह दूँ। हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा बने या न बने, मैं उसे छोड़ नहीं सकता। तुलसीदास का पुजारी होने के कारण हिंदी पर मेरा मोह रहेगा ही। लेकिन हिंदी बोलनेवालों में रवींद्रनाथ कहाँ हैं? प्रफुल्लचंद्र राय कहाँ हैं? जगदीश बोस कहाँ हैं? ऐसे और भी नाम मैं बता सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी अथवा मेरे जैसे हजारों की इच्छा मात्र से ऐसे व्यक्ति थोड़े ही पैदा होनेवाले हैं। लेकिन जिस भाषा को राष्ट्रभाषा बनना है, उसमें ऐसे महान् व्यक्तियों के होने की आशा रखी ही जाएगी।''

इससे निराला भड़क गए थे। उन्होंने गांधीजी से समय माँगा और अपनी बात रखी। यह बात और है कि गांधीजी ने उनकी बात ठीक से नहीं सुनी तो गुस्से में निराला ने उनके विरोध में एक कविता

ही लिख डाली थी—

बापू, तुम मुरगी खाते यदि
तो क्या भजते होते तुमको
ऐरे-गैरे नत्थू खैरे;
सर के बल खड़े हुए होते
हिंदी के इतने लेखक-कवि?
बापू, तुम मुरगी खाते यदि।

तो लोकमान्य से क्या तुमने
लोहा भी कभी लिया होता,
दक्खिन में हिंदी चलवाकर
लखते हिंदुस्तानी की छवि?
बापू, तुम मुरगी खाते यदि।

तो क्या अवतार हुए होते
कुल-के-कुल कायस्थ बनियों के?
दुनिया के सबसे बड़े पुरुष
आदम-भेड़ों के होते भी!
बापू, तुम मुरगी खाते यदि।

तो क्या पटेल, राजन, टंडन,
गोपालाचारी भी भजते?
भजता होता तुमको मैं औ'
मेरी प्यारी अल्लारक्खी,
बापू, तुम मुरगी खाते यदि?

दरअसल गांधी का हिंदी के साहित्यिकों के विषय में जो भी सोच बनी हुई थी, माना जाता है कि उसके पीछे बनारसी दास चतुर्वेदी के सुझाव थे। क्योंकि हिंदी पर गांधीजी उनसे ही ज्यादा चर्चा करते थे। लेकिन उन्होंने हिंदी साहित्य में एक मौके पर हस्तक्षेप भी किया था। जब पिछली सदी के तीस के दशक में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास 'चॉकलेट' पर अश्लीलता का आरोप लगाकर पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने अभियान चलाया और उसे घासलेटी साहित्य का विशेषण दिया तो इस पर काफी विवाद हुआ था। इस विवाद में गांधीजी ने दखल दिया था और चॉकलेट को पढ़कर उसे अश्लील मानने से इनकार कर दिया था।

बेशक हिंदी की ताकत उसे बोलनेवाले लोग, उसका अपना भौगोलिक विस्तार और उसकी सहजता है। वह वास्तविकता में राजभाषा के पद पर अब तक आसीन भले ही नहीं हो पाई है, लेकिन अगर उसे जो भी प्रशासनिक ताकत आज हासिल है, उसके पीछे गांधी का हिंदी प्रेम, हिंदी के प्रति लोगों को आकर्षित करने की उनकी निर्बाध कोशिश भी एक बड़ा कारण है।

सा अ

द्वारा जयप्रकाश, दूसरा तल, निकट शिवमंदिर
एफ-२३ ए, कटवारिया सराय
नई दिल्ली-११००१६
uchaturvedi@gmail.com
दूरभाष : ९५९९६६११५१

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।



सेहत का सर्वसुलभ शास्त्र रचते गांधी

• संत समीर



प्रतिष्ठित पत्रकार और समाजकर्मी। 'सफल लेखन के सूत्र', 'हिंदी की वर्तनी' (पुरस्कृत); 'अच्छी हिंदी कैसे लिखें', 'स्वदेशी चिकित्सा', 'सौंदर्य निखार', 'विलोम शब्दकोश', 'स्वतंत्र भारत की हिंदी पत्रकारिता : इलाहाबाद जिला', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान : एक अध्ययन', 'दैनिक हिंदुस्तान : एक अध्ययन' (शोध-प्रबंध), 'पत्रकारिता के युग निर्माता : प्रभाष जोशी'।

महात्मा गांधी को अपने जीवन में तीन बार मलेरिया का सामना करना पड़ा। पहली बार सन् १९२५ में, दूसरी बार सन् १९३६ में और तीसरी बार सन् १९४४ में। उनका बॉडी मास इंडेक्स १७.१ यानी बहुत कम था। सन् १९३९ में उनका वजन लिया गया था, तो वह सिर्फ ४६.७ किलोग्राम था। १६५ सेंटीमीटर की लंबाई के हिसाब से यह स्थिति 'अंडरवेट' वाली थी। लंदन प्रवास के समय उन्हें फेफड़ों के संक्रमण तक का सामना करना पड़ा। बवासीर और अपेंडिक्स की समस्या से भी वे रूबरू हुए। कई बार ऐसी भी स्थितियाँ पैदा हुईं, जब लगा कि वे अब नहीं बचेंगे। इन सबके बावजूद गांधी कभी अंग्रेजी दवाओं के रहमोकरम पर नहीं रहे। उच्च रक्तचाप से पीड़ित रहते हुए वे अपने जीवन में अगर बेहद शांत रह लेते थे तो यह भी किसी आश्चर्य से कम नहीं है। यह अजूबा भी उनके साथ चस्पाँ है कि आजादी के संघर्ष के दौरान वे जितना पैदल चले, उतने में धरती के दो चक्कर लगाए जा सकते हैं।

लंबे-लंबे उपवास सहनेवाली इतनी दुबली-पतली और बीमार दिखनेवाली काया में आखिर इतना सामर्थ्य आया कहाँ से?

इसे समझना हो तो कुछ गहरे उतरना पड़ेगा। गांधीजी की संकल्प शक्ति के अलावा स्वास्थ्य विषयक उनकी मान्यताओं और उनके प्रयोगों को भी समझना पड़ेगा। वास्तव में गांधी जब स्वास्थ्य की बात करते हैं तो जीवन की कुछ बुनियादी बातों की तरफ इशारा करते हैं। वे मानते हैं कि रोग के उत्स का संबंध देह के बाहरी तल से कहीं ज्यादा विचारों के तल पर है। इस आधार पर मन की शुद्धि आध्यात्मिकता के लिए ही नहीं, आरोग्य के लिए भी उतना ही जरूरी है। इस तरह के विचार गांधी के बहुत पहले तब से बनने लगे थे, जब वे विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते थे। होम्योपैथी वाले जान सकते हैं कि होम्योपैथी के मूल सिद्धांत में गांधी के निकाले निष्कर्ष वाली यही बात है कि बीमारी सबसे पहले मन के तल पर जड़ जमाती है। मन को शुद्ध करने की राह तलाशते हुए गांधी 'राम-नाम' के रामबाण नुस्खे तक पहुँचे। यहाँ ध्यान देने की बात है कि गांधी के राम मंदिर की मूर्तियों में बैठे राम नहीं हैं। वे कण-कण में समाए राम हैं। उनके राम वही हैं जो ईश्वर, अल्लाह, गॉड हैं। परमपिता के अनेक नामों में से एक नाम 'राम'। गांधीजी कहते हैं कि राम का नाम उन्होंने बचपन से भजा है तो यह उनके संस्कार में है, अन्यथा कोई ईश्वर को ओम् नाम से भजे, अन्य किसी नाम से भजे, किसी भी भाषा में भजे—बात एक ही है, नतीजा एक ही आएगा। गांधी को अपनी इस सोच का एक पुख्ता आधार तब मिला, जब वैद्यराज गणेश शास्त्री जैसे विद्वानों से उन्हें यह पता चला कि आयुर्वेद के हमारे महान् ग्रंथों में तमाम उपचारों की चर्चा के बीच विष्णु के हजार नामों में से किसी भी एक नाम के आस्थापूर्वक जप को सर्वरोगहर सबसे बड़ा उपाय बताया गया है। गांधीजी के खुद के अनुभवों के बाद निकाले गए निष्कर्षों को इस सदी के महान् प्रेरक वक्ता जोसेफ मर्फी के पैंतीस-चालीस वर्षों के शोध के बाद कही गई इस बात में भी प्रमाणित होते हुए देखा जा सकता है कि आपके अवचेतन मन की चमत्कारी शक्ति आपकी हर बीमारी ठीक कर सकती है। यह आपको दोबारा स्वस्थ, उत्साही और शक्तिशाली बना सकती है।

गांधीजी का स्पष्ट मानना था कि ईश्वर की स्तुति और सदाचार का प्रचार हर तरह की बीमारी को रोकने का अच्छे से अच्छा और सस्ते से सस्ता इलाज है। उन्हें इस बात की तकलीफ थी कि वैद्य, हकीम और डॉक्टर इस सस्ते इलाज का उपयोग नहीं करते और कहीं कुछ किया भी जाता है तो जंतर-मंतर की शक्ल में अंधविश्वास बनाकर।

राम-नाम और प्राकृतिक उपचार के संयोग का एक अद्भुत अनुभव गांधीजी को अपने पुत्र मणिलाल के बीमार पड़ने पर हुआ, जो उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''मेरा दूसरा लड़का मणिलाल बहुत बीमार हो गया। उसे कालज्वर ने जकड़ लिया। ज्वर उतरता ही न था। बेचैनी भी थी। फिर रात में सन्निपात के लक्षण भी दिखाई पड़े।

इस बीमारी के पहले बचपन में उसे चेचक भी बहुत जोर की निकल चुकी थी।

''मैंने डॉक्टर की सलाह ली। उन्होंने कहा, 'इसके लिए दवा बहुत कम उपयोगी होगी। इसे तो अंडे और मुरगी का शोरबा देने की जरूरत है।'

''मणिलाल की उमर केवल दस साल की थी। उससे भला मैं क्या पूछता? अभिभावक होने के नाते निर्णय तो मुझी को करना था। डॉक्टर एक बहुत भले पारसी थे। मैंने कहा, 'डॉक्टर, हम सब अन्नाहारी हैं। मेरी इच्छा अपने लड़के को इन दो में से एक भी चीज देने की नहीं होती। क्या दूसरा कोई उपाय आप नहीं बताएँगे?'

''मैं कूने के उपचार जानता था। उनके प्रयोग भी मैंने किए थे। मैं यह भी जानता था कि बीमारी में उपवास का बड़ा स्थान है। मैंने मणिलाल को कूने की रीति से कटि-स्नान कराना शुरू किया। मैं उसे तीन मिनट से ज्यादा टब में नहीं रखता था। तीन दिन तक मैंने उसे केवल पानी मिलाए हुए संतरे के रस पर रखा।

''लेकिन बुखार उतरता न था। रात में वह अंट-संट बकता था। तापमान १०४ डिग्री तक जाता था। मैं घबराया। यदि बालक को खो बैठा तो दुनिया मुझे क्या कहेगी? बड़े भाई क्या कहेंगे? दूसरे डॉक्टर को क्यों न बुलाया जाए? किसी वैद्य को क्यों न बुलाया जाए? अपनी ज्ञानहीन बुद्धि लड़ाने का माता-पिता को क्या अधिकार है?

''एक ओर ऐसे विचार मन में आते थे; दूसरी ओर इस तरह के विचार भी आते थे, 'हे जीव! तू जो अपने लिए करता वही अपने लड़के के लिए भी करे, तो परमेश्वर को संतोष होगा। तुझे पानी के उपचार पर श्रद्धा है, दवा पर नहीं। डॉक्टर रोगी को प्राणदान नहीं देता। वह भी तो प्रयोग ही करता है। जीवन की डोर तो एक ईश्वर के ही हाथ में है। ईश्वर का नाम लेकर, उस पर श्रद्धा रखकर तू अपना मार्ग मत छोड़।'

''मन में इस तरह का मंथन चल रहा था। रात पड़ी। मैं मणिलाल को बगल में लेकर सोया था। मैंने उसे भिगोकर निचोई हुई चादर में लपेटने का निश्चय किया। मैं उठा। चादर ली, उसे ठंडे पानी में भिगोया, निचोया। फिर उसमें मणिलाल को सिर से पैर तक लपेट दिया। ऊपर से दो कंबल ओढ़ा दिए और सिर पर गीला तौलिया रखा। बुखार से उसका शरीर तवे की तरह तप रहा था और बिल्कुल सूख गया था। पसीना आता ही नहीं था।

''मैं बहुत थक गया था। मणिलाल को उसकी माँ के जिम्मे करके मैं आधे घंटे के लिए चैपाटी पर चला गया। थोड़ी हवा खाकर ताजा होने और शांति प्राप्त करने के लिए। रात के करीब दस बजे होंगे। लोगों का आना-जाना कम हो गया था। मुझे बहुत कम होश था। मैं विचार-सागर में गोते लगा रहा था। बार-बार कह रहा था, हे ईश्वर! इस धर्म-संकट में तू मेरी लाज रखना। 'राम-राम' की रटन तो मुँह में थी ही। थोड़े चक्कर लगाकर धड़कती छाती से वापस आया। घर में पैर रखते ही मणिलाल ने मुझे पुकारा, 'बापू, आप आ गए?'

'हाँ, भाई?'

'मुझे अब इसमें से निकालिए न? मैं जला जा रहा हूँ।'

'क्यों, क्या पसीना छूट रहा है?'

'मैं तो पूरा भीग गया हूँ। अब मुझे निकालिए न, बापूजी!'

मैंने मणिलाल का माथा देखा। माथे पर पसीने की बूँदें दिखाई दीं। बुखार कम हो रहा था। मैंने ईश्वर का आभार माना।

'मणिलाल, अब तुम्हारा बुखार चला जाएगा। अभी थोड़ा और पसीना नहीं आने दोगे?'

'नहीं, बापूजी! अब तो मुझे इस भट्ठी से निकाल लीजिए। फिर दुबारा और लपेटना हो तो लपेट दीजिएगा।'

''मुझे धीरज आ गया था, इसलिए उसे बातों में उलझाकर कुछ मिनट मैंने और निकाल दिए। उसके माथे से पसीने की धाराएँ बह चलीं। मैंने चादर खोली, उसका शरीर पोंछा और बाप-बेटे दोनों साथ सो गए। दोनों ने गहरी नींद ली।

''सबेरे मणिलाल का बुखार हलका हो गया था। दूध और पानी तथा फलों के रस पर वह चालीस दिन तक रहा। अब मैं निर्भय हो चुका था। ज्वर हठीला तो था, पर वश में आ गया था। आज मेरे सब लड़कों में मणिलाल का शरीर सबसे अधिक बलवान है।

''मणिलाल का नीरोग होना राम की देन है अथवा पानी के उपचार की, अल्पाहार की और सार-सँभाल की, इसका निर्णय कौन कर सकता है? सब अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार जैसा चाहे निर्णय करें। मैंने तो यह माना कि ईश्वर ने मेरी लाज रखी और आज भी मैं यही मानता हूँ।''

गांधी का राम-नाम अर्थात् मन की शुद्धि देह के संयम तक जाती है। यह संयम उनके लिए ब्रह्मचर्य का साधन है। ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ वे समझाते हैं—ब्रह्म की प्राप्ति के लिए चर्या—और यह बिना संयम के असंभव है। ब्रह्मचर्य को वे स्त्री-प्रसंग से विरत रहने के प्रचलित संदर्भ के दायरे तक सीमित नहीं रखते, पर वीर्य-रक्षा के महत्त्व को भी पूरी गंभीरता से समझाते हैं। कहते हैं, ''पूर्ण ब्रह्मचर्य का लाभ उससे (वीर्य-रक्षण से) नहीं मिलेगा, तो भी उसकी कीमत कुछ कम नहीं है। उसके बिना पूर्ण ब्रह्मचर्य असंभव है। और उसके बिना, अर्थात् वीर्य-संग्रह के बिना, पूर्ण आरोग्य की रक्षा भी अशक्य सी समझनी चाहिए।'' इस तरह गांधी अपने आरोग्य की अवधारणा में ब्रह्मचर्य को विशेष स्थान देते हैं और इसके लिए सविस्तार पाँच तरह के नियम समझाते हैं।

गांधीजी आरोग्य के बारे में जड़ जमाए इस भ्रम को भी तोड़ते हैं कि आरोग्य का मतलब पहलवानों जैसा शरीर है। २५ मई, १९२४ के हिंदी 'नवजीवन' में वे खुद के बारे में लिखते हैं—''यदि मैं अपने विचारों पर भी पूरी विजय पा सका होता, तो पिछले दस वर्षों में जो तीन रोग—पसली का वरम (प्लूरिसी), पेचिश और अपेंडिक्स—मुझे हुए, वे कभी न होते। मैं मानता हूँ कि नीरोग आत्मा का शरीर भी नीरोग होता है। अर्थात् ज्यों-ज्यों आत्मा नीरोगी—निर्विकार होती जाती है, त्यों-त्यों शरीर भी नीरोग होता जाता है। लेकिन यहाँ नीरोग शरीर के मानी बलवान शरीर नहीं है। बलवान आत्मा क्षीण शरीर में ही वास करती है। ज्यों-ज्यों आत्मबल बढ़ता है, त्यों-त्यों शरीर की क्षीणता

बढ़ती है। पूर्ण नीरोग शरीर बिल्कुल क्षीण भी हो सकता है। बलवान शरीर में अधिकतर रोगों का वास होता है। रोग न हों तो भी वह शरीर संक्रामक रोगों का शिकार तुरंत ही हो जाता है। परंतु पूर्ण नीरोग शरीर पर उनका असर नहीं हो सकता। शुद्ध खून में जंतुओं को दूर रखने का गुण होता है।''

गांधीजी के लिए स्वस्थ शरीर का अर्थ है—जो बिना थके रोज दस-बारह मील चल सकता है; सामान्य खुराक पचा सकता है; जिसकी इंद्रियाँ और मन स्वस्थ हैं। उनके अनुसार पहलवानों जैसी देह जरूरी नहीं कि स्वस्थ हो, ऐसे शरीर का विकास एकांकी कहा जाएगा। स्वास्थ्य के इस पैमाने पर चलते हुए ही वे बगैर दवाओं के बीमारियों से उबरने में बार-बार सफल हुए। गांधी की स्वास्थ्य की अवधारणा उनकी स्वदेशी की अवधारणा से सहज रूप से एकाकार हो जाती है। स्वदेशी, यानी ज्यादा-से-ज्यादा अपने बूते, अपने आसपास से और बिना किसी का शोषण किए अपनी जरूरतें पूरी करना—और आरोग्य, यानी ज्यादा-से-ज्यादा अपने बूते और उन्हीं चीजों के सहारे रोगों से मुक्ति पाना, जिनसे यह देह बनी है। जिनसे यह देह बनी है, यानी भारतीय दर्शन के हिसाब से पंचभूत। गांधी की नजर में असली आरोग्य तब आता है, जब पंचभूत से बने इस शरीर में सारी इंद्रियाँ अपनी पूरी क्षमता से कार्यक्षम होती हैं। इन पंचभूतों, यानी हवा, पानी, आकाश, तेज (सूर्य) और पृथ्वी के महत्त्व को उपचार के असली साधन के रूप में समझाने के लिए ही उन्होंने 'आरोग्य की कुंजी' नाम से एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। इसके दूसरे ही पृष्ठ पर वे लिखते हैं, ''शरीर पंचभूत का पुतला है। इसी से कवि ने गाया है—

''पवन, पानी, पृथ्वी, प्रकाश और आकाश,
पंचभूत के खेल से बना जगत् का पाश।

''इस शरीर का व्यवहार दस इंद्रियों और मन के द्वारा चलता है। दस इंद्रियों में पाँच कर्मेंद्रियाँ हैं, अर्थात् हाथ, पैर, मुँह, जननेंद्रिय और गुदा। ज्ञानेंद्रियाँ भी पाँच हैं—स्पर्श करनेवाली त्वचा, देखनेवाली आँख, सुननेवाला कान, सूँघनेवाली नाक और स्वाद या रस को पहचाननेवाली जीभ। मन के द्वारा हम विचार करते हैं। कोई-कोई मन को ग्यारहवीं इंद्रिय कहते हैं। इन सब इंद्रियों का व्यवहार जब संपूर्ण रीति से चलता है, तब शरीर पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है। ऐसा आरोग्य बहुत कम देखने में आता है।''

इस विचार-सरणी से गुजरते हुए गांधी जहाँ पहुँचते हैं, वह है कुदरती उपचार, जिसे आज हम 'प्राकृतिक चिकित्सा' के नाम से जानते हैं। मतलब यह कि आहार-विहार के मामले में मनुष्य कुदरत के नियमों का पालन करे और मन को निर्मल रखे तो नीरोगी रह सकता है। विदेश में पढ़ाई करते हुए भी शाकाहार के संकल्प ने खानपान के रास्ते इस तरह की चीजों में उनकी रुचि जगाई। शुरू में उन्हें कुदरती उपचार में भरोसा तो था, पर ज्यादा जानकारी नहीं थी। जहाँ कहीं से कुछ फुटकर जानकारी मिल जाती, उसे वे आजमाने लगते। कम जानकारी के नाते सन् १९०१ तक की उनकी स्थिति यह थी कि वे कभी बीमार होते तो डॉक्टरों के पास भागकर तो नहीं जाते, पर यदा-कदा उनकी दवाइयों का इस्तेमाल जरूर कर लेते थे। उन्हें कब्जियत अकसर परेशान करती थी, सो प्राणजीवन मेहता की बताई कुछ दवाएँ और फ्रूट सॉल्ट लेते थे। वे लिखते हैं—''नैसर्गिक उपचारों में मुझे काफी विश्वास था, मगर इस बारे में मुझे किसी से मदद नहीं मिलती थी। इधर-उधर से जो कुछ मैंने पढ़ लिया था, उसी के आधार पर मुख्यत: भोजन में फेरबदल करके मैं काम चला लेता था। मैं खूब घूम लेता था, इस कारण खाट पर मुझे कभी पड़ना नहीं पड़ा। इस तरह मेरी ढीली-ढाली गाड़ी चला करती थी। ऐसे समय में जुस्ट की 'रिटर्न टू नेचर' नाम की पुस्तक भाई पोलाक ने मुझे पढ़ने को दी।'' जुस्ट की पुस्तक से गांधीजी को मिट्टी की उपचारक शक्ति का कुछ परिचय मिला। इसका उन्होंने अपने ऊपर प्रयोग किया और उपयोगी पाया। इसके पहले पानी की उपचारात्मक शक्ति के बारे में उन्होंने लुई कुने की पुस्तक में पढ़ा था। इन दोनों पुस्तकों ने प्राकृतिक चिकित्सा में उनकी रुचि गहरे तक जगाई।



महात्मा गांधी मिट्टी, पानी, हवा, धूप, आकाश के जरिए अपने ऊपर चिकित्सा के प्रयोग करते हुए भारत में कुदरती उपचार के पहले प्रचारक बने। गांधी न होते तो तमाम निराश रोगियों को जीवन दे रही प्राकृतिक चिकित्सा जैसी एक निरापद पद्धति के केंद्र आज देश के तमाम नगरों-कस्बों में दिखाई न देते। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि हर किसी के आसपास, हर किसी के घर के भीतर-बाहर सहज उपलब्ध प्रकृति के इन उपादानों को गांधीजी ने सिर्फ भौतिक रूप में ही नहीं देखा, इन्हें उन्होंने प्रकृति के साथ जीवन को समरस करते हुए आध्यात्मिक भाव से ईश्वर और धर्म की भारतीय संस्कृति के साथ जोड़कर देखा। आरोग्य की इस सहज विधा को गांधी ने 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' तक साधा और व्याख्यायित किया। 'आरोग्य की कुंजी' में आकाश तत्त्व के बारे में वे लिखते हैं—''इस आकाश की मदद हमें आरोग्य की रक्षा के लिए और उसे खो चुके हों तो फिर से प्राप्त करने के लिए लेनी है। जीवन के लिए हवा की सबसे अधिक आवश्यकता है, इसलिए वह सर्व-व्यापक है। मगर हवा दूसरी चीजों के मुकाबले में व्यापक तो है, पर अनंत नहीं है। भौतिक शास्त्र हमें सिखाता है कि पृथ्वी से अमुक मील ऊपर चले जाएँ, तो वहाँ हवा नहीं मिलती। ऐसा कहा जाता है कि इस पृथ्वी के प्राणियों जैसे प्राणी हवा के आवरण से बाहर रह ही नहीं सकते। यह बात सच हो या न हो, हमें इतना ही समझना है कि आकाश जैसे यहाँ है, वैसे ही वह हवा के

आवरण से बाहर भी है। इसलिए सर्व-व्यापक तो आकाश ही है, फिर भले वैज्ञानिक लोग सिद्ध यि करें कि उस आवरण के ऊपर 'ईथर' नाम का पदार्थ या कुछ और है। वह पदार्थ भी जिसके भीतर रहता है, वह आकाश ही है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अगर हम ईश्वर का भेद जान सकें, तो आकाश का भेद भी जान सकेंगे।

ऐसे महान् तत्त्व का अभ्यास और उपयोग जितना हम करेंगे, उतना ही अधिक आरोग्य का उपभोग कर सकेंगे। पहला पाठ तो यह है कि इस सुदूर और अदूर तत्त्व के और हमारे बीच में कोई आवरण नहीं आने देना चाहिए। अर्थात् यदि घर-बार के बिना, अथवा कपड़ों के बिना हम इस अनंत के साथ संबंध जोड़ सकें तो हमारा शरीर, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह आरोग्य अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्श तक हम भले ही न पहुँच सकें या करोड़ों में एक ही पहुँच सके तो भी इस आदर्श को जानना, इसे समझना और इसके प्रति आदर-भाव रखना आवश्यक है। और यदि यह हमारा आदर्श हो तो जिस हद तक हम इसे प्राप्त कर सकेंगे, उसी हद तक हम सुख, शांति और संतोष का अनुभव कर सकेंगे। इस आदर्श को मैं आखिरी हद तक पेश कर सकूँ, तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि हमें शरीर का अंतराय भी नहीं चाहिए। मन को हम इस तरह का शिक्षण दे सकें, तो शरीर को विषय-भोग का साधन तो कभी नहीं बनाएँगे। तब अपनी शक्ति और अपने ज्ञान के अनुसार हम अपने शरीर का सदुपयोग सेवा के लिए, ईश्वर को पहचानने के लिए, उसके जगत् को जानने के लिए और उसके साथ ऐक्य साधने के लिए करेंगे।''

सेहत के लिए हवा के इस्तेमाल में गांधी की दृष्टि आज के लिए भी उतनी ही उपयोगी है, जितनी तब थी। घर की हवादार बनावट, मुँह से साँस-लेने के नुकसान, नाक की सफाई, खुले में सोने के फायदे, रात की पोशाक, सोते समय ओढ़ने का शऊर, प्राणायाम—जैसे तमाम मुद्दों पर उन्होंने एकदम सरल-सहज तरीके से बुनियादी बातें कही हैं। उन्होंने अपने रहते जितने भी आश्रम बनाए, उनमें सेहत की दृष्टि से हवा की हर तरफ से आवाजाही का खास खयाल रखा। पानी कैसे पीना चाहिए, तरह-तरह के पानी का फर्क—जैसी बातों को भी वे बड़े सलीके से समझाते हैं। हमारे यहाँ धार्मिक मान्यता है कि अनजाने स्थान या अनजाने कुएँ का पानी नहीं पीना चाहिए। गांधीजी इस रहस्य को खोलते हुए कहते हैं, ''हम देखकर या चखकर हमेशा नहीं कह सकते कि कोई पानी पीने लायक है या नहीं। देखने में और चखने में जो पानी अच्छा लगता है, वह दरअसल जहरीला हो सकता है। इसलिए अनजाने घर या कुएँ का पानी न पीने की प्रथा का पालन करना अच्छा है।''

पानी के चिकित्सकीय प्रयोग के संदर्भ में गांधीजी लुई कुने से काफी प्रभावित हुए थे, सो उन्होंने कुने के तरीकों में अपनी सुविधा के हिसाब से फेरबदल करके खूब प्रयोग किए। कटि-स्नान, घर्षण-स्नान और भाप-स्नान पर अपने वर्णनों में उन्होंने ऐसे स्पष्ट ब्योरे दिए हैं कि कोई भी मरीज विधिपूर्वक ऐसे प्रयोग कर सके।

सेहत की दृष्टि से पृथ्वी तत्त्व की उपयोगिता समझाते हुए गांधीजी मिट्टी की पट्टी की विधियों और मिट्टी के प्रकारों की बारीक जानकारी देते हैं। सिरदर्द, फोड़ा, बर्र का डंक, बिच्छू का डंक, साधारण बुखार, टायफायड, कब्जियत जैसी बीमारियों पर उन्होंने मिट्टी की उपचारक शक्ति का खूब प्रयोग किया। गांधीजी ने पहली बार मिट्टी का प्रयोग अपनी कब्जियत की बीमारी में किया। जुस्ट की पुस्तक पढ़ने के बाद उन्होंने रातभर के लिए अपने पेड़ू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखी और दूसरे दिन उन्हें स्पष्ट लाभ महसूस हुआ। सिरदर्द में भी मिट्टी की पट्टी का प्रयोग उन्होंने सैकड़ों मरीजों पर किया और लोगों को स्पष्ट फायदा मिला। एक बार दक्षिण अफ्रीका जाते हुए स्टीमर में कप्तान के साथ हिलमिल गए गांधीजी के आठ साल के पुत्र रामदास का खेलते-खेलते हाथ टूट गया। उस समय डॉक्टर ने हड्डी बैठा दी, पर उसकी सलाह थी कि घाव को किसी योग्य डॉक्टर से दुरुस्त करा लिया जाए। गांधी जोहानिस्बर्ग पहुँचे तो डॉक्टर को दिखाने के बजाय खुद मिट्टी का प्रयोग करके घाव को ठीक करने का निश्चय किया। गांधीजी ने लिखा है कि काँपते-काँपते उन्होंने घाव खोला और उसे साफ करके उस पर साफ मिट्टी की पुल्टिस रखकर पट्टी को फिर से पहले की तरह बाँध दिया। रोज वे घाव को साफ करते और उस पर मिट्टी रखकर बाँधते। इस तरह करीब महीने भर में घाव ठीक हो गया। डॉक्टर के बताए अनुसार इलाज होता तो भी इतना ही समय लगने की बात कही गई थी। टायफायड जैसे जिद्दी रोग में गांधीजी ने मिट्टी का खूब प्रयोग किया। बुखार तो अपनी मियाद पूरी करके ही जाता, पर मिट्टी के प्रयोग से मरीज काफी आराम में रहता। उनके रहते सेवाग्राम आश्रम में मिट्टी का प्रयोग टायफायड के कई मरीजों पर किया गया। सभी मरीज आराम-आराम से ठीक हो गए। इसका असर यह हुआ कि वहाँ के लोगों के मन से टायफायड का डर पूरी तरह समाप्त हो गया।

आहार के विषय में गांधीजी ने उपयोगी प्रयोग किए। कौन से अनाज खाने चाहिए, किनसे परहेज करना चाहिए, आटा कैसे पीसा जाए, चावल की कुटाई कैसी हो, शाक-सब्जी खाने का क्या तरीका होना चाहिए, तेल-घी कितना खाना चाहिए—इन सब पर उन्होंने कई लेखों और पुस्तकों में विस्तार से चर्चा की है। फलों के बारे में बात करते हुए गांधीजी जो सहज बात बताते हैं, वह आज के फास्टफूड वाले समय में सेहत बचाने के लिए और भी ज्यादा प्रासंगिक है। वे सुझाते हैं कि फलों को खाने का सबसे अच्छा समय सुबह का है। सवेरे फल-दूध का नाश्ता करने से भरपूर संतोष मिल जाता है। वे सुझाते हैं कि जो लोग खाना जल्दी खाते हैं, उनके लिए तो सवेरे केवल फल ही खाना अच्छा है। आहार में यह साधारण-सा परिवर्तन करके हजारों लोगों ने सेहत की कई परेशानियों से खुद को बचाया है। गांधीजी पहले हिंसा-अहिंसा के विचार के चलते दूध सेवन करने के विरोधी थे। एक स्पष्ट अनुभव के बाद दूध के बारे में उनके विचार कैसे बदले, यह उन्होंने आत्मकथा में कुछ यों लिखा है—''खेड़ा जिले में (फौज में) सिपाहियों की भरती का काम करते-करते मैं भोजन में अपनी भूल के कारण मृत्युशय्या पर पड़ गया। दूध के बिना जीने के लिए मैंने बहुत हाथ-पैर मारे। जिन वैद्यों, डॉक्टरों और रसायनशास्त्रियों को मैं जानता था, उनकी मदद मैंने माँगी।

किसी ने मूँग के पानी का, किसी ने महुए के तेल का और किसी ने बादाम के दूध का सुझाव दिया। इन सब चीजों के प्रयोग करते-करते मैंने शरीर को निचोड़ डाला, पर उससे मैं बिछौना छोड़कर उठ न सका।

''गाय-भैंस का दूध तो मैं ले ही नहीं सकता था। यह मेरा व्रत था। व्रत का हेतु तो दूध मात्र का त्याग था, पर व्रत लेते समय मेरे सामने गोमाता और भैंस माता ही थीं, इस कारण से तथा जीने की आशा से मैंने मन को जैसे-तैसे फुसला लिया। मैंने व्रत के अक्षर का पालन किया और बकरी का दूध लेने का निश्चय किया। बकरी माता का दूध लेते समय भी मैंने यह अनुभव किया कि मेरे व्रत की आत्मा का हनन हुआ है।

''आरोग्य-विषयक मेरी पुस्तक के सहारे प्रयोग करनेवाले सब भाई-बहनों को मैं सावधान करना चाहता हूँ। दूध का त्याग पूरी तरह लाभप्रद प्रतीत हो अथवा अनुभवी वैद्य-डॉक्टर उसे छोड़ने की सलाह दें, तभी वे उसको छोड़ें, सिर्फ मेरी पुस्तक के भरोसे वे दूध का त्याग न करें। यहाँ का मेरा अनुभव अब तक तो मुझे यही बतलाता है कि जिसकी जठराग्नि मंद हो गई है और जिसने बिछौना पकड़ लिया है, उसके लिए दूध जैसी दूसरी हलकी और पोषक खुराक है ही नहीं।''

मिर्च-मसाले, चाय-कॉफी वगैरह को उन्होंने किन्हीं अपरिहार्य स्थितियों के अलावा आरोग्य के लिए गैरजरूरी पाया। मेहनतकश की क्या खुराक हो, एक बुद्धिजीवी व्यक्ति को कब-कब, क्या-क्या खाना चाहिए—यह सब गांधीजी ने विस्तार से समझाया है। जब भी उन्हें मौका मिलता, बीमारी में अन्नाहार के तौर-तरीकों पर प्रयोग करने लगते। इन प्रयोगों की विशेषता यह थी कि पहले इन्हें वे खुद के ऊपर करते, फिर दूसरों को बताते। एक बार उन्होंने रक्तस्राव को ठीक करने के लिए कस्तूरबा से दाल और नमक छोड़ने को कहा, तो कस्तूरबा पहले नहीं मानीं। गांधीजी पर ही उन्होंने सवाल खड़ा कर दिया। इलाज के बहाने पति-पत्नी के अद्भुत रिश्तों पर यह पढ़ने लायक वर्णन है। गांधीजी लिखते हैं, ''डरबन में रक्तस्राव के कारण जो शल्यक्रिया हुई, उसके बाद कस्तूरबाई का रक्तस्राव थोड़े समय के लिए बंद हो गया था, पर अब वह फिर शुरू हो गया था और किसी प्रकार बंद ही न होता था। अकेले पानी के सारे उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। यद्यपि पत्नी को मेरे उपचारों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि उनके लिए उसके मन में तिरस्कार भी नहीं था। दूसरी दवा करने का उसको आग्रह न था। मैंने उसे नमक और दाल छोड़ने के लिए मनाना शुरू किया। बहुत मनाने पर भी, अपने कथन के समर्थन में कुछ-न-कुछ प्रमाणभूत बातें पढ़कर सुनाने पर भी, वह मानी नहीं। आखिर उसने कहा, 'दाल और नमक छोड़ने को तो कोई आपसे कहे, तो आप भी नहीं छोड़ेंगे।' मुझे इससे दुःख हुआ और हर्ष भी हुआ। मुझे अपना प्रेम उड़ेलने का अवसर मिला। उसके हर्ष में मैंने तुरंत ही कहा, 'तुम्हारा यह खयाल गलत है। मुझे बीमारी हो और वैद्य इन चीजों को या दूसरी किसी चीज को छोड़ने के लिए कहे तो मैं अवश्य छोड़ दूँ। लेकिन जाओ, मैंने एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो, यह अलग बात है।'

''पत्नी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, 'मुझे माफ कीजिए। आपका स्वभाव जानते हुए भी मैं कहते कह गई। अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊँगी, लेकिन आप अपनी बात लौटा लें। यह तो मेरे लिए बहुत बड़ी सजा हो जाएगी।'

''मैंने कहा, 'अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी तो अच्छा होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा, पर मैं की हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकूँगा। मुझे तो इससे लाभ ही होगा। मनुष्य किसी भी निमित्त से संयम क्यों न पाले, उससे उसे लाभ ही होता है। अतएव तुम मुझसे आग्रह न करो। फिर मेरे लिए भी यह एक परीक्षा हो जाएगी और इन दो पदार्थों को छोड़ने का जो निश्चय तुमने किया है, उस पर दृढ़ रहने में तुम्हें मदद मिलेगी।' इसके बाद मुझे उसे मनाने की जरूरत तो रही ही नहीं। 'आप बहुत हठी हैं। किसी की बात मानते ही नहीं।' कहकर और अंजलि भर आँसू बहाकर वह शांत हो गई।

''इसके बाद कस्तूरबाई की तबीयत सँभली। इसमें नमक और दाल का त्याग कारणरूप था अथवा उस त्याग से उत्पन्न आहार संबंधी अन्य छोटे-बड़े परिवर्तन कारणभूत थे या इसके बाद दूसरे नियमों का पालन कराने में मेरी पहरेदारी निमित्तरूप थी, अथवा उपर्युक्त प्रसंग से उत्पन्न मानसिक उल्लास निमित्तरूप था—यह मैं कह नहीं सकता। पर कस्तूरबाई का क्षीण शरीर फिर पनपने लगा, रक्तस्राव बंद हुआ और 'वैद्यराज' के रूप में मेरी साख कुछ बढ़ी।''

वास्तव में उपचार के ऐसे कुदरती उपायों पर गांधीजी ने ध्यान केंद्रित किया, जो पूरी तरह घरेलू थे, सहज उपलब्ध थे। दूसरों के भरोसे चलने के बजाय उन्होंने खुद अनुसंधानक का काम किया और एक ऐसी चिकित्सा-विधि की संभावना जगाई, जो आमजन के भी अनुकूल थी। भारत के लिए इससे आसान और सस्ती चिकित्सा संभव नहीं थी, लेकिन दुर्भाग्य से गोलियों, पुड़ियों और इंजेक्शन को इलाज के पर्याय रूप में प्रचारित कर दिए जाने से मिट्टी, पानी, उपवास जैसी चीजों के सहारे बीमारी से लड़कर जीतने का विश्वास जगाना मुश्किल था। यह जरूर हुआ है कि वर्तमान में अब जब एलोपैथी दवाओं के दुष्प्रभाव सामने आने लगे हैं तो गांधीजी के सुझाए इलाज के प्राकृतिक तरीकों की ओर लोगों का रुझान बढ़ने लगा है। (सा अ)

सी-३१९/एफ-२, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-२
साहिबाबाद, गाजियाबाद-२०१००५ (उ.प्र.)
santsameer@gmail.com
दूरभाष : ८०१०८०२०५२

भूल-सुधार

'साहित्य अमृत' के दिसंबर अंक के संपादकीय में पृष्ठ आठ के अंतिम पैरा की तीसरी पंक्ति में वीर सावरकर के छोटे भाई का नाम भूलवश दामोदर छपा है; कृपया इसे गणेश सावरकर पढ़ें।



युगाधार गांधी

• राहुल



जाने-माने आलोचक-कवि। 'प्रजातंत्र, कहीं अंत नहीं', 'जंगल होता शहर', 'महानायक सुभाष', (कविता-संग्रह), 'युगांत' (प्रबंध काव्य) चर्चित; संपादित कृतियों के साथ-साथ दर्जन भर बाल-साहित्य और राजभाषा हिंदी से संबंधित पुस्तकें भी। हिंदी अकादेमी एवं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

हे प्रथम किरण! हे प्रथम चरण!
हे राष्ट्रपिता! तुमको प्रणाम!
तुम दिव्य रूप तुम थे अनूप,
तुम युगाधार तुमको प्रणाम!

तुमने युग के बंधन तोड़े
तुम अटल रहे हिमगिरि समान,
तुम कोटि दृष्टि, तुम कोटि सृष्टि
तुमने युग का ताना वितान।

तुम मानवता के महादूत
तुम रामनाम के आराधक,
तुम परिवर्तन के महाचक्र
तुम युगनिर्माता, संस्थापक।

तुमने दी युग को नई दिशा
तुमने दी युग को नई दृष्टि,
तुम कालजयी, तुम कालकोटि
तुमसे सुरभित है आज सृष्टि।

तुमने सिखलाया नया पाठ
है रामराज युग का प्रेरा,
तुम चेतनता की अतुल कड़ी
मारुत-गति को तुमने फेरा।

हे महातपी! हे महाव्रती
तुम ज्ञान-ध्यान के थे साधक,
तुम भक्ति-शक्ति के महापुंज
आराध्य रहोगे युग-युग तक।

तुम जिधर चले, सब उधर चले
तुम जिधर बढ़े, सब उधर बढ़े,
सब मिला तुम्हारे पग से पग
हिम के शिखरों पर साथ चढ़े।

तुमने युग का इतिहास रचा
तुमने युग का अध्याय लिखा,
तुमसे ही मणि-माणिक्य मिला
तुममें ही कोटिक रूप दिखा।

आडंबर को तोड़ा तुमने
कर सत् प्रहार, कर सत् प्रयोग,
तुमने दी संयम की शिक्षा
तुमने सिखलाया कर्मयोग।

हे सत्यरूप! हे दया-प्रवर
तुमने जीवन की रखी नींव,
हर आसन-सिंहासन डोला
ज्यों सत्य हो गया था सजीव।

काँपता सत्य से ब्रह्मासन
बर्बरता भी है हिल जाती,
दुष्कर्मी हो या संतापी
काँपता है डर से कुलघाती।

मिथ्याचारी भी दूर भगे
सत् के सम्मुख ज्यों गए हार,
सब अस्त्रों को कर दिया नष्ट
अहिंसा का करके प्रहार।

आए जितने अत्याचारी
उनका भी तुमने किया दमन,
महकाया मीठी वाणी से
भारतमाँ का यह महाचमन।

तुम दिग्विजयी तुम महाजयी
तुम संघवाद के हो नायक,
तुम आत्मजयी, आदर्शमयी
तुम राष्ट्ररथी के संवाहक।

सब अस्त्र-शस्त्र कुंठित होकर
गिर पड़े सत्य के आ सम्मुख,
जो शूरवीर रणयोद्धा थे
हो नतमस्तक चल पड़े विमुख।

ऐसा अमोघ सत् का प्रयोग
इस अखिल विश्व में हुआ नहीं,
यह राम-कृष्ण की है धरती।
गौतम ने देखा नहीं कहीं।

हर ओर एक आवाज उठी
गांधी गांधी गांधी गांधी,
दृढ़ चरण बढ़े अँधेरे में
सब बोल उठे आँधी-आँधी।

जड़-चेतन में नवशक्ति भरी
मृत-प्राणी भी उठ हर्षाया,
शोषित-पीड़ित जो मानव था
उसने अभिनव संबल पाया।

मेरा गांधी, मेरा भविष्य
नवयुवक वृद्ध सब बोल उठे,
दुनिया की आधी आबादी
के संग पर्वत भी डोल उठे।

थे करुणा की वे महामूर्ति
सत्य-अहिंसा के गामी,
मानवता के महापुजारी
लोक चेतना के स्वामी।

युग ने उनको कहा देवता
पूज रहा है विश्व समस्त,
सूरज-चंदा गान कर रहे
कहते, हुए नहीं हैं अस्त।

आओ, हम मिल करें वंदना
भारत के उद्धारक की,
पराधीनता बेड़ी तोड़ी
अस्त्र-ढाल बिन धारक की।

जय बापू! जय गांधी बाबा
जय महात्मा अमर रहें,
जय भारत के भाग्य-विधाता
कोटि-कोटि जन आज कहें।

जिन आँखों ने वह छवि देखी
वे अति किस्मत वाले हैं,
जिसने उनका 'दर्शन' माना
वे जन बड़े निराले हैं।

गांधीजी ने कहा सदा तुम
अनुशासन जीवन जियो,
शिवशंकर सा नीलकंठ बन
युग का विपुल गरल पियो।

अनुशासन की शिक्षा घर से
बचपन से ही तुम सीखो,
सभी मनुज में प्यार भरो नित
सबसे अलग-विरल दीखो।

अनुशासन पालन संभव है
जब मनुष्य अनुरागी हो,
तथा समर्पण भाव भरा हो
मन से भी वह त्यागी हो।

अभय और निस्पृह बनो तुम
न हो धन-दौलत का भय,
आत्मा में श्रद्धा रखने से
मानव बने अभय निश्चय।

बापू ने उपकार सिखाया
हर मानव सत्कर्म करे,
स्वार्थ भावना को तज करके
अपना-अपना धर्म धरे।

सदाचार निर्मल जीवन की
सच्ची शिक्षा है सांसर,
नहीं बनाएँ कभी इसे हम
अर्थतंत्र मिश्रित व्यापार।

जीवन की कटु परिस्थितियों से
लड़ने की योग्यता भरे,
हो महान् उद्देश्य कर्म का
यह चरित्र-निर्माण करे।

सर्वोदय के साथ अगल हम
अपना करें विकास यहाँ,
मिटे भूख-बेकारी जग से
फैले नया प्रकाश जहाँ।

हिंदी हिंदुस्तानी भाषा
उर्दू की ही है शैली,
यह संस्कृत की पुत्री जैसी
इससे है गरिमा फैली।

हिंदी का सम्मान करें हम
इसे प्रयोग में नित लाएँ,
हिंदी लाओ-देश बचाओ
आओ मिल प्रगीत गाएँ।

सब धर्मों की एक भावना
मनुज बने सच्चा इनसान,
भक्ति-भाव से मिल जाते हैं
उसको स्वयं यहाँ भगवान!

कोई धर्म बड़ा, न छोटा
सबका सदा महत्त्व समान,
हिंदू-मुस्लिम, सिख-ईसाई
भाई-भाई सुहृद्-सुजान।

दीनबंधु हे! पतित सुपावन,
निरवधि करुणा धाम अमर।
तुम जन-जन के मंदिर रघुपति,
तुम श्री राजाराम अमर॥

साहित्य कुटीर, साइट २/४४
विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ०९२८९४४०६४२

महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति

● निर्मला गांधी

दक्षिण अफ्रीका में जब बापू बैरिस्टर थे, डरबन में कस्तूरबा 'बा' के साथ रहते थे, तब भी वे अपने मददनीशों को क्लर्क के रूप में नहीं रखते थे। खाना-पीना, रहना-सोना सब साथ था।

हर कमरे में रात में पेशाब जाने के लिए एक पात्र (बरतन) रहता था। साधारणतया सब अपना पेशाबवाला बरतन साफ करते थे; पर कभी-कभी नए लोग भूल जाते थे तो कमरा तथा पेशाब का बरतन बा को साफ करना पड़ता था। बापू करें तो बा को अच्छा नहीं लगता था, इसलिए यह काम बा ही करती थीं। एक बार सफाई करते-करते बा उदास हो गईं तो बापू को यह अच्छा नहीं लगा, उन्होंने कहा, ''यह काम खुशी से करना चाहिए, नहीं तो तुम यहाँ से चली जाओ।''

बापू ने शुरू से ही हरिजन का भेदभाव नहीं रखा। १९१५ में बापू दक्षिण अफ्रीका से भारत आए और अपना आश्रम अहमदाबाद में शुरू किया। बापू ने प्रण लिया था कि मैं आश्रम में छुआछूत नहीं रखूँगा, पर सब सोचते थे कि ऐसा संस्कारी हरिजन परिवार कहाँ मिलेगा, जिसे बापू आश्रम में रखेंगे।

परंतु ठक्कर बापा ने एक हरिजन परिवार बापू के पास भेजा, जिसे बापू ने आश्रम में रखा। इससे आश्रम की बहनों में थेड़ी हलचल मची; पर फिर ठीक हो गया। परंतु अहमदाबाद शहर के धनवान मिल मालिक वैष्णव धर्म के सनातनी लोग थे। उनको बापू का अछूतों को आश्रम में रखना पसंद नहीं आया और जो लोग आश्रम को खर्च देते थे, उन्होंने खर्च देना बंद कर दिया। आश्रम व्यवस्थापक मगनलाल गांधी ने बापू से कहा कि ''आश्रम चलाने के लिए मात्र पंद्रह दिन का पैसा बचा है।'' तब भी बापू विचलित नहीं हुए और कहा कि ''चिंता की कोई बात नहीं, हम हरिजन बस्ती में रहेंगे और उनके साथ मजदूरी करेंगे।''

परंतु कुछ दिन के बाद एक सेठ, जो विलायत से लौटे थे और व्यापक दृष्टि वाले थे, बापू के पास आए और वे अपने मन से १३,००० रुपए (जो एक वर्ष का खर्चा था) देकर गए।

आश्रम में बापू की एक बड़ी बहन भी रहती थीं, जो विधवा थीं। उन्हें भी आश्रम में हरिजन परिवार का आना अच्छा नहीं लगा। एक दिन उन्होंने बापू से कहा कि मैं आश्रम का सब काम करूँगी, लेकिन काम के बाद नहाकर अपना खाना अलग बनाकर खाऊँगी। परंतु बापू को यह मंजूर नहीं था। तब बुआजी ने कहा कि मैं तुम्हारी ही तरह फलाहार पर रहूँगी। पर बापू ने कहा कि दिमाग में छुआछूत रखकर तुम आश्रम में नहीं रह सकती और उसी रोज बुआजी को अपने गाँव राजकोट जाना पड़ा।

बापू साधारणतया निकट के ऐसे प्रेमी लोगों की शादी में जाकर उन्हें आशीर्वाद देते थे, जो शादी सादगी से तथा खादी के वस्त्रों में संपन्न कराते थे। परंतु १९३४ के बाद उन्होंने यह तय किया कि वे ऐसी शादी में ही आशीर्वाद देने जाएँगे, जिसमें एक पक्ष हरिजन हो।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में जब बापू पूर्वी पाकिस्तान के नोआखाली में पैदल यात्रा करते, तब वे हरिजन या आदिवासी की झोंपड़ी में ही ठहरते थे।

हाँ, एक बात लिखना भूल गई। साबरमती आश्रम में संडास सफाई के लिए कभी मेहतर नहीं रखा गया। सब बारी-बारी से सफाई करते थे। उस समय मल की बालटियाँ दूर खेत में ले जाकर डालनी पड़ती थीं। मैंने भी इस सफाई में भाग लिया है। महादेवभाई देसाई तथा काका साहेब, किशोर लाल भाई भी यह काम करते थे। यह काम भी छुआछूत, जात-पाँत दूर करने का ही हिस्सा था। इसके बाद आश्रम की बहनें आसपास के गाँवों में सफाई करने तथा बच्चों को नहलाने भी जाती थीं। साबरमती आश्रम में जो मेहमान आते थे, वे भी संडास सफाई में जरूर भाग लेते थे। इस तरह समाज से छुआछूत दूर करने का कार्य बापू ने जीवनी भर किया।

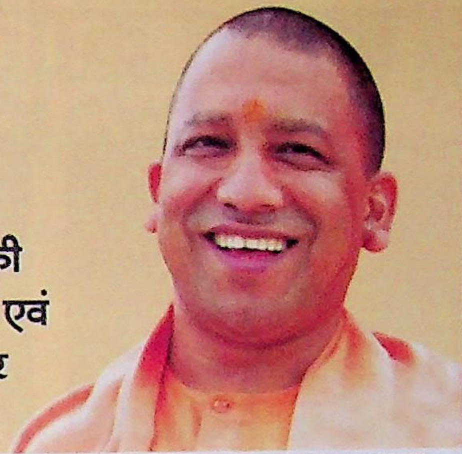
साबरमती आश्रम के पास एक शिव मंदिर था। बा वहाँ हर सोमवार को पूजा करने जाती थीं। परंतु जब पता चला कि उस मंदिर में हरिजन नहीं जा सकते तो बा ने मंदिर जाना बंद कर दिया। इसी तरह एक दूसरा प्रसंग भी मुझे याद आता है। एक बार पुरी के जगन्नाथजी के मंदिर में बा दुर्गा बहन (महादेवभाई की पत्नी) के साथ गईं। जब बापू को यह पता चला तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कहा, जहाँ हरिजन नहीं जा सकते, वहाँ बा क्यों गईं?

(श्री शंकरदयाल सिंह की पुस्तक 'महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति' से साभार)

सबका साथ–सबका विकास–सबका विश्वास



सोशल आडिट के बढ़ते कदम



समाज के सभी वर्गों को भारत सरकार/राज्य सरकार की योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता, जनसहभागिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उठाये गए महत्वपूर्ण कदम।

सोशल आडिट क्यों?

- ग्राम पंचायतों और अन्य कार्यदायी संस्थाओं के कार्यों में पारदर्शिता, जन–सहभागिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित कराने के लिए।
- लेखों की जॉच के साथ कार्यों का भौतिक सत्यापन, समाज की सहभागिता और निगरानी में।
- योजनाओं का लाभ समाज के सभी वर्गो को प्राप्त कराने के लिए।
- योजनाओं में जन–सामान्य को उनके हक, अधिकार एवं कर्तव्य के बारे में जागरूकता।

जन जागरूकता के लिये किए गए प्रयास

जन–जागरूकता रैली, सभी विकास भवनों पर होर्डिंग लगाकर, स्कूली बच्चों को जागरूकता रैली में सम्मिलित कर, स्कूटर मोटर–साइकिल रैली, लोकगीतों के माध्यम से तथा पम्पलेट्स बाँट कर एवं सोशल आडिट बैठक के पूर्व माइक द्वारा सूचना देकर आम–जन को सोशल आडिट जैसी पारदर्शी प्रक्रिया से जोड़ा गया, जिससे सोशल आडिट की बैठक में जनमानस की सहभागिता बढ़ी।

टेस्ट आडिट

सोशल आडिट की गुणवत्ता बनाये रखने के लिये निदेशालय द्वारा टेस्ट आडिट करायी जाती है।

अब तक की प्रगति

- वर्ष 2018–19 में 20,887 ग्राम पंचायतों की सोशल आडिट करायी गयी।
- वर्ष 2019–20 में माह सितम्बर, 2019 तक 16 हजार से अधिक ग्राम पंचायतों में सोशल आडिट करायी गयी।
- 31 मार्च 2020 तक प्रदेश की सभी ग्राम पंचायतों में सोशल आडिट कराने का लक्ष्य है।

क्या हासिल किया

सोशल आडिट के द्वारा जन सामान्य **'मेरा काम मेरा दाम' 'मेरा पैसा मेरा हिसाब'** जैसे स्लोगन से अपनी आवाज उठाने में सफल हुआ। मनरेगा–प्रधानमंत्री आवास योजना जैसी योजनाओं से ग्रामवासियों के जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आया तथा अपनी बात रखने का एक जनतांत्रिक मंच प्राप्त हुआ है।

जन सामान्य से अपील

सोशल आडिट एक सतत प्रक्रिया है। निदेशालय की वेबसाइट **http://socialauditup.in** पर उपलब्ध कैलेण्डर के अनुसार अपनी–अपनी ग्राम पंचायतों के सोशल आडिट ग्राम सभा की बैठक में सक्रिय भागीदारी कर जवाबदेही सुनिश्चित करने में योगदान करें और सोशल आडिट को और अधिक जनोपयोगी बनायें।

राजेन्द्र प्रताप सिंह (मोती सिंह)

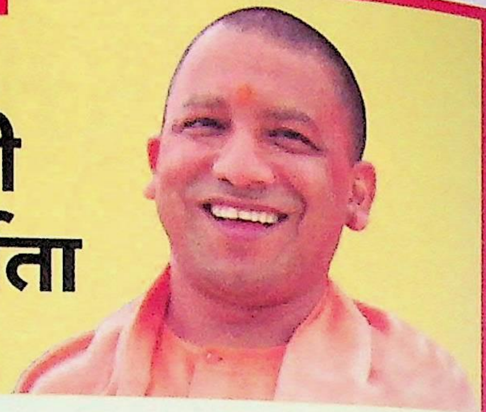
मंत्री, ग्राम्य विकास विभाग, उत्तर प्रदेश

सोशल आडिट निदेशालय, उत्तर प्रदेश–ग्राम्य विकास विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा जनहित में जारी।

सबका साथ–सबका विकास–सबका विश्वास

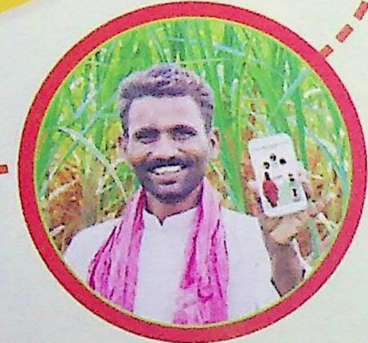



गन्ना किसानों की सुविधा एवं पारदर्शिता हेतु






"वेबपोर्टल" www.caneup.in एवं "ई-गन्ना एप" E-Ganna

का

शुभारम्भ




योगी आदित्यनाथ

मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश
के कर-कमलों द्वारा

विशेषताएं

- गन्ने से संबन्धित सर्वे, तौल, पर्ची, कलैण्डर तथा समस्त जानकारियां।
- एसएमएस के जरिये गन्ने का वजन और पर्ची जारी होने पर संदेश।
- गन्ना माफिया पर प्रतिबंध एवं पारदर्शी तरीके से गन्ने का क्रय–विक्रय।

किसान भाई, सर्वप्रथम ईआरपी वेबपोर्टल **www.caneup.in** पर जायें → वेबपोर्टल पर दिये लिंक 'ई-गन्ना प्रणाली' पर क्लिक करें। → 'किसान भाई अपना डेटा देखें' पर क्लिक कर जिला, फैक्ट्री, ग्राम तथा नाम का चयन कर समस्त जानकारियां प्राप्त करें।

दोपहिया वाहन चलाते समय हेलमेट का प्रयोग करें।

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश



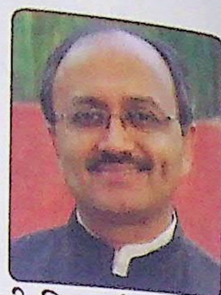
श्री योगी आदित्यनाथ
मा. मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

उ.प्र. खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड

8-तिलक मार्ग, लखनऊ

U.P. Khadi & Village Industries Board

8-Tilak Marg, Lucknow



श्री सिद्धार्थ नाथ सिंह
मा. मंत्री, खादी एवं ग्रामोद्योग, उ.प्र.

GRAM-KHADI BOARD
Website-www.upkvib.gov.in

Ph. (0522) 2208313, 2208321, 2207004, 2208287 Fax (0522) 2208243
E-mail: ceoupkvib@gmail.com



श्री नवनीत सहगल
प्रमुख सचिव/
मुख्य कार्यपालक अधिकारी
खादी एवं ग्रामोद्योग विभाग

विभाग द्वारा संचालित स्वरोजगार योजनाओं का विवरण

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम

- 18 वर्ष से ऊपर आयु के पुरुष/महिला/व्यक्तिगत उद्यमी/पंजीकृत संस्था/सहकारी समितियाँ एवं स्वयं सहायता समूह।
- परियोजना का अधिकतम आकार विनिर्माण क्षेत्र के लिए ₹25.00 लाख और सेवा क्षेत्र के लिए ₹10.00 लाख।
- शैक्षणिक योग्यता—विनिर्माण क्षेत्र के लिए ₹10.00 लाख और सेवा क्षेत्र के लिए ₹5.00 लाख से अधिक की परियोजना, लागत के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता आठवीं कक्षा उत्तीर्ण।
- लाभार्थियों का चयन जिलाधिकारी की अध्यक्षता में गठित जिला स्तरीय कार्य दल समिति द्वारा साक्षात्कार के माध्यम से किया जाता है।
- सामान्य श्रेणी के लाभार्थियों के लिए परियोजना लागत का 10 प्रतिशत व अन्य श्रेणी के लाभार्थियों के लिए परियोजना लागत का 5 प्रतिशत अंशदान लाभार्थी द्वारा जमा किया जाता है।
- अनु. जाति/अनु. जन-जाति/अ.पि.व./अल्पसंख्यक, महिला, पूर्व सैनिक, शारीरिक विकलांग श्रेणी के लाभार्थियों हेतु प्रोजेक्ट कॉस्ट का 35 प्रतिशत एवं सामान्य श्रेणी के लाभार्थियों को 25 प्रतिशत की मार्जिनमनी सब्सिडी अनुमन्य है।

पं. दीनदयाल ग्रामोद्योग रोजगार योजना

- इस योजनांतर्गत प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम योजना की वित्तपोषित/स्थापित इकाइयों को ब्याज उपादान की सुविधा अनुमन्य है, जो मार्जिनमनी सब्सिडी व उद्यमी के अंशदान घटाने के बाद अवशेष ऋण पर अधिकतम 13 प्रतिशत तक ऋण के प्रथम वितरण की तिथि से तीन वर्षों तक प्रदान की जाएगी।

मुख्यमंत्री ग्रामोद्योग रोजगार योजना

- 18 वर्ष से ऊपर आयु के शिक्षित-बेरोजगार नवयुवक/युवतियों को गाँव में ही रोजगार उपलब्ध कराने के लिए 10 लाख रुपए तक की वित्तीय सहायता राष्ट्रीयकृत/ग्रामीण बैंको के माध्यम से प्रदान की जाती है।
- लाभार्थियों का चयन शासन द्वारा समय-समय पर गठित जिला स्तरीय चयन समिति के माध्यम से साक्षात्कार के द्वारा जिलाधिकारी/मुख्य विकास अधिकारी की अध्यक्षता में गठित चयन समिति के माध्यम से किया जाता है।
- योजनांतर्गत सामान्य जाति के लाभार्थियों को 4 प्रतिशत (महिला को छोड़कर) तथा अन्य को 0 प्रतिशत पूँजीगत ऋण उपलब्ध है।

व्यावहारिक प्रशिक्षण योजना

- योजना के अंतर्गत समस्त जनपदों के ग्रामीण क्षेत्र के उद्यमियों हेतु व्यावहारिक प्रशिक्षण खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड के प्रशिक्षण केंद्रों के माध्यम से प्रदान किया जाता है।
- योजना के अंतर्गत उद्योग प्रारंभ करने से पूर्व उद्योग प्रबंधन का पूर्ण ज्ञान, व्यावहारिक समस्याओं का निवारण, वित्तीय प्रबंधन, जी.एस.टी. एवं विभिन्न प्रकार के पंजीयन एवं विधिक राय से संबंधित सात दिवसीय प्रशिक्षण विभाग द्वारा प्रदान किया जाता है।
- उद्यमियों के उत्पाद की गुणवत्ता जाँच हेतु लखनऊ एवं गोरखपुर में गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशाला स्थापित है, जहाँ मानकीकरण की सुविधा भी उद्यमियों को उपलब्ध है।

सबका साथ-सबका विकास-सबका विश्वास



जन शिकायतों के त्वरित निस्तारण हेतु



सी.एम. हेल्पलाइन, उत्तर प्रदेश

1076

सेवा ▸ सहयोग ▸ समाधान

मुख्यमंत्री हेल्पलाइन - 1076

मुख्य बिन्दु



24x7
टोल फ्री नम्बर



500 सीटर
कॉल सेन्टर



बैक–एण्ड पर
आईजीआरएस



80,000 इनबाउंड तथा
55,000 आउटबाउंड
कॉल्स प्रतिदिन की क्षमता



शिकायतों के
निस्तारण का
100% फीडबैक

किसी भी शिकायत/सूचना/सुझाव हेतु तत्पर

कार चालक सीट बेल्ट अवश्य पहनें।

महात्मा गांधी और अल्पसंख्यक

• प्रवीण दत्त शर्मा

'मैं सनातनी हिंदू हूँ।' यह गांधीजी कहा करते थे। हिंदू धर्म से उनका तात्पर्य जीवन-मूल्यों से था। उनके इस कथन में व्यापकता है, जिसमें संपूर्ण मानवता के लिए जगह है। यद्यपि वे स्वयं मानते हैं कि वे मूल रूप से हिंदू हैं, परंतु बहुसंख्यक होने के कारण वे हिंदू धर्मावलंबियों से यह चाहते हैं कि वे अल्पसंख्यकों को अपने साथ लेकर चलें, उन्हें अपने छोटे भाई का दर्जा दें। जिस प्रकार घर में बड़ा भाई कमजोर स्थिति वाले छोटे भाई की साज-सँभाल करता है, उसी प्रकार बहुसंख्यक वर्ग के लोग अल्पसंख्यक समाज को सहारा दें। इस प्रकार की भावना से समाज का जो अद्भुत ताना-बाना बनेगा, उसी से सच्चे और अच्छे भारत का निर्माण हो सकेगा। इसी सोच के चलते गांधीजी कई जगह अल्पसंख्यकों के प्रति अपेक्षाकृत नरम दिखाई पड़ते हैं। यह बात अलग है कि उनकी इस नरमी का कई कट्टर किस्म के लोगों ने गलत मतलब निकाला और उन्हें मुसलमान प्रेमी और न जाने क्या-क्या संज्ञाएँ दे डालीं।

गांधीजी का जीवन धार्मिक प्रवृत्ति की अपनी माता पुतली बाई और नौकरानी रंभादाई के सान्निध्य में बीता। इन दोनों की शिक्षाओं से उन्होंने रामनाम का महत्त्व और हिंदू धर्म का मर्म जाना। यही कारण है कि गांधीजी श्रीराम के भक्त बने, श्रीकृष्ण के जीवन को भी उन्होंने पढ़ा और जीवन भर राम और श्रीकृष्ण की शिक्षाओं से प्रभावित रहे। श्रीराम की चारित्रिक विशेषताओं और रामनाम के महत्त्व के बारे में उन्होंने काफी लिखा। इसी प्रकार उन्होंने गीता की भी बड़ी प्रभावशाली टीका की। लेकिन इन सबके बावजूद वे कट्टर नहीं हुए, उनकी मानसिकता संकुचित नहीं हुई, अपितु अपने धर्म पर अडिग रहते हुए वे सभी धर्मावलंबियों को सम्मानपूर्वक साथ लेकर चले।

गांधीजी के जीवन में अल्पसंख्यक

गांधीजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं, उनके कार्यों और आंदोलनों में अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों का बहुत महत्त्व है। उनका जीवन आगे बढ़ा, तो कई जगह उनके सारथी मुसलमान बने। यदि उनका बचपन याद करें, तो उनका नटखट दोस्त शेख महताब उनके साथ था। जब वे दक्षिण अफ्रीका वकालत करने गए, तो यहाँ भी जिनके साथ और जिनके लिए उन्हें काम करना था, वे दादा अब्दुल्ला भी मुसलमान



सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित। गांधीवादी पत्रिका 'अंतिम जन' और 'अनासक्ति दर्शन' का संपादन। पुस्तक 'गांधी युग का हास्य-व्यंग्य' का संपादन। संप्रति गांधी स्मृति दर्शन समिति, राजघाट नई दिल्ली में संपादक के पद पर कार्यरत।

थे। दादा अब्दुल्ला ने दक्षिण अफ्रीका में स्थापित होने में उनकी काफी मदद की। दक्षिण अफ्रीका में ही गांधीजी ने संघर्ष करना और दूसरों के हक के लिए शांतिपूर्वक ढंग से लड़ना सीखा। यानी बैरिस्टर मोहनदास से समाजसेवी और संघर्षशील गांधी वे दक्षिण अफ्रीका में ही बने। इस तरह से देखा जाए तो यदि दादा अब्दुल्ला उन्हें अपना केस लड़ने दक्षिण अफ्रीका नहीं बुलाते, तो महात्मा गांधी के जीवन का इतना विस्तार न हो पाता। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटकर गांधीजी १९१७ में बिहार के चंपारण पहुँचे। यहाँ उन्होंने चंपारण के किसानों की व्यथा सुनी और उन्हें नील की खेती के दंश से उबारने का निश्चय किया। महात्मा गांधी ने चंपारण का सत्याग्रह आरंभ किया। विश्व के इस सबसे शांतिपूर्ण आंदोलन के कारण आखिरकार अंग्रेज सरकार को घुटने टेकने पड़े और किसानों पर लगाई गई दमनकारी नीतियों को वापस लेना पड़ा। गांधीजी ने चंपारण आंदोलन में अनेक लोगों का सहयोग लिया। राजकुमार शुक्ल, राजेंद्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, अनुग्रह नारायण सहित अनेक लोग इस आंदोलन में उनके हमसफर बने। लेकिन इन सबके अलावा इस आंदोलन में उनके एक महत्त्वपूर्ण सहयोगी का नाम आता है, वह है मजरूल हक का। चंपारण सत्याग्रह में कदम-कदम पर मजहरूल हक उनके साथ चले।

गांधीजी के सहयोगियों में एक और महत्त्वपूर्ण महानुभाव थे—हकीम अजमल खाँ। हकीम साहब से महात्मा गांधी बहुत प्रभावित हुए और उनके कार्यों की गांधी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। अजमल खाँ की मृत्यु पर गांधीजी ने कहा था, ''हकीमजी के स्वर्गवास से मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान और दृढ़ साथी ही खोया है, बल्कि एक ऐसा मित्र खोया है, जिसपर मैं आड़े अवसरों पर भरोसा कर सकता था। हिंदू-मुस्लिम एकता के बारे में वह हमेशा ही मेरे रहबर थे। यद्यपि उनका शरीर अब

नहीं रहा, मगर उनकी भावना तो हमारे साथ बराबर रहेगी और वह अब भी हमें अपना कर्तव्य पूरा करने को बुला रही है। जब तक हम सच्ची हिंदू-मुस्लिम एकता पैदा नहीं कर लेते, उनकी याद बनाए रखने के लिए हमारा बनाया कोई स्मारक पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता।''

बादशाह खान और सीमांत गांधी के नाम से प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खान भी महात्मा गांधी के विशेष सहयोगी रहे। उन्होंने १९२० में 'खुदाई खिदमतगार' नामक संगठन की स्थापना की। वे १९३० में महात्मा गांधी के करीब आए और फिर उनके होकर रह गए। खान ने सदैव अहिंसा और सत्य के गांधी के आदर्शों को अपनाया। बादशाह खान के बारे में महात्मा गांधी का कहना था, ''छोटे भाई खान, अब्दुल गफ्फार खान तो मुझे गहरी भावनाओं से ओत-प्रोत प्रतीत हुए, परंतु उनके विचार संकीर्ण नहीं हैं। मुझे तो वह विश्वप्रेमी मालूम पड़े।''



इसके अतिरिक्त अब्बास तैयबजी, अली बंधु, डॉ. मुख्तार अब्बास अंसारी, अहमद मुहमद काछलिया आदि अनेक मुसलमान ऐसे थे, जिनके साथ मिलकर गांधी ने अपने संघर्ष को एक नया आयाम प्रदान किया। गांधीजी के मुसलमानों के साथ-साथ अनेक ईसाई व पारसी नेताओं से भी बड़े मधुर संबंध थे। सी.एफ. एंड्रूज भी एक ऐसे ही व्यक्ति थे। वे भारत में आकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े। गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीका में थे और भारतीयों के हितों के लिए संघर्ष कर रहे थे या यों कहें कि सत्याग्रह का ककहरा सीख रहे थे, तब १९१४ में गोपाल कृष्ण गोखले ने उन्हें गांधी की मदद करने के लिए अफ्रीका भेजा था। एंड्रूज की मदद से गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों की अनेक समस्याओं को हल किया। उनके साथ अपने संबंधों पर टिप्पणी करते हुए गांधीजी ने कहते हैं, ''हमारा संबंध एक हिंदुस्तानी और एक अंग्रेज के बीच मित्रता का नहीं, बल्कि सत्य के दो जिज्ञासुओं और सेवकों के बीच न टूटनेवाला एक प्रेम-बंधन था।''

रुस्तमजी जीवनजी पारसी गांधीजी के जीवन में १८९३ में आए। गांधीजी ने जब अफ्रीका में नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की, तब रुस्तमजी को इसका उपाध्यक्ष बनाया गया। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी द्वारा चलाए गए रंगभेद विरोधी अभियान के दौरान १३ जनवरी, १८८७ को उग्र भीड़ ने गांधी और उनके परिवार पर हमला कर दिया। ऐसे में किसी की भी परवाह किए बगैर रुस्तमजी ने उन्हें अपने घर में रखा। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में रुस्तमजी ने कदम-कदम पर उनका साथ दिया। गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में उन्हें अपना सबसे विश्वसनीय दोस्त माना।

गांधीजी की अल्पसंख्यक विषयक दृष्टि

गांधीजी की अल्पसंख्यक विषयक दृष्टि के बारे में इतिहासकार, टीकाकारों के विभिन्न मत हैं। कई लोग उन्हें अल्पसंख्यक के हितैषी मानते हैं, कुछ का कहना है कि उन्होंने हिंदुओं से ज्यादा अल्पसंख्यकों को तरजीह दी। कुछ उन्हें उनके अल्पसंख्यक प्रेम के लिए कोसते भी हैं। लेकिन उन्हें कोसनेवाले यदि गांधीजी के विचारों को, उनकी प्रामाणिक पुस्तकों को पढ़ें तो पाएँगे कि वे किसी एक धर्म, मजहब के प्रेमी नहीं थे, अपितु उनकी तो रग-रग में एक ही मजहब था, वह था भारतीयता का मजहब। ९ अगस्त, १९४२ के 'हरिजन सेवक' में गांधीजी लिखते हैं—''हिंदुस्तान उन सब लोगों का है, जो यहाँ पैदा हुए हैं और पले हैं और जो दूसरे किसी देश का आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए वह जितना हिंदुओं का है, उतना ही पारसियों, बेनी इजरायलों, हिंदुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दीगर गैर हिंदुओं का भी है। आजाद हिंदुस्तान में राज्य हिंदुओं का नहीं, बल्कि हिंदुस्तानियों का होगा और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या संप्रदाय के बहुमत पर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा। स्वतंत्र हिंदुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर चुने जाएँगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं है।'' गांधीजी यह जानते थे कि भारत किसी एक जाति या मजहब का होकर नहीं रह सकता, बल्कि भारत तो एक सतरंगी इंद्रधनुष के रूप में ही खूबसूरत लगेगा, जिसमें विभिन्न जाति, मजहब, धर्म, भाषा, पोशाक बोलियाँ इत्यादि के रंग भरे हों। इसलिए वे केवल मुसलमान ही नहीं, अपितु ईसाई, पारसी, यहूदी जैसे अल्पसंख्यक समुदाय को साथ लेकर चलने की बात कहते रहे। गांधीजी कहते हैं, ''कौमी या सांप्रदायिक एकता की जरूरत को सब कोई मंजूर करते हैं। लेकिन सब लोगों को अभी यह बात जँची नहीं कि एकता का मतलब सिर्फ राजनीतिक एकता नहीं है। राजनीतिक एकता तो जोर-जबर्दस्ती से भी लादी जा सकती है। मगर एकता के सच्चे मानी तो हैं दिली दोस्ती, जो किसी के तोड़े न टूटे। इस तरह की एकता पैदा करने के लिए सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि कांग्रेसजन, फिर वे किसी भी धर्म के माननेवाले हों, अपने को हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी यहूदी बगैरह सभी कौमों के नुमाइंदा समझें। हिंदुस्तान के करोड़ों बाशिंदों में से हरेक के साथ वे अपनेपन का, आत्मीयता का अनुभव करें। यानी वे उनके सुख-दुःख में अपने को उनका साथी समझें।''

स्पष्ट है कि गांधीजी की अल्पसंख्यक विषयक दृष्टि बड़ी वृहद थी। वे अल्पसंख्यकों के साथ अच्छे संबंध चाहते थे, ताकि देश अटूट रहे। देश संगठित रहे। भारत की संस्कृति और उसका नक्शा अखंड रहे। महात्मा गांधी 'हिंद स्वराज' में लिखते हैं—''हिंदुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सकते हैं, उससे वह एक राष्ट्र मिटनेवाला नहीं है। जो नए लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजा को तोड़

नहीं सकते, वे उसकी प्रजा में घुल-मिल जाते हैं। ऐसा हो, तभी कोई एक मुल्क राष्ट्र माना जाएगा। ऐसे मुल्क में दूसरे लोगों को समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिंदुस्तान ऐसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी, उतने धर्म। ऐसा मान सकते हैं। एक-राष्ट्र होकर रहनेवाले लोग एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते, अगर देते हैं, तो समझना चाहिए कि वे एक राष्ट्र होने के लायक नहीं हैं। अगर हिंदू मानें कि सारा हिंदुस्तान सिर्फ हिंदुस्तानियों से भरा होना चाहिए, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिए। फिर भी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं, एक देशी-एक मुल्की हैं। वे देशी भाई हैं और उन्हें एक-दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।''

आजादी के समय जब हिंदू-मुसलमानों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी, तो गांधीजी तड़प उठे। हिंदू-मुसलमान, दो भाइयों के बीच लगी आग को मिटाने का उस समय गांधीजी ने हरसंभव प्रयास किया। करीब ८० साल का एक वृद्ध व्यक्ति, जिसका साथ धीरे-धीरे उनके कई राजनीतिक सहयोगी भी छोड़ गए थे, वह अकेले ही हिंदू-मुसलिम के बीच खड़ी वैमनस्यता की दीवार तोड़ने में लगा था। १५ अगस्त, १९४७ को सारा देश आजादी का जश्न मनाने दिल्ली के लालकिले पर उमड़ पड़ा था। भारत के तमाम बड़े राजनीतिज्ञ उस समय लालकिले की शोभा बढ़ा रहे थे, लेकिन वह व्यक्ति, जो इस पूरे राजनीतिक घटनाक्रम का सूत्रधार था, जिस गांधी के प्रयासों के कारण भारत आजादी का सूरज देख रहा था, वह स्वयं उस जगह मौजूद नहीं था। गांधीजी उस समय राजनीतिक चमक-दमक से दूर बंगाल के नौआखली क्षेत्र में सांप्रदायिक उपद्रवों को शांत करने में लगे हुए थे। भारत विभाजन के निर्णय के कारण देश में जहाँ-जहाँ उन्मादी दंगे हुए, गांधीजी अपने जीवन की परवाह किए बिना अधिकांश जगहों पर गए। भीड़ को शांत करने का प्रयास किया। उन्हें एक होने का मंत्र दिया। बताया कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यकों को आपसी कटुता छोड़कर साथ मिलकर चलना होगा, अन्यथा यह देश कहीं का नहीं रहेगा। अल्पसंख्यकों के प्रति गांधी की उदारता कई कट्टर सोचवाले लोगों को नागवार गुजरी। इसके कारण लोगों ने कई जगहों पर उनका विरोध किया। उनकी प्रार्थना सभाओं में हुड़दंग किया गया। उन्हें मोहम्मद गांधी तक कहकर बुलाया गया। लेकिन गांधीजी अविचल अपने मार्ग पर चलते रहे।

आजादी के समय जब हिंदू-मुसलमानों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी, तो गांधीजी तड़प उठे। हिंदू-मुसलमान, दो भाइयों के बीच लगी आग को मिटाने का उस समय गांधीजी ने हरसंभव प्रयास किया। करीब ८० साल का एक वृद्ध व्यक्ति, जिसका साथ धीरे-धीरे उनके कई राजनीतिक सहयोगी भी छोड़ गए थे, वह अकेले ही हिंदू-मुसलिम के बीच खड़ी वैमनस्यता की दीवार तोड़ने में लगा था।

२ मई, १९४७ की प्रार्थना सभा में गांधीजी ने धर्म की जो व्याख्या की, वह अनुकरणीय है। वे कहते हैं, ''हमें याद रखना है, धर्म का पालन जोर-जबर्दस्ती से नहीं हो सकता। धर्म का पालन करने के लिए मरना होगा। संसार में ऐसा कोई धर्म पैदा नहीं हुआ, जिसमें मरना न पड़ा हो। मरने का इल्म सीखने के बाद ही धर्म में ताकत पैदा होती है। धर्म के वृक्ष को मरनेवाले ही सींचते हैं। धर्म उन लोगों के कारण बढ़ता है, जो ईश्वर का नाम लेते हैं, ईश्वर का काम करते हैं, ईश्वर का स्तवन करते हैं, उपवास और व्रत करते हैं तथा ईश्वर से आरजू करते रहते हैं कि हे भगवन्, हमें रास्ता नहीं दीखता, तू ही दिखा। तब लोग कहते हैं कि वह तो भक्त है और उसके पीछे चलते हैं। धर्म इसी तरह बनता है। मारकर कोई धर्म नहीं पनपा, मरकर ही धर्म पनपा है। यही धर्म की जड़ है। सिख धर्म ऐसे ही बढ़ा है।

पैगंबर मुहम्मद साहब ने भी बिना डर के हिजरत की और हजारों दुश्मनों के हाथों उनको और हजरत अली को उनकी श्रद्धा के कारण खुदा ने बचाया, गोया मौत के मुँह में खेलकर ही मुहम्मद साहब ने इस्लाम की जड़ें मजबूत की थीं। ईसाइयों का इतिहास भी ऐसा ही है। बौद्ध धर्म को भी अगर हम हिंदू धर्म से अलग मानें तो वह भी तभी बढ़ा, जब कई लोग उसके लिए मरे। जितने धर्म हैं, उनमें एक भी मैंने ऐसा नहीं पाया, जिसमें शुरू में कुरबानी न हुई हो। जब धर्म बन जाता है, तब बाद में उसमें बहुत सारे लोग आ जाते हैं और गलत अभिमान पैदा हो जाता है। अब तो हिंदू धर्मवाले भी मार-काट पर उतर आए हैं, जबकि हिंदू धर्म में कभी खून-खराबी करना नहीं सिखाया गया है।''

महात्मा गांधी को जिन कुछ हिंदुओं ने अल्पसंख्यक हितैषी और जिन अल्पसंख्यकों ने उन्हें हिंदू प्रेमी बताया, वे कुंठित सोच के अज्ञानी किस्म के लोग रहे। जबकि गांधीजी का किसी धर्म या जाति विशेष के हितैषी नहीं, अपितु मात्र भारत के हितैषी थे। आजीवन वे इस देश को जोड़ने का प्रयास करते रहे। जाति-पाँति के बंधनों से मुक्त, वर्गभेद से दूर समरस समाजवाला भारत देश उनकी कल्पनाओं में था। समाज के अंतिम आदमी के लिए इस देश में जगह हो और वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करे, यही वे चाहते थे। उनके शब्दों में—''...मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ऊँच-नीच का कोई भेद न हो। जातियाँ मिल-जुलकर रहती हों। ऐसे भारत में अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति और भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।''

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति,
राजघाट, नई दिल्ली-११०००२
praveen.parag@gmail.com
दूरभाष : ७९७६८००८७०



कविताओं में गांधी

असमिया कविता

नंगा फकीर

मूल : **चंद्रकुमार आगरवाला**
अनुवाद : **ज्ञानेंद्रनाथ फूकन**

सत्य पर अटल आस्था, निश्छल शरीर,
ढँकने को कुछ नहीं, नंगे फकीर।
दुखियों के दुःख में हृदय का उँडेला रुधिर,
सब कुछ समर्पित तुम्हारा, नंगे फकीर!

क्षणभर में न भूली दुर्दशा दुःखी की,
सम्मान को ठुकरा चले, नंगे फकीर!

अपने हाथ से सौंपा खोया हुआ रत्न,
दुःखी के हाथ में दिया डाल चक्र सुदर्शन।
विशाल हृदय में तैंतीस करोड़ को दिया स्थान,
भारत देवता तुम्हीं नंगे फकीर।

पृथ्वी का महाप्रतापी शक्तिशाली अंबरभेदी गिरिराज
नत मस्तक हुआ तुम्हारे आगे।
तुम्हारे मुख से निकला शब्द गंभीर,
भारत की वज्रवाणी, नंगे फकीर!





ओड़िया कविता

स्मृति-तर्पण

मूल : **बैकुंठनाथ पट्टनायक**
अनुवाद : **सच्चिदानंद पट्टनायक**

इस कालनेमि दल ने तऊमारी भूमि में
अपने कौशल से तुम्हें मार दिया,
कालाबाजारी इस भूमि में आज प्रभु बनकर बैठी है,
तुम्हारे चले जाने के बाद इन्होंने सबकुछ बिगाड़ दिया

तुम्हारे गले की माला और वस्त्र,
दिखाने के लिए सार वस्तु बन गई हैं।

लेकिन चारों तरफ सिर्फ अंधकार और हाहाकार है,
जिधर देखो, उधर चल रही है रूक्ष दानव की लीला,
झरना सूख गया और दिखाई पड़ते हैं कंकड़-पत्थर।
आर्त जनता के लिए कहीं भी,
एक बूँद आँसू किसी के नयन में दिखाई नहीं पड़ता,
जिधर देखो, उधर घूम रहा है स्वार्थ,
अहंकार का स्रोत।
राजनीति जीवन को ठेलकर आँखमिचौनी खेलती है,
खा जाओ स्वाधीनता के नाम से जितना खा सको।
मुख में मैत्री और सत्य का नाम लेकर,
चतुरता के साथ पीछे से ढेला मारो।

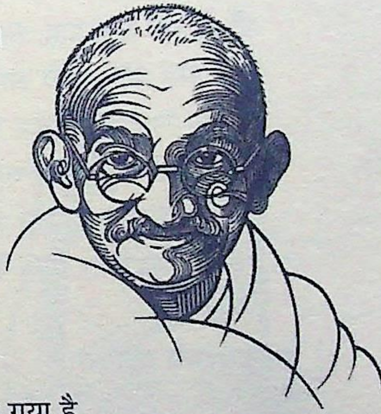
तुम्हारे खून से स्वीधीनता को पाकर,
तुम्हारी स्मृति को कौशल से
भेज दिया संग्रहालय में।
तुम्हारे नाम से लीला कीर्तन में उन्मत्त होकर
देश की आत्मा को पीछे से,
कौशल से काट दिया।
सत्याग्रह के गौरव को नीचा किया,
और मंत्र-बाण छोड़कर साम्य का गला घोंट दिया।

अंधी जनता निराश होकर देखती है,
इस स्वाधीन देश में रास्ता ढूँढ़ती है,
रास्ता कहाँ है।

तुम्हारा निर्देश-पथ कहीं खो गया,
आज नकली मयूर बनकर नाचते हैं कितने,
कुहुक सृष्टि-सर्जना कर।
आज बापूजी के बदले देश में लाख-लाख बापू,
बहाते हैं प्राणहीन आँसुओं की बूँदें।
दृढ़ लाठी की ठक-ठक आवाज,
अर्जित धन को खो देंगे,
यह जितना धर्म बगुला है।
भस्म स्तूप से मृत्यु का उपहास कर,

हे पूर्ण ब्रह्मचारी, जाग्रत् हो जाओ।
सत्य, निष्ठा, पौरुष और सरलता,
विपथगामी को फिर अपनी बात सुना दें।
तुम्हारे झंडे को जो लोग पकड़े हुए हैं,
उनकी पुरुषत्वहीनता हरण कर सत्य मंत्र से
उनको उद्दीप्त करो,
फिर आरंभ करो दांडी यात्रा,
गुणी लोग एकत्र होने से,
खूनी लोग अपने आप चुप हो जाएँगे
दृढ़तर होकर जाति आगे पाँव बढ़ाएगी,
वीर संन्यासी फिराकर ले आएँगे हमारा गौरव
तुम्हारा कल्पित युग जो पुराण में लिखा है,
वह 'रामराज्य' फिर दिखाई देगा।
नि:स्व मुख में मुसकराता दिखाई देगा
मूक जनता थोड़ा कुछ खाकर सुख से जिएगी।
हे आजन्म त्यागी! फिर तुम पुकारो,
आ जाएँगे पास अर्धनग्न
संन्यासी, वैरागी,
जाग्रत् होंगे सत्यान्वेषी,
अटल सत्याग्रही,
दुर्दिन अंधकार का अवसान होगा,
और यह संसार उद्भासित होगा।
आत्मदान जिसका चिर आदर्श और ध्यान बन गया है,
वह पुनर्जीवित करेगा मुरदों को,
और आगे बढ़ाएगा।
जिसकी अपनी क्षुधा हुई नहीं शांत,
देखो! चारों तरफ कैसे त्याग, निष्ठा,
सत्य मलिन हो रहे हैं
गांधीजी! आओ छोड़कर स्वर्गलोक,
छा गया आज जीवन-पथ में मृत्यु का अंधकार।
मूक जनता के आर्त अश्रु में तुम दर्शन दो,
तुम्हारा आदर्श और तुम्हारी अमृतवाणी,
फिर विपथगामियों को अपने रास्ते पर ला दे।

□



कन्नड़ कविता

गांधीजी के चरणों में

मूल : **के.एस. नरसिंह स्वामी**
अनुवाद : **सिद्धगोपाल**

अफ्रीका के अंधकार में तूने प्रकाश फैलाया
अंग्रेजों के अधिकार-मद का नाश किया
दूसरों के दुष्कर्मों से दुखी होकर आँसू बरसाकर
उपवास की आग पर चलकर आया।

कष्टपीड़ितों की माता बनकर उनकी सेवा की
दीनों की छाया बना और पिता बना
जो तुझे मारने आया, उसको ईसा की तरह हाथ जोड़े
सुकरात! तूने फिर एक बार विष पिया।

पृथ्वी पर अहिंसा को देखकर आशीर्वाद दिया
चरखे में सरल जीवन के माधुर्य को बढ़ाया
भारत की मुक्ति के लिए श्रम करके तू तारक बन गया
तेरा प्रकाश सबके हृदयाकाश में है।
राम और अल्लाह एक ही हैं, यह कहकर
नोआखाली के रक्त से आँखें धोकर,
सौहार्द्र सेतु के शांतिध्वज के समान, हे लोकगुरु!
तूने जीवकोटि को पुकारा।

जहाँ-जहाँ तेरे श्रीचरण गए, स्वर्ग निकट आ गया
भौतिक जीवन परम ज्योति बन गया
तेरे प्राण ने आकाश को मानवता से भर दिया
तेरे प्रेम ने सारे संसार पर उसे
अपना समझकर राज्य किया।

सारा देश आँसुओं का अर्घ्य तेरे चरणों में
देकर सिर झुकाता है; हे पिता, हमें सन्मार्ग दिखला
समुद्र अंधकाराच्छन्न है, नैया डूब न जाए!
प्रकाश के लिए भारत को हाथ पकड़कर चला,
हे पिता, आ!

□

महात्मा

मूल : **वी. सीतारमय्या**
अनुवाद : **सिद्धगोपाल**

तू बस कुछ जानता था, सबको प्रिय था तूने
सबको विजय किया। तूने सब सौंदर्य का उपभोग
करके उसे जान लिया, किंतु तुझे तब तक संतुष्टि नहीं थी
जब तक कि सभी लोग उसका उपभोग न कर सकें।

सब ही काल के लोगों के और सभी देश के लोगों
के हृदयों में एक ही प्रेम बह रहा है।
सभी लोगों के मन में संघर्ष करनेवाले भाव
एक ही हैं। पीड़ा का ढंग एक ही है।

किसी को भी दुःख हो, तो पीड़ा का अनुभव तुझे होता था
और किसी की खुशी से तुझे खुशी होती थी।
जहाँ कहीं भी कोई सत्य में बाधक हो,
तो तू उस सब जगह जाकर
सेवा करने लगता था। दीनों, आर्तजनों और निर्बलों को
भाई समझकर उनकी रक्षा करता था।
तेरा हृदय पिघल जाता, मन पड़पता,
करुणा के साथ पुकार कर तू
उनके हृदयों की पीड़ाओं को कम करता।

अशुभ के शरीर से शुभ को निचोड़कर आत्मसात् करके
सर्वत्र शुभ के सार की वर्षा करता था
और भविष्य में सब जगह अभिवृद्धि हो,
यह कहते हुए उन्नति के बीज को बोता था।

'बाह्य रूपों में भेद होने पर भी भीतर सब जगह एक
ही जीवन विराजमान है, यह मैंने देख लिया।
अब तुम्हें भी यह दिखलाऊँगा'
यह कहता हुआ ज्ञान की खुशी से गर्वित था।

जगत् की सौख्यश्री का मधुर स्वप्न देखता हुआ
गर्वित होकर उसे अपनी चाल-ढाल के
ताने-बाने में ले आनेवाला।
जीता रहकर जीवन की इच्छा,
जीवन को उज्ज्वल बनाने की इच्छा,
महिमायुक्त होने की इच्छा को सिखानेवाला।

□

कश्मीरी कविता

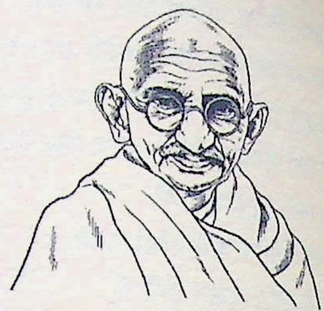
गांधीजी

मूल : **अमीन 'कामिल'**

अनुवाद : **शंभुनाथ भट्ट 'हलीम'**



युग-लता पर एक सुंदर गुल खिला।
खिल उठा आनन दुखी संसार को॥
फाख्ताएँ देख कुछ न्यारी छटा,
छेड़ बैठीं राग उपयुक्त काल का
पवन ने भी पास ही उस बेल के,
हाथ-सा उठा किसी के कर जले।
इस समय में जब कि था पाषाण-राज,
एक शीशे ने रखी साहस की लाज,
हाथ जो उलझी लटें सुलझा गए,
कर युगल वे ही कटे, पथरा गए।
जो अधर गति सहज के गान हैं,
उनके पहरेदार बेसुर कान हैं।
ज्योति-पुंजों को जो रवि सँभालते,
दुष्ट उन्हीं पर हैं अँधेरा डालते।
पर यह कोई और ही मनुजाल है,
है तो शीशा ही मगर इस्पात है।
माँगता है, जुल्म का भी हो भला,
कंटकों से भी नहीं कोई गिला।
वह दराँती में बदल दे तेग को,
उघड़ तन से सहे हिम के वेग को,
आदि-अंत के दायरों को छोड़कर,
गगन के भोले सितारों का निकर
कहे जब तक भेद नभ के भूमि से।
अरुणिमा जब तक चसक भरती रहे,
पर्वतों की दिलबरी करती रहे।
यों ही जब तक प्रात-सायं को सदा,
कोई ईसा कोई गांधी आएगा,
आएगा निज रक्त देकर जाएगा
भाल मानव जोति का चमकाएगा।
आदमी की है यह कोई और जात,
हमको जाने मिल सका कैसे प्रभात।



□

गुजराती कविता

किसके लिए रोऊँ

मूल एवं अनुवाद : **मनसुखलाल झवेरी**

मैं किस-किसके लिए रुदन करूँ?
हे युगपुरुष बापू, क्या तुम्हारे शेष कार्यों के लिए रोऊँ
या जनता के लिए लिए रोऊँ, जगत् के लिए रोऊँ?
यह मानव जाति आज क्षुधित है, भयत्रस्त है,
घायल पड़ी है, आज यह पुनः अशरण बन गई है।
तो क्या इसके लिए रुदन करूँ?

हे हरि! तुम्हारे सामने आगामी युगों की असंख्य पंक्तियाँ खड़ी हैं। उनके सामने हम लोग कितने अल्प, कितने हीन और कितने अकिंचन प्रतीत होंगे। हम अज्ञ और अल्पज्ञ कुछ भी पहचान नहीं पाए। हमारे बीच में आकर प्रभुवर की दैवी करुणा-धारा, मूर्त रूप में प्रवाहित हो रही थी, किनारों तक को छू-छूकर बह रही थी। और हम अज्ञ उसे पहचान तक नहीं सके।

धिक्कार है अपने पुराने संस्कारों को! जिन्होंने तुम्हारे धवल-अमल यश को धूल में मिला दिया है। तुमने हमें सुधा प्रदान की और हमने विष का वमन किया। हमने रवि को भुलाकर तिमिर

की आराधना की है।
धिक्कार है अपने पुराने संस्कारपुंज को।

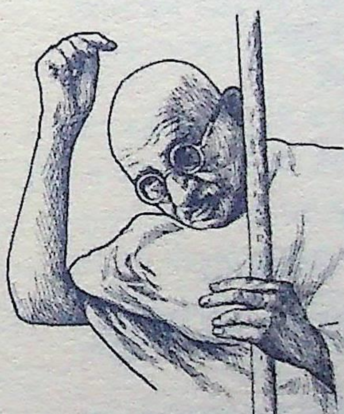
अब तो खरी-खरी बात तू कहने लगा है कि
यदि मैं जनमा ही नहीं होता, तो तुझे मानव
जाति की यह विपथ गति निहारनी नहीं पड़ती।

यहाँ पर भगवती धरित्री भारी हृदय से विलाप कर रही है और
तीनों काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) म्लान मुख होकर स्तंभित हैं। □

सहसा यात्रा

मूल एवं अनुवाद : **सुंदरम्**

हे बापू! तुमने सहसा यह अज्ञात यात्रा
क्यों प्रारंभ की? हे शांतिप्रिय बापू, इस
प्रकार की आँधी उठाना तुम्हारे लिए शोभास्पद
नहीं है, तुम चले गए, रुके ही नहीं।
'जाता हूँ' इतना कहने को भी तुम नहीं रुके
और इस प्रकार पलभर के लिए तो
पृथ्वी के हृदय को भी स्तंभित कर गए।



विश्व में तुम्हारा कोई वैरी नहीं है,
अहो, प्रणय की वेदिका रचने के लिए
तुमने जगत् के वैर से शत्रुता ठानी।
उस संग्राम में तुम केवल प्रभु का कवच
धारण करके जूझते रहे, इसलिए कि
विश्व में पर्वत सा उन्नत शांतिसदन बना सको।

उस संग्राम में तुम खेत रहे
मानो प्रभु द्वारा ही वह त्राण अवतीर्ण हुआ
क्या प्रभु की वह शाश्वत करुणा ही
तुमको बाँध गई है?
मानव द्वारा कल्पना किए गए
प्रेम-मत का यही सिद्धिपथ है कि सदा
ही संत लोग दुर्जनों के हाथों से
मारे जाते रहे। यही अंतिम पथ है
पृथ्वी अभी तक रो रही है।

गांधीजी तो धरित्रि के प्रकट रुदन-सदृश थे
हे प्रभु, तुमने उनको उठाकर
रुदन को बढ़ा दिया है;
तुम्हीं बताओ,
ये रुदन मुसकराहट में कब परिवर्तित होंगे?
बताओ, क्या पृथ्वी के लिए
तुम्हारा आनंद प्रकट नहीं होगा?

हे महानट, अपने सत्य-आनंद
के पूर्ण घट को अक्षुण्ण
धरित्री के तीर पर प्रकटाओ।

□

तेलुगू कविता

माँ गांधी

मूल : **बसवराजु अप्पाराव**
अनुवाद : **राघवराव**

अँगोछा पहने तो क्या
हमारे गांधी
वणिक-कुल में जनमे तो क्या
माखन जैसा मन
माँ का सा प्यार
परिपक्व मुख पर ब्रह्म तेज।
चार बालों की चुटिया
नाचनेवाली चुटिया
चारों वेदों का सार
जाननेवाली चुटिया।
पोपला मुँह खोलने पर
मोतियों की बौछार
मंद-मंद मुसकराने पर
रत्नों की बारिश खुलकर
सर-सर पग बढ़ाते
जग सारा डगमगाता
उनके जो बोल अमरबोल, वेदवाक्य।
कौशिक क्षत्रिय
क्या हुए नहीं ब्रह्मर्षि
आज वणिक-पुत्र भी हुए ब्रह्मर्षि। □

महात्मा

मूल : **राय प्रोलु सुब्बाराव**
अनुवाद : **राघवराव**

वन में विस्मृत बुद्धदेव को विलोक
जिस दिव्य माँ ने पिलाया था दूध
वह सुजाता तुम्हारे गले में
आज अमृतरस भरने

क्यों न दौड़ आती
भाग्य के बल से।

दो हजार वर्ष बाद
ऋषियों की इस भूमि में
फहराया था तुमने
अहिंसा ध्वज को अंबर तक
मरणोन्मुख हिंसा पिशाच को
इतनी सी देह का काटकर
कर दिया तुमने बलिदान, महान्।

पृथु की निचोड़ी जीवनोषधियाँ
छलकाती हैं संजीवनी
इस पुण्यलोक का वातावरण, नयनाभिराम
काम आए तुम्हारे कायाकल्प के लिए
अहर्निश, अपरिमेय।

कर देकर दंडवत्, लाड़ से
श्री की अर्चना करते
ऐरावत को
आतंकित कर, दंशित कर
हिंसित कर, हँसनेवाले
क्रूर वन्य मृगों को
प्यार से पुचकारकर
तुमने पिलाया था दूध
प्रेम और अहिंसा का पावन वदरान लेकर।
भेदभाव से कश्मल जग में
वैर से कभी नहीं मिटते वैर
संदेश दिया महान् तुमने,
कँटीले ताज को छोड़कर
दे दिया है अपना सिर
सिहर उठा है सार संसार।

रक्त-रंजित हैं हस्त
रुधिरपूर्ण हैं पाँव
फिर भी, स्मित वदन से
शूली पर चढ़कर
मौन मिन्नतें कीं शत-शत
'प्रभु, अपराधियों को क्षमा कर!'
उस ईस की किंचित् कीर्ति
तुमने अपनों को बाँट दी।

गुरु की वेदिकाओं के पार
भूपों के सिंहासनों के परे
प्रेम का दीप जलाकर
अंकित किया है तुमने धर्म मुद्र
वाह रे, जाग उठा है भारत का भाग्य।

मातृगर्भ व्रण के निदान के लिए
हाय, तुमने स्वयं को
अर्पित किया शस्त्र के हाथ
विषैला न हो जाए कहीं तन सारा
क्यों नहीं उतर आते
शर वेग से
ऊर्ध्व नक्षत्रलोक के सिद्धपुरुष
भयंकर घाव भरने
सत्य के कोष से प्रस्फुटित हुआ सत्य
प्रज्वलित हुई ज्योति
तम को चीरकर
मृत्यु के कर में
अमरता का पात्र लिये
तोड़ दिए हैं तुमने
भव-बंधन सारे।

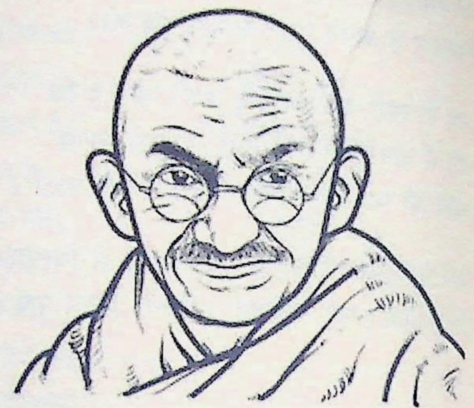
□

पंजाबी कविता

गांधीजी

मूल एवं अनुवाद : **भाई वीर सिंह**

हे कुकनूस[१]!
हे चालीस करोड़ों को
अपने पंखों में लेकर उड़ते रहनेवाले
कुकनूस!
तूने गीत गाए
एकता के, समता के
अहिंसा के, अझुकता (अनमिता) के
तेरे दीपक-राग ने
इस वसंत ऋतु में ले ली अग्नि
अपनों के बीच ही
हाँ, भस्म की ढेरी
हो गया तेरा शरीर
हे करुणाधन!
आ!
ला झड़ी,
बरस घना
घना हो के बरस,



भस्म की ढेरी के बीच से
फिर उग पड़े कुकनूस!
निराश न होवो,
आस धारो,
अरदास[२] कर।
कुकनूस के स्रष्टा के आगे
प्रार्थना जारी रखो।
कि भेज दे
प्रसाद मेघावली अंबर से,
बरसे मया धार[३]।
उग पड़े फिर कुकनूस
(अपनी भस्म ढेरी से)
फिर आ सँभाले
स्वतंत्रता,
फिर आकर करे
स्वतंत्रता की सँभाल।

---

१. *कुकनूस एक गानेवाला पक्षी है, जिसके गाने से आग निकलती है और उसमें वह स्वयं भस्म हो जाता है।*
२. *विनती करो*
३. *कृपा करके*

□

बँगला कविता

गांधी महाराज

मूल : **रवींद्रनाथ ठाकुर**
अनुवाद : **भवानी प्रसाद मिश्र**

हम गांधीजी के चेले
हों सादे या अलबेले

पर एक बात में एक सभी
निर्धन को हम न सताते
धनिकों को सिर न झुकाते
पड़ते भय से पीले न कभी।
डंडा ताने चिल्लाता
दुर्जन जब दौड़ा आता
हम उससे कहते हैं हँसकर
ये आँखें लाल तुम्हारी
होंगी बच्चों को भारी
हम निर्भय हमको क्या डर।
सीधी बातें, सीधा ढंग
उनमें न मिलावट का रंग
उलझन न चतुरता वाली है
कानूनी पेंच नहीं कुछ
झंझट उसमें न कहीं कुछ
सीधे ही कोठरी काली है।
दल बाँध-बाँण आए हम
घरद्वार छोड़ धाए हम
खुल गिरे हाथ से झनझन
सब जनम-जनम के बंधन
लग गई भाल पर गांधीजी की छाप
सारे कलंक धुल गए, मिटे सब पाप।

□

मराठी कविता

बापूजी, प्रणाम!

मूल : **राजकवि काळेले**
अनुवाद : **प्रभाकर माचवे**

बापूजी, प्रणाम!
अंतिम प्रणाम!
भारतपिता! राष्ट्रप्रसविता! स्वातंत्र्यसविता!
परात्परगुरो! अंतिम प्रणाम!
चरखाचक्रधर! खादीविभूषण!
सत्याग्रहियों के आदि वीरोत्तम!
हरिजनोद्धारक! अंतिम प्रणाम!
दांडी के यात्रिक! 'भारत छोड़ो' के मांत्रिक!
अंतिम प्रणाम!
शुचित्यागमय! सत्यागार! करुणासागर!
महात्मन्! प्रणाम! अंतिम प्रणाम!
अहिंसामूर्ति! प्रेम के पीहर! दलितबंधो!
अपर श्री खृस्त! प्रणाम! प्रणाम!
बापूजी, प्रणाम! अंतिम प्रणाम!

□

वसुंधरे!

मूल एवं अनुवाद : **श्रीकृष्ण पोवळे**

आज महाकाव्य का सर्ग समाप्त हुआ
आज हिमालय गंगा में पिघल गया
जिस हृदय में शांति का शब्द उठा
उसी हृदय को भेदकर उसका अंत कर दिया!

जब तेरे शरीर पर रक्त के छींटे गिरे
तब हे वसुंधरे! तू कैसे कंपित न हुई?
अपनी कक्षा में घूते हुए, 'बैलेंस' छूटकर
तू नीचे जलते-जलते हुए क्यों न टूट पड़ी?
तूने क्राइस्ट के अंत का आक्रोश सुना है,
तूने बुद्ध का निर्वाण देखा है।
उसके बाद आज यह नया बलिदान है
वसुंधरे! तू फिर भी अभी अज्ञ, अजान है!

क्या तुझे उनके हृदयों के रक्त की प्यास है
जो आजीवन शांति के लिए अशांत हैं
तू उन अमानवों के वश क्यों होती है
जो तेरी पीठ पर हंटर चलाते हैं?
शांतिप्रेम के बिना इन महामानवों की
मिट्टी की क्या खाक कीमत है?

आज शांति का स्वर विलीन होने पर
मुझे यह भूगोल शव के समान जान पड़ता है।
यह शब्द पुनः व्योम में से उठेगा,
इस रक्त की धारा पुनः फव्वारा बनकर छूटेगी
परंतु, हे वसुधे!
अपना शेणित प्राशन कब तजोगी?
कब तेरे हृदय से रक्त के बजाय दूध झरेगा?

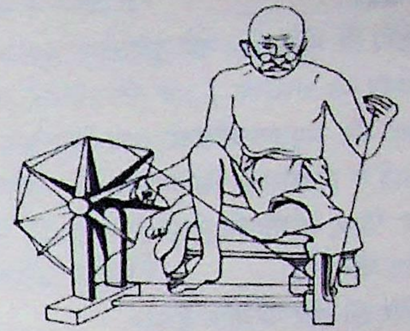
□

मलयालम कविता

भारतेंदु

मूल : **जी. शंकर कुरुप**
अनुवाद : **जी. नारायणपिल्ले,**
लक्ष्मीचंद्र जैन

चाँद!
याद है तुझे,
साठेक वर्ष पहले की बात है,



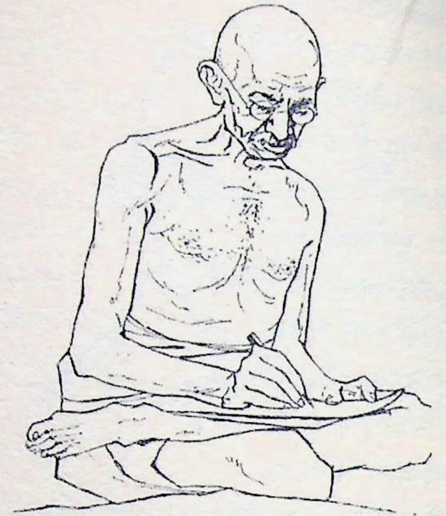
यहाँ इस पोरबंदर में
बड़ी-बड़ी आँखें
लंबी ऊँची नाक
और बड़े-बड़े कानों वाला
एक दुबला-पतला बालक
छत पर खिड़की के पास
उत्तरोत्तर अधीर खड़ा रहता था,
उझक-उझककर झाँकता था
जब देर हो जाती थी आने में तुझे
बादलों के नीलारण्य की
डालियाँ हटाते-हटाते।
प्राणों सी प्यारी माँ
शायद उपवास से परिक्षीण होकर
नीचे कहीं काम कर रही हो!
कितना कष्ट कठाना पड़ता है
माता के करों को
अपने बच्चों के लिए घर में
एक दूसरे स्वर्ग की रचना करने में
अगर सामने चला आता तू चांद!
तो वह छत से नीचे छौड़ पड़ता
और माता को चंद्रोदय का समाचार देकर
उसका चुंबन पाता
प्यार भरी माँ के
स्नेहार्द्र चुंबन से बढ़कर
'मोहनदास' के लिए
कोई दूसरा उत्सव ही नहीं था।
हर्ष मुकुलित नयनों से
आनंदाश्रु प्रदीप्त तारों ने
उस बच्चे की ओर देखकर कहा—
'हे पुण्यभूमि भारत!
जब यह लाडला बड़ा होगा
तब तुम पृथ्वी का मुकुट बनोगी।'

हे चाँद!
यद्यपि तेरे भाँति सुंदर नहीं हुआ
तथापि वह अकलंक
आर्द्र और अमृतात्मक बना
भारत के इतिहास के क्षितिज में
वह सौम्य, उदारदर्शन मोहन
फिर धीरे-धीरे
ऊपर की ओर गतिशील हुआ।
प्राची
जो काल के संकेत में आधी धँसी
मार्ग भूली
भय से निश्चल होकर
केतु खंडित पड़ी थी
वह धीरे-धीरे गतिमय दिखाई दी
चारों ओर
नई चेतना का ज्वार लक्षित हुआ,
सारे दुस्तर प्रतिबंध डूब गए,
हजारों लहरों में हलचल मच गई।
इतिहास के अतीत के भीतर
डाल दिए गए लंगर को
अत्यंत आनंद के साथ
ऊपर खींचना शुरू किया।
जब प्राची उठी
और आगे बढ़ी तो
मदोन्मत्त होकर गरजती आती
लहरों के ज्वार में
कितने ही देश जाग उठे।
अजेयता के दर्प से भरे
साम्राज्यों ने
कितने प्रपंच नहीं रचाए!
जिन साम्राज्यवादी लुटेरों ने
गुलामी में जकड़ी प्राची को
खून और आँसू के भँवर में
डुबोकर अधमरा कर दिया था
उन पर भी भारतेंदु ने
दुग्ध धवल सात्त्विक प्रकाश फैलाया,
और उस प्रकाश में
उनके क्रूर कर्म का विकृत रूप
उजागर कर दिया

लो,
भारत प्राची का नेतृत्व स्वीकार कर
अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त होकर
और भी आगे की ओर बढ़ रहा है।

हे चाँद!
तेरी भाँति
बापू कभी अछूते ऊपर नहीं रहे,
अपनी जन्मभूमि की
गरीब झोंपड़ियों में
नया आलोक,
नया धीरज
और न सौंदर्य पूरित करने के लिए
स्वातंत्र्य भावना को विकसित करने के लिए,
जीवन के मलिन तटों पर
आँसू के गहरे तलों में
अकिंचन दीन-मानवों के साथ ही वह
सदा घूमते रहे।
जन्मभूमि के दुख का
दाहक ताप पाकर
जब यह स्नेहपूर्ण हृदय
झुलस गया, तो
एकांत सत्य की खोज में निरत
उस महात्मा ने मानवों की आर्द्र आत्मा में
अहिंसा की ज्योति जगाई
जिसकी लौ चारों ओर के
नारकीय चंडवात में भी
अचल रहती है और
सबको प्रकाश देने के लिए
चारों ओर जल रही है।

चाँद!
करो रुदन, क्योंकि
आज एक पापी हाथ
समस्त कृतघ्नता का पुंजीभूत रूप
प्रस्तुत हुआ पटक देने के लिए
मृत्यु शिला पर
विश्व के उस मंगल-दीप को,
जो आतुर था
घोर अंधकार को ध्वस्त करने के लिए
जो परिपूर्ण था
चराचर के प्रम से,



जो जल रहा था
अपनी क्षीण काया की उपेक्षा कर,
ज्योतित था जो
इसलिए कि
पृथ्वी को दिखा दे फिर से
यंत्रों की परछाईं में
छिपी उसकी आत्मा को,
जो था अत्यंत प्रोज्वलित
अपनी किरणों से
छिन्न-भिन्न करने के लिए
भेद-भावना के तमस परकोटों को।

अपने अंतरंग में पालते हैं
ये सभ्य मानव
बाघ की जलती हुई आँख
सिंह के रक्त-भरे नख
साँप के विषैले दाँत
सचमुच,
आज का मानव पशु ही तो है।
वह सौम्याकार
जिसने जीवन को
बनाया एक पावन प्रार्थना
और विराजित हुआ तो
भूमि की विशुद्धि के रूप में
हिंदू, मुसलमान, सिख—सबको सिखाया
कि हैं सब एक ही
सत्यकणिका के विविध अंश,
सुंदर सनातन चैतन्य की ओर
एक ही स्पंदन से उनके चित्त को ऊर्ध्वमुखी किया,

जब वह अपने में
सारा संसार
और सारे संसार में
अपने को देखकर
हाथ जोड़ वंदना कर रहे थे,
तो मानव वर्ग के पापों ने
उनका हृदय विदीर्ण कर डाला;
इतिहास के पन्ने लाल हो गए
फट गया विश्व का निर्मल वक्ष
रक्त बहा इतना कि
विमल संध्याकालीन आकाश भीग गया।

दिवस के मुख से ढल पड़ा सौर बिंब
रक्त की बूँद सा।

लो, काल के आनन पर ढुलके अश्रुकण सा
हमारा यह भूगोल
अभी भी कंपित
दिखाई देता है।

चाँद!
क्या तू
दिशाओं के कंधे पर सिर रखकर
मूर्च्छित हो गया है?
दिल दहलानेवाली इस कथा को सुनकर
तू फक् पड़ गया है?
नहीं बखानूँगा यह कथा
हे आर्द्र हृदय! विदा लो तुम,
जलते आँसुओं से भरा हृदय लेकर
यह भारत खड़ा रहे शोकमग्न।

हे चाँद!
तेरे जाते ही
विदा ले लेगा संसार से
तेरा जगमोहन प्रकाश!
नहीं ठहर पाएगी सुभगता
सागर के वाचाल अधरों पर
धवल कुमुदों के उर के
स्निग्ध मधुर अश्रु में
पर्वत के चिंतामूलक उत्तुंग हृदय में।
यद्यपि भारतेंदु तिरोहित हो गया
उसके धीर संदेश का धार्मिक



प्रभा पूर जीवन के पथ को
सुंदर और आलोकमय बनाता हुआ
भविष्य में बहुत दूर तक फैलेगा।
ज्वाला को बुझाने के लिए
कूद पड़ते हैं काले-काले पतंगे
किंतु वे जल्दी ही पंखहीन बनकर
राख हो जाते हैं,
तब भी ज्वाला रहती है अक्षुण्ण ही
चिता में जला वह तो केवल
मृत्यु का पंख है
आत्मा तो जित् मृत्यु है,
चिरंतन रहा करती है!

□

सिंधी कविता

गांधी!

मूल एवं अनुवादक : **मोतीलाल जोतवाणी**

तुम्हारी कथा
विस्तृत रूपक की तरह
सदा अपने को नया करती रहती है
और फिर प्रत्येक युग के
पाठकों एवं दर्शकों के मनों में
नए अर्थ उजागर करती है,
नए उद्देश्य उभारती है।



नियति के नाटक में
विरोधाभास नायक है
नायक, जो धीर और वीर है
और दुखांत को प्राप्त होता है,
और कथा
पाठक एवं दर्शक में
'कैथार्सिस' जगाती है।

एक की पीड़ा
जग की पीड़ा मिटा सके
एक बलिदान
समस्त देश को जिला सके,
बात तुम-सी समाप्त हो
यों ही कथा अटल, अरोक,
स्वाभाविक विकास पाती है।

□

चरखा की आवाज

मूल : **हूंदराज दुखायल**
अनुवाद : **मोतीलाल जोतवाणी**

तुम्हारे चरखे की आवाज मैंने आश्रम में सुनी
हरेक चाह से कात रहा था,
चाव से कात रहा था, चरखा चला रहा था।

खादी के लिए आवाज मैंने गाँव-गाँव सुनी।
खादी पहन रहा था,
पहन रहा था, उसके गुण गा रहा था।

तुम्हारी अहिंसा की बात दुनिया ने दूर-दूर सुनी
अचरज कर रहा था,
अचरज कर रहा था, हरेक सराह रहा था।

एकता की राजभरी बात हिंदू-मुसलमान ने सुनी
सारे हिंदुस्तान ने सुनी,
हरेक चाह रहा था, भाई अपना रहा था।

तुम्हारी हरिजन आवाज मैंने मंदिरों में सुनी
तीर्थ यात्रियों में सुनी,
हरेक गा रहा था, गले लगा रहा था।

गांधी! तुम्हारी सुकीर्ति मैंने मीनारों पर से सुनी
तारों-सितारों पर से सुनी,
हरेक उच्चारता था, तुम्हें याद करता था।

सा अ



ब्रिटिश हुकूमत को आईना दिखाकर वापस लौटा वह फकीर

• दयाशंकर शुक्ल सागर

आप अपने को भारतीयों की स्थिति में रखकर सोचें। कल्पना कीजिए कि आप सब भारत में रह रहे हैं और भारतीय लोग ग्रेट ब्रिटेन में। अब मान लीजिए, ब्रिटिश द्वीप समूह में रहनेवाले भारतीय आपसे कहें कि 'आप लोग अपना शासन आप चलाने लायक नहीं हैं; हमें देखना होगा कि आप अपनी सेना की व्यवस्था खुद कर सकते हैं अथवा नहीं या आपके यहाँ से हमारे हट जाने पर चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान या रूस से जो आक्रमणकारी आप पर टूट पड़ेंगे, उनसे आप अपनी रक्षा कर सकते हैं अथवा नहीं।' इस पर आपका उत्तर यही तो होगा कि 'हम अपना फायदा-नुकसान खुद देख लेंगे या कम-से-कम वैसी कोशिश तो करेंगे।'

—गांधीजी *(सम्मेलन के दौरान भाषण का अंश)*

लंदन के गोलमेज सम्मेलन का कोई बड़ा नतीजा नहीं निकला, लेकिन पहली बार किसी हिंदुस्तानी ने ब्रिटिश हुकूमत को उन्हीं के देश में उनके प्रधानमंत्री के सामने आईना दिखा गया। उन्होंने बताया कि ब्रिटिश राज भारत को कितना महँगा पड़ रहा है। उन्होंने दो टूक कहा कि वह भारत की चिंता न करें। हमें आजाद करें। हम अपनी चुनौतियों से निपट लेंगे। गोलमेज सम्मेलन भारत की आजादी की लड़ाई का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। तीस के दशक में परदे के पीछे चल रही राजनीति और अंग्रेजों के शह-मात के खेल में महात्मा गांधी हमेशा एक कदम आगे रहे।

महात्मा गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए तैयार हो गए थे। गांधी-इर्विन समझौते की शर्तें बहुत कमजोर डोर से बँधी थीं। कांग्रेस ने जिस पूर्ण स्वराज का दावा लाहौर में किया था, वह पूर्ण स्वराज दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। बातचीत अगर सफल भी हो जाती, तब भी एक अधूरा और टूटा-फूटा स्वराज भारत के हाथ आता। जैसा कि खुद महात्मा के अपने खास अंग्रेज दोस्त रेजीनाल्ड्स रेनॉल्ड्स ने गांधीजी द्वारा गोलमेज परिषद् में भाग लिए जाने की मंजूरी को असंगत बताते हुए महात्मा से पूछा था कि 'तब फिर पूर्ण स्वतंत्रता संबंधी लाहौर के प्रस्ताव का अर्थ ही क्या बच रहता है।' उन्होंने कहा, 'शासनारूढ़ दल भारत के साथ कभी न्याय नहीं करेगा; करेगा तो उसे अपनी सत्ता से हाथ धोना पड़ेगा। ऐसा नहीं मानना चाहिए कि सत्ता का 'हृदय-परिवर्तन' हो गया है।' इसलिए गांधीजी का परिषद् में भाग लेना अपने 'जन्मसिद्ध अधिकार से समझौता' करना है। नौजवान नेता जवाहरलाल नेहरू के भी कुछ ऐसे ही विचार थे। लेकिन महात्मा की अंतरात्मा की आवाज सबसे ज्यादा शक्तिशाली थी।


शिमला में 'अमर उजाला' हिमाचल और जम्मू-कश्मीर संस्करण के स्थानीय संपादक रहे; महात्मा गांधी पर शोध। उनकी चर्चित पुस्तक 'महात्मा गांधी ब्रह्मचर्य के प्रयोग' का तीसरा संस्करण आने वाला है। पत्रकारिता में तीन बार केसी कुलिश अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता अवार्ड से सम्मानित। कई देशों की यात्राएँ कर चुके हैं।

लेकिन इस पूरे ड्रामे का असल 'एंटी-क्लाइमेक्स' अभी बाकी था। वायसराय बदल गए थे। १७ अप्रैल, १९३१ को लॉर्ड विलिंगडन ने नए वायसराय का पद सँभाला। अगले दिन लॉर्ड इर्विन की विदाई हो गई। नए वायसराय के आते ही गांधी-इर्विन के महान् समझौते की चिंदियाँ उड़ने लगीं। ले-देकर इस समझौते में कांग्रेस को इतनी छूट मिली थी कि 'वह शराब की दुकानों के सामने धरना देकर मद्यपान विरोधी भाषण' दे सकते थे। या 'विदेशी माल की दुकानों के सामने शांतिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन' कर सकते थे। अब यह करना भी मुश्किल हो गया था। धरने पर बैठे कांग्रेसियों की गांधी टोपी देखकर पुलिसवाले लाठी भाँजना शुरू कर देते। पूर्वी गोदावरी के वादपल्ली कस्बे में पुलिसवालों ने सिर्फ इसलिए गोली चला दी, क्योंकि आम जनता मना करने के बावजूद 'एक मोटर की छत पर महात्मा की तसवीर रखकर उसकी पूजा कर रही थी।' गोली कांड में चार मरे, कई घायल हुए।

नए वायसराय चालाक किस्म के आदमी थे। आंदोलनकारियों को बेवकूफ बनाने की कला वह लंदन से सीखकर आए थे। कांग्रेस अपनी शिकायत लेकर उनके सामने पहुँचती तो वह ऐसे दिखाते जैसे उन्हें कुछ पता ही न हो। वह उनके सामने ही अफसरों को बुलाकर डाँटते-फटकारते और कांग्रेसियों के जाने के बाद वह उनकी पीठ थपथपाते। गांधी-इर्विन समझौता टूटकर सड़कों पर बिखर रहा था। क्या इसी समझौते के लिए महात्मा ने भगत सिंह और उसके साथियों को फाँसी

के फंदे पर झूल जाने दिया था? पता नहीं सच क्या था। लेकिन जैसा कि पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा, 'जुलाई के पहले सप्ताह में गांधीजी के दिल में यह संदेह पैदा हो गया कि क्या सबकुछ टूट और गिर तो नहीं रहा?'

लेकिन सवाल प्रतिष्ठा का था। इस समझौते को लेकर महात्मा बहुत आगे जा चुके थे। अस्थायी समझौते के टूटने का मतलब था, एक बेकार की कवायद, जिसकी देश को भारी कीमत चुकानी पड़ी थी। समझौता बनाए रखने की कोशिश जारी रखते हुए महात्मा ने २७ अप्रैल को भारत सरकार के गृह सचिव एच.डब्ल्यू. एमर्सन को पत्र लिखा, '... समझौते के भंग न होने देने में मुझे आपकी सहायता की जरूरत है। मैं लॉर्ड इर्विन को वचन दे चुका हूँ कि समझौता भंग न होने देने की दृष्टि से मैं ऐसा कोई भी काम, जिसे न करना मेरे लिए अशोभनीय न हो, नहीं करूँगा। लेकिन ताली दोनों हाथों से ही बजती है। मैं यह मानते हुए आश्वस्त हूँ कि आप भी यदि आपसे बन पड़ा तो अपनी ओर से इस समझौते को, जिसे आपने बिल्कुल ही उचित संज्ञा देते हुए 'सज्जनों का करार' कहा है, भंग नहीं होने देंगे।' लेकिन हालात सुधरने का नाम नहीं ले रहे थे। समझौते के बावजूद प्रांतीय सरकारों का दमन जारी था। बारडोली में जबरन लगान वसूली की जा रही थी। महात्मा ने अचानक दूसरे गोलमेज सम्मेलन में जाने से इनकार कर दिया।

लंदन जाने को लेकर और भी कई सारे मतभेद थे। एक बड़ा मतभेद डॉ. अंसारी को लंदन ले जाने को लेकर था। डॉ. अंसारी महात्मा के प्रिय मुसलिम नेताओं में एक थे। वह मुसलमानों के सबसे बड़े दल राष्ट्रीय मुसलिम दल के नुमाइंदे भी थे। महात्मा ने गोलमेज सम्मेलन के प्रतिनिधि के तौर पर तीन नाम दिए थे। मदन मोहन मालवीय, सरोजनी नायडू और डॉ. अंसारी। पूर्व वायसराय लॉर्ड इर्विन का वादा था कि ये तीनों लंदन जाएँगे। लेकिन नए वायसराय ने इस फेहरिस्त में से डॉ. अंसारी का नाम हटा दिया। जैसा कि पहले बताया गया कि वायसराय लॉर्ड विलिंगटन शातिर किस्म के आदमी थे। वह नहीं चाहते थे कि गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी की पसंद का कोई मुसलिम नेता भारत के मुसलमानों की नुमाइंदगी करे। वह यह संदेश देना चाहता था कि भारत के मुसलमान पूर्ण स्वराज के खिलाफ हैं। महात्मा इस चाल को समझते थे, इसलिए उन्होंने ऐन मौके पर वायसराय को लिख दिया—'वह लंदन नहीं जाएँगे। बेहतर होगा, इसकी सूचना प्रधानमंत्री को दे दी जाए।'

महात्मा के इस फैसले से अंग्रेजी हुकूमत और कांग्रेस दोनों को झटका लगा था। गोलमेज सम्मेलन में देश के भविष्य के संविधान पर चर्चा होनी थी। पहली बार देश की जनता का प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाली कांग्रेस लंदन की हुकूमत से सीधी रू-ब-रू होती। लेकिन सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया था। पर ऐसे मामलों में महात्मा बातचीत का एक चोर दरवाजा हमेशा खुला रखते थे। हिंदुस्तानी नेताओं का गुस्सा ठंडा करने के लिए अंग्रेजों के पास खूबसूरत और ठंडी जगह थी—शिमला। महात्मा समेत बड़े कांग्रेसी नेताओं को शिमला बुलाया गया। सरकारी प्रतिनिधियों ने समझौते पर नए सिरे से बातचीत शुरू की। तीन बातें तय हुईं। एक, गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से हिस्सा लेंगे। दो, गांधी-इर्विन समझौते का पालन दोनों पक्ष करेंगे। सरकार कोशिश करेगी कि प्रांतीय सरकारें समझौते का गंभीरता से पालन करें। तीन, बारडोली लगान वसूली के प्रकरण पर उच्च स्तरीय जाँच चलेगी।

इस बातचीत में डॉ. अंसारी के लंदन जानेवाला सवाल हवा हो गया था। लंदन जानेवाली टीम से डॉ. अंसारी पहले ही बाहर थे। गरमी के इन दिनों में शिमला की हवा ने अपना काम कर दिखाया था। लंदन जाने का रास्ता साफ हो गया था। हिंदुस्तानी नेता खुश थे।

अब लंदन जाने के लिए सिर्फ जहाज पकड़ने की देरी थी। महात्मा की निजी टीम में महादेव देसाई, प्यारेलाल, देवदास गांधी का नाम था। मीरा का नाम अलग से जोड़ा गया था। महात्मा की निजी सेवा के लिए प्यारेलाल काफी थे। फिर भी महात्मा मीरा को साथ ले आए थे। इस निर्णय के पीछे उनका अपना सख्त बरताव था, जिसके कारण मीरा पिछले आठ महीनों में टूट-सी गई थीं। सरोजनी नायडू और मदन मोहन मालवीय के नाम पर तो सरकार ने अलग से मंजूरी दी थी। महात्मा की तमाम और अंतिम समय तक की कोशिशों के बावजूद सरकार की ओर से डॉ. अंसारी के लंदन आने का न्योता नहीं मिला था।

आखिर में २९ अगस्त, १९३१ को एस.एस. राजपूताना के उस आखिरी जहाज पर गांधीजी के साथ चढ़नेवालों में महादेव, प्यारेलाल और देवदास के साथ मीरा भी शामिल थीं। यह यात्रा शनिवार को शुरू हुई थी। शनिवार के दिन को हिंदुस्तानी बहुत शुभ नहीं मानते, खासतौर से समुद्री यात्राओं के लिए। बंबई के इस बंदरगाह पर उन्हें विदा करने हजारों की भीड़ एकत्र थी। एक मकान के छज्जे पर खड़े होकर महात्मा ने हिंदुस्तान की जनता को यकीन दिलाया, 'मैं कांग्रेस द्वारा दिए गए आदेश का पालन करूँगा। मैं किसी को धोखा नहीं दूँगा, न अंग्रेजों को और न अन्य किसी को, और भारत के करोड़ों लोगों को धोखा देने का तो सवाल ही नहीं उठता। यदि मैं आपको धोखा दूँ तो मुझे मार डालना भी हिंसा नहीं होगी। मेरी अंग्रेजों से या मुसलमानों से या किसी से भी कोई शत्रुता नहीं है।'

***

महात्मा इंग्लैंड में १२ सितंबर, १९३१ की सुबह दाखिल हुए तो फोकस्टोन नामक जगह पर ब्रिटिश हुक्मरान के नुमाइंदे वहाँ पहले से

उनका इंतजार कर रहे थे। प्रधानमंत्री के दफ्तर से संदेशा आया था कि आगे लंदन तक की यात्रा महात्मा मोटर से करेंगे, लेकिन अकेले। बाकी लोग ट्रेन से ही लंदन पहुँचेंगे। संदेश महात्मा को पसंद नहीं आया था, लेकिन वह उनका अपना देश नहीं था, जहाँ वह हर तरह की जिद करने के लिए आजाद हों। वे इस देश के मेहमान थे। मामला कूटनीतिक था। प्रधानमंत्री नहीं चाहते थे कि महात्मा सार्वजनिक स्वागतों की मालाएँ पहने लंदन में दाखिल हों और सम्मेलन शुरू होने से पहले ही गांधीजी दबाव बनाने की स्थिति में आ जाएँ। मौके की नजाकत को देखते हुए महात्मा मोटर पर बैठने को तैयार हो गए। वह ब्रिटिश सरकार के आतिथ्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहते थे।

लंदन में किंग्सले हॉल की छत पर बने कमरों में बापू और मीरा ठहर गए। बाकी तीनों लोग महादेव, प्यारेलाल और देवदास गांधी नाइट्स ब्रिज के किराए के मकान में रुके। क्योंकि उन्हें यहाँ दफ्तर का काम भी करना था। यहाँ एक दिलचस्प घटना घटी। लंदन में हर साल गरमी के शुरू में घड़ियाँ एक घंटा आगे रखी जाती हैं। लेकिन गांधीजी ने कहा कि वह अपनी घड़ी आगे नहीं बढ़ाएँगे। उनके सारे दैनिक कार्यक्रम उनकी घड़ी के अनुसार होंगे। यानी बापू की प्रातःकालीन प्रार्थना मध्य रात्रि तीन बजे होगी। बापू ने कहा कि वह प्रार्थना करके फिर सो रहेंगे। बाकी सभी लोग नाइट्स ब्रिज में सोते थे। यानी जागना सिर्फ मीरा को पड़ता। वह इसके लिए सहर्ष तैयार थी। उसे रोज रात ठीक तीन बजे बापू को जगाना होता। ३:१५ पर दोनों सुबह की प्रार्थना करते। पौने चार बजे बापू फिर सोने के लिए लेट जाते और मीरा अपने कमरे में वापस आकर अपनी घड़ी में पौने पाँच बजे का अलार्म लगा देती। यह इंतजाम भी सिर्फ एक दिन हो पाया था। मीरा ने लिखा—'इस रात से अच्छी कोई और रात नहीं बीती। और कुछ तो निश्चित रूप में बहुत खराब थीं।'

गोलमेज सम्मेलन का यह अधिवेशन ७ सितंबर से १ दिसंबर, १९३१ तक चलना था। इसमें कुल ११२ प्रतिनिधि शामिल हुए थे। २० ब्रिटिश सरकार के, २३ देशी राज्यों के और ६९ ब्रिटिश भारत के। गांधीजी दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे। प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड राउंड टेबल काउंसिल के अध्यक्ष थे। ७ सितंबर से गरम बातचीत का ऐसा दौर शुरू हुआ कि लगा कभी खत्म नहीं होगा। अल्पसंख्यकों, देसी रजवाड़ों और अंग्रेज अफसरों में परस्पर इतनी गलतफहमियाँ थीं कि पहले दिन से ही लगने लगा कि भारत में सिर्फ समस्याएँ-ही-समस्याएँ हैं। कोई एक-दूसरे से संतुष्ट नहीं।

गोलमेज सम्मेलन का यह अधिवेशन ७ सितंबर से १ दिसंबर, १९३१ तक चलना था। इसमें कुल ११२ प्रतिनिधि शामिल हुए थे। २० ब्रिटिश सरकार के, २३ देशी राज्यों के और ६९ ब्रिटिश भारत के। गांधीजी दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे। प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड राउंड टेबल कार्उसिल के अध्यक्ष थे। ७ सितंबर से गरम बातचीत का ऐसा दौर शुरू हुआ कि लगा कभी खत्म नहीं होगा। अल्पसंख्यकों, देसी रजवाड़ों और अंग्रेज अफसरों में परस्पर इतनी गलतफहमियाँ थीं कि पहले दिन से ही लगने लगा कि भारत में सिर्फ समस्याएँ-ही-समस्याएँ हैं। कोई एक-दूसरे से संतुष्ट नहीं।

सम्मेलन में भारत के भविष्य की नई रूपरेखा तय होनी थी, बशर्ते सभी लोग उसके प्रारूप पर राजी हों। यह संभव नहीं था। अंग्रेज गलतफहमियाँ फैलाने का अपना काम कर रहे थे। वह चाहे लंदन के अंग्रेजी अखबार हों या अफसर। महात्मा के परम मित्र पूर्व वायसराय लॉर्ड इर्विन ने सेंट्रल हॉल में एक भाषण में कह दिया कि वे यह जानते थे कि 'महात्मा पूर्ण स्वाधीनता पर जोर नहीं देंगे।' महात्मा से पूछा गया कि 'क्या यह सच है?' महात्मा को इसका खंडन करना पड़ा। उन्होंने कहा, 'इसके विपरीत, यदि मेरी स्मृति मुझे धोखा नहीं दे रही है तो मैंने उन्हें बता दिया था कि मैं पूर्ण स्वाधीनता पर जोर दूँगा।' उन्होंने कहा, 'पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ मेरे लिए राष्ट्रीय सरकार है।'

इस यात्रा में गांधी ने अपनी उस यात्रा का इस्तेमाल हर उस मंच को हासिल करने में किया, जहाँ वह भारत की आजादी के प्रश्न को दुनिया के सामने रख सकते थे। इस सिलसिले में वह इंग्लैंड में विपक्षी दल के नेताओं, गैर-सरकारी संगठनों, ब्रिटिश प्रेस और हर उस व्यक्ति से मिले जो उनसे मिल सकते थे। सिर्फ विंस्टन चर्चिल उनसे नहीं मिले, जो गांधी को पसंद नहीं करते थे। चर्चिल उन्हें 'अधनंगा फकीर' कहते थे। लेकिन गांधी जी को ब्रिटिश सम्राट् से जॉर्ज पंचम से मिलने का समय जरूर मिल गया। सम्राट् के सेक्रेटरी ने गांधी को सख्त ताकीद की थी वे सही तरीके से कपड़े पहनकर सम्राट् के सामने उपस्थित हों और प्रोटोकॉल का खयाल रखें। लेकिन गांधी ने जानबूझकर उसका पालन नहीं किया और वे फकीर के वेश में ही सम्राट् से मिलने पहुँच गए।

जॉर्ज पंचम से गांधीजी को भारत में अशांति फैलाने के आरोपों को सुनना पड़ा और नसीहतें भी मिलीं। गांधी ने मुसकराकर सम्राट् से कहा कि वे तो भारतीय जनता को अहिंसा का पाठ पढ़ा रहे हैं, जो उसकी प्राचीन जीवन शैली है। खैर, उस संक्षिप्त मुलाकात के बाद जब गांधी महल से बाहर निकले तो ब्रिटिश प्रेस ने उन्हें घेर लिया और तरह-तरह के सवाल पूछे। एक पत्रकार ने व्यंग्य में कहा कि 'मिस्टर गांधी, आप तो इंग्लैंड में रहे भी हैं। कम-से-कम कपड़े तो आपको सही तरीके से पहनकर जाना चाहिए था। सम्राट् के सामने सभ्य तरीके से पेश होना चाहिए था।' इस पर गांधी का जवाब था, 'मेरे हिस्से का कपड़ा तो सम्राट् ने पहन रखा था।'

सम्मेलन में कांग्रेस पूर्ण स्वराज हासिल करने आई थी। अंग्रेज बस यही चीज थी, जो देना नहीं चाहते थे। सम्मेलन की बहसों में महात्मा गांधी ने साफ कहा कि 'कांग्रेस पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता चाहती है। इसके लिए जरूरी है कि देश की अपनी सेना हो और स्वदेशी सरकार का विदेशी और आर्थिक मामलों में पूरा नियंत्रण हो। ब्रिटिश

हुकूमत भागीदार होकर साथ रह सकती है, हुक्मरान बनकर नहीं। अंग्रेज हिंदुस्तान छोड़कर चले जाएँ, ऐसा कोई आग्रह नहीं। लेकिन मालिक-गुलाम का रिश्ता नहीं चलेगा।' इस पर अंग्रेज प्रतिनिधियों का कहना था कि 'आप लोग हुकूमत चलाने के काबिल नहीं हैं। आपके हाथों में ३० करोड़ की जनता का भविष्य सुरक्षित नहीं रह सकता।' राज चलाना अंग्रेजों को आता है। महात्मा अंग्रेजों को समझाते कि उनकी सोच का तरीका कितना गलत है। २० अक्तूबर, १९३१ को चौथम हाउस की सभा में उन्होंने ब्रिटिश प्रतिनिधियों से कहा, 'आप अपने को भारतीयों की स्थिति में रखकर सोचें। कल्पना कीजिए कि आप सब भारत में रह रहे हैं और भारतीय लोग ग्रेट ब्रिटेन में। अब मान लीजिए ब्रिटिश द्वीप समूह में रहनेवाले भारतीय आप से कहें कि 'आप लोग अपना शासन आप चलाने लायक नहीं हैं; हमें देखना होगा कि आप अपनी सेना की व्यवस्था खुद कर सकते हैं अथवा नहीं या आपके यहाँ से हमारे हट जाने पर चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान या रूस से जो आक्रमणकारी आप पर टूट पड़ेंगे, उनसे आप अपनी रक्षा कर सकते हैं अथवा नहीं।' इस पर आपका उत्तर यही तो होगा कि 'हम अपना फायदा-नुकसान खुद देख लेंगे या कम-से-कम वैसी कोशिश तो करेंगे।' ज्यादा-से-ज्यादा यही होगा कि भारतीय लोग एक राष्ट्र के रूप में दुनिया से मिट जाएँगे। महात्मा आगे बोले, 'लॉर्ड सैलिसबरी ने कहा भी था कि अंग्रेज लोग गलतियाँ करते हुए और उनसे सबक लेते हुए सफलता की मंजिल तक पहुँचने की कला जानते हैं। फिर अंग्रेज भारतीयों को ही गलती करने के अधिकार से वंचित क्यों रख रहे हैं?' ब्रिटिशों के सामने महात्मा अपनी बात बेहद तर्कपूर्ण ढंग से रखते। वे यहाँ की जनता को बताते कि ब्रिटिश राज भारत को कितना महँगा पड़ रहा है।

लंबी और थकाऊ बहसों के बावजूद गोलमेज सम्मेलन नाकाम रहा। एक दिसंबर को सम्मेलन के पूर्ण अधिवेशन में प्रधानमंत्री और सम्मेलन के अध्यक्ष मैकडोनाल्ड ने इस बात की घोषणा कि वह 'इतनी लंबी और थकाऊ' बातचीत के बाद भारत को क्या देने जा रहे हैं। सम्मेलन में ब्रिटिश हुकूमत ने जो कुछ भारत को देना चाहा था, उसमें कुछ नया नहीं था। पिछले साल के गोलमेज सम्मेलन के अंत में ब्रिटिश सरकार भारत को जो नया संविधान देने का विचार कर रही थी, उसकी मोटी-मोटी बातें भी यही थीं। यह बात भी इस नए घोषणा-पत्र में पढ़ी गईं। हुकूमत ने कांग्रेस को फिलहाल 'पूर्ण स्वराज' देने से साफ मना कर दिया था। ब्रिटेन के राजा की सरकार भारत के शासन का दायित्व केंद्रीय और प्रांतीय विधान-सभाओं को देने के लिए तैयार थी, लेकिन साथ में इस सरकार ने संक्रांति-काल और विशेष परिस्थितियों के बहाने सत्ता पर काबिज रहने का इंतजाम भी कर लिया था। पूर्ण स्वराज को टालने के लिए वह पहले ऐसे उपाय खोजना चाहती थी, जो अल्पसंख्यक समुदायों की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए जरूरी हों।'

प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड ने अपनी घोषणा में कहा, 'संक्रांति-काल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जिन वैधानिक उपायों की व्यवस्था की जाएगी, उनके संबंध में इस बात का खयाल रखना महामहिम की सरकार का बुनियादी कर्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकारों की रचना इस प्रकार की जाए और उनका प्रयोग इस तरह से किया जाए जिससे नए संविधान के माध्यम से अपना शासन स्वयं चलाने के लिए पूर्ण दायित्व प्राप्त करने की दिशा में भारत की प्रगति के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित न हो।'

प्रधानमंत्री की संक्षिप्त और औपचारिक घोषणा के बाद महात्मा गांधी को धन्यवाद प्रस्ताव पेश करना था। महात्मा का धन्यवाद प्रस्ताव दिलचस्प था। उन्होंने कहा, '…इस समय उस महत्त्वपूर्ण घोषणा के संबंध में, जिसे हमने अभी सुना है, कुछ कहने की आशा हममें से किसी से नहीं की जाती, मुझसे तो और भी नहीं। अपनी सभा की कारवाई का शोभनीय तथा शिष्ट ढंग से संचालन करनेवाला अध्यक्ष सदा धन्यवाद का पात्र होता है, चाहे उस सभा के सदस्य सभा द्वारा किए निर्णयों या खुद अध्यक्ष के निर्णयों से सहमत हों या नहीं।'

अंत में अध्यक्ष के धन्यवाद भाषण में एक चेतावनी थी। उन्होंने कहा, 'और यह याद रखिए कि हम सब एक ही मकसद को पूरा करने के लिए चुने गए लोग हैं, हम वफादारी के एक ही धागे से बँधे हुए हैं, भारत के प्रति वफादारी के धागे से आप हमारे साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़े रहना और विचारों का आदान-प्रदान करते रहना न भूलें।'

अब साफ हो गया था कि हिंदुस्तानियों के लिए वफादारी का धागा तोड़ना इतना आसान नहीं है। यह धागा जो अब ३५ करोड़ की जनता के लिए एक बंधन बन गया था। पूर्ण स्वराज अभी कोसों दूर था। महात्मा यह बात समझ गए थे।

गांधी की उस यात्रा में किसी व्यक्ति ने उनकी मुलाकात अंग्रेजी फिल्मों के मशहूर स्टार चार्ली चैप्लिन से तय करवा दी। चार्ली ने भारत की आजादी को लेकर गांधी के प्रयासों की सराहना की और गांधी से पूछा कि वे मशीनों को लेकर इतने शंकालु क्यों हैं? गांधी ने जवाब दिया वे मशीनों के विरोधी नहीं हैं लेकिन वे मशीनों की वजह से एक इनसान द्वारा दूसरे इनसान के शोषण के विरोधी हैं।

अमेरिका-यूरोप के औद्योगिक माहौल में पले-बढ़े चार्ली चैप्लिन को उस समय ये बातें समझ में नहीं आईं। लेकिन चार साल बाद यानी सन् १९३६ में चार्ली ने एक फिल्म का निर्माण, निर्देशन किया और उसमें अभिनय भी किया, जिसका नाम था, 'मॉडर्न टाइम्स'। उस फिल्म में मशीन, बेरोजगारी और एक मनुष्य के संघर्ष को मार्मिक तरीके से दिखाया। कई सालों के बाद चार्ली चैप्लिन के जीवनीकार ने लिखा कि शायद पाँच साल पहले लंदन में गांधी से हुई मुलाकात का यह असर था कि चार्ली जैसे महान् फिल्मकार ने मॉडर्न टाइम्स नाम की वह फिल्म बनाई। लंदन की उस शाम हिंदुस्तान का वह फकीर उस फिल्मी सुपरस्टार पर भारी पड़ गया।

१२०८, ए-५, चेरी काउंटी
नोएडा एक्सटेंशन
ग्रेटर नोएडा-२०१३०६ (उ.प्र.)
dsssagar@gmail.com



गांधी और राष्ट्रवाद

• गौतम चौबे

पिछले कई सालों से संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप विभिन्न राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों से वैश्विकता की भावना तथा भूमंडलीकरण की नीति के अंत की घोषणा करते आए हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने वैश्विकता और राष्ट्रीयता को परस्पर विरोधी बताते हुए इस बात पर भी जोर दिया है कि वैश्विकता के क्षीण होने से प्रखर राष्ट्रवाद का उदय होगा। लगभग इसी दौरान भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी १५९९ में लिखे पारसी महाकाव्य 'किस्सा-ए-संजन' का अकसर उल्लेख करते दिखे। यह महाकाव्य धार्मिक उत्पीड़न के शिकार पारसियों के अपने मूल देश से पलायन और भारत आगमन की दास्तान है। प्रधानमंत्री इस बात को रेखांकित करते आए हैं कि गुजरात के तत्कालीन सम्राट् जदी राणा (विजयादित्य) ने इन शरणार्थियों को आश्रय देखकर भारत की सर्व-समावेशी परंपरा का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया था। जहाँ एक तरफ गुजरात-नरेश ने सदिच्छा और भारतीय परंपरा के सम्मान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाई, वहीं दूसरी तरफ शरणार्थियों ने भी राजा से यह वादा किया कि वे गुजराती परंपरा में कुछ इस तरह घुल-मिल जाएँगे, जैसे शक्कर दूध में घुल जाती है। उन्होंने राजा को यह विश्वास दिलाया कि गुजरात में उनके बसने से न ही प्रशासनिक चुनौतियाँ बढ़ेंगी और न ही सौहार्द बिगड़ेगा, बल्कि वहाँ के सामाजिक माधुर्य में बढ़ोतरी होगी। यकीनन पारसी शरणार्थियों के इस वादे ने जदी राणा के शरण देने के फैसले को और भी आसान कर दिया होगा। अमेरिका के जिस अवधारणा के प्रति ट्रंप आस्था रखते हैं, उसकी नींव आज से लगभग ४०० वर्ष पहले इंग्लैंड से आए धार्मिक शरणार्थियों ने रखी थी। लेकिन इस स्वरूप को विस्तृत और मजबूत यूरोपीय, एसियाई और अफ्रीकी देशों से आए प्रवासियों ने किया। दूसरी तरफ प्रधानमंत्री मोदी जिस भारतीय संस्कृति और परंपरा की बात करते हैं, वह कम-से-कम ३००० वर्ष पुरानी है। उसकी नींव वेदों में रखी गई। यद्यपि उसमें समय-समय पर शक्कर की थैलियाँ घुलती रहीं, लेकिन उसका मूल स्वरूप बना रहा।

इस लेख के ये शुरुआती उल्लेख और संदर्भ पाठकों को थोड़े अप्रासंगिक लग सकते हैं। लेकिन यह समझना भी जरूरी है कि किसी भी व्यक्तित्व या ऐतिहासिक घटना को पढ़ने-समझने का प्रयास सिर्फ


शिक्षाविद्, अनुवादक और स्तंभकार। दिल्ली विश्वविद्यालय के ए.आर.एस.डी. महाविद्यालय में अंग्रेजी का अध्यापन। हिंदी-अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक विषयों पर लेखन। इन दिनों भोजपुरी साहित्य, यशपाल की पत्रकारिता और स्वतंत्रताकालीन हिंदी पत्रिकाओं में गांधीवाद पर चिंतन-लेखन में रत।

इसलिए नहीं किया जाता है, क्योंकि अतीत में वे बहुचर्चित रहे थे। या फिर सिर्फ इसलिए, क्योंकि उस व्यक्ति या घटना ने इतिहास को एक नया, अप्रतिम या नाटकीय मोड़ दिया था। इतिहासपुरुष और गुजरा दौर हमारे लिए जरूरी हैं, क्योंकि हमारा वर्तमान उनसे निरंतर प्रभावित-निर्धारित होता रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो हम अतीत को समझने की कोशिश इसलिए करते हैं, क्योंकि हमारी रुचि वर्तमान में होती है। हम गांधी के राष्ट्रवादी विचारों को समझना चाहते हैं, क्योंकि हममें उपरोक्त वैश्विक वातावरण को समझने की इच्छा है। हम यह जानना चाहते हैं कि क्या अंतरराष्ट्रीय और वैश्विकता का अंत हो चुका है? क्या देश और विश्व की राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक चुनौतियाँ राष्ट्रवाद की परिभाषा और उससे जुड़ी संभावनाएँ बदल देती हैं? दूध में शक्कर घुलेगा या नहीं, इस बात का फैसला कौन करेगा? दूध या चीनी? हमारी वर्तमान राष्ट्रीय भावना और अंतरराष्ट्रीयता पर गांधी का कितना प्रभाव है? पिछले नौ दर्शकों से गांधी भारतीय नैतिक चेतना के आदर्श और उसके उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते रहे हैं। अतः हमें यह भी पूछना चाहिए कि अगर गांधी आज जीवित होते, तो राष्ट्रवाद की उनकी परिभाषा क्या होती? आतंकवाद और अंतरराष्ट्रीय शरणार्थी समस्या पर उनके विचार कैसे होते?

डच इतिहासकार जोहन हुईजिंग के १९८४ में प्रकाशित निबंध-संकलन 'मेन एंड आइडियास' में राष्ट्रवाद के उद्भव और विकास से जुड़े प्रश्नों को खँगाला गया है। इस किताब के 'पेट्रियोटिज्म एंड नेशनलिज्म इन यूरोपियन हिस्टरी' शीर्षक लेख में हुईसिंग लिखते हैं कि २०वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर तक राष्ट्रवाद श्रेष्ठता की भावना और वैश्विक प्रभुत्व की इच्छा का पर्याय बन चुका था। राष्ट्रवाद की

इस अवधारणा से अनुप्राणित देशभक्त अपने देश की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए दूसरे देशों का और वहाँ बसनेवाले लोगों का अहित करने या उन्हें अपने आधीन करने को सदा तत्पर थे। बचपन में गांधी की राजनैतिक चेतना जब अंकुरित हुई, तो उसने खुद को तथा अपने देश को पाश्चात्य राष्ट्रवाद की इसी परिभाषा का शिकार पाया। इसी वजह से वे बचपन के मित्र महताब के साथ मांस खाने को भी तैयार हो गए। इंग्लैंड में प्रवास के दौरान यही चेतना उन्हें शाकाहारी और समाजवादियों के उस परिधीय समाज के नजदीक ले आई, जिसमें उन्हें पश्चिमी सभ्यता के सिर्फ खान-पान की ही नहीं बल्कि उसके राजनीतिक और सांस्कृतिक मुख्य-धारा की भी प्रत्यालोचना मिली। दक्षिण अफ्रीका में जब यह चेतना और भी विकसित हुई, तो उन्होंने एक लाभप्रद वकालत छोड़ रंगभेद के खिलाफ मुहिम छेड़ दी। और उनकी इसी चेतना ने भारत के सत्याग्रह आंदोलन का रूप ले लिया।



गांधी के राष्ट्रवाद और पाश्चात्य राष्ट्रवाद में कई अंतर नजर आते हैं, जो स्वभाविक हैं। पहला, इस राष्ट्रवाद में इंग्लैंड समेत किसी भी देश का विरोध नहीं है या ऐसा कहें कि कोई भी देश शत्रु नहीं है। अप्रैल १९३१ में 'यंग इंडिया' में प्रकाशित एक लेख में गांधी कहते हैं कि स्वतंत्र भारत से किसी को भी खतरा नहीं होगा। भारत न किसी दूसरे देश का शोषण करेगा और न ही किसी अन्य राज्य द्वारा शोषित होगा। वह औपनिवेशिक प्रणाली और साम्राज्यवाद का घोर विरोधी है। दूसरा, इसमें दूसरे देशों के साथ प्रतिस्पर्धा का भाव भी नहीं है। गांधी का राष्ट्रवाद अंतरराष्ट्रीय सहयोग और पारस्परिकता से सुदृढ़ होता है। यंग इंडिया के दिसंबर १९२४ के अंक में प्रकाशित एक लेख में गांधी एक ऐसे विश्व की कल्पना करते हैं, जहाँ राजनैतिक रूप से स्वतंत्र देशों में परस्पर निर्भरता हो और विभिन्न देशों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान निरंतर चलता रहे। उनका यह मानना था कि आजादी के बाद भी इंग्लैंड और भारत का गठबंधन बरकरार रहना चाहिए। यह वैश्विकता के उसी ईंधन से संचालित होता है, जिसे ट्रंप आज के राष्ट्रवाद के लिए खतरा मानते हैं। तीसरा, गांधी के राष्ट्रवाद में पूँजीवादी लालच और भौतिकवाद के लिए कोई जगह नहीं है। हिंदी स्वराज (१९०९) में वे अंग्रेजों की औपनिवेशिक सत्ता को उनके पूँजीवादी महत्त्वाकांक्षा से जोड़कर देखते हैं। गांधी लिखते हैं, ''नेपोलियन ने इंग्लैंड को दुकानदारों का देश बताया था। यह एक सटीक विवरण है। उनकी जहाँ भी सत्ता है, वे उसे वाणिज्य के हितों के लिए सँभाले रखते हैं। उनकी सेना और उनकी नौसेना इसी का संरक्षण करती हैं।'' अतः स्वतंत्र भारत की उनकी परिकल्पना में ग्राम उद्योग और आर्थिक स्वावलंबन को प्रमुखता मिलती है। चौथा, गांधी के राष्ट्रवादी विचार में आधुनिक सभ्यता, अंधाधुंध वैज्ञानिक तरक्की और भौतिकवादी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति घोर शंका का भाव मिलता है। वास्तव में इस शंका की अभिव्यक्ति के लिए गांधी ने 'हिंद स्वराज' लिखा था। अन्थोनी परेल का मानना है कि हिंद स्वराज के माध्यम से गांधी भारतवासियों को यह समझाना चाहते थे कि आधुनिक सभ्यता उपनिवेशवाद से भी बड़ा खतरा है, क्योंकि भारत के आर्थिक और सांस्कृतिक दोहन की अंग्रेजी प्रवृत्ति आधुनिक सभ्यता का ही नतीजा थी। पाँचवाँ, गांधी के लिए राष्ट्रप्रेम और मानवप्रेम में कोई विरोध या भेद नहीं है। नवंबर १९३३ के 'हरिजन' में छपे एक लेख में गांधी कहते हैं कि 'मैं भारत का एक सामान्य सेवक हूँ और भारत की सेवा के माध्यम से मैं वृहद् मानवजाति की सेवा करने का प्रयास कर रहा हूँ।'

अगर हम ऐतिहासिक और तुलनात्मक संदर्भों से अलग 'राष्ट्रवाद' की शाब्दिक परिभाषा को देखें, तो मुख्य दो अर्थ समने आते हैं। पहले अर्थ में अपने राष्ट्र से प्रेम करने तथा उसके लिए कुरबानी देने को तत्पर रहना राष्ट्रवाद है। दूसरा, राष्ट्रवाद वह जन-आंदोलन है, जो किसी पराधीन देश को रजनैतिक रूप से स्वतंत्र बनाने के लिए आयोजित किया जाए। 'गांधी ऐंड नेशनलिज्म' (२०१२) शीर्षक किताब में सिमोन पेंटर-ब्रिक का यह कहती हैं कि यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधी राष्ट्रप्रेमी थे, लेकिन उनके रजनैतिक जीवन का उद्देश्य मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी। वे दो देशों की नहीं, सिर्फ एक अखंड भारत की आजादी चाहते थे। शायद यही वजह है कि १९४३-४४ तक, जब यह स्पष्ट हो चला था कि भारत में अंग्रेजी हुकूमत की उलटी गिनती शुरू हो चुकी है, उनकी सारी ऊर्जा देश को बँटवारे के दुर्भाग्य से बचाने में लगी। इसी किताब की प्रस्तावना में रौजर लूयी लिखते हैं कि अपने जीवन के आखिरी चरण में देश को बँटवारे से बचाने के उद्देश्य से गांधी अंग्रेजों से भी सहयोग की गुहार लगाते रहे। भारत में विभाजन विमर्श के अग्रणी शिल्पकार मोहम्मद अली जिन्ना को स्वतंत्र भारत का प्रधानमंत्री बनाने को भी तत्पर थे। यह विभाजन की संभावना से उपजी बेचैनी की पराकाष्ठा ही थी कि जिनके विरुद्ध जीवन-पर्यंत संघर्ष करते रहे हैं, अंत में उनका भी साथ चाहा। लेकिन इसके बावजूद देश का बँटवारा हुआ। यद्यपि गांधी के राष्ट्रवाद की रूपरेखा में अनेक मौलिक विचार समाहित दिखते हैं, लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि इसकी आत्मा पाश्चात्य राष्ट्रवाद के प्रतिरोध में विकसित हुई। तो क्या यह मात्र एक नकारात्मक और निषेधात्मक विचारधारा है?

गांधी के अनुसार स्वराज सिर्फ राष्ट्रीय सरकार की स्थापना भर से नहीं मिलेगा। भारत में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति में आत्मशासन की क्षमता का विकास ही वास्तविक स्वराज है। 'यंग इंडिया' के जनवरी १९२५ के अंक में वे लिखते हैं कि स्वराज शब्द से उनका तात्पर्य एक ऐसी सरकार से जो लोगों के सहमति द्वारा चले और जो उन वयस्कों के बहुमत द्वारा स्थापित हुई हो, जिन्होंने राज्य की सेवा की हो और मतदाता सूची में अपने नाम का पंजीकरण करवाया हो। लेकिन इसी लेख में स्वराज की इस प्रयोजनमूलक परिभाषा को खारिज करते हुए गांधी कहते हैं कि

वास्तविक स्वराज तब स्थापित होगा, जब लोगों मे सरकार को नियंत्रित करने की क्षमता विकसित होगी। इसी साप्ताहिक पत्रिका के अगस्त १९२५ के अंक में गांधी कहते हैं कि सरकर के नियंत्रण से आजाद होने के निरंतर प्रयास को ही स्वराज कहते हैं; फिर चाहे वह सरकार विदेशी हो या राष्ट्रीय। क्या गांधी की राष्ट्रवाद की अवधारणा अराजकतावादी है? क्या इस आदर्शवादी परिकल्पना का यथार्थ से कोई वास्ता नहीं है?

□

असहयोग आंदोलन के संदर्भ में हुए गांधी-टैगोर संवाद से इस प्रश्न को समझने में सहूलियत होती है। कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाले 'मॉडर्न रिव्यू' के मई १९२१ के अंक में टैगोर के असहयोग आंदोलन संबंधित विचार छपे। सी.एफ. एंड्रूज को संबोधित इस लेख में टैगोर आंदोलन की निंदा करते हुए पाए जाते हैं। टैगोर का कहना है कि आदर्शों के अनासक्त अनुपालन से ही राष्ट्र का सर्वाधिक हित होगा। अगर छात्र जीवन का आदर्श शिक्षा की उपासना है, तो अंग्रेजी शैक्षणिक संस्थानों का बहिष्कार कर भारतीय छात्र अपना और राष्ट्र, दोनों का नुकसान करते नजर आते हैं। स्वदेशी आंदोलन के दिनों को याद करते हुए टैगोर लिखते हैं—

''मुझे वो दिन ठीक से याद है, जब बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के दौरान छात्रों का एक समूह हमारे विचित्र हाउस के पहले माले पर स्थित सभागार में मुझसे मिलने आया। उन्होंने मुझसे कहा कि अगर मैं उनसे विद्यालय और महाविद्यालय छोड़ने को कहूँगा, तो वे मेरी आज्ञा के पालन को तत्पर हैं। मैं अपने इनकार में दृढ़ था और वे मेरे राष्ट्रप्रेम पर संदेह करते हुए गुस्से में चले गए। लेकिन इस जन-उत्साह के प्रस्फुटित होने से बहुत पहले, जब मेरे पास अपना कहने को पाँच रुपए भी नहीं थे, मैंने स्वदेशी दुकान खोलने के लिए हजार रुपए का चंदा दिया था।''

हालाँकि लेख में टैगोर इस बात को बार-बार दोहराते हैं कि वे मूलतः एक कवि हैं, नेता या स्वतंत्रता सेनानी नहीं, लेकिन वे सिर्फ आंदोलन-पद्धति से ही नहीं, बल्कि उसके उद्देश्य को लेकर भी संशित नजर आते हैं। उन्हें समाज में आदर्शों की स्थापना राजनीतिक स्वतंत्रता से ज्यादा जरूरी लगती है। उनके लिए पाश्चात्य और भारतीय सभ्यताओं का समन्वय तथा पारस्परिक सम्मान की भावना किसी भी राजनीतिक उद्देश्य से ज्यादा अनिवार्य है। टैगोर के इन आरोपों का उत्तर देते हुए जून १९२१ के 'यंग इंडिया' में गांधी लिखते हैं—

''मैं चाहता हूँ कि मेरे घर में सभी देशों की संस्कृतियों का यथासंभव उन्मुक्त प्रसार हो। लेकिन इनके द्वारा विस्थापित होना मुझे स्वीकार नहीं है। मैं किसी दूसरे के मकान में घुसपैठिया, भिखारी या दास बनकर नहीं रहना चाहता। एक कृत्रिम अहंकार या संदिग्ध सामाजिक फायदे के लिए मैं अपनी बहनों पर अंग्रेजी सीखने का अनावश्यक बोझ नहीं डालूँगा।''

'यंग इंडिया' के इसी अंक में छपे एक अन्य लेख में वे टैगोर के प्रश्नों का पुनः उत्तर देते हुए कहते हैं कि असहयोग आंदोलन द्वारा ही भारत और पश्चिमी सभ्यता के बीच वास्तविक और स्वैच्छिक सहयोग स्थापित हो पाएगा। मुक्ति, निर्वाण, ब्रह्म विद्या, बुद्ध, दुःख और आनंद जैसी दार्शनिक संकल्पनाओं पर विस्तृत बहस करते हुए गांधी यह साबित करने का प्रयास करते हैं कि असहयोग आंदोलन सिर्फ राजनीतिक ही नहीं बल्कि एक पराधीन देश के आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी जरूरी है। यद्यपि अपने प्रत्युत्तर में वे टैगोर की उत्कृष्ट साहित्यिक भाषा के अनुसरण या पुनरवृत्ति के प्रयास से बचते हैं, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि दोनों में राष्ट्रवादी आंदोलन चरम उद्देश्य को लेकर सहमति है।

'यंग इंडिया' के इसी अंक में छपे एक अन्य लेख में वे टैगोर के प्रश्नों का पुनः उत्तर देते हुए कहते हैं कि असहयोग आंदोलन द्वारा ही भारत और पश्चिमी सभ्यता के बीच वास्तविक और स्वैच्छिक सहयोग स्थापित हो पाएगा। मुक्ति, निर्वाण, ब्रह्म विद्या, बुद्ध, दुःख और आनंद जैसी दार्शनिक संकल्पनाओं पर विस्तृत बहस करते हुए गांधी यह साबित करने का प्रयास करते हैं कि असहयोग आंदोलन सिर्फ राजनीतिक ही नहीं बल्कि एक पराधीन देश के आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी जरूरी है। यद्यपि अपने प्रत्युत्तर में वे टैगोर की उत्कृष्ट साहित्यिक भाषा के अनुसरण या पुनरवृत्ति के प्रयास से बचते हैं, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि दोनों में राष्ट्रवादी आंदोलन चरम उद्देश्य को लेकर सहमति है। दोनों ही चाहते हैं कि भारत में नैतिकता और उच्चतम आदर्शों की स्थापना हो। दोनों इस बात पर सहमत थे कि भारतीय परंपरा में राज्य से ज्यादा धर्म को महत्त्व मिला है। दोनों ही समाज को राज्य से ज्यादा महत्त्व देते हैं। पश्चिमी देशों के साथ सांस्कृतिक और सामरिक सहयोग की अहमियत को भी दोनों स्वीकार करते हैं। लेकिन इसके बावजूद दोनों में एक महत्त्वपूर्ण अंतर है, एक आदर्शवादिता का पुजारी है और दूसरा आदर्शवादिता तथा यथार्थ में संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

गांधी और टैगोर, दोनों को करीब से देखनेवाली अंग्रेज लेखिका मर्जोरी स्काईस कहती हैं कि इस सूक्ष्म मतभेद के पीछे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और परंपराओं का अंतर है। टैगोर के परिवार में व्यक्तिगत आजादी के साथ स्वतंत्र फैसले लेने की उनकी क्षमता को बढ़ावा मिला। बाल्यकाल से ही वे सामाजिक बंधनों और कुरीतियों का विरोध करते रहे थे। इसके विपरीत गांधी की परवरिश एक ऐसे परिवार में हुई थी, जहाँ परंपराओं पर बल दिया जाता था और सामाजिक सरोकारों को बाध्यकारी समझा जाता था। उनका परिवार काठियावाड़ राज्य के प्रशासनिक विभाग से जुड़ा हुआ था। उनके पिता को काठियावाड़ के प्रधानमंत्री थे। लिहाजा राष्ट्रवाद की उनकी परिकल्पना में व्यक्तिगत ईमानदारी के साथ राज्य की भूमिका को भी अहम स्थान मिलता है। गांधी के अनुसार जन-सहमति द्वारा स्थापित राज्य जनता के आर्थिक और सामाजिक ही नहीं, उसके नैतिक उत्थान के लिए भी उत्तरदायी है। यही कारण है कि सैद्धांतिक रूप से अराजकतावादी होते हुई भी गांधी राज्य महत्त्व को कभी भी नहीं नकारते हैं। उनका राष्ट्रवाद किसी

कपोल-कल्पना पर आधारित नहीं है, बल्कि राजनीतिक यथार्थ के प्रति निरंतर सजग है। यद्यपि टैगोर की ही तरह गांधी भी सत्य और अहिंसा के आदर्शों पर अडिग रहे, लेकिन उन्होंने आदर्श और राजनीतिक यथार्थ में सामंजस्य बनाने की निरंतर कोशिश की।

इस बात को सत्याग्रह आंदोलन और सत्याग्रही की परिभाषा में आए निरंतर बदलाव के माध्यम से समझा जा सकता है। १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर उन्होंने सत्याग्रह को एक सार्वकालिक-सार्वभौमिक सिद्धांत कहा; एक ऐसा सिद्धांत, जो भारत में पूरी तरह पुष्पित होगा। लेकिन फरवरी १९२२ की घटना के बाद उन्हें अपनी गलती का एहसास हुआ। आठ वर्षों की चुप्पी के बाद जब वे सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ लौटे, तब भी उन्हें यह लगता रहा कि भारत का राजनीतिक वातावरण सत्याग्रह के आदर्शों के अनुरूप नहीं है। लेकिन आदर्शों का हवाला देकर राष्ट्रवादी जनांदोलन को स्थगित करना भी उन्हें मंजूर नहीं था। उन्होंने आंदोलन को एक ऐसे सिद्धांत द्वारा संचालित करने की बात की, जिसमें चौरी-चौरा जैसी किसी घटना के बावजूद आंदोलन के निरंतर चलते रहने का प्रावधान हो। उन्होंने चुनिंदा लोगों द्वारा व्यक्तिगत सत्याग्रह की बात की। इसी तरह १९४२ के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान सत्याग्रह के नियम में और ढील दी गई और प्रत्येक कांग्रेस समिति को सत्याग्रह समीति घोषित कर दिया गया। ठीक इसी तरह राज्य, उसकी संरचना और उसके उद्देश्य की परिभाषा भी बदलती रही। १९०९ के हिंद स्वराज में गांधी भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था पर आधारित 'होम रूल' की बात करते हैं। १९२० में यह स्वराज एक ताकतवर केंद्र सरकार का रूप ले लेता है। हिंद स्वराज के १९२१ के संस्करण में यह संसदीय स्वराज बन जाता है। यही १९३१ में पूर्ण स्वराज और नवंबर १९४७ में 'सुराज्य' बन जाता है। अगर हम इस लेख के पिछले अनुच्छेद में पूछे गए प्रश्नों की तरफ लौटें, तो हम पाएँगे कि गांधी के राष्ट्रवाद मे न ही राजनीतिक यथार्थ की कमी है और न ही यह अराजकतावादी है। मूलभूत सिद्धांतों पर समझौता किए बिना परिस्थिति के अनुसार बदलने की आजादी और भारत में सुराज्य की स्थापना, गांधी के राष्ट्रवाद की सबसे जरूरी शर्तें हैं। वह एक ऐसे स्वराज की कामना रखते थे, जहाँ आदर्शों और व्यावहारिकता में संतुलन देखने को मिले।

☐

अपरक्राम्य आदर्श और व्यावहारिकता के अलावा राष्ट्रवाद की उनकी परिकल्पना में कुछ प्राचीन और सनातन तत्त्व भी थे। वे उन चिंतकों में से थे, जिनका यह मानना था कि अंग्रेजों के आने से पहले भी भारत एक राष्ट्र था और उसमें राष्ट्रीयता की भावना मौजूद थी। हिंद स्वराज में वे ऐसे इतिहासकारों की भर्त्सना करते हैं, जो भारत में राष्ट्र की स्थापना का श्रेय अंग्रेजों को देते हैं। ऐसे इतिहासकार यह मानते हैं कि रेलवे, टेलीग्राफ तथा अंग्रेजी भाषा के मध्यम से अंग्रेजों ने भारत का राजनैतिक और प्रशासनिक एकीकरण किया। उनके अनुसार भारत में राष्ट्रीय चेतना का उद्गम इसी प्रक्रिया का परिणाम है। गांधी का यह मानना था कि भारत को एक धागे में पिरोने का काम अंग्रेजों ने नहीं बल्कि उत्तर से दक्षिण तक फैले हुए तीर्थ-स्थलों ने किया। इस एकीकरण को पूरे भारतवर्ष में स्वच्छंद विचरनेवाले ऋषि-मुनियों ने और भी सुदृढ़ किया। रेलवे के स्थापना के पहले तीर्थयात्रा की रफ्तार बहुत धीमी थी। इन धीमी यात्राओं के दौरान जब यात्रियों का सामना नए संस्कृतियों, समुदायों और प्रांतों से हुआ, तब उन्हें भारत के विस्तार और उसके विविधता का एहसास हुआ। इन्हीं अनुभवों से उनकी सहिष्णुता विकसित हुई और दूध में शक्कर की तरह घुलने की उनकी क्षमता बढ़ी। इन्हीं यात्राओं से उनकी राष्ट्रीय चेतना भी जगी। अत: गांधी के राष्ट्रवाद में धर्म और अध्यात्म का बड़ा महत्त्व है। राष्ट्रवाद की इसी भावना को और सुदृढ़ करने के लिए गांधी ने राष्ट्रीय भाषा पर जोर दिया। हिंदी को राष्ट्रव्यापी स्वीकृति दिलाने के लिए वे निरंतर कोशिश करते रहे।

गांधी के अनुसार भारत एक 'कर्मभूमि' है, 'भोगभूमि' नहीं। उनके सपनों का भारत एक ऐसा देश है, जो पूरे विश्व को आध्यात्मिक और धार्मिक नेतृत्व प्रदान करने में सक्षम है। और यही इसकी नियति भी है। उनका यह मानना था कि भारत में आदिकाल से ही अहिंसा की एक अटूट परंपरा चली आ रही है। जिस परंपरा का जिक्र प्रधानमंत्री मोदी के व्याख्यानों में मिलता है और जिस सनातन संस्कृति की बात गांधी करते हैं, उनमें कोई विरोधाभास नहीं है। इसी परंपरा के अनुरूप भारत और विश्व के पीड़ितों की सहायता करना तथा अंतरराष्ट्रीय द्वंद्वों का समाधान ढूँढ़ना भारत का परम लक्ष्य होना चाहिए। इसी परंपरा का सम्मान करते हुए आठवीं शताब्दी में जदी राणा ने पासरसियों को, १९५९ में दलाईलामा को और १९७१ में बांग्लादेशी शरणार्थियों को आश्रय दिया। आज अगर गांधी जीवित होते, तो यकीनन शरणार्थियों के प्रति उनका रवैया सहानुभूतिपूर्ण होता। लेकिन क्या वे आंतरिक सुरक्षा के प्रश्न, राज्य संचालन की चुनौतियाँ, लगातार घट रहे संसाधन, दूध में अत्यधिक शक्कर या कभी न घुलनेवाले शक्कर की संभावनाओं की अनदेखी करनेवालों में से थे ? शायद नहीं। इस पूरे निबंध में मेरे दो प्रमुख तर्क रहे हैं। पहला, गांधी के राष्ट्रवाद में आदर्श, अध्यात्म, वैश्विकता और मानवतावाद की भावना का बाहुल्य है। दूसरा, राष्ट्रवाद की इस परिकल्पना में यथार्थबोध, व्यावहारिकता और राज्य की प्रशासनिक जिम्मेवारियों पर भी जोर मिलता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हिटलर के दमनकारी शासन में पिस रहे यहूदियों को गांधी ने अहिंसा और धैर्य का पाठ पढ़ाया। हालाँकि यहूदी दार्शनिक मार्टिन ब्यूबर ने गांधी के इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया था, लेकिन गांधी आज भी रोहिंग्या और सीरियाई शरणार्थियों को सत्याग्रह की सीख देते। उनका यह मानना था कि सत्याग्रह से हासिल समाधान स्थायी होगा। वर्तमान परिस्थितियों मे शायद भारत के लिए इन शरणार्थियों को आश्रय देना मुश्किल हो, लेकिन गांधी इतना जरूर चाहते कि भारत शरणार्थी समस्या के समाधान की वैश्विक मुहिम का नेतृत्व करे। (सा.अ.)

मानस अपार्टमेंट
मयूर विहार, फेस-१, नई दिल्ली-११००९१
gautam.choubey922@gmail.com
दूरभाष : ९९१५७३२४५



हिंद स्वराज और महात्मा गांधी

• संदीप जोशी



क्रिकेट में रणजी ट्रॉफी खिलाड़ी रहे हैं। आजकल समाज, राजनीति और क्रिकेट पर अखबार और पत्रिकाओं में लिखते हैं। 'आज का हिंद स्वराज' पुस्तक भी लिखी है।

क्या कोई किताब जीवन से बड़ी हो सकती है? ठीक से कह पाना मुश्किल है। शायद 'हाँ', और 'नहीं' भी। लेकिन कोई किताब किसी के भी जीवन का आधार तो बन ही सकती है। किताबों के कारण विचारों में प्रगति भी हो सकती है। पुराने विचार सिर्फ दकियानूसी ही हों, यह भी जरूरी नहीं है। और इसकी भी कोई गारंटी नहीं है कि नए विचार ही आधुनिकता में सबकुछ हों। मगर ज्यादातर नए विचार पुराने विचारों पर ही आधारित होते हैं। पुराने विचारों पर नए सिरे से विचार करने के लिए भी कोई किताब मददगार हो सकती है। किताब और विचार का यह सिलसिला निरंतर चलता रहे, तभी जीवन में भी नया, आधुनिक विकास रचा जा सकता है।

मोहनदास करमचंद गांधी ने 'हिंद स्वराज' सन् १९०९ में लिखी थी। इसको तब दकियानूसी माना गया। 'हिंद स्वराज' को अक्तूबर में ११० साल हो गए। मूलतः गुजराती में लिखी गई 'हिंद स्वराज' का हिंदी में अनुवाद सन् १९४९ में ही हो पाया था। गांधीजी द्वारा बनाए गए नवजीवन ट्रस्ट ने वह अनुवाद छापा था। अपने अंग्रेज मित्रों के लिए अंग्रेजी में इसका अनुवाद खुद गांधीजी ने ही किया था। हिंदी 'हिंद स्वराज' के संपादक थे काका साहेब कालेलकर। काका साहेब कालेलकर ने माना था कि इस अमर किताब का स्थान हिंदुस्तान के जीवन में हमेशा रहनेवाला है। आजादी के तुरंत बाद काका साहेब ने गांधीजी से 'हिंद स्वराज' को नए परिदृश्य में देखने व नए परिपेक्ष्य में लिखने का अनुरोध भी किया था। 'हिंद स्वराज' का अवलोकन करने का आग्रह भी किया था। लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। लेकिन किताब में विचारों के फेरबदल के लिए गांधीजी तैयार नहीं हुए थे। एक-आधा शब्द बदलने का जरूर उन्होंने मान लिया था। मगर गांधीजी हिंद स्वराज को लेकर अंत तक अडिग रहे। गांधीजी के ४० साल की उम्र में लिखी किताब उनके जन्म के १५०वें साल में भी क्यों कालजयी है?

सवाल कितने महत्त्वपूर्ण होते हैं? शायद जवाब जितने ही। क्योंकि महत्त्वपूर्ण सवालों से ही अर्थपूर्ण जवाब निकल सकते हैं। अगर सवाल कीमती हों, तभी जवाब मूल्यवान हो सकते हैं। इसलिए हिंद स्वराज की पाठक-संपादक के सवाल-जवाब की शैली अनूठी है। किसी भी लिखनेवाले के मन में जो सवाल उठते हैं, उन्हीं को जवाब में लिखने पर कोई भी किताब बनती है। इस मामले में गांधीजी की हिंद स्वराज को हिंदुस्तानी श्रुति-परंपरा की मूल शैली भी मान सकते हैं। संसार का सारा विकास सही सवाल के कारण ही हुआ होगा। जीवन में सवाल उतने ही स्वाभाविक हैं, जितना मनुष्य का साँस लेना। माता-पिता से सवाल, गुरु-शिष्य के सवाल, मित्र-सखा के सवाल और आज गूगल-गुरु से सवाल ही विचारों का विकास प्रदान करते हैं। फिर समाज से, सत्ता से और राजनीति से सवाल क्यों नहीं होने चाहिए? किसी भी समय में सही जवाब के लिए सार्थक सवाल ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

अगर हिंदुस्तान में मोहनदास करमचंद गांधी का कोई अस्तित्व है तो गांधी-१५० में उनकी कथनी-लेखनी-करनी को आज नए अंदाज में समझने की जरूरत है। हिंद स्वराज को आज के माहौल में टटोलना आज की युवा पीढ़ी के लिए जिज्ञासा का जरूरी आयाम हो सकता है। हिंद स्वराज के सहारे गांधीजी हिंदुस्तान को कैसे देखते थे, वह जानने की जिद भी हो सकती है या गांधीजी अपने सपने के हिंदुस्तान को कैसे देखते थे, यह भी खोज का विषय हो सकता है। अगर गांधीजी को १५० साल बाद भी याद किया जा रहा है तो हिंदुस्तान में उनका अस्तित्व क्या है? हिंदुस्तानी को खुद को जानने-समझने के लिए यह क्यों जरूरी है?

गांधीजी का 'हिंद स्वराज' इक्कीसवीं शताब्दी की भारतीय सभ्यता, राजनैतिक परिपेक्ष्य और सामाजिक सरोकारों से भी वास्ता रखता है। क्या हिंद स्वराज में उठाए गए अहम मुद्दे आज प्रासंगिक हैं? और क्यों उन सवालों पर आज के जवान लोग फिर से विचार नहीं कर सकते हैं? अगर हम सौ साल से ज्यादा पहले लिखी गई इस किताब के समय के आधार पर आज को देखें तो क्या हमने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास किया? इन सब सवालों के जवाब खोजने होंगे। गांधीजी द्वारा लिखी और अनुवाद की गई एक मात्र किताब के विषय व मुद्दों को हमें नए सिरे से देखने, समझने की कोशिश करनी होगी। भले ही आज उसको ११० साल हो गए हों।

विवादों की कठोर जिल्द में बँधी इस कोमल किताब में दो, चार, आठ, दस पन्नों के छोटे-छोटे २० अध्याय हैं। ये हमारी सभ्यता, धर्म, सामाजिकता और राजपाट से जुड़े हैं। हम हाल के मुद्दों पर विचार करें और देखें कि गांधीजी उन मुद्दों के बारे में तब क्या सोचते थे। देखना यह भी है कि ये मुद्दे आज किस हाल में हैं।

सभी जानते हैं कि सन् १९०९ में भारतीय संसद् एक दूर का सपना ही था। उस समय के सभी बड़े कांग्रेसी नेता इंग्लैंड की पार्लियामेंट और उसके काम-काज से प्रभावित रहे। गांधीजी पश्चिम सभ्यता और उनकी पार्लियामेंट के कट्टर विरोधी थे। वे उसको समय की बरबादी मानते थे। सरकारी धन, यानी जनता के पैसे की फिजूलखर्ची देखते थे। आज इतिहास इसका गवाह है।

जब आज हम अपनी संसद् के कार्यकाल और उसके सदस्यों के व्यवहार को देखते हैं तो सौ बरस पहले लिखी गई गांधीजी की बातें ध्यान आती हैं। आज कई सांसद संसद् में आते ही नहीं। सवाल उठाते हैं, पर पूछे नहीं जाते। विचार की बहस की जगह विवाद की बहस होती है। मुश्किल से संसद् में बिल रखे जाते हैं, जिन पर बहस तो होती है, पर बरसों चलती-लटकती हैं। नेता सांसद् होते ही जनता के धन से खेलने लगते हैं। जनता की सरकार चलाने को देश का व्यापार चलाना मान लिया जाता है। सेवा के लिए आए नेता मेवों की सत्ता चलाने में लगते हैं। हमारी नई पीढ़ी से पहले की चार पीढ़ियों ने देखा नहीं कि संसद् के भीतर होता क्या है। पर अब टेलीविजन पर सीधे प्रसारण के कारण पूरा देश देखता है। कैसे सांसद एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए खुद भी इतना नीचे गिर जाते हैं कि हम साधारण नागरिक अपने को कहीं बेहतर ऊँचाई पर खड़ा मान सकते हैं। संसद् की काररवाई अकसर नाटकीय लगती है। संसद् में 'वोट के लिए पैसा' कांड ने दिखाया कि सांसद किस हद तक गिर सकते हैं या एक-दूसरे को गिराना चाहते हैं। ब्रिटेन की संसद् का मुख्य काम राजा और राजपाट के लिए धन जुटाना होता था। स्वतंत्र भारत में संसद् की भूमिका और आम लोगों पर उसका प्रभाव, यह खोजबीन करने का विराट् विषय है। संसदीय काररवाई में प्रति मिनट इस गरीब बताए गए देश का ५० हजार रुपए के लगभग खर्च आता है। यह हम आप सब की जेब से ही तो जाता है। सांसद अपने क्षेत्र के आम लोगों के नुमाइंदे होते हैं, लेकिन उन्हीं लोगों की समस्या से जुड़े सवालों पर बात तक नहीं हो पाती है।

चुनावो में पैसे का बोलबाला हो गया है। इसीलिए रईस राजनेताओं के बेटे-बेटी को चुनाव लड़ने के टिकट आसानी से मिल जाते हैं। बरसों से पार्टी के लिए काम करनेवाले कार्यकर्ता नजरअंदाज होते हैं। सभी राष्ट्रीय व प्रादेशिक पार्टियाँ योग्य लोगों को टिकट देने के बजाय रईस नेता के बेटे-बेटी को टिकट देते हैं। सांसद के कारण संसद् का स्तर लगातार गिरा है। ऐसे कई रईस राजनैतिक परिवार हैं, जिनके सदस्य अलग-अलग पार्टी में हैं, ताकि राजनैतिक पव्वा और सरकारी धोंस बनी रहे।

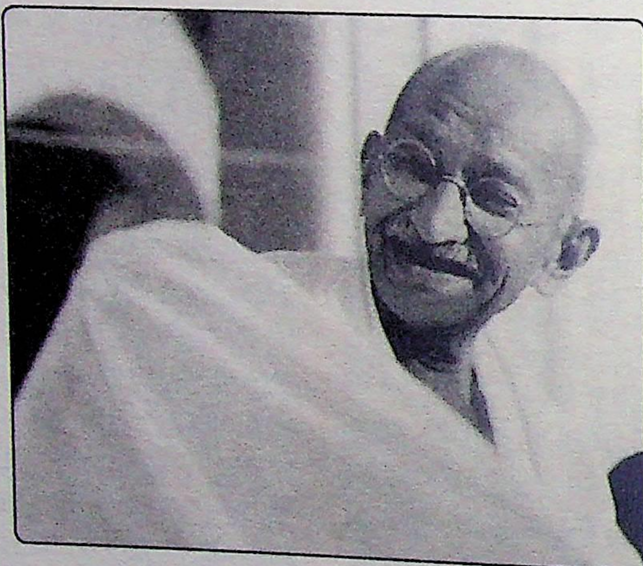
गांधीजी मानते थे कि एक स्थिर सुचारू सरकार के चलने में आम लोगों द्वारा लगातार निगरानी रखना जरूरी है। सोचने, विचार करने वाले लोगों में एक तरह की बेचैनी रहती है, जो सुधार का सूचक है। सरकार के लगातार सेवक बने रहकर विकास करते रहने के लिए समाज में 'रचनात्मक बेचैनी' जरूरी है। देश में 'रचनात्मक बेचैनी व असंतोष' अगर बीसवीं सदी में आजादी के लिए जरूरी था तो सौ साल बाद आज की सरकारों की 'नवउदार' नीतियों को लेकर तो और भी जरूरी होना चाहिए। इन नई नीतियों का लाभ सिर्फ कुछ गिने चुने लोगों को ही हो रहा है। आज देश में किसानों की समस्याओं की ओर देखने समझनेवाले कम हैं। देश में ५५ प्रतिशत लोग जब खेती पर निर्भर हों और सरकार उनको उनके हाल पर छोड़ दे तो सोचने समझने वाले लोगों में एक तरह का असंतोष व बेचैनी होनी ही चाहिए। आज की समस्याओं के प्रति सरकार के रवैया पर हैरानी होती है। चुनावों में समाज की समस्याओं की जगह जनता की भावनाओं से खिलवाड़ करने की राजनीति चलाई जाती है। किसानों को पहले व्यवस्थाओं ने गरीब बनाया और अब उनको कर्जदार बनाकर भिखारी तक बना दिया गया है। क्यों आज जनता में सामाजिक समस्याओं के प्रति बैचेनी या असंतोष नहीं दिखता है? देशभर में ऐसे कई मुद्दे हैं जिनपर राज्य व केंद्र सरकारें लाचार व बहरी नजर आती हैं। क्यों बड़े शहरों के रईस व मध्य वर्गीय लोग सिर्फ अपने उत्थान व उनसे जुड़ी सहूलियतों से संतुष्ट दिखते हैं?

गांधीजी के लिए भारतीय स्वतंत्रता के मायने उस समय के अंग्रेज-कांग्रेसी नेताओं से अलग थे। सिर्फ अंग्रेजों से आजादी ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी शासन और व्यवस्था से मुक्ति का सपना था। गांधीजी जानते थे कि लोगों को बाघ का स्वभाव तो चाहिए पर बाघ नहीं चाहिए। यानी भारतीयों को अंग्रेजी व्यवस्था तो चाहिए, पर अंग्रेज नहीं। गांधीजी को सच्चे स्वराज के लिए यह मान्य नहीं था। वे मानते थे कि बाघ का स्वभाव तो बाघ के साथ ही आता है। लोग बिना अंग्रेजी शासन के भारत को ब्रिटेन या अमरिका बनाने का सपना देखते हैं। गांधीजी का स्वराज इसमें कहीं खो जाता है। सच्चा स्वराज उनके लिए अंदरूनी आजादी है, जो बाहरी दुनिया से मुक्त हो।

आज भारत का स्वराज कैसा है? हमारे किसानों द्वारा उत्पादित सबसे अच्छा अनाज, फल, सब्जी और अन्य घरेलू जरूरतें हम डालरों के लिए निर्यात करते हैं। हमारे किसान कठिन परिस्थिति और पानी की किल्लत में कड़ी मेहनत करते हैं और फिर भी अपने उगाए बेहतर अनाज, फल व सब्जी खा नहीं पाते। ज्यादा कमाने के चक्कर में खुद किसान अपनी अच्छी फसल महँगे बाजार में बेच आता है। क्योंकि बाजार का ही बोलबाला है, इसलिए खेती को व्यापार बनाया गया। नवउदार नीति और खुले बाजार के कारण आज सभी कुछ बाजार का है, बाजार से है और बाजार के लिए है। आजादी के इतने सालों बाद भी हमारे सबसे प्रतिभावान लोग, वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर और शिक्षक बाहर चले जाते हैं—कमाने। बस कमाने। उनके लिए हम भारत में अनुकूल वातावरण नहीं बना पाए। विदेशी सपने को साकार करने में हम खुश हैं। हमारे प्राकृतिक साधनों का शोषण उपभोक्ता और दूसरों को तृप्त करने में ही हो रहा है।

गांधीजी ने जिस पश्चिमी सभ्यता के विरोध में यह पुस्तक लिखी थी, आज उसी सभ्यता के समर्थन में, उसे गले लगाने में हमारी सरकार, हमारा समाज, उसका सबसे अच्छा अंश हाथ बाँधे खड़ा है। पश्चिम की पिटी हुई लकीर पर चलने के कारण हमारा हर क्षेत्र में दोयम दर्जा ही रहा है। इतने वर्षों की आजादी के बावजूद हम किसी क्षेत्र में पहले नहीं बन पाए है, पहल नहीं कर पाए हैं। इस किताब में रेलगाड़ी, वकील और डॉक्टरों को लेकर लिखी बातें तब भी कुछ को खटकती थीं और आज भी वह स्थिति बदली नहीं है।

देश में रेलगाड़ी अंग्रेज सन् १८५३ में लाए। रेलगाड़ी लाने का मुख्य कारण हम भारतीय लोगों पर अंग्रेजी वर्चस्व बनाए रखना ही था। रेलगाड़ी ने अंग्रेजों को वनों से कीमती लकड़ी, पानी, हरा सोना, सागौन, खनिज लूटने, कर वसूली, व्यापार बढ़ाने और फौज व हथियार एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में मदद की। आज भी रेलगाड़ी इसी काम को आसान करने में लगी है। जब गांधीजी ने रेलगाड़ी का विरोध किया था, तब अंग्रेज इसी लूट के धंधे में लगे थे। भारत में खेती के लिए सिंचाई की जरूरत थी और अंग्रेज देश का ही धन रेलगाड़ी को फैलाने में लगा रहे थे। किसानों और किसानी की हालत बद से बदतर हो गई थी।



गांधीजी मानते थे कि 'अच्छाई धीरे बढ़ती है, जबकि बुराई जल्दी फैलती है।' उनके मुताबिक रेलगाड़ी के कारण जीवन तेज और खुदगर्ज बना दिया गया था। उन्होंने आरोप लगाया कि रेलगाड़ी ने देश में महामारी फैलाने का काम किया। रेल के ही कारण देश में भुखमरी फैली, क्योंकि किसान अपनी पैदावार को महँगे बाजार में ले जाने लगा। गरीब किसान के पास कोई चारा नहीं रहा। इसके अलावा गांधीजी मानते थे कि रेल के ही कारण देश के तीर्थस्थान और भक्तिस्थल बिना परिश्रम के घूमने के भुलावे बन गए हैं। रेल के कारण भारतीय अखंडता आई, ऐसे विचार पढ़े-लिखे थोड़े से लोगों में डालना भी अंग्रेजों की ही चाल थी।

आजादी के बाद आज भारतीय रेल दुनिया की सबसे बड़ी रेल व्यवस्था बन गई है। इतनी विशाल कि कई बार लगता है कि उसे सरकार नहीं, रेल मंत्री नहीं, भगवान् ही चला रहा है। गाँवों में पैदा हो रहे अनाज, फल और सब्जी शहरों के महँगे बाजार ले जाए जा रहे हैं और गरीब किसान आहत है। आज भारत में खाद्य आपूर्ति है, लेकिन किसान की हालत फिर भी आफत में है। अंग्रेजों की तरह ही आज भी रेलगाड़ी व्यापार, कर वसूली और फौजी हथियार जगह-जगह ले जाने के काम आती है। जंगल, खानों व खूले इलाकों से कच्चे, खनिज और प्राकृतिक माल के दोहन में भी रेल की निर्णायक भूमिका रही है। गोवा जैसे एक छोटे से राज्य में खनन का ऐसा घिनौना व्यापार जारी है, जिसका वर्णन नहीं कर सकते। यहाँ की लंबी-लंबी रेलगाड़ियाँ दिन-रात लौह अयस्क खोदकर कारखानों और तिजोरियों का पेट भर रही हैं। वहीं उपजाऊ खेत और घने वनों को बुरी तरह नष्ट कर रही हैं। इन सब कारणों से उजड़ रहे गाँवों से लोग फिर शहरों में रोजगार के लिए जाते हैं और वहाँ बेहद असम्मानजनक जीवन गुजारते हैं। रेलगाड़ी के ही कारण विस्थापन आसान हुआ। इसे रोकने के लिए राज्य और केंद्र सरकारों ने गाँव व छोटे शहरों में कोई सुविधाएँ नहीं फैलाईं। तीर्थस्थलों के लगातार बिगड़ते हाल सबके सामने हैं। देश की प्रमुख नदियों के किनारे बसे तीर्थस्थान भीड़भाड़ वाले, गंदे और बदबूदार बाजारों में बदल गए हैं। पहले तीर्थ जाना दुर्लभ, कठिन और संस्मरणीय होता था। जो लोग जम्मू, हरिद्वार, वृंदावन या दक्षिण भारत के तीर्थ स्थान जाते हैं, वे जानते हैं कि इनका क्या हाल हो गया है।

गांधीजी ने अपने रेल प्रसंग में रेल से भी कहीं ज्यादा तेज चलनेवाली सड़क गाड़ी और हवाई जहाज का जिक्र नहीं किया था। आज रेलगाड़ी की जगह सड़क गाड़ी ने ले ली है। सड़कें बनाना आज का सबसे बड़ा विकास मान लिया गया है। आज हर घंटे एक किलोमीटर सड़क बनाने का बेहूदा विकास चल रहा है, जिसके कारण आज जल, जंगल और जमीन नष्ट हो रहे हैं। गाँव सुनसान और शहर भीड़भाड़ वाले हो गए हैं। आज विकास की सड़क खेत, हरियाली और जंगल का विनाश करते हुए गुजर रही है। हवाई जहाज यात्रा के भी कई बुरे नतीजे पूरी दुनिया को भोगने पड़ रहे हैं। इन सभी तेज रफ्तार यात्राओं ने मानव का चैन, सुकून और शांति छीनी है।

हर साल कोई नई बीमारी या नया वायरस दुनिया में फैलता है और इसके फैलने का कारण ऐसी ही यात्राओं को माना जाता है। अपने देश में भी इन बीमारियों का आतंक फैलता है और भय के वातावरण में डॉक्टर और डॉक्टरी 'सेवा' के बदले मेवा ही बटोरा जाता है। कम रुपए की लागत के मामूली मास्क, नकाब २०० रुपए से भी महँगे बिकते हैं। कुछ अरबों रुपए की विशेष नई बेमतलब की दवाइयाँ देखते-ही-देखते बाजारों में बिक जाती है। आजकल अस्पतालों में दिल के मरीजों को स्टेंट लगाने का धंधा तक चल निकला है। सरकारों ने भी स्टेंट को स्वास्थ्य साधन के बजाय प्रसाधन उत्पाद में रखा था। इसी का फायदा उठाकर अस्पताल मरीज से मनमाने रुपए वसूल रहे थे। वह तो सामाजिक सरोकार रखनेवाले सांगवान ने जब इसकी लड़ाई लड़ी तो इसका विवेक पैदा हुआ। डॉक्टरी की शिक्षा भी आज इतनी महँगी हो गई है कि डॉक्टर बनने के बाद सेवा का उद्देश्य ही नहीं रह जाता है।

'हिंद स्वराज' में गांधीजी ने ऐलान किया था कि हजारों साल से भारतीय लोग धार्मिक सहिष्णुता अपनाते रहे हैं। लोग एक दूसरे की आस्था व आचार शास्त्र को आदर से देखते रहे हैं। अंग्रेजों द्वारा हिंदू-मुसलिम भेदभाव का बीज बोने से पहले देश में अनेक संप्रदाय शांति और आदर से रहते थे। तब संप्रदाय शब्द का अर्थ भी कुछ और ही होता था। हिंदू-मुसलिम अलगाववाद पैदा कर राज करना अंग्रेजी चाल थी। गांधीजी चाहते थे कि विभिन्न संप्रदाय सांस्कृतिक एकता बनाए रखते हुए अपनी अलग-अलग पहचान व परंपरा रख सकते हैं। गांधीजी मानते थे कि जो हिंदू इस देश को सिर्फ हिंदुओं के लिए समझते हैं, वे सपनों में रहते हैं। एक धर्म एक राष्ट्र का सिद्धांत दुनिया में कहीं नहीं है। गांधीजी को विश्वास था कि धर्म अलग-अलग तरह से एक ही बात कहते हैं। विभिन्न लोग अगर अलग-अलग रास्ते से एक ही मंजिल पर आते हैं तो कोई खराबी नहीं है।

आजादी के बाद देश में जो जहर फैला, वह तो राजनेताओं की सत्ता स्वार्थ के कारण फैला। इसके कोई और कारण नहीं दिखे। छोटे-छोटे आपसी झगड़े वोट राजनीति के कारण भयानक सांप्रदायिकता में बदल दिए जाते हैं। राजनेता लोगों को सत्ता लोभ में बहलाते हैं और उन्हें वोट बैंक में बदलते हैं। देश में लोगों ने जहाँ भी धार्मिक सहिष्णुता का सहारा लिया, वहाँ अलगाववाद नहीं पनपा। रूढ़िवादी हिंदू व मुसलिम संगठनों को देश की जनता ने चलता किया और कभी राजनैतिक सत्ता नहीं सौंपी। लोगों ने ऐसे संगठनों को सदा नकारा है।

इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास किए गांधीजी ने कभी वकालत के पेशे को प्रतिष्ठावाला नहीं माना। वे मानते थे कि वकीलों के कारण देश गुलाम बना रहा। वकीलों ने आम लोगों में अलगाव बनाए रखा, जिससे अंग्रेजी हुकूमत के पाँव मजबूत होते गए। वकालत वृत्ति ने सिर्फ अनैतिकता फैलाई। वकील सच उजागर करने के बजाय मुकदमे जीतने में ही विश्वास रखते हैं। जब दो लोग या संस्थाएँ झगड़ती हैं तो वकील पक्ष लेते हैं और मुकदमा लटकाते हैं। लगातार बढ़ते कचहरी के खर्चे गरीब को और गरीब बनाते हैं। वकील झगड़ों को खत्म करने के बजाय उनको घसीटते हैं। वकालत वृत्ति लोगों को अभाव से निकालने के बजाय अपनी पूँजी बढ़ाती ही नजर आती है। वकालत धन वृद्धि का साधन बना। इसी कारण वकील आज मनमुटाव बढ़ाते नजर आते हैं। वकील ऐसे कानून बनाते हैं, जिससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़े। समाज में वकील का योगदान एक साधारण व्यक्ति से ज्यादा नहीं होता है, पर वे कई गुना अधिक कमाते हैं। हिंदू-मुसलिम विवाद बनाए रखने में वकीलों का योगदान रहा। गांधीजी मानते थे कि अगर दो भाई लड़ते हैं तो एक वकील कोई रचनात्मक सहायता नहीं कर सकता है। सिर्फ विवाद लंबा खींच सकता है। कचहरी के कारण ही अंग्रेजों ने सत्ता बनाई और कायम रखी। अपने झगड़े परिवार व मित्रों के बीच सुलझाने के बजाय कचहरी ले जाने से मनुष्य की मानसिकता कमजोर होती गई। उनका भरोसा भाई बंधुओं से हटकर कचहरी में ज्यादा हो गया है।

जरा इन विचारों को देश में हाल के कानूनी माहौल में तो देखें। ऊँची प्रतिष्ठा, ऊँचे पद व धनी लोग जब अपराध करते हैं तो या तो उन्हें सजा मिलती ही नहीं है या बरसों लग जाते हैं। भुगतने वाला लाचार हो जाता है। चालाक व खुदगर्ज वकीलों के कारण बरसों मुकदमे चलते हैं और प्रतिष्ठावान व धनी लोग सजा से बचाए जाते हैं। बरसों चले मुकदमों में प्रियदर्शनी मटटू, जैसिका लाल, बी.एम.डब्ल्यू. केस, रुचिका आत्महत्या मामला और ऐसे अन्य मामलों के कारण वकीलों व कचहरी का मजाक ही तो उड़ा है। इसको न्यायालय की नाकामी और वकीलों की मनमानी माना गया है। आज सेवा की सत्ता चलाने के लिए भी मेवे की वकालत करनेवाले ही आगे आते हैं। कानून के हाथ लंबे हैं, यह तो चलो ठीक है। पर अपराधी को पकड़ने, न्याय दिलवाने में इतना समय क्यों लगता है? फिर छोटी से लेकर सबसे बड़ी अदालत तक लाखों मुकदमे अटके पड़े हैं। शायद न्याय दिलवाने का काम 'अंतिम दिन' के लिए तो नहीं छोड़ दिया गया है।

गांधीजी के मन में डॉक्टरों के प्रति भी कुछ इसी तरह के विचार थे। वकीलों की ही तरह डॉक्टरों ने भी पेशे को धंधा बना रखा है। डॉक्टरी पढ़ाई करके गरीब व आम लोगों का इलाज करना व बीमार की सेवा करना डॉक्टर का धर्म होना चाहिए। लेकिन वे धन और नाम कमाने में लग जाते हैं। गांधीजी डॉक्टरी पेशे के खिलाफ इसलिए भी थे, क्योंकि वे मानते थे कि डाक्टर सिर्फ शरीर का इलाज करते हैं और मन को भूल जाते हैं। बहुत सी बीमारियों का असर व लेना-देना मन और दिमाग से भी होता है। डॉक्टर सिर्फ शरीर का ध्यान रखते हैं, जिससे मन कमजोर होता जाता है। गांधीजी मनुष्यों के इलाज व दवा के अनुसंधान में जानवर व पक्षियों को मारने के भी खिलाफ थे। वे इसे अनैतिक मानते थे। इसके अलावा हमारी दवाओं के लिए जानवरों की त्वचा व वसा आदि का उपयोग भी ठीक नहीं है।

आज डॉक्टरों की भूमिका अहम व प्रभावशाली हो गई है। डॉक्टर समुदाय ने अपने आप को इस तरह व्यवस्थित और स्थापित किया है कि उनका आदर और धन बढ़ता ही गया है। वे अब गरीब लोगों की सेवा या इलाज नहीं करते, बल्कि धन कमाने के लिए धनी का ही ध्यान रखते हैं। आजादी के साठ सालों बाद भी देश के गरीब अस्पताल की सुविधा से वंचित रहते हैं या इंतजार करते रहते हैं। शहरों के पाँच सितारा अस्पताल सिर्फ अमीर लोगों को ही देखते हैं और सरकार अपने अस्पतालों को बेहाल होने देती है। डॉक्टर दवाई बनानेवाली कंपनियों से साँठ-गाँठ कर दवाएँ लिखते हैं। दवाएँ महँगी हो रही हैं और पहुँच से बाहर हो गई हैं। डॉक्टरी के कारण उम्र तो बढ़ी है, पर हम सबके के जीवन की गुणात्मकता कम हुई है।

गांधीजी के लिए सच्ची शिक्षा मन की कामनाओं और बुद्धि के संकल्प का निरंतर प्रशिक्षण रहा। वे चाहते थे कि प्राथमिक शिक्षा में चरित्र निर्माण ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। वे उस शिक्षा की अनिवार्यता, जोर-जबरदस्ती के सख्त खिलाफ थे, जो बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में अंग्रेजी शैली पर भारत में लागू हुई। गांधीजी अक्षर ज्ञान के खिलाफ नहीं थे, पर उसको ही सबकुछ मानने को वे भारी भूल कहते

थे। वे सिर्फ अंग्रेजी भाषा के ज्ञान को अंग्रेज राज की गुलामी मानते थे। वे चाहते थे कि सभी भारतीय भाषाओं को बराबर दर्जा मिले और विद्यार्थी एक से ज्यादा भारतीय भाषा सीखें। अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई और अंग्रेजी ढंग की शिक्षा के ही कारण अंग्रेज हिंदुस्तान पर राज कायम रख सके।

आजादी पाए हमें ७० साल से ज्यादा हो गए हैं, पर अभी भी हम अंग्रेजों का लिखा इतिहास ही पढ़ रहे हैं। अभी भी हम अंग्रेजी भाषा और उसी शिक्षा शैली के गुलाम बने हुए हैं। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा में अभी भी अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा दिया जाता है। सभी हिंदुस्तानियों को अंग्रेजी सीखने में पता नहीं और कितने साल लगेंगे? बच्चों और उनके माता-पिताओं में सिर्फ अंकों और डिग्री की चाह रह गई है। 'कितने प्रतिशत नंबर आए हैं' इस एक तराजू पर ही आज नई पीढ़ी को तौला जा रहा है। शिक्षा में अंकों के कारण बढ़ती होड़ से विद्यार्थी मानसिक तनाव में घिरते जा रहे हैं। देश में किसानों के बाद अब छात्र वर्ग में आत्म-हत्याएँ हो रहीं हैं। गांधीजी होते तो आज वे इन्हें आत्म-हत्या के बदले हत्या ही कहते। कई बार ऐसा लगता है, शिक्षा सिर्फ नंबरों, डिविजन और डिग्री के लिए ही हो रही है। और फिर उससे मिली महँगी नौकरी, वह भी विदेश में हो तो और अच्छा ऐसा वातावरण बन गया है। फिर इन नई महँगी नौकरियों में भी नए-नए मानसिक तनावों के किस्से बढ़ चले हैं।

जब सन् १९०९ में हिंद स्वराज लिखी गई, तब भारत और विश्व का पहनावा मेनचेस्टर की कपड़ा मिल में बनता और तय होता था। मेनचेस्टर मिल में काम करनेवाले लोगों का हाल गांधीजी देख चुके थे। मिलों में काम करने के कारण मजदूरों पर तरह-तरह के खतरनाक प्रभाव पड़े थे। गांधीजी के लिए मेनचेस्टर में बने कपड़े पहनना भारतीयों का गुलाम बने रहना जैसा ही था। विदेशी कपड़ों पर निर्भर रहना गुलामी का सूचक था। मशीनों पर मजदूर कड़ी मेहनत करते, शोषित होते और मिल-मालिक अमीर होते जाते। मजदूरों की हालत बद से बदतर होती रहती। हम लोग ईस्ट इंडिया कंपनी के आने से पहले सब हथकरघा और खुले वातावरण में अपनी सुविधा से बनाए गए कपड़ों को पहनते थे।

जब सन् १९०९ में हिंद स्वराज लिखी गई, तब भारत और विश्व का पहनावा मेनचेस्टर की कपड़ा मिल में बनता और तय होता था। मेनचेस्टर मिल में काम करनेवाले लोगों का हाल गांधीजी देख चुके थे। मिलों में काम करने के कारण मजदूरों पर तरह-तरह के खतरनाक प्रभाव पड़े थे। गांधीजी के लिए मेनचेस्टर में बने कपड़े पहनना भारतीयों का गुलाम बने रहना जैसा ही था। विदेशी कपड़ों पर निर्भर रहना गुलामी का सूचक था। मशीनों पर मजदूर कड़ी मेहनत करते, शोषित होते और मिल-मालिक अमीर होते जाते। मजदूरों की हालत बद से बदतर होती रहती। हम लोग ईस्ट इंडिया कंपनी के आने से पहले सब हथकरघा और खुले वातावरण में अपनी सुविधा से बनाए गए कपड़ों को पहनते थे। श्रम, कला, जीवन, संतोष, सबकुछ इन कपड़ों के ताने-बाने में रँगा-रचा होता था। मशीनें आने से यह सब खत्म हुआ। गांधीजी ने देखा कि मशीनें अनैतिक तरीकों से कुछ लोगों को अमीर बनाती हैं, साथ ही बहुत सारे लोगों का शोषण कर उन्हें गरीब, लाचार बनाती हैं। अनैतिक तरीके से अमीर बने भारतीय अंग्रेजों की खिलाफत कैसे कर पाते? आज भी नहीं कर पाएँगे। ऐसे बने अमीर सिर्फ अंग्रेज हुकूमत को ही सही मानेंगे। फिर इस तरह लाचार बने लोग भी अपनी आजादी और गौरव की लड़ाई नहीं लड़ पाएँगे। लेकिन गांधीजी यह जानते थे कि बंदूक से गोली निकल चुकी है और मशीनी युग से वापस आना मुश्किल है।

आजादी के बाद बनाई गई औद्योगिक क्रांति अब मैदान बदल चुकी है। इंग्लैंड की मशहूर मेनचेस्टर मिलें अब बंद हो गई हैं। उसी दौर में थोड़े समय बाद मेनचेस्टर की नकल पर मुंबई, अहमदाबाद आदि में खुली मिलें भी अब ठप्प हो चुकी हैं। कपड़े तो छोड़िए, इंग्लैंड में अब एक सुई भी नहीं बनती है। जो सभ्यता अंग्रेज दुनिया भर में फैलाना चाहते थे, वही इंग्लैंड की औद्योगिकता को खा गई। भारत में आजादी के बाद औद्योगिक क्रांति ने पाँव जमाए और फली-फूली। साल में दो-चार बार तो हमें अपने अखबारों, टेलीविजनों आदि से बताया जाता है कि हमारे देश का कौन सा आदमी दुनिया के अमीर लोगों की गिनती में किस सीढ़ी पर खड़ा है, चढ़ा है। जितने अरबपति रईस आज भारत में हैं उतने तो आज इंग्लैंड में भी नहीं हैं। लेकिन इसी देश में आधी से ज्यादा आबादी आज भी दो जून की रोटी के लिए तरसती है। गरीब और अमीर के बीच की खाई औद्योगिक क्रांति के कारण शर्मसार तरीके से बढ़ी है। सरकारी मदद से बढ़ते उद्योग और व्यापार के कारण पूँजी एकत्र होकर गिने-चुने कुछ घरानो में सिमटकर रह गई है। मशीनों की उपयोगिता बढ़ने से आम लोगों के लिए रोजगार घटा है। गरीब और गरीब होते गए हैं।

इस चकाचौंध की सभ्यता में गिने-चुने लोगों के पास छप्पर फाड़ पूँजी है और फिर एक बड़ी आबादी के उपर ढका छप्पर फट चुका है। वे बेघर, बेरोजगार होकर पूरी तरह से उजड़कर अपने-अपने गाँवों से भागकर रेलगाड़ी पकड़कर मुंबई आदि शहरों में मजदूरी करने आते हैं। वहाँ उन्हें अपने 'स्वागत' में विकास के नवनिर्माण जैसे नारों पर बनी कोई सेना खड़ी मिलती है। गांधीजी की हिंद स्वराज उसी अपनाई गई अस्वाभाविक व्यवस्था पर टीका-टिप्पणी है। नवनिर्माण का यह नया राज उन्हीं पुरानी बातों पर टिका है, जिन्हें गांधीजी ने आज से एक सौ एक बरस पहले सौ टका ईमानदारी से कह दिया था। हम नए लोगों को इस बुरी व्यवस्था की सौ टका काट भी हिंद स्वराज में मिलेगी। आज हमें फिर से 'गांधी १५०' में जाना होगा।

सा अ

ब-४०८, पहली मंजिल
निर्माण विहार, विकास मार्ग, नई दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ०९९१११००४०८
sandyjosh@gmail.com

महात्मा गांधी की शिक्षा नीति

• पंकज चौबे



गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति पत्रिका 'अंतिम जन' के संपादन से जुड़े हैं। संपादित पुस्तक 'पितृ पक्ष भविष्य के लिए गांधी', 'चंपारण की दास्तान' विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं रोजगार समाचार, कुरुक्षेत्र, योजना, राष्ट्रीय सहारा, प्रभात खबर, अमर उजाला, नया ज्ञानोदय, परिकथा, हरिजन सेवा, कर्तव्य चक्र आदि में लेखन।

भारत में ज्ञान की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है। दुनिया भर के विद्वान् अखंड भारत में ज्ञानार्जन और अपनी विद्वत्ता को धार देने के लिए आते रहे हैं। यह समृद्ध परंपरा प्राचीनकाल से मध्यकाल और आगे आधुनिककाल तक, अंग्रेजों के आने तक चलती रही। इसके स्वरूप और पद्धति में थोड़ा-बहुत बदलाव जरूर आया, पर शिक्षण की समृद्ध परंपरा अनवरत चलती रही। अंग्रेजों ने इस समृद्ध परंपरा को सूझबूझ के साथ तोड़ दिया। उन्हें इस बात का ज्ञान हो गया था कि भारत को गुलाम बनाना है तो यहाँ की सबसे मजबूत शिक्षण व्यवस्था को तोड़ना होगा। जहाँ हमारी शिक्षण परंपरा में अक्षर-ज्ञान के साथ लोक-व्यवहार की नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षण सहित सभी पहलुओं में पारंगत करने की व्यवस्था थी। आज हम अपनी उसी जड़ को तलाशने की कोशिश कर रहे हैं।

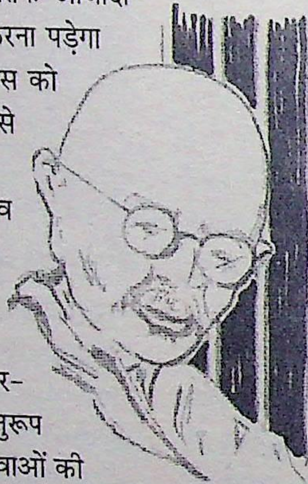
अंग्रेजों ने, जो हमारी शिक्षा-व्यवस्था को नष्ट कर दिया, वह सुनियोजित थी। उन्होंने दिमागी तौर पर भारत को पंगु बनाने की योजना बनाई और उसे लागू कर दिया; जिसमें वे सफल रहे। अंग्रेजों की शिक्षा-व्यवस्था एकांकी है, जिसमें अक्षर-ज्ञान पर जोर है। दिमाग को तो खुराक मिली, पर हाथ बेगार हो गया। हाथ के बेगार होने से शिक्षा का संतुलन बिगड़ गया।

हमें उन कारणों को तलाश करने की जरूरत है, जो यह सिद्ध करने की कोशिश करते रहते हैं कि भारत की शिक्षा परंपरा अंग्रेजों से कमतर थी। अंग्रेजों ने भारत में क्या शिक्षा-नीति लागू की जाए, इस पर विचार-मंथन शुरू कर दिया। भारत के तत्कालीन स्वदेशी शिक्षा-पद्धति का सर्वेक्षण करवाया। अंग्रेज अधिकारी विलियम एडम ने रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उसने बताया कि बंगाल और बिहार की कुल जनसंख्या लगभग ४ करोड़ और यहाँ स्कूलों की संख्या एक लाख थी। अर्थात् हर ४०० विद्यार्थियों पर एक स्कूल। आगे विलियम एडम ने लिखा, जिसका जिक्र धर्मपालजी अपनी पुस्तक 'भारत का स्वधर्म' में करते हैं—''औसतन हर ६३ लड़कों के लिए एक स्कूल बंगाल-बिहार में है।'' उनका कहना था कि इन दोनों प्रांतों से सरकारी आँकड़ों के अनुसार १,५०,७८४ गाँव हैं। हर गाँव में एक-एक स्कूल है। अधिक-से-अधिक लगभग एक-तिहाई गाँवों को स्कूल के बिना मान लिया जाए, जो एडम के अनुसार 'अधिकतम कल्पना' है तो भी एक लाख स्कूल तो अवश्य ही होंगे, ऐसा उनका अनुमान था। एडम ने लिखा कि गरीब-से-गरीब परिवारों के बच्चे स्कूल जाते हैं और उनके माता-पिता इस ओर ध्यान रखते हैं। इस रिपोर्ट में एडम ने लिखा कि ये सब स्कूल देशी लोगों की जीवन-शैली और सामाजिकता के अंतरंग अंग हैं। इसी पुस्तक में धर्मपालजी ने ब्रिटेन की शिक्षा-व्यवस्था का जिक्र किया है, जिससे बहुत सी बातें स्वत: स्पष्ट हो जाती हैं। धर्मपालजी लिखते हैं कि ''कानून में प्रावधान था कि निजी तौर पर पढ़ने का अधिकार नोवल्स को, कुलीनों को एवं व्यापारियों को है, जो गृहस्वामी हैं; किंतु कारीगरों, किसानों, मालियों, मजदूरों आदि के बेटों को नहीं है।'' समय के अनुसार ब्रिटेन की शिक्षा-व्यवस्था में बदलाव आया, परंतु भारतीय शिक्षण व्यवस्था से वहाँ की व्यवस्था अच्छी नहीं थी। लेकिन अंग्रेजी व्यवस्था ने भरपूर कोशिश करके यहाँ की शिक्षण व्यवस्था को सुनियोजित ढंग से नष्ट कर दिया, जिसका खामियाजा आज तक हम भुगत रहे हैं।

भारत की शिक्षा-व्यवस्था को समझने और उसे नए संदर्भों में विचार करने वाले आधुनिक भारत के प्रयोग महात्मा गांधी थे। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था की खामियों और अपनी परंपरागत शिक्षा-पद्धति के अच्छे तत्त्वों को भी समझ लिया था।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत तक के संपूर्ण जीवन में शिक्षा-व्यवस्था को बेहतर करने की कोशिश करते रहे। महात्मा गांधी अपने रोजगार के लिए दक्षिण अफ्रीका गए थे। वहाँ उन्होंने भारतीयों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ संघर्ष शुरू कर दिया। गांधीजी यहीं से अपने जीवन में अलग-अलग तरह के प्रयोग शुरू किए। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रयोग किया। गांधीजी ने 'अफ्रीका टालस्टॉय फार्म' की स्थापना की। कैलनबाक की सहायता से टालस्टॉय फार्म में पठन-पाठन का काम शुरू कर किया। यहाँ की शिक्षा का उद्देश्य था आत्मा का विकास। गांधीजी कहते हैं, ''आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान पाना, आत्मज्ञान प्राप्त करना।'' इससे आगे बढ़ते हुए वे कहते हैं, ''यदि ऐसी शिक्षा दी जाए तो उसका सीधा परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलंबी होगी। लेकिन इसकी सफलता की कसौटी इसका स्वावलंबी रूप नहीं, बल्कि यह है कि इस दस्तकारी की

शास्त्रीय ढंग से शिक्षा के फलस्वरूप बच्चे के अंदर विद्यमान संपूर्ण मानव प्रकाश में आता है या नहीं।'' अफ्रीका के बाद गांधीजी १९१५ में भारत लौट आए। १९१७ में गांधीजी चंपारण गए। गांधीजी नील किसानों की समस्या के समाधान के लिए राजकुमार शुक्ल के प्रयासों से चंपारण गए। वहाँ उन्होंने नील किसानों की समस्या का समाधान तो किया ही, साथ ही वहाँ की जीवन-पद्धति में शिक्षा द्वारा मूल्य निर्माण करने की आवश्यकता को समझा। गांधीजी ने नवंबर १९१७ में भारत में पहला बुनियादी विद्यालय बड़हरवा लखनसेन में खोला। इस विद्यालय में पढ़ाने के लिए महाराष्ट्र से डॉ. देव, अवंतिका बाई जैसे स्वयंसेवकों को बुलाया। गांधीजी स्वयं इस गाँव में रहे और लोगों को बुनियादी तालीम लेने के लिए प्रेरित करते रहे। शिक्षा के व्यापक महत्त्व को गांधीजी अच्छी तरह समझते थे। स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ते हुए उन्होंने यह समझ लिया था कि भारत को सिर्फ राजनीतिक आजादी नहीं चाहिए, इसके सोए हुए स्वाभिमान को भी जाग्रत् करना पड़ेगा और इसके लिए यह आवश्यक है कि भारतीय जन-मानस को रचनात्मकता के साथ जोड़ें। शिक्षा रचनात्मकता का सबसे प्रमुख हिस्सा थी।



आज भारत में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक बदलाव आया है। आजादी के बाद से अब तक यह व्यवस्था नहीं बन पाई है, जिसमें विद्यार्थी पढ़ाई के साथ-साथ हुनर भी सीख सकें। दरअसल हमारी शिक्षा-व्यवस्था ने ऐसे विद्यार्थियों को पढ़ाया और आगे बढ़ाया, जो सिर्फ अक्षर-ज्ञान लिये हुए हैं। महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन के अनुरूप उनकी शिक्षा नहीं हुई। तात्पर्य यह है कि समाज में ऐसे युवाओं की संख्या बढ़ी है, जो डिग्री तो प्राप्त कर रहे हैं, परंतु व्यवस्था के अनुरूप उनकी शिक्षा नहीं हो पा रही है। आज देश में ऐसी शिक्षा-पद्धति की जरूरत है, जिसमें श्रम और बुद्धि का समन्वय हो। सिर्फ अक्षर-ज्ञान पर आधारित शिक्षा से युवा समाज और आर्थिक व्यवस्था को संबल नहीं दे सकते हैं।

शिक्षा की आवश्यकता सिर्फ अक्षर-ज्ञान पर आधारित डिग्री हासिल करना नहीं है, बल्कि रोजगारपरक होना भी है। बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ उनके हाथों को हुनरमंद बनाना जरूरी है। अक्षर-ज्ञान मुनष्य को एक समझ देता है, वहीं हुनर का ज्ञान मनुष्य को सफल एवं सार्थक जीवन देता है, जो अपने पैरों पर खड़े होकर समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहायक हो सकेंगे। अक्षर-ज्ञान की तुलना में हाथ की शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए गांधी १५ मार्च, १९३५ में 'हरिजन' में लिखते हैं—''मेरी राय में तो इस देश में, जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जानेवाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है। अक्षर-ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता हस्त-कौशल ही तो वह चीज है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। लिखना-पढ़ना जाने बिना मनुष्य का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है। इसमें कोई शक नहीं कि अक्षर-ज्ञान से जीवन का सौंदर्य बढ़ जाता है, लेकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता।'' गांधीजी शिक्षा का विकास का उद्देश्य बुद्धि विकास तक सीमित नहीं मानते, उनकी दृष्टि में शारीर के साथ-साथ आत्मा का विकास भी शिक्षण का अंग होना चाहिए। वे ३१ जुलाई, १९३७ के 'हरिजन' में लिखते हैं—''शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक की, प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्धरित किया जाए और बाहर प्रकाश में लाया जाए। अक्षर-ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है और न उसका आरंभ। यह तो मनुष्य की शिक्षा के कई साधनों में से केवल एक साधन है। अक्षर-ज्ञान पाना आप में शिक्षा नहीं है, इसलिए मैं बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरंभ करे, उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करूँगा। मेरा मत है कि इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास संभव है।'' गांधीजी इस तरह की शिक्षा-पद्धति के सबसे बड़े पैरोकार थे। उन्होंने बुनियादी शिक्षा की अवधारणा विकसित की थी। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से ही इस पद्धति को आजमाने लगे थे। भारत आकर उन्होंने आश्रम को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास किए। जब व्यक्ति के हाथों में कौशल होगा, तभी आत्मनिर्भरता आती है।

वर्ष १९३७ वर्धा में 'अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन' आयोजित हुआ। इस सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले महानुभावों में थे—विनोबा भावे, काका कालेलकर तथा जाकिर हुसैन जैसे विद्वान् और शिक्षा शास्त्री, जिन्होंने इस सम्मेलन के उपरांत एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव में मोटा-मोटी तीन बिंदुओं पर अधिक जोर दिया गया—बच्चों को ७ वर्ष तक राष्ट्रव्यापी, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जाए, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि इस दौरान दी जाने वाली शिक्षा हस्तशिल्प या उत्पादक कार्य पर केंद्रित हो। अन्य सभी योग्यताओं का विकास, जहाँ तक संभव हो, बच्चों के पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए बालक द्वारा चुनी हुई हस्तकला से संबंधित हो। इसकी आवश्यकता के संदर्भ में गांधीजी कहते हैं, ''शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था न सिर्फ फिजूलखर्ची वाली है, बल्कि सचमुच ही नुकसानदायक भी है। लड़के अपने अभिभावकों से, अपने गाँवों से, अपने पारंपरिक कौशलों से बिछुड़ जाते हैं। वे बेचारगी में छोटे-मोटे बाबूगीरी वाले कामों पर निर्भर हो जाते हैं और तो और बुरी आदतें व शहरी नकचढ़ापन अपना लेते हैं तथा गाँव में किए जाने वाले सारे शारीरिक श्रम को, जिन पर हम सभी निर्भर हैं, जरिया समझने लगते हैं।''

वर्धा सम्मेलन के सभी प्रस्ताव को फरवरी-मार्च १९३८ के सालाना बैठक में 'राष्ट्रीय शिक्षा-नीति' के तौर पर मंजूर कर लिया गया। 'हिंदुस्तानी तालीम संघ' के नाम से एक स्वाधीन राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद् की स्थापना की गई, जिसका कार्य था—व्यावहारिक कार्यक्रम का विकास करना और मार्गदर्शन देना।

इस सम्मेलन में मातृभाषा के संदर्भ में विशेष जोर दिया गया। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका के टाल्सटॉय फार्म के बच्चों को भी गुजराती, हिंदी आदि उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने की कोशिश की थी। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा के बजाय मातृभाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा ही उन्हें अत्यधिक सहज-स्वाभाविक लगी। १९ अक्तूबर, १९१० के 'इंडियन ओपिनियन' में अपने लेख में गांधीजी ने लिखा—''हम लोगों में बच्चों को अंग्रेज बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है, मानो उन्हें शिक्षित करने का और साम्राज्य की सच्ची सेवा के योग्य बनाने का वही सबसे उत्तम तरीका है। हमारा खयाल है कि समझदार-से-समझदार अंग्रेज भी यह नहीं चाहेगा कि हम अपनी राष्ट्रीय विशेषता, अर्थात् परंपरागत प्राप्त शिक्षा और संस्कृति को छोड़ दें अथवा यह कि हम उनकी नकल किया करें। इसलिए जो अपनी मातृभाषा के प्रति, चाहे वह कितनी ही साधारण क्यों न हो, इतने लापरवाह हैं, वे एक विश्वव्यापी धार्मिक सिद्धांत को भूल जाने का खतरा मोल ले रहे हैं।'' आगे १५ अक्तूबर, १९१७ को बिहार के भागलपुर में छात्र-सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा, ''मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह देशभक्त कहलाने लायक नहीं है। बहुत से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हमारी भाषा में ऐसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे ऊँचे विचार प्रकट किए जा सकें, किंतु यह भाषा का दोष नहीं। भाषा को बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। एक समय ऐसा था, जब अंग्रेजी भाषा की भी यही हालत थी। अंग्रेजी का विकास इसलिए हुआ कि अंग्रेजी आगे-आगे बढ़े और उन्होंने भाषा की उन्नति की। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धांत रहे कि अंग्रेजी के जरिए ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं तथा उनका विकास कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे। जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाए जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा।''

महात्मा गांधी इस शिक्षा-पद्धति को सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ समाज के नव-निर्माण का सबसे प्रमुख आधार मानते थे। नई तालीम का विचार न सिर्फ भारत के संदर्भ में प्रासंगिक रहा, बल्कि दुनिया को भाईचारे, शांति और मानव समाज के कल्याण के लिए आवश्यक रहा। गांधीजी की शिक्षा-पद्धति में आध्यात्मिकता, नैतिकता एवं सत्य-निष्ठा का समावेश था। गांधीजी बच्चों को स्वावलंबी बनाने के साथ-साथ एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे कि प्रथमक स्कूल भी इस सीमा तक स्वावलंबी हो जाएँ कि आध्यापकों का वेतन विद्यालयों में बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बेचकर दिया जा सके। एक ऐसी व्यवस्था बने, जिसमें सभी स्तर पर स्वावलंबन हो।

दुनिया के सामने गांधीजी के बताए रास्ते पर चलने के अलावा कोई और मार्ग नहीं। वजह साफ है कि पिछले लगभग सौ वर्षों में पूरी दुनिया के साथ-साथ हमने विकास का जो प्रारूप अपनाया है, उसने दुनिया के सामने एक संकट उत्पन्न कर दिया है। यह संकट है बेरोजगारी का। आबादी बढ़ती जा रही है और बेरोजगारी का स्तर भी उसी अनुपात में बढ़ रहा है। जिस पूँजीवादी व्यवस्था को हमने अपनाया, उस व्यवस्था में सभी के लिए रोजगार-सृजन की क्षमता नहीं थी। दरअसल शिक्षित युवाओं को काम नहीं मिल पा रहा है। इसकी वजह तलाशने पर पता चलता है कि अक्षर-ज्ञान में तो हमारे युवा पारंगत हैं, पर हाथों को हुनर का ज्ञान नहीं। ऐसे में हमारे युवा सिर्फ डिग्रीधारी बनकर रह गए हैं। गांधीजी कहते हैं, ''उद्योग, हुनर, तंदुरुस्ती और शिक्षा, इन चारों का सुंदर समन्वय करना चाहिए। नई तालीम में उद्योग और शिक्षा तंदुरुस्ती एवं हुनर का सुंदर समन्वय है। इन सब के मेल से माँ के पेट में आने के समय से लेकर बुढ़ापे तक का एक खूबसूरत फूल तैयार होता है, यही नई तालीम है, इसलिए मैं शुरू में ग्राम-रचना के टुकड़े नहीं करूँगा, बल्कि यह कोशिश करूँगा कि इन चारों का आपस में मेल बैठे, इसलिए मैं किसी उद्योग और शिक्षा को अलग नहीं मानूँगा, बल्कि उद्योग को शिक्षा का जरिया मानूँगा और इसीलिए ऐसी योजना में नई तालीम को शामिल करूँगा।''

हाथ को काम नहीं मिलने पर युवाओं में भटकाव की संभावना बढ़ती जा रही है। ये एक अराजक समाज का निर्माण करेंगे। आज भारत में ३५ वर्ष से कम आयु के ६५ प्रतिशत के लगभग युवाओं की संख्या है। अगर हम इनमें कौशल की बात करें तो इसका प्रतिशत 2 है। यह आँकड़ा बहुत ही निराशाजनक है। इसका अभिप्राय यह है कि अकुशल युवाओं की फौज बनती जा रही है।

गांधीजी कहते हैं, ''मेरी राय में तो इस देश में, जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, वहाँ बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा है।''अक्षर-ज्ञान हाथ के शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता—हस्त कौशल ही तो वह चीज है, जो मनुष्य को पशुबल से अलग करती है। लिखना-पढ़ना जाने बिना मनुष्य का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है। इसमें कोई शक नहीं कि अक्षर-ज्ञान से जीवन का सौंदर्य बढ़ जाता है, लेकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता।''

आज हमने गांधीजी की शिक्षा-नीति को दरकिनार कर दिया है, जिसका खामियाजा हमें भुगतना पड़ेगा। वजह साफ है, जिस शिक्षा-नीति को लेकर हम बढ़ रहे हैं, उसमें एकाकीपन है। यह शिक्षा-पद्धति हाथों को हुनरमंद नहीं बनाती, केवल अक्षर-ज्ञान पाने वाले युवाओं के भरोसे राष्ट्र का समुचित विकास नहीं हो सकता और हम इतनी बड़ी जनसंख्या को रोजगार नहीं दे सकते। तब संभवतः यह आवश्यक हो जाता है कि गांधीजी की शिक्षा-नीति को अपनाया जाए, जिससे विकास संपूर्णता में हो।

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट
नई दिल्ली-११०००२
pankaj.chaubey9@gmail.com



गांधीजी कहाँ हैं?

• लुई फिशर

डॉक्टर मार्टिन लूथर किंग जूनियर की हत्या अमेरिकी राष्ट्र की स्मृति को क्षुब्ध कर रही है और अमेरिका की नियति को नया स्वरूप दिए जा रही है। अमेरिका में वे महात्मा गांधी के सर्वाधिक प्रभावशाली, प्रिय और कृतसंकल्प शिष्य थे। जीवन के अंतिम श्वास तक उनका अहिंसा में अटल विश्वास बना रहा और उन्होंने इससे जरा भी विचलित होने से इनकार कर दिया। अपनी मृत्यु से दस दिनों पूर्व उन्होंने न्यूयॉर्क के हारलेम में हब्शियों को संबोधित करते हुए कहा था कि 'अहिंसा हमारा सबसे शक्तिशाली अस्त्र है।' तीस वर्ष के अल्पवय में ही उनकी मृत्यु भी गांधीजी के समान ही हिंसा के हाथों हुई। उनके साथ ही अमेरिकी राष्ट्र के एक सर्वोत्तम अंग की हत्या कर दी गई। राष्ट्र अपने महानतम पुत्रों को मार डालते हैं।





मार्टिन लूथर किंग सविनय अवज्ञा आंदोलन में सफलतापूर्वक संलग्न हुए थे। उन्होंने गांधीवादी तरीका अख्तियार किया था। अमेरिका में रंगभेद के खिलाफ हब्शियों और अनेक गोरों ने तथा वियतनाम में अमेरिकी नीति के विरुद्ध बहुत बड़ी सख्या में अमेरिकनों ने सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रयोग किया है। येल विश्वविद्यालय के पादरी रेवरेंड डॉ. विलियम स्कोन काफिन ने डॉक्टर किंग की हत्या के ठीक छह दिनों पूर्व ही न्यूयॉर्क में भाषण करते हुए 'अंतःकरण के अनुसार कार्य करने की मौलिक स्वतंत्रता' का समर्थन किया था और कहा था कि मानव-निर्मित विधानों का स्थान इससे कहीं नीचा है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि डॉक्टर काफिन और अमेरिका के सुप्रसिद्ध बाल-प्रशिक्षण विशेषज्ञ डॉक्टर बेंजामिन स्पाक पर सशस्त्र सेना सेवा में अनिवार्य भरती का विरोध करने के लिए अमेरिकी नौजवानों को प्रेरित करने के कारण अभियोग चलाया जा रहा है।

१९४२ और १९४६ में गांधीजी की 'झोंपड़ी' का मेहमान बनने के बाद अमेरिका वापस जाने पर मैंने अमेरिकियों को यह समझाने की कोशिश की थी कि गांधीजी अनशन क्यों करते हैं। उस समय अमेरिकी श्रोताओं की इस पर एकमात्र प्रतिक्रिया यही हुई थी कि अमेरिका में किसी भी उद्देश्य के लिए अनशन करना नितांत हास्यास्पद होगा। किंतु आज शांति के लिए अनशन करना अमेरिका में साधारण बात हो गई है। मार्च १९६८ में वियतनाम युद्ध के विरोध में मेसाचुसेट्स स्थित स्मिथ कॉलेज की १,२७७ छात्राओं ने अनशन किया। शांति के लिए ही फरवरी १९६८ में प्रिंसटन विश्वविद्यालय के २५० छात्रों ने, जिसमें फुटबाल टीम का शानदार कप्तान भी शामिल था, अनशन किया। इसी तरह हार्वर्ड विश्वविद्यालय तथा अन्यत्र भी वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप के विरुद्ध अनेक छात्रों और प्राध्यापकों ने अनशन किए हैं। ये सब गांधीजी द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के ही अनुकरण हैं।

वियतनाम-युद्ध में लड़ने से इनकार करने के फलस्वरूप हजारों युवक जेल जा रहे हैं। अनेक विश्वविद्यालयों ने यह घोषणा कर दी है कि अपनी सजा काटने के बाद वापस आने पर हम अपने ऐसे छात्रों को फिर से प्रवेश दे देंगे। अमेरिकी वायु-सेना के एक कप्तान ने वायुयान-चालकों को वियतनाम के लिए प्रशिक्षित करने के आदेश का उल्लंघन कर दिया है, जिसे एक साल के कारावास की सजा मिली है।

इससे यही पता चलता है कि गांधीजी अमेरिका में बहुत कुछ जीवित हैं। कुछ दिनों पहले पोलैंड और सोवियत रूस में भी सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया जा चुका है । किंतु भारत की क्या हालत है? गांधीजी की हत्या की वार्षिकी के अवसर पर ३० जनवरी, १९६८ को जयप्रकाश नारायणन ने कहा था कि कांग्रेस पार्टी 'प्रचार के उद्देश्य' से अपने को गांधी पार्टी कहती है, किंतु उसने 'गांधीजी के उपदेशों की पूरी तरह अवहेलना कर दी है। भारत में हम यही करते हैं। हम अपने महापुरुषों की अवहेलना कर देते हैं। उन्हें किसी आधान पर अथवा किसी भवन में ताक पर मूर्ति बनाकर रख देते हैं, फिर उन्हें पीछा दिखा देते हैं।'' जब जयप्रकाशजी से पूछा गया कि भारतीय नौकरशाही पर गांधीजी के दर्शन का अधिक प्रभाव पड़ा है या ब्रिटिश औपनिवेशिक परंपरा का, तो उन्होंने अत्यंत दुःख से उत्तर दिया, 'औपनिवेशिक परंपरा का'। गांधीजी को इसी बात की आशंका थी और वे चाहते थे कि ऐसा न हो।

जयप्रकाश नारायण का विश्वास है कि भारत के किसानों और सामान्य जनता के हृदय में अभी भी गांधीजी प्रतिष्ठित हैं। संभवतः इससे चुने हुए शासकों और जनता के बीच खाई का अंदाज लग जाता है। जहाँ तक भारतीय युवकों का सवाल है, मैं ऐसे अनेक युवकों से यूरोप, अमेरिका और इसके पूर्व भारत में भी मिल चुका हूँ। गांधीजी के जीवन और कृतित्व के संबंध में उन्हें बहुत कम जानकारी है। वे केवल यह जानते हैं कि उनके कारण भारत आजाद हुआ है, किंतु गांधीजी उनके राष्ट्रपिता मात्र न थे। वे इससे कहीं बड़े थे। उनका एक जीवन-दर्शन था, जो भारत का कायाकल्प कर सकता है और समस्त मानव-

जाति के लिए भी जिसका विशेष महत्त्व है।

हम हिंसा के युग में रह रहे हैं। सारा संसार मृत्यु की उग्र पीड़ा से छटपटा रहा है, जिसमें इस समय अमेरिका प्रमुख रूप से दोषी है। सत्य उत्पीड़ित है; घृणा विजयिनी हो रही है; प्रेम लावारिस है।

ऐसे भारतीय भी, जो भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता में गांधीजी की सेवाओं की सराहना करते हैं और उनके दर्शन को समझते हैं, उनकी अर्थनीति का मजाक उड़ाने में आनंद लेते हैं। फिर भी कोई इससे इनकार नहीं कर सकता कि गांधीजी भारत को जानते थे। वे भारत को अपनी आँख और कान से, अपने पैर और अपनी त्वचा से, अपने हृदय और अपनी सहज प्रवृत्तियों से जानते थे। उनके लिए भारत उसके हजारों गाँव थे। उसके वे करमे ग्रामवासी थे, जो कुल जनसंख्या के ८० प्रतिशत हैं। उन्हें आशा थी कि स्वतंत्र भारत में सबसे पहले इन पर ध्यान दिया जाएगा। किंतु आज सामान्यत: इस तथ्य को मान लिया गया है कि प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास को ही प्रमुखता मिली और कृषि-विकास का स्थान गौण हो गया। यही हाल चीन और सोवियत रूस में भी हुआ है। बड़ी-बड़ी छतें और शानदार इमारतों की चकाचौंध ने अफसरों के दिमाग बिगाड़ दिए। वे उस नींव से गाँव को ही भूल गए, जहाँ से खाने के लिए और पहनने के लिए सूत मिलता है। इसीलिए चीन और रूस के समान ही भारत का आर्थिक विकास भी अवरुद्ध हो गया। जनता को कष्ट उठाना पड़ा। कुछ भूखों मरने लगे। दामों का या उपहार के रूप में गल्ले का आयात करना पड़ा।

खेत, कल-कारखाना और बाँध राष्ट्रीय विकास के लिए ये सभी चीजें जरूरी हैं, किंतु गांधीजी ने निर्माण का काम मिट्टी से शुरू किया होता। नियोजन की किसी भी प्रणाली में सर्वप्रथम वरीयताओं पर विचार होना चाहिए। भारत के गाँवों को वरीयता नहीं मिली। इस उपेक्षा की कीमत भारतीय जनता को चुकानी पड़ी है। किसानों के कल्याण और अहिंसा जैसी ठोस चीजों के अलावा गांधीजी किसी-न-किसी प्रकार की सार्वजनिक शुद्धता के समर्थक थे और अब भी हैं। उनके लिए साधनों का ही सर्वाधिक महत्त्व था। साध्य तो कभी आते ही नहीं, क्योंकि सभी साध्य आगे आनेवाले किसी-न-किसी साध्य के साधनमात्र हैं और फिर ये साध्य भी साधन ही हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सार्वजनिक शुद्धता भारतीय राजनीति की विशेषता नहीं बन पाई है। किसी भी शासन को सत्ता से हटाकर उसकी जगह पर स्वयं बैठ जाने के लिए कम्युनिस्ट-विरोधी कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चा बना लेते हैं, तो सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट धार्मिक राष्ट्रवादियों और चरमपंथी रूढ़िवादियों से जा मिलते हैं। सत्ता आदर्शों से ऊपर हो जाती है। वैदेशिक मामलों में तटस्थता की नीति नैतिकताविहीन है, क्योंकि इसका अर्थ सिद्धांत के प्रति निष्ठा और बाहरी दबावों का प्रतिरोध होना चाहिए। कामचलाऊ नीति का ही बोलबाला है। क्या भारत-सरकार सदैव बाहरी दबावों का प्रतिरोध कर पाती है? क्या सिद्धांत काल्पनिक लाभों के लिए बेच दिए जाते हैं? क्या भारत राष्ट्र किसी भी अन्य राष्ट्र की अपेक्षा इसीलिए कुछ भी भिन्न या अच्छा हो सका है कि गांधीजी ने इसे स्वतंत्रता के पालने पर झुलाया था?

भारत ने हमेशा से अपनी बहुमूल्य निधियों का निर्यात कर अपने को दरिद्र बना लिया है । भारत ने ही बुद्ध को जन्म दिया था। आज भारत के बाहर करोड़ों लोग उनके अनुयायी है, किंतु भारत में उनकी संख्या मुट्ठी भर ही है। भारत की ही जलवायु ने गांधीजी का पोषण किया था, किंतु आज उन्हीं के अपने देश में कितने गांधीवादी रह गए हैं? और उन गांधीवादियों का भी क्या प्रभाव है? क्या गांधीजी भी महात्मा बनकर देश से चले जाएँगे; क्या इस महान् धर्मोपदेष्टा को अपने ही देश में कोई सम्मान न मिलेगा?

सा अ

व्रत के लाभ

गांधीजी ने अत्यंत तकलीफ भरे दिन देखे थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ रंगभेद की नीति भी देखी थी। भेदभाव की नीति के कारण अनेक बार तीसरे दरजे के डिब्बे में यात्रा की थी। अपने खान-पान की आदतों पर भी उन्होंने नियंत्रण करना सीख लिया था। गांधीजी ने विदेश आते समय अपनी माता को वचन दिया था कि वे विपरीत परिस्थितियों में भी मांस और मदिरा का सेवन नहीं करेंगे। यह वचन उन्होंने जीवन-पर्यंत निभाया था। कई बार उनके शरीर ने हार मान ली थी, लेकिन दृढ़ संकल्प के आगे हर बार उन्होंने विजय पाई थी। गांधीजी ने बचपन में अपनी माता को एकादशी एवं अन्य त्योहारों के व्रतों को बड़े मनोयोग से करते देखा था। गांधीजी ने भी समय-समय पर अनेक व्रतों का संकल्प किया और उन्हें पूर्ण मनोयोग से निभाया। वे सन् १९१५ में हरिद्वार में लगे कुंभ के मेले में गए। वहाँ पर असंख्य श्रद्धालुओं को देखकर, विचारसागर में डूब गए। उन्होंने वहाँ पर कठोर व्रत लेने का निश्चय किया। उन्हें याद आया कि रंगून में यजमानों को उनके भोजन के लिए कष्ट उठाना पड़ा था। यह जानकर उन्होंने स्वयं को आहार की वस्तुओं की मर्यादा बाँधने और अँधेरे से पहले भोजन करने का व्रत लिया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी निश्चय किया कि चौबीस घंटे में पाँच चीजों से अधिक का सेवन नहीं करेंगे। उन्होंने इस व्रत का पालन अनेक वर्षों तक किया। गांधीजी कहते थे कि व्रत मेरे लिए ढाल सिद्ध हुए हैं। मेरा यह मत है कि इन व्रतों के कारण मेरा जीवन बढ़ा है और मैं मानता हूँ कि इनकी वजह से मैं अनेक बार बीमारियों से बच गया हूँ।' ऐसे व्रत लेने के कारण ही गांधीजी दुबले-पतले होकर भी लगातार काम में रत रहते थे।

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



महात्मा गांधी और बिहार

• ध्रुव कुमार



सुप्रसिद्ध लेखक। 'जैन धर्म और बिहार', 'जैन धर्म की कहानियाँ', 'जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर', 'बिहार-झारखंड के जैन तीर्थ-स्थल' सहित डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। 'भगवान् महावीर शिखर सम्मान', 'नवरंग सम्मान', 'कलाश्री सम्मान' एवं अन्य कई सम्मान। संप्रति प्राचार्य, आर.पी.एस. टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, पटना।

महात्मा गांधी का बिहार प्रेम सर्वविदित है। शायद इसका कारण भारत में उनके राजनीतिक संघर्ष का यहीं से आगाज होना है। उत्तर बिहार में नील की खेती करनेवाले किसानों पर अंग्रेजों के जुल्म की कहानी सुनकर वे बिहार आए। यहाँ आकर उन्होंने न सिर्फ नील के किसानों की मुक्ति के लिए संग्राम छेड़ा बल्कि संपूर्ण देश की मुक्ति का बिगुल फूँक दिया। चंपारण के कारण ही वे बहुत कम समय में ही देश के जन-जन के कंठहार बन गए और मिस्टर गांधी से महात्मा गांधी हो गए।

महात्मा गांधी का चंपारण आगमन भारत के आधुनिक इतिहास की सबसे बड़ी घटना है। अगर वे चंपारण नहीं आते तो भारत का इतिहास कुछ और ही होता। चंपारण के नील के किसानों की व्यथा को पहली बार पीर मोहम्मद मुनीस ने कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' अखबार में लिखा। कहा जाता है कि मोहम्मद मुनीस ने किसान राजकुमार शुक्ल के अनुरोध पर किसानों की व्यथा कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी के संपादन में छपनेवाले अखबार 'प्रताप' में लिख भेजा था।

चंपारण के किसान नीलहों के अत्याचार से कितने परेशान थे, इसकी जानकारी इस बात से होती है कि १९११ में जॉर्ज पंचम से मिलकर अपनी शिकायत करने नरकटियागंज स्टेशन पर १५,००० से ज्यादा किसान एकत्र हुए थे। किसानों पर बढ़ते जुल्म को देखकर साँवरिया गाँव के एक किसान राजकुमार शुक्ल चंपारण के किसानों की दुर्दशा से अवगत कराने के लिए नेताओं को पत्र लिखकर लिखने लगे। उन्होंने अहमदाबाद के पते पर महात्मा गांधी को पत्र लिखकर चंपारण आने का निमंत्रण दिया। उन दिनों इंडियन नेशनल कांग्रेस राष्ट्रभक्तों का एक सशक्त संगठन बन गया था। राजकुमार शुक्ल की आँखें इस संस्था पर टिकी थीं। कांग्रेस के अधिवेशन में नेताओं से मिलने राजकुमार शुक्ल लखनऊ पहुँच गए। वहाँ उन्होंने बाल गंगाधर तिलक और महामना मदन मोहन मालवीय से मुलाकात की और उन्हें चंपारण के किसानों के दुःख दर्द की कथा सुनाई। उसके बाद में वकील ब्रजकिशोर सिन्हा के साथ कांग्रेस के अधिवेशन स्थल पर पहुँचे, जहाँ महात्मा गांधी ठहरे हुए थे। इन दोनों ने गांधीजी को अधिवेशन में चंपारण पर प्रस्ताव लाने का अनुरोध किया, परंतु ऐसा नहीं हो सका। बाद में ब्रज किशोर सिन्हा, जो कांग्रेस के विषय निर्धारण समिति के सदस्य थे, ने चंपारण में नीलहों के अत्याचार संबंधी प्रस्ताव पेश किया। इस अधिवेशन में बिहार से संबंधित दो प्रस्ताव आए थे‒ 'पटना यूनिवर्सिटी बिल' और 'चंपारण की समस्या'। प्रस्ताव पर राजकुमार शुक्ल ने चंपारण के किसानों के साथ घट रही घटनाओं का बयान इतने सरल ढंग से किया कि प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इस घटना का जिक्र करते हुए अपनी जीवनी में लिखा है, ''शायद यह पहला मौका था जब निरा देहाती किसान कांग्रेस के मंच से किसी प्रस्ताव पर बोला हो। इनकलाबी कांग्रेस के कल्याणकारी और इनकलाबी धारा को नगरों और बुद्धिजीवियों के बीच से निकालकर गाँव और किसान-मजदूर की ओर मोड़ने का श्रेय राजकुमार शुक्ल को है। पंडित शुक्ल ने गांधीजी से फिर आग्रह किया कि वे चंपारण चलकर अपनी आँखों से किसानों की दुर्दशा देख लें। गांधीजी ने चंपारण आने का उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया।'' गांधीजी ने अपनी डायरी में लिखा, ''वहाँ जाने से पूर्व मैं चंपारण का नाम नहीं जानता था। वहाँ नील की खेती होती है, इसका ख्याल भी मुझे नहीं के बराबर था। नील की गोटियाँ देखी थीं, पर वह चंपारण में बनती हैं और इसके कारण हजारों किसानों को कष्ट झेलना पड़ता है, इसकी खबर मुझे नहीं थी। चंपारण में मुझे कोई पहचानता नहीं था।''

राजकुमार शुक्ल को महात्मा गांधी ने सूचित किया कि ७ मार्च, १९१७ को वे कोलकाता आएँगे। चंपारण चलने के लिए आकर मिले, किंतु कार्यक्रम सफल नहीं हो सका। ३ अप्रैल को गांधीजी ने तार देकर शुक्लजी को कोलकाता बुलाया और ९ अप्रैल को चंपारण के लिए गांधीजी प्रस्थान कर गए।

गांधीजी को लेकर राजकुमार शुक्ल राजेंद्र प्रसाद के घर गए, जो उस समय पटना में किराए के मकान में रहते थे और पटना उच्च

न्यायालय में वकालत करते थे। इधर कोलकाता में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक से गांधीजी लौट रहे थे, उसमें राजेंद्र प्रसाद भी गए थे, उन्हें गांधीजी के पटना या चंपारण जाने की सूचना नहीं थी, राजेंद्र बाबू कोलकाता की बैठक खत्म कर जगन्नाथपुरी चले गए। पटना स्थित आवास पर गांधीजी की मुलाकात राजेंद्र प्रसाद से नहीं हुई तो उन्होंने अपने पुराने मित्र मौलाना मजहरुल हक को संदेश भिजवाया। मजहरुल हक और गांधीजी लंदन में एक साथ पढ़ाई करते थे। गांधीजी के पटना आने की सूचना पर मौलाना साहब अपनी मोटरगाड़ी से उन्हें फ्रेजर रोड स्थित अपने घर सिकंदर मंजिल ले गए। वहाँ कुछ देर विश्राम करने के बाद गांधीजी दीघा घाट आए और स्टीमर पकड़कर पहलेजा घाट पहुँचे। घाट से गाड़ी पकड़कर सोनपुर और फिर मुजफ्फरपुर पहुँचे।

मुजफ्फरपुर पहुँचने पर भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज (अब लंगटसिंह कॉलेज) के प्रोफेसर जे.बी. कृपलानी को गांधीजी से मिलवाया गया। १५ अप्रैल, २०१७ को राजकुमार शुक्ल और अन्य लोगों के साथ महात्मा गांधी ट्रेन से मोतिहारी पहुँचे। अंग्रेजों के दमन और दबदबे के बावजूद सैकड़ों लोगों ने गांधीजी का स्वागत किया।



महात्मा गांधी मोतिहारी के धर्म समाज मोहल्ले के प्रसिद्ध वकील गोरख प्रसाद के यहाँ ठहरे। उसी दिन जसौली पट्टी गाँव के लोग गांधीजी से मिले और पिपराकोठी के अत्याचारों को खुद अपने आँखों से देखने का आग्रह किया। १६ अप्रैल को रामनवमी बाबू वकील के साथ महात्मा गांधी ने हाथी से जोशवाली पट्टी के लिए प्रस्थान किया। वे मोतिहारी से कुछ ही दूर पहुँचे थे कि एक दारोगा ने गांधीजी से मोतिहारी लौटने का अनुरोध किया। गांधीजी बैलगाड़ी से मोतिहारी लौट पड़े। रास्ते में डी.एस.पी. मिले और उन्होंने गांधीजी को जिलाधिकारी द्वारा जारी नोटिस थमा दिया, जिसमें उन्हें चंपारण छोड़ने का आदेश दिया गया था। गांधीजी ने आदेश मानने से इनकार कर दिया, फलस्वरूप १८८ धारा सम्मन जारी कर १८ अप्रैल को अनुमंडलाधिकारी के कोर्ट में उपस्थित होने का आदेश जारी कर दिया। बिजली की तरह यह खबर चारों ओर फैल गई। १८ अप्रैल को गांधीजी एस.डी.ओ. कोर्ट में हाजिर हुए। उस दिन मौलाना मजहरुल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, शंभू शरण तथा अनेक नेतागण उनके साथ थे।

पटना के दरभंगा हाउस में भी रुके थे महात्मा गांधी

पटना का दरभंगा हाउस महात्मा गांधी की मेजबानी का सौभाग्य पा चुका है। गंगा के तट पर अवस्थित यह भवन अभी पटना विश्वविद्यालय का हिस्सा है। मगर कभी यह दरभंगा महाराज का राजमहल था। दरभंगा महाराज लक्ष्मेश्वर सिंह के जीवनकाल में बना यह महल सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक गतिविधियों का केंद्र होने के साथ-साथ यह चंपारण आंदोलन से भी जुड़ा रहा है।

वैसे गांधीजी का दरभंगा महाराज से पुराना संबंध था। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका के नटाल में रंगभेद नीति के खिलाफ अनशन पर थे और असेंबली ने रंगभेद नीति के बिल को पारित कर दिया था, लेकिन उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर नहीं हुए थे। गांधी चाहते थे कि ब्रिटेन की राजशाही पर प्रभाव बनाकर गवर्नर को हस्ताक्षर करने से रोका जाए। गांधी इसको लेकर मद्रास, बंबई, कलकता आदि शहरों का दौरा करने के साथ कई अखबारों के दफ्तरों में भी गए। पर उनकी इस बात को कोई समझने वाला नहीं था। कांग्रेस के संस्थापकों में एक डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने महात्मा गांधी को कहा कि वे दरभंगा महाराज से इसके बारे में संपर्क स्थापित करें, क्योंकि उनका संबंध ब्रिटिश राजशाही से है और उनकी बात का असर होगा। गांधीजी ने महात्मा गांधीजी ने महाराज लक्ष्मेश्वर सिंह को पत्र लिखकर सारी बातें बताईं। महात्मा गांधी का पत्र मिलने के बाद राजा लक्ष्मेश्वर सिंह ने अपना एक पत्र 'द टाइम्स' लंदन में प्रकाशित करवाया, जिसका असर पूरे विश्व में हुआ। रंगभेद नीति के ऊपर सभी का ध्यान गया और गांधी के रंगभेद नीति की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट हुआ।

चंपारण यात्रा के दौरान वायसराय ने दरभंगा महाराज से गांधीजी की यात्रा के बारे में पूछा। इस पर महाराजा ने कहा कि गांधी अहिंसा के पुजारी हैं। उनके वहाँ जाने से कोई परेशानी नहीं होगी। पटना के दरभंगा हाउस में ३ जून, १९१७ को बैठक हुई। बैठक में मुख्य रूप से इस बात पर चर्चा हुई कि यदि लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा राँची में गांधीजी की गिरफ्तारी कराई जाती है तो उसके बाद चंपारण आंदोलन की रूपरेखा क्या होगी? इस बैठक में गांधीजी के अतिरिक्त मौलाना मजहरुल हक, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद मूसा, मोहम्मद यूसुफ, रामगोपाल चौधरी, दरभंगा महाराज के निजी सचिव रघुनंदन प्रसाद सिंह आदि शामिल थे। सभी की राय थी कि यदि बिहार की स्थानीय सरकार गांधीजी को गिरफ्तार करती है तो वायसराय से इस बाबत बात की जाए। बैठक में निर्णय लिया गया कि गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद मजहरुल हक और मदनमोहन मालवीय आंदोलन का नेतृत्व करेंगे।

चंपारण सत्याग्रह के दौरान महात्मा गांधी कई बार पटना आए। गांधी जब १९१८ में पटना आए तब पटना सिटी के राजाराम लेन स्थित श्री नेतराम की धर्मशाला में ठहरे। राजेंद्र बाबू के पुत्र मृत्युंजय प्रसाद उन्हें पटना सिटी लेकर आए थे और गांधीजी ने धर्मशाला में निवास किया। धर्मशाला के बगल में ही पंडित बाल गोविंद मालवीयजी उर्फ बालाजी का बाल कृष्ण मंदिर तथा वाराह मिहिर आचार्य पुस्तकालय था, जिसमें दुर्लभ हस्तलिखित संस्कृत-हिंदी पुस्तकों, विभिन्न शैलियों के चित्र और पुरातात्त्विक महत्त्व की अन्य चीजों का संग्रह था। उस समय गांधीजी हिंदी सही ढंग से नहीं लिख पाते थे। पुस्तकालय की निरीक्षण-पुस्तिका में जो उन्होंने अपने विचार लिखे, उसमें अनेक गलतियाँ रह

गई थीं। गांधीजी को यहाँ अनेक समर्पित नौजवान मिल गए, जिन्होंने उनके आह्वान पर देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने का संकल्प लिया। सरदार गुरचरण सिंह वकील (काली बीवी का कटरा), वरिष्ठ गोकुल प्रसाद (दीवान मोहल्ला), डॉक्टर गुलाम इमाम, पंडित प्रताप नारायण (वाजपेई धर्मशाला), डॉक्टर विशेश्वर दत्त मिश्र (काली स्थान), बाबू नारायण सिंह, बाबू किशन सिंह (दीरा), रामदास महतो (चैनपुरा), कमला प्रसाद वर्मा (गुलजारबाग), प्रमोद शरण पाठक (फतुहा), जस्सू लाल गुप्त, यमुना प्रसाद (महाराज घाट), मदनलाल (नई सड़क), बैजनाथ झुनझुनवाला (चौक), जमुना प्रसाद (रिकाबगंज) आदि अनेक समर्पित नौजवान कांग्रेस के कार्यकर्ता बन गए। राजनीति क्षेत्र में महात्मा गांधी के आगमन से शहर में एक नया स्पंदन हुआ और इसे नई गति तथा नई दिशा मिली। लोगों में राष्ट्रीयता की भावना प्रबुद्ध करने के लिए उन्होंने पटना सिटी से सन् १९२० में 'प्रजा बंधु' नामक राष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्र से अनुग्रह नारायण सिंह, बद्रीनाथ वर्मा, जगत नारायण लाल, बाबू अंबिका कांत सहाय, बागेश्वरी प्रसाद, जस्सू लाल गुप्त और झूलेलाल आदि जुड़े थे।

लालगंज स्थित शारदा सदन पुस्तकालय भी गए थे महात्मा गांधी

महात्मा गांधी १९३४ में बिहार में आए भीषण भूकंप के पीड़ितों से मिलने जब यहाँ आए तो वे वैशाली जिले के लालगंज स्थित शारदा सदन पुस्तकालय भी गए। वहाँ उन्होंने विजिटर्स बुक में लिखा, ''मकान तो गिरा लेकिन विद्या का नाश नहीं हो सकता, इसलिए लोग इस पुस्तकालय में विद्या धन प्राप्त करें।'' यह बात २४ मार्च, १९३४ की है। कहा जाता है कि इस पुस्तकालय में महात्मा गांधी १९१७ में भी आए थे और उन्हीं के आगमन की याद में यहाँ 'गांधी वाचनालय' शुरू किया गया था। हालाँकि पुस्तकालय में उनके १९१७ के आगमन का कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन १९३४ के आगमन का प्रमाण इस बात से है कि उन्होंने न सिर्फ यहाँ की विजिटर्स बुक में कुछ पंक्तियाँ लिखीं और तिथि सहित हस्ताक्षर किए।

गांधी मैदान के उत्तरी और पश्चिमी छोर पर स्थित ए.एन. सिन्हा इंस्टीट्यूट परिसर में महात्मा गांधी १९४७ में ४० दिनों तक रुके थे। उन दिनों यह भवन डॉ. सैयद महमूद का निवासस्थान था, गांधीजी ५ मार्च, १९४७ को अपने सहयोगियों निर्मल कुमार बोस, मनु गांधी, शिव प्रकाश नायक आदि के साथ पटना पहुँचे थे। गांधीजी के बुलावे पर सीमांत गांधी के नाम से मशहूर अब्दुल खान गफ्फार खान भी इसी भवन में उनके साथ ठहरे थे और यहीं उन्होंने राजेंद्र प्रसाद, डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह आदि के साथ दंगों से बचाव की रणनीति बनाई थी। यहाँ से रोज बापू गांधी मैदान के उत्तरी और पश्चिमी छोर पर सुबह-सुबह भजन के लिए जाते तथा लोगों से मिलते थे। आज इसी स्थान पर महात्माजी की विशालकाय प्रतिमा स्थापित है।

महात्मा गांधी का समाधि-स्थल नई दिल्ली के राजघाट पर ही नहीं है बल्कि यह गुजरात के आदिपुर कच्छ, उत्तर प्रदेश के रामपुर, मध्य प्रदेश के बड़वानी और पटना के गांधी घाट पर भी स्थित है। राजधानी पटना के गांधी घाट पर बापू का समाधि-स्थल है। एन.आई.टी. के ठीक पीछे स्थित गांधी घाट पर महात्मा गांधी की अस्थियाँ स्मृति-स्वरूप संग्रहीत हैं।

यहाँ प्रतिवर्ष २ अक्तूबर और ३० जनवरी को राज्यपाल तथा मुख्यमंत्री सहित अनेक लोग आकर महात्मा गांधी श्रद्धांजलि को अर्पित करते हैं।

सा अ

व्योम, पी.डी. लेन, महेंद्रु
पटना-८००००६ (बिहार)
dhrub20@gmail.com

व्यायाम का प्रताप

एक दिन गांधीजी श्रीमती अरुणा आसफ अली के साथ वाइसराय से मिलने गए हुए थे कि उसी समय पंडित जवाहरलाल नेहरू भंगी-बस्ती में आ पहुँचे। गांधीजी को वहाँ न पाकर वे इधर-उधर देखने लगे। तभी उनकी नजर एक कोने में कूदने की रस्सी पर पड़ी। उन्होंने उस रस्सी को उठाया और कूदने लगे। मनु वहीं थी। वे मनु से बोले, 'मनु, तुम्हें रोज सवेरे सौ बार कूदना चाहिए और इसके बाद दूध पीना चाहिए। इससे तुम्हारा शरीर चुस्त और मजबूत बनेगा। चुस्त व स्वस्थ होने के कारण तुम पर बीमारियों का असर भी कम होगा।' मनु पंडितजी की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी कि तभी गांधीजी ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि जवाहरलाल नेहरू हाथ में रस्सी लेकर मनु से बातें कर रहे हैं। वे बोले, 'क्या दोनों कूदने की होड़ लगा रहे हो?' इस पर मनु व पंडितजी हँस पड़े। पंडितजी गांधीजी से बोले, 'मैं मनु को व्यायाम के महत्त्व के बारे में बता रहा था और यह बता रहा था कि रस्सी कूदने से क्या-क्या लाभ होते हैं। मैं मनु से कह रहा था कि व्यायाम करने से अनेक लाभ होते हैं।' यह सुनकर गांधीजी बोले, 'बिल्कुल सच बात है। जब मैं इंग्लैंड में था तो मेरे पास बहुत गरम कपड़े नहीं थे। वहाँ बड़ी सख्त सर्दी पड़ती थी, फिर भी नहाए बिना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए मैं खूब दौड़ता था, जिससे शरीर में गरमी आ जाती थी। मैं वहाँ अपना स्वास्थ्य बढ़िया रख सका, तो केवल व्यायाम के प्रताप के कारण ही। लोग कहते थे कि यदि मैं मांसाहार का सेवन नहीं करूँगा तो काम नहीं चलेगा। लेकिन मैंने विदेश में बिना मांसाहार के अपना जीवन भली-भाँति बिताया।' गांधीजी की बातों से पंडित जवाहरलाल नेहरू और मनु, दोनों ही सहमत हो गए। मनु बोली, 'अब से मैं समय निकालकर प्रतिदिन व्यायाम करूँगी।' सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)

गांधी-दर्शन के तीन आयाम : सत्य, अहिंसा और गौरक्षण

• महेश चंद्र अवस्थी



केंद्रीय सरकारी सेवा से सहायक निदेशक के पद से सेवा-निवृत्त। एम.ए. अर्थशास्त्र, एम.ए. समाजशास्त्र, डिप्लोमा-पत्रकारिता एवं कंप्यूटर एप्लीकेशन। विभागीय वार्षिक पत्रिकाओं 'आदित्य' और 'रुचिरादित्यम' का संपादन किया।

मोहनदास करमचंद गांधी १८वीं और १९वीं शताब्दी का एक ऐसा व्यक्तित्व, जिसने अपने राजनीतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक कृतत्व से सारे विश्व समाज पर एक ऐसी छाप छोड़ी है, जो सदियों तक गांधी-दर्शन के नाम से जानी जाती रहेगी। विगत तीन सदियों में कई महान् दार्शनिक, योद्धा, समाज-सुधारक, जैसे सुकरात, नेपोलियन, मुसोलिनी, हिटलर, कालमार्क्स इत्यादि इस धरती पर पैदा हुए और आज इतिहास के पन्नों में विलुप्त हो गए, मगर इन सब में महात्मा गांधी एक ऐसा नाम है, जो आज भी विश्व के मानस-पटल पर गांधी-दर्शन के रूप में जीवित है। गांधी-दर्शन के किसी भी पहलू को आप कहीं से भी उठाकर देख लें, तो हर बार आपको यही देखने और जानने को मिलेगा कि उसमें मानवीय जीवन-शैली के नैतिक मूल्यों को केंद्रस्थ रखकर चिंतन को आगे बढ़ाया गया है। महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन के अनेक आयाम है, इसमें सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीति, स्वदेशी, प्रेम, विश्वास, आस्था, गौरक्षा, अपरिग्रह, स्वतंत्रता, उपवास, प्रार्थना, अध्यात्म, भक्ति, अनासक्ति योग आदि के लयात्मक चरित्र-चित्रण को उकेरकर यथार्थ जीवन के व्यवहार से जोड़ने का काम किया गया है। गांधी-दर्शन में प्रतिपादित प्रत्येक सिद्धांत एवं विचार को महात्मा गांधी ने जीवन में एक व्यावहारिकता देकर उसको जनमानस के समक्ष रखा है। गांधी-दर्शन इतना गहन व्यापक और विस्तृत है कि इसको शब्दों या परिभाषाओं में बाँधकर नहीं रखा जा सकता है। इसका समग्र स्वरूप सरलता, सादगी और विश्वास है, समस्याओं के प्रति एक यथार्थ दृष्टिकोण, जो व्यक्ति, समाज और देश को प्रगतिवादी चिंतन की ओर ले जाता है। समस्या कितनी भी गंभीर क्यों न हो उसको हल करने की दिशा में की जाने वाली पहल में एक अटूट विश्वास, दृढ़ निश्चय और अदम्य साहस का समन्वयात्मक मौलिक दृष्टिकोण गांधी-दर्शन में देखने को मिलता है।

१९२६ में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन की एक घटना है, जब श्रीनिवास आयंगार ने हिंदू-मुसलिम एकता पर एक संकल्प तैयार किया था, इस मसौदे को सरसरी तौर पर देखने के बाद बापू ने कहा कि ''अगर किसी के भी प्रयत्नों से किसी भी शर्त पर हिंदू और मुसलिमों में समझौता होता है तो यह मैं मान लूँगा, मसौदा दिखाने की जरूरत नहीं है।'' सायंकाल की प्रार्थना के बाद बापू जल्दी सो गए, दूसरे दिन सुबह-सवेरे उन्होंने महादेव देसाई को जगाया और कहा कि ''मुझसे बड़ी भारी गलती हुई है, कल के संकल्प के मसौदे को मैंने गौर से नहीं पढ़ा था। रात मुझे याद आया कि उसमें मुसलमानों को गौ-हत्या की छूट दी गई है, गौ-रक्षा का सवाल ताक पर रखा दिया गया है। मुसलमान अगर गौ-हत्या करते हैं, तो हम उन्हें जबरदस्ती रोक नहीं सकते, लेकिन उनकी सेवा करके उन्हें समझा सकते हैं। मैं स्वाधीनता की खातिर भी गौरक्षा का अपना उद्देश्य नहीं छोड़ूँगा।'' गौ-रक्षा के बारे में महात्मा गांधी के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे, यंग इंडिया में तारिख ६ अक्तूबर, १९२१ में प्रकाशित एक लेख में गांधीजी लिखते हैं कि ''हिंदू धर्म की मुख्य वस्तु है गौरक्षा। गौरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकास क्रम में सबसे अलौकिक वस्तु मालूम हुई है।'' यंग इंडिया २८ मई, १९२४—''हिंदू धर्म केवल समग्र मानव जाति के एकत्व में ही विश्वास नहीं करता, अपितु यह समस्त प्राणी जगत् को एक मानता है। मेरी राय में गोपूजा लोकोपकारी वृत्ति है, उसके विकास में हिंदू धर्म का अद्वितीय योगदान है। यह समस्त प्राणी-जगत् के एकत्व और उसकी पवित्रता में विश्वास का प्रत्यक्ष परिणाम है।'' गाय को हिंदू धर्म में एक पवित्र स्थान प्राप्त है, यह परिवार के आर्थिक विकास की धुरी है।

महात्मा गांधी के जीवन पर श्रीमद्भगवदगीता का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था, इससे उन्होंने ज्ञान और भक्ति की प्रेरणा पाई, फलासक्ति पर विचार किए बिना निष्काम भाव से किया गया कर्म जीवन में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। गांधीजी इस बात की कभी चिंता नहीं करते थे कि

लोग क्या कहेंगे, वे हमेशा अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार ही चलने वाले पुरुष थे। अंतरात्मा में उनकी आस्था ही अंत में सत्य के प्रति उनकी आस्था में परिणीत हो गई थी। इसी आस्था और विश्वास के बल पर वे अपने को परंपरावादी हिंदू मानते थे, मगर इसके साथ-साथ छुआछूत, ऊँच-नीच आदि मामलों में खुलकर दृढ़ता से विरोध करते थे। वे कहते थे कि मनुष्य-मनुष्य के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार घोर अमानवीय है, इसी को ध्यान में रखकर उन्होंने 'हरिजन' शब्द गढ़ा। उनकी इसी दृढ़ इच्छाशक्ति ने ही उन्हें विश्व का एक महान् युगपुरुष बनाया है। महान् वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन ने महात्मा गांधी के विषय में लिखा है कि "ऐसा ही मानव जीव आगे की पीढ़ियों के लिए प्रकाश स्तंभ बन सकता है।" आज के इस भौतिकवादी युग में हमारी नई पीढ़ी महात्मा गांधीजी के विचारों से पूर्ण तरह से इत्तेफाक न रखती हो, मगर आज भी जीवन के व्यावहारिक पहलुओं में कई ऐसे मसले और मुकाम आते हैं, जब हमें बापू की विचारधारा की बुनियादी बातें बरबस उनका अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती हैं; फर्क सिर्फ इतना है कि समय और परिस्थितियाँ गांधीजी के दौर से अलग है। गांधीजी ने अपने जीवन में जो भी कार्य किए, उसमें भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम तत्त्वों का समावेश रहता था, कहीं भी अन्याय, शोषण अथवा आतंक दिखाई देता तो वे अपनी पूर्ण चेतना और शक्ति के साथ सक्रिय हो जाते थे, इन अवसरों पर वे यह विचार नहीं करते थे कि वे यह कार्य स्वयं अकेले ही पूरा कर सकेंगे कि नहीं।

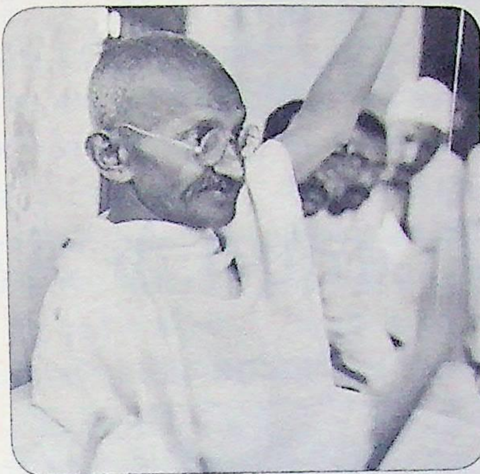
छुआछूत, अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए नवंबर १९३३ से संपूर्ण भारत भ्रमण के दौरे के दौरान बापू के सामने कई बार ऐसे प्रसंग आए, जब बापू को लगा कि इस देश में स्वतंत्रता से पहले सामाजिक एवं धार्मिक छुआछूत और अस्पृश्यता से लोगों को मुक्त करने की आवश्यकता है। यह एक जोखिम से भरी यात्रा थी, क्योंकि उस समय का समाज कई प्रकार की जाति-प्रथाओं, छुआछूत एवं वंशानुगत कामों के कारण कई वर्गों और घटकों में बँटा हुआ था, मगर बापू ने बड़े निडर भाव से अपनी इस हरिजन यात्रा में सवर्णों और हरिजनों की कई सभाओं को संबोधित किया। इन सभाओं में बापू ने स्पष्ट रूप से कहा कि अस्पृश्यता जिस रूप में आज मानी जाती है, उसे हिंदू धर्म में कोई स्थान नहीं है, मेरा तो यह दृढ़ मानना है कि अगर अस्पृश्यता को दूर नहीं किया गया तो हिंदू धर्म का नाश हो जाएगा। धर्म में द्वेष के लिए कोई जगह नहीं है। अपने हरिजन भाइयों को संबोधित करते हुए बापू ने कहा कि हरिजन सेवा हिंदू-धर्म की शुद्धि का एक पवित्र कार्य है, इसलिए इसमें तो हमें हरिजन भाइयों की भी सहायता चाहिए, हरिजनों को चाहिए कि वे बाहरी और आतंरिक स्वच्छता के सामान्य नियमों का पालन करें, मांस-मदिरापान को छोड़ें, मंदिरों के दरवाजे उनके लिए खुले हैं, वे मंदिरों में जाएँ और भगवान् की भक्ति करें। बापू ने उनके इस दौरे में महाराष्ट्र, मध्यभारत, दक्षिण भारत, बिहार, असम, उड़ीसा, और उत्तर प्रदेश की यात्रा की, इस यात्रा के प्रभाव से समाज के सभी वर्गों में एक जन-चेतना का संचार हुआ और हरिजनों के लिए मंदिरों में प्रवेश आसान हुआ, हरिजन बालकों-बालिकाओं के लिए पाठशालाओं में प्रवेश मिलने लगा।

गांधीजी का रहन-सहन विशुद्ध रूप से सात्त्विक और सादा हुआ करता था, वे लोगों से भी सादा एवं सात्त्विक जीवन जीने का अनुरोध करते थे, मगर वे अपने सिद्धांतों और विचारों को किसी पर बलात् थोपने का प्रयास कभी नहीं करते थे, आश्रम में रहकर जो लोग उनके विचारों व सिद्धातों का अनुपालन नहीं करना चाहते, उन्हें इसकी पूरी-पूरी आजादी होती थी। धर्मपरायण जीवन जीने के अपने नियमों का सतत पालन करते हुए उन्होंने दूसरों के प्रति हमेशा उदारता बरती। एक बार आश्रम के किसी कार्यकर्ता ने गांधीजी से पूछा कि ये रविंद्रनाथ (टैगोर) लिखता तो बहुत है, पर लड़ाई (स्वतंत्रता संघर्ष) में शामिल नहीं होता है, अगर उसे देशप्रेम है तो वह चुप क्यों बैठा रहता है। गांधीजी ने उसका जवाब दिया कि 'गाय गाय का काम करती है और घोड़ा घोड़े का काम करता है।'

स्वतंत्रता संघर्ष के समय स्वदेशी एक बहुत बड़ा मुद्दा था। भारत की आर्थिक समृद्धि भारतीय कुटीर-ऊद्योग से जुड़ी हुई थी, उसको अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए नियम व कायदे बनाकर बहुत बुरी तरह से प्रभावित कर दिया था। विदेश में उत्पादित माल को भारत में लाकर बेचने के कारण जनता घोर गरीबी के संकट में फँस गई थी। गरीबी के इस संकट से जनता को बाहर निकालने के लिए गांधीजी ने जनता को स्वदेशी का मंत्र दिया, विदेशी उत्पादों का बहिष्कार कर स्वदेशी को व्यवहार में उपयोग किया जाए तो हम अपनी विरासत को संरक्षित कर सकते हैं और गरीबी के संकट से उबर सकते हैं। राष्ट्र की धार्मिक, सांस्कृतिक और प्रौद्योगिकी शिल्प सही अर्थों में समाज की अमूल्य धरोहर होती है, इससे आर्थिक समृद्धि एवं स्वावलंबी जीवन के दरवाजे खुलते हैं। स्वदेशी का मूल सिद्धांत भारत की पुरातन ग्रामीण ग्राम पंचायतों की कार्यप्रणाली से निकला है। आज विभिन राष्ट्रों के बीच मुक्त व्यापार व्यवस्था का दौर है। बढ़ते सस्ते आयात और घटते निर्यात के कारण उद्योगपतियों और व्यापारियों में लाभ कमाने की आपाधापी मची हुई है, इसके कारण घरेलू एवं कुटीर उद्योगों-धंधों के द्वारा उत्पादित माल उनकी लागत के कारण आयातित माल से महँगे हो जाते हैं और धीरे-धीरे ये लघु एवं कुटीर उद्योग-धंधे बंद होने के कगार पर पहुँच गए हैं। इस समस्या से निपटने के लिए स्वतंत्र जनतांत्रिक राष्ट्र

छुआछूत, अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए नवंबर १९३३ से संपूर्ण भारत भ्रमण के दौरे के दौरान बापू के सामने कई बार ऐसे प्रसंग आए, जब बापू को लगा कि इस देश में स्वतंत्रता से पहले सामाजिक एवं धार्मिक छुआछूत और अस्पृश्यता से लोगों को मुक्त करने की आवश्यकता है। यह एक जोखिम से भरी यात्रा थी, क्योंकि उस समय का समाज कई प्रकार की जाति-प्रथाओं, छुआछूत एवं वंशानुगत कामों के कारण कई वर्गों और घटकों में बँटा हुआ था, मगर बापू ने बड़े निडर भाव से अपनी इस हरिजन यात्रा में सवर्णों और हरिजनों की कई सभाओं को संबोधित किया।

में लोकमत के बल पर लोगों में स्वदेशी के बारे में प्रचार-प्रसार किया जाए तो इस समस्या से निपटा जा सकता है, इस प्रकार हम अपनी स्वदेशी की विरासत को संरक्षित कर सकते हैं।



सत्य गांधीजी के दर्शन का अधिष्ठान है, समूचे जीवन साधना का साध्य, जीवन का परम ध्येय है, गांधीजी सत्य तत्त्व के चिंतक एवं शोधक थे, उनकी सत्य की अवधारणा के दो रूप थे। पहला, सत्य का ईश्वरीय रूप, अर्थात् सत्य ही ईश्वर है, यह सत्य का निरपेक्ष रूप है। दूसरा, व्रत रूप, सत्य समाजसेवा के रूप में दरिद्रनारायण की सेवा ही ईश्वर की सेवा है, यह सत्य का सापेक्ष रूप है। गांधीजी के लिए ईश्वर कोई जीवधारी व्यक्ति नहीं है, वह तो सर्वव्यापक, निराकार, संसार चालक, शक्तिमान अंतर्यामी है, यह सभी प्राणी जगत् में अंतर्निहित सत्य है और यह सत्य ही ईश्वर है। महात्मा गांधी सत्य को खोजते-खोजते अहिंसा तक पहुँच जाते हैं, प्राणिमात्र से प्रेम करना अहिंसा की पराकाष्ठा है, यह उनके दर्शन की विशेषता है, साध्य की प्राप्ति के लिए साधन होना चाहिए, इसीलिए सत्य और अहिंसा उनके पर्यायवाची है। सत्य में अहिंसा का अस्तित्व आपस में जुड़ा हुआ है। अहिंसा और कायरता के अंतर को प्रतिपादित करते हुए गांधीजी कहते हैं कि अहिंसा इस बात की इजाजत नहीं देती है कि खतरा आने पर आप अपने प्रियजनों को, जिनके संरक्षक आप हैं, छोड़कर आप पलायन कर जाएँ, अहिंसा की विशेषता यह है कि इसमें सक्रियता है विषम परिस्थितियों में, जब शत्रुतापूर्ण इरादा लेकर अनाचार दुष्टतापूर्ण व्यवहार यदि कोई करता है तो उसे दंड देने के लिए हिंसा करने की इजाजत दी जा सकती है। हिंसा और अहिंसा के बीच विवेक-बुद्धि उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है। गांधीजी जिस अहिंसा में विश्वास करते हैं, उसकी प्रकृति में अत्याचारों को जड़मूल से समाप्त कर देना है, क्योंकि अहिंसा के नियम अटल है, वह आत्मा को जाग्रत् करता है। गांधीजी का संपूर्ण जीवन एक सत्याग्रही का जीवन था। मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न समस्याओं के हल के रूप में सत्याग्रह कार्यप्रणाली का विशेष योगदान है। गांधीजी का मानना था कि सत्याग्रह केवल शासकों और शासितों के बीच के संबंधों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सुधार के लिए यह एक अचूक अस्त्र है, सत्याग्रह को दर्शन और उसको एक पूर्ण विकसित पद्धति के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय महात्मा गांधीजी को जाता है। गांधी-दर्शन में सत्याग्रह का अर्थ है—सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक कार्य पद्धति। महात्मा गांधी का दर्शन विशाल सागर के सामान मानव समाज के लिए एक संपूर्ण योग-दर्शन है।

सा अ

११७-बी, संगम नगर,
जैन मंदिर के पास
इंदौर-४५२००६ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४७९४१३२५७
mahesh8491@gmail.com

अपना काम स्वयं करो

एक बार गांधी सूत कातने के बाद उसे लपेटे पर लपेटने ही वाले थे कि अचानक उन्हें एक आवश्यक कार्य के लिए तुरंत बुलाया गया। गांधीजी वहाँ से जाते समय आश्रम के साथी श्री सुबैया से बोले, 'मैं आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ, पता नहीं कब लौटूँ, तुम सूत लपेटे पर उतार लेना, तार गिन लेना और प्रार्थना के समय से पहले मुझे बता देना।' सुबैया बोला, 'जी बापू, मैं कर लूँगा।' इसके बाद गांधीजी चले गए। सांध्य प्रार्थना के समय आश्रमवासियों की हाजिरी होती थी। उस समय किस व्यक्ति ने कितने सूत के तार काते हैं, यह पूछा जाता था। उस सूची में सबसे पहला नाम गांधीजी का था। जब उनसे उनके सूत के तारों की संख्या पूछी गई तो वे चुप हो गए। उन्होंने सुबैया की ओर देखा। सुबैया ने उन्हें देखकर नीचे सिर झुका लिया। हाजिरी समाप्त हो गई। प्रार्थना समाप्त होने के बाद गांधीजी कुछ देर के लिए आश्रमवासियों से बातें किया करते थे। उस दिन वे गंभीर थे। उन्हें देखकर लग रहा था, जैसे कि उनके अंतर में गहरी वेदना चल रही है। उन्होंने दुःख भरे स्वर में कहना आरंभ किया, 'मैंने आज भाई सुबैया से कहा था कि मेरा सूत उतार लेना और मुझे तारों की संख्या बता देना। मैं मोह में फँस गया। सोचा था, सुबैया मेरा काम कर लेंगे, लेकिन यह मेरी भूल थी। मुझे अपना काम स्वयं करना चाहिए था। मैं सूत कात चुका था, तभी एक जरूरी काम के लिए मुझे बुलावा आ गया और मैं सुबैया से सूत उतारने को कहकर बाहर चला गया। जो काम मुझे पहले करना था, वह नहीं किया। भाई सुबैया का इसमें कोई दोष नहीं, दोष मेरा है। मैंने क्यों अपना काम उनके भरोसे छोड़ा? मुझसे यह प्रमाद क्यों हुआ? सत्य के साधक को ऐसे प्रमाद से बचना चाहिए। उसे अपना काम किसी के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। आज की इस भूल से मैंने एक बहुत बड़ा पाठ सीखा है। अब मैं फिर ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा।' उनकी बात सुनकर सुबैया को भी स्वयं पर अत्यंत ग्लानि हुई। उसने निश्चय किया कि यदि आगे से वह कोई जिम्मेदारी लेगा तो उसे अवश्य समय पर पूर्ण करेगा।

सा अ

(रेनू सैनी की पुस्तक 'महात्मा गांधी की प्रेरक गाथाएँ' से साभार)



बापू के बचपन के संस्कार

• मायाराम पतंग

प्रत्येक व्यक्ति पर जीवन भर संस्कार पड़ते रहते हैं। कुछ नया सीखते हैं तो कुछ पुराना भूल जाते हैं। परंतु बचपन में जो भी संस्कार गहराई से प्रभावित करते हैं, वे संपूर्ण जीवन को प्रभावित करते हैं। घर-परिवार के, पड़ोस के, अपनों-परायों के, मित्रों के व्यवहार तथा चरित्र के संस्कार प्रत्येक को प्रभावित करते हैं। सर्वाधिक प्रभावी और स्थायी रहते हैं माता के संस्कार। गांधीजी पर भी बचपन से ही उनकी माता पुतलीबाई के धार्मिक आचरण के प्रभावी संस्कार पड़े थे, जिनको वे दीर्घ जीवन में कभी नहीं भूल पाए।

गांधीजी के पिता श्री करमचंद गांधी एक भरे-पूरे परिवार से संबंध रखते थे। उनके एक सगे छोटे भाई तुलसीदास गांधी थे और चार ताऊ के लड़के, परंतु सब एक परिवार में ऐसे मिल-जुलकर रहते थे कि सगे और सौतेले का कोई अंतर ही नहीं था। पिता करमचंद गांधी के भी चार विवाह हुए थे। दो पत्नियों से दो कन्याएँ हुईं। एक की मृत्यु हो गई। सबसे छोटी पत्नी पुतलीबाई से एक कन्या तथा तीन पुत्र हुए। इनमें मोहनदास सबसे छोटे थे। पिता सत्यप्रिय, न्यायशील और ईमानदार तो थे ही, परंतु जिद्दी भी थे।

माता पुतलीबाई अत्यंत धार्मिक महिला थीं। वे एक वैष्णव परिवार के समस्त रीति-रिवाज, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परंपराओं का यथाशक्ति पालन करती थीं। आए दिन किसी-न-किसी त्योहार के नाते उपवास करते रहना उन्हें रुचता था। कभी अष्टमी, कभी एकादशी, कभी तीज तो कभी पूर्णिमा। उपवास से भगवान् भी हमारी बात स्वीकार कर लेते हैं, यह बात गांधीजी के मन में गहरी बैठ गई थी। तभी उन्होंने जीवन भर उपवासों पर बल देकर अपनी बात सरकार से, जनता से तथा विरोधियों से भी मनवाने में भरोसा रखा। माता पुतलीबाई कभी-कभी चौमासे का व्रत भी रखती थीं और सूर्यदर्शन होने पर ही भोजन करतीं। वर्षा ऋतु में कई दिन तक सूर्यदर्शन नहीं होते तो भोजन ही न कर पातीं।

माता पुतलीबाई ने ही गांधीजी को हर परिस्थिति में सत्य बोलने का गुण सिखाया। उनका कहना था कि गलती तो जाने-अनजाने हो सकती है, परंतु हमें सच्चाई से उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। चोरी और झूठ दोनों पाप हैं। पाप से केवल सत्य बचा सकता है। गांधीजी ने जीवन भर सत्य की साधना की। आपनी कमियों, बुराइयों तथा दुर्गुणों को भी स्वयं आत्मकथा 'मेरे सत्य के प्रयोग' में सार्वजनिक रूप में स्वीकार कर लिया।



जाने-माने साहित्यकार। तीन कविता-संग्रह, पाँच नैतिक शिक्षा, छह पुस्तकें शिक्षण साहित्य पर, दो गद्य-संग्रह, दो खंडकाव्य, चार संपादित पुस्तकें, छह गीत-संकलन। हिंदी अकादमी तथा दिल्ली राज्य सरकार द्वारा सम्मानित। संप्रति 'सेवा समर्पण' मासिक में लेखन तथा परामर्शदाता; राष्ट्रवादी साहित्यकार संघ (दि.प्र.) के अध्यक्ष; संपादक 'सविता ज्योति'।

मोहनदास गांधीजी ने स्वयं लिखा है कि वे कोई विशेष प्रतिभाशाली छात्र नहीं थे, न ही कोई कलाकार या वैज्ञानिक बुद्धिवाले थे। वे कभी कक्षा में प्रथम स्थान पर नहीं रहे, परंतु भाग्य से फिर भी सौराष्ट्र क्षेत्र का होने के कारण छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। शर्मीला और डरपोक होने का दुर्गुण भी गांधीजी ने सच्चाई से स्वीकार किया है।

विद्यार्थी जीवन का एक उदाहरण देखिए। इंस्पेक्टर साहब ने कक्षा की योग्यता जाँचने के लिए एक शब्द बोला—'केटल'। गांधीजी ने समझा 'कैटल' अंग्रेजी में स्पैलिंग गलत। अध्यापक ने ठोकर मारकर संकेत किया कि बगलवाले की स्लेट देखकर ठीक कर लो, पर उन्होंने नहीं किया। परिणामतः सारी कक्षा के बच्चों का ठीक, केवल मोहनदास का लिखा गलत था। बाद में शिक्षक ने कहा कि मैंने तो संकेत भी दिया था कि बगलवाले बालक का देखकर ठीक कर लो। तब गांधीजी का विचार था कि शिक्षक तो यह देखने के लिए घूम रहे थे कि कोई छात्र नकल न करे। गांधीजी के विचार से नकल भी चोरी ही है।

गांधीजी को बचपन से ही व्यायाम और उछल-कूद का शौक नहीं था। उनके विद्यालय में शाम को व्यायाम के लिए अलग से बुलाना तय कर दिया। रुचि भी नहीं थी और स्कूल से घर जाकर उन्हें अपने पिताजी की चरण-सेवा भी करनी होती थी। एक दिन बादलों का मौसम था। समय का पता न चला और जब गांधीजी स्कूल के पार्क में पहुँचे तो व्यायाम समाप्त हो चुका था। अगले दिन अनुपस्थिति का कारण पूछने पर बादलों के कारण समय का ज्ञान न होने को शिक्षक ने झूठ और बहाना समझा। इस पर गांधीजी बहुत रोए कि उनकी सच बात को झूठ समझा गया। उनके दुःख का यही कारण था। बाद में पिताजी ने अपनी सेवा के लिए मोहन का घर रहना अनिवार्य है, यह

बताकर व्यायाम-कक्षा से उनकी छुट्टी करवा ली।

उनके एक सौतेले भाई तथा एक अन्य साथी ने उन्हें बहका दिया कि गांधी शर्मीला तथा डरपोक इसलिए है कि वह मांस नहीं खाता। मांस खाने से हिम्मत आती है, ताकत आती है। अत: मांस खाना चाहिए। गांधीजी ने विचार किया कि अंग्रेज मांसाहारी हैं, तभी हमारे देश पर राज कर रहे हैं। हम भी मांसाहार से बलवान बनकर उनका मुकाबला करेंगे तथा उन्हें भगा देंगे। मोहनदास गांधी बातों के जाल में फँस गए और मांसाहार के लिए तैयार हो गए। व्यवस्था उस साथी ने की। घर पर यह पता न चले, अत: बाहर ही यह तय हुआ। पहले तो उन्हें मांस देखकर ही दु:ख हुआ, पर हिम्मत करके खा लिया। रात भर उन्हें बकरा चीखता-चिल्लाता दिखाई देता रहा। अब नई समस्या यह कि माँ से चोरी-चोरी यह कर्म किया। माँ को पता चले तो न जाने वह क्या कर बैठे? अंत में उन्होंने यही तय किया कि मांसाहार यदि सचमुच अनिवार्य लगेगा तो बड़े होने पर विचार करेंगे; जब तक माता-पिता जीवित हैं, तब तक के लिए मांसाहार नहीं करने का निश्चय किया। बड़े होकर तो समझ में आ गया कि मांसाहार का वीरता, से शक्ति से कोई सीधा संबंध नहीं है। अत: फिर जीवन भर मांसाहार नहीं किया।



उनके पिताजी की पुस्तकों में 'श्रवण कुमार नाटक' रखा था। वैसे स्कूल के अतिरिक्त पुस्तकें पढ़ने का शौक नहीं था। श्रवण कुमार की पितृभक्ति की पुस्तक पढ़कर इतनी रुचि जागी कि उस पुस्तक को उन्होंने कई बार पढ़ा। मोहनदास भी पितृभक्त थे। वे पिताजी की सेवा प्रतिदिन करते थे। अत: उन्हें स्वयं में श्रवण कुमार की छवि दिखाई देने लगी।

बचपन में ही गांधीजी के शहर में एक नाटक कंपनी आई। वह प्रतिदिन 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र' का नाटक दिखाती थी। माता-पिता ने भी अनुमति दे दी थी। अत: गांधीजी ने यह नाटक बार-बार देखा। सोते-जागते भी उन्हें राजा हरिश्चंद्र पर आई आपत्तियाँ दिखाई देती रहतीं। इस नाटक का प्रभाव उनके जीवन पर सदैव रहा। उनके मन में विश्वास हो गया कि सत्यवादी पर मुसीबतें आना स्वाभाविक है, परंतु सत्यवादी की विजय सुनिश्चित है। प्रत्येक परिस्थिति में उनका यह विश्वास अटल बना रहा।

बचपन में ही मोहनदास का विवाह भी कर दिया गया। तब वे १२ वर्ष पार कर चुके थे, परंतु उन्हें विवाह का मतलब पता नहीं था। परिवार के तीन भाइयों का विवाह एक साथ करके परिवार ने अपना खर्चा बचाया था। इस प्रकार अपनी जिम्मेदारी से निवृत्त हो गए थे। तब वे शायद छठी कक्षा में पढ़ते थे। वे राजकोट में पढ़ते थे। मूल परिवार पोरबंदर में था। अत: पोरबंदर में ले जाकर ही विवाह पूर्व की सभी रस्में निभाई गईं। उनके पिताजी राजकोट में दीवान थे। उन्हें छुट्टी नहीं मिली। छुट्टी मिली भी तो वे ताँगे से पोरबंदर आ रहे थे। रास्ते में ताँगा उलट गया और उन्हें कई जगह चोट लग गई। विवाह में वे उसी दशा में सम्मिलित हुए। विवाह संपन्न हो गया। इससे जो हानि होनी थी, सो हुई भी, परंतु एक सहयोगी साथी की तरह रहते-रहते एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो गया, जिससे परिवार में एक से अधिक पत्नी रखने के रिवाज के प्रति विद्रोह जनमा तथा एक पतिव्रत का भाव जाग्रत् हुआ।

एक बार अपने काका को बीड़ी पीते देखकर मोहन को भी लगा कि कुछ-न-कुछ मजा तो आता ही होगा! धुएँ के छल्ले उड़ाते देखकर उनके भाई और गांधीजी ने बीड़ी के अधजले टुकड़े एकत्र किए, क्योंकि खरीदने के लिए पैसे नहीं थे और पैसे माँगने के लिए हिम्मत नहीं थी। अधजले टुकड़ों को पीकर और धुआँ निकालकर देखा, फिर भाई के हाथ के सोने के कड़े में से कुछ सोना काटकर बेच दिया। अब क्या करें, बुरे काम बुरी आदत के लिए यह चोरी ही तो हुई। पिताजी से कहने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। न जाने वे क्रोध में क्या करें? फिर एक पत्र में अपना अपराध स्वीकार किया और कभी ऐसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा ली। मोहनदास ने पत्र पिताजी को दे दिया और चोरी की सजा सुनने-देखने के लिए चुपचाप सिर झुकाकर खड़े रहे। उन्हें आशा थी कि पिताजी क्रोध में मार-पीट भी कर सकते हैं, परंतु पिताजी ने ऐसा कुछ नहीं किया। वे उठे और पत्र को फाड़कर फेंक दिया। फिर पुत्र को कुछ कहे बिना आँसुओं से रोने लगे। तब मोहनदास भी रोने लगे। गांधीजी इसे अहिंसा का पाठ मानते हैं। उनके जीवन में इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हीं के शब्दों में—

''मोती की बूँदों के प्रेमबाण ने मुझे बेध डाला। मैं शुद्ध बना। इस प्रेम को तो कोई अनुभवी ही जान सकता है। मेरे लिए यह अहिंसा का पाठ था। उस समय तो मैंने इसमें पिताजी के प्रेम के अलावा कुछ नहीं देखा, परंतु आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा के नाम से पहचान सकता हूँ।'' (गांधीजी की आत्मकथा पृष्ठ, २२)

श्री करमचंद गांधी बीमार थे, तब मोहनदास गांधी विद्यालय से आकर उनकी सेवा-शुश्रूषा में जुटे रहते थे। वे तभी हटते थे, जब पिताजी स्वयं उन्हें जाने को कहते या उनके काका आकर कहते कि अब सेवा मैं करूँगा, तुम जाओ। इस सत्य को यदि नहीं प्रगट किया जाता तो भी गांधीजी की सत्यप्रियता में कोई कमी नहीं आती, परंतु अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने अपनी कामुकता को अपराध स्वीकार किया और सत्यवादिता के कारण लिखकर इसे स्वयं उजागर किया। उन्हीं के शब्दों में—

''उन दिनों मेरे चाचाजी राजकोट में थे। पिताजी की बढ़ती हुई बीमारी का समाचार पाकर ही वे आए थे। दोनों भाइयों के बीच अटूट प्रेम था। चाचाजी दिन भर पिताजी के बिस्तर के पास ही बैठे

रहते। हमें सोने की इजाजत देकर खुद वहीं सो जाते। किसी को यह खयाल नहीं था कि यह आखिरी रात होगी। साढ़े दस बजे होंगे। मैं पैर दबा रहा था। चाचाजी ने कहा, ''तू अब जा, मैं बैठूँगा।'' इतना सुनकर मैं खुश हुआ। मैं सीधा शयनकक्ष में पहुँचा। मेरी पत्नी पूरी तरह नींद में थी। मैं उसे सोने कैसे देता! पापी काम मुझपर सवार था। पाँच-दस मिनट ही बीते होंगे कि तभी दरवाजा खटखटाकर नौकर ने कहा, ''उठो, पिताजी बहुत बीमार हैं।'' मैंने कहा, ''बता तो सही क्या हुआ।'' वह बोला, ''बापू गुजर गए।'' मैं बहुत शरमाया, बहुत पछताया। दौड़कर पिताजी के पास पहुँचा। पर अब क्या होना था। बात समझ में आई, अगर मैं विषयांध न होता तो मृत्यु के क्षण उनके पास होता।'' (आत्मकथा, पृष्ठ २४)

गांधीजी वैष्णव परिवार में उत्पन्न हुए थे। मंदिर जाना, पूजा करना उनके परिवार का नित्य नियम था। परंतु गांधीजी ने लिखा है कि रामनाम की दीक्षा उन्हें उनकी धाय पुरानी नौकरानी रंभाबाई से मिली। बचपन में वे भूत-प्रेत के नाम से डरा करते थे, तब रंभाबाई ने बताया कि रामनाम का जाप करने से डर नहीं लगता। तब से मोहनदास रामनाम का जाप करने लगे। इसी के पश्चात् उन्हें रामायण-पाठ सुनने का अवसर मिला।

गांधीजी वैष्णव परिवार में उत्पन्न हुए थे। मंदिर जाना, पूजा करना उनके परिवार का नित्य नियम था। परंतु गांधीजी ने लिखा है कि रामनाम की दीक्षा उन्हें उनकी धाय पुरानी नौकरानी रंभाबाई से मिली। बचपन में वे भूत-प्रेत के नाम से डरा करते थे, तब रंभाबाई ने बताया कि रामनाम का जाप करने से डर नहीं लगता। तब से मोहनदास रामनाम का जाप करने लगे। इसी के पश्चात् उन्हें रामायण-पाठ सुनने का अवसर मिला। पिताजी को रामायण सुनाने के लिए पंडित लालाजी महाराज आते थे। उनका स्वर बहुत मीठा था। गा-गाकर, दोहे-चौपाई सुनाकर उनका अर्थ समझाते थे। अतः सुननेवाले बहुत प्रभावित होते थे। गांधीजी के एक चचेरे भाई ने उन्हें रामरक्षा स्तोत्र का पाठ करने की सीख दी, जिसका जाप गांधीजी स्नान के पश्चात् किया करते थे। उन्होंने सुनी तो भागवत भी थी, परंतु क्या व्यास भट्टजी महाराज का स्वर और समझाने का ढंग उनपर प्रभाव नहीं डाल सका। अतः तुलसीदासजी की रामचरितमानस तथा श्रीरामजी के चरित्र का प्रभाव उनपर आजीवन बना रहा। दिन-ब-दिन सत्य पर उनका विश्वास तथा राम के आदर्श चरित्र पर विश्वास बढ़ता रहा। इसी से सबकी भलाई करने का निश्चय दृढ़ हुआ। राजनीति के सर्वोच्च स्थान पर पहुँचने के पश्चात् भी नित्य प्रार्थना-पूजा करना गांधीजी ने कभी नहीं छोड़ा। कौन नहीं जानता उनकी प्रार्थना, जो थी—

रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीता राम॥

दूसरों के दुःख से दुःखी होना तथा उनके दुःख के निवारण का प्रयास ईमानदारी से करना उनके स्वभाव में बचपन से ही था। विश्वविख्यात है उनका प्रिय भजन, जिसे वे नित्य गाते थे—

'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे।'

सा॰ अ॰

एफ-६३, पंचशील गार्डन,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ९८६८५४४१९६

महापुरुषों की दृष्टि में बापू

• कृष्णचंद्र टवाणी



सुपरिचित कवि-लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख व कविताओं का निरंतर प्रकाशन। 'अमृत कलश', 'सत्संग सुधा', 'कर्म सिद्धांत' पुस्तकें प्रकाशित। कुल मिलाकर छोटे-बड़े ५० से अधिक सम्मान प्राप्त। कई संस्थाओं के संरक्षक, अध्यक्ष आदि।

हुआ न कोई होनेवाला तुलना में उस भाग्यवान की।
अमर हो गई अमर लोक तक अमर कहानी उस महान की॥

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपनी विलक्षण सूझ-बूझ तथा शांतिमय सत्याग्रह के द्वारा भारत को स्वाधीनता दिलाई तथा पीड़ित मानवता को कल्याण का मार्ग दिखाया। भगवद्गीता को जीवन में आत्मसात् कर बापू ने कर्मयोग को अपनाया। उच्च आदर्शों पर चलकर अंतिम साँस तक जनता जनार्दन की सेवा करते हुए मानवता के कल्याण के लिए उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी। ३० जनवरी, १९४८ को उस महामानव की ज्योति सदा के लिए अनंत में विलीन हो गई। प्रतिवर्ष ३० जनवरी को बापू के बलिदान दिवस को शहीद दिवस के रूप में पूरे देश में मनाया जाता है।

मोहनदास कर्मचंद गांधी सत्य, अहिंसा की प्रतिमूर्ति बनकर त्याग-तपस्या तथा जनता जनार्दन की निस्स्वार्थ सेवा से महात्मा तथा हमारे राष्ट्र का नवनिर्माण करने के कारण राष्ट्रपिता कहलाए। बापू मरकर भी अमर हो गए और बापू करोड़ों भारतीयों के कंठहार हो गए। उनमें अनेक ऐसे विलक्षण गुण थे, जिनके कारण उन्हें युगों-युगों तक कोटि-कोटि भारतवासी ही नहीं अपितु विदेशों के नागरिक भी श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे हैं और करते रहेंगे। बापू के साथ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में बहुत से राष्ट्र नेताओं ने अपना अपूर्व योगदान दिया, उनमें से कुछ प्रमुख महापुरुषों के गांधी संबंधी विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

''महात्मा गांधी का महानतम संदेश यह था कि सेवा ही ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा है। जिस राष्ट्र के लोगों में परस्पर घृणा हो वह उन्नति नहीं कर सकता।''

—खान अब्दुल गफ्फार खाँ

''यदि हम गांधीजी के सिद्धांतों को निराश पद्धति अथवा थोथे सिद्धांत मात्र नहीं बनना देना चाहते हैं तो हमें भगवान् और उनकी प्रभु सत्ता पर पूरा विश्वास होना चाहिए। गीता के १८वें अध्याय के ६१वें श्लोक में कहा गया है कि प्राणियों के हृदय में परमेश्वर स्थित है। सत्याग्रह एक नई पद्धति को लागू करना भर नहीं था, वरन् एक पुरानी आध्यात्मिक शिक्षा को समझना और सत्य पर पूरा भरोसा करना था। उन्हें केवल पुरानी बुराइयों को दूर करने के उपकरणों का निर्माता मात्र न समझें। गांधीजी आविष्कारक नहीं थे, वे एक देवपुरुष थे, इसलिए महात्मा कहे जाते थे।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

''जब गांधीजी डांडी यात्रा के लिए तैयार हो रहे थे तो कुछ लोगों का विचार हुआ कि यात्रा आरंभ करने के समय सारे देश के लिए एक संदेश दे जाएँ, जिसे ग्रामोफोन के लिए रिकॉर्ड कर लिया जाए और वही सारे देश में लोगों को सुनाया जाए। मालूम नहीं था कि महात्माजी को सरकार कब तक जेल से छोड़ेगी। ऐसी अवस्था में यदि उनका संदेश उनकी अपनी ही आवाज में उनके जेल चले जाने के बाद भी जन-साधारण को मिलता रहेगा तो सत्याग्रह के लिए आवश्यक और उत्साहवर्धक साबित होगा। मैं उस वक्त साबरमती में ही था। लोगों के कहने पर मैं ही उस प्रस्ताव को उनके पास ले गया। इसका उन्होंने जो उत्तर दिया, उससे उनके अटल विश्वास और सत्यनिष्ठा का परिचय मिलता है। उन्होंने कहा, 'यदि मेरे संदेश में सत्य है तो मैं जेल में अंदर रहूँ या बाहर, लोग उसे सुनेंगे ही। इसी प्रकार जो सत्याग्रह आरंभ किया जा रहा है, वह यदि सचमुच सत्याग्रह है, हम उसे नेक सत्य और अहिंसा पर चलकर पूरा करते हैं तो वह सफल होगा ही, चाहे लोग मेरा शब्द सुनें या न सुनें।'

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

''महापुरुष किसी एक देश के नहीं होते, वे समस्त मानव समाज के होते हैं। गांधीजी ने भारत के भाग्य को विश्व के भाग्य से जोड़ा है और इस युग में उन्होंने दरशाया कि जब मानव भावना एक ईश्वरीय तेज से प्रकाशित हो उठती है तो वह सर्वाधिक शक्तिशाली शस्त्र से भी अधिक शक्तिशाली बन जाती है। उनका अटल विश्वास था कि सत्य और प्रेम पराजित नहीं हो सकते।''

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

''हमारे एक नादान भाई ने ही गांधीजी की जान को खत्म किया था। हम अपने खून के एक-एक कतरे में अपनी बेगरज सेवा से, मशक्कत के पसीने की, हर-हर बूँद से उनको जिंदा रखेंगे, अपनी मोहब्बतों में, अपनी मेहनतों में उन्हें जिंदा रखेंगे। अपने विचारों और कामों में, उन्हें जिंदा रखेंगे। हम अपनी जिंदगी और अपने समाज की जिंदगी को ऐसा बनाएँगे और उसके अंदर गांधीजी के विचारों और उनकी रूह को ऐसा रँगाएँगे कि हमारी जिंदगी और हमारे देश की जिंदगी खुद गांधीजी की जिंदगी बन जाए, इसका पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा उनके रंग में रँगा हुआ हो। यह देश गांधीजी के जीवन की तफसीर, टीका या भाष्य बन जाए, गांधीजी हमारा देश हो जाए।''

—डॉ. जाकिर हुसैन

''मूलतः वे ईश्वर के आदमी थे, जिन्होंने भारतभूमि को अपनी तपस्या से पवित्र बनाया। उन्होंने भारतभूमि को पवित्र ही नहीं बनाया बल्कि जनता के मन और हृदय को भी पवित्र किया। उन्होंने आजीवन निर्धन शाषित तथा दलित व्यक्तियों के भारत के बारे में सोचा।''

—पंडित जवाहरलाल नेहरू

''गांधीजी की शक्ति एक आध्यात्मिक शक्ति थी। राजनीति में, धर्म में, सामाजिक सुधारों में वस्तुतः ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें उनका व्यक्तित्व न दिखाई देता हो। वह एक महान् भविष्य-दृष्टा थे। वह अपने युग से बहुत आगे तक देखा करते थे।''

—सरदार वल्लभभाई पटेल

''हम बापू का पुण्य स्मरण करते हैं और ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि देश-विदेश में सत्य और अहिंसा का जो नवीन अलोक दीप वो जला गए, उसकी ज्योति निरंतर बढ़ती रहे।''

—लाल बहादुर शास्त्री

''हम गांधीजी के जीवन से बुराइयों के विरुद्ध दृढ़ता से संघर्ष करने की सीख ले सकते हैं। गांधीजी किसी एक धर्म की नहीं, सभी धर्मों की बात करते थे, वह एक महान् पुरुष थे। हमें उनकी विचारधारा को समझने का प्रयास करना चाहिए। गांधीजी क्या थे, हमें यह समझना है। उन्होंने जो भी कार्यक्रम रखा, उसे पूरा किया। वह हवाई बात नहीं करते थे। हमें गांधीजी के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर राष्ट्र की सभी समस्याओं का साहस से सामना करना है।''

—इंदिरा गांधी

''गांधीजी के जीवन में उनके दर्शनशास्त्र की जो झलक मिलती है, वह प्रत्येक मानव हृदय को उद्वेलित करती है आनेवाली पीढ़ियों का वह सदा मार्गदर्शन करती रहेगी। संभव है कि शहरों के बुद्धिजीवी उनके आर्थिक सिद्धांत या रचनात्मक कार्यक्रम से सहमत न हों, लेकिन जन-साधारण को उनके जीवन और दर्शन से प्रेरणा मिलती रहेगी।''

—मोरारजी देसाई

''गांधीजी भारत की जनता के लिए क्या चाहते थे? वह उनके लिए पश्चिमी मुल्कों के सामान्य नागरिक के पास उपलब्ध रेडियो, टेलीविजन सेट, मोटरगाड़ी अथवा मेहनत बचानेवाले दूसरे यंत्रों को पहुँचाने की कोशिश नहीं करते थे। वह उनके लिए जिंदगी की बुनियादी जरूरतें, खाद्यान्न, कपड़ा, अच्छा मकान प्रत्येक जनमे बच्चे के लिए सात वर्षों तक अनिवार्य बुनियादी शिक्षा, चिकित्सा, सहायता और इन जरूरतों को पूरा करने के लिए रोजगार की व्यवस्था चाहते थे।''

—आचार्य कृपलानी

''क्या कारण था कि उस छोटे से कृशकाय व्यक्ति का, जिसका शरीर बालकों जैसा था, वह संन्यासियों सदृश जीवनयापन करता था और अपने व निर्धनों के जीवन में अधिक प्रभाव था। उसका कारण यह था कि न तो वह सराहना के भूखे थे, न उन्हें निंदा की चिंता था, उन्हें केवल सन्मार्ग और उन आदर्शों की चिंता थी, जिनका वह दूसरों को उपदेश देते थे। अहिंसा के सिद्धांत के प्रति उनका विश्वास था कि चाहे समस्त संसार की हत्या क्यों न हो जाए, उनकी अहिंसा ही विश्व की नई संस्कृति की वास्तविक आधार होगी।''

—सरोजनी नायडू

''गांधीजी की कार्यशैली अत्यंत अद्भुत थी। रूढ़िगत धार्मिक मान्यताओं को तोड़ने के लिए उन्होंने सब आश्रमवासियों को हिदायत थी कि रसोई बनाने व पखाना सफाई में सबका हिस्सा होना चाहिए। जब दासप्पा बीमार होकर आश्रम में आए तो गांधीजी ने उनकी बड़ी सेवा की, उनके उपचार से वे ठीक हो गए, तब उन्होंने गांधी से काम माँगा। गांधीजी ने कहा कि मैंने आपके लिए काम सोच लिया है। आप काका साहब के साथ कल से पखाना सफाई का कार्य शुरू कर दें। मैंने पखाना सफाई का कार्य ब्राह्मण होते हुए भी शुरू कर दिया। यदि गांधी जन्म शताब्दी के अवसर पर हम इतना भी करने का संकल्प करें, तो इस देश में गांधी का पुनर्जन्म हुआ माना जाएगा।''

—काका कालेलकर

गांधीजी ने देश को जो मार्गदर्शन दिया था, उसपर चलने की भरसक कोशिश करें और उनके सपनों के भारत का निर्माण करने में जुट जाएँ। यदि हम उनके जीवन से सही ढंग से लाभ उठा सकें तो देश को एक नई प्रेरणा फिर प्राप्त हो सकती है, जिसके द्वारा वह आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता की बुनियाद पर खड़ा होकर अपना भी उत्थान कर सकता है और संसार को नई स्फूर्ति प्रदान कर सकता है।''

—श्रीमन्नारायण

''उन्होंने दासों को मनुष्य बनाया। उन्होंने भारतीय नारी समाज को स्वतंत्र किया। उन्होंने समाज से अस्पृश्यता का विनाश किया। उन्होंने उन फौलादी दीवारों को तोड़ दिया, जिनमें हमारा समाज बँधा हुआ था। उन्होंने पारलौकिकता को, जिसका भूत भारत पर सवार था, समाप्त कर दिया। उन्होंने हीन भावना के शाप को, जो हमारी सामूहिक चेतना पर गत ९०० वर्ष के विदेशी आधिपत्य से हावी हो गया था, समाप्त किया। उन्होंने भारतीयों का अपनी संस्कृति में अभिमान और अपनी शक्ति में विश्वास पुनः जाग्रत् किया, जिसे और जिसके अतिरिक्त अपनी आत्मा को भी वे खो चुके थे। उन्होंने भारत की अविनाशी संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित किया और उसे विश्व-विजय के पथ पर फिर से आरूढ़ किया। वे नव-जीवन के दूत थे।''

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

''गांधीजी अपनी जनता के ऐसे नेता थे, जिसे किसी बाह्य सत्ता की सहायता प्राप्त नहीं थी। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिसकी सफलता न चालाकी पर आधारित थी और न किसी शिल्पिक उपायों के ज्ञान पर, बल्कि उनके व्यक्तित्व की दूसरों को कायल कर देने की शक्ति पर ही आधारित थी। वे एक ऐसे विजयी योद्धा थे, जिसने बल-प्रयोग का सदा उपहास किया। वे बुद्धिमान, नम्र, दृढ़-संकल्पी और अडिग निश्चय के व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी सारी ताकत अपने देशवासियों को उठाने और उनकी दशा सुधारने में लगा दी। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिसने यूरोप की पाशविकता का सामना मानवी यत्न के साथ किया और इस प्रकार सदा के लिए सबसे ऊँचे उठ गए। आनेवाली पीढ़ियाँ शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांधीजी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।''

—अलबर्ट आइंस्टीन (महान् वैज्ञानिक)

''गांधीजी अनुपम हैं। उनकी स्थिति के किसी अन्य व्यक्ति का, जिसने एक महान साम्राज्य को चुनौती दी हो, दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। वे कार्यक्षेत्र में और बुद्धि में सुकरात के समान थे। उन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का सहारा लेनेवाले राजनीतिज्ञों के तरीकों के थोथेपन को विश्व के सामने रखा। इस संघर्ष में आत्मिक संपूर्णता ने राज्य-बल के भौतिक प्रतिरोध पर सफलता पाई।''

—डॉ. फ्रांसिस नीलसन ('ट्रेजेडी ऑव यूरोप' पुस्तक में)

''हममें से बहुत से गोरे लोग मानते थे कि वह एक शेखचिल्ली और निश्चय ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका असलियत से कोई संबंध न था। हमारे युग के शक्तिशाली व्यक्तियों-रूजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन की तुलना में वे अपनी चादर और लँगोटी में असर डालनेवाले नहीं दीखते थे। लेकिन दुर्बलों से ही तो एक बार कहा गया था कि उन्हें दुनिया का राज्य मिलेगा, और अब हर जगह आदमी आश्चर्य करते हैं कि यह दुर्बलतम व्यक्ति हमारे युग का सबसे शक्तिशाली मनुष्य था।''

—मिल्टन मेयर

''महात्मा गांधी वर्तमान विश्व के सबसे महान् व्यक्तियों में से एक थे, लेकिन उनके विषय में ऐसा लगता था मानो वे किसी और युग के प्राणी हों। वे घोर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते थे और उनके करोड़ों देशवासी उन्हें दैवी-प्रेरणा प्राप्त संत मानते थे।''

—क्लीमेंट एटली

''अपने जीवनकाल ही में गांधीजी के साथ एक पौराणिक हस्ती की कहानी जुड़ गई थी, वे एक प्रतिमा बन गए थे, जिसके नाम की शपथ ली जा सकती है। एक आश्चर्यजनक शक्ति और ईश्वरी गुणों के प्रतीक का स्थान उन्हें मिल गया था।''

—हरमन ओल्ड

''मनुष्यों में से एक देव उठ गया। यह कृशकाय छोटा सा व्यक्ति अपनी आत्मा की महानता के कारण मनुष्यों में देव था।''

—ट्रूमेन

''जब हमारे युग के सभी राजाधिराज और सेनापति, जो आज इतना शोर करते हैं और जीवन में जिन्हें इतना प्रमुख स्थान प्राप्त है, वे सब विस्मृति के गर्भ में समा चुकेंगे, महात्माजी फिर भी गौतम बुद्ध के बाद सबसे बड़े भारतीय और ईसा के बाद सबसे बड़े मानव के रूप में जीवित और सम्मानित रहेंगे।''

—जान हेन्स होम्स

''उन्होंने चाहे किसी धर्म की प्रतिष्ठा न की हो, पर वे धर्म-प्रवर्तकों के साथ रखे जा सकते हैं। वे बड़े कलाकारों के साथ हैं, हालाँकि कला उनके जीवन का माध्यम नहीं थी। वे उन सभी स्त्री-पुरुषों के साथ हैं, जिन्होंने यंत्रवाद और विप्लव से अलग जीवन में कोई नई बात खोजने की कोशिश की, जिन्होंने आनंद को स्वामित्व या अधिकार से, विजय को सफलता से सदा अलग समझा और जिनका प्रेम में अटल विश्वास रहा।''

—स्टैफर्ड क्रिप्स

सा अ

सिटी रोड, मदनगंज
किशनगढ़-३०५८०१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९२५२९८८२२१

गांधी विशेषांक

गांधी के राजनीतिक जीवन में दिल्ली

• नलिन चौहान

मोहनदास करमचंद गांधी दिल्ली में पहली बार वर्ष १९१५ में आए थे। वे अपने पहले दिल्ली प्रवास के दौरान सेंट स्टीफंस कॉलेज के पहले भारतीय प्रिंसिपल सुशील कुमार रुद्र के कश्मीरी गेट स्थित आवास में ठहरे थे। इस प्रवास के दौरान गांधी ने १३ अप्रैल को कॉलेज के छात्रों को संबोधित किया था। गांधी ने कहा कि प्रिंसिपल से पहले ही यह बात सुनिश्चित करके कि कॉलेज का यूरोपीय स्टाफ यहाँ के लोगों की भाषा समझता है, हिंदी में बोलने का निर्णय लिया। उन्हें यह बात जानकर खुशी हुई कि यूरोपीय स्टाफ यहाँ की भाषा का जानकार है। उन्होंने छात्रों को कहा कि मैं आपको यह बात समझाना चाहूँगा कि आप अपने शिक्षकों का अनुसरण करें और अपने कॉलेज के ध्येय वाक्य 'सत्य के प्रति समर्पित' को ईमानदारी के साथ अपने जीवन में उतारें। इस तरह से आप अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए पूरी तरह सुयोग्य साबित होंगे। उन्होंने कहा कि काफी बरस पहले मैं अपने गुरु गोखले (गोपाल कृष्ण गोखले) से मिला था, तब मैंने यह बात महसूस की थी कि मुझे राजनीति के क्षेत्र में अपना गुरु मिल गया है और तब से मैंने पूरे विनीत भाव और ईमानदारी से उनका अनुसरण करने की कोशिश की है।

फिर गांधी दिल्ली में २३ नवंबर, १९१९ को आयोजित प्रथम अखिल भारतीय खिलाफत आंदोलन में उपस्थित हुए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हिंदु-मुसलमानों के पारस्परिक सहयोग से केवल खिलाफत ही पैदा न की जाए, अपितु अन्य शिकायतों को भी दूर किया जाए। उन्होंने सम्मेलन में पहली बार असहयोग आंदोलन की अपनी योजना और क्रियाविधि प्रस्तावित की। अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार करने, अंग्रेज सरकार से असहयोग करने और विदेशी लोगों को भारतीय लोगों की शिकायतों के प्रति प्रबुद्ध करने के लिए इंग्लैंड (और यदि आवश्यक हो तो अमेरिका) में प्रतिनिधि भेजने के प्रस्ताव पारित किए गए। यह उल्लेख दिलचस्प है कि पहले सत्याग्रह की योजना सुशील रुद्र के दिल्ली स्थित घर में गांधी के ठहराव के दौरान बनाई गई।

गांधी के नेतृत्व में दिल्ली खिलाफत आंदोलन का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गई। दिल्ली में असहयोग आंदोलन में शामिल होने के कारण हकीम अजमल खाँ को छोड़कर कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता डॉक्टर अंसारी,



विगत अठारह वर्षों से दिल्ली सरकार के सूचना एवं प्रचार निदेशालय में, संप्रति उपनिदेशक के पद पर तैनात। इससे पहले करीब छह साल जी.टी.वी. समूह के 'सिटी केबल', 'इंडिया टुडे' (हिंदी) पत्रिका और पी.टी.आई. भाषा में काम। गत तीन वर्षों से 'दैनिक जागरण' में दिल्ली के इतिहास पर एक नियमित साप्ताहिक कॉलम लेखन के लिए इस वर्ष स्तंभकार के रूप में 'नारद सम्मान' से सम्मानित।

शंकर लाल, आसफ अली, देशबंधु गुप्ता को जेल में डाल दिया गया। दिल्ली में ११ और १५ जुलाई के बीच हिंदू और मुसलमानों में भयंकर संघर्ष हुआ, जिसके फलस्वरूप बहुत से व्यक्ति घायल हुए। सांप्रदायिक उन्माद से दुखी होकर गांधी ने २१ दिन का उपवास (१८ सितंबर) 'आत्मशुद्धि' (उन्होंने इसे यही संज्ञा दी) के उद्देश्य से किया। अंग्रेज पादरी और स्टीफंस कॉलेज में शिक्षक सी.एफ. एंड्रूज ने 'यंग इंडिया' के अपने संपादकीय में उल्लेख किया है, दिल्ली में रिज के नीचे, शहर से काफी दूर दिलखुश भवन में गांधी अपना उपवास रख रहे थे। वहीं दोनों समुदायों के बीच सद्भाव लाने के लिए गांधी की अध्यक्षता में 'अखिल भारतीय पंचायत' की स्थापना की गई।

वर्ष १९३० में गांधी के नेतृत्व में देश में असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। इस आंदोलन की शुरुआत औपचारिक रूप से गांधी ने १२ मार्च, १९३० को डांडी की ओर कूच करके नमक का कानून तोड़ने की दृष्टि से की। ५ मई, १९३० को गांधी के बंदी बनाए जाने की खबर के बाद दिल्ली में हड़ताल होने के साथ सभी दुकानें बंद हो गईं। कश्मीरी गेट स्थित जिला मजिस्ट्रेट के दफ्तर तक एक जुलूस निकाला गया, जहाँ लाल रंग के कपड़े पहने हुए महिला स्वयंसेविकाओं ने दीवानी और फौजदारी अदालत, खजाने तथा पुलिस कार्यालयों का घेराव किया। देवदास गांधी, लाला शंकर लाल, देशबंधु गुप्त तथा चमन लाल सहित बहुत से लोगों ने गिरफ्तारियाँ दीं। वर्ष १९३१ में सविनय अवज्ञा आंदोलन पूरे जोरों पर था।

यह निर्णायक समय था, जब इस आंदोलन को राष्ट्रवादी बढ़ावा मिल रहा था। उसी समय अचानक दिल्ली शांतिवार्त्ता का केंद्र बन गई

थी। अंग्रेज वायसराय लार्ड इरविन तथा गांधी के बीच लंबी बातचीत चली तथा सरकार व कांग्रेस के बीच ५ मार्च, १९३१ को १५ दिन की लगातार बातचीत के बाद 'गांधी-इरविन पैक्ट' नामक एक समझौता हुआ। इसके कुछ दिनों बाद जब २३ मार्च को लाहौर में भगत सिंह सहित उनके दो साथियों को फाँसी लगाई गई तो न केवल दिल्ली, बल्कि सारा देश शोक में डूब गया। दिल्ली में पूर्ण रूप से हड़ताल रही। १८ अप्रैल को लार्ड इरविन के दिल्ली से रवाना होते ही गांधी-इरविन पैक्ट का उल्लंघन होना शुरू हो गया। लार्ड इरविन ने जिन बातों से सहमति प्रकट की थी उनको उसके बाद आनेवाले नए वायसराय लार्ड विलिंगडन ने अस्वीकार कर दिया। इतना ही नहीं, गांधी और सरदार पटेल को ४ जनवरी, १९३२ को गिरफ्तार कर लिया गया।

दूसरे महायुद्ध के शुरू होने पर १५ सितंबर, १९३९ को दिल्ली में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई। गांधी की सलाह पर कार्यकारिणी समिति ने अंग्रेजी सरकार से भारत को स्वतंत्र घोषित करने की प्रार्थना की। यूरोप में फ्रांस के पतन बाद जब ३ जुलाई, १९४० को दिल्ली में दोबारा कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई, तब भी यह माँग रखी गई। भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध गांधी के नेतृत्व में सांकेतिक विरोध के रूप में वैयक्तिक सत्याग्रह आरंभ किया गया।

आंदोलन में एक स्थिति ऐसी भी आई थी, जब गांधी ने अपेक्षा की कि जो सत्याग्रही गिरफ्तार नहीं किए गए थे, उन्हें युद्ध विरोधी प्रचार करते हुए दिल्ली की ओर पैदल प्रस्थान करना चाहिए। भारत में स्थिति खराब होते देख ब्रिटिश कैबिनेट के प्रस्तावों के साथ २३ मार्च, १९४२ को स्टेफोर्ड क्रिप्स दिल्ली आए। २७ मार्च को गांधी की उनसे बातचीत हुई और समझौते की उम्मीद के साथ वे ४ अप्रैल को दिल्ली से वापिस लौट गए। मौलाना आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कार्यकारिणी समिति की एक बैठक हुई, जिसमें अंग्रेजों के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया गया।

भारत का वायसराय बनने के बाद लार्ड माउंटबेटन (२४ मार्च, १९४७) ने गांधी सहित सभी प्रमुख राजनीतिक नेताओं, जिसमें मुहम्मद अली जिन्ना भी शामिल थे, की कठिन भारतीय समस्या का हल खोजने के लिए दिल्ली बुलाया। ३ जून की योजना अनिच्छा से स्वीकार कर ली गई। माउंटबेटन ने एक प्रसारण में कहा कि जोर-जबरदस्ती का विकल्प केवल बँटवारा है। स्वतंत्रता और विभाजन दोनों की घोषणा १५ अगस्त, १९४७ को एक साथ हुई।

भारत-विभाजन के कारण हुए विस्थापन और दंगों की भीषणता से दिल्ली भी अछूती नहीं रही। ऐसे में गांधी ९ सितंबर, १९४७ को दिल्ली आए। गांधी ने कश्मीर में पाकिस्तान के हमले के बावजूद भारत सरकार को पाकिस्तान की बकाया राशि का भुगतान करने के लिए कहा। अंततः उन्होंने आमरण अनशन तब तक जारी रखने का निर्णय लिया, जब तक दिल्ली में सांप्रदायिक तनाव समाप्त नहीं हो जाता। १३ जनवरी, १९४८ को उन्होंने सामुदायिक सौहार्द की पुनः स्थापना के लिए अनशन प्रारंभ किया। १८ जनवरी को डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद के नेतृत्व में सौ नेता बिरला भवन गए, जहाँ गांधी ठहरे हुए थे तथा उन्हें राजधानी में सांप्रदायिक शांति स्थापित करने का वचन दिया। दो सप्ताह से भी कम समय में राजधानी में सामान्य अवस्था की दोबारा स्थापना हो गई। अतः अनशन समाप्त हो गया। परंतु केवल १२ दिन के पश्चात् ही गांधी की हत्या हो गई।

लेखक प्यारेलाल अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी—अंतिम चरण' में गांधी की शवयात्रा के बारे में लिखते हैं कि राजा जार्ज पंचम की प्रतिमा के आधार तक जनता आस-पड़ोस के तालाबों को बड़ी मेहनत से पार करके पहुँची थी। जैसे ही जुलूस गुजरने लगा, वे जुलूस का दृश्य भली प्रकार से देखने के लिए, पत्थर की छतरी को सहारा देनेवाले खंभों पर लटक गए, १५० फुट ऊँचे युद्ध स्मारक की चोटी पर बैठे हुए दिखाई दिए, बत्ती के अथवा टेलीफोन के खंभों पर तथा रास्ते के दोनों ओर लगे हुए वृक्षों की शाखाओं पर बैठ गए। दूर से समस्त केंद्रीय मार्ग (सेंट्रल विस्टा) मानवता का लगभग निश्चल सा विशाल जनसमुद्र दिखाई पड़ता था।

गांधी के पीछे थे राजधानी के नागरिक

दिल्ली में स्वतंत्रता संग्राम के चरित्र की विशेषता यह रही कि राजधानी की शहरी और ग्रामीण आबादी, दोनों ने कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई में भाग लिया। महरौली और नरेला में स्थित खादी आश्रमों, बवाना की चौपाल और बदरपुर में गांधी खैराती अस्पताल कुछ ऐसे केंद्र थे, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के संदेश को फैलाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। दिल्ली में आजादी की लड़ाई में हिंदू-मुस्लिम एकजुटता एक और खास बात थी। भारतीय मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन को गांधी के आह्वान के कारण हिंदुओं का पूरा समर्थन मिला।

यह गांधी के नेतृत्व का ही करिश्मा था कि अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन में दिल्ली की महिलाओं की हिस्सेदारी उल्लेखनीय थी। सत्यवती, पार्वती देवी डिडवानिया, अरुणा आसफ अली, वेद कुमारी, बृज रानी, मेमो बाई दिल्ली की कुछ ऐसी प्रमुख महिलाएँ थीं, जिन्होंने आगे बढ़कर आंदोलन में भाग लिया। इन महिलाओं ने व्यापक रूप से

लेखक प्यारेलाल अपनी पुस्तक 'महात्मा गांधी—अंतिम चरण' में गांधी की शवयात्रा के बारे में लिखते हैं कि राजा जार्ज पंचम की प्रतिमा के आधार तक जनता आस-पड़ोस के तालाबों को बड़ी मेहनत से पार करके पहुँची थी। जैसे ही जुलूस गुजरने लगा, वे जुलूस का दृश्य भली प्रकार से देखने के लिए, पत्थर की छतरी को सहारा देनेवाले खंभों पर लटक गए, १५० फुट ऊँचे युद्ध स्मारक की चोटी पर बैठे हुए दिखाई दिए, बत्ती के अथवा टेलीफोन के खंभों पर तथा रास्ते के दोनों ओर लगे हुए वृक्षों की शाखाओं पर बैठ गए। दूर से समस्त केंद्रीय मार्ग (सेंट्रल विस्टा) मानवता का लगभग निश्चल सा विशाल जनसमुद्र दिखाई पड़ता था।

विदेशी वस्तुओं की बिक्री के खिलाफ आंदोलन में दुकानों की पिकेटिंग में भाग लिया।

इस दौरान शिक्षक और छात्रों भी स्वतंत्रता संघर्ष में गांधी के प्रभाव से अछूते नहीं थे। सेंट स्टीफन कॉलेज के प्रिंसिपल सुशील रुद्र सहित हिंदू कॉलेज के शिक्षक आजादी की लड़ाई में हरावल दस्ता थे। सेंट स्टीफन, रामजस, हिंदू, इंद्रप्रस्थ गर्ल्स कॉलेज के छात्र-छात्राओं ने आंदोलन में पूरी सक्रियता से भाग लिया।

गांधी ने दिल्ली में स्वतंत्रता आंदोलन को बहुत महत्त्व दिया और वास्तव में वे व्यक्तिगत रूप से यहाँ उपस्थित होकर उसे गति देने के इच्छुक थे। यही कारण है कि उन्होंने स्थानीय नेताओं, जैसे हकीम अजमल खाँ, बहिन सत्यवती, देशबंधु गुप्ता, आसफ अली और डॉ. मुख्तार अहमद अंसारी को काफी प्रोत्साहित किया। इस अवधि में वे अधिकतर रुद्र (सेंट स्टीफन कॉलेज), मोहम्मद अली, डॉ अंसारी के निवास और बिड़ला हाउस में रहे तथा लगातार वायसराय हाउस आते-जाते रहे।

तिथि एवं वर्ष	दिल्ली में गांधी के कार्यक्रमों का विवरण
१३-०४-१९१५	गांधी दिल्ली में पहली बार वर्ष १९१५ में आए। इस प्रवास के दौरान गांधी ने १३ अप्रैल को कश्मीरी गेट स्थित सेंट स्टीफंस कॉलेज में छात्रों को संबोधित किया था।
०१-११-१९१८	पटौदी हाऊस में दिल्ली के नागरिकों की सार्वजनिक बैठक में भाग लिया।
२३-११-१९१९	गांधी ने पहले अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन में भाग लिया और खिलाफत सहित दूसरी शिकायतों के निवारण के लिए एक संयुक्त हिंदू-मुस्लिम आंदोलन की वकालत की।
३०-११-१९१९	गांधी ने प्रिंसेस पार्क में रोलेट एक्ट के खिलाफ आयोजित बैठक को संबोधित किया।
१५-९-१९२४	गांधी ने 'हिंदुस्तान टाइम्स' समाचार-पत्र का उद्घाटन किया।
१७-९-१९२४ से ८-१०-१९२४	गांधी ने मौलाना मोहम्मद अली के निवास पर दिल्ली में आत्म-शुद्धि के उपाय के रूप में २१ दिन का उपवास रखा।
१-३-१९२५	गांधी ने रायसीना हॉस्टल में हिंदू-मुस्लिम एकता पर सर्वदलीय सम्मेलन समिति की उप-समिति की बैठक की अध्यक्षता की।
१९-२-१९२९	गांधी ने विट्ठलभाई पटेल की पार्टी में वायसराय सहित भाग लिया।
१-११-१९२९	गांधी ने दिल्ली पहुँचकर संयुक्त वक्तव्य के मसौदे तैयार करने के लिए विट्ठलभाई पटेल के घर पर नेताओं की बैठक में शामिल हुए। गांधी ने इस बात को रेखांकित किया कि शर्तों को पूरा किए बिना अंग्रेज वायसराय का प्रस्ताव अस्वीकार्य है।
२-११-१९२९	गांधी ने टाउन हॉल में भाषण दिया। कांग्रेस समिति, मजदूर सभा ने उन्हें अपने विचारों से अवगत करवाया और नागरिकों ने उन्हें धनराशि भेंट की।
१७-२-१९३१	गांधी रेल से गाजियाबाद पहुँचे। वे शाहदरा में सुबह की सैर के बाद डॉ. अंसारी के घर पहुँचे। वहाँ पार्क में एकत्र लोगों से बातचीत की। अंग्रेज वायसराय से मिलने से पहले वी.एस. शास्त्री, तेजबहादुर सप्रू और एम.आर. जयकर से भेंट की।
२५-२-१९३१	गांधी ने हिंदू कॉलेज में छात्रों और शिक्षकों को संबोधित किया।
२६-२-१९३१	गांधी ने शीशगंज गुरुद्वारा में संगत को भाषण दिया।
५-३-१९३१	वायसराय हाउस में लॉर्ड इरविन और गांधी ने अस्थायी समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसकी आधिकारिक घोषणा शाम ५ बजे की गई।
१०-१२-१९३३	गांधी ने हरिजन क्वार्टरों, खादी भंडार और जामिया मिलिया इस्लामिया का दौरा किया।
१३-१२-१९३३	गांधी सुबह अलीपुर गए और जनसभा को संबोधित किया।
२-१-१९३५	गांधी ने हरिजन सेवक संघ के नए संविधान के बारे में चर्चा की। दिल्ली में हरिजन कॉलोनी का शिलान्यास किया। नरेला में हरिजन सम्मेलन का उद्घाटन किया।
१२-१-१९३५	दिल्ली में मवेशी प्रजनन फार्म का दौरा किया।
१५-१-१९३५	दिल्ली में मॉडर्न हाई स्कूल का दौरा किया।
१९-१-१९३५	जामिया मिल्लिया में एक भाषण कार्यक्रम की अध्यक्षता की और साँसियों की बस्ती में साँसी समाज के लोगों से बातचीत की।
२३-१-१९३५	गांधी ने अपनी पत्नी कस्तूरबा गांधी, डॉ जाकिर हुसैन, कृष्णन नायर के साथ दिल्ली के गाँवों का तीन दिवसीय दौरा शुरू किया। इस दौरे में नरेला और बाकनेर भी गए।
२४-१-१९३५	गांधी ने थुड, सुलतानपुर और बवाना नामक गाँवों का दौरा किया।
२५-१-१९३५	गांधी ने हुमायूँपुर, मुनीरका और रामताल का दौरा किया।
२७-१-१९३५	गांधी ने दिल्ली में विधायकों को संबोधित किया।
१५-०३-१९३९	गांधी ने दिल्ली जेल में कैदियों को भूख हड़ताल समाप्त करने का अनुरोध किया।
१८-०३-१९३९	गांधी ने लक्ष्मी नारायण मंदिर के शुभारंभ के अवसर पर भाषण दिया।

२७-०७-१९३९	गांधी ने हरिजन कॉलोनी में हरिजन औद्योगिक गृह के पहले दीक्षांत समारोह के कार्यक्रम की अध्यक्षता की और छात्रों को प्रमाण-पत्र वितरित किए।
०१-११-१९३९	गांधी ने जिन्ना के आवास में उनसे बातचीत की।
०२-११-१९३९	गांधी ने हरिजन निवास में प्रार्थना कक्ष के उद्घाटन समारोह में भाषण दिया।
सितंबर, १९४७	गांधी ने सांप्रदायिक दंगों को रोकने के लिए दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों का दौरा किया। पाकिस्तान से आए हिंदू और सिख विस्थापितों के शरणार्थी शिविरों का भी प्रवास।
१३-१-१९४८	गांधी ने दिल्ली में सांप्रदायिक एकता के लिए बिड़ला हाऊस, तीस जनवरी मार्ग पर पाँच दिन का उपवास रखा।
२७-०१-१९४८	गांधी ने महरौली स्थित ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार की दरगाह का प्रवास किया और उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित किया।
३०-०१-१९४८	नाथूराम गोडसे ने ७८ वर्षीय गांधी की बिड़ला हाउस में हत्या कर दी।

बी-४, दिल्ली सरकार अधिकारी आवास
ट्रांजिट हॉस्टल, १-ए बैटरी लेन,
राजपुर रोड, सिविल लाइंस, दिल्ली
nalin9@gmail.com
दूरभाष : ९८९९८१८६१६

महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन : प्रथम अनुभूति

• कृष्ण कुमार बिड़ला

मेरे पूज्य पिता स्व. घनश्याम दास बिड़ला सन् १९१५ में गांधीजी के संपर्क में आए थे। यह परिचय शीघ्र ही प्रगाढ़ हो गया और सन् १९२४ तक यह प्रगाढ़ता एक घनिष्ठ संबंध में बदल गई। पिताजी गांधीजी को अपने पिता की तरह मानते थे। गांधीजी पिताजी को पुत्र तथा मित्रवत् समझते थे। गांधीजी के दर्शन मुझे सन् १९२६ में हुए थे।

गांधीजी दिल्ली आए हुए थे। पिताजी ने मुझे और मेरे अनुज बसंत कुमार को उनके दर्शन के लिए भेजा। उन्होंने हमें हमारे शिक्षक पंडित उदित मिश्र के साथ भेजा। पंडितजी बहुत योग्य अध्यापक थे और हमारी देखभाल बहुत अच्छी तरह किया करते थे। मेरी माता का स्वर्गवास हो चुका था, पिताजी को काफी यात्राएँ करनी पड़ती थीं। अतः हम अपने चाचा ब्रजमोहनजी के पास कलकत्ता में रहते थे। चाचाजी भी अत्यंत व्यस्त व्यक्ति थे। पंडित उदित मिश्र पर पिताजी का पूर्ण विश्वास था। वे हमारे साथ रहते थे और एक तरह से हमारे अभिभावक ही थे। तो पंडित उदित मिश्र हमें महात्माजी से भेंट कराने ले गए।

उन दिनों समृद्ध परिवारों के बच्चे आभूषण पहना करते थे। मेरे और बसंत कुमार, दोनों के हाथों में सोने के कड़े एवं कानों में हीरे की लौंग थीं। हमने गांधीजी के चरण स्पर्श किए और उनके पास बैठ गए। पहले तो गांधीजी हम दोनों से एक-दो मिनट बात करते रहे। उसके अपरांत उन्होंने बसंत कुमार से पूछा कि क्या वह गरीब व जरूरतमंद लोगों के लिए अपने सोने के कड़े और लौंग देने को तैयार है? बसंत कुमार ने तत्काल अपनी सहमति दे दी। मैंने सोचा, गांधीजी हमसे मात्र मजाक कर रहे हैं। पहले भी बहुधा ऐसा होता था कि हमारे मित्रों में से कोई-न-कोई परिहासपूर्वक हमसे प्रश्न करता कि क्या वह हमारे आभूषण ले सकता है? यह जानकर कि वह परिहास कर रहा है, हम तुरंत सहमति दे देते और फिर वह मित्र कोई-न-कोई बहाना बना देता था। उन मित्रों ने आभूषण कभी नहीं लिये। बात वहीं समाप्त हो होती थी। अतः मुझे पूर्ण विश्वास था कि गांधीजी केवल परिहास कर रहे हैं और बसंत कुमार द्वारा कड़ा व लौंग देने का कोई प्रश्न ही नहीं है। बसंत कुमार ने जब अपनी सहमति दे दी तो गांधीजी ने स्वयं उसके हाथों से कड़े और लौंग निकाल लिये।

इसके बाद गांधीजी ने मुझसे भी यही प्रश्न किया। अब तक मैं समझ गया कि गांधीजी कोई अद्भुत और महान् व्यक्ति हैं तथा वे परिहास नहीं कर रहे हैं। गांधीजी की बात पर मैं भी सहमत हो गया। गांधीजी ने मेरे भी आभूषण निकाल लिये और पंडितजी से कहा कि वे पिताजी को बता दें कि उन्होंने बसंत कुमार व मुझसे क्या प्रश्न किया था और कैसे हम लोग कड़े एवं लौंग उन्हें देने के लिए सहर्ष सहमत हो गए थे। पंडितजी कुछ असमंजस में पड़ गए थे। एक ओर उन्होंने सोचा कि अभिभावक होने के नाते वे पिताजी की अनुमति के बिना कैसे हमारे कड़े और लौंग देने पर सहमत हो सकते हैं! दूसरी ओर वे गांधीजी के साथ पिताजी के संबंधों को भी जानते थे। अतः वे कुछ असमंजस की स्थिति में थे। किंतु अंततः वे गांधीजी द्वारा उन्हें कही गई बातों को पिताजी तक पहुँचाने के लिए सहमत हो गए।

गांधीजी के साथ यह भेंट दस मिनट तक चली। इस समूची घटना को पहले मैं गांधीजी का परिहास समझ रहा था; परंतु वह वास्तविकता निकली। गांधीजी ने कहा था कि इससे प्राप्त धनराशि गरीबों और जरूरतमंदों के काम आएगी, अतः इस प्रसंग को लेकर बसंत कुमार या मेरे लिए खेद अनुभव करने की कतई आवश्यकता नहीं थी। गांधीजी से यह मेरा पहला साक्षात्कार तथा वार्त्तालाप था।

(श्री शंकरदयाल सिंह की पुस्तक 'महात्मा गांधी : प्रथम दर्शन, प्रथम अनुभूति' से साभार)



गांधी के प्रारंभिक तीन आंदोलन

• हेरंब चतुर्वेदी

दक्षिण अफ्रीका की अभूतपूर्व सफलता के पश्चात् जनवरी १९१५ भारत लौटे गांधी ने पहले भारत की नब्ज को टटोलने और उसके दिल की धड़कन को समझने के लिए देश भर की यात्रा की। वस्तुत: इस यात्रा के दो उद्‌देश्य थे—प्रथम तो राजनीतिक गुरु एवं पथ-प्रदर्शक गोपालकृष्ण गोखले (१८६६-१९१५) ने ही उन्हें ऐसी यात्रा के माध्यम से भारत की आत्मा को समझने का परामर्श दिया था। दूसरा, वे दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों का नेतृत्व करते रहे थे। दूर विदेश में 'राष्ट्रवाद' का भाव निश्चित ही बिल्कुल अलग तरह का और अधिक सशक्त होता है? गांधी इस बात को समझते थे। अत: वे अहिंसक आंदोलन को अपरिहार्य बनाने की जमीन तैयार करना चाहते थे, क्योंकि विदेश में संगठित रहने के साथ 'अहिंसा' ही उनका सहारा हो सकता था।

बार-एट-लॉ की पढ़ाई हेतु विदेश की पहली यात्रा के पहले जिस तरह गांधी ने जैन स्वामी बेचारजी के समक्ष अपनी माँ का कहना मानते हुए मांस, मदिरा तथा महिला से दूर रहने की शपथ ली और धर्म के प्रति ली, इस शपथ का कठोरता से पालन किया था। पूरी तरह से विदेशी परिधान धारण करते हुए भी गांधी लंदन के इस प्रवास में मनसा-वाचा-कर्मणा भारतीय ही नहीं, वैष्णव भी बने रहे, बस वे धर्म के बाह्याडंबर से दूर रहे; उसके रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों से पूरी तरह से बचे हुए, जब गांधी ने वहाँ की शाकाहारी संस्थाओं की सदस्यता ग्रहण की तथा उसके बाद उनके द्वारा गांधी के धर्मांतरण का प्रयास किया गया, तब अपने हमउम्र राजचंद्र को पत्र लिखकर हिंदू धर्म-ग्रंथों की मूल बातों से अभिज्ञ होते रहे।

उन्होंने अपने जीवन और जीवन-दर्शन के विकास में जिन तीन व्यक्तियों का उल्लेख किया है, उसमें से दो, यथा—रस्किन तथा टाल्सटॉय से वे उनकी कृतियों के द्वारा प्रभावित हुए थे, जबकि राजचंद्र जैन डॉ. प्राणजीवन मेहता के बड़े भाई के दामाद थे। गांधीजी राजचंद्र के प्रभाव में आकर ही शपथ तोड़ने को अपराध के साथ ही पाप भी मानने वाले हुए। इसी प्रकार वे हिंदू धर्म की तार्किक व्याख्या से भी परिचित होते गए। उनके लिए शाकाहार प्रकृति के प्रेम और उसके साथ मानव-जीवन प्रणाली के संतुलन और गैर-पाशविक भाव की अभिव्यक्ति ही हो गई, इसीलिए उनका वैष्णव धर्म 'पीर पराई' जानने और महसूस


सुपरिचित लेखक। 'मध्यकालीन इतिहास के स्रोत' व 'मध्यकालीन भारत में राज्य और राजनीति' पुस्तकों पर उ.प्र. हिंदी संस्थान का 'आचार्य नरेंद्र देव पुरस्कार', अन्य प्रकाशन 'दास्ताँ मुगल महिलाओं की', 'हिंदी के बहाने' एवं 'फ्रांस का इतिहास' व 'मध्यकलीन भारत के विदेशी यात्री' पुस्तकें चर्चित।

करने की अद्‌भुत क्षमता वाला हो सका। दक्षिण अफ्रीका की सफलता इसी जीवन-दर्शन के साथ संभव हुई थी, अत: गांधी स्वाभाविक रूप से उसी के प्रति प्रतिबद्ध होते गए थे!

चूँकि वे गांधी थे और परीक्षण करने के आदी, अत: भारत में भी अपने चिर-परिचित या आजमाए हुए ढंग से औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त करने की आशा से लबरेज थे, जबकि यहाँ भारत में 'क्षेत्रीयता का बोध' और 'स्वदेश के भाव' के साथ वर्षों की दासता तथा उससे पूर्व के राजघरानों का माहौल रहा था। आम भारतीय शताब्दियों से दबे-कुचले से ही रहे थे। औपनिवेशिक साम्राज्यवाद ने उनके शोषण का कोई अवसर नहीं त्यागा था, अत: उनके समक्ष यह समस्या भी थी कि भारतीयों की आत्मा को कैसे झकझोरकर राष्ट्रवाद की भावना इतनी प्रबल कर दी जाए कि वे सहर्ष 'अहिंसक संघर्ष' के लिए मानसिक रूप से इतने तैयार हो जाएँ कि अंत तक डटे रहें। दक्षिण अफ्रीका की अभूतपूर्व सफलता के पश्चात् यहाँ भी गांधी स्वयं 'अहिंसा का सिद्धांत' आजमाना चाहते थे।

भारत भर के भ्रमण की साल भर की कि गई इन्हीं यात्राओं के पश्चात् भारतीय आत्मा को झकझोरने के प्रयास के क्रियान्वयन के सिलसिले में बड़ा आंदोलन छेड़ने से पहले बस सीमित स्तर के आंदोलन करने का निर्णय लिया। छोटे स्तर पर 'अहिंसक आंदोलन' के प्रयोग की अपनी पद्धति को आजमाते हुए, १९१७ में चंपारण में पहला सत्याग्रह किया। औपनिवेशिक शासन द्वारा बिहार के किसानों के शोषण हेतु 'तीनकठिया' व्यवस्था लागू की थी। इसके व्यवस्था के फलस्वरूप प्रत्येक किसान को राजस्व के कुछ भाग की अदायगी के लिए फसल के रूप में व्यवस्था थी। हर किसान को अपने खेत के ३/२०वें भाग में नील की खेती करनी थी और यह फसल आंग्ल नील-व्यापारी के द्वारा

हस्तगत होती थी, अतः इन किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य किया जाता था तथा चंपारण के आंग्ल फैक्टरी मालिकों को ही उनके द्वारा निर्धारित दाम पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता था।

सबसे पहले इस ओर गांधी का ध्यान लखनऊ के वार्षिक अधिवेशन (१९१६) के दौरान राजकुमार शुक्ल नामक एक कृषक ने खींचा था। गांधी को उसकी बोली एवं यह प्रकरण पूरी तरह समझ नहीं आ रहा था, अतः वह दौड़कर अधिवेशन में सम्मिलित बिहार के प्रतिनिधि ब्रजकिशोर प्रसाद को ढूँढ़कर लाया, ताकि वे गांधीजी को इस समस्या से अवगत करा सकें! वे वकील थे, किंतु गांधीजी उनकी समझ और संप्रेषण की भाषा आदि से बहुत प्रभावित नहीं हुए, किंतु राजकुमार शुक्ल से शीघ्र ही चंपारण आकर स्वयं स्थिति से अवगत होने का आश्वासन दिया। नियति सबकुछ निर्धारित कर रही थी। जिस चंपारण से गांधीजी को राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश करना था, उसी के लिए राजकुमार शुक्ल को माध्यम या निमित्त बना दिया। खैर, गांधी लखनऊ से कानपुर गए तो राजकुमार शुक्ल पीछे-पीछे कानपुर जा पहुँचे; किंतु गांधीजी उसकी बात सुनने के बाद आश्वासन देकर अपने आश्रम अहमदाबाद चले गए। चंपारण और गांधीजी के राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन की शुरुआत में अभी विलंब था; किंतु राजकुमार शुक्ल वहाँ भी जा पहुँचा।

राजकुमार शुक्ल ने गांधीजी से लगभग याचना करते हुए चंपारण आने के लिए विनती की। गांधीजी ने अप्रैल में कलकत्ता यात्रा के दौरान वहाँ से चंपारण आने की बात कही और उसे कलकत्ता आने को कहा, ताकि वे उसके साथ चंपारण पहुँच सकें। जब गांधीजी कलकत्ता पहुँचे तो उनके प्रवास-स्थल पर राजकुमार शुक्ल पहले से ही मौजूद था। ९ अप्रैल, १९१७ को गांधीजी राजकुमार शुक्ल के साथ ट्रेन में तृतीय श्रेणी के डिब्बे में सवार होकर कलकत्ता से पटना के लिए चल दिए। पटना से होते हुए ही चंपारण पहुँचा जा सकता था। पटना में राजकुमार शुक्ल उन्हें लेकर प्रसिद्ध वकील डॉ. राजेंद्र प्रसाद के घर गया, किंतु उनकी अनुपस्थिति में उनके सेवक ने गांधीजी को शौचालय के उपयोग तथा कुएँ से जल निकालने से भी मना कर दिया। खैर, गांधीजी को अचानक याद आया कि लंदन में साथ पढ़े मौलाना मजहरुल हक भी पटना में ही थे और वे उनसे मिले। हक ने ही उन्हें मुजफ्फरपुर जाकर वहाँ के स्थानीय नेताओं से संपर्क में आने की सलाह दी, जो ज्यादा मददगार साबित हो सकते थे, क्योंकि वे ही इस प्रकरण से बखूबी वाकिफ थे।

अब गांधीजी ने मुजफ्फरपुर में मौजूद जे.बी. कृपलानी को तार किया। कृपलानी से उनका पूर्व परिचय था, वे दोनों शांति निकेतन में भी मिल चुके थे। ट्रेन के मुजफ्फरपुर अर्धरात्रि पहुँचने पर भी कृपलानी कुछ छात्रों के साथ स्टेशन पर मौजूद थे। वे गांधी को प्रो. मलकानी के आवास पर ले गए, जहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था की गई थी। अगली सुबह वे वकील उनसे मिलने आ पहुँचे, जो प्रायः किसानों के मुकदमे लड़ते थे। गांधीजी ने पूरी बात समझते हुए इस समस्या का एक ही निराकरण सुझाया। उन्होंने स्पष्ट किया कि किसानों की वर्तमान समस्याओं का समाधान मुकदमों और न्यायालयों से नहीं निकल सकता। 'जहाँ कृषक उत्पीड़ित एवं भयग्रस्त हों, वहाँ न्यायालय क्या राहत देगा? इनको वास्तविक राहत इस भय से मुक्ति है।' दक्षिण अफ्रीका के अनुभव के पश्चात् गांधीजी के लिए भय से मुक्ति का मार्ग एक ही था—जेल जाने, दंड और आर्थिक दंड से लेकर स्वयं कष्ट सहने की आत्मबल से ही के भय से मुक्ति संभव थी।

१५ अप्रैल, १९१७ को गांधीजी स्थानीय बोली से वाकिफ दो लोगों के साथ मध्याह्न वाली गाड़ी से मोतिहारी के लिए निकले। तीन घंटे की यात्रा के बाद वे वहाँ पहुँचे और गोरख प्रसाद के घर पर उनका प्रवास निर्धारित हुआ। गांधीजी ने चंपारण पहुँचकर किसानों का दुःख-दर्द जाना और राजेंद्र प्रसाद तथा जे.बी. कृपलानी को भी यह समझाने में सफलता पाई कि सिर्फ न्यायालय में वाद करने से इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती, अपितु 'सत्याग्रह' ही एकमात्र रास्ता है! वे दोनों गांधीजी के विचार सुनकर हतप्रभ रह गए। दक्षिण अफ्रीका का यह सेनानी उनसे न्यायालय में वकालत के स्थान पर इस प्रकरण में प्रत्यक्ष जेल जाने का आह्वान कर रहा था। खैर, इस प्रकार 'चंपारण सत्याग्रह' शुरू हुआ। मदनमोहन मालवीय, राजेंद्र प्रसाद, मजहरुल हक से लेकर एंड्रूज ने उनको समर्थन के तार भेजे, जहाँ-जहाँ भी गांधीजी ने उस क्षेत्र में दौरा किया, लोगों का हुजूम उनके पीछे-पीछे हो लिया। लोगों में एक नई चेतना और जागृति का एहसास तो हुआ। इन किसानों के पास गांधी ही एकमात्र आशा की किरण बनकर आए थे।

वे प्रत्येक गाँव में जाकर लोगों से मिलते, उनकी शिकायतें सुनते, किसानों के पूरे विवरण के साथ उन्हें दर्ज करते थे। वे पूरे मनोयोग से मोतिहारी एवं उसके इर्द-गिर्द के ग्रामों में अपना काम करते रहे। वहाँ उनको एस.डी.एम. के न्यायालय में हाजिर होने का नोटिस मिला। गांधीजी को अब समझ आ गया था कि उनकी गिरफ्तारी का माहौल बनने लगा है। अतः उन्होंने जब अपने सहयोगियों एवं अनुयायियों से प्रश्न किया कि उनके जेल जाने पर वे क्या करेंगे? राजेंद्र प्रसादजी वगैरह ने यही उत्तर दिया कि जब आप जेल में होंगे, तब करने को क्या रह जाएगा? अतः वे वापस अपने घरों को लौट जाएँगे। गांधीजी ने लगभग फटकार लगाते हुए, संयत किंतु दृढ़ता से उनके किसानों का हितैषी होने पर प्रश्न किया, क्या वे अपने किसान-बंधुओं के प्रति कोई दायित्व नहीं मानते? क्या उन्हें अंत तक नहीं संघर्ष करना चाहिए? क्या न्यायालय में वाद दाखिल करने और उसके निर्णय के अलावा उनको न्याय दिलाने के लिए पूरा संघर्ष करना उनका दायित्व नहीं है?

अब उन्होंने उत्तर में गांधीजी को आश्वस्त किया कि वे भी उनको नेता मानते हुए उनके गिरफ्तार होने पर पीछे-पीछे जेल भर देंगे, तब गांधीजी समझ गए कि उनका 'सत्याग्रह' निश्चित सफल होगा! एकदम से चंपारण का माहौल जाग्रत् सा हो गया और समस्त ब्रिटिश शासन-प्रशासन की निगाहें चंपारण की ओर केंद्रित हो गईं। १८ अप्रैल, १९१७ को गांधीजी ने लगभग २००० किसानों के साथ न्यायालय परिसर में प्रवेश किया। मजिस्ट्रेट ने स्थिति नियंत्रित करने की गरज से सत्ता का

औपनिवेशिक हथकंडा अपनाया और गांधीजी को चेतावनी दी कि 'यदि वे कभी वापस न आने की शर्त पर जिले को छोड़कर चले जाएँ, तब उनके खिलाफ मुकदमा स्वतः समाप्त माना जाएगा।'

गांधीजी जो दक्षिण अफ्रीका में आंग्ल सत्ताधीशों से अपने दीर्घ संघर्ष के दौरान एक-एक चाल से अभिज्ञ थे, उन्होंने न्यायालय में अपना संकल्प स्पष्ट कर दिया कि बंदीगृह से बचने के लिए जिला छोड़कर जाने की बात तो दूर, वे तो जेल से बाहर निकलकर भी चंपारण को अपना घर बना लेंगे। वे बंदी बनाए जाने और यातनाओं से भयभीत होने वाले नहीं हैं। संभवतः वह न्यायाधीश गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के दीर्घ प्रवास और संकल्पित संघर्ष से वाकिफ नहीं था। फिलहाल स्थिति को टालने के नजरिए से उसने ३ बजे अपराह्न का समय निर्णय सुनाने के लिए निर्धारित किया। इस बीच गांधीजी ने वाइसराय के साथ अपने साथियों-सहयोगियों को भी तार से वस्तुस्थिति से अवगत कराने हेतु सूचित किया। गांधीजी के अडिग रहने के चलते यह मुकदमा २१ अप्रैल के लिए मुल्तवी हुआ। मजिस्ट्रेट ने सोचा कि उसे कुछ समय मिल जाएगा, तब वह अपने उच्चाधिकारियों से निर्देश प्राप्त करके तदनुसार काररवाई करेगा। अतः उसने गांधीजी को १०० रुपए की जमानत पर रिहा करने का तात्कालिक निर्णय किया, किंतु जब गांधीजी ने इससे भी इनकार किया, तब उन्हें व्यक्तिगत मुचलके पर छोड़ने के अतिरिक्त उसके पास कोई और विकल्प नहीं बचा था? इससे सभी उपस्थित लोगों के अंदर आशा का संचार हो गया कि एक साहसी आदमी की दृढ़ता से कैसे सशक्त औपनिवेशिक सत्ता का सिंहासन डोल जाता है।

चंपारण में गांधीजी के 'सत्याग्रह' के मार्ग अपनाते हुए पहली सफलता मिली। इसने लोगों के मन में गांधीजी के प्रति श्रद्धा और समर्पण का भाव भी बढ़ा दिया। उनको कृपलानी, मजहरुल हक, राजेंद्र प्रसाद, स्वामी श्रद्धानंद, ब्रजकिशोर प्रसाद जैसे सहयोगी मिले, महामना जैसे प्रशंसक मिले, किंतु गांधीजी का ध्यान भारत के श्रमिकों की ओर भी था। 'हिंद स्वराज' के लेखक के रूप में वे औद्योगिक विकास की विनाशलीला को अच्छी तरह समझते थे, अतः औपनिवेशिक सत्ता के औद्योगिक हितों की वास्तविकता से भी वे वाकिफ थे। श्रमिकों के क्षेत्र में भी एक छोटा परीक्षण करना उनके राष्ट्रीय व्यापक फलक पर आंदोलन से पहले की सुनियोजित कार्य-सूची में था। अतः अपने आश्रम के निकटवर्ती अहमदाबाद के कारखानों के श्रमिकों के दर्द ने उनका ध्यानाकर्षण किया।

इस बीच चंपारण किसान प्रकरण पर गांधीजी द्वारा आंग्ल सत्ता के विरुद्ध 'सविनय अवज्ञा' का समाचार सब तरफ फैल गया। बिहार के किसानों के हितों के लिए एक बाहरी व्यक्ति द्वारा 'अहिंसक कार्यक्रम' और उसकी त्याग के प्रति उसकी दृढ़ता ने किसानों को ऐसा प्रेरित तथा उत्साहित किया कि वे प्रतिदिन हजारों की संख्या में आकर अपने बयान गांधीजी के समक्ष दर्ज करवाने लगे। वे अपने बयानों में सविस्तार बता रहे थे कि कैसे इस प्रथा के तहत औपनिवेशिक शासन उनका शोषण कर रहा है। इसी बीच राजेंद्र प्रसाद, मजहरुल हक, ब्रजकिशोर बाबू, अनुग्रह नारायण, शंभू सरन तथा पोलक सब मोतिहारी में आ जुटे। इसी बीच एंड्रूज भी वहाँ आ पहुँचे। वे फिजी की अपनी यात्रा स्थगित करके अधिक दिन गांधीजी के संघर्ष को देने के लिए तैयार थे, किंतु गांधीजी ने जब देखा कि उनके अपने सहयोगी-सत्याग्रही आंग्ल उच्चाधिकारियों के साथ एंड्रूज के नैकट्य का लाभ उठाने के चक्कर में हैं, तब उन्होंने इस भय और कमजोरी से उबारने के लिए एंड्रूज को तुरंत वहाँ से रवाना कर दिया। वे अपने आंदोलनों के लिए निर्भय 'सत्याग्रहियों' की तलाश में थे, न कि भयभीत भारतीयों की, जो औपनिवेशिक सत्ता के आवेश से बचने के लिए एक श्वेत पादरी के पीछे छिपने के लिए प्रयासरत हों। अतः यह मुकदमा सरकार ने जन-दबाव के चलते वापस ले लिया। *(राजेंद्र प्रसाद, महात्मा गांधी एंड बिहार, पृष्ठ-१५)*

गांधीजी ने इस बीच मई के प्रथम सप्ताह में अपनी २,१५० शब्दों की विस्तृत रिपोर्ट सभी को प्रेषित कर दी। इसमें ४,००० कृषकों के नामजद बयान थे। जिस दिन गांधी को दोबारा न्यायालय में पेश होना था, उससे एक दिन पूर्व गांधीजी को जिलाधिकारी, श्री हेकॉक का लिखित संदेश प्राप्त हुआ कि आंग्ल लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर एडवर्ड गेट ने गांधीजी के विरुद्ध वाद वापस ले लिया है; इतना ही नहीं, स्थानीय अधिकारियों को गांधीजी की सहायता करने का आदेश दिया गया है तथा गांधीजी को विस्तृत वार्त्तालाप हेतु राँची आमंत्रित किया गया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप एक तीन सदस्यी जाँच समिति का गठन हुआ, जिसके अध्यक्ष सेंट्रल प्रोविंसेस के कमिश्नर सर फ्रेंक स्लाई थे। इस समीति को तीन माह में अपनी रिपोर्ट देनी थी। इसके एक सदस्य गांधीजी स्वयं थे। इस समीति ने एकमत से अपनी रिपोर्ट सरकार को ३ अक्तूबर, १९१७ को प्रेषित का दी। इसी के परिणामस्वरूप गांधीजी के सत्याग्रह की विजय हुई और 'चंपारण कृषक बिल' २९ नवंबर को ऐक्ट में परिवर्तित हो गया। इसके फलस्वरूप 'तीनकठिया' प्रथा समाप्त हुई तथा साधारण कृषक एवं व्यवसायी 'प्लांटर्स' के मध्य की असमानताएँ भी समाप्त हो गईं!

गांधीजी ने इस विजय के संदर्भ में कहा कि 'यह एक साधारण घटना है, आंग्ल सत्ता उनसे अपने ही देश में कोई भी पाबंदी कैसे लगा सकती है?' वैसे अपनी आत्मकथा में वे इस संघर्ष के विषय में यह लिखने से नहीं चूके कि इस दौरान कृषकों से संबंध के चलते उनको 'ईश्वर, अहिंसा तथा सत्य से साक्षात् हुआ'। इसी प्रकार डब्ल्यू.ए. लेविस, बेतिया में नियुक्त एक आई.सी.एस. अधिकारी ने लिखा कि कृषक उनको चमत्कार की शक्ति प्राप्त महामानव ही समझते थे। खैर, यह तो सत्य है कि गांधीजी की इस अभूतपूर्व सत्याग्रह और उसके परिणाम ने भारत में गांधीजी को न केवल प्रथम श्रेणी के राजनेता के रूप में स्थापित किया, अपितु वे बिहार से लेकर पूरे हिंदुस्तान के शोषित, उत्पीड़ित जन के हृदय में स्थान पाने में भी सफल हुए।

चंपारण में गांधीजी के 'सत्याग्रह' के मार्ग अपनाते हुए पहली सफलता मिली। इसने लोगों के मन में गांधीजी के प्रति श्रद्धा और समर्पण का भाव भी बढ़ा दिया। उनको कृपलानी, मजहरुल हक, राजेंद्र प्रसाद, स्वामी श्रद्धानंद, ब्रजकिशोर प्रसाद जैसे सहयोगी मिले, महामना जैसे प्रशंसक मिले, किंतु गांधीजी का ध्यान भारत के श्रमिकों की ओर भी था। 'हिंद स्वराज' के लेखक के रूप में वे औद्योगिक विकास की विनाशलीला को अच्छी तरह समझते थे, अत: औपनिवेशिक सत्ता के औद्योगिक हितों की वास्तविकता से भी वे वाकिफ थे। श्रमिकों के क्षेत्र में भी एक छोटा परीक्षण करना उनके राष्ट्रीय व्यापक फलक पर आंदोलन से पहले की सुनियोजित कार्य-सूची में था। अत: अपने आश्रम के निकटवर्ती अहमदाबाद के कारखानों के श्रमिकों के दर्द ने उनका ध्यानाकर्षण किया।

उन्होंने इन श्रमिकों से हड़ताल का आह्वान किया, किंतु यह आंदोलन कठोर शर्तों के साथ किया जाना था! ये शर्तें उन शाश्वत भारतीय मूल्यों-प्रतिमानों से जुड़ी हुई थी, जिन्हें गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया था। इन हड़तालियों को हिंसा का उपयोग नहीं करना था; कमजोर साथियों को भी परेशान या बलात् हड़ताल के लिए विवश नहीं करना था; किसी प्रकार की हिंसा से बचना था; वे अपने हक के लिए स्वयं लड़ रहे थे। इसी प्रकार, दृढ़ता से हड़ताल पर डटे रहना था, भले ही यह संघर्ष दीर्घकालीन हो जाए; किंतु जीवनयापन हेतु कोई भी अन्य ईमानदारी वाला कार्य हड़ताली कर्मचारी द्वारा किया जा सकता है, ताकि परिवार एवं अन्य आश्रित जन पर संकट न उत्पन्न हो जाए।

दो सप्ताह तो हड़ताल में उत्साह रहा, फिर अनेक लोग इस हड़ताल और उसके निष्प्रभावी होने पर प्रश्न करने लगे; उधर मालिकों ने उनके वेतन में २५ प्रतिशत की वृद्धि भी करके हड़ताल तोड़ने की नीति अपनाई। गांधीजी के समक्ष एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। वे भूख-हड़ताल पर चले गए। श्रमिकों को तब समझ आया कि यह व्यक्ति 'सत्य का आग्रही' और वास्तव में उनका शुभचिंतक है। अत: श्रमिकों ने स्वयं अपनी भूल स्वीकार करते हुए भूख-हड़ताल पर जाने के साथ गांधीजी से अपनी भूख-हड़ताल खत्म करने का अनुरोध किया, किंतु गांधीजी अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। ब्रिटिश शासन और मिल मालिक अचंभित रह गए! तीन दिनों की भूख-हड़ताल ने अपना असर दिखाया और अंबालाल साराभाई ने श्रमिकों के वेतन में ३५ प्रतिशत वृद्धि करने का आश्वासन दिया।

गांधीजी ने तुरंत अंबालाल साराभाई से भी कहा कि 'सिर्फ मेरी भूख-हड़ताल को खत्म करवाने के लिए ऐसा हरगिज मत करो, यदि तुम्हारे दिल को वास्तव में लगे कि श्रमिकों की माँग जायज है, तभी करना, अन्यथा हमें लगेगा कि हमने भूख-हड़ताल सिर्फ मिल-मालिकों के मानसिक शोषण के लिए की थी और यह निश्चित ही 'अन्याय' होगा। जब अंबालाल साराभाई ने आश्वस्त किया कि वे वास्तव में आश्वस्त होकर ही ऐसा कर रहे हैं, तब गांधीजी सहमत हो गए और उसके अगले दिन ही उन्होंने अपनी हड़ताल खत्म की। इस प्रकार अहमदाबाद के मिल मजदूरों को वर्षों से निलंबित न्याय और वंचित अधिकार प्राप्त हुए।

यह समस्या अभी निपटी ही थी कि खेड़ा के किसानों की समस्या ने गांधीजी को आकृष्ट किया। वर्षा के न होने से उनकी फसल बरबाद हुई थी और सरकार उनको राहत देने को तत्पर नहीं थी, जो गांधीजी को नागवार तथा अमानवीय गुजरा। अपनी जायज माँगों के लिए किए गए इनके विभिन्न प्रदर्शन तथा 'बॉम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल' में दिए गए आवेदन निष्प्रभावी रहे थे, अत: गांधीजी समझ चुके थे कि दीर्घकालीन 'जन-अवज्ञा' से ही सरकार झुकेगी। अपने तरीके के अनुसार सर्वप्रथम उन्होंने सरकार को एक अवसर देने की नियत से स्वयं उनके भू-राजस्व की वसूली से मुक्ति हेतु आवेदन किया, किंतु सरकार ने कुछ भी सुनने से इनकार कर दिया। गांधीजी ने पूरे मामले को समझने के लिए और वैधानिक ढंग से कार्य करने के लिए एक 'इंक्वाइरी कमेटी' (जाँच समिति) के गठन की माँग भी रखी थी, जो सरकार को किसानों के लिए राहत के कदम प्रस्तावित कर सके। यह बहुत न्यायिक, तार्किक और संवैधानिक प्रक्रिया थी? जब सरकार गूँगी बनी रही, तब गांधीजी ने पट्टीदारों (कृषकों) से राजस्व ने चुकाने और जेल जाने का आह्वान किया।

इस 'जन-अवज्ञा' आंदोलन में उनके प्रमुख सहायक प्रसिद्ध एवं समृद्ध वकील वल्लभभाई पटेल थे। इनके अतिरिक्त शंकरलाल बैंकर, अनसूयाबेन साराभाई, इंदुलाल यागिनक तथा महादेव देसाई आदि भी कंधे से कंधा मिलकर संघर्षरत रहे। उस क्षेत्र के मंडल आयुक्त (कमिश्नर) ने गांधीजी को कृषक संकट पैदा करने का दोषी माना और राजस्व न चुकाने वाले कृषकों की चल-संपत्ति की जब्ती का आदेश दिया। इसके विरोध में गांधीजी ने किसानों से प्याज की फसल काटकर सरकारी आदेश के उल्लंघन के साथ ही गिरफ्तारी देने का आह्वान किया। गांधीजी ने किसानों को सरल भाषा में समझाया—'वे तुम्हारी जमीनें जब्त करके जलयान से इंग्लैंड नहीं भेज सकते, अत: निश्चिंत रहो।' चार माह तक यह संघर्ष यों ही चलता रहा, तब सरकार ने इस बात की स्वीकृति दी कि यदि संपन्न किसान अपना राजस्व चुका दें तो गरीब और विपन्न किसानों का राजस्व माफ किया जा सकता है। यह निर्णय न्यायोचित था, अत: स्वीकार्य हुआ और खेड़ा के किसानों का 'सत्याग्रह' भी विजय के साथ समाप्त हुआ, जब उनकी हर तरफ प्रशंसा और स्वागत-सत्कार-अभिनंदन का एक और दौर शुरू हुआ, तब गांधीजी ने इससे परहेज करते हुए 'सत्याग्रह' को अपनाकर देश की आजादी के संघर्ष के लिए सबका आह्वान किया।

८/५ ए, बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२ (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : ९४५२७९१००८
heramb.chaturvedi@gmail.com



महात्मा गांधी और टाना भगत

• संजय कृष्ण

'गांधी बाबास बड़ा लीला धारेस
चरेखा ले ले मेरे ओजदस
अंग्रेज सरकार बड़ा पापी रहचा
गांधी बाबासीन कैदी नंजा
कैदी नंजा बरा लाबागे लागिया
मं गांधीस अंग्रेजन खेचस चिचस'' '

ये गीत टाना भगत आज भी गाते हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है—महात्मा गांधी बहुत लीला वाले महापुरुष थे। वे चरखा द्वारा सूत कातते थे। अंग्रेज बहुत आततायी थे। गांधी बाबा को कैद कर लिया था और मारना चाहा था, परंतु अंत में अंग्रेज को भागना पड़ा। एक दूसरा गीत भी देखें—

'भारत छुआछूत नू कलंक मंजकी रहचा
जाति-रीति गही भेद फैलार ही रहचा''
प्रिस्थिति गही कारण महात्मा गांधी में ध्यान बरचा
गीता रामायण नीति याद बरचा
भारत उद्धार गीता रामायण बरचा
महात्मा गांधीस कही कर्णधार बनचा
सत, प्रेम, अहिंसा, राजनीतिक शास्त्र बनचा
असहयोग, सत्याग्रह स्वतंत्राता युद्ध गही अस्त्र बनचा'' '

भारत छुआछूत के भेद से कलंकित हो गया था। जाति-पाँति और रीति-नीति का भेदभाव फैला था। परिस्थिति के कारण महात्मा गांधी को ज्ञात हुआ, गीत और रामायण की नीति याद आई। भारत के उद्धारक गीता-रामायण ही हुआ और महात्मा गांधी देश के कर्णधार बने। सत्य, प्रेम, अहिंसा, राजनीतिक शास्त्र बना और असहयोग सत्याग्रह स्वतंत्रता की लड़ाई अस्त्र।

टाना भगत से गांधी की पहली मुलाकात राँची में जुलाई १९१७ में हुई थी। वे चंपारण आंदोलन के सिलसिले में राँची आए थे। गांधीजी ने इसका जिक्र अपनी डायरी में किया है। १९१७ से लेकर आजादी तक वे गांधी के प्रिय रहे। तीन साल पहले १९१४ में ही टाना भगत का प्रादुर्भाव हुआ था। तीन साल में ही इनका सुधारवादी आंदोलन आजादी के आंदोलन में तब्दील हो गया। गांधी के प्रभाव के कारण अहिंसक

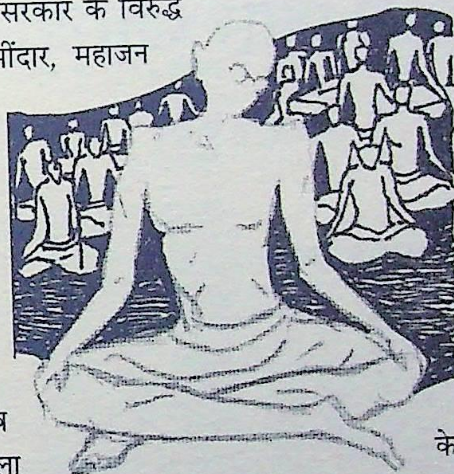


सुपरिचित लेखक। 'झारखंड के पर्व-त्योहार, मेले और पर्यटन स्थल' (पुस्तक), 'होती बस आँखें ही आँखें' में नागार्जुन पर लंबा लेख प्रकाशित। 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' पुस्तक में हिंदी पत्रकारिता पर शोधपूर्ण लेख संकलित। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक लेख-रिपोर्ट, समीक्षा आदि प्रकाशित। संप्रति दैनिक जागरण, राँची से संबद्ध।

आंदोलन में ये भाग लेने लगे। खुद सूत कातते, चरखा चलाते हुए आंदोलन को गति देने लगे। साफ-सफाई, स्वच्छता, प्रार्थना इनके जीवन का आज भी अंग बना हुआ है। दरअसल देखा जाए तो गांधी के सच्चे अनुयायी यही हैं, जो आज भी उनके बताए मार्ग पर चल रहे हैं। आजादी के आंदोलन में अंग्रेजों द्वारा नीलाम की गई इनकी जमीन आज भी पूरी तरह से इनके हवाले नहीं हो पाई है। इसके लिए ये आज भी अहिंसक आंदोलन चला रहे हैं। आज से नहीं, आजादी के बाद से ही, पर आज भी ये गुरबत और परेशानी में जीते हुए गांधी के विचारों को धारण किए हुए हैं, पर जब गांधीजी की १५०वीं जयंती मनाई जा रही है, तब इन्हें कोई याद नहीं कर रहा है।

जतरा टाना भगत ने धार्मिक रूढ़ियों को दूर करने के लिए 'टाना भगत पंथ' चलाया। झारखंड में उरांव प्रमुख आदिवासी हैं। जतरा इसी उरांव जनजाति से था। जतरा का जन्म गुमला जिले के चिंगरी नयाटोली गाँव में १८८८ में हुआ था। पिता का नाम कोहरा भगत व माता का नाम लिवरी भगत था। बुधनी भगत इनकी पत्नी का नाम था। जतरा के जन्म की तिथि ज्ञात नहीं, पर टाना भगत गांधी जयंती के दिन ही जतरा की जयंती भी मनाते हैं। तुरिया भगत से तंत्र-मंत्र की विद्या सीखने के क्रम में इन्हें १९१४ में अचानक आत्मबोध हुआ। कहते हैं, एक दिन वह पोखर में स्नान करने गया था। वहाँ पानी के भीतर उसे धर्मेश यानी 'ईश्वर' का दर्शन हुआ। धर्मेश ने उसे मंत्र दिया। पानी के भीतर से 'टाना बाबा, टाना बाबा' स्वर उच्चरित करते हुए जतरा निकला। उसने धर्मेश के दर्शन की बातें लोगों को बताईं—हमें भूत-प्रेत और विविध बोंगाओं की पूजा छोड़

देनी चाहिए। हम सात्त्विकता में रहें और एक ईश्वर की उपासना करें। बलि की प्रथा बंद करें। हँड़िया की तपावन की जगह शुद्ध जल और दूध का तपावन दें। परंपरागत शिकार प्रथा बंद करें। जनेऊ धारण करें, गो सेवा में लगें, जीव हत्या न करें। भगवान् का भजन करें। यह संदेश तेजी से पाँव पसारने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध का दौर चल रहा था। उसका प्रभाव यहाँ भी दिख रहा था। दूसरी ओर, यहाँ के लोग अंग्रेजी राज के अत्याचार, जमींदारों की बेगारी, समाज में फैले अंधविश्वास एवं नाना प्रकार की कुरीतियों से भी पीड़ित थे। जतरा ने अपना मंत्र लोगों को दिया। वह रोग निदान भी करने लगा। बहुत से लोग उसके पंथ में चले आए और अनुयायी बन गए। जतरा टाना बाबा बन गए, हालाँकि इसका विरोध भी लोगों ने किया, लेकिन टाना पंथ आगे बढ़ता चला गया। प्रारंभ में उरांव वर्ग में सादगी, स्वच्छता जैसी सुधारवादी नीयत से काम होने लगा। बाद में महाजन, कुछेक जमींदार और सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू हो गया। जतरा के प्रचार से जमींदार, महाजन और अंग्रेजी सरकार चौकन्नी हो गई। इसके बाद अंग्रेज पुलिस ने जतरा को उसके सात साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया और डेढ़ साल की सजा हो गई। बाद में इसे शर्त पर छोड़ा गया कि वह अपने नए सिद्धांत का प्रचार नहीं करेगा और शांति बनाए रखेगा, पर जेल में मिली घोर प्रताड़ना के कारण जेल से बाहर आने के दो महीने के भीतर ही जतरा की मृत्यु हो गई। तब बटकुरी गाँव की देवमनिया ने टाना नेतृत्व सँभाला और प्रचार करने लगी। राँची, पलामू, हजारीबाग तथा अन्य क्षेत्रों में कोई ढाई लाख लोग टानापंथी बन गए। इस तरह जतरा भगत नेपथ्य में चला गया, पर आंदोलन की धार तेज होने लगी। पलामू से लेकर छत्तीसगढ़ के सरगुजा तक यह फैल गया।



टाना भगतों ने खुद के लिए नियम बनाए। वृहस्पतिवार को हल नहीं जोतने का निश्चय हुआ और इस दिन विश्राम तथा आपसी मंत्रणा का दिन रखा गया। इसके बाद टाना आंदोलन ने दूसरा ही रूप ले लिया। उन्होंने खेती करना छोड़ दिया। बारदोली आंदोलन से प्रभावित टाना भगतों ने जमीन टैक्स, चौकीदारी टैक्स आदि देना बंद कर दिया। इसका फल यह हुआ कि इनकी जमीन नीलाम हो गई, फिर भी ये पीछे नहीं हटे। सन् १९२२ के गया कांग्रेस में करीब तीन सौ टाना भगतों ने भाग लिया। ये राँची से पैदल चलकर गया पहुँचे थे। १९४० में रामगढ़ कांग्रेस में इनकी संख्या हजारों तक पहुँच गई थी। ५ अक्तूबर, १९२६ को राँची में राजेंद्र बाबू के नेतृत्व में आर्य समाज मंदिर में खादी की प्रदर्शनी लगी थी तो टाना भगतों ने इसमें भी भाग लिया। १९३४ में महात्मा गांधी हरिजन-उत्थान-आंदोलन के सिलसिले में चार दिनों तक राँची में थे। इस समय भी टाना भगत उनके पास रहते थे। १९२७ में साइमन कमीशन के बॉयकाट में टाना भगत भी शामिल थे। सन् १९४२ के आंदोलन में तो टाना भगतों ने राँची पहाड़ी पर तिरंगा ही फहरा दिया था। टाना भगतों की जमीन तो अंग्रेजी सरकार ने पहले ही नीलाम कर दी थी, फिर भी वे आजादी के आंदोलन से पीछे नहीं हटे, मार खाई, सड़कों पर घसीटे गए, जेल की यातनाएँ सहीं, फिर भी गांधीजी की जय बोलते रहे, अंतिम दम तक।

देश जब आजाद हुआ तो टाना भगतों ने अपनी तुलसी चौरा के पास तिरंगा लहराया, खुशियाँ मनाईं, भजन गाए। आज भी टाना भगतों के लिए २६ जनवरी, १५ अगस्त व २ अक्तूबर पर्व के समान है। महात्मा गांधी के अहिंसा का प्रभाव टाना भगतों पर कितना था, इसे सिर्फ एक घटना से समझा जा सकता है। सोंधी बरवा टोली, राँची के निवासी थे विश्वामित्र टाना भगत। वे गांधी के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। उनकी धारणा थी कि गांधीजी की अहिंसा का प्रताप जब है, तो साँप हिंसा पर उतारू नहीं हो सकते और अपने इसी विश्वास के बल पर उन्होंने अपने घर में डेढ़ सौ विषधर साँपों को पाल रखा था। वे साँपों को अपने मकान में टोकरी के अंदर रखते थे। इन्होंने आजादी की लड़ाई में भाग लिया और जेल की सजा भी काटी थी। डॉ. राजेंद्र प्रसाद के साथ भी जेल में थे। १९६१ में काफी वृद्धावस्था में इनका निधन हो गया। श्री नारायणजी ने अपने एक लेख 'महात्मा गांधी और आदिवासी' में भी इस बात की पुष्टि की है। लिखा है, ''टाना भगत महात्मा गांधी के अनन्य भक्त बन गए। गांधीजी के आह्वान पर देश की आजादी के वे प्रथम श्रेणी के सिपाही बने। आजादी की लड़ाई में टाना भगतों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। कितने जेल गए, हजारों की जमीन नीलाम हुई, कितने जेल में खेत आए। स्वराज्य की लड़ाई में अहिंसा का व्रत लेकर जिस प्रकार टाना भगतों के समूह ने आहुति दी, उस प्रकार का उदाहरण भारत में कहीं और नहीं मिलता है। दस हजार परिवार करीब टाना भगतों का है। परिवार के सब-के-सब व्रतधारी बन गए और स्वराज्य का संवाद सुनने के लिए कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए सैकड़ों पाँव पैदल गया, कानपुर, बेलगाँव और कोकोनाडा गए। महात्मा गांधी इनकी अटूट आस्था से मुग्ध थे। वे दिल खोलकर मिलते। जब भेंट होती थी, इनसे गले मिलते थे। गांधीजी इनकी दयनीय दशा देखकर परेशान होते थे।''

उन्होंने आगे लिखा है, ''महात्मा गांधी की आदत थी कि जब वे देश की किसी समस्या को व्यापक मानते थे, तो उसके हल के लिए पग उठाते थे। आंदोलन खड़ा कर अथवा सरकार का ध्यान आकृष्ट कर ही वे संतुष्ट नहीं होते थे। अपनी शक्ति भर वे उस समस्या का हल करने के लिए रास्ता निकालते थे। स्वभावतः आदिवासी समस्या को जब देखा तो इसके हल के लिए उन्होंने विशेषकर ठक्कर बापा को उत्साहित किया और उनके इशारे पर ठक्कर बापा के साथ सैकड़ों कार्यकर्ता गुजरात, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि स्थानों में आदिवासियों के सेवा कार्य में जुट गए। इस कार्य के लिए पहली संस्था गुजरात में 'भील सेवा

मंडल' बनी। फिर बिहार में 'आदिम जाति सेवा मंडल' की स्थापना हुई। बापू इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए। रचनात्मक कार्यकर्ताओं के लिए 14 सूत्रीय कार्यक्रम बना। उसमें भी आदिवासी सेवा को स्थान दिया गया। इस प्रकार यह महात्मा गांधी के प्रयत्न का ही परिणाम है कि आदिवासी समस्या की गणना भारत की समस्याओं में होने लगी। भारत के संविधान में उनको प्रमुख स्थान मिला।

हरिवंश टाना भगत ने कुडुख में गीत लिखा है। यह गीत अब मंत्र बन गया है—

'तिरंगा झंडा भैरों नम्हैं राजी गही झंडा,
तिरंगा झंडा नू, सत, दया अहिंसा, धरमदीस रादस
तिरंगा झंडा नू, मा गांधीस दीम रादस।'

देश की सामाजिक बुराइयों पर भी टाना भगतों ने गीत लिखे। अपने समाज में जागरूकता पैदा की।

गांधीजी आज भी इनके दिल में बसे हैं और अहिंसक तरीके से आज भी अपनी जमीन वापसी के लिए लड़ रहे हैं। यह लड़ाई वैसे तो आजादी के तुरंत बाद ही शुरू हो गई थी। सरकार ने इनकी जमीन वापसी की प्रक्रिया भी शुरू कर दी थी, लेकिन बहुतों को जमीन का आज भी इंतजार है। सा अ

द्वारा—ध्रुव तिवारी का मकान, तपोवन गली,
कोकर, राँची-८३४००१ झारखंड
दूरभाष : ०९८३५७१०९३७

कविता

आ गए गांधी

• अभिराज राजेंद्र मिश्र



सुपरिचित रचनाकार। संस्कृत में दो विशाल महाकाव्य, सोलह खंडकाव्य, चार गजल-संग्रह, छह कथा-संग्रह, दस एकांकी-संग्रह, चार नवनीत-संग्रह एवं चार नाटक तथा हिंदी में भी पाँच गीत-संग्रह, दो कहानी-संग्रह, एक उपन्यास तथा दर्जनों बालसाहित्य-ग्रंथ प्रकाशित। 'वाचस्पति', 'कालिदास', 'कल्पवल्ली' तथा सर्वश्रेष्ठ महामहिम राष्ट्रपति सम्मान से अलंकृत।

भँवर में थी फँसी स्वाधीनता संघर्ष की नैया।
अचनाक दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गए गांधी॥

अहिंसा-सत्य की पतवार झटपट थम ली कर में।
चतुर सरदार, खेवनहार सबके बन गए गांधी॥

न भारत में चलेगा राज हिंसा और पशुता का।
भरी ललकार, देख फिरंगियों को तन गए गांधी॥

लिये दाधीच-पंजर, दो कदम जिस ओर घूम चले।
करोड़ों सहचरों के प्राणसंबल बन गए गांधी॥

जागी कश्मीर से केरल तलक जनता, जो सोई थी।
अलख जागी तिरंगे की, महात्मा बन गए गांधी॥

रुका दी नील की खेती, नमक-कानून चटकाया।
विलायत की फजीहत कर विजेता बन गए गांधी॥

यहाँ चाणक्य जैसे संत ही शासन चलाते हैं।
हठीले-मूढ़ चर्चिल को मर्म समझा गए गांधी॥

चला सविनय अवज्ञा-दौर, वस्त्रों की जली होली।
समूचे विश्व को खद्दर का भक्त बना गए गांधी॥

डरा-भागा कमीशन साइमन, बेदम हुआ शासन।
'करो या मरो' का मंत्र सबको दे गए गांधी॥

पटरियाँ रेल की उखड़ीं कि खंभे तार के टूटे।
फिरंगी के लिए रुद्रावतार दिखा गए गांधी॥

कड़ी चेतावनी दे दी कि 'भारत छोड़ दो गोरो!'
तुम्हारे लद गए हैं दिन, तुम्हारा काल है गांधी॥

असर ऐसा कि सागर-पार भी कंपित हुआ लंदन।
विदा करके ही उसको हिंद से सुस्थिर हुए गांधी॥

करोड़ों मर-मिटे जो देश को आजाद करने में।
उसी का 'अमरफल' ऋषितुल्य सबको दे गए गांधी॥

पुलिन पर आ लगी नौका, मिटा अब भय समंदर का।
सभी संग गीत 'वंदे मातरम्' का गा गए गांधी॥

अजब का कर्मयोगी था, अकिंचन जो कि बेघर था।
सदा छोटे-बड़ों के प्रेम का भूखा रहा गांधी॥

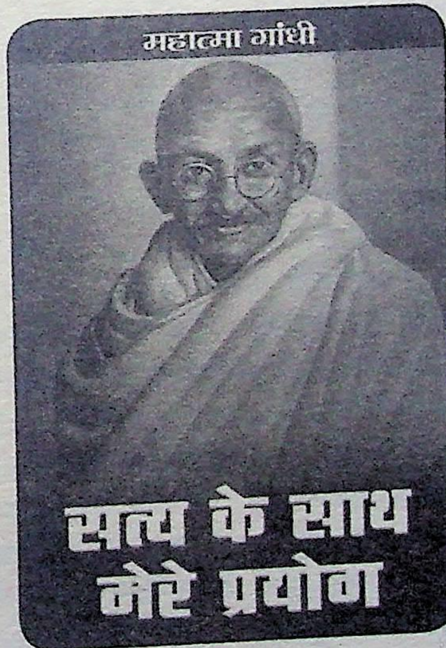
हमें दे दासता से मुक्ति, आँखें मूँद लीं उसने।
जुड़े थे हाथ, मुँह से राम ही कहता रहा गांधी॥ सा अ

सनराइज विला टावर (निकट उ.मा. विद्यालय)
लोअर समर हिल, शिमला-१७१००५
दूरभाष : ०९४१८०४१५३७
abhirajr96@gmail.com

असत्य रूपी विष

• महात्मा गांधी

मैं जितना शरमीला था, उतना ही डरपोक भी था। वेंटनर में जिस परिवार में मैं रहता था, वैसे परिवार में घर की बेटी हो तो वह, सभ्यता के विचार से ही सही, मेरे समान विदेशी को घुमाने ले जाती। सभ्यता के इस विचार से प्रेरित होकर इस घर की मालकिन की लड़की मुझे वेंटनर के आस-पास की सुंदर पहाड़ियों पर ले गई। वैसे मेरी चाल कुछ धीमी नहीं थी, पर उसकी चाल मुझसे भी तेज थी। इसलिए मुझे उसके पीछे-पीछे घिसटना पड़ा। वह तो रास्ते भर बातों के फव्वारे उड़ाती चली, जबकि मेरे मुँह से कभी 'हाँ' या कभी 'ना' की आवाज भर निकलती थी। बहुत हुआ तो 'कितना सुंदर है!' कह देता। इससे ज्यादा बोल न पाता। वह तो हवा में उड़ती जाती, और मैं यह सोचता रहता कि वापस घर कब पहुँचूँगा! फिर भी यह कहने की हिम्मत न पड़ती कि 'चलो, अब लौट चलें।' इतने में हम एक पहाड़ी की चोटी पर जा खड़े हुए। पर अब उतरा कैसे जाए? अपने ऊँची एड़ीवाले बूटों के बावजूद बीच-पचीस साल की वह रमणी बिजली की तरह ऊपर से नीचे उतर गई, जबकि मैं शर्मिंदा होकर अभी यही सोच रहा था कि ढाल कैसे उतरा जाए! वह नीचे खड़ी हँसती है; मुझे हिम्मत बँधाती है; ऊपर आकर हाथ का सहारा देकर नीचे ले जाने को कहती है! मैं इतना पस्तहिम्मत तो कैसे बनता? मुश्किल से पैर जमाता हुआ, कहीं कुछ बैठता हुआ, मैं नीचे उतरा। उसने मजाक में 'शा'''ब्बा'''श!' कहकर मुझ शरमाए हुए को और अधिक शर्मिंदा किया। इस तरह के मजाक से मुझे शर्मिंदा करने का उसे हक था।



लेकिन हर जगह मैं इस तरह कैसे बच पाता? ईश्वर मेरे अंदर से असत्य का विष निकालना चाहता था। वेंटनर की तरह की ब्राइटन भी समुद्र किनारे हवाखोरी का मुकाम है। एक बार मैं वहाँ गया था। जिस होटल में मैं ठहरा था, उसमें साधारण खुशहाल स्थिति की एक विधवा बुढ़िया भी हवाखोरी के लिए आकर टिकी थी। यह मेरा पहले वर्ष का समय था-वेंटनर के पहले का। यहाँ सूची में खाने की सभी चीजों के नाम फ्रेंच भाषा में लिखे थे। मैं उन्हें समझता न था। मैं बुढ़ियावाली मेज पर ही बैठा था। बुढ़िया ने देखा कि मैं अजनबी हूँ और कुछ परेशानी में भी हूँ। उसने बातचीत शुरू की।

''तुम अजनबी-से मालूम होते हो। किसी परेशानी में भी हो। अभी तक कुछ खाने को भी नहीं मंगाया है!''

मैं भोजन के पदार्थों की सूची पढ़ रहा था और परोसनेवाले से पूछने की तैयारी कर रहा था। इसलिए मैंने उस भद्र महिला को धन्यवाद दिया और कहा, ''यह सूची मेरी समझ में नहीं आ रही है। मैं अन्नाहारी हूँ। इसलिए यह जानना जरूरी है कि इनमें से कौन सी चीजें निर्दोष हैं।''

उस महिला ने कहा, ''तो लो, मैं तुम्हारी मदद करती हूँ और सूची समझा देती हूँ। तुम्हारे खाने लायक चीजें मैं तुम्हें बता सकूँगी।''

मैंने धन्यवादपूर्वक उसकी सहायता स्वीकार की। यहाँ से हमारा जो संबंध जुड़ा, वो मेरे विलायत में रहने तक और उसके बाद भी बरसों तक बना रहा। उसने मुझे लंदन का अपना पता दिया और हर रविवार को अपने घर भोजन के लिए आने को न्योता। वह दूसरे अवसरों पर भी मुझे अपने यहाँ बुलाती थी, प्रयत्न करके मेरा शर्मीलापन छुड़ाती थी, जवान स्त्रियों से जान-पहचान कराती थी और उनसे बातचीत करने को ललचाती थी। वह अपने घर रहनेवाली एक स्त्री के साथ बहुत बातें करवाती थी। कभी-कभी हमें अकेला भी छोड़ देती थी।

आरंभ में मुझे यह सब बहुत कठिन लगा। बात करना सूझता न था। विनोद भी क्या किया जाए? पर वह बुढ़िया मुझे प्रवीण बनाती रही। मैं तालीम पाने लगा, हर रविवार की राह देखने लगा। उस स्त्री के साथ बातें करना भी मुझे अच्छा लगने लगा।

बुढ़िया भी मुझे लुभाती जाती। उसे इस संग में रस आने लगा। उसने तो हम दोनों का हित ही चाहा होगा!

अब मैं क्या करूँ? मैंने सोचा—'क्या ही अच्छा होता, अगर मैं इस भद्र महिला से अपने विवाह की बात कह देता? उस दशा में क्या वह चाहती कि किसी के साथ मेरा ही ब्याह हो? अब भी देर नहीं हुई है। मैं सच-सच कह दूँ तो अधिक संकट से बच जाऊँगा।' यह सोचकर मैंने उसे एक पत्र लिखा। अपनी स्मृति के आधार पर नीचे उसका सार देता हूँ—

''जब से हम ब्राइटन में मिले, आप मुझे पर प्रेम रखती रही हैं। माँ जिस तरह अपने बेटे की चिंता रखती है, उसी तरह आप मेरी चिंता रखती हैं। आप तो यह भी मानती हैं कि मुझे ब्याह करना चाहिए, और इसी खयाल से आप मेरा परिचय युवतियों से कराती हैं। ऐसे संबंध के अधिक आगे बढ़ने से पहले ही मुझे आपसे यह कहना चाहिए कि मैं आपके प्रेम के योग्य नहीं हूँ। मैं आपके घर आने लगा, तभी मुझे आपसे यह कह देना चाहिए था कि कि मैं विवाहित हूँ। मैं जानता हूँ कि हिंदुस्तान के जो विद्यार्थी विवाहित होते हैं, वे इस देश में अपने ब्याह की बात प्रकट नहीं करते। इससे मैंने भी उस रिवाज का अनुकरण किया। पर अब मैं देखता हूँ कि मुझे अपने विवाह की बात बिलकुल छिपानी नहीं चाहिए थी। मुझे साथ में यह भी कह देना चाहिए कि मेरा ब्याह बचपन में हुआ है और मेरे एक लड़का भी है। आपसे इस बात को छिपाने का अब मुझे बहुत दुःख होता है; पर अब भगवान् ने सच कह देने की हिम्मत दी है, इससे मुझे आनंद होता है। क्या आप मुझे माफ करेंगी? जिस बहन के साथ आपने मेरा परिचय कराया है, उसके साथ मैंने कोई अनुचित छूट नहीं ली, इसका विश्वास मैं आपको दिलाता हूँ। मुझे इस बात का पूरा-पूरा खयाल है कि मुझे ऐसी छूट नहीं लेनी चाहिए। पर आप तो स्वाभाविक रूप से यह चाहती हैं कि किसी के साथ मेरा संबंध जुड़ जाए। आपके मन में यह बात आगे न बढ़े, इसके लिए भी मुझे आपके सामने सत्य प्रकट कर देना चाहिए।''

''यदि इस पत्र के मिलने पर आप मुझे अपने यहाँ आने के लिए अयोग्य समझेंगी तो मुझे उससे जरा भी बुरा नहीं लगेगा। आपकी ममता के लिए तो मैं आपका चिरऋणी बन चुका हूँ। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि अगर आप मेरा त्याग न करेंगी तो मुझे खुशी होगी। यदि अब भी आप मुझे अपने घर आने योग्य मानेंगी तो उसे मैं आपके प्रेम की एक नई निशानी समझूँगा, और उस प्रेम के योग्य बनने का सदा प्रयत्न करता रहूँगा।''

लगभग लौटती डाक से मुझे उस विधवा बहन का उत्तर मिला। उसने लिखा था—

''खुले दिल से लिखा तुम्हारा पत्र मिला। हम दोनों खुश हुईं और खूब हँसीं। तुमने जिस असत्य से काम लिया, वह तो क्षमा के योग्य ही है। पर तुमने अपनी सही स्थिति प्रकट कर दी, यह अच्छा ही हुआ। मेरा न्योता कायम है। अगले रविवार को हम अवश्य तुम्हारी राह देखेंगी, तुम्हारे बाल-विवाह की बातें सुनेंगी और तुम्हारा मजाक उड़ाने का आनंद भी लूटेंगी। विश्वास रखो कि हमारी मित्रता तो जैसी थी, वैसी ही रहेगी।''

इस प्रकार मैंने अपने अंदर घुसे हुए असत्य के विष को बाहर निकाल दिया, और फिर तो अपने विवाह आदि की बात करने में मुझे कहीं घबराहट नहीं हुई।

विभिन्न धर्मों से परिचय

विलायत में रहते हुए दो थियॉ-ससॉफिस्ट मित्रों से मेरी पहचान हुई। दोनों सगे भाई थे और अविवाहित थे। उन्होंने मुझसे 'गीता' की चर्चा की। वे एडविन आर्नल्ड का गीता का अनुवाद पढ़ रहे थे। उन्होंने मुझे अपने साथ संस्कृत में 'गीता' पढ़ने के लिए न्योता दिया। मैंने 'गीता' संस्कृत में या मातृभाषा में पढ़ी ही नहीं थी। मुझे उनसे कहना पड़ा कि मैंने 'गीता' पढ़ी ही नहीं है, पर मैं उसे आपके साथ पढ़ने को तैयार हूँ। इस प्रकार मैंने उन भाइयों के साथ 'गीता' पढ़ना शुरू किया—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

इन श्लोकों का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। उनकी भनक मेरे कान में गूँजती ही रही। उस समय मुझे लगा कि 'भगवद्गीता' अमूल्य ग्रंथ है। यह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती गई और आज तत्त्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। निराशा के समय में इस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है। मैं इसके लगभग सभी अंग्रेजी अनुवाद पढ़ गया हूँ पर एडविन आर्नल्ड का अनुवाद मुझे श्रेष्ठ प्रतीत होता है। उसमें मूल ग्रंथ के भाव की रक्षा की गई है, फिर भी वह ग्रंथ अनुवाद-जैसा नहीं लगता। इस बार मैंने 'भगवद्गीता' का अध्ययन किया, ऐसा तो मैं कह ही नहीं सकता। मेरे नित्यपाठ का ग्रंथ तो वह कई वर्षों के बाद बना।

इन्हीं दिनों एक अन्नाहारी छात्रावास में मुझे मैनचेस्टर के एक ईसाई सज्जन मिले। उन्होंने मुझसे ईसाई धर्म की चर्चा की। मैंने उन्हें राजकोट का अपना संस्मरण सुनाया। वे सुनकर दुःखी हुए। उन्होंने कहा, ''मैं स्वयं अन्नाहारी हूँ। मद्यपान भी नहीं करता। यह सच है कि बहुत से ईसाई मांस खाते हैं और शराब पीते हैं, पर इस धर्म में दो में से एक भी वस्तु का सेवन करना कर्तव्य-रूप नहीं है। मेरी सलाह है कि आप बाइबिल पढ़ें।'' मैंने उनकी यह सलाह मान ली। उन्होंने बाइबिल खरीद कर मुझे दी। मेरा कुछ ऐसा खयाल है कि वे भाई खुद ही बाइबिल बेचते थे। उन्होंने नक्शों और विषय-सूची आदि से युक्त बाइबिल मुझे बेची। मैंने उसे पढ़ना शुरू किया, पर मैं 'पुराना इकरार' (ओल्ड टेस्टामेण्ड) तो पढ़ ही न सका। 'जेनेसिस'-सृष्टि-रचना-के प्रकरण के बाद तो पढ़ते समय मुझे नींद ही आ जाती। मुझे याद है कि 'मैंने बाइबिल पढ़ी है' यह कह सकने के लिए मैंने बिना रस के और बिना समझे दूसरे प्रकरण बहुत कष्टपूर्वक पढ़े। 'नंबर्स' नामक प्रकरण पढ़ते-पढ़ते मेरा जी उचट गया था।

पर जब 'नए इकरार' (न्यू टेस्टामेंड) पर आया तो कुछ और ही असर हुआ। ईसा के 'गिरि-प्रवचन' का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसे मैंने हृदय में बसा लिया। बुद्धि ने 'गीता' के साथ उसकी तुलना की। 'जो तुझसे कुरता माँगे, उसे अंगरखा भी दे दे', 'जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायाँ गाल भी उसके सामने कर दे'—यह पढ़कर मुझे अपार आनंद हुआ। शामल भट्ट के छप्पय की याद आ गई। मेरे बालमन ने 'गीता', आर्नल्ड-कृत 'बुद्ध-चरित' और ईसा के वचनों का एकीकरण किया। मन को यह बात जाँच गई कि त्याग में धर्म है।

इस वाचन से दूसरे धर्माचार्यों की जीवनियाँ पढ़ने की इच्छा हुई। किसी मित्र ने कार्लाइल की 'विभूतियाँ और विभूति-पूजा' (हीरोज एंड हीरो-वर्शिप) पढ़ने की सलाह दी। उसमें से मैंने पैगंबर (हजरत मुहम्मद) का प्रकरण पढ़ा और मुझे उनकी महानता, वीरता और तपश्चर्या का पता चला।

मैं धर्म के इस परिचय से आगे न बढ़ सका। अपनी परीक्षा की पुस्तकों के अलावा दूसरा कुछ पढ़ने की फुरसत मैं नहीं निकाल सका। पर मेरे मन ने यह निश्चय किया कि मुझे धर्म-पुस्तकें पढ़नी चाहिए और सब मुख्य धर्मों का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

निर्बल के बल राम

बौद्धिक धर्मज्ञान के इस मिथ्यापन का अनुभव मुझे विलायत में हुआ। पहले भी मैं ऐसे संकटों में से बच गया था, पर उनका पृथक्करण नहीं किया जा सकता। कहना होगा कि उस समय मेरी उमर बहुत छोटी थी।

अब तो मेरी उमर २० साल की थी। मैं गृहस्थाश्रम का ठीक-ठीक अनुभव ले चुका था।

बहुत करके मेरे विलायत-निवास के आखिरी साल में, यानी १८९० के साल में पोर्टस्मथ में अन्नाहारियों का एक सम्मेलन हुआ था। उसमें मुझे और एक हिंदुस्तानी मित्र को निमंत्रित किया गया था। हम दोनों वहाँ पहुँचे। हमें एक महिला के घर ठहराया गया था।

पोर्टस्मथ खलासियों का बंदरगाह कहलाता है। वहाँ बहुतेरे घर दुराचारिणी स्त्रियों के होते हैं। वे स्त्रियाँ वेश्या नहीं होतीं, न निर्दोष ही होती हैं। ऐसी ही एक घर में हम लोग टिके थे। इसका यह मतलब नहीं कि स्वागत-समिति ने जान-बूझकर ऐसे घर ठीक किए थे।

रात पड़ी। हम सभा से घर लौटे। भोजन के बाद ताश खेलने बैठे। विलायत में अच्छे भले घरों में भी इस तरह गृहिणी मेहमानों के साथ ताश खेलने बैठती हैं। ताश खेलते हुए निर्दोष विनोद तो सब कोई करते हैं। लेकिन यहाँ तो वीभत्स विनोद शुरू हुआ। मैं नहीं जानता था कि मेरे साथी इसमें निपुण हैं। मुझे इस विनोद में रस आने लगा। मैं भी इसमें शरीक हो गया। वाणी में से क्रिया में उतरने की तैयारी थी। ताश एक तरफ धरे ही जा रहे थे। लेकिन मेरे भले साथी के मन में राम बसे। उन्होंने कहा, ''अरे, तुममें यह कलियुग कैसा! तुम्हारा यह काम नहीं है। तुम यहाँ से भागो।''

मेरा खयाल है कि पर-स्त्री को देखकर विकारवश होने और उसके साथ रंगरेलियाँ करने की इच्छा पैदा होने का मेरे जीवन में यह पहला प्रसंग था। उस रात मैं सो नहीं सका। अनेक प्रकार के विचारों ने मुझ पर हमला किया। घर छोड़ दूँ? भाग जाऊँ? मैं कहाँ हूँ? अगर मैं सावधान न रहूँ तो मेरी क्या गत हो? मैंने खूब चौकन्ना रहकर बरतने का निश्चय किया। यह सोच लिया कि घर तो नहीं छोड़ना है, पर जैसे भी बने, पोर्टस्मथ जल्दी छोड़ देना है। सम्मेलन दो दिन से अधिक चलने वाला न था। इसलिए, जैसाकि मुझे याद है, मैंने दूसरे ही दिन पोर्टस्मथ छोड़ दिया। मेरे साथी पोर्टस्मथ में कुछ दिन के लिए रुके।

उन दिनों मैं यह बिलकुल नहीं जानता था कि धर्म क्या है, ईश्वर क्या है, और वह हममें किस प्रकार काम करता है! उस समय तो लौकिक दृष्टि से मैं यही समझा कि ईश्वर ने मुझे बचा लिया है। पर मुझे विविध क्षेत्रों में ऐसे अनुभव हुए हैं। मैं जानता हूँ कि 'ईश्वर ने बचाया' वाक्य का अर्थ आज मैं अच्छी तरह समझने लगा हूँ।

बैरिस्टर के रूप में भारत वापसी

परीक्षाएँ पास करके मैं १० जून, १८९१ के दिन बैरिस्टर कहलाया। ११ जून को ढाई शिलिंग देकर इंग्लैंड के हाईकोर्ट में अपना नाम दर्ज कराया और १२ जून को हिंदुस्तान के लिए रवाना हुआ।

पर मेरी निराशा और मेरे भय की कोई सीमा न थी। मैंने अनुभव किया कि कानून तो मैं निश्चय ही पढ़ चुका हूँ, पर ऐसी कोई भी चीज मैंने सीखी नहीं है, जिससे मैं वकालत कर सकूँ।

'बैरिस्टर' कहलाना आसान मालूम हुआ, पर बैरिस्टरी करना मुश्किल लगा। कानून पढ़ा, पर वकालत करना न सीखा। कानून में मैंने कई धर्म-सिद्धांत पढ़े, जो अच्छे लगे। पढ़े हुए कानूनों में हिंदुस्तान के कानून का तो नाम तक न था। मैं यह जान ही न पाया कि हिंदू शास्त्र और इसलामी कानून कैसे हैं! न मैंने अरजी-दावा तैयार करना सीखा। मैं बहुत परेशान हुआ। फिरोजशाह मेहता का नाम मैंने सुना था। वे अदालतों में सिंह की तरह गर्जना करते थे। विलायत में उन्होंने यह कला कैसे सीखी होगी? दादाभाई नौरोजी के नाम एक पत्र मेरे पास था। उस पत्र का उपयोग मैंने देर में किया। ऐसे महान् पुरुष से मिलने जाने का मुझे क्या अधिकार था? आखिर मैंने उन्हें अपने पास का सिफारिशी-पत्र देने की हिम्मत की। मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझसे कहा था, ''तुम मुझसे मिलना चाहो और कोई सलाह लेना चाहो तो जरूर मिलना।'' पर मैंने उन्हें कभी कोई कष्ट नहीं दिया। किसी भारी कठिनाई के सिवा उनका समय लेना मुझे पाप जान पड़ा। इसलिए उक्त मित्र की सलाह मानकर दादाभाई के सम्मुख अपनी कठिनाइयाँ रखने की मेरी हिम्मत न पड़ी।

निराशा में तनिक सी आशा का पुट लेकर मैं काँपते पैरों 'आसाम' जहाज से बंबई के बंदरगाह पर उतरा। उस समय बंदरगाह में समुद्र क्षुब्ध था, इस कारण लांच (बड़ी नाव) में बैठकर किनारे पर आना पड़ा।

लज्जाशीलता-मेरी ढाल

'अन्नाहारी मंडल' की कार्यकारिणी में मुझे चुन तो लिया गया था और उसमें मैं हर बार हाजिर भी रहता था, पर बोलने के लिए जीभ खुलती ही न थी। डॉ. ओल्डफील्ड मुझसे कहते, ''मेरे साथ तो तुम काफी बात कर लेते हो, पर समिति की बैठक में कभी जीभ ही नहीं खोलते! तुम्हें नर-मक्खी की उपमा दी जानी चाहिए।'' यह बड़ी अजीब बात थी कि जब दूसरे सब समिति में अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करते, तब मैं गूँगा बनकर ही बैठा रहता था। मुझे बोलने की इच्छा न होती सो बात नहीं, पर बोलता क्या?

यह चीज बहुत समय तक चली। इस बीच समिति में एक गंभीर विषय उपस्थित हुआ। उसमें भाग न लेना मुझे अन्याय होने देने जैसा लगा। 'टेम्स आयर्न वर्क्स' के मालिक मि. हिल्स मंडल के सभापति थे। वे नीति के कट्टर हिमायती थे। कहा जा सकता है कि मंडल उनके पैसे से चल रहा था। समिति के कई सदस्य तो उनके ही आसरे निभ रहे थे। इस समिति में डॉ. एलिंसन भी थे। उन दिनों संतानोत्पत्ति पर कृत्रिम उपायों से अंकुश रखने का आंदोलन चल रहा था। डॉ. एलिंसन उन उपायों के समर्थक थे और मजदूरों में उनका प्रचार करते थे। मि. हिल्स को ये उपाय नीति-नाशक प्रतीत हुए। उनके विचार में 'अन्नाहारी मंडल' केवल आहार के ही सुधार के लिए नहीं था, बल्कि वह एक नीति-वर्धक मंडल भी था। इसलिए उनकी राय थी कि डॉ. एलिंसन के समान समाज-घातक विचार रखनेवाले लोग उस मंडल में नहीं रहने चाहिए। इसलिए डॉ. एलिंसन को समिति से हटाने का एक प्रस्ताव आया। मैं चर्चा में दिलचस्पी रखता था। डॉ. एलिंसन के कृत्रिम उपायों संबंधी विचार मुझे भयंकर मालूम हुए थे। उनके खिलाफ मि. हिल्स के विरोध को मैं शुद्ध नीति मानता था। मेरे मन में उनके प्रति बड़ा आदर था। उनकी उदारता के प्रति भी आदरभाव था। पर एक अन्नाहार-संवर्धक मंडल में से शुद्ध नीति के नियमों को न माननेवाले का, उसकी अश्रद्धा के कारण, बहिष्कार किया जाए, इसमें मुझे साफ अन्याय दिखाई दिया। मेरा खयाल था कि 'अन्नाहारी मंडल' के स्त्री-पुरुष-संबंध-विषयक मि. हिल्स के विचार उनके अपने विचार थे। मंडल के सिद्धांत के साथ उनका कोई संबंध न था। मंडल का उद्देश्य केवल अन्नाहार का प्रचार करना था; दूसरी नीति का नहीं। इसलिए मेरी यह राय थी कि दूसरी अनेक नीतियों का अनादर करनेवाले के लिए भी 'अन्नाहारी मंडल' में स्थान हो सकता है।

समिति में मेरे विचार के दूसरे सदस्य भी थे। पर मुझे अपने विचार व्यक्त करने का जोश चढ़ा था। उन्हें कैसे व्यक्त किया जाए, यह एक महान् प्रश्न बन गया। मुझमें बोलने की हिम्मत नहीं थी, इसलिए मैंने अपने विचार लिखकर सभापति के सम्मुख रखने का निश्चय किया। मैं अपना लेख ले गया। जैसाकि मुझे याद है, मैं उसे पढ़ जाने की हिम्मत भी नहीं कर सका। सभापतिजी ने उसे दूसरे सदस्य से पढ़वाया। डॉ. एलिंसन का पक्ष हार गया। अतएव, इस प्रकार के अपने इस पहले युद्ध में मैं पराजित पक्ष में रहा। पर चूँकि मैं उस पक्ष को सच्चा मानता था, इसलिए मुझे संपूर्ण संतोष रहा। मेरा कुछ ऐसा खयाल है कि उसके बाद मैंने समिति से इस्तीफा दे दिया था।

मेरा शरमीला स्वभाव दक्षिण अफ्रीका पहुँचने पर ही दूर हुआ। बिलकुल दूर हो गया, ऐसा तो आज भी नहीं कहा जा सकता। नए समाज के सामने बोलते हुए मैं सकुचाता हूँ। बोलने से बचा जा सके तो जरूर बच जाता हूँ। और यह स्थिति तो आज भी नहीं है कि मित्र-मंडली के बीच बैठा होने पर कोई खास बात कर ही सकूँ अथवा बात करने की इच्छा होती हो! अपने इस शरमीले स्वभाव के कारण मेरी फजीहत तो हुई, पर मेरा कोई नुकसान नहीं हुआ; बल्कि अब तो मैं देख सकता हूँ कि मुझे फायदा हुआ है। पहले बोलने का यह संकोच मेरे लिए दुःखकर था, अब वह सुखकर हो गया है। एक बड़ा फायदा तो यह हुआ कि मैंने शब्दों का मितव्यय करना सीखा। मुझे अपने विचारों पर काबू रखने की आदत सहज ही पड़ गई। मैं अपने-आपको यह प्रमाण-पत्र दे सकता हूँ कि मेरी जबान या कलम से बिना सोचे-विचारे या बिना तौले शायद ही कोई शब्द कभी निकलता है! याद नहीं पड़ता कि अपने भाषण या लेख के किसी अंश के लिए मुझे कभी शरमाना या पछताना पड़ा हो! मैं अनेक संकटों से बच गया हूँ, और मुझे अपना बहुत-सा समय बचा लेने का लाभ मिला है।

अनुभव ने मुझे यह भी सिखाया है कि सत्य के प्रत्येक पुजारी के लिए मौन का सेवन इष्ट है। मनुष्य जाने-अनजाने भी प्रायः अतिशयोक्ति करता है, कम बोलनेवाला बिना विचारे नहीं बोलेगा। वह अपने प्रत्येक शब्द को तौलेगा।

ईश्वर-इच्छा सर्वोपरि

''खबर नहीं इस जुग में पल की
समझ मन! को जाने कल की?''

मुकदमे के खत्म होने पर मेरे लिए प्रिटोरिया में रहने का कोई कारण न रहा। मैं डरबन गया। वहाँ पहुँचकर मैंने हिंदुस्तान लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ मुझे बिना मान-सम्मान के जाने दें, यह संभव न था। उन्होंने मेरे निमित्त से 'सिडन हैम' में एक सामूहिक भोजन का आयोजन किया। पूरा दिन वहीं बिताना था।

मेरे पास कुछ अखबार पड़े थे। मैं उन्हें पढ़ रहा था। एक अखबार के एक कोने में मैंने एक छोटा सा संवाद देखा। उसका शीर्षक था— 'इंडियन फ्रेंचाइज' यानी हिंदुस्तानी मताधिकार। इस संवाद का आशय यह था कि हिंदुस्तानियों को नेटाल की धारासभा के लिए सदस्य चुनने को जो अधिकार है, वह छीन लिया जाए। धारासभा में इससे संबंध रखनेवाले कानून पर बहस चल रही थी। मैं इस कानून से अपरिचित था। भोज में सम्मिलित सदस्यों में किसी को भी हिस्दुस्तानियों का अधिकार छीननेवाले इस बिल की कोई खबर न थी।

मैंने अब्दुल्ला सेठ से पूछा। उन्होंने कहा, ''इन बातों को हम क्या जानें? व्यापार पर कोई संकट आवे तो हमें उसका पता चलता है। देखिए

न, 'ऑरेंज फ्री स्टेट' में हमारे व्यापार की जड़ उखड़ गई। उसके लिए हमने मेहनत की, पर हम तो अपंग ठहरे! अखबार पढ़ते हैं तो उसमें भी सिर्फ भाव-ताव की बातें ही समझ पाते हैं। कानूनी बातों का हमें क्या पता चले? हमारे आँख-कान तो हमारे गोरे वकील हैं।''

मैंने पूछा, ''पर यहाँ पैदा हुए और अंग्रेजी जाननेवाले इतने सारे नौजवान हिंदुस्तानी यहाँ हैं, वे क्या करते हैं?''

अब्दुल्ला सेठ ने माथे पर हाथ रखकर कहा, ''अरे भाई, उनसे हमें क्या मिल सकता है? वे बेचारे इसमें क्या समझें? वे तो हमारे पास भी नहीं फटकते। और सच पूछो तो हम भी उन्हें नहीं पहचानते। वे ईसाई हैं, इसलिए पादरियों के पंजे में हैं और पादरी सब गोरे हैं जो सरकार के अधीन हैं!''

मेरी आँखें खुल गईं। इस समाज को अपनाना चाहिए। क्या ईसाई धर्म का यही अर्थ है? वे ईसाई हैं, इससे क्या हिंदुस्तानी नहीं रहे? और परदेशी बन गए?

किंतु मुझे तो वापस स्वदेश जाना था, इसलिए मैंने उपर्युक्त विचारों को प्रकट नहीं किया। मैंने अब्दुल्ला सेठ से कहा, ''लेकिन अगर यह कानून इसी तरह पास हो गया तो आप सबको बड़ी मुश्किल में डाल देगा। यह तो हिंदुस्तानियों की आबादी को मिटाने का पहला कदम है। इसमें हमारे स्वाभिमान की हानि है।''

दूसरे मेहमान इन चर्चा को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उनमें से एक ने कहा, ''मैं आपसे सच बात कहूँ? अगर आप इस स्टीमर में न जाएँ और एकाध महीना रुक जाएँ तो आप जिस तरह कहेंगे, हम लड़ेंगे।''

दूसरे सब एक साथ बोल उठे—

''यह बात सच है। अब्दुल्ला सेठ, आप गांधी भाई को रोक लीजिए।''

मैंने मन में लड़ाई की रूपरेखा तैयार कर ली। मताधिकार कितनों को प्राप्त है, सो जान लिया। और फिर मैंने एक महीना रुक जाने का निश्चय किया।

इस प्रकार ईश्वर ने दक्षिण अफ्रीका में मेरे स्थायी निवास की नींव डाली और स्वाभिमान की लड़ाई का बीज रोपा गया।

नेटाल में बस गया

पहला काम तो यह सोचा गया कि धारासभा के अध्यक्ष को ऐसा तार भेजा जाए कि वे बिल पर अधिक विचार करना मुल्तवी कर दें। इसी आशय का तार मुख्यमंत्री सर जॉन रॉबिंसन को भेजा और दूसरा दादा अब्दुल्ला के मित्र के नाते मि. एस्कंब को भेजा गया। इस तार के जवाब में अध्यक्ष का तार मिला कि बिल की चर्चा दो दिन तक मुल्तवी रहेगी। सब खुश हुए।

सब जानते थे कि यही नतीजा निकलेगा, पर कौम में नवजीवन का संचार हुआ। सब कोई यह समझे कि हम एक कौम हैं, केवल व्यापार-संबंधी अधिकारों के लिए ही नहीं, बल्कि कौम के अधिकारों के लिए भी लड़ना हम सबका धर्म है।

उन दिनों लॉर्ड रिपन उपनिवेश-मंत्री थे। उन्हें एक बहुत बड़ी अरजी भेजने का निश्चय किया गया। इस अरजी पर यथासंभव अधिक-से-अधिक लोगों की सहियाँ लेनी थीं। यह काम एक दिन में तो हो ही नहीं सकता था। अतः स्वयंसेवक नियुक्त हुए और सबने काम निबटाने का जिम्मा लिया।

अरजी लिखने में मैंने बहुत मेहनत की। जो साहित्य मुझे मिला, सो सब मैं पढ़ गया। हिंदुस्तान में हम एक प्रकार के मताधिकार का उपभोग करते हैं, सिद्धांत की इस दलील को और हिंदुस्तानियों की आबादी कम है, इस व्यावहारिक दलील का मैंने केंद्र बिंदु बनाया।

अरजी पर दस हजार सहियाँ हुईं। एक पखवाड़े में अरजी भेजने लायक सहियाँ प्राप्त हो गईं। इतने समय में नेटाल में दस हजार सहियाँ प्राप्त की गईं, इसे पाठक छोटी-मोटी बात न समझें। सहियाँ समूचे नेटाल से प्राप्त करनी थीं। लोग ऐसे काम से अपरिचित थे। निश्चय यह था कि सही करनेवाला किस बात पर सही कर रहा है, इसे जब तक वह समझ न ले, तब तक सही न ली जाए। इसलिए खास तौर पर स्वयंसेवकों को भेजकर ही सहियाँ प्राप्त की जा सकती थीं।

अरजी गई। उसकी एक हजार प्रतियाँ छपवाई थीं। उस अरजी के कारण हिंदुस्तान के आम लोगों को नेटाल का पहली बार परिचय हुआ। मैं जितने अखबारों और सार्वजनिक नेताओं के नाम जानता था, उतनों को अरजी की प्रतियाँ भेजीं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने उस पर अग्रलेख लिखा और हिंदुस्तानियों की माँग का अच्छा समर्थन किया। विलायत में भी अरजी की प्रतियाँ सब पक्षों के नेताओं को भेजी गई थीं। वहाँ लंदन के 'टाइम्स' का समर्थन प्राप्त हुआ। इससे आशा बँधी कि बिल मंजूर न हो सकेगा।

अब मैं नेटाल छोड़ सकूँ, ऐसी मेरी स्थिति नहीं रही। लोगों ने मुझे चारों तरफ से घेर लिया और नेटाल में ही स्थायी रूप से रहने का अत्यंत आग्रह किया। मैंने अपनी कठिनाइयाँ बताईं। मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि मुझे सार्वजनिक खर्च पर नहीं रहना चाहिए। मुझे अलग घर बसाने की आपश्यकता जान पड़ी। उस समय मैंने यह माना था कि घर भी अच्छा और अच्छी बस्ती में लेना चाहिए।

मैंने सोचा कि दूसरे बैरिस्टरों की तरह मेरे रहने से हिंदुस्तानी समाज की इज्जत बढ़ेगी। मुझे लगा कि ऐसा घर मैं साल में ३०० पौंड के खर्च के बिना चला ही नहीं सकूँगा। मैंने निश्चय किया कि इतनी रकम की वकालत की गारंटी मिलने पर ही मैं रह सकता हूँ, और वहाँ रहनेवालों को इसकी सूचना दे दी।

इस चर्चा का परिणाम यह निकला कि कोई बीस व्यापारियों ने मेरे लिए वर्ष का वर्षासन बाँध दिया। इसके उपरांत दादा अब्दुल्ला विदाई के समय मुझे जो भेंट देनेवाले थे, उसके बदले उन्होंने मेरे लिए आवश्यक फर्नीचर खरीद दिया, और मैं नेटाल में बस गया।

सा
अ



साहित्य में जीवित गांधी

• सुमीता कुकरेती

समूचे भारतीय उपमहाद्वीप, विशेषकर भारतवर्ष की जातीय समृतियों में गांधी की उपस्थिति आज भी बरकरार है। इसका कारण मोहनदास करमचंद गांधी का अद्वितीय विलक्षण व्यक्तित्व है। उनका रचनात्मक व्यक्तित्व उनके द्वारा किए गए महान् कार्यों, उनके समय की जरूरतों को ध्यान में रखकर दिए गए उनके विचारोत्तेजक व्याख्यानों और नियमित रूप से लिखे गए उनके आलेखों से मिलकर बना है। वे भारतभूमि पर १५० वर्ष पहले प्रकट हुए थे, लेकिन आज भी ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, व्यापार-उद्योग, दर्शन, खेल, अर्थतंत्र, राजनीति, शिशु-स्त्री-पुरुष यानी किसी भी चीज का नाम लो; उस पर गांधी के विचार या उनके जीवन-प्रसंग या उनके संदर्भ में प्रस्तुत विद्वानों के विचार हमें प्रामाणिक रूप से मिल जाते हैं। इस मायने में गांधी का नाम और काम 'गूगल' जैसे 'सर्च इंजन' सरीखा है। इनसानी सभ्यता को गति और अर्थ देनेवाले दो प्रमुख घटक—संस्कृति और कला-क्षेत्र पर 'गांधीत्व' दिखता है। संस्कृति धर्म, अध्यात्म, नैतिक और मानवीय मूल्यों से मिलकर निर्मित होती है, इनके स्मृति-पुंजों में तो गांधी हैं ही; साहित्य सरीखी ललित कला तथा सिनेमा, रंगमंच, संगीत, नृत्य, चित्रकला जैसी प्रदर्शनकारी कलाओं में भी गांधी-स्मृतियाँ वर्तमान हैं।

आज दुनिया भर में जो निरर्थक कोलाहल मचा हुआ है, उससे निजात पाने के लिए भारत ही नहीं, समूची दुनिया गांधी-दर्शन की ओर आशा से देख रही है। वे 'लाइटहाउस' की तरह दिखाई दे रहे हैं। ऐसा लाइटहाउस, जो डूबते हुए जहाजों को सही रास्ता दिखाकर सागर से पार लगा देगा। यहाँ हम संक्षेप में हिंदी साहित्य में गांधी की स्मृतियाँ, असर और उपस्थिति को देखने का उपक्रम करेंगे।

भारतीय परिदृश्य पर गांधी सूर्य की तरह उदित हुए। १९२०-२१ में प्रथम सत्याग्रह के दौरान यह घटना घटित हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से १९२१ से लेकर सन् १९४५ तक का समय गांधी का सक्रिय समय है। वैसे तो आज भी गांधी परोक्ष-अपरोक्ष रूप से कला, साहित्य, संस्कृति, सामाजिकी, आर्थिकी और राजनीति में बार-बार झलक जाते हैं, लेकिन २०वीं सदी के पूर्वार्ध में उनकी यह उपस्थिति साकार और प्रत्यक्ष दिखाई देती है। उनका विराट् और बहुआयामी व्यक्तित्व, अर्जित उपलब्धियाँ, अपने कर्मों द्वारा सिखाए गए उनके आदर्श, समाज और राजनीति से जुड़े कार्य तथा जीवन और रचनात्मक क्षेत्रों में उनके बोए हुए मानवीय मूल्य तथा जीवन के विविध पक्षों से जुड़ी नैतिक क्रियाओं में गांधी बार-बार सामने आते हैं।



पहली से आठवीं कक्षा तक की प्रतिष्ठित पाठ्य-पुस्तक शृंखला 'नई उमंग' का संपादन। 'हिंदी भाषा और साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास' का सहलेखन, 'कबीर काव्य में कालबोध' पुस्तक चर्चित। दि.वि. से मध्यकालीन काव्य पर एम.फिल., पी-एच.डी.। दिल्ली प्रशासन के शिक्षा विभाग से संबद्ध।

हिंदी साहित्य में गांधी के विचार, व्यवहार और व्यक्तित्व की अनेक छवियाँ मौजूद हैं। इस दृष्टि से बड़े साहित्यकारों में प्रेमचंद का नाम लिया जा सकता है। उनके उपन्यासों 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'गबन' और 'नमक का दरोगा', 'समरयात्रा' जैसी कहानियों में गांधीवादी व्यवहार और विचार जीवंत हो गए हैं। प्रेमचंद ने हृदय-परिवर्तन, सत्याग्रह, आजादी की लड़ाई में सत्य, अहिंसा का शस्त्र के रूप में प्रयोग, आश्रमों की स्थापना द्वारा मनुष्य के चरित्र में सुधार इत्यादि प्रस्तावित किए हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि का नायक' रेणु के 'मैला आँचल' का बाबादास में गांधी या प्रेमचंद के समकालीन और परवर्ती रचनाकारों—विश्वंभर नाथ कौशिक, सुदर्शन, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा और जैनेंद्र जैसे रचनाकारों के साथ-साथ मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी, भवानीप्रसाद मिश्र, सुमित्रानंदन पंत और हरिवंश राय बच्चन सरीखे कवियों के साहित्य पर गांधी और उनके विचार साक्षात् दिखाई देते हैं। गांधी के निस्स्वार्थ योगदान के बारे में हरिवंश राय बच्चन कहते हैं—

एक दिन इतिहास पूछेगा
कि तुमने जन्म गांधी को दिया था,
जिस समय अधिकार, शोषण, स्वार्थ

हो निर्लज्ज, हो नि:शंक, हो निर्द्वंद्व
सद्य: जगे, सँभले राष्ट्र में घुन से लगे
जर्जर उसे करते रहे थे,
तुम कहाँ थे? और तुमने क्या किया था?

गांधी होने के क्या अर्थ हैं, इसे दिनकर की आँख से देखिए—

गांधी तूफान के पिता
और बाजों के भी बाज थे
क्योंकि वे नीरवता की आवाज थे।

गांधी की सोच और विचार प्रगतिशील थे। प्रत्येक मौलिक व्यक्ति की तरह गांधी के निंदक कभी कम नहीं रहे। उनके निंदकों ने उन्हें प्रतिक्रियावादी, दक्षिणपंथी पोंगापंथी इत्यादि कहा था। वे गांधी को विज्ञान-विरोधी मानते थे, जबकि गांधी विज्ञान-विरोधी नहीं थे—

कौन कहता हे कि बापू शत्रु थे विज्ञान के?
वे मनुज से मात्र इतनी बात कहते थे,
रेल, मोटर या कि पुष्पक-यान, चाहे जो रचो पर
सोच लो, आखिर तुम्हें जाना कहाँ है।

गांधी मात्र इतना चाहते थे कि विज्ञान का सही दिशा में सदुपयोग होना चाहिए। दिनकर ने ठीक ही कहा कि गांधी देशकाल की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर थे—

एक देश में बाँध संकुचित करो न इसको,
गांधी का कर्तव्य-क्षेत्र दिक् नहीं, काल है।
गांधी हैं कल्पना जगत् के अगले युग की,
गांधी मानवता का अगला उद्विकास हैं।

गांधी को एक वर्ग द्वारा उनके समय में ठीक से नहीं समझा गया—

वे भावी मानवता के हैं आदर्श एक,
असमर्थ समझने में है उनको वर्तमान,
वर्ना सच्चाई और अहिंसा की प्रतिमा
यह जाती दुनिया
से होकर
लहूलुहान!

बच्चन की उपरोक्त पंक्तियों का वैचारिक पल्लवन दिनकर के यहाँ मिलता है—

बापू! तुमने होम दिया जिसके निमित्त अपने को,
अर्पित सारी भक्ति हमारी उस पवित्र सपने को।
क्षमा, शांति, निर्भीक प्रेम को शतशः प्यार हमारा,
उगा गए तुम बीज, सींचने का अधिकार हमारा।
निखिल विश्व के शांति-यज्ञ में निर्भय हमीं लगेंगे,
आएगा आकाश हाथ में, सारी रात जगेंगे।

गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी गांधी को ऐसा युगपुरुष मानते हैं, जिसके इशारों पर युग करवट बदलता है—

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख
युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की
खींचते काल पर अमिट रेख।

हिंदी साहित्य पर गांधी सदी भर से छाए हुए हैं। मुक्तक ही नहीं, उन पर प्रबंध भी लिखे गए हैं। कविता के अलावा गद्य-विधाओं—रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, नाटक, निबंध और कथा-साहित्य भी गांधी के प्रभामंडल से दमक रहा है।

गांधी ने ऐसा जीवन जिया है कि उनका विराट् व्यक्तित्व एक आदर्श और उदात्त साहित्य-नायक के रूप में निर्मित होता चला गया। डॉ. नगेंद्र के अनुसार—उनके व्यक्तित्व से जुड़े निजी गुणों ने हिंदी साहित्य को खासा प्रभावित किया है—''उनके व्यक्तित्व में कठोर इंद्रिय-निग्रह द्वारा अर्जित आत्मिक शक्ति, त्याग एवं अपरिग्रह, सत्य-निष्ठा, आत्म-बलिदान, अहं का समाजीकरण, राग का उन्नयन आदि अनेक तप:पूत गुण थे, जिनका देश के अधिकांश प्रबुद्ध कवियों की चेतना पर अनिवार्य प्रभाव पड़ा।'' हिंदी में प्रसाद और निराला—इन दो महत्त्वपूर्ण अपवादों को छोड़कर, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, महादेवी, सियारामशरण गुप्त, नवीन, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र, अंचल, भवानीप्रसाद मिश्र आदि अनेक कवि पूरे दो दशकों तक उनकी व्यक्ति-गरिमा का शत-शत कविताओं में स्तवन कर अपनी वाणी को पवित्र करते रहे। उन्होंने श्रद्धाभरित प्रगीत लिखे, लंबी विचार-कविताएँ लिखीं, जिनमें से अनेक कृतियाँ कलात्मक दृष्टि से निश्चय ही मूल्यवान हैं। कुछ महाकाव्यों और खंडकाव्यों की भी रचना हुई, जैसे पं. गोकुलचंद शर्मा का 'गांधी गौरव', सोहनलाल द्विवेदी का 'सेवा ग्राम', रघुवीरशरण मित्र का 'जन-नायक' आदि। किंतु इनमें विषय की गरिमा का अभाव है। सुमित्रानंदन पंत के विशाल ग्रंथ 'लोकायतन' में गांधी एक जीवंत पात्र के रूप में विरचित होते हैं, किंतु वहाँ भी कवि गांधी के व्यक्तित्व को उसकी संपूर्णता में मूर्त नहीं कर सका। गांधी का बलिदान वर्तमान युग की सबस प्रबल घटना है, जो महाकाव्य की पूर्ण गरिमा से मंडित है। रवींद्रनाथ ने अपने एक लेख में महाकाव्य के स्वरूप का निर्वचन इस प्रकार किया है—

''इसी प्रकार मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब तक महापुरुष कवि के कल्पना-राज्य पर अधिकार पा जाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर, उस परमपुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए, कविभाषा का मंदिर निर्माण करते हैं। उस मंदिर की भित्ति पृथ्वी के अंतर्देश में रहती है और उसका शिखर मेघों को भेदकर आकाश में उठता है। उस मंदिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देव-भाव से मुग्ध और उसकी पुण्य किरणों से अभिभूत होकर, नाना दिग्देशों से आ-आकर लोग उसे प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।''

टैगोर गांधी को महात्मा कहकर पुकारते थे और गांधी टैगोर को गुरुदेव मानते थे। यह राजनीति और साहित्य का आपसी सामंजस्य,

सम्मान, सद्भाव और संतुलन था। बांग्ला कविता के साथ हिंदी कविता में गांधी एक महाकाव्य चरित नायक की तरह स्थापित हुए। असल में उनको कर्मशील जीवन ही नहीं, उनका बलिदान भी महान् नायकों की याद दिलाती है—'मेरा विश्वास है कि आधुनिक विश्व के इतिहास में न महात्मा गांधी से अधिक महाकाव्योचित चरित-नायक हुआ है और न उनके बलिदान से अधिक महाकाव्योचित घटना ही घटी है। किंतु इस प्रकार के महाकाव्य की रचना हिंदी में अभी तक नहीं हुई है। वास्तव में गांधी के व्यक्तित्व को, जो परंपरा सिद्ध रम्य-उदात्त चरित्र से भिन्न हैं, कला में ढालने के लिए एक विशेष प्रकार की काव्य-प्रतिभा की अपेक्षा है। परंपरागत काव्य-नायक के रमणीय चरित्र से भिन्न गांधी के तपोनिष्ठ व्यक्तित्व के अनगढ़ तत्त्वों से कला-प्रतिमा का निर्माण असामान्य प्रतिभा के द्वारा ही संभव है। गांधी के संदर्भ में 'सौंदर्य' की अपने प्रचलित अर्थ में लालित्य के अर्थ में, सार्थकता नहीं रह जाती। जिन कवियों ने गांधी की खादी की कोपीन पर रेशम से फूल काढ़ने का प्रयास किए हैं, उनकी रचनाएँ हास्यास्पद बन गई हैं। बुद्ध के व्यक्तित्व की वह जन्मजात आभा, जिसने उसे एक सहज कलात्मक परिवेश प्रदान कर दिया था, गांधी के व्यक्तित्व में कम-से-कम सामान्य कलाकार के लिए सुलभ नहीं थी। महान् रचना के लिए आभिजात्यवादी आलोचक काव्यवस्तु की गरिमा पर बल देता है। इसकी मान्यता है कि महान् काव्यवस्तु में ऐसी घटनाओं का समावेश होना चाहिए, जिनका प्रभाव देश और काल दोनों की दृष्टि से दिगंतव्यापी हो और जो स्थायी नैतिक मूल्यों के द्वारा अनुशासित हों। इधर स्वच्छंदतावादी आलोचक का आकर्षण लोकातिक्रांत रूपों के प्रति रहता है।' गांधी कुलीनतावादी, स्वच्छंदतावादी और यथार्थवादियों को समान रूप से आकृष्ट करते रहे हैं।



गांधी का जीवन ऐसी महागाथा है, जो घटना-संकुल है। ये घटनाएँ जहाँ कविता का विषय बनीं, वहीं बड़े लेखकों ने उनके जीवन चरित लिखने का रुझान प्रदर्शित किया। कई प्रसिद्ध नाटककारों ने उनके कर्मठ जीवन पर आधारित महत्त्पूर्ण नाटक लिखे, जिसमें सेठ गोविंददास के 'राम से गांधी' और 'गांधी युग पुराण' उल्लेखनीय हैं। उनके जीवन पर आधारित लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'मृत्युंजय' नाटक उस दौर में लिखा श्रेष्ठ नाटक है। गांधी की पगचाप आज भी हिंदी साहित्य में गूँज रही है। गांधी ने सत्य, अहिंसा, सर्वोदय जैसे सिद्धांत दिए। जिनका असर प्रेमचंद जैसे आदर्शोन्मुख, यथार्थवादी कथाकार व्यक्तिवादी जैनेंद्र के साथ ही अतियथार्थवादी पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रभावित कर गया—प्रेमचंद पर गांधी का प्रभाव प्रायः अंत तक बना रहा। उनके अनेक अमर पात्र 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर, 'रंगभूमि' का सूरदास और 'गोदान' का होरी भी अकसर गांधी की भाषा बोलते हैं। उग्र के नाटक के 'ईसा' गांधी के ही प्रतिरूप हैं। शैव आनंदवाद में अटूट आस्था के कारण जयशंकर प्रसाद ने बुद्ध के समान गांधी के भी प्रभाव से दूर रहने का सचेष्ट प्रयास किया। किंतु फिर भी उनके कुछ पात्र जैसे राज्यश्री आदि गांधी के रंग में पूरी तरह रँगे हुए हैं।

इसी प्रकार, गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों की, जिनको कि बाद में उन्होंने सर्वोदय में समाहित कर दिया था, हिंदी की सैकड़ों कहानियों, उपन्यासों, नाटकों और कथाकाव्यों में विस्तार से चर्चा हुई है। अनेक कृतियों की कथावस्तु की संरचना ही इनके आधार पर हुई है—यहाँ तक कि प्राचीन कथानक भी इनसे अछूते नहीं रहे। 'साकेत' के नागरिक राम-वन-गमन के अवसर पर बाकायदा 'सत्याग्रह' करते हैं। 'कामायनी' की श्रद्धा तकली का प्रयोग करती है और हिंसा का सतर्क विरोध करती है। सर्वोदय-सिद्धांत के प्रायः सभी कार्यक्रमों—अछूतोद्धार, नारी-मुक्ति, ग्राम-सुधार, कुटीर-उद्योग-विकास आदि का समावेश हिंदी के अनेक साहित्य ग्रंथों में प्रत्यक्ष रूप से हुआ है। उदाहरण के लिए, मैथिलीशरण गुप्त के पद्य-नाटक 'अनघ्य' में अहिंसा का प्रतिपादन है। रामनरेश त्रिपाठी के खंडकाव्य 'पथिक' और 'स्वप्न' में राष्ट्रीय संग्राम के खंडचित्र हैं। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक 'रक्षा-बंधन' तथा 'स्वप्न भंग' हिंदू-मुसलिम एकता की भावना का समर्थन करते हैं। सियारामशरण गुप्त ने अपने काव्य तथा गद्य-कृतियों में नारी-मुक्ति, हरिजन-समस्या तथा अहिंसा आदि का प्रतिपादन किया है और मैथिलीशरण गुप्त की एक परवर्ती रचना 'अजित' स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत करती है। असल में गांधी का जीवन सकर्मक होने के कारण बेहद रचनाशील था। उनकी नजर में कला की बजाय कल्याण की भावना महत्त्वपूर्ण थी। यह सहज जीवनशैली का चरम उदाहरण है। सहजता की बात करना आसान है, लेकिन उसे आचरण में उतारना कठिन है। महान् व्यक्ति ही ऐसा कर पाते हैं। गांधी सौंदर्य को सत्य का प्रतिरूप मानते रहे और सत्य से ही मनुष्य मात्र के कल्याण का रास्ता उन्होंने दिखाया। भारत की कोई ऐसी भाषा नहीं होगी, जिसके साहित्य पर गांधी के इस संक्रमणशील और सम्मोहक व्यक्तित्व का असर नहीं पड़ा हो। आज हिंदी साहित्य की समकालीन पीढ़ी उन्हें फिर से अपने नजदीक पा रही है। यह भी गांधी की अक्षुण्ण प्रासंगिकता का प्रमाण है।

सा/अ

ए-३/१५, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९९१०८४५४५६



लोकगीतों में गांधी

● विद्या विंदु सिंह



लोकसाहित्य की आधिकारिक लेखिका। कहानी, उपन्यास लोक-साहित्य, नाटक, निबंध, बाल-साहित्य आदि विषयों पर शताधिक कृतियाँ तथा अनेक संपादित कृतियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केंद्रों से निरंतर प्रसारण। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं पुरस्कार।

मोहनदास करमचंद गांधी नाम का व्यक्ति भारतभूमि पर अवतरित हुआ और अपने सत्याग्रह से देश को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने का जो संकल्प लिया, यह एक अद्‌भुत घटना लगती है; कुछ लोगों को शायद अविश्वसनीय लगता है किंतु यह बात पूरा विश्व स्वीकार कर चुका है कि गांधी जैसे व्यक्ति का संसार में जन्म लेना भी एक चमत्कार है। महात्मा गांधी ने जो स्वराज्य-स्वप्न रामराज्य के रूप में देखा था, वह आज सबसे अधिक प्रासंगिक है।

स्वतंत्रता की चेतना या भारतीय नवजागरण की आकांक्षा जगाने में जितना लिखित साहित्य का योगदान है, उससे कम वाचिक साहित्य का नहीं। वाचिक साहित्य की यह भावधारा वेदों से लेकर निरंतर अविच्छिन्न गति से प्रवाहित है। इनमें हमारे सांस्कृतिक गौरव-बोध के और राजनैतिक चेतना के दर्शन स्थल-स्थल पर होते हैं। लोकगीतों में इतिहास और संस्कृति के सजीव चित्र हैं। ये इतिहास पुरुषों, चरित नायकों की महिमा सदियों से गाते आ रहे हैं।

लोक का मानना है कि आधुनिक समाज में राजनैतिक चेतना का सूत्रपात गांधीजी के स्वतंत्रता आंदोलन से होता है। लोक-मानस में गांधीजी का अत्यधिक प्रभाव तत्कालीन लोकगीतों से प्रमाणित होता है। लोकगायकों ने अपनी जोशीली वाणी में गांधी का संदेश घर-घर पहुँचाया। भारत माता की दुःखी अवस्था का मार्मिक चित्र गीतों (सोहर गीत) में गा-गाकर देशप्रेम की भावना का ज्वार उठाया—

गंगा रे जमुनवाँ कै धारि, नयनवाँ से नीर बहै,
फूटिगै भारतियन कै भागि, भारतमाता रोय रहीं।

(गंगा-जमुना की धारा नयनों से नीर बनकर बह रही है। भारतीयों का भाग्य फूट गया, देश परतंत्र हो गया, भारतमाता रो रही है।)

जन-जागरण के भाव 'सुराजी' गारी गीतों में प्रायः ही देखने को मिलते हैं—

भारतवासी सोवत बाट्या, उठि परा होइगै सबेरा कि वाह वाह।
सोवत देखि के भारतवासिन, आय रहिन देसवा म गोरा कि वाह वाह।
हीरा, मोती, कनक, जवाहिर, लूटि लिहिन भरि भरि बोरा कि वाह वाह।
सब धन लूटि लूटि देसवा कै, लइगै बिलाइत की ओरियाँ कि वाह वाह।
बात कहे पर मारन धावै, बहुतै करैं बरजोरा कि वाह वाह।
ऐसनि दसा देखि देसवा कै, गान्ही बाबा मचाये हैं सोरवा कि वाह वाह।

(हे भारतवासी! सो रहे हो, उठो, सबेरा हो गया। भारतवासियों को सोता देखकर देश में गोरे अंग्रेज आ गए। हीरा-मोती, सोना, जवाहरात लूटकर बोरों में भर-भरकर उठा ले गए। देश का सब धन लूटकर बिलायत ले गए, बात करने पर मारने को दौड़ते हैं, बहुत बरजोरी करके सताते हैं। देश की ऐसी दशा देखकर महात्मा गांधी ने शोर मचा दिया है, सबको जगा रहे हैं।)

अपने त्याग, अपरिग्रह और अंहिसा के बल पर गांधी ने लोकमानस को इतना प्रभावित किया कि उन्हें ईश्वर का अवतार तक लोकगीतों में मान लिया गया। लोकगीतों में महात्मा गांधी को भगवान् का अवतार मानकर उनकी तुलना राम और कृष्ण से की गई है—

अवतार महात्मा गांधी कै, भारत कै भार उतारै काँ,
सिरीराम के हाथे म धनुहा बान, सिरीकृस्न के हाथे मुरली,
गान्हीं के हाथे म चरखा बा, भारत कै भार उतारै काँ।
सिरी राम के साथे बानर सेना, और लखन यस भइया,
सिरीकृस्न के साथे ग्वाल बाल अउर बलदाऊ भइया,
गान्ही के साथे जनता बा और जवाहर लाल, पटेल
सिरी राम मारे रावण काँ, सिरी किसन मारे कंसा काँ,
गांधीजी जग माँ परगट भये, अन्यायी राज हटावै काँ।

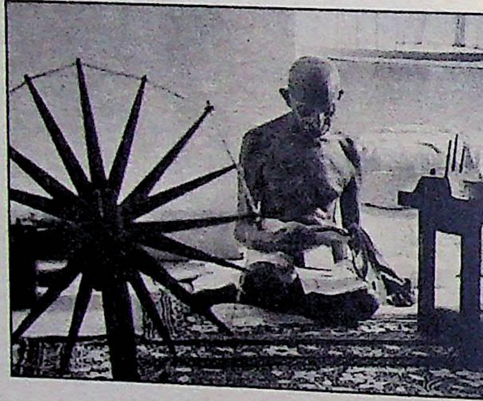
(महात्मा गांधी का अवतार भारत का भार उतारने के लिए हुआ। श्रीराम के हाथ में धनुष-बाण और श्रीकृष्ण के हाथ में वंशी थी। गांधी के हाथ में चरखा है। श्रीराम के साथ वानर सेना और लक्ष्मण थे। श्रीकृष्ण के साथ ग्वाल-बाल तथा बलराम थे। गांधी के साथ जनता है और जवाहर, पटेल हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण ने रावण और कंस रूपी अन्यायी राजा को मारा, गांधीजी संसार में प्रकट हुए हैं अन्यायी राज्य हटाने के लिए।)

चरखा वियोगिनी का संबल था। परदेश जाते समय पति उसे चरखा

देकर जाता है। उसी चरखे को गांधीजी ने राष्ट्रीयता-बोध और स्वावलंबन के लिए प्रचारित किया, अतः वह लोकप्रिय बन गया। चरखे का तार न टूटने पाए, वह लोक की आन बन गया—

मोरे चरखे क टूटै न तार, चरखवा चालू रहे।
यहि चरखा से सूत कतायो, सूत काति कै खादी बनायो।
यहि खादी कै रखियो लाजि, चरखवा चालू रहे।
ई चरखा गांधी बाबा चलायेन, खादी बुना धोती कुरता बनवाइन,
गांधी टोपी कै रखियो लाजि, चरखवा चालू रहे।
गांधी बनिगे देस दुलहवा, मांगै दहेज मा गांधी सुरजवा,
दुलहिन बनी सरकार, चरखवा चालू रहे।
गांधी बाबा कै ई है हथियार, चरखा, लकुटिया,
लँगोटिया खादी क्यार,
ई चरखा कै रखियो लाजि, चरखवा चालू रहे।

(मेरे चरखे का टूटे न तार, चरखा चालू रहे। इस चरखा से सूत कताया, सूत कातकर खादी बनाया। खादी की रखना लाज, चरखा चालू रहे। यह चरखा गांधी बाबा ने चलाया, खादी बुना, धोती-कुरता बनवाया। गांधी टोपी की रखना लाज, चरखा चालू रहे। गांधी बन गए देश दुलहा, माँगें दहेज में गांधी स्वराज्य। दुलहिन बनी सरकार, चरखा चालू रहे। गांधी बाबा के हथियार हैं चरखा, लाठी, लँगोटी। खादी की चरखा की रखना लाज, चरखा चालू रहे।)



गांधीजी का स्वराज्य और चरखा आंदोलन का गहरा प्रभाव लोकगीतों (नकटा गीत) में अभिव्यक्त हुआ है—

अपने हाथे चरखा चलउबै, हमार कोउ का करिहै,
गांधी बाबा से लगन लगउबै, हमार कोउ का करिहै।
सासू ननद चाहैं मारैं गरियावैं,
चरखा कातब नाहीं छोड़बै, हमार कोउ का करिहै।
भनन-भनन भन्नाय चरखवा,
गुंडिन सूत हम कतबै, हमार कोउ का करिहै।
एही सूत कै खद्दर बनिहै,
रँगि रँगि खूब पहिरबै, हमार कोउ का करिहै।

(अपने हाथ से चरखा चलाऊँगी, मेरा कोई क्या कर लेगा? गांधी बाबा से लगन लगाऊँगी, मेरा कोई क्या कर लेगा? सास-ननद चाहे मारें या गाली दें, चरखा कातना नहीं छोड़ूँगी। भनन-भनन चरखा बोलेगा। कई-कई गुंडी सूत कातूँगी, इसी सूत से खद्दर बनेगा, रँग-रँगकर खूब पहनूँगी।)

चरखा के प्रति प्रेम अधिकांश गीतों (नकटा गीत) में व्यक्त हुआ है—

गांधी बाबा कै चरखवा हमैं भावथै,
भनन भनन भन्नाय चरखवा, सरर सरर तागा लहराय,
गुंडिन कातों सूत सजनवा! खद्दर से मोर घर भरि जाय।

(गांधी बाबा का चरखा हमें भाता है। भन्न-भन्न की ध्वनि होती है और सरर-सरर तागा लहराता है। मैं कई गुंडी सूत कातूँगी, खादी के वस्त्रों से मेरा घर भर जाएगा।)

चरखे की उपयोगिता देखकर अंबर चरखा का प्रचलन हुआ—

अंबर चरखा काततिं बाटीं, लरिकन कै महतारी कि वाह वाह।
अपुना त सरगे चला गए बापू,
दै कै देस काँ अजादी कि वाह वाह। (गारी गीत)

(बच्चों की माताएँ अंबर चरखा कात रही हैं। बापू देश को आजादी देकर स्वयं स्वर्ग चले गए।)

महात्मा गांधी ने सदैव लोकहित की चिंता की। उनका विचार था कि समाज को सुव्यवस्था प्रदान करने के लिए राजनैतिक संगठन आवश्यक है। यह संगठन समाज के विकास और व्यवस्था के कार्य तो करता ही है, बाह्य शत्रुओं से रक्षा करके समाज और उसकी संस्कृति को सुरक्षित रखता है। इसीलिए बापू ने ग्रामवासिनी भारतमाता की कृषि संस्कृति के, ग्राम पंचायतों के महत्त्व को जनता को समझाया। समाज में ग्राम पंचायत और बेसिक शिक्षा को सर्वप्रथम महत्त्व दिया। लोकगीतों में इस विश्वास करे व्यक्त किया गया है कि पंचायत का भय समाज को अनुशासित करता है। पंचायत को पूरा अधिकार है कि वह किसी का अपराध सिद्ध हो जाने पर उसे बिरादरी से बाहर निकाल दे, हुक्का-पानी बंद कर दे या आर्थिक दंड दे। आर्थिक दंड का एक प्रकार है 'भात-भोज' देना। प्रायश्चित्त करने पर पुनः उसे पंचायत से क्षमा भी मिल जाती है। 'पंच' परमेश्वर का रूप होते हैं। उनकी बात शिरोधार्य करना हर एक ग्रामीण अपना कर्तव्य समझता है—

जहाँ पंच तहाँ परमेसर, जहँ कुँवना तहँ कीच,
वही कीच कै बना चौतरा, सब पंच नवावैं सीस।
सत्य कै साथ देयँ सब पंचै, ई बापू कै सीख।
आवत कै पंचा के सीस नवावौं, जात कै पैंया परि जाउँ।

(जहाँ पंच हैं, वहाँ परमेश्वर हैं, जहाँ कुआँ होगा, वहीं कीचड़ होगा, उसी कीचड़ से बना चबूतरा है, सब पंच वहाँ शीश नवाते हैं। सत्य का साथ दें सब पंच, यही बापू की सीख रही। आते हुए पंचों को शीश नवाते हैं, जाते समय पैर छूकर जाते हैं।)

पंचायत से न्याय न मिलने पर ही कचहरी और कोर्ट की शरण ग्रामीण लेता था। सामाजिक जीवन पर राजनैतिक उथल-पुथल परिवर्तन एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रभाव पड़ता है। अतः लोकगीत भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। गांधी ने अन्याय के विरुद्ध नारी-शक्ति को जगाया। स्त्रियाँ परदे से बाहर निकलीं, आंदोलनों में हिस्सा लिया, जेल गईं और उनके भीतर से हीनता का भाव तिरोहित होने लगा। चरखे ने उन्हें स्वावलंबन का मंत्र दिया। उनके गीतों में स्वतंत्रता और स्वराज्य के लिए मर मिटने के स्वर गूँजने लगे। ब्रिटिश शासन के प्रति भी लोक

का आक्रोश ही अभिव्यक्त हुआ है। लोक को अपनी भाषा की, अपने देश की प्रतिष्ठा की चिंता है। उसे गांधी पर भरोसा है, क्योंकि उन्हें वह देश की नाव का खेवनहार मानता है। लोक मानस में गांधीजी का अत्यधिक प्रभाव लोकगीतों में दिखाई पड़ता है। लोकगायकों ने अपनी जोशीली वाणी में गांधी का संदेश घर-घर पहुँचाया। गांधी का प्रभाव युवकों पर कितना पड़ा था, यह सर्वविदित है। लोकगीत (सहाना बन्ना गीत) का 'दूल्हा' भी तिरंगा हाथ में लिये चल रहा है—

''बन्ना हमारो गांधी के बस माँ, तिरंगा झंडा उठा रहा है।
बाबा सियावैं जोड़ा औ जामा।
ऊ तौ खद्दर कै रटनि लगाए, तिरंगा झंडा उठा रहा है।
आजी बेसाहैं फूलन क मउरा।
ऊ केसरिया पगिया कै रटनि लगाए, तिरंगा झंडा उठा रहा है।
बाबू मँगाए सजा मियाना,
ऊ तौ पैदल कै रटनि लगाए, तिरंगा झंडा उठा रहा है।

(हमारा दूल्हा गांधी के वश में है। वह तिरंगा झंडा उठाकर चल रहा है। उसके बाबा दूल्हे की पोशाक (जोड़ा-जामा) बनवा रहे हैं, पर वह खादी पहनने के लिए मचल रहा है। दादी ने फूलों का मौर खरीदा, पर वह केसरिया पाग (पगड़ी) बाँधने का हठ कर रहा है। पिता ने पालकी सजाई किंतु वह तिरंगा लेकर पैदल चलने की जिद कर रहा है।)

श्री शरत कुमार महांति की उड़िया भाषा की पुस्तक का सुजाता शिवेन द्वारा हिंदी अनुवाद 'गांधी मानुष' पढ़ा, उसमें गांधीजी के अनशन संबंधी स्वप्नादेश का उल्लेख है। गांधीजी ने स्वप्नादेश का यथावत् अनुपालन करके इक्कीस दिन का अनशन प्रारंभ किया। गांधी के इस स्वप्नादेश पालन का लोकमन प्रभाव ग्रहण करता है और गांधी के सपनों और संकल्प से एकाकार होने का प्रयास करता है। लोक ने उनका स्वप्न पूरा करने का संकल्प अपने गीतों में गा-गाकर दोहराया है। कुलवधुओं का स्वप्न है कि मेरा प्रिय हरि (पति) गांधी के स्वराज्य-स्वप्न को पूरा करेगा। वह बापू को आश्वासन देती है कि मेरा प्रिय भोजन, वस्त्र का उपभोग मिल-बाँटकर करेगा, चरखा कातकर, वस्त्र बनाकर, सबको पहनाकर, तब स्वयं पहनेगा (कजली गीत)—

गांधी तेरो सुराज सपनवाँ हरि मोर पूरा करिहै ना।
सोने की थारी मा ज्योना परोस्यों सबका जेवाइँ के जेइहैं ना।
झाँझर गेडुआ गंगाजल पानी सबका घुँटाइ के घुँटिहैं ना।
चरखा काति कै कपड़ा बनायों, सबका पहिराय पहिरिहैं ना।

(गांधीजी! आपका सुराज सपना हरि मेरे पूरा करेंगे। सोने की थाली में भोजन परोसा है, पर सबको खिलाकर ही खाएँगे। झंझर गेडुआ में गंगाजल है, सबको घुँटाकर के पीएँगे। चरखा कात करके कपड़ा बनाया है, सबको पहिनाकर पहनेंगे।)

गांधी की जय-जयकार लोकगीतों में भी गूँज उठी थी—

एक छोटी चवन्नी चाँदी की,
जय बोलो महात्मा गांधी की।

(जैसे चवन्नी देखने में छोटी लगती है, वैसे ही बापू भी देखने में बहुत साधारण लगते हैं। वे महानता का मुखौटा नहीं लगाते, लेकिन सारा लोक उनकी जय-जयकार करता है।)

असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर स्वराज्य की कामना की गई है। सबकी आँखें गांधी पर लगी हैं (कहरवा गीत)—

दै द्या गांधी बाबा हम्मै, भारत कै सुरजवा
सोने की थारी म ज्योंना परास्यों,
जेंवना न जेवैं पिया माँगथे सुरजवा'' ।

(गांधी बाबा! हमें भारत का सुराज दे दो। सोने की थाली में भोजन परोसा है, पर पिया माँगे सुराज। पानी न पीयैं पिया माँगें सुराज। लौंग इलायची का बीरा न कूँचें, पिया माँगें सुराज। फूल हजारी की सेज न सोवें, पिया माँगें सुराज।)

गांधी से प्रभावित होकर सुराज हेतु सत्याग्रह आंदोलन में सम्मिलित होनेवालों की संख्या बढ़ती गई (कहरवा गीत)—

गान्ही कै बानी दुनिया म पसरी, कि उहै सुनि कै ना,
सइयाँ होइगै कांग्रेसिया। कि उहै सुनि कै ना।
सइयाँ होइगै सुरजिया। कि उहै सुनि कै ना।

गारी गीतों में भी स्वराज्य की कामना की गई है—

हम भारतवासी, हम भारतवासी, पाएँ सुराज सही रे सही,
मिले गांधी जवाहर, मिले गांधी जवाहर एकहि बात कही रे कही।
सब कातउ चरखा, सब कातउ चरखा, सुख कर मूल यही रे यही,
छोड़ो कपड़ा विदेसी छोड़ो कपड़ा विदेसी खद्दर लेव गही रे गही।
प्यारा भारत देसवा, प्यारा भारत देसवा,
भोजन बिनु तड़पै सभी रे सभी।
सुन्दरि चरखा चलावउ, सुन्दरि चरखा चलावउ,
तब घर बार बनी रे बनी।
पहिरौ खद्दर मोटा, पहिरौ खद्दर मोटा,
सुनौ नर नारी सभी रे सभी,
प्यारे हिंदू मुसलमान, प्यारे हिंदू मुसलमान
आपस में मेल चही रे चही।

(हम भारतवासी हैं, हमें सच्चा स्वराज्य चाहिए। सभी लोग चरखा कातो, सुख का यही मूलमंत्र है। विदेशी वस्त्रों का त्याग करो और खद्दर अपना लो। हमारा प्यारा भारतदेश है, जहाँ लोग रोटी के लिए तड़प रहे हैं। सुंदरी! चरखा चलाओ, तभी घर-बार बनेगा। मोटा खद्दर पहनो। हे नर-नारी! सभी सुनो। प्यारे हिंदू-मुसलमान सभी को आपस में मिल-जुलकर रहना चाहिए।)

गीतों में गांधीजी की मृत्यु पर उनके त्यागपूर्ण व कर्मठ जीवन की सराहना की गई है (विरहा गीत)—

गांधी बाबा की है स्वर्ग के सफरिया,
लगनिया लागी भारत से रही।

'भारत छोड़ो आंदोलन' का आह्वान लोकगीतों ने भी किया है (कहरवा गीत)—

भारत छोडो हे अँगरेजो, चली जोर से आँधी,
गोरे लंदन भागे, जीति गै गांधी, नजरिया हमरी भारत पै रही।

(हे अंग्रेजो! भारत छोड़ो, स्वराज्य आंदोलन की आँधी जोर से चल

पड़ी है। अंग्रेज लंदन भाग गए, गांधी की विजय हुई, सबकी दृष्टि भारत पर थी।)

ब्याह के गीतों में झंडे और खादी का उल्लेख मिलता है—

गांधी बाबा की इहै पुकार, बन्ना होइ जाओ तैयार
बन्ना लइ लेव तिरंगा झंडा, चले जाओ ब्याहन काँ।
बन्ना पहिर लेव खादी कै जामा, चले जाओ ब्याहन काँ।

(गांधी बाबा की यही पुकार, बन्ना हो जाओ तैयार, हे दूलहे! तिरंगा झंडा ले लो, खादी के वस्त्र पहन लो और ब्याह करने चले जाओ।)

माँ अपने पुत्र से देश की रक्षा का वचन लेकर अपने दूध का ऋण माँग रही है (कहरवा गीत)—

रन माँ होई दुसमन से समनवाँ, गुमनवाँ उनकै तोर्या ललना।
नवें मास तक कोख में राखा, कस्ट सह्यों मैं भारी
दूध पियाइ पियाइ के लालन, देहिया कस्यों तोहारी,
आज दुधवा से कै द्या उरिनवाँ, गुमनवा वनकै तोर्या ललना।

(हे पुत्र! रण में दुश्मन से सामना होगा, उनका गर्व चूर-चूर कर देना। नौ महीने तक तुम्हें कोख में रखा, मैंने भारी कष्ट सहा, दूध पिला-पिलाकर तुम्हारा शरीर पुष्ट किया, आज उस दूध के ऋण से उत्रण कर दो, दुश्मन का अहंकार तोड़ दो।)

युद्ध के समय भी लोककवि ने अपने उद्गार प्रकट किए हैं—

देसवाँ आपन हम बचइबे, सब जतनियाँ करि कै ना,
गौरव देसवा के बढ़इबे, सब जतनियाँ करि कै ना,
गोद के देबे सलोना लाल, सोना चाँदी देब निसारि,
भारत माँ का हम बचइबे, केसरिया बनिके ना।

अंग्रेजों द्वारा खून की होली खेले जाने पर भी गांधीजी अहिंसा की लड़ाई के पक्षधर बने रहे। लोक की टिप्पणी एक दोहे में व्यक्त है—

खून कै होली खेलै, लंदन सरकार।
प्रेम अहिंसा कइ रंग, गांधी के दरबार॥

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जमींदारी प्रथा मिटने से ग्रामीण किसान का हर्ष इन गीतों में फूट पड़ता है—

जनमे सुराज सपूत, बड़ी सुभ घड़ियाँ,
देसवा माँ आय सुराज, मिटी जमींदरिया।

स्वराज्य का आना बहुत बड़े सपने का पूरा होना है। इसीलिए स्वराज्य के जन्म पर सोहर गाया गया है—

जनमा सुराज सपूत त आज सुभ घरिया माँ!
सखिया! जगर मगर भै बिहान, त दुनिया अनंद भै।
आजु सुफल भई कोखिया, त भारतमाता मगन भई,
घर-घर बाजी बधइया उठन लागे सोहर।
लहर लहर लहराइ, त फहरै तिरंगवा,
गांधीजी पूरिन चौक त मुँह से असीसें।
आजु जवाहिर लाल, कलस धई थापिन,
सुभ घरी मिला बा सुराज इ जुग जुग जीयै।
बाढ़ै बँसवा कि नाईं ई देस त दूबि अस फइलइ,
सखिया! देसवा बनै खुसहाल त सब सुख पावइँ।



(स्वराज सपूत का जन्म हो गया, आज शुभ घड़ी में। सखियाँ जगमग करता सूर्योदय हो गया है, दुनिया में आनंद छा गया है। आज माता की कोख धन्य और सफल हुई है, भारतमाता आनंदमग्न हो गई है। घर-घर बधाई बज रही है, सोहर गाए जा रहे हैं। तिरंगा लहर-लहर लहरा रहा है, गांधीजी ने शुभ चौक पूरा है (अल्पना सजाई है) और भर मुख आशीर्वाद दे रहे हैं।)

स्वराज्य आंदोलन के बाद लोकगीतों में भी नई लहर आई। इनमें देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना के भाव अभिव्यक्त होने लगे। गीतों की लय, धुन वही थी, भाव बदल गए। एक गारी गीत में विदेशी वस्त्र न छोड़ने पर व्यंग्य है—

आय गान्ही बाबा क जमाना रे झमकोइया मोरे लाल,
छोड़ो बिदेसी बाना रे झमकोइया मोरे लाल।
गान्ही बाबा कै कहना रे झमकोइया मोरे लाल,
खद्दर की सारी सबके मनवाँ भावै।
छोड़ै बिदेसी बाना रे झमकोइया मोरे लाल,
भारत से भागि गए मेम कै भतार।
भारत माँ आय आपन जमाना रे, झमकोइया मोरे लाल।''

(विदेशी बाजार सभी छोड़ दो, ऐसा गांधीजी का कहना है। खद्दर की साड़ी सबके मन को भाने लगी है, विदेशी वेश-भूषा छोड़ दो। भारत से मेम के पति (अंग्रेज) भाग गए। भारत में अपना राज आ गया।)

स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि नए उत्सव देश में मनाए जाने लगे। भारतमाता को देवी के रूप में पूजा जाने लगा—

भारत मंदिरवा माँ अरती उतारौ, भारतमाता काँ सीस नवावौं।

झंडा तिरंगा की प्रशंसा में भी लोकमानस गा उठा—

लहर-लहर लहराए रे, मोरा झंडा तिरंगा।
गान्ही बाबा फहराए रे मोरा झंडा तिरंगा।

जिन्होंने गांधी युग को देखा है, सुना है और उस समय के लोकगीत गाए हैं, ऐसी एक छियासी वर्षीया गायिका प्रोफेसर श्रीमती कमला श्रीवास्तव भातखंडे संगीत महाविद्यालय लखनऊ की संगीत गुरु रह चुकी हैं। आज भी तमाम कार्यशालाओं का आयोजन करके लोकगीत नई पीढ़ी

को सिखाती हैं और उन गीतों को भावविह्वल होकर गाती हैं। वे कुछ पारंपरिक गीतों के साथ लोकधुनों पर पारंपरिक गीतों की भूली-बिसरी कड़ियों को अपनी ओर से कुछ नया जोड़ते हुए भी गाती हैं। उन गीतों की वे स्वर लिपियाँ बनाकर लोकधुनों का संरक्षण भी कर रही हैं। उनके गाए हुए और उनसे सुने हुए महात्मा गांधी विषयक कुछ लोकगीत प्रस्तुत हैं—

एक दूबर-पातर मानुष मा जान बड़ी भारी।
अंग्रेजवन कै खोपड़ी हिलाय दिहिनि सारी।
गाँव-गाँव मा नगर शहर मा अइसी चलिगै आँधी,
जेका देखा उहै गोहरावै बाबा गांधी-गांधी,
यही गांधी कै जनम दइकै धन्य भई महतारी,
मोहन मोहन दास भए करमन कै चाँद करिश्मा,
लिये लकुटिया हाथन मा, आँखिन पै पहिरे चश्मा,
देशभक्ति से सींचिनि भारत कै फुलवारी,
देसवा के रखवारे, जन-जन के सहारे, बापू गांधी हो।
जनमे हैं देसवा के लाल, भारत के भाल अंगरेजवन कै काल,
मइया भईं निहाल, अक्तूबर दुइ का जनमे हो, जनमे सबकर प्यारे,
सबकी अँखियन के तारे, आजादी कै बिगुल बजा,
आजादी दउरी आई, कुर्बानी शहीदन कै औ गांधी कै अगुवाई।
धन्य होइगा देस आपन गांधी कै बलिहारी।
एक दूबर-पातर मानुष मा जान बड़ी भारी।

प्रो. कमलाजी एक कजली सुनाती हैं—
हरे रामा भारत भवा आजाद, सुराज मिलि गवा रे हारी।
धनि-धनि गांधी बाबा, देवाइन आजादी रे हारी।

गांधी जयंती पर गाया जानेवाला गीत वे सुनाती हैं, जिसमें जन्मदिवस की प्रसन्नता और बापू की यादों को हृदय में पाने का भाव है—

अँगरेजवन का कइके निकासी, सत्ता का कइसे हिलाइन,
जब तिरंगा फहराइन, बापू भारत कै।
दुइ अक्तूबर जब जब अवै,
सुभ जनम दिन सबै मनावैं, बापू कै सुधिया उपरावैं।
अपने हियरा मा पावै, गांधी बापू काँ हो।

वे गांधी चइती गाती हैं—
भारत किहिन आजाद हो रामा, हमार गांधी बाबा।
कलजुग मा लिहिन अवतार हो रामा, हमार गांधी बाबा।
देसवा कै अपने दुलारे बापू, बंधन कटाइन हमारे बापू,
मइया कै किहिन उद्धार हो रामा, हमार गांधी बाबा।
सत्य, अहिंसा कै ढाल बनाइन, लोगवन मा अइसन जोश जगाइन,
फिरंगियन का दिहिन निसार हो रामा, हमार गांधी बाबा।
राम-नाम काँ सदा पुकारैं, वैष्णवजन कै भजन उचारैं।
किहिन प्रान निछावर हो रामा, हमार गांधी बाबा।
गांधी जनम सफल भवा,
देसवा किहिन गुलजार हो रामा, हमार गांधी बाबा।

गीत कइसे सपरी धुन—
करम चंद कइ लाल, माता पुतरी केरे जाए,
मोहनदास करम चंद गांधी, सबके हिया समाए।
देसवा मा पाइन गांधी सब केरा प्यार,
स्रवन कुमार कै पितृ-भक्ति, हरिश्चंद कै सच्चाई।
करै गए बैरिस्टरी लंदन, नीति न उनकै भाई।
फिरंगियन की चालन का, दिहिन वै नहकारि।
दक्षिण अफ्रीका कै, काला-गोरा भेद मिटाइन,
असहयोग आंदोलन रालत एक्ट बदे चलाइन।
विदेसी वस्तु कपड़ा कै किहिन बहिष्कार।
हम तौ लेबइ पूर्ण स्वराज, औ पूर्ण आजादी ।

होली की धुन राग काफी में वे लोकगीत गाती हैं—
गांधी खेलइ अइसेन होली, देसवा बोलै प्रेम केरी बोली।
देस मा सत्य अहिंसा कै अबीर गुलाल लाए देस मा।
साफ सफइया कै अंगना दुवरावा, द्वारे प रँगी रंगोली देस मा।
प्रेम भगति कै पिचकारी चलावैं, रघुपति राघव राजाराम गवावैं।
झूमैं भक्तन केरी टोली देस मा।
जो खेलत रहे खून कै होली, उनके वस्त्रन कै जलाय दिहिन होली।
उठि गइ फिरंगियन कै डोली देस मा।
गांधी कै होली मिलन एस सजा है, राम नाम सबके हियरे बसा है।
माथे तिलक केरी रोली देस मा, ज्ञान से भरि दिहिन झोली देस मा।

इन थोड़े उदाहरणों से ही स्पष्ट है कि लोकगीत सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तनों से निरंतर प्रभावित होते रहते हैं। वे अपने युग को पुरातन का संदेश तथा भविष्य की प्रेरणा देते हैं। वे देशभक्तों, राष्ट्र-नायकों के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते रहते हैं।

महात्मा गांधी लोकमन में आज भी जीवंत हैं। चरखा आज भी एक अनिवार्य आवश्कता की ओर इंगित कर रहा है। स्वदेशी आंदोलन की आज भी जरूरत अनुभव की जा रही है। एक दोहा है—

चरर चरर चरखा चलै, खादी सूत कताय।
करौ स्वदेसी कै परचार, ई गुन रे देउ बताय॥

गांधी बाबा के चरखा के ध्वनि की गूँज आज भी लोकगीतों में विद्यमान है। उसके निरंतर चलते रहने की कामना है।

महात्मा गांधी जिस भारतीय परंपरा के साथ दृढ़ता से आजीवन खड़े रहे, उस दृढ़ता की आज अनिवार्य आवश्यकता है। महात्मा गांधी को स्मरण करना और उनके सिद्धांतों को जीवन व्यवहार में लाने का प्रयास करना ही उनके प्रति सच्ची स्मरणांजलि है। सा अ

श्रीवत्स, ४५ गोखले बिहार मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९३३५९०४९२९



नवंबर २०१९ के 'साहित्य अमृत' का संपादकीय तो गागर में सागर लगा। प्रतिस्मृति में विष्णु प्रभाकरजी की कहानी 'गोपाल की बुद्धि' उम्दा लगी। गुरु नानक देवजी की ५५०वीं जयंती पर 'गुरु नानक का जीवन-दर्शन' आलेख बहुत शिक्षाप्रद था। नरेंद्र कोहलीजी की कहानी 'मेरी बेटियाँ' पाकिस्तान में रहनेवाले हिंदुओं की मुँह बोलती तसवीर लगी। कमल किशोर गोयनकाजी का मुंशी प्रेमचंद पर आलेख तथा प्रकाश मनुजी का बचपन को याद करता आलेख प्रेरक लगे। बाल अंत्याक्षरी गीत बहुत अच्छा एवं प्रेरक लगा।

शुभ नव वर्ष हो, 'साहित्य अमृत' का उत्कर्ष हो, चारों तरफ पाठकों को, खुशहाली और हर्ष हो।

—विजयपाल सेहलंगिया, हरियाणा

'साहित्य अमृत' के नवंबर अंक के संपादकीय में सामयिक संदर्भों में दिए गए विचार बड़े अच्छे लगे। संपादकीय पत्रिका का सार होता है। विष्णु प्रभाकरजी की कहानी 'गोपाल की बुद्धि', नरेंद्र कोहलीजी की 'मेरी बेटियाँ', प्रमोद अग्रवालजी की 'पानी की तलाश', राकेश भ्रमरजी की 'हृदय परिवर्तन' कहानियाँ अच्छी लगीं। कमल किशोर गोयनकाजी का 'प्रेमचंद : आधी शताब्दी की शोधयात्रा' ने बहुत गहन जानकारी दी। प्रकाश मनुजी का संस्मरण 'यादों में बचपन, जो मुझमें अब भी साँस लेता है' ने तो मुझे अपना बचपन याद दिला दिया। रश्मि कुमारजी की कहानी 'मातृरूपेण संस्थिता' ने मन को गहरे छुआ।

—नंद किशोर तिवारी, वाराणसी

विशिष्ट आवरण पृष्ठ लिये नवंबर अंक के संपादकीय में 'भ्रष्टाचार तेरे रूप अनेक' के अंतर्गत जो तथ्य और आँकड़े दिए गए हैं, वे न केवल प्रशासन और कानून पर प्रश्न उठाते हैं, बल्कि हमारी संस्कृति और संस्कार पर आई आँच की समय रहते सूचना देते हैं। संपादकजी के शब्दों में, 'सच्चाई गुरु नानक देव के संदेशों को सारगर्भित रूप में पाठकों तक पहुँचाया गया है, उनके दो वचन अत्यंत प्रभावात्मक रूप से उद्धृत किए गए हैं। ऐसी प्रस्तुतियाँ ही 'मर्म' समझने की समाप्त होती क्षमता और समझ के लिए रामबाण औषधियाँ सिद्ध होंगी।'

—प्रमिला मजेजी, कोरबा

दिसंबर के 'साहित्य अमृत' के संपादकीय में संपादकजी ने श्रीराम जन्मभूमि विवाद और सावरकरजी के बारे में अपनी सहज भाषा में अपना मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने सावरकरजी के संघर्ष और स्वाधीनता प्राप्त कराने के प्रयास का विशद वर्णन किया है। अनेक भ्रांतियों का निराकरण करते हुए संपादकजी ने उन्हें सच्चा देशभक्त सिद्ध किया है। हूण आक्रांताओं से लोहा लेनेवाले सम्राट् स्कंदगुप्त की शौर्यगाथा को इस अंक में स्थान देकर आपने एक लब्धप्राय काल को जग-जाहिर किया है। भितरी के शिलालेख में उस योद्धा के वर्णन भारत के उज्ज्वल काल के साक्षी हैं। हरीश नवलजी के आलेख 'काहे प्रिंसिपल माथुर भए त्यागी' में विसंगतियों को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि इसकी सार्थकता में सार्वजनिक अपील दृष्टिगोचर होती है। प्रायः कोई दुर्घटना होने पर पुलिसकर्मियों में सीमा बहस छिड़ जाती है और चोटिल व्यक्ति तड़पता ही रहता है। राकेश कुमार उपाध्यायजी तथा हरीश नवलजी को मेरी पाठकीय बधाई।

—बी.डी. बजाज, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का कार्तिक-मार्गशीर्ष अंक गुरु नानक देवजी के पाँच सौ पचासवें प्रकाश पर्व पर उनके जीवन दर्शन व प्रेरक प्रसंगों का उल्लेख करता हुआ आलेख प्रेरणास्पद है। संपादकीय में देश की राजनीति व आर्थिक स्थिति का गंभीर विश्लेषण ज्ञानवर्धक है। राजनाथ सिंहजी के जीवन का परिचय अच्छा लगा। कहानियों में मुझे रश्मि कुमारजी की 'मातृरूपेण संस्थिता' बहुत अच्छी लगी। कभी-कभी अनजाने ही हमारा व्यवहार अपनों को आहत कर जाता है और हम समझ नहीं पाते। 'शोलापुर' बहुत मार्मिक कहानी है। शोषक कितने कुटिल व संवेदनहीन होते हैं। पढ़कर मन पीड़ा से भर उठता है। कविताओं में माला कपूरजी की 'अनुभूति' में पर्यावरण के संरक्षण की मधुर कल्पना अच्छी लगी। प्रकाश मनुजी की रचना में उनके भीतर का निश्छल बचपन झलकता है। अन्य सभी रचनाएँ पत्रिका के उच्च स्तर को बनाए रखने में सक्षम हैं।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' के दिसंबर अंक में राहिला रईसजी की कहानी 'कामचोर' बहुत सुंदर लगी। अनिता सिंह चौहानजी की कहानी 'जीवनसाथी' पढ़ने को मिली। हरीश नवलजी का व्यंग्य 'काहे प्रिंसिपल माथुर भए त्यागी' अच्छा लगा। कहानी और भी हैं, सब एक से बढ़कर एक; पढ़कर मन पर गहरा असर होता है; ये सोचने को मजबूर करती हैं।

—ब्रजमोहन जैन, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' के नवंबर अंक में पूर्व की तरह सभी स्थायी स्तंभों में उत्कृष्ट रचनाएँ पढ़ने को मिली। चूँकि यह पत्रिका २४ वर्ष से नियमित निकल रही है, इसकी एक विशिष्ट पहचान है, विशेषांकों की परंपरा में हर वर्ष का नवंबर अंक नई पीढ़ी के बच्चों को समर्पित होता रहा है और बाल साहित्य विशेषांक निकाला जाता रहा है। लेकिन इस बार का नवंबर अंक बाल साहित्य विशेषांक नहीं था। मुझ जैसे बाल साहित्यकार को यह कमी खल गई। उम्मीद है, भविष्य में इस कमी को स्मरण में रखा जाएगा।

—हेमंत कुमार चावड़ा, रायगढ़ (छ.ग.)

साहित्य एवं संस्कृति के संवाहक के लिए जानी जानेवाली 'साहित्य अमृत' पत्रिका का हर अंक लाजवाब होता है, साथ ही इसके कलेवर का तो कहना ही क्या! अंदर के पृष्ठ सोना हैं, तो कलेवर सोने पे सुहागा होता है। नवंबर अंक में प्रकाशित कहानियों में नरेंद्र कोहलीजी की 'मेरी बेटियाँ' और राकेश भ्रमरजी की 'हृदय परिवर्तन' आज के परिवेश की सच्चाई बयाँ करती दिलचस्प कहानियाँ लगीं। बाल अंत्याक्षरी गीत, गुरु नानकजी संबंधित आलेख, कविताएँ (अनुभूति, यों नहीं मैला करो...) अच्छी लगीं। प्रकाश मनुजी का बचपन को याद करता आलेख बेटी खुशी को बहुत पसंद आया। उनकी 'खजानेवाली चिड़िया' पढ़ने के बाद बेटी तो उनकी फैन ही बन गई है।

—ब्रह्मानंद खिच्ची, महेंद्रगढ़ (हरि.)

वर्ग पहेली (१७२)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जनवरी, २०२० तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते मार्च २०२० अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१७०) का शुद्ध हल

१ अ	२ फ	सो	३ स	■	४ ज	ह	५ री	६ ला
७ क	र्ज	■	८ फ	९ स	ल	■	१० ता	ज
समा	■	११ ह	ल	फ	ना	१२ मा	■	वा
१३ त्	१४ ना	ब	■	र	■	१५ त	१६ ल	ब
■	१७ ग	ल	त	■	१८ न	क	ल	■
१९ प	र	दा	■	२० अ	■	२१ र	क	२२ म
रा	■	२३ र	२४ ग	द	२५ ब	ना	■	नो
२६ धी	मा	■	२८ वा	द	क	■	२९ जा	नी
३० न	ह	ला	ना	■	३१ रा	ज	दू	त

★ पुरस्कार विजेता ★

१. श्रीमती शोभा दानी
ए-२८, सेक्टर-२६
नोएडा-२०१३०१
दूरभाष : ९८१८१८३०८५

२. श्रीमती विमला शर्मा
गाँव-पखरोल, डाक-सेना
तह.-नादौन (हि.प्र)
दूरभाष : ०१९७२-२३५३७७

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १६९ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री ब्रह्मानंद खिच्ची, लक्ष्मी देवी, खुशी खिच्ची (महेंद्रगढ), विजयपाल सेहलंगिया, शिवकांत (सेहलंग), फकीरचंद डुल (कैथल), विनीता सहल (मुंबई), गिरधारीलाल अग्रवाल (पुसद), ए. श्रीनिवासन (मदुरै), नीरजा शर्मा (अहमदाबाद), मधु रानी (बेंगलुरु), सुनीता श्रीवास्तव (रायपुर), माला श्रीवास्तव (ग्रेटर नोएडा), ओंकार नाथ मिश्र (कानपुर), ओम प्रकाश गुप्त (मुदाराबाद), राजो किंजल्क (भोपाल), सतीश जोशी, रुक्मणी संगल (पटियाला), जगदीश राय गर्ग (मानसा), सरला लोढा (उदयपुर), मोहन उपाध्याय (अजमेर) रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), कुसुम गोयनका, सुभाष शर्मा, दिनकर सहल, रत्ना वार्ष्णेय (दिल्ली)।

बाएँ से दाएँ—

१. उदाहरण के रूप में (४)
५. कमर में लपेटी जानेवाली लुंगी (४)
९. मनुष्यों की बलि (४)
१०. बाजीगरी, कौशल (४)
११. स्त्री जाति का प्राणी (२)
१२. बनावटी, कृत्रिम (३)
१४. माँ की सास (२)
१५. नर्क में जानेवाला, दुराचारी (३)
१७. स्तुति करनेवाला, एक प्रेतयोनि (३)
१८. खुशबूदार, सुगंधित (५)
१९. बरात में जानेवाला व्यक्ति (३)
२१. किसी चीज से लादा जाना (३)
२४. एक प्रकार की शराब, मनोरम (२)
२५. लड़का, बच्चा (३)
२७. लंबा का उपसर्ग की तरह प्रयुक्त एक संक्षिप्त रूप (२)
२८. समानता, तुल्यता (४)
३०. साले की पत्नी (४)
३२. सहयोग करनेवाला, अनुमोदक (४)
३३. लंबी बेलनाकार तकिया, गावतकिया (४)

ऊपर से नीचे—

१. मनपसंद, अपने मन का (४)
२. किसी दल आदि का अगुआ (४)
३. होंठ (२)
४. कमल, पद्म (३)
५. सूत कातने का एक छोटा यंत्र (३)
६. प्रत्येक (२)
७. राय या वोट देनेवाला व्यक्ति (४)
८. बदले जाने या परिवर्तन का भाव (४)
१३. कमल जैसे, सुंदर एवं कोमल हाथ (५)
१६. मूल्यवान (३)
१७. एक बेलनाकार कंटेनर जो तरल पदार्थ रखता है, क्षमता की विभिन्न इकाइयों में से एक (३)
१९. जिसका कोई वश न चलता हो (४)
२०. सुबह सवेरे....का शुभ शब्द ही मुख से मधुर लगता है (२, २)
२२. वह फसल जिससे दाल तैयार की जाती है (४)
२३. मनोनीत (४)
२५. बहुत पतला, महीन (३)
२६. शपथपूर्वक की गई प्रतिज्ञा (३)
२९. यात्री के सोने के लिए स्थान, शायिका (२)
३१. चिपकाने या चिपकने का गुण (२)

वर्ग पहेली (१७२)

१	२	३	४	■	५	६	७	८
९				■	१०			
११		■	१२	१३		■	१४	
१५		१६	■		■	१७		
■	■	१८					■	■
१९	२०		■		■	२१	२२	२३
२४		■	२५		२६	■	२७	
२८		२९		■	३०	३१		
३२				■	३३			

प्रेषक का नाम : ....

पता : ....

....

....

दूरभाष : ....

वर्ग पहेली (१७१) का हल अगले अंक में।



डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को मूर्तिदेवी पुरस्कार

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दिए जानेवाला २०१९ का ३३वाँ मूर्तिदेवी पुरस्कार हिंदी के प्रतिष्ठित कवि-आलोचक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को उनकी उनकी कृति 'अस्ति व भवति' को प्रदान करने का निर्णय लिया गया है। इसकी घोषणा प्रो. सत्यव्रत शास्त्री की अध्यक्षता में हुई निर्णायक मंडल की एक बैठक में लिये गए निर्णय के बाद की गई है।

'अस्ति व भवति' डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के कोई पचास से अधिक वर्षों के सार्वजनिक जीवन का आईना है। असल में यह उनके आत्मजीवनचरित से कहीं अधिक उस काल के इतिहास, चेतना और संस्कृति को समझने का सूत्र भी है। इसेमें श्री तिवारी देश की समस्याओं, संकटों, विकास, राजनीतिक टकरावों, लेखकों के विचारों, वैश्वीकरण के दौर में बदले मूल्यों से लेकर घर-परिवार, गाँव-दुनिया से जुड़ी स्मृतियों को जीवन करते हैं। □

साहित्य अकादेमी पुरस्कार-२०१९ घोषित

१८ दिसंबर को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी ने २३ भाषाओं में अपने वार्षिक साहित्यिक पुरस्कारों की घोषणा की। सात कविता-संग्रहों के लिए डॉ. फुकन चंद्र बसुमतारी, 'आखाइ आथुमनिफ्राय' (बोडो), डॉ. नंदकिशोर आचार्य, 'छीलते हुए अपने को' (हिंदी), श्री निलबा आ. खांडेकार, 'ध वर्डस्' (कोंकणी), श्री कुमार मनीष अरविंद, 'जिनगीक ओरिआओन करैत' (मैथिली), श्री वी. मधुसूदनन नायर, 'अचन पिरन्ना वीदु' (मलयालम), श्रीमती अनुराधा पाटील, 'कदाचित अजूनही' (मराठी) एवं प्रो. पेन्ना-मधुसूदनः, 'प्रज्ञाचाक्षुषम्' (संस्कृत) को; चार उपन्यासों के लिए डॉ. जयश्री गोस्वामी महंत, 'चाणक्य' (असमिया), श्री एल. बिरमंगल सिंह, 'ई अमादी अदुनगीगी ईठत' (बेरिल थंगा) (मणिपुरी), श्री चो. धर्मन, 'सूल' (तमिल) एवं श्री बंदि नारायणा स्वामी, 'सेप्ताभूमि' (तेलुगु) को; छह कहानी-संग्रहों के लिए श्री अब्दुल अहद हाजिनी, 'अख याद अख कयामत' (कश्मीरी), श्री तरुण कांति मिश्र, 'भास्वती' (ओड़िया), श्री किरपाल कजाक, 'अंतहीन' (पंजाबी), श्री रामस्वरूप किसान, 'बारीक बात' (राजस्थानी), श्री काली चरण हेम्ब्रम, 'सिसिरजली' (संताली) एवं श्री ईश्वर मूरजाणी (सिंधी) को; शशि थरूर (अंग्रेजी), डॉ. विजया (कन्नड़) एवं प्रो. शाफे किदवई (उर्दू) को क्रमशः सृजनात्मक कथेतर गद्य, आत्मकथा एवं जीवनी के लिए तथा तीन निबंध-संग्रहों के लिए डॉ. चिन्मय गुहा (बाङ्ला), श्री ओम शर्मा 'जन्द्रयाड़ी' (डोगरी) एवं श्री रतिलाल बोरीसागर (गुजराती) को पुरस्कृत किया जाएगा। पुरस्कार स्वरूप एक उत्कीर्ण ताम्रफलक, शॉल और एक लाख रुपए की राशि प्रदान की जाएगी। घोषित पुरस्कार २५ फरवरी, २०२० को नई दिल्ली में आयोजित एक विशेष समारोह (साहित्योत्सव) में दिए जाएँगे। नेपाली भाषा में पुरस्कार बाद में घोषित किया जाएगा। □

समरकंद विश्वविद्यालय में हिंदी प्रारंभ

उज्बेकिस्तान के समरकंद विश्वविद्यालय में हिंदी का शिक्षण आरंभ हो गया है। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अपनी ताशकंद यात्रा के दौरान २ नवंबर को समरकंद विश्वविद्यालय में औपचारिक रूप में हिंदी का शिक्षण आरंभ किया। इस अवसर पर उपकुलपति, भारत से गए प्रो. गर्गेश वर्मा तथा प्रो. रवि टेकचंदानी उपस्थित थे। समरकंद उज्बेकिस्तान का दूसरा बड़ा शहर है जहाँ हिंदी शिक्षण आरंभ हुआ है। □

तमिल-कश्मीरी अनुवाद कार्यशाला संपन्न

४ दिसंबर को साहित्य अकादेमी, दिल्ली में तीन दिवसीय तमिल-कश्मीरी अनुवाद कार्यशाला का समापन हुआ। कार्यशाला में १९ तमिल कहानियों का कश्मीरी में अनुवाद किया गया। कार्यशाला के संयोजक प्रख्यात कश्मीरी लेखक डॉ. अजीज हाजिनी थे। तमिल लेखक श्री सिर्पी बालसुब्रहमण्यम इस कार्यशाला में विशेषज्ञ के तौर पर उपस्थित थे। अनुवाद कार्यशाला में प्रतिभागी अनुवादक थे—सर्वश्री एजाज मो. शेख, मुश्ताक अहमद मुश्ताब, फारूख फैयाज, अमीन फैयाजी, गौरीशंकर रैणा, अंजलि अदा कौल। धन्यवाद ज्ञापन श्री अनुपम तिवारी द्वारा किया गया। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों सावित्रीबाई फुले विश्वविद्यालय, पुणे और सोनइंदर प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में आयोजित एक समारोह में कथाकार श्री बलराम को 'साहित्य महासागर' से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता साहित्यकार डॉ. दामोदर खड़से ने की और मुख्य अतिथि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पुणे के अध्यक्ष श्री उल्लास पवार थे। इस अवसर पर श्री बलराम की छह पुस्तकों पर विभिन्न साहित्यकारों ने अपने आलेख प्रस्तुत किए और उन पर चर्चाएँ हुईं। इस समारोह में मराठी कवि श्री म.भा. चव्हाण, हिंदी कवयित्री श्रीमती ममता जैन और उर्दू कवयित्री श्रीमती मोनिका सिंह को 'सोनइंदर सम्मान' से सम्मानित किया गया। सर्वश्री सुनील देवधर, चेतना राजपूत, महेश दवंगे, राजेंद श्रीवास्तव, ओम प्रकाश शर्मा, स्मिता दात्ये, टीकम शेखावत, विजय रोड़े आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। श्री बलराम ने 'पत्रकारिता और वर्तमान साहित्य' पर व्यापक प्रकाश डाला। संचालन डॉ. राजेंद्र श्रीवास्तव ने किया। □

'मजरूह सुल्तानपुरी जन्म शतवार्षिकी संगोष्ठी'

२९ नवंबर को साहित्य अकादेमी द्वारा प्रख्यात गीतकार श्री मजरूह सुल्तानपुरी की जन्मशतवार्षिकी को मनाने के लिए दो दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता साहित्य अकादेमी के उपाध्यक्ष श्री माधव कौशिक ने की। उद्घाटन वक्तव्य अकादेमी के पूर्व अध्यक्ष श्री गोपीचंद नारंग ने तथा आरंभिक वक्तव्य श्री शीन काफ निजाम द्वारा दिया गया। संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया। □

संगोष्ठी संपन्न

१० नवंबर को लखनऊ में हिंदी कथा साहित्य पर केंद्रित अखिल भारतीय आयोजन कथाक्रम शृंखला का सताईसवाँ आयोजन 'कथाक्रम २०१९' संपन्न हुआ। इस वर्ष के 'आनंद सागर स्मृति कथाक्रम सम्मान' से समादृत श्री एस.आर. हरनोट के कृतित्व पर आलोचक श्रीमती रोहिणी अग्रवाल के वक्तव्य का सुश्री रजनी गुप्त ने पाठ किया। कथाक्रम सहयोगी श्रीमती मीनू अवस्थी ने सम्मान-पत्र का वाचन किया। 'नए भारत का नया राष्ट्रवाद : रचनात्मक हस्तक्षेप व अपेक्षाएँ' विषय पर संगोष्ठी में सर्वश्री वीरेंद्र यादव, चंद्रकला त्रिपाठी, कंवल भारती, वैभव सिंह व संजय कुंदर

ने अपने वक्तव्य दिए। विषय प्रवर्तन श्री वीरेंद्र यादव ने और संचालन डॉ. रविकांत ने किया तथा सर्वश्री कात्यायनी, वैभव सिंह, कंवल भारती, संजय कुंदन, तरुण निशांत, चंद्रकला त्रिपाठी ने भी अपने विचार रखे।

दूसरे सत्र में सर्वश्री राजकुमार, बजरंग बिहारी तिवारी, काली चरन स्नेही, अखिलेश व शशिकला राय ने वक्तव्य दिए। संचालन डॉ. मुन्ना तिवारी ने किया। श्री वीरेंद्र सारंग के धन्यवाद ज्ञापन के साथ संगोष्ठी समाप्त हुई। ☐

श्री बलवीरसिंह 'करुण' की पुस्तकें लोकार्पित

१२ नवंबर को अलवर में वरिष्ठ साहित्यकार श्री बलवीरसिंह 'करुण' के उपन्यास 'डीग का जौहर' तथा खंडकाव्य 'मैं उत्तरा' का पाठकार्पण संपन्न हुआ। प्रो. अमेश राय ने 'मैं उत्तरा' खंडकाव्य की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की। 'डीग का जौहर' की समीक्षा डॉ. मुकेश गुप्त 'राज' ने की। मुख्य अतिथि पूर्व लोकायुक्त श्री सज्जनसिंह कोठारी ने दोनों कृतियों पर अपने विचार रखे। संचालन श्री सुरेंद्र सार्थक ने किया। ☐

रंग काव्य महोत्सव संपन्न

१४ नवंबर को प्रसिद्ध कवि एवं गीतकार स्वर्गीय श्री बलबीर सिंह 'रंग' की जन्मशती के अवसर पर हिंदी भवन, नई दिल्ली में 'रंग काव्य महोत्सव' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता हि.वि. के पूर्व कुलपति आचार्य अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी द्वारा की गई। रंगजी के साथ मंच साझा करनेवाले डॉ. कुँअर बेचैन तथा डॉ. शिव ओम 'अंबर' ने अनेक मनोरंजक संस्मरण सुनाए। डॉ. विष्णु सक्सेना तथा श्री बलराम श्रीवास्तव ने मधुर गीतों से रंगजी को काव्यांजलि दी। हिंदी भवन के मंत्री डॉ. गोविंद व्यास ने भी अपने विचार रखे। संचालन श्री चिराग जैन द्वारा किया गया। ☐

लोकार्पण एवं साहित्यकार सम्मान संपन्न

१२ नवंबर को अखिल भारतीय मेधा विकास परिषद् के तत्त्वावधान में श्री श्याम कृष्ण सक्सेना के कहानी-संग्रह 'पढ़ो कहानी मिले सफलता' का लोकार्पण किया गया। अध्यक्षता डॉ. जाकिर अली रजनीश ने की तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में वरिष्ठ पत्रकार श्री योगींद्र द्विवेदी एवं श्री पद्मकांत शर्मा 'प्रभात' उपस्थित थे। इस अवसर पर अखिल भारतीय मेधा विकास परिषद् द्वारा डॉ. दीप्ति दीक्षित (मेधा रत्न सम्मान), श्री परमात्मा प्रसाद श्रीवास्तव (कला मेधा सम्मान) एवं श्री श्याम कृष्ण सक्सेना (कथा मेधा सम्मान) को सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. अमिता दुबे ने किया। ☐

'साहित्य मंच' कार्यक्रम संपन्न

१८ नवंबर को साहित्य अकादेमी दिल्ली में फीजी के लेखक प्रो. सुब्रमनी के साथ एक 'साहित्य मंच' कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें उन्होंने अपने सद्य: प्रकाशित उपन्यास 'फीजी माँ' का एक अंश प्रस्तुत किया। सर्वश्री विमलेशकांति वर्मा, नारायण कुमार, सुरेश ऋतुपर्ण एवं राकेश पांडेय आदि ने उनके साथ एक संवाद सत्र में फीजी से जुड़ी कई जानकारियों को साझा किया। आरंभ में अकादेमी के सचिव के. श्रीनिवासराव ने प्रो. सुब्रमनी का स्वागत अंगवस्त्रम् एवं पुस्तकें भेंट करके किया। संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया। ☐

'कहावतों की कविताएँ' कृति लोकार्पित

विगत दिनों संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) द्वारा प्रकाशित डॉ. वेदमित्र शुक्ल के बाल-कविता संग्रह 'कहावतों की कविताएँ' के लोकार्पण कार्यक्रम के अध्यक्ष महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश शुक्ल एवं मुख्य अतिथि प्रो. अवनीश कुमार द्वारा किया गया। शिक्षा एवं बाल साहित्य से जुड़े देशभर के १२ विद्वानों को 'संस्कृति भवन साहित्य-सेवा सम्मान' से अलंकृत किया गया—सर्वश्री दिलीप बेतकेकर (गोवा), आरुगंटि सीताराम मूर्ति (विशाखपत्तनम), श्रीराम चौथाईवाले (पुणे), देवेंद्रराव देशमुख (रायपुर), वासुदेव प्रजापति (जोधपुर), विकास दवे (इंदौर), गोपाल माहेश्वरी (इंदौर), नीलम राकेश (लखनऊ), फकीरचंद शुक्ल (लुधियाना), देवेंद्रचंद्र दास (गुवाहाटी), पद्मा चोंगांवकर (भोपाल) एवं मंजरी शुक्ला (पानीपत)। संचालन श्री अवनीश भटनागर ने किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली में आचार्य विनोबा भावे की पुण्यतिथि पर नागरी लिपि परिषद् और गांधी स्मारक निधि के संयुक्त तत्त्वावधान में 'आचार्य विनोबा भावे : पुण्य स्मरण' समारोह की अध्यक्षता परिषद् के अध्यक्ष डॉ. परमानंद पांचाल ने की। पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि मुख्य अतिथि थे। सर्वश्री कुसुम बेन शाह, ए. अन्नामलाई और संजय सिंह के सान्निध्य में संपन्न इस समारोह का संयोजन व संचालन डॉ. हरिसिंह पाल ने किया। विनोबा नागरी सम्मान अर्पण शृंखला में बंजारा भाषा को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने के लिए, कॉर्पोरेट मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त निदेशक (राजभाषा) डॉ. आर. रमेश आर्य को प्रशस्ति-पत्र, स्मृति-चिह्न, शॉल और १०,००० रुपए की सम्मान राशि भेंट की गई। केंद्रीय हिंदी निदेशालय को विनोबा नागरी संस्थागत पुरस्कार प्रदान किया गया, जिसे निदेशालय के उप-निदेशक डॉ. राकेश शर्मा ने ग्रहण किया। इस अवसर पर 'बालवाटिका' के संपादक डॉ. भैंरुलाल गर्ग और कवि श्री नंद किशोर निर्झर को भी सम्मानित किया गया। श्री ब्रजपालसिंह संत के संचालन में सर्वश्री अशोक कुमार अगरोही, कमरबीर सिंह, बाबा कानपुरी, सुषमा शैली, सरोज सिंह, नरेश शामली, श्रीकृष्ण निर्मल, राजेंद्र उपाध्याय एवं साकेत सहाय ने काव्यपाठ किया। श्री नारायण कुमार ने धन्यवाद ज्ञापित किया। ☐

शोध संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों मांडव (धार) में नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली के सहयोग से राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना द्वारा एक राष्ट्रीय नागरी लिपि शोध संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता विभागाध्यक्ष डॉ. शैलेंद्र शर्मा ने की। मुख्य वक्ता डॉ. शहाबुद्दीन शेख थे। नागरी लिपि परिषद् के महामंत्री डॉ. हरिसिंह पाल विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। संचालन डॉ. अमृता अवस्थी ने किया। सर्वश्री शहबुद्दीन, हरिसिंह पाल, शैलेंद्र शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. हरिसिंह पाल को 'विशिष्ट सेवा सम्मान-२०१९' से सम्मानित किया गया। धन्यवाद श्री शरद जोशी शलभ ने ज्ञापित किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों कानपुर में 'कान्यकुब्ज मंच' पत्रिका के संस्थापक-संपादक आचार्य बालकृष्ण पांडेय की स्मृति में आयोजित सम्मान समारोह में साहित्य, संगीत तथा समाजसेवा के क्षेत्रों के विशिष्ट लोगों को सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि सांसद श्री सत्यदेव पचौरी ने साहित्यकार डॉ. जीवन शुक्ल को 'शारदा सम्मान' से, जलयोद्धा श्री उमाशंकर पांडेय को 'संत बिनोवा सम्मान' से तथा शास्त्रीय संगीताचार्य डॉ. कुसुम पांडेय को

'माँ वासंती पांडेय महिला सम्मान' से सम्मानित किया। प्रो. विनय पाठक विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। ☐

लघुकथा सम्मेलन संपन्न

२४ नवंबर को 'क्षितिज' संस्था, इंदौर द्वारा द्वितीय 'अखिल भारतीय लघुकथा-सम्मेलन २०१९' का आयोजन श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर में किया गया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता कला-मर्मज्ञ श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने की। मंच पर सर्वश्री सतीश राठी, सूर्यकांत नागर, सुकेश साहनी, श्याम सुंदर अग्रवाल, माधव नागदा एवं कुणाल शर्मा उपस्थित थे। द्वितीय सत्र में श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय को 'कला साहित्य सृजन सम्मान', श्री सुकेश साहनी को 'क्षितिज लघुकथा शिखर सम्मान', श्री श्याम सुंदर अग्रवाल को 'क्षितिज लघुकथा सेतु शिखर सम्मान', श्री माधव नागदा को 'क्षितिज लघुकथा समालोचना सम्मान', श्री कुणाल शर्मा को 'क्षितिज लघुकथा नवलेखन सम्मान' एवं श्री हीरालाल नागर को 'लघुकथा शिखर सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस सत्र में क्षितिज पत्रिका के 'लघुकथा अंक' एवं पुस्तक 'सार्थक लघुकथाएँ', श्री सुकेश साहनी के लघुकथा संग्रह 'सायबर मैन', श्री भागीरथ परिहार की पुस्तक 'कथा शिल्पी सुकेश साहनी की सृजन चेतना', श्रीमती ज्योति जैन के लघुकथा संग्रह 'जलतरंग' का अंग्रेजी अनुवाद, डॉ. अश्विनी कुमार दुबे के गजल-संग्रह 'कुछ अशहार हमारे भी', श्री चरण सिंह की पुस्तक 'हिंदी सिनेमा के अग्रज', श्री बृजेश कानूनगो की दो पुस्तकों 'रात नौ बजे का इंद्रधनुष' व 'अनुगमन' का लाकार्पण हुआ।

व्याख्यान सत्र में सर्वश्री कुशाल शर्मा व माधव नागदा ने लघुकथा की उपादेयता विषय पर अपने विचार रखे। सर्वश्री उमेश नीमा, चरण सिंह अमी, अनिल त्रिवेदी, रुखसाना, रविंद्र व्यास, प्रदीप नवीन आदि को सम्मानित किया गया। कला सहयोग के लिए वरिष्ठ कलाकार श्री संदीप राशिनकर को भी सम्मानित किया गया। ☐

'बाबूसिंह स्मृति साहित्यरत्न सम्मान' प्रदत्त

२४ नवंबर को आलोक पब्लिक स्कूल, मथुरा के सभागार में प्राचार्य डॉ. अवनीश सिंह चौहान को 'बाबूसिंह स्मृति साहित्यरत्न सम्मान' से सम्मानित किया गया। बहुभाषी रचनाकार डॉ. चौहान हिंदी भाषा एवं साहित्य की वेब पत्रिका 'पूर्वाभास' और अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य की अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका 'क्रिएशन एंड क्रिटिसिज्म' के संपादक हैं। संचालन श्री अनुपम गौतम तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री जितेंद्रसिंह सेंगर ने किया। ☐

जन्मशतवार्षिकी पर संगोष्ठी संपन्न

२६ नवंबर को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा प्रख्यात लेखक एवं बाल साहित्यकार श्री निरंकार देव सेवक की जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर 'निरंकार देव सेवक और बाल साहित्य' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया। मुख्य अतिथि के रूप में उद्घाटन वक्तव्य कवि श्री बालस्वरूप राही ने दिया। बीज वक्तव्य श्री प्रकाश मनुजी को देना था, लेकिन दुर्घटनावश चोट लगने के कारण वे नहीं आ सके, अत: उनका बीज वक्तव्य श्री श्याम सुशील द्वारा प्रस्तुत किया गया। विशिष्ट अतिथि के रूप में निरंकार देव सेवक की पुत्रवधू एवं प्रख्यात संगीतकार श्रीमती पूनम सेवक विशेष रूप से उपस्थित थीं। स्वागत वक्तव्य साहित्य अकादेमी के सचिव श्री के. श्रीनिवासराव ने दिया। संगोष्ठी के प्रथम सत्र में 'निरंकार देव सेवक एवं बाल कविता' विषय पर विचार-विमर्श हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता कवि एवं बाल साहित्यकार श्री दिविक रमेश ने की तथा सर्वश्री कमलेश भट्ट 'कमल', जगदीश व्योम एवं रजनीकांत शुक्ल ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। द्वितीय सत्र में 'निरंकार देव सेवक की विचार दृष्टि एवं बाल साहित्य' विषय पर विचार-विमर्श हुआ। इसकी अध्यक्षता श्री सुधीर विद्यार्थी ने की और सर्वश्री शकुंतला कालरा, उषा यादव एवं श्याम सुशील ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। संचालन श्री अनुपम तिवारी ने किया। ☐

पुरस्कार एवं कवि-सम्मेलन संपन्न

३ दिसंबर को हैदराबाद में गीत चाँदनी एवं आदिकवि वाल्मीकि साहित्य संस्था के संयुक्त तत्त्वावधान में आदिकवि वाल्मीकि प्रकटोत्सव के संदर्भ में छठवाँ आदिकवि वाल्मीकि साहित्य पुरस्कार व कवि सम्मेलन-२०१९ संपन्न हुआ। श्री गोविंद अक्षय ने संचालन किया; विशिष्ट अतिथि श्री के. महावीर थे। श्री नेहपाल सिंह वर्मा ने आदिकवि वाल्मीकि साहित्य पुरस्कार-२०१९ के साथ शॉल, पुष्पमाला, प्रशस्ति-पत्र और सम्मान राशि से कवि श्री संजीव कुमार बोहोत को पुरस्कृत किया। ☐

श्री श्यामप्रकाश देवपुरा को सर्वोच्च सारस्वत सम्मान

७ दिसंबर को भारत की संस्कारधानी जबलपुर में प्रख्यात साहित्य संस्था 'कादंबरी' द्वारा अखिल भारतीय साहित्यकार-पत्रकार सम्मान समारोह में नाथद्वारा साहित्य मंडल के प्रधानमंत्री श्री श्याम प्रकाश देवपुरा को मुक्तामाल, शॉल, सम्मान-पत्र और ११००० रुपए के साथ संस्था का सर्वोच्च सम्मान संस्थाध्यक्ष आचार्य भगवत दुबे, डॉ. राजकुमार तिवारी सौमित्र तथा डॉ. चतुर्वेदी के द्वारा प्रदान किया गया। ☐

सम्मान-अर्पण समारोह संपन्न

विगत दिनों मुरादाबाद में साहित्यिक संस्था 'हस्ताक्षर' के तत्त्वावधान में सम्मान-अर्पण कार्यक्रम में वरिष्ठ शायर श्री जमीर दरवेश को 'हस्ताक्षर साहित्य-साधक सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर संस्था की ओर से उन्हें सम्मान-पत्र, अंगवस्त्र, प्रतीक-चिह्न एवं श्रीफल भेंट किया गया। अध्यक्षता श्री माहेश्वर तिवारी ने की; मुख्य अतिथि श्री मंसूर उस्मानी; अतिविशिष्ट अतिथि डॉ. मक्खन मुरादाबादी तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. अजय 'अनुपम' थे। संचालन श्री योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने तथा आभार श्री राजीव 'प्रखर' ने किया। ☐

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

सलिला संस्था सलूंबर (राजस्थान) द्वारा स्वतंत्रता सेनानी ओंकार लाल शास्त्री स्मृति सम्मान पुरस्कार वर्ष २०२० के लिए अखिल भारतीय स्तर पर बालसाहित्य के अंतर्गत एकांकी लेखन प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित हैं। बाल एकांकियों के लेखन को प्रोत्साहन देने, उन्हें मंचित करने और संकलन के रूप में प्रकाशित करवाने की योजना है। इस हेतु इच्छुक लेखक अपने एकांकी ३१ मार्च, २०२० तक भेज सकते हैं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें—डॉ. विमला भंडारी, अध्यक्ष सलिला संस्था, भंडारी सदन, पैलेस रोड, सलूंबर-३०३०२७, जि. उदयपुर (राजस्थान) दूरभाष ९४१४७५९३५९। ☐

व्याख्यानमाला संपन्न

विगत दिनों भोपाल में माहेश्वरी सत्संग मंडल त्रिलंगा और स्वामी प्रणवानंद सरस्वती भारतीय साहित्य न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में 'गीता

और पर्यावरण' विषय पर संपन्न समारोह में वरिष्ठ शिक्षाविद् डॉ. प्रेम भारती ने व्याख्यान दिया। साहित्यकार डॉ. देवेंद्र दीपक ने अध्यक्षीय भाषण दिया। इस अवसर पर सर्वश्री प्रभुदयाल मिश्र, प्रकाश बरतूनिया, चंद्रहास शुक्ल ने विचार व्यक्त किए। न्यास के सचिव डॉ. रघुवीर गोस्वामी ने कार्यक्रम का संचालन किया। कार्यक्रम में वरिष्ठ पत्रकारों को शॉल, श्रीफल और प्रशस्ति-पत्र देकर उन्हें 'सत्संगश्री' सम्मान से सम्मानित किया गया। □

कुमारसभा पुस्तकालय का शताब्दी समारोह संपन्न

८ दिसंबर को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के शताब्दी समाह में बंगाल के पूर्व राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने कहा संस्कृति एवं सभ्यता का संग्रहालय होता है पुस्तकालय। कुमारसभा ने अपने १०० वर्षों के इतिहास में इसको सत्य साबित किया है।

समारोह के प्रधान अतिथि पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री जगदीप धनखड़ ने कहा कि आज के शताब्दी उत्सव में सब अपने मन में यह संकल्प जाग्रत् करें कि इस महत्त्वपूर्ण संस्था का शीघ्र ही अपना भवन निर्मित हो। प्रधान वक्ता, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के पूर्व अध्यक्ष प्रो. बल्देवभाई शर्मा ने कहा कि पुस्तकों के बिना साक्षर एवं सुसंस्कृत भारत का निर्माण संभव नहीं है। विशिष्ट अतिथि प्रख्यात आयकर सलाहकार श्री सज्जन कुमार तुलस्यान ने शताब्दी वर्ष के महत्त्वपूर्ण पड़ाव तक पहुँचानेवाले कार्यकर्ताओं की निष्ठा एवं लगन की प्रशंसा करते हुए अपने सतत सहयोग का आश्वासन दिया। पुस्तकालय अध्यक्ष डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने कहा कि यह साल अभिभूत करनेवाला है, जो संकोच, रोमांच तथा गौरव की त्रिमुखी प्रतीति करा रहा है। समारोह के प्रारंभ में डॉ. ओम निश्चिल द्वारा रचित 'कुमारसभा शताब्दी' गीत की संगीतमय प्रस्तुति दी लोकप्रिय गायक श्री ओम प्रकाश मिश्र ने। पुस्तकालय के मंत्री श्री महावीर बजाज ने इस अवसर पर प्रकाशित शताब्दी स्मारिका का राज्यपाल श्री धनखड़ एवं श्री केशरीनाथ त्रिपाठी के हाथों लोकार्पण कराया। श्री लक्ष्मीनारायण भाला ने दोनों अतिथियों को अपनी पुस्तक 'हमारा संविधान : भाव एवं रेखांकन' भेंट की। सर्वश्री कृष्णबिहारी मिश्र, गोविंद नारायण काकड़ा, विमल लाठ, कृष्ण स्वरूप दीक्षित, नंदकुमार लढ़ा, त्रिभुवन तिवारी, अनिल ओझा 'नीरद', ओम प्रकाश मिश्र, वसुमति डागा, सागरमल गुप्त, सुधा जैन, भागीरथ प्रसाद चांडक, राधेश्याम महावर, चंपालाल पारीक, महेशचंद चांडक, राजकुमार व्यास प्रभृति को शताब्दी अवसर पर राज्यपाल माननीय धनखड़जी के हाथों सम्मानित किया गया। अतिथियों का स्वागत किया सर्वश्री अरुणप्रकाश मल्लावत, भँवरलाल मूंधड़ा, मोहनलाल पारीक, सज्जन बंसल, ऋषिकेश राय, शांतिलाल, तारा दूगड़, राजश्री शुक्ला, रामचंद्र अग्रवाल ने। संचालन किया श्रीमती दुर्गा व्यास ने एवं धन्यवाद ज्ञापन किया पुस्तकालय के साहित्यमंत्री श्री बंशीधर शर्मा ने। □

लोकार्पण संपन्न

७ दिसंबर को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में मंगल सृष्टि द्वारा आयोजित व्याख्यान 'भारतीय संस्कृति की विश्व दृष्टि और वर्तमान संदर्भ' के मुख्य वक्ता पूज्य स्वामी अवधेशानंद गिरी (जूना पीठाधीश्वर) एवं मान. डॉ. मुरली मनोहर जोशी (पूर्व केंद्रीय मंत्री) थे। 'मंगल विमर्श' के पाँच वर्ष पूर्ण होने के अवसर प्रर प्रकाशित 'पर्यावरण विशेषांक' एवं डॉ. बजरंग लाल गुप्ता की पुस्तकों 'भारतीय सांस्कृतिक मूल्य' तथा 'हिंदू अर्थचिंतन : दृष्टि एवं दिशा' (प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित) तथा प्रो. ओमीश परुथी की पुस्तक 'अस्ताचल के उजाले' का लोकार्पण संपन्न हुआ। □

विमोचन कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों कानपुर नगर स्थित छत्रपति शाहूजी महाराज कॉलेज के दीनदयाल उपाध्याय सभागार में अनमोल रत्न संस्था द्वारा आयोजित कार्यक्रम में 'अनमोल गीत विशेषांक' पत्रिका का विमोचन किया गया तथा डॉ. राधेश्याम मिश्र द्वारा रचित गीत-संग्रह 'जिंदगी चलती डगर है' की समीक्षा सर्वश्री बद्रीनारायण तिवारी, रामकृष्ण शर्मा, गायत्री सिंह, प्रशांत उपाध्याय, गिरीश चंद्र मिश्र, ओम प्रकाश प्रजापति, चंद्रपाल मिश्र 'गगन' एवं राधा शाक्य ने की। इस अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. श्यामबाबू गुप्त ने की। मुख्य अतिथि सर्वत्र श्री अरुण पाठक, सुरेंद्र मैथानी एवं निर्मल तिवारी रहे। सर्वश्री चंद्रपाल मिश्र 'गगन', राधा शाक्य, राधेश्याम मिश्र, वीना उदय, मांडवी द्विवेदी, कोमलकांत मिश्र, राघवेंद्र भदौरिया, मधु श्रीवास्तव, ज्ञानेश तिवारी, अभिषेक बाजपेयी एवं आशा सिंह ने अपनी रचनाओं का पाठ किया। □

'नाट्य समग्र' कृतियाँ विमोचित

११ दिसंबर को नई दिल्ली में वरिष्ठ नाटककार श्री दया प्रकाश सिन्हा द्वारा रचित नाटकों की तीन खंडों में प्रकाशित 'नाट्य समग्र' का साहित्य अकादेमी सभागार में विमोचन हुआ। मुख्य अतिथि (केंद्रीय संस्कृति एवं पर्यटन राज्य मंत्री) श्री प्रह्लाद सिंह पटेल थे। अध्यक्षता गोवा की पूर्व राज यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा ने की। इस अवसर पर सर्वश्री दया प्रकाश सिन्हा, चंदन कुमार, देवेंद्र राज अंकुर ने अपने विचार व्यक्त किए। श्रीमती मृदुला सिन्हाजी ने अध्यक्षीय वक्तव्य दिया। संचालन श्री अशोक कुमार ज्योति ने किया। संस्कार भारती, दिल्ली के अध्यक्ष श्री राजेश चेतन ने धन्यवाद ज्ञापित किया। □

कविता-गोष्ठी संपन्न

१४ दिसंबर को अखिल भारती सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति, नई दिल्ली द्वारा गाजियाबाद में 'काव्य-हस्ताक्षर' कविता-गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें दिल्ली-एन.सी.आर. के ४० से अधिक कवि-कवयित्रियों ने अपनी कविताओं का पाठ किया। अध्यक्षता हिंदी के प्रतिष्ठित कवि एवं पत्रकार पं. सुरेश नीरव ने की। डॉ. अशोक कुमार ज्योति मुख्य अतिथि थे; विशिष्ट अतिथि थे श्री जय प्रकाश पांडेय तथा श्री पुरुषोत्तम नारायण सिंह। संचालन डॉ. मधु चतुर्वेदी ने किया। सर्वश्री सुरेश नीरव, जय प्रकाश पांडेय, मधु चतुर्वेदी, अशोक कुमार ज्योति, ऋचा सूद, मधु मिश्रा, ऋचा त्यागी, कल्पना पांडेय, वीणा मित्तल, सुधेंदु ओझा, पुष्पा सिंह बिसेन, दमयंती ममता राठौर और शायर रुफ रामीश तथा सरफराज देहलवी ने कविता पाठ किया। □

डॉ. हरिप्रसाद दुबे का व्याख्यान आयोजित

विगत दिनों अयोध्या में अंतरराष्ट्रीय रामकथा संग्रहालय में डॉ. हरिप्रसाद दुबे ने 'सांस्कृतिक धरोहर की प्रासंगिकता' विषय पर व्याख्यान दिया। अध्यक्षता श्री रामजीत वर्मा ने की। संग्रहालय के उपनिदेशक श्री योगेश कुमार ने अतिथियों का स्वागत एवं धन्यवाद किया। □

संगोष्ठी आयोजित

विगत दिनों दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी और राष्ट्रभाषा स्वाभिमान न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में हिंदी कथा साहित्य के युगपुरुष पं. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की ७५वीं पुण्यतिथि पर आयोजित 'हिंदी कथा साहित्य में

पं. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' का योगदान' विषयक संगोष्ठी में मुख्य अतिथि डॉ. रामशरण गौड़, अध्यक्ष डॉ. कौशलेंद्र पांडेय, विशिष्ट अतिथि सर्वश्री शंभुनाथ शुक्ल, राकेश शुक्ल, हरिसिंह पाल तथा श्री महेश दर्पण ने कौशिकजी के विपुल कथा साहित्य की विवेचना की और उनके अतुलनीय योगदान की सराहना की। संगोष्ठी के संयोजक श्री उमाशंकर मिश्र ने आयोजन की रूपरेखा प्रस्तुत की। प्रारंभ में कौशिकजी के पौत्र वरिष्ठ कथाकार श्री नीलांबर कौशिक ने अपने दादाजी के समग्र जीवन का भावपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया। इस अवसर पर बिहार की वरिष्ठ कथाशिल्पी डॉ. मुदुला झा को 'साहित्य महारथी पं. विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक स्मारक समिति' की ओर से कहानी विधा के लिए सम्मानित करते हुए ११००० रुपए की नगद राशि, शॉल, स्मृति चिह्न व पुस्तकें भेंट की गईं। श्री बालशेखर दिवाकर के कहानी-संग्रह 'उसे मेरा कर दे' और डॉ. मृदुला झा के खंडकाव्य 'मंथिरा' और श्री सुरेश चंद वर्मा 'मधुप' की दो पुस्तकों 'पाषाणी' (काव्य संग्रह) तथा 'सरहद पर रातें' (लघुकथा-संग्रह) का लोकार्पण भी संपन्न हुआ। □

साहित्यश्री अलंकरण सम्मान कार्यक्रम संपन्न

८ दिसंबर को वाराणसी स्थित श्री कमलाकर चौबे आदर्श सेवा इंटर कॉलेज के सभागार में साहित्यिक संघ के २८वें अधिवेशन के मुख्य अतिथि पूर्व कुलपति प्रो. गिरीश्वर मिश्र थे। डॉ. विजयेंद्र नाथ मिश्र ने मंगलाचरण किया। मुख्य अतिथि ने देश के विभिन्न भागों से आहूत रचनाकारों सर्वश्री अंजना वर्मा, शारदा लाल, डी.एम. मिश्रा, सुरेश बाबू मिश्र, वेदमित्र शुक्ल, भगवंत सिंह, राम अवतार पांडेय, वेद्रप्रकाश पांडेय, अलकबीर और नरोत्तम शिल्पी को 'सेवक स्मृति साहित्यश्री सम्मान' द्वारा अलंकृत किया। दूसरे चरण में महेंद्र नाथ मिश्र स्मृति काव्य गोष्ठी संपन्न हुई, जिसमें सम्मानित रचनाकारों के साथ ही सर्वश्री ओम धीरज, सुरेंद्र वाजपेयी, धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल', सिद्धनाथ शर्मा, सूर्य प्रकाश मिश्र, साँड़ बनारसी, अजीत श्रीवास्तव, चंद्रभान राही, बृजेश पांडेय, समाल बनारसी, विजेंद्र मिश्र 'दमदार', विध्यांचल पांडेय 'सगुन', पवन कुमार शास्त्री ने काव्य-पाठ किया। संचालन डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र ने किया तथा धन्यवाद डॉ. रामसुधार सिंह ने दिया। □

पूर्णिमा कवि-गोष्ठी संपन्न

१५ दिसंबर को हैदराबाद में गीत चाँदनी की प्रतिमास आयोजित होनेवाली कवि गोष्ठी की अध्यक्षता श्री सुरेश गुगलिया ने की और श्री गोविंद अक्षय ने गीत चाँदनी की बहुआयामी गतिविधियों का परिचय दिया। शुभारंभ श्रीमती सुषमा बैद की सरस्वती वंदना से हुआ। श्री हरिहर दास विशेष अतिथि थे। सर्वश्री कुंज बिहारी गुप्ता, प्रदीप देवी शरण भट्ट, सुरेश गुगलिया, सुषमा बैद, डी. प्रेमराज, गजानन पांडेय, रत्नकला मिश्र, उमा सोनी, सूरज प्रसाद सोनी, सत्यनारायण काकड़ा, सीताराम माने, गोविंद अक्षय, महेश कुमार शुक्ला, सुभाष भटनागर ने काव्य-पाठ किया। संयोजिका श्रीमती रत्नकला मिश्र थीं। □

लोकार्पण समारोह संपन्न

१३ दिसंबर को होटल द मारवलस, झाँसी में उत्तर प्रदेश के पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ. रवींद्र शुक्ल की ९वीं कृति 'संजीवनी' के लोकार्पण कार्यक्रम की अध्यक्षता महामंडलेश्वर डॉ. शास्वता नंद गिरि जी ने की। मुख्य अतिथि राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्रीधर पराढ़कर थे। विशिष्ट अतिथि सर्वश्री सुशील चंद्र त्रिवेदी, पवन पुत्र बादल जी रहे। कार्यक्रम को सानिध्य मिला न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी के प्रो. उमेश नागर कत्ते का। समीक्षकों में प्रो. बी.बी. त्रिपाठी एवं श्रीमती रमा सिंह जी उपस्थित थीं। जिलाधिकारी श्री शिवसहाय अवस्थी ने भी कार्यक्रम को संबोधित किया। अभ्यागतों का स्वागत श्री निशांत शुक्ल ने किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनो इंदौर की प्रतिष्ठित संस्था आपले वाचनालय के संस्थापक संस्कृति पुरुष वसंत राशिनकर की स्मृति में अ.भा. सम्मान समारोह की अध्यक्षता डॉ. अनिल गजभिये अतिथिद्वय साहित्यकार श्री राजू देसले और संपादक श्री अश्विन खरे ने अपने उद्‌बोधन में कवि, मूर्तिकार और समाजसेवी वसंत राशिनकर द्वारा आपले वाचनालय के माध्यम से समाज में किए गए वृहद रचनात्मक कार्यों की भूरी-भूरी प्रशंसा की।

इस सम्मान समारोह में कवि संजय चौधरी को कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान से सम्मानित किया गया। वसंत राशिनकर काव्य साधना अ.भा. सम्मान से मॉरिशस से आए श्री राम मालू एवं सर्वश्री गजानन तपस्वी, अरुण इंगवले, इरफान शेख, विलास गावड़े, सुनंदा पाटील की कृतियों को भी सम्मानित किया गया। इस अवसर पर अच्युत पोतदार प्रदत्त रामू भैया दाते स्मृति पुरस्कार युवा अभिनेत्री श्रुतिका जोग कलमकर को प्रदान किया गया। मराठी कवि सम्मेलन में मेधा खिरे, उमेश थोरात, अरुणा खरगोणकर, विश्वनाथ शिरढोणकर, दीपक देशपांडे, ज्ञानेश्वर तिखे, जया गाडगे, सुषमा अवधूत, श्रीति राशिनकर, श्रीकांत तारे और रोहिणी कुलकर्णी ने अपने कविताओं का पाठ किया। संचालन किया मनीष खरगोणकर और श्रीति राशिनकर ने। □

श्री आनंद 'गौरव' को 'साहित्य-साधक सम्मान'

१२ दिसंबर को मुरादाबाद की साहित्यिक संस्था 'हस्ताक्षर' के तत्त्वावधान में आयोजित सम्मान-अर्पण कार्यक्रम वरिष्ठ साहित्यकार श्री आनंद कुमार गौरव को 'हस्ताक्षर साहित्य-साधक सम्मान' एवं सम्मान-पत्र, अंग-वस्त्र, प्रतीक-चिह्न एवं श्रीफल भेंट किया गया। मुख्य अतिथि विख्यात शायर श्री मीर दरवेश थे। अतिविशिष्ट अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अजय अनुपम एवं विशिष्ट अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार श्री अशोक विश्नोई थे। संचालन श्री योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने तथा आभार श्री राजीव 'प्रखर' ने माना। □

साहित्यिक क्षति

कथाकार श्री स्वयं प्रकाश नहीं रहे

७ दिसंबर वरिष्ठ को कथाकार श्री स्वयं प्रकाश का मुंबई में निधन हो गया। २० जनवरी, १९४७ को इंदौर में जनमे श्री स्वयं प्रकाश मुंशी प्रेमचंद की परंपरा के कहानीकार थे। उनकी कहानियों में अकसर राजस्थान पाया जाता था। 'सूरज कब निकलेगा' उनकी चर्चित कहानी थी, जो राजस्थान के मारवाड़ इलाके में ७० के दशक में आई बाढ़ पर आधारित थी। उन्होंने पाँच उपन्यास, नौ कहानी-संग्रह और तीन नाटक लिखे। साथ ही अपने मित्र मोहन श्रोत्रिय के साथ लघु पत्रिका 'क्यों' का संपादन-प्रकाशन भी किया। हिंदुस्तान जिंक लि. से सेवानिवृत्त स्वयं प्रकाश कहानी लेखन से पहले कविताएँ भी लिखते थे। उनको राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार समेत कई सम्मानों से सम्मानित किया गया।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।



होली के इतने अदभुत रंग
देख के होगी दुनिया दंग

रंगोत्सव

बरसाना, 04 मार्च, 2020

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश पर्यटन

Online booking portal: www.uttarpradesh.gov.in

 /UttarPradeshTourism  /uttarpradeshtourism  /uptourismgov



यू.पी. नहीं देखा,
तो इंडिया नहीं देखा.

प्रकाशन की तिथि—२०.१२.१९ • प्रेषण की तिथि—पूर्व माह की २५-२६ • पंजीयन संख्या ६२११२/९५
डाक पंजीकरण संख्या डी एल (सी)-०१/१२७३/२०१८-२० • यू. (सी) २२२/२०१८-२०
पी.एस.ओ. नई दिल्ली अग्रिम शुल्क के बिना प्रेषण की अनुमति